॥ महाकाल-संहिता ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च ।
उभयं कुर्वते देवि मदुदीरितवेदिनः ।।
वेदाविरुद्धं कुर्वन्ति यद् यदागमचोदितम् ।
आगमादेशितमपि जहति श्रुत्यदेशितम् ।।

वर्त्मद्वयं भगवता दर्शितं करुणावशात् ।
यस्येच्छा वर्तते यत्र स तत्र रमतां सुखम् ।।

महाकालसंहिता

गुह्यकालीखण्डः

प्रथमो भागः

(आद्यनवपटलात्मकः)

●

परिष्कृतं संशोधितं च द्वितीयं संस्करणम्

●

सम्पादननिर्देशनम्

डॉ० गयाचरण त्रिपाठी

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठस्य प्राचार्यः

सम्पादकः

डॉ० किशोर नाथ झा

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठे

सर्वदर्शनविभागाध्यक्षः

यन्त्रोद्धारकर्ता आलेखकारश्च

डॉ० प्रकाश पाण्डेयः

अनुसन्धानसहायकः

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्

प्रयागः-२

प्रकाशकः
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी
प्राचार्यः
गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
चन्द्रशेखर आजाद पार्क
इलाहाबाद-२

मूल्यम्
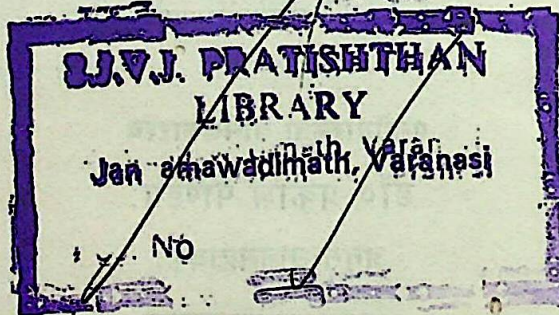
मुद्रकः
शाकुन्तल मुद्रणालयः
३४, बलरामपुर हाउस
इलाहाबाद-२

महाकालसंहिता

सम्पादकः

डॉ० किशोरनाथ झा

सर्वदर्शनविभागाध्यक्षः

तस्याश्चायं गुह्यकालीखण्डान्तर्गतः

प्रथमो भागः

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्

प्रयागः-२

मिश्रिताभ्यां पयोम्बुभ्यां
क्षीरं हंसो यथा पिबेत् ।
शुभाशुभाभ्यां हि तथा
शुभमेव श्रयेत् सुधीः ॥

प्रास्ताविकम्

अथेदानीं १९७६ ख्रीष्टाब्दे आविर्भूतस्य महनीयायाः महाकाल-संहितायाः गुह्यकालीखण्डान्तर्गतस्यास्य प्रथमभागस्य नूतनं सर्वविधपरि-शोधितं चेदं संस्करणं प्रकाश्य वामाचरणपरायणानां कृष्णासमुपासकानां, शाक्तागमे बद्धरुचीनां सचेतसां विदुषां चैव शयकुशेशयेषु सन्निधतामस्माकं सुतरां मोदमावहति चेतः। प्रकाशनेनानेन चिरादनुपलब्धमिदं ग्रन्थरत्नं पुनरपि सौलभ्यमापद्यते । संशोधनं त्वस्य तेनैव विपश्चिता श्रीमता किशोरनाथशर्मणा व्यधायि येन तदानीमस्य ऐदंप्राथम्येन सम्पादनं विहितमासीत् । कोऽन्यः खलु ऋतेऽमुमस्य ग्रन्थस्य 'दोषज्ञ'तरः स्यात् ?

अस्मिन् संस्करणे प्रथमसंस्करणान्तर्गतमुद्रणदोषादिपरिमार्जन-पुरस्सरं बहुत्र नूतनपाठसमावेशः कृतः, पञ्चमपटलोक्तानि सर्वाणि च यन्त्राणि नूतनतया निर्मायात्र सन्निवेशितानि । एवंकृते विद्वत्सु संस्कृतजगति च प्रागेव लब्धप्रतिष्ठोऽयं ग्रन्थ इदानीमुपयोगितरः संजात इति दृढं विश्वसिमः ।

आदिनाथेन प्रोक्ता, तान्त्रिकवाङ्मयस्यालङ्कारभूतेयं महाकालसंहिता भगवत्याः वामाचारानुवर्त्तिवरिवस्याविधिव्यवस्थापको ग्रन्थः । अस्मिन्नुप-वर्णिता आगमोक्तविषया संप्रदायेन गुरुपरम्परया वा बहोः कालादनुवर्तमाना अपि प्रायो द्वादशशताब्द्यां ग्रन्थरूपेण केनचित् सुधिया निबद्धा इति सम्पादकस्य साधीयान् पक्षः ।

का पुनर्गुह्यकाली इति विचारिते गुह्या, शम्भुना गोपिता, परि-रक्षिता, शाम्भवीशक्तियुता वा काली गुह्यकाली । यदि वा गुह्या गोपनीया

संप्रदाये दीक्षितेभ्य एव प्रकाशनीया कालीविद्या—कालिकोपासना—गुह्यकालीति। देव्याः गुह्याङ्गस्योपासनाप्राधान्यात्, नेपालदेशेऽस्याश्चतुर्दशशताब्दीत एव तत्रत्यैर्नृपतिभिः पूजितस्य सिद्धपीठस्य विद्यमानत्वाद् वा गुह्यकाली इत्यपि केषाञ्चित् संप्रत्ययः।

सा चैषा महाकालसंहिता आगमपरम्परानुगामिन्यपि, तां पोषयन्ती सती, नैगमपरम्पराविरोधिनी तद्दूषिका वा नैवास्ति। वैदिकीं परम्परामप्येषा सम्यक्तया आद्रियते तामनुमोदयति च। द्विजादीनां कृते मद्यमांसादीनां स्थानेऽनुकल्पानां विधानमेतस्य प्रमाणत्वेनोपन्यस्तुं शक्यते। अद्यापि मिथिलाप्रान्ते नेपालदेशे चास्मिन् ग्रन्थे वर्णितां पूजापद्धतिमनुसृत्य बहवो भगवतीमुपासते भुक्तिमुक्तिकामुकाः साधका इति श्रुतमस्माभिर्यस्योपत्तितया इदमेव तथ्यं जागर्त्ति यद् ग्रन्थस्यास्य मातृकाः प्राधान्येन तत्रैवोपलभ्यन्ते, ततश्चास्माभिरपि संगृहीताः, न त्वन्यतः।

चतुर्दशपटलपरिमाणकः खलु सम्पूर्णो गुह्यकालीखण्डः। तस्य चायं नवपटलात्मकः प्रथमो भागः प्रायः सर्वाधिकमहत्त्वावहः। ग्रन्थस्यास्य सम्पादनायासो विद्यापीठस्यास्य पूर्ववर्तिन्या संस्थया श्री गङ्गानाथझाशोधसंस्थानेन राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य अङ्गताप्राप्तेः प्रागेव, श्रीमतामुमेशमिश्राणामाध्यक्ष्ये, बहुश्रुतानां विश्वविश्रुतानां श्रीमतां गोपीनाथकविराजमहोदयानां, पण्डितराजोपाधिविभूषितानां श्रीमतां राजराजेश्वरशास्त्री द्रविडमहोदयानां च साहाय्यमवाप्योपक्रान्त आसीत्। विद्यापीठस्याद्येन प्राचार्येण श्रीमता आर्येन्द्रशर्मणा प्रणादितोऽयं ग्रन्थः डॉ० हरिहरझाशर्ममहाभागानां प्राचार्यत्वे प्रथमतः प्राकाश्यमवाप। स चैष इदानीं महान्तं परिष्कारमवाप्य शुद्धतररूपेण पुनरपि प्राकाश्यमेत्यस्माकमाध्यक्ष्ये निर्देशने चेति महानयं सन्तोषविषयो नः।

सश्रद्धमचास्माभिः तस्यै पराम्बायै भगवत्यै महाकाल्यै प्रणामाञ्जलिर्निवेद्यते याऽस्मानत्र साधनत्वेनोपयुक्तवती, यस्याश्च कृपया बहोः

कालाच्चिकीर्षितं, किन्तु धनाभावेनाद्यावधि बाधितं, स्थगितं चेदं कार्यं सम्पूर्णतामगमत् ।

श्रीमते डॉ० किशोरनाथझाशर्मणे सम्पादनायासार्थम् आयुष्मते डॉ० प्रकाशपाण्डेयाय चैतद्ग्रन्थगतन्यत्रोद्धारादिसाहाय्यार्थं च साधुवचोभिर्धन्यवाग्भिश्च सभाजयामीति शम् ।

श्रीप्रयागः
गुरुपूर्णिमा, सं० २०५० वि०
(३-७-१९९३)

त्रिपाठिनो गयाचरणस्य
विद्यापीठप्राचार्यस्य

शुभाशंसनम्

(पूर्वसंस्करणात्)

डा० श्रीकिशोरनाथ झा मदीयावासमागत्य महाकालसंहिताया मातृकातः पाठभेदं समकलयत् । परम्पराप्राप्तगुरुतो लब्धमन्त्रैः क्रियमाणाया-मुपासनायां तेषामुपासकानां मन्त्रार्थनिश्चयाय महानुपकारकोऽयं ग्रन्थो भवितुमर्हतीत्येतादृशपुण्यकृते डा० किशोरनाथशर्मणे शुभाशीर्वादान् वितरामि ।

पण्डितराज राजेश्वरशास्त्री द्राविडः
वाराणसी

विषय-सूची

तृतीयः पटलः ४१-१४२

सप्तमः पटलः २७०-३१९

आमुख

महाकाल-संहिता के गुह्यकाली-खण्ड का प्रथम भाग (पटल १ से ९ पर्यन्त) गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत-विद्यापीठ, इलाहाबाद द्वारा सम्पादित होकर प्रथम बार विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर उमेश मिश्र ने इस विद्यापीठ के सचिव रूप में इस योजना का शुभारम्भ किया था। उनके आकस्मिक निधन के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र डा० श्री जयकान्त मिश्र (रीडर, अंग्रेजी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय) ने इस संस्था के सचिव पद को संभालते हुए स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज द्वारा इस संहिता के कामकला-खण्ड का सम्पादन कराया और इस विद्यापीठ के प्राचार्य डा० आर्येन्द्र शर्मा ने सन् १९७१ ई० में उसे प्रकाशित किया। इसी समय केन्द्रीय सरकार द्वारा इस संस्था के अधिग्रहण हो जाने पर राष्ट्रिय संस्कृत-संस्थान, दिल्ली के संरक्षण में गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ से इसका प्रकाशन उस प्रारब्ध योजना के कार्यान्वयन का परिणाम है।

मातृका-परिचय

इस भाग का सम्पादन मुख्यत: विद्यापीठ में उपलब्ध छह मातृकाओं की फोटो प्रति के आधार पर हुआ हैं, जो क्रमश: क ख ग घ ङ तथा च संकेतों द्वारा पाद-टिप्पण में व्यवहृत हुए हैं। इन मातृकाओं का परिचय इस प्रकार हैं :—

क—यह मातृका चन्द्रधारी-संग्रहालय, दरभंगा से संगृहीत है। इसमें ४६६ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में १३ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ४८ अक्षर हैं। यह देवनागरी अक्षर में लिखी गयी है। इसकी आकृति १५ × २० से० मी० है तथा आधार कागज है। इसमें आरम्भ से गुह्यकाली-खण्ड के चौदह पटल और कामकला-खण्ड का पूर्वार्ध (आठ पटल) उपलब्ध हैं। इसी मातृका को मुख्य मान कर इसकी पाण्डुलिपि प्रस्तुत हुई है। पत्र सं० १ से ४१० पर्यन्त गुह्यकाली-खण्ड और पत्र सं० ४११ से ४६६ तक कामकला-खण्ड उपलब्ध हैं।

ख—यह मातृका कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत-विश्वविद्यालय, दरभंगा से संगृहीत है। इसमें २९१ पत्र हैं, प्रत्येक पत्र में १३ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति में ६६ अक्षर हैं। यह देवनागर अक्षर में लिखित है। इसकी आकृति २० × १५ से० मी० है तथा आधार कागज है। इसमें भी १४ पटल गुह्यकाली-खण्ड के और आरम्भिक आठ पटल कामकला खण्ड के उपलब्ध हैं। इसमें केवल एक विशेषता है कि गुह्यकाली-खण्ड का तृतीय पटल जो मन्त्रोद्धार-पटल नाम से प्रसिद्ध है, उसके स्थान पर इसमें बीजोद्धाराख्य तृतीय एवं

चतुर्थ पटल संकलित हुआ है, मन्त्रोद्धाराख्य तृतीय पटल नहीं। इस पटल की सहायता से मन्त्र के स्वरूप के उद्‌घाटन में तो साहाय्य मिलता है किन्तु गुह्यकाली के जप्य मन्त्र का स्वरूप ज्ञात नहीं हो सकता है। स्मरणीय है कि इसी तृतीय पटल के आधार पर कामकला-खण्ड के परिशिष्टों में बीज, उपबीज, कूट, उपकूट तथा कूट के उपकारक सकेतों की वर्णानुक्रम-सूची प्रस्तुत हुई है। इसका बीजोद्धाराख्य चतुर्थ पटल पश्चात् उपलब्ध हुआ। अतएव उक्त अंश का उपयोग उक्त परिशिष्टों में नहीं हो सका।

ग—यह मातृका भी संस्कृत-विश्वविद्यालय, दरभंगा से उपलब्ध है। यह पत्र संख्या ४४ से २०४ तक उपलब्ध है। प्रत्येक पत्र में १६ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ६१ अक्षर हैं। इसकी आकृति ३१.२ × २५.५ से० मी० है। यह मिथिलाक्षर में लिखी गयी है और इसका आधार कागज है। इसका आरम्भ गुह्यकाली खण्ड के सप्तम पटल के अन्तिम अंश से होता है और चौदहवें पटल के अन्तिमांश से कुछ पहले ही समाप्त हो जाता है।

घ—यह मातृका सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय से संगृहीत है। इसमें ३७२ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में १४ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ४८ अक्षर हैं। इसकी आकृति २१.५ × १६.५ से० मी हैं तथा आधार कागज है। यह मातृका देवनागर अक्षर में लिखी गयी है। इसमें गुह्यकाली-खण्ड के केवल १४ पटल उपलब्ध हैं।

ङ—यह मातृका राष्ट्रिय अभिलेखागार, काठमाण्डू, नेपाल से प्राप्त है। इसमें १ से २६१ पत्र हैं, जिनमें ५ पत्र रिक्त हैं। परन्तु गुह्यकाली-खण्ड के एक से चौदह पटल पर्यन्त अखण्ड रूप में उपलब्ध हैं। इसमें प्रति पत्र १७ पंक्तियाँ हैं तथा प्रति पंक्ति ६५ अक्षर हैं। लिपि देवनागर है और आधार कागज है। इसकी आकृति १४ × १२.५ से० मी० है। यह मातृका आपेक्षिक शुद्ध एवं अधिक सुवाच्य है। इसके तृतीय पटल के प्रान्त-टिप्पण में कुछ मन्त्रों के स्वरूप भी उल्लिखित हैं।

च—यह मातृका वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय से प्राप्त है। इसके ३३० पत्र उपलब्ध हैं। प्रति पत्र २५ पंक्ति और प्रति पंक्ति ५० अक्षर हैं। यह देवनागरी लिपि में कागज पर लिखी गयी है। यद्यपि न इसकी फोटो प्रति पढ़ने योग्य है, और न इसका विशेष उपयोग ही किया जा सका है। तथापि विहङ्गम दृष्टि से देखने पर इतना तो अवश्य ज्ञात होता है कि गुह्यकाली-खण्ड की ही मातृका है। यह मातृका सर्वथा पूर्ण भी नहीं है, स्थान-स्थान पर खण्डित है।

छ—यह मातृका पूज्यवर पण्डितराज राजेश्वर शास्त्रीजी के व्यक्तिगत पुस्तकालय में उपलब्ध हुई। इसका सङ्केत छ अक्षर द्वारा पाद-टिप्पण में हुआ है। पण्डितराज की यह महती कृपा अविस्मरणीय है कि विशेष कारण वश किसी को नहीं देखने देने का सङ्कल्प होने पर भी हमलोगों को उन्होंने पाठभेद संकलन के लिए अनुमति

दी। इस प्रसङ्ग में विद्यापीठ के अनुसन्धान अधिकारी श्रीमती डा० माया मालवीय सहयोग के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। इस मातृका में गुह्यकाली-खण्ड के २१५ पत्र हैं तथा बीजकोष के ४१ पत्र हैं। इसमें प्रति पत्र ११ पंक्तियाँ एवं प्रति पक्ति ७० अक्षर हैं। इसकी आकृति १४×६ इंच है। आधार कागज एवं लिपि देवनागर है। यह कहने को तो चतुर्दश पटलान्त है, किन्तु मध्य मध्य में खण्डित है। आदि से छह पटल तक पूर्णतः उपलब्ध है। सप्तम पटल में उत्तरार्ध के लगभग ३४४ श्लोक नहीं है। अष्टम एवं नवम पटल सम्पूर्ण है। दशम से चतुर्दश पटलों के खण्डित अंश का निश्चित पता नहीं लग पाया किन्तु खण्डित अवश्य है। बीजकोषात्मक तृतीय एवं चतुर्थ पटल यहाँ भी है। चतुर्थ पटल के अन्तिम ६० श्लोक यहाँ नहीं है।

दो अन्य मातृकाएँ भी इस सम्पादन के क्रम में देखने को मिलीं। एक तो मिथिला-संस्कृत-शोध संस्थान, दरभंगा (विहार) के मातृका विभाग में संगृहीत है। और दूसरी मातृका सरस्वती-भवन (वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय) के नये संग्रह में उपलब्ध हुई। मिथिला संस्कृत शोध संस्थान की मातृका का विवरण इस प्रकार है—इसकी पुस्तकालय-प्रवेश संख्या (एक्सेसन नं०) ६८०४ है। इसमें पत्र संख्या १ से ४६७ तक मिलते हैं। प्रत्येक पत्र में ११ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति ४० अक्षर हैं। यह देवनागर अक्षर में लिखी गयी है। इसका आधार कागज है और आकृति ३०.२×१५.६ से० मी० है। इसमें प्रारम्भ से गुह्यकाली खण्ड के सम्पूर्ण चौदह पटल उपलब्ध हैं।

दूसरी मातृका का विवरण, सरस्वती-भवन की नई मातृका सूची की प्रेस कापी में इस प्रकार है :—मातृका सूची, तन्त्र-खण्ड, क्रम-संख्या २०।१५३ में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। इसकी पूर्व निर्धारित क्रम संख्या या प्रवेश संख्या ६७।२३४ है। इसमें पत्र संख्या १ से ३८, और ५१ से २२७ है। प्रति पत्र १० पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति ५८ अक्षर हैं। यह मातृका मिथिलाक्षर में लिखी गयी है। इसकी आकृति १६×६.२ से० मी० है और आधार कागज है। यह मातृका खण्डित तथा अपूर्ण है। यहाँ गुह्यकाली-खण्ड के दस पटल मिलते हैं। बीच में तृतीय पटल के सहस्राक्षर मन्त्रोद्धार के बाद चतुर्थ पटल के आरम्भिक कुछ अंश तक नहीं मिलते हैं। इस मातृका का लेखक विद्वान् प्रतीत होता है। अतएव अन्य मातृकाओं की तरह इस मातृका में अक्षराशुद्धि नहीं है। इन दोनों ही मातृकाओं से पाठभेद का संकलन नहीं किया गया। इसका कारण यह है कि दरभंगा शोध-संस्थान की मातृका तथा ङ संकेत द्वारा परिगृहीत मातृका में सर्वथा साम्य है। अतएव ङ पाठ से ही उसके पाठ गतार्थ होते हैं। इन दोनों मातृकाओं में यही अन्तर हैं कि नेपाल से प्राप्त ङ मातृका में प्रान्त टिप्पण में मन्त्रों का उद्धार हुआ है, और शोध-संस्थान दरभंगा की मातृका में वह नहीं है। वाराणसी की नूतन उपलब्ध मातृका और प्रस्तुत खण्ड के आरम्भिक दो पटलों की प्रेस कापी में पाठभेद एक भी उपलब्ध नहीं हो सका प्रत्युत सम्पादित पाण्डुलिपि की शुद्धता का निर्णय हुआ।

ज—संकेत से जो पाठभेद इस भाग में दिए गए हैं। वे पूज्य स्वामी मूर्खारण्य जी की कापी से संगृहीत हैं। सम्पादक के लिए यह गौरव का विषय है कि स्वामी मूर्खारण्य जी

(वस्तुतः विद्यारण्य जी) महाराज जैसे विद्वान् साधक की दृष्टि से यह सम्पादित प्रेस-कापी पवित्र हो चुकी है तथा उनके परामर्श से गुणान्वित भी। कभी-कभी दुर्लभ संयोग भी देवी की महिमा से सुलभ हो जाता है। अतएव स्वामी मूर्खारण्य जी महाराज जैसे सच्चे उपासक और पण्डित के परामर्श एवं साधना-लब्ध फल का उपयोग सम्पादक को सुलभ हो सका। स्वामी मूर्खारण्य जी के सम्पर्क में आए बिना चतुर्थ पटल के छह शाम्भव मन्त्रों का तथा विष्णूपास्य अयुताक्षर मन्त्र के स्वरूप का परिचय कभी भी सम्भव नहीं था।

इस संहिता के एक-आध पटल का विवरण इतस्ततः उपलब्ध होता है। जैसे राज-कीय अभिलेखागार, इलाहाबाद में इस संहिता के दो अंशों की मातृका मिलती है। इनमें एक इस संहिता का दो सौ इक्कीसवां पटल है जो १७९८ वि० सं० में देवनागर अक्षर में लिखा गया है। सम्पूर्ण पन्द्रह पत्रों में उपलब्ध है। इसका एक्सेसन नं० ७२२२ है। इसमें अक्षराशुद्धि बहुत है। इसका दूसरा अंश सुन्दरीशक्तिदानाख्य कालीसहस्रनाम स्तोत्र है। यह ३७ पत्रों में उपलब्ध है तथा देवनागर अक्षर में लिखा गया है। इसका एक्सेसन नं० ६६३६ है। इस सहस्रनाम स्तोत्र की एक मातृका इस विद्यापीठ में भी उपलब्ध है। इस विद्यापीठ की मातृका सूची खण्ड १ में स्तोत्र प्रकरण में विभाग विशेष सं० ६३८।६६८३ हैं। यह मैथिलाक्षर में लिखी गई है। इसकी आकृति ३३.५ × १३ से० मी० है, पृष्ठ १ से १८ है, पंक्ति ८ और अक्षर प्रति पंक्ति ५२ हैं।

गुह्यकाली खण्ड के चौदहवें पटल की मातृका एशियाटिक सोसाइटी बंगाल में तथा कुछ अंश, एकाध पटल भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना में भी उपलब्ध है। महामहोपाध्याय डा० कविराज जी की तान्त्रिक साहित्य नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि इस संहिता का बीजोद्धाराख्य तृतीय पटल इण्डिया ओफिस लाइब्रेरी, लन्दन में भी है।

डा० भगवती प्रसाद सिंह रीडर हिन्दी विभाग, गोरखपुर-विश्वविद्यालय के सौजन्य एवं औदार्य से इस संहिता की एक दुर्लभ मातृका मिली, जिस के आधार पर यहाँ मन्त्रोद्धार सम्भव हो सका है। इस मातृका के लिए सम्पादक व्यक्तिगत रूप से डा० सिंह का ऋणी है। इस मातृका में महाकाल-संहिता के बीजोद्धाराख्य तृतीय एवं चतुर्थ पटल संकलित हैं। यद्यपि दरभंगा संस्कृत-विश्वविद्यालय की ख मातृका में भी तृतीय पटल उपलब्ध है। इससे प्रकाशित कामकला-खण्ड के परिशिष्टों में बीज आदि का निर्देश भी हुआ है। तथापि इसका चतुर्थ पटल सम्पूर्णतः यहीं उपलब्ध हुआ जिसके आधार पर शिवोपास्य अयुताक्षर मन्त्र एवं अनेक न्यासों के मन्त्रों का उद्धार सम्भव हो सका। ख मातृका में जो बीजोद्धाराख्य चतुर्थ उपलब्ध है। उसमें मन्त्रों के स्वरूप उल्लिखित नहीं हैं। केवल मन्त्रविधायक श्लोक संकलित है। और यहाँ उन मन्त्रों का स्वरूप भी शीर्ष स्थान में— जहाँ श्लोक में मन्त्रों का अभिधान है—उद्घाटित हैं। इस पटल के आरम्भ में कहा गया है कि इसके परिचय के बिना शिवोपास्य अयुताक्षर मन्त्र का उद्धार सम्भव नहीं है।

'तदज्ञानात् मदाराध्यायुताणीं ज्ञायते न हि'। तथा इसकी सम्पुष्टि उक्त अयुताक्षर मन्त्र के अवतरण की उक्ति से हुई है। 'सम्यगभ्यस्ततार्तीयतुर्याध्यायेन शक्यते'। तृतीय एवं चतुर्थ पटल के उचित अभ्यास से ही इसका उद्धार सम्भव है। पश्चात् इस चतुर्थ पटल का कुछ आरम्भिक अंश पण्डितराज की मातृका में भी मिला।

मूल मातृका निर्णय

उपलब्ध मातृकाओं को देखने से ज्ञात होता है कि इन मातृकाओं का मूल एक ही मातृका रही होगी। अष्टम पटल में समय-न्यास के मन्त्रोद्धार के अवसर में श्लोक संख्या १७२ के बाद एक पंक्ति है—"एतदग्रिमपत्रस्य तृतीयपंक्तौ त्रुटितं कार्यावसरे विचार्यम्, एतस्याग्रे होत्रमाध्वर्यवमित्यादि"। यह पंक्ति उपलब्ध सभी मातृकाओं में देखी जाती है। इसे प्रमाण मान कर उपर्युक्त बात की पुष्टि की जा सकती है। दूसरा प्रमाण इस प्रसंग में यह है कि किसी मातृका में यदि एकाध चरण खण्डित है तो इसकी पूर्ति किसी अन्य मातृका में भी नहीं होती है। वह अंश... इस प्रकार प्रत्येक मातृका में त्रुटित ही है। तीसरी बात यह है कि षोढ़ान्यास का अवतरण मात्र देकर अधिक मातृकाओं में नवम पटल की समाप्ति हुई है। केवल क तथा ङ मातृकाओं में षोढ़ा न्यास सप्रसंग उपलब्ध है। किन्तु इन दोनों मातृकाओं में भी महाषोढ़ान्यास के प्रकरण में, तीर्थशिवलिङ्गन्यास के मन्त्रोद्धार के समय, इक्यावन पीठों की चर्चा करते हुए ३५ पीठों के नाम गिनाने के बाद ४३ वें पीठ का नाम संख्यापूर्वक निर्दिष्ट हुआ है। बीच का एक या दो श्लोक जिसमें ३६ से ४२ अर्थात् ६ पीठों का विवरण होता, समान रूप से अनुपलब्ध है। उपलब्ध पाठभेद भी बहुत तारतम्य के लिए अवसर नहीं देता है। कुछ पंक्तियों का किसी मातृका में अधिक होना या कम होना प्रतिलिपिकार के अवधान एवं अनवधान का द्योतक हो सकता है। किन्तु मूल प्रति के पार्थक्य का साधक नहीं माना जा सकता है। अतएव पाठभेद-संकलन के समय तात्त्विक अन्तर किसी मातृका में उपलब्ध नहीं हो सका, साथ ही तृतीय पटल के बाद प्रायः बहुत कम ही पाठभेद प्राप्त हो सके हैं। केवल ख मातृका में तृतीय पटल का मौलिक अन्तर मातृका-परिचय के समय कहा जा चुका है। नवम पटल, ख ग और घ मातृकाओं में पारस्परिक साम्य रहते हुए भी असमय में अकारण खण्डित होकर प्रस्तुत हुआ है। इनके लेखक प्रमाद वश इस पटल के अन्तिम अंश की प्रतिलिपि नहीं कर पाये हों। किन्तु क और ङ मातृकाओं का लेखक सावधान होकर उसका संग्रह कर सका है।

इस खण्ड के प्रथम पटल में, अथर्वगुह्योपनिषत् प्रकरण में अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास से प्रकाशित 'अनपब्लिश्ड उपनिषद्' के शाक्त उपनिषद् भाग से भी पाठभेद का संग्रह हुआ है तथा विविध वैदिक उपनिषदों से इसकी तुलना भी टिप्पणी में दिखायी गयी है।

पाठालोचन

इसके सम्पादन के समय यथासम्भव शुद्ध एवं प्रसङ्ग-सङ्गत पाठ मूल में प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है। (१) प्रतिलिपिकार के प्रमाद वश हुई अक्षराशुद्धि को स्थान नहीं

दिया गया है। यथा 'चन्द्रशेखर:' के बदले यदि किसी मातृका में 'चन्द्रशेषर:' लिखा हुआ मिला तो इसका निर्देश पाद-टिप्पण में अनावश्यक मान कर नहीं किया गया है। इसी तरह 'यामल' पद के बदले 'जामल', 'चिच्छक्ति' के बदले 'विच्छक्ति' तथा 'पाश्चात्या' के बदले 'याश्चान्या' आदि का, विविध मातृकाओं में उपलब्ध होने पर भी, अक्षराशुद्धि के निर्णय हो जाने से उपेक्ष्य मानकर पाद टिप्पण में अंकन नहीं किया गया है।

(२) इसी तरह पदाशुद्धि के प्रसङ्ग में भी विचार हुआ है। जहाँ अधिक मातृकाओं में अशुद्ध पद प्रयुक्त हैं। किन्तु किसी मातृका में शुद्ध रूप में वह उपलब्ध है। वहाँ शुद्ध का सङ्कलन कर अशुद्ध का त्याग किया गया है। यथा प्रथम पटल के आरम्भ में मन्त्रोद्धार के प्रसंग में एक श्लोक है—

'आदौ वेदादिमुद्धृत्य ततः पस्य द्वितीयकम्।
एकारयुक्तं तदधो रेफं बिन्दुं च योजयेत्'॥

यहाँ अधिकांश मातृकाओं में 'पस्य' के स्थान पर 'पश्य' पाठ मिलता है। प्रस्तुत प्रसंग में पश्य पद प्रामादिक है। क्योंकि 'पस्य' पद से लेखक का अभिप्राय 'पवर्ग का' है, देखने का नहीं। क्योंकि तभी 'द्वितीयकम्' पद सार्थक होता है। अर्थात् पवर्ग का दूसरा अक्षर 'फ' के लिए ग्रन्थकार ने 'पस्य द्वितीयकम्' कहा है। दूसरे किसी को देखने के लिए, ऐसा 'पश्य द्वितीयकम्' से उसका अभिप्रेत नहीं है। और तब तृतीय एवं चतुर्थ चरण भी सङ्गत होते हैं। अर्थात् उस फ को एकार से जोड़कर नीचे रेफ एवं ऊपर बिन्दु लगाकर मन्त्र का रूप 'फ्रें' बन जाता है। प्रतीत होता है कि प्रतिलिपिकार बहुत जागरूक नहीं था। अतएव उसे 'पस्य' पद का स्वारस्य समझ में नहीं आया। और उसने संस्कृत के शुद्ध एवं अनुरूप पद 'पश्य' उसके बदले में रख दिया, जो आलोचना करने पर प्रामादिक प्रमाणित हुआ। इस तरह के शुद्धाभास का अर्थात आपाततः शुद्ध रूप में प्रतीत होने पर भी वस्तुतः अशुद्ध पद का पाद-टिप्पण में समावेश अनावश्यक समझकर नहीं किया गया है। इसी कोटि में आते हैं 'वारी' के बदले में उपलब्ध 'नारी' पद, 'अंस' के बदले 'अंश' पद आदि। मन्त्रोद्धार के समय क्रम देखकर ग्रन्थकार का स्वारस्य ज्ञात होता है। 'वारी' संकेत मे 'ग्लब्लीं' विवक्षित है जो मन्त्र में व्यवहृत क्रम के अनुरूप है। इसके स्थान में यदि नारी पद दिया जाए, तो इसमें 'स्त्रीं' मन्त्र का ग्रहण होगा, जो क्रम की अनुरूपता का साधक नहीं हो सकेगा। सम्भव है प्रतिलिपिकार 'वारी' संकेत से अपरिचित रहा हो अतएव इसे प्रामादिक मानकर 'नारी' पद इसके स्थान पर लिख दिया हो, जो स्वयं साक्षात् प्रमाद का उदाहरण आलोचना द्वारा सिद्ध हो गया। मन्त्रोद्धार के समय सर्वत्र एकरूपता एवं क्रमानुरूपता चल रही है तो इसके अनुकूल बीज वाचक संकेत को लेने में औचित्य की रक्षा होगी। विरूप संकेत को प्रश्रय देना ग्रन्थकार के अभिप्राय का सर्वथा प्रतिकूल ही होगा। इसी तरह 'अंस' तथा 'अंश' शब्द पर विचार करने से स्वतः स्पष्ट हो जाएगा कि तालव्य श वाला पद यहाँ शुद्धाभास है। क्योंकि ग्रन्थकार का प्रतिपाद्य प्रसङ्गतः यह है कि अमुक मन्त्र को पढ़ कर पूजक या साधक अपनी कन्धा का स्पर्श करे। स्कन्ध-वाचक संस्कृत पद

'अंस' है जो ग्रन्थकार का स्पष्ट अभिप्रेत, किसी को भी पूर्वापर सन्दर्भ से विदित हो सकता है। किन्तु इस दन्त्य स वाले 'अंस' पद से अपरिचित प्रतिलिपिकार ने, उसे 'अंश' हिस्सा के वाचक का विकृत रूप समझ कर अपनी प्रति में सुधार कर 'अंश' लिख लिया, जो वस्तुतः अशुद्ध है। इस तरह की अशुद्धियाँ यदि सम्पादन के क्रम में निर्णीत हो गयी हैं, तो पाठभेद में इस तरह के पदों को स्थान नहीं दिया है।

(३) तीसरी स्थिति यह है कि आलोचना से सङ्गत पाठ का तो निर्णय हो गया है, किन्तु सभी मातृकाओं में असङ्गत पाठ उपलब्ध है। वहाँ [ ] इस तरह के कोष्ठक में प्रश्न-चिन्ह के साथ अपने अभिमत पाठ या अक्षर का समावेश कर मूल को यथावत् रखा गया है। जैसा कि मूल पाठ उपलब्ध है—

............ततो नारायणादि च।
ततः पाशुपतान्ताच्च त्रयस्त्रिंशत् समुद्धरेत् ॥ ३।१५८॥

किन्तु उपकूटोद्धार प्रकरण में नारायण नामक उपकूट के बाद तैंतीसवाँ उपकूट प्रस्वापन नामक उपलब्ध है। पाशुपत उपकूट उक्त प्रकरण में द्वितीय उपकूट है। अर्थात् नारायण उपकूट के बाद इसी का उल्लेख हुआ है। अतएव यहाँ 'पाशुपतान्ताच्च' के स्थान पर 'प्रस्वापनान्ताच्च' पाठ उचित प्रतीत होता है। सभी मातृकाओं में 'पाशुपतान्ताच्च' ही उपलब्ध है। इस स्थिति में आलोचना के आधार पर अभिमत पाठ को उक्त कोष्ठक में प्रश्न चिन्ह के साथ रखने की चेष्टा की गयी है। इसी तरह एक पद्य है—

'गुटिका प्रोच्य यक्षिण्याद्यष्ट इत्यपि कीर्तयेत्।
महासिद्धि इति प्रोच्य रचयद्वितयं ततः' ॥

यहाँ ग्रन्थकार का अभिमत है—गुटिका तथा यक्षिणी आदि अष्ट महासिद्धि शब्द का द्वितीया बहुवचनान्त रूप जो 'रचय' पद के साथ अन्वित होकर मन्त्र का स्वरूप धारण करता है। अर्थात् 'गुटिकायक्षिण्याद्यष्टमहासिद्धीं रचय रचय', ग्रन्थकार का अभिमत है। किन्तु सभी मातृकाओं में 'महासिद्धि इति प्रोच्य' यही पाठ उपलब्ध होता है। अतएव कोष्ठक में 'महासिद्धि के बाद 'महासिद्धीरिति' पद का रखना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसी तरह 'अपि श्वासस्वधाकारी वषट्कारमनन्तरम्' ३।६८०। में स्वधा एवं वषट् के साथ श्वास अप्रासङ्गिक लगता है। इसके स्थान पर स्वाहा पद अभिमत एवं स्वारस्यपूर्ण प्रतीत होता है, जैसा कि सन्दर्भ से भी पुष्ट है। अतएव यहाँ श्वास के बाद कोष्ठक में स्वाहा पद रखा गया है। कहीं-कहीं केवल अक्षर कोष्ठक में रखने से इष्टसिद्धि हो जाती है। जैसे—'त्रिषष्टिशतिका पूर्णा कामार्णे द्वादशाक्षरः' (रे ?) ३।४२०। यहाँ स्पष्ट है कि प्रथमान्त द्वादशाक्षर पद से अर्थ का परिष्कार नहीं हो पाता है। उसी को सप्तम्यन्त कर देने से किसी तरह के सन्देह की छाया भी नहीं रहती है। अतएव सप्तम्यन्त पाठ उचित एवं युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है।

शिवोपास्य अयुताक्षर मन्त्र में एक पद है 'अनघो' जो 'अलघो' का विकृत रूप है। क्योंकि इसके पहले देवी के सम्बोधन रूप में 'अपुण्यपापे, अमृत्यो, अनणो' आदि का प्रयोग हुआ है। और इसके बाद भी 'अमहीयसि' आदि सम्बोधन पद प्रयुक्त हैं। अतएव मध्य पतित 'अनघो' पद कुछ अर्थ नहीं रखता है। उसी पद में केवल मध्य अक्षर न के स्थान पर यदि ल बना दिया जाए तो कुछ समस्या ही नहीं रहती है। अतएव यहाँ 'अन [ल] घो' का समावेश मूल में हुआ है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि मिथिलाक्षर में न एवं ल में बहुत साधारण अन्तर है। इसका निर्णय बहुधा प्रसङ्ग एवं अर्थ को ध्यान में रखने पर ही हो पाता है। प्रतिलिपिकार उतना सुबुद्ध नहीं रहा होगा। अतएव इस तरह का प्रमाद होना स्वाभाविक है।

(४) मूल में जिस पद का अर्थ सम्पादन के क्रम में समझ में नहीं आया उस पद के आगे प्रश्न-चिन्ह मात्र रख दिया गया है। विशेषज्ञ उक्त स्थल को विचार पूर्वक देखकर कदाचित् उसका समाधान कर सकें तथा हमलोगों को भी उनके समाधान का लाभ हो सके। यथा तृतीय पटल के श्लोक संख्या ४०५ के अन्तिम चरण में पद है—'चतुर्थे सथि (?) सुन्दरि'। यहाँ 'सथि' पद से ग्रन्थकार का अभिमत समझ में नहीं आता है। इसके अतिरिक्त वहाँ भी प्रश्न-चिह्न अन्त में लगे हैं जहाँ छन्द की विसङ्गति है। श्लोक छन्द के चरण प्रायः आठ आठ अक्षर के होते हैं, किन्तु यहाँ कहीं-कहीं नौ अक्षरों के चरण पाये गये हैं। अतएव इस विसङ्गति के लिए चरण के अन्त में प्रश्न-चिन्ह का प्रयोग हुआ है। इसके उदाहरण रूप में तृतीय पटल के श्लोक संख्या २५८ को देखा जा सकता है। इसके तृतीय चरण में आठ के स्थान पर नौ अक्षर हैं। यद्यपि प्रस्तार विस्तार के क्रम में वह शुद्ध भी हो सकता है।

(५) इन सभी प्रकारों से भिन्न एक रोचक परिस्थिति का परिचय इस संहिता के सम्पादन के समय होता है, जो प्रायः अन्यत्र दुर्लभ है। वह यह कि यहाँ पदांश को तोड़ कर उद्धृत किया गया है। यहाँ मन्त्रोद्धार के समय इस तरह का रोचक प्रसंग बहुधा आया है। जैसे शिवोपास्य अयुताक्षर मन्त्रोद्धार के समय तृतीय पटल के ६१६ श्लोक का चतुर्थ चरण है—'दंष्ट्रिविद्यूद्धरेत् प्रिये' जो ६१७ श्लोक के प्रथम चरण 'दुल्कारण्यदवप्रान्तरादिनाना-विधेत्यपि' से सम्बद्ध है। यहाँ 'विद्युत्' पद के 'विद्यु' इस अंश को एक चरण में आनुपूर्वी रूप में लेकर ऊपर श्लोक में 'दुल्कारण्य' आदि से जोड़ा गया है। इस में उक्त पद के अन्तिम अंश हलन्त 'द्' को उससे अलग कर ऊपर पद उल्का के साथ जोड़ा गया है। इस तरह उक्त स्थल में 'दंष्ट्रिविद्युदुल्कारण्यदवप्रान्तरादि' रूप मन्त्रांश निर्मित होता है। इसी तरह विष्णूपास्य अयुताक्षर मन्त्र के प्रसंग में तृतीय पटल के १५१ श्लोक का उत्तरार्द्ध इस प्रकार है—

'वह्निस्फुलिङ्गपिङ्गाच्च वदेल्लितजटापदम्। ३।१५१
भारशब्दाद् भासुरे च ……………….॥

'वह्निस्फुलिङ्गपिङ्गलितजटाभारभासुरे', यह मन्त्रांश उक्त श्लोक से संहिताकार का विवक्षित है। किन्तु इसी को पद्य में कहने के लिए 'पिङ्गलित' पद को दो पृथक् अंशों में बाँट कर रखना पड़ा है। 'पिङ्ग' एवं 'लित' दोनों मिल कर 'पिङ्गलित' बने हैं। इस तरह पदांश का विभाजन इस संहिता में प्रचुरतया किया गया है। किन्तु इस तरह की परिस्थिति या संहिताकार की शैली से अनभिज्ञ प्रतिलिपिकार ने उक्त 'लित' को प्रामादिक मानकर उसके बदले 'नित' कर दिया, जो आलोचना से प्रामादिक सिद्ध होता है। इस तरह का प्रमाद ग्रन्थ लेखक के लेखन-स्वारस्य से अपरिचय के कारण प्रमाद से बचने के लिए तत्पर व्यक्ति द्वारा भी हो गया है।

(६) कहीं-कहीं सन्धि की उपेक्षा भी छन्द की रक्षा के लिए संहिताकार द्वारा की गयी है। जैसे—

> 'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
> एते पञ्च महाप्रेताः स्थिताः सिंहासनादधः' ॥१।४५॥

यहाँ 'रुद्रश्चेश्वरश्च' पाठ प्राप्त था, किन्तु छन्द की रक्षा को दृष्टि में रख कर प्रतीत होता है कि संहिताकार ने यहाँ पाणिनि सम्मत संहिता की अविवक्षा कर सन्धि की उपेक्षा की है। अन्यथा सन्धि हो जाने पर श्लोक के प्रत्येक चरण में आठ-आठ अक्षरों की सत्ता सिद्ध नहीं हो पाती, एक अक्षर की कमी रह जाती।

यहां पादटिप्पण में उपलब्ध उपनिषद् वाक्यों का यथा सम्भव मूल निर्देश एवं संगत पाठभेदों का संकलन किया गया है। तथा विविध परिशिष्टों में मूलमन्त्र, उपमन्त्र, सन्ध्याकृत्य, तान्त्रिकगायत्री, षडङ्गन्यास, अन्य विविध न्यास, लघु तथा महा षोढान्यास, अर्थ निर्देश पूर्वक पारिभाषिक शब्दावली, मन्त्रकोष और उद्धृत ग्रन्थसूची तथा निर्दिष्ट चौबिस यन्त्रों का संकलन प्रस्तुत है। यद्यपि परिशिष्टों को सम्पूर्ण मूल के प्रकाशन के पश्चात् देना उचित था। तथापि पाठकों एवं साधकों की सुविधा के लिए इसी भाग में उनका समावेश किया गया है। पारिभाषिक शब्दावली एवं मन्त्रकोष आदि से परिचित होने पर ही मूल ग्रन्थ में समुचित प्रवेश तथा विषय ज्ञान के लिये ऊहापोह सुकर हो सकेगा।

यहाँ मन्त्र के प्रसंग में एक बात ध्यान रखने योग्य है कि एक स्वर में अनेक व्यञ्जनों को रख कर ऊपर से नीचे के क्रम में स्वर के मध्य भाग में ही अपेक्षित व्यञ्जन वर्णों को समाविष्ट कर मन्त्र लिखने की पुरानी प्रक्रिया रही है। जैसा कि हमें मातृकाओं [MSS] में वह उपलब्ध हुई। किन्तु उस क्रम में लिखना आजकल अव्यवहारिक एवं मुद्रण असम्भव ही प्रतीत हुआ। अतएव प्रचलित क्रम में वह लिखा गया है। एक बीज या एक कूट में अनेक व्यञ्जनों कदाचित् अनेक स्वरों के रहने पर भी बीज या कूट एक ही माना जाता है।

खेद की बात है कि सावधानी रखने पर भी प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ रह गयीं हैं। अतएव छोटा सा शुद्धिपत्र देना पड़ा। इसके लिए गुणग्राही पाठक के समक्ष क्षमा-याचना ही शरण है। इन पंक्तियों का लेखक वस्तुतः कृतज्ञ एवं उपकृत होगा यदि विद्वान् साधक इसे पढ़कर उचित परामर्श देने की तथा त्रुटिबोध कराने की कृपा करेंगे। इससे अग्रिम संस्करण में उसका सुधार हो सकेगा।

कृतज्ञता

अन्त में उन संस्थाओं एवं व्यक्तियों के प्रति अपना हार्दिक आभार तथा कृतज्ञता व्यक्त करना नहीं भूल सकते, जिनकी साक्षात् या परम्परया सहायता इस ग्रन्थ के सम्पादन के समय इन पंक्तियों के लेखक को मिली है। इस प्रसंग में सम्पादन सम्बन्धी महत्वपूर्ण सुझाव के लिए स्वनामधन्य (दिवंगत) म० म० गोपीनाथ कविराज (वाराणसी) इस विद्यापीठ के भूतपूर्व प्राचार्य डा० आर्येन्द्र शर्मा (हैदराबाद) गुरुवर प्रो० श्री अनन्तलाल ठाकुर (पटना) पण्डित श्री गोविन्द झा (पटना) पूज्यचरण पण्डित सीतानाथ झा तथा अपने विद्यापीठ से सम्बद्ध सभी सहयोगी कल्याणमित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यन्त्र तथा आवरण शिल्पी भवानी दादा सहयोग के लिए धन्यवाद के योग्य हैं। आदरणीय डा० हरिहर झा, कार्यकारी प्राचार्य का यह कार्य कौशल वस्तुतः श्लाघनीय है, जिन्होंने वर्षों से मन्दगति से चलते हुए इस कार्य को तत्परता से शीघ्र सम्पन्न कराने की व्यवस्था की है। श्री विष्णु आर्ट प्रेस के व्यवस्थापक श्री गया प्रसाद अग्रवाल जी धैर्य पूर्वक सहयोग करते हुए सुचारु रूप से मुद्रण के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। अन्त में—

गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति॥

प्रयाग
गुरु पूर्णिमा २०३३ वि० सं०

विनयावनत
किशोरनाथ झा
अनुसन्धान अधिकारी

———

प्रस्तावना

महाकाल-संहिता तन्त्र का संग्रह ग्रन्थ होकर भी इतना परिपूर्ण है कि इसे आकर कहा जाता है। अनेक दृष्टियों से शाक्त आगमों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपनी संहिता के विषय में यद्यपि आदिनाथ ने 'सर्वेभ्यो मन्त्रकल्पेभ्यो मदुक्ता संहिता वरा' (८।८५६) कहा है, तथापि स्पष्टतः स्वीकार किया है कि भीमातन्त्र, कपाल डामर तन्त्र, वज्रडामर तन्त्र तथा वामकेश्वर तन्त्र आदि ग्रन्थों से विषयों का आदान कर यहाँ उन्हें सन्निविष्ट किया गया है। यथा—'कपालडामरादेनमुद्धृत्यात्र न्यवेशयम्' (७।४२८) इस तरह की अनेक पक्तियाँ यहाँ उद्धृत हुई हैं। संहिता नाम की सार्थकता भी इसके संग्रह ग्रन्थ होने में ही प्रतीत होती है। किन्तु तान्त्रिक साधना के स्वतन्त्र संप्रदाय— स्मार्त परम्परा— का यह प्रवर्तक भी है। इसकी पुष्पिका (द्र०कामकलाखण्ड पृ० ६) में 'पञ्चशत-साहस्री पद के प्रयोग से ज्ञात होता हैं कि यह संहिता पाँच लाख श्लोकों में निवद्ध है। इससे इसके आयतन की विशालता सहज ही जानी जा सकती है। इसका विभाजन पटलों में हुआ है। देवी तथा महाकाल के मध्य संवाद रूप में सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया है। इसी से इसका नाम 'महाकाल संहिता' पड़ा। पौराणिक शैली में यहाँ विषयों का पद्यबद्ध प्रतिपादन किया गया है। वेद तथा पुराणों का अनुमत आगमिक उपासना मार्ग यहाँ प्रदर्शित हुआ है। इन्होंने अन्य तान्त्रिक सम्प्रदायों से अपना पार्थक्य दिखाते हुए स्वयं कहा है—'श्रुति-स्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च।

उभय कुर्वते देवि मदुदीरितवेदिनः॥ १०॥

अपनी उपासना-पद्धति की उत्कृष्टता के प्रसंग में इनका कहना है कि जैसे हंस दुग्ध एवं जल के मिश्रण से दुग्ध का ग्रहण कर जल का त्याग करता है। उसी तरह आगम तथा निगम से शुभ का आदान एवं अशुभ का त्याग कर इस उपासना-पद्धति की रचना हुई है। अतएव वेद में प्रतिपादित नरास्थि के संस्पर्श का निषेध यहाँ मान्य नहीं है। क्योंकि आगमों में इसकी माला जप के लिए प्रशस्त मानी गयी है। तथा आगम- प्रतिपादित नर-कपाल में पान एवं भोजन वेद विरुद्ध होने से यहाँ विहित भी नहीं है। इसी क्रम में तत्काल प्रचलित तान्त्रिक सम्प्रदाय, तान्त्रिक सिद्धान्त, तान्त्रिक आचार एवं तान्त्रिक उपासना आदि अनेक विषयों का परिचय यहाँ मिलता है। यह संहिता साधकों का साधना पथ ही नहीं आलोकित करती है अपि तु गम्भीर चिन्तन की प्रचुर सामग्री भी प्रदान करती है। देवी के निराकार से साकार स्वरूप का परिचय शाक्त दर्शन के रहस्यमय तत्त्व का परिचायक है। किन्तु खेद का विषय है कि इस विशाल संहिता के कुछ अंश मात्र लगभग बीस हजार श्लोक उपलब्ध हो सके हैं। गुह्यकाली तथा कामकला ये दो खण्ड क्रमशः चौदह तथा पन्द्रह पटलों में उपलब्ध हैं। पुष्पिका से ज्ञात होता है कि उपलब्ध दोनों खण्डों के बीच पैंतालीस पटलों का व्यवधान है। गुह्यकाली-खण्ड पटल-संख्या एक सौ इक्यासी से आरम्भ होता है। और कामकला-खण्ड का आरम्भ पटलसंख्या दो सौ एकतालीस में हुआ है। बीच के अंश अनुपलब्ध हैं।

इन दोनों में, विषय का प्रतिपादन जितना क्रमबद्ध एवं विशद गुह्यकाली-खण्ड में हुआ है उतना कामकला-खण्ड में नहीं। यह स्वाभाविक भी है। पूर्वांश में ही बात कह देने पर उत्तरांश में उनके संकेतमात्र से काम चल जाता है। जैसा कि कामकला-खण्ड में देखा भी जाता है। पीठन्यास प्रकरण में कहा गया है कि यहाँ जो नहीं बताया जा रहा है उस प्रसङ्ग में दक्षिणकाली की पूजा की तरह तथा कहीं-कहीं गुह्यकाली की उपासना की तरह कार्य-सम्पादनार्थ ऊह करना चाहिए। आभ्यन्तर साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि इस संहिता के अन्य खण्ड भी रहे होंगे जो आज अनुपलब्ध है। जैसे दक्षिणकाली-खण्ड, भद्रकाली-खण्ड, त्रिपुरा-खण्ड तथा तारा-खण्ड तो अवश्य रहे होंगे। गुह्यकाली-खण्ड के दशवें पटल में पीठमूल-प्रतिष्ठा प्रकरण में प्रसङ्ग वश कहा गया गया है कि त्रिपुरा के प्रसङ्ग में उक्त विधान से ही थोड़ा ऊह करके यहाँ कार्य का सम्पादन करना चाहिए—

पीठमूलप्रतिष्ठा तु पुरा ते प्रतिपादिता।
त्रिपुरायाः प्रसङ्गेन तत्रोहः स्वल्प इष्यते ॥ १०।१९१ ॥

यदि त्रिपुरा-खण्ड इस संहिताकार ने नहीं लिखा होता तो उस खण्ड का इस तरह उल्लेख करना संगत न होता। इसी तरह गुह्यकाली-खण्ड के द्वादश पटल में भी श्लोक संख्या ६१२ में 'त्रिपुरायाः प्रकरणे' कहा गया है। दक्षिणकाली खण्ड का उल्लेख कामकला खण्ड में अनेकशः हुआ है—'तत्राद्या दक्षिणा काली पुरैव कथिता त्वयि।' (का० ख० पृ० ५,) यहाँ प्रकरणतः मया अध्याहृत होकर कथिता के कर्ता रूप में अन्वित होता है। वहीं पीठन्यास विधान के अवसर में कहा गया है—क्वचिच्च गुह्यकालीवत् क्वचिद् दक्षिण कालिवत्।

भद्रकाली-खण्ड का उल्लेख भी कामकला-खण्ड के आरम्भ में हुआ है—

'भद्रकाली च कथिता समन्त्रध्यानपूजना।' यहाँ भी 'कथिता' के कर्ता रूप में मया का ही प्रकरणतः अध्याहार होगा।

तारा सहस्र नाम स्तोत्र की अनेक मातृकाओं के अन्त में 'इति महाकाल-संहितायाम्' की उपलब्धि एवं कामकला-खण्ड के आरम्भ में ही 'तारा' आदि अट्ठाइस देवियों के समन्त्र विवरण महाकाल द्वारा प्रस्तुत होने का उल्लेख—

तारा च छिन्नमस्ता च तथा त्रिपुरसुन्दरी।
\+ \+ \+ \+
एताश्चान्याश्च वै देव्यः समन्त्राः कथितास्त्वया ॥

इस संहिता के तारा खण्ड की सत्ता सिद्ध करता है। उक्त श्लोक में 'त्वया' से महाकाल अभिप्रेत है। क्योंकि देवी एवं महाकाल के संवाद क्रम में देवी द्वारा उक्त पद्य कहा गया है।

प्रचलित 'काली कर्पूर स्तोत्र' महाकाल-संहिता के अंश रूप में परिगृहीत है। किन्तु उपलब्ध इन दोनों खण्डों में उक्त स्तोत्र नहीं मिलता है। सम्भव है इसी संहिता के दक्षिण-काली खण्ड में वह स्तोत्र मूलतः रहा हो। इस तरह संभव है कि दश महा विद्याओं की स्मार्त उपासना पद्धति महाकाल-संहिता में पूर्णतः विवृत हुई हो, जिसके दो खण्ड मात्र हम लोगों

को उपलब्ध हैं। साथ ही यहाँ यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि बीज कोषात्मक चतुर्थ पटल की प्रारम्भिक पंक्तियाँ प्रमाणित करती हैं कि इस संहिता के दो ही खण्ड वस्तुतः विद्यमान हैं। इन्हीं दोनों खण्डों के उपयोगी मन्त्रों के अवबोध के लिए इस बीजकोष की आवश्यकता बतायी गयी है। विद्वानों के समक्ष विचारार्थ वे पंक्तियाँ यहाँ उल्लिखित हैं—

"अथाकलय कल्याणि बीजान्यन्यानि कानिचित्।
यान्युज्जहार भगवान् भीमातन्त्रेश्वरेश्वरः ॥ १ ॥
तदज्ञानान् मदाराध्याऽयुतार्णा ज्ञायते नहि।
वैशेषिकप्रयोगाश्च वासन्तीशारदीयकाः ॥ २ ॥
ज्ञातुं न शक्या देवेशि विविधाः कामगुह्ययोः।

यदि कामकला तथा गुह्यकाली से भिन्न इस संहिता का और खण्ड होता तो कामगुह्य शब्द से द्विवचन विभक्ति नहीं होती। आदि या प्रभृति पद, कुछ इसके साथ यहाँ अवश्य होता। ऐसा तर्क युक्तियुक्त प्रतीत होता है। साथ ही उक्त दो खण्डों की मातृका की उपलब्धि भी इस तर्क का उपोद्बलक ही है। ताराभक्ति-सुधार्णव एवं पुरश्चर्यार्णव में प्रचुर रूप में उद्धृत श्लोक इन्हीं दोनों खण्डों के उपलब्ध होते हैं। किसी अन्य खण्ड का, या इन दोनों खण्डों में अनुपलब्ध एक भी श्लोक उन दोनों ग्रन्थों में उद्धृत नहीं है। अतएव कल्पना की जा सकती है कि उस समय में भी इस संहिता के दो ही खण्ड उपलब्ध थे। अन्यथा इस संहिता के अन्य खण्डों के श्लोक भी उन साधकों द्वारा अवश्य उद्धृत होता।

ग्रन्थकार : आदिनाथ।

इस संहिता के रचयिता आदिनाथ हैं। जैसा कि पुष्पिका से ज्ञात होता है—'इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां-महाकाल संहितायाम्' (द्र० कामकला-खण्ड पृ० ६)। यह आदिनाथ अपना परिचय त्रिपुरघ्न शिव के शिष्यरूप में देते हुए अपने को शिव का ही अंश मानते हैं तथा कभी-कभी अपने को शिव भी कहते हैं। शिवोपास्य अयुताक्षर-मन्त्र की फलश्रुति में इन्होंने स्वयं कहा है कि 'इसी मन्त्र के प्रभाव से मैं महाकाल' बन पाया हूँ। पटल सख्या १२ के ५६३ श्लोक में नन्दी, भृंगी महाकाल और प्रमथ को शिव का गण कहा गया है। जिस तरह छह आम्नायों का आविर्भाव कालाग्नि, तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव तथा ईशान शिव के मुख से होने के कारण ईश्वरीय कहा जाता है। इसी तरह महाकाल शिव के मुख से निःसृत होने से इस संहिता का उद्भव भी ईश्वरीय सिद्ध होता है।

वस्तुतः इस आदिनाथ का परिचय अन्वेषण-सापेक्ष है। सिद्ध मत के प्रवर्तक नाथ-सम्प्रदाय के आदि आचार्य के रूप में जिस आदिनाथ की चर्चा आयी है, उनसे इस संहिता का रचयिता भिन्न है या नहीं—इसका निर्णय कठिन प्रतीत होता है। युक्तियाँ दोनों ही पक्षों के समर्थन में उपलब्ध हैं।

(क) जैसे महाकाल-संहिता में आदिनाथ का परिचय शिव रूप में मिलता है उसी तरह सिद्धसिद्धान्तपद्धति में नाथमत के प्रवर्तक रूप में शिव का उल्लेख हुआ है, जो आदिनाथ

है। इस सम्प्रदाय में सिद्धों को शिव माना गया है। चूंकि आदिनाथ एक सिद्ध का नाम है अतएव वह भी शिव रूप में अवश्य गिना जाएगा। स्पष्ट ही कहा गया है—

'देदीप्यमानस्तत्त्वस्य कर्ता साक्षात् स्वयं शिवः।
संरक्षन्तो विश्वमेव धीराः सिद्धमताश्रयाः॥'

हठयोगप्रदीपिका की व्याख्या में ब्रह्मानन्द ने आदिनाथ को नाथसंप्रदाय के प्रवर्तक रूप में प्रतिष्ठित किया है— 'आदिनाथः सर्वेषां नाथानां प्रथमः, ततो नाथ-संप्रदायः प्रवर्तितः इति नाथसंप्रदायवादिनो वदन्ति।'

इस तरह दोनों ही स्थलों में आदिनाथ के शिवरूपत्व का अभिधान दोनों का ऐक्य संभावित करता है। इसी की पुष्टि में योगिसम्प्रदायाविष्कृति की गुरुपरम्परा को भी उठाया जा सकता है। इसके अनुसार नाथ-सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा में आदिनाथ का उल्लेख सबसे पहले हुआ है। इनके दो प्रधान शिष्यों में मत्स्येन्द्रनाथ तथा जालन्धरनाथ का नाम आया है। ज्ञानेश्वरचरित्र में भी गोरक्षनाथ तथा जालन्धर नाथ के गुरु आदिनाथ माने गये हैं। महार्णवतन्त्र में नवनाथों की चर्चा में गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ तथा मत्स्येन्द्रनाथ आदि के साथ आदिनाथ का भी नाम निर्दिष्ट हुआ है। सम्भवतः इसी आदिनाथ की प्रस्तरमूर्ति डभोई के क़िले पर नाथसिद्धों के साथ उपलब्ध है। यह स्थान गुजरात में बड़ौदा से एक मील दक्षिणपूर्व में स्थित प्राचीन दर्भावती नाम से प्रसिद्ध है। डा० उमाकान्त साह ने नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की शोधपत्रिका (सं० २०१४, अंक २-३) में प्रकाशित अपने एक निबन्ध में सिद्ध किया है कि यहाँ प्रथममूर्ति नाथ-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आदिनाथ की ही है। क्योंकि इसके बाद दूसरी मूर्ति निश्चित रूप से मत्स्येन्द्रनाथ की है। आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ की गुरु-शिष्य-परम्परा नाथ-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में प्रतिपादित है। यहाँ आदिनाथ की मूर्ति योगिराज के रूप में मिलती है, शिव या किसी देवता के रूप में नहीं। इस प्रसङ्ग से भिन्न एक आदिनाथ का संकेत शक्ति संगम-तन्त्र के ताराखण्ड में मिलता है। आदिनाथ और काली के संवादरूप में उक्त खण्ड का विषय प्रतिपादित हुआ है। इन सभी उद्धरणों के बल पर यह कहा जा सकता है कि आदिनाथ नाम से परिचित नाथ-संप्रदाय का प्रवर्तक एवं महाकाल-संहिता का लेखक एक ही व्यक्ति रहा हो।

(ख) इसके विपरीत पक्ष में भी युक्तियाँ उपलब्ध हैं। जैसे, नाथ-संप्रदाय कापालिक मत का अनुगामी है और इस संहिता में कापालिक सम्प्रदाय की कटु आलोचना हुई है। कापालिकों के बारह आचार्यों के नाम प्रसङ्गवश शाबरतन्त्र में उल्लिखित हैं, जिनमें एक आदिनाथ भी है। इस आदिनाथ को महाकाल-संहिता के रचयिता से भिन्न ही होना चाहिए। क्योंकि शाबरतन्त्र के प्रचार के बहुत बाद में ही महाकाल-संहिता की रचना हुई है। शाबरतन्त्र का उल्लेख इस संहिता में अनेकशः हुआ है। अतएव शाबरतन्त्र में उल्लिखित आदिनाथ एवं कापालिक मत या अवधूत मार्ग का प्रवर्तक नाथ-संप्रदाय के आदि आचार्य के रूप में प्रसिद्ध आदिनाथ इस संहिता का लेखक नहीं हो सकता है। मत-साम्य तथा नाम-साम्य के कारण शाबरतन्त्र में चर्चित आदिनाथ के साथ नाथ-संप्रदाय के प्रवर्तक आदिनाथ के एक होने की संभावना रहने पर भी इस संहिता का प्रणेता आदिनाथ अवश्य ही उससे सर्वथा भिन्न तथा

अर्वाचीन प्रतीत होता है। इस संहिता के गुह्यकाली-खण्ड में नवमपटल में षोढान्यास के अन्तर्गत कल्प-सिद्धन्यास के मन्त्र कहे गये हैं। इसमें इसका संकेत है कि विविध कल्पों में विभिन्न सिद्धों को विविध सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। यहां सिद्धों का नाम आनन्दनाथान्त उल्लिखित है। जैसे धर्मानन्दनाथ सिद्ध एवं ज्ञानानन्दनाथ सिद्ध आदि। इसी तरह 'सिद्धौघ' एवं 'दिव्यौघ' रूप में कुछ आचार्यों का उल्लेख इस खण्ड के दसवें पटल में पूजा प्रकरण में हुआ है। इनके नाम नाथान्त हैं। जैसे पद्मनाथाचार्यपाद, शङ्खनाथाचार्य पाद तथा नित्यनाथाचार्य पाद आदि। इससे सिद्ध होता है कि सिद्धों के आविर्भाव के बहुत बाद में इस संहिता की रचना हुई है। अतएव मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु आदिनाथ इस संहिता के प्रणेता नहीं हो सकते हैं।

इस तरह दो मतों की प्रस्तुति में महाकाल-संहिता के लेखक आदिनाथ का परिचय अग्रिम अनुसन्धान की ओर उन्मुख करता है। इन पंक्तियों के लेखक की धारणा है कि यह आदिनाथ सभी आदिनाथों से भिन्न है। न यह नाथ-सम्प्रदाय का प्रवर्तक हो सकता है। न यह शाबरतन्त्र में उल्लिखित आदिनाथ ही है। और न इसकी मूर्ति ही कहीं उपलब्ध है। नाथ-संप्रदाय वेद, पुराण तथा स्मृति का तिरस्कार कर केवल आगम का अनुसरण करता हुआ अपने मतों का प्रचार करता है। यहां हठयोग एवं कापालिक के मतों को अधिक महत्व दिया गया है। यद्यपि महाकाल-संहिता में योग का महत्व अवश्य प्रतिपादित हुआ है। जैसा कि मोक्ष-प्राप्ति में सहायक होने से दर्शनान्तरों में इसकी उपयोगिता पर बल दिया गया है। तथापि यहाँ वेद, पुराण तथा स्मृति के अनुसरण के साथ आगम-सम्मत पथ से उपासना की ओर साधकों को अग्रसर होने का उपदेश सर्वथा एक नवीन संप्रदाय ही स्थापित करता है। किसी प्रचलित शाक्त सम्प्रदाय का अन्धानुव्रजन नहीं करता है।

रचनाकाल

इस संहिता का रचना-काल बहुत प्राचीन नहीं माना जा सकता है। इसमें वर्णित अपने पूर्ववर्ती प्रसिद्ध चार तान्त्रिक संप्रदायों के उद्भव, विकास एवं उस पर सामाजिक कुदृष्टि का विवरण इसकी अर्वाचीनता का साधक है। उक्त चार तान्त्रिक सम्प्रदायों का आधार क्रमशः डामर तन्त्र, यामलतन्त्र, भैरवी-संहिता तथा शाबरतन्त्र हैं। शाबरतन्त्र के मन्त्रों में भारतीय भाषाओं के ठेठ शब्दों की उपलब्धि इसकी अर्वाचीनता का साधक है। चूंकि शाबरतन्त्र का उल्लेख इस संहिता में हुआ है, अतएव यह उससे भी अवश्य अर्वाचीन सिद्ध होता है। प्रायः आजकल उपलब्ध शाक्ततन्त्र यथायथ इन्हीं चार प्रमुख शाक्त-साधना-पथों के पल्लवन में सीमाबद्ध है। अतएव इनकी सामाजिक रुचि की प्रतिकूलता का अनुभव कर समाज-सम्मत आगमीय उपासना-पद्धति के प्रतिष्ठापन के लिए अर्वाचीन आगमाचार्य महाकाल-आदिनाथ ने इस संहिता की रचना की होगी। इसी तरह तान्त्रिक आचारों में भी संशोधन हुआ है। यथा पशुबलि के बदले शालिचूर्ण या दुग्धपिण्ड से देय पशु का निर्माण कर अनुकल्प रूप बलि प्रस्तुत करने का विधान एवं पशुबलि के स्थान में फल अर्पण का कथन निश्चय ही इसकी अर्वाचीनता का द्योतक है। इसी तरह मदिरार्पण एवं शक्तिपूजा के प्रसङ्ग में भी तान्त्रिकों के लिए कल्पनातीत परिवर्तन या संशोधन इसकी प्राचीनता का बाधक ही है। यथा ब्राह्मण साधक के लिए यहाँ मदिरार्पण निन्द्य

माना गया है तथा ब्राह्मण को शक्तिपूजा का अनधिकारी कहा गया है। जब कि अन्य तन्त्रों में इस तरह की तान्त्रिक रीतियों के समर्थन में युक्तियां दिखाई गयी हैं। तीसरी बात यह है कि यह संहिता अपने को आगम की अपेक्षा निगम के अधिक निकटवर्ती प्रमाणित करती है। तुरीया मन्त्र के माहात्म्य-कीर्तन के अवसर में संहिताकार ने कहा है कि इसकी महिमा जहाँ वेद स्वयं प्रतिपादित करता है वहाँ अन्य तन्त्र आदि की क्या चर्चा है—

'यत्रास्या महिमानं हि वेदः कथयति स्वयम् ।
तन्त्रादयस्तु तत्रान्ये कथयिष्यन्ति किं प्रिये' ॥ ४।१९६॥

इसी तरह देवी के स्वरूप का परिचय देते हुए अथर्वगुह्योपनिषद् के आरम्भ में कहा गया है कि वेद में अभिहित देवी का स्वरूप इस प्रकार है—

'तदेव हि श्रुतिप्रोक्तमवधारय पार्वति' ।

तथा उपसंहार में अभिहित है कि चारों वेदों से संङ्कलित कर यहाँ अथर्वगुह्यो-पनिषत् में देवी का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है—

'गुह्योपनिषदित्येषा गोप्याद् गोप्यतरा स्मृता ।
चतुर्भ्यश्चापि वेदेभ्य एकीकृत्यात्र योजना ॥'

इतना ही नहीं, इस संहिता में वेदानुमत आचार एवं विचार का प्रचुर पक्षपात देखा जाता है, जब कि अन्य तन्त्रों में वेद की अपेक्षा आगम की उत्कृष्टता सिद्ध की गयी है। कुलार्णव तन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि शाम्भवी विद्या (शाक्त तन्त्र) कुल वधू की तरह रक्षा के योग्य है और वेद, स्मृति तथा पुराण साधारण वेश्या के समान हैं—

'वेदस्मृतिपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
इयं तु शाम्भवी विद्या गोप्या कुलवधूरिव ॥ ११।८५ ॥

अथवा दोनों को समान आसन पर बैठाया गया है। इसी के प्रभाव से मनुस्मृति के व्याख्याकार कुल्लूक भट्ट ने श्रुति से निगम एवं आगम दोनों को लिया है—'श्रुतिर्द्विधा वैदिकी तान्त्रिकी च'। इससे कल्पित किया जा सकता है कि इस संहिता की रचना के समय तान्त्रिक आचार एवं विचार के प्रति समाज में अश्रद्धा, घृणा एवं वितृष्णा हो गयी थी। इस आगमिक उपासना से ऊब कर समाज वैदिक एवं पौराणिक उपासना की ओर पुनः उन्मुख हो रहा था। शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन, स्मार्त तथा सौर आदि परम्परा का पूर्ण विकास हो चुका था। अतएव इस संहिता में इन परम्पराओं का स्पष्टतः उल्लेख हुआ है। फलतः जनरुचि के अनुकूल एक स्वतन्त्र आगमीय शाक्त उपासना-पद्धति की प्रतिष्ठा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए आदिनाथ महाकाल ने इस संहिता का निर्माण किया होगा। इसमें स्वयं लेखक अपनी परम्परा के परिचय में कहते हैं कि यहाँ हंस-वृत्ति का अवलम्बन कर निगम एवं आगम से भद्र विषयों का संग्रह तथा अभद्र का परित्याग किया गया है। स्वभावतः प्रचुर प्रसिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थों का तथा विविध शास्त्र एवं सम्प्रदायों का उल्लेख यहाँ हुआ है। इससे इसकी अर्वाचीनता सिद्ध होती है। यथा यहाँ कापालिकों के विविध डामरों का—वज्र डामर, कपालडामर आदि का, दिगम्बरों की भैरवी-संहिता का, मौलेयों के यामलों का, भाण्डिकेरों के

शाबरतन्त्र का तथा कालानलतन्त्र, भीमातन्त्र, वामकेश्वर-तन्त्र आदि का यथाप्रसंग अनेकशः स्पष्ट उल्लेख हुआ है। आचार्यों में मनु एवं पतञ्जलि कण्ठतः उद्धृत हुए हैं। इन सभी आभ्यन्तर साक्ष्यों के आधार पर सम्भावित किया जा सकता है कि इस संहिता की रचना आचार्य अभिनव गुप्त के बाद खृष्टद्वादशशतक में हुई होगी। गुह्यकाली-खण्ड के ग्यारहवें पटल में इसी संहिताकार की अन्य कृति 'अध्यात्म सागर' नामक तथा कामकला-खण्ड के आरम्भ में एवं बीजकोश प्रकरण में भीमातन्त्र[1] नामक पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। उसके मिलने से संभव था कि इसके काल का कुछ पता चल पाता। किन्तु मातृकाओं की सूची में भी वह प्रयत्न-प्रेक्षणीय ही प्रतीत हुआ। ख्रिष्ट सप्तदशशतक के मूर्धन्य तान्त्रिक नरसिंह ठक्कुर अपनी ताराभक्तिसुधार्णव पुस्तक में अनेकत्र यथाप्रसङ्ग इस संहिता को आदर पूर्वक प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। तथा ख्रिष्ट अष्टादशशतक के नेपाल नरेश प्रताप सिंह द्वारा अपनी तान्त्रिक कृति पुरश्चर्यार्णव में इस संहिता से सहस्राधिक श्लोक उद्धृत हुए है। इससे इन लोगों से इस संहिता की प्राचीनता सिद्ध होने पर भी निश्चित समय का निर्णय नहीं हो पाता है।

यहीं एक समस्या की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। वह यह कि पुरश्चर्यार्णव के कालीमन्त्र के पुरश्चरण प्रकरण में कालानल तन्त्र के श्लोकों को उद्धृत किया गया है। इस उद्धृत श्लोकों में दो बार महाकाल-संहिता का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जैसे—

विस्तृतं च महाकाल-संहितायां द्विजोत्तम।
+ + + +
महाकाल-संहितायां कामकलाभ्यासे प्रकीर्तितः ॥

इतना ही नहीं सिद्धि लक्ष्मी देवी के पुरश्चरंण प्रकरण में स्पष्ट कहा गया है कि महाकाल-संहिता में निर्दिष्ट पथ से ही सिद्धिलक्ष्मी देवी की पुरश्चरण-विधि सम्पन्न करनी चाहिए। पुनरुक्ति भय से मैं यहां उसे प्रतिपादित नहीं कर रहा हूं। महाकाल-संहिता के नाम निर्देश के अव्यवहित बाद में पंक्ति है—

तेनैव वर्त्मना विप्र सिद्धिलक्ष्म्याखिलं विदुः।
पौनरुक्त्यभयेनात्र निगदामि न नारद ॥

उपलब्ध कालानल तन्त्र सिद्धिलक्ष्मी देवी की सर्वाङ्गपूर्ण उपासना का विवरण देता है—ऐसा म० म० कविराज की तान्त्रिक साहित्य नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है।

अब समस्या यह है कि कालानल-तन्त्र में इस संहिता का उल्लेख एवं इस संहिता में कालानल-तन्त्र का उल्लेख कैसे पारस्परिक सम्बन्ध की रक्षा करता है? क्या दोनों ही कृति समदेशिक एवं समकालिक है? अतएव परस्पर उल्लेख संगत एवं संभव है?

१—भीमातन्त्रे कालकाली मनुरुक्तो मया तव। का० ख० पृ० ५।

खिष्ट षोडश शतक के कृष्णानन्द आगमवागीश ने अपने तन्त्रसार में गुह्यकाली के ध्यान यन्त्र एवं मन्त्र आदि विश्वसार-तन्त्र से लिए हैं, महाकाल-संहिता से नहीं। विश्वसार-तन्त्र में अभिहित गुह्यकाली निश्चय ही महाकाल-संहिता की गुह्यकाली से भिन्न है। तन्त्र-सार में महाकाल-संहिता का उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं हो सका है।

मैथिल निबन्धकार विद्यापति ठाकुर (खिष्ट १४ शतक) अपनी दुर्गाभक्ति तरङ्गिणी में दुर्गा की पौराणिक उपासना की पद्धति एवं उसके महत्त्व ब्यापक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। इसमें शिवरहस्य नामक शैवागम की चर्चा के साथ संबद्ध पुराणों का कण्ठतः उल्लेख हुआ है। किसी शाक्ततन्त्र का उद्धरण यहाँ नहीं मिलता है। अतः महाकाल संहिता का अनुल्लेख स्वाभाविक है।

तन्त्रालोक में आचार्य अभिनवगुप्त ने जिन दो शाक्त सम्प्रदायों के विषयों का विशेष प्रतिपादन किया है, उन दोनों ही मतों के विषयों का उपपादनपूर्वक खण्डन इस संहिता में किया गया है। इससे सम्भावित किया जा सकता है कि अभिनवगुप्त के बहुत बाद में महाकाल-संहिता का निर्माण हुआ है। शैवाचार्य अभिनवगुप्त का समय खिष्टीय दशम शतक का अन्त तथा एकादश-शतक का प्रारम्भ ऐतिहासिकों द्वारा निर्णीत है। अतएव इसका रचनाकाल खिष्टीय द्वादशशतक मानना सङ्गत प्रतीत होता। अभिनवगुप्त द्वारा प्रतिपादित तान्त्रिक सम्प्रदाय- युगलों का जब पूर्णतः प्रचार-प्रसार भारत के प्रत्येक अंचल में हो चुका होगा, तब उसके दोषों या गुणों का प्रभाव देखकर उन सबों से भिन्न वेदानुमत तान्त्रिक सम्प्रदाय चलाने की प्रवृत्ति से आदिनाथ ने महाकाल संहिता की रचना की होगी। अतएव दो-एक शतक का अन्तराल मानना तर्कपूर्ण प्रतीत होता है।

तन्त्रालोक में क्रमदर्शन एवं कुलदर्शन का विवरण दो सोदर शाक्त सम्प्रदायों के रूप से हुआ है। इन दोनों सम्प्रदायों का उद्भव खृष्टीय चतुर्थ एवं पंचम शतक में ऐतिहासिकों ने माना है। क्रमदर्शन के प्रवर्तक शिवानन्द ने काली को उपास्य मानकर कालीनय, देवीनय अनिमार्ग तथा महानय आदि नामों से काश्मीर में इसका प्रतिष्ठापन किया। यह सम्प्रदाय शैव के प्रत्यभिज्ञादर्शन से प्राचीन है। प्रस्तुत संहिता का पंचक्रम-पदार्थ (सृष्टि, स्थिति, संहार, भासा तथा अनाख्या रूप) इसी क्रमदर्शन से उधार लिया गया प्रतीत होता है। क्रम-दर्शन से ही इस संहिता में संकलित होने से चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया रूप तत्त्वार्थ की संगति भी बैठती है। भैरवी एवं भैरव के संवाद रूप में प्राप्त तन्त्र का विवरण दिगम्बर सम्प्रदाय रूप में इस संहिता में दिया गया है, जो वस्तुतः मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्द या मीनानाथ) द्वारा प्रचारित साधनापथ का (कुलदर्शन का) परिचायक है। नाथ-संप्रदाय के प्रसिद्ध सिद्धाचार्य मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप कामाख्या महापीठ में भैरवी एवं भैरव के संवाद रूप में उपलब्ध योग अर्थात् उपासना-पद्धति का प्रतिष्ठापन किया था। ये गुरु-शिष्य-परम्परा में अभिनवगुप्त से बाईस पीढ़ी पहले हुए हैं। महाकाल-संहिता में उल्लिखित कापालिक एवं दिगम्बर मत इन्हीं सम्प्रदाय युगलों की ओर संकेत करते हैं। इस संहिता में उद्धृत कौलिक एवं महाकौलिक पद भी क्रमशः इन्हीं दोनों सम्प्रदायों के वाचक प्रतीत होते हैं। फलतः उक्त रचना-काल की कल्पना युक्तिपूर्ण प्रतीत होती है। इस प्रसङ्ग में सबसे अधिक

प्रवल प्रमाण है नन्दिकेश्वर-पुराण एवं उपपुराणों का उल्लेख। इस संहिता के तेरहवें पटल में शारद दुर्गापूजा के महाष्टमी पूजन क्रम में पत्रिका पूजा के अवसर में कहा गया है कि नन्दिकेश पुराण में प्रतिपादित मन्त्रों से उग्रचण्डा आदि की पूजा वैदिक क्रमानुसारी करते है—

> नन्दिकेश पुराणोक्तैर्मनुभिः पद्यरूपिभिः।
> श्रुत्यध्वन्याः पूजयेयुरुग्रचण्डादिकाः प्रिये॥

इससे निश्चय ही खृष्टीय ग्यारहवें शतक के वाद की इस संहिता की रचना मानी जानी चाहिए। डा० आर० सी० हाजरा महोदय ने स्टडीज इन उपपुराणाज के द्वितीय खण्ड में नन्दिकेश्वर-पुराण का काल खृष्टीय नवम शतक के उत्तरार्द्ध से लेकर खृ० दशमशतक का पूर्वार्द्ध माना है। तथा यह भी कहा है कि नन्दिकेश्वर पुराण को खृ० एकादशशतक के वाद की रचना नहीं मानी जा सकती है।' अतएव इस संहिता का काल खृ० द्वादशशतक माना जाना अनुचित नहीं प्रतीत होता है।

यद्यपि वाण की रचना में महाकाल का उल्लेख हुआ है। हर्षचरित के तृतीय उच्छ्वास में भैरवाचार्य कहते हैं—'भगवतो' महाकालहृदयनाम्नो महामन्त्रस्य कृष्णस्रगम्बरानुलेपेन आकल्पने कल्पकथितेन महाश्मशाने जपकोट्या कृतपूर्वसेवोऽस्मि।' एवं कादम्वरी के जरद्द्रविडधार्मिकवर्णन के प्रसंग में एक पंक्ति है—'जीर्णपाशुपतोपदेशलिखितमहाकालमतेन।' तथापि प्रतीत होता है कि यह पाशुपत उपासना की ओर संकेत करता है। महाकाल-संहिता में प्रदर्शित शाक्त-सम्प्रदाय के साथ इसका सम्वन्ध नहीं है।

महाकाल-संहिता की तरह बौद्धों का महाकालतन्त्र नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इसकी फोटो प्रति काशीप्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना में उपलब्ध हैं। इस संस्थान के निदेशक प्रो० अनन्तलाल ठाकुर के सौजन्य से इन पंक्तियों के लेखक को उक्त फोटो प्रति देखने का अवसर हुआ। तथा उसके प्रारम्भिक एवं अन्तिम अंश के उपयोग के लिये अनुमति भी मिली है। इसमें देवी तथा भगवान् के मध्य संवाद रूप में विषय का प्रतिपादन हुआ हैं तथा विभाजन पटलों में है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पंचास पटलों में विभक्त है। आकार की दृष्टि से महाकाल-संहिता की अपेक्षा यह तन्त्र बहुत छोटा है तथा विषय आदि भी कुछ भिन्न ही है। महाकालतन्त्र के प्रारम्भिक अंश में भगवान कहते हैं—"प्रथमं श्रावकादिसंसृष्टया सत्त्वार्थं कल्पितोऽहं पश्चादनुक्रमेण महायानदेशिकोऽहम्।" "वज्रदेहस्थिरेण वैतथतां परिसेवणीयां किं नसिद्धयति भूतले यद्यवचनीयं चैव।" "नास्ति देहे कल्पनीयं कल्पमूतं मोहेन च वै धर्मचक्रं निर्माणचक्रं सम्भोगे ऽहरीद्वयं कायवज्रेनाद्यो जायन्ते।" इन पंक्तियो में श्रावक, महायान, वज्रदेह, धर्मचक्र आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इसके बौद्ध तन्त्र होने के प्रमाण माने जा सकते हैं। बौद्ध तन्त्र का विशाल साहित्य आज भी उपलब्ध हैं। किन्तु इसके साथ महाकाल-संहिता का—जो निश्चय ही सनातनक धर्मानुसारी है—किसी तरह का सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता है। इन दोनों ग्रन्थों में नाम के साम्य रहने पर भी किसी तरह के पारस्परिक सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है।

३—रचना-शैली

अवतरण तथा उपसंहार के साथ विषय का क्रमबद्ध उपपादन इसकी रचना की की मुख्य विशेषता है। पटल के अन्त में अग्रिम पटल के विषय की सूचना तथा प्रत्येक प्रकरण के उपसंहार में अग्रिम प्रतिपाद्य के सूत्रपात रूप क्रमों का निर्वाह पूरे इस खण्ड में पाया जाता है। कहीं-कहीं पटल के अन्त में सम्पूर्ण खण्ड के प्रतिपाद्य का आलोचन भी हुआ है। द्वितीय पटल के उपसंहार में (श्लो० १२२-१२५) पहले तृतीय पटल के प्रतिपाद्य वर्णन करके पुनः सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रतिपाद्य का सूत्र रूप में उल्लेख किया गया है। इसी तरह पञ्चम पटल का अन्तिमांश (श्लो० ४८२-८८) पहले सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रतिपाद्य का संकेत करता है, पुनः षष्ठ पटल के विषय का अवतरण देता है। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर इस खण्ड की परिपूर्णता चौदह पटलों में कल्पित की जाती है। इसके अन्तिम (१४) पटल के अन्त में कहीं ऐसा निर्देश नहीं मिलता है, जिसके आधार पर इसकी सम्पूर्णता का निश्चय किया जा सके।

संहिताकार आदिनाथ पुराणकार व्यास की तरह सरल तथा सुबोध भाषा का व्यवहार करते हुए सभी विषयों को खोल-खोल कर सुस्पष्ट कहना पसन्द करते हैं। बड़े-बड़े मन्त्रों में निर्णयार्थ इन्होंने अक्षरों की संख्या तक गिना दी है। यद्यपि पारिभाषिक शब्दावली का प्रचुर प्रयोग हुआ है तथापि इससे पाठक को असुविधा नहीं होती है। दो तरह के पारिभाषिक शब्द यहाँ प्रयुक्त हुए हैं। एक तरह के पारिभाषिक पद के अन्तर्गत बीज, उपबीज, कूट तथा उपकूट आदि आते हैं। इसके लिए इस संहिता का बीजकोष (तृतीय एवं चतुर्थ पटल) पहले ही निर्मित हो चुका है। दूसरी तरह के पारिभाषिक पदों के अन्तर्गत वे शब्द आते हैं, जो या तो अन्वर्थक एवं प्रासंगिक हैं, अतएव संहिताकार द्वारा निर्मित हैं अथवा अप्रसिद्ध या अल्प परिचित हैं। इस तरह के पदों के प्रयोग के समय उसकी व्याख्या भी अविलम्ब वहीं संहिताकार ने कर दी है। जैसे 'विष्णुतत्व' एक मन्त्र का नाम है। इसके प्रयोग के साथ ही संहिताकार ने कहा है—

'विष्णुना विधृतं यस्मात् तत्त्ववच्चापि चिन्तितम्।
नाम्ना ख्यातं विष्णुतत्त्वं मन्त्राणामुत्तमोत्तमम्'॥

इस संहिता के तृतीय पटल में सहस्राक्षर मन्त्र का स्वरूप उद्घाटित हुआ है। इसका नाम 'नवनवार्णा' रखा गया है। क्योंकि इसमें नौ बीजों का एवं नौ कूटों का प्रयोग हुआ है।

'बीजानामथ कूटानां नवानां हि प्रयोगतः।
ख्याता नवनवार्णेति सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमा'॥

'कल्पलता' विष्णु उपास्य अयुताक्षर मन्त्र का नाम रखा गया है। क्योंकि जिस तरह कल्पद्रुम सभी प्रकार के इष्ट की सिद्धि करता है। इसी तरह इस मन्त्र से भी ऐहिक सभी प्रकार के इष्ट की सिद्धि होती है—

विष्णुनाराधिता या तु सा सपत्नप्रमाथिनी।
नाम्ना ख्याता कल्पलता सदैहिकफलप्रदा॥

इसी तरह धूप के प्रकरण में अपरिचित धूप 'पवित्राह' का उल्लेख हुआ है और तुरत ही उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत की गयी है। कमल सदृश सुगन्धिशाली कुंकुम के समान रूपवान्, तेल की तरह स्निग्ध, धुनी हुई रुई के समान कोमल तथा सिन्धुद्वीप में उद्भूत महाशरभ नामक पशु विशेष के शिरः स्थित अस्थि में रहने वाला अतएव सर्वसाधारण के लिये अप्राप्य पदार्थ 'पत्रिवाह' है जो धूप के उपयोग में आता है (द्र० प० ६ श्लो० २५१-५३)। चतुर्थ पटल में शाम्भव आदि छह विशिष्ट मन्त्रों के अधिक माहात्म्य-ख्यापन के लिये ग्रन्थकार ने उन मन्त्रों की गोपनीयता एवं गुरुगम्यता सिद्ध करने के लिए जिस उपाय का अवलम्बन किया है उस उपाय का भी इन्होंने पहले स्पष्टतः उल्लेख कर दिया है (द्र० पटल ४ श्लो० १४३-४६)। इस तरह के मार्ग का आश्रय लेना बीजकोष के निर्माण के बाद उन बीजों का प्रयोग करना तथा पारिभाषिक या अपरिचित पदों को व्याख्या सहित प्रस्तुत करना वस्तुतः संहिताकार के सरल, सुबोध एवं सुस्पष्ट रचना प्रियता का परिचायक है।

मन्त्रों का उद्धार, विधियों का अभिधान तथा उनके पौर्वापर्यक्रम का प्रदर्शन आदि जिस मत में जैसा विहित है उसी तरह अविकल यहाँ उन्हें प्रस्तुत किया गया है। विशेष विवेचन द्वारा उनके औचित्य की परीक्षा के पश्चात् उसकी ग्राह्यता या त्याज्यता का निर्णय किया गया है। जिस बात में सभी सम्प्रदायों का मतैक्य है, उसमें अवसर नहीं रहने से विवेचना नहीं की गयी है। द्वादश पटल में इन्होंने प्रसंगवश कहा है —

'विशेषेण विविच्यैव कथयिष्यामि पार्वति।
तन्मुक्त्वान्यत्तु सर्वेषां समानं सकलं स्मृतम्॥'

संहिताकार इतने उदार हैं। किसी भी प्रसंग में यदि सम्प्रदायान्तर से इनका मतभेद होता है, तो स्पष्टतः उसका उल्लेख करते हैं। तथा मतभेद के कारण को कहते हुए उसमें युक्ति भी दिखाते हैं। विविध साम्प्रदायिकों के मतों का एवं उनकी उपासना-प्रक्रिया का यथास्थान आदर के साथ उपस्थापन इनका स्वभाव है। यद्यपि अपना मत एवं अपनी उपासना-पद्धति को अभ्यर्हित मानकर पहले निर्दिष्ट करते हैं। तथापि अन्य मतों एवं पद्धतियों को भी अवश्य उचित स्थान देते हैं। बिना युक्ति-निर्देश के अन्य को हेय अथवा अपने को उपादेय नहीं कहते हैं।

४—इस संहिता का उद्देश्य

महाकाल-संहिता के निर्माण से पहले शाक्त साधकों के चार मुख्य सम्प्रदायों का पूर्ण विकास हो चुका था। समाज में उनकी प्रतिष्ठा घट रही थी। अतएव आदिनाथ को आगमोक्त शाक्त उपासना की प्रतिष्ठा एवं उसकी सामाजिक स्वीकृति के लिये एक नवीन सम्प्रदाय की स्थापना करनी पड़ी[1] जो वेद के अविरोधी होने से तत्काल ग्राह्य हो सका।

---

१. श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च।
उभयं कुर्वते देवि मदुदीरितवेदिनः॥
अतोऽदः श्रेष्ठमन्येभ्यो मन्येऽहमिति पार्वति। (गु० ख० १० पटल)

अतएव यह सम्प्रदाय वेदविरोधी आगमिक आचरण का सर्वथा त्याग कर वेदानुमत आगम के आचरण का अनुव्रजन करता है।[१] इस प्रसंग में महाकाल-संहिता की एक रोचक कथा यहाँ उल्लेखनीय है। महाकाल से देवी पूछती हैं कि कापालिक, दिगम्बर, मौलेय तथा भाण्डिकेर आदि किसे कहते हैं, इनका धर्म क्या है तथा उनकी उपासना-पद्धति कैसी है—इत्यादि विषयों को मैं जानना चाहती हूँ। इसके उत्तर में महाकाल कहते हैं कि शाक्त साधकों के उक्त चार सम्प्रदाय पहले से ही प्रसिद्ध हैं। शाक्त तन्त्र प्रमुखतः चार नामों से प्रसिद्ध हैं—डामर, भैरव संहिता, यामल तथा शाबर तन्त्र। प्रत्येक का नाम एक-एक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करता है। कापालिक सम्प्रदाय डामर तन्त्र का अनुगामी देखा गया है।[२] 'दिगम्बर' से यहाँ नग्न रहने वाले नहीं, अपितु भैरवी और भैरव के संवाद रूप में लिखित संहिता का अनुगामी विवक्षित[३] है। 'मौलेय' उन्हें कहा गया है जो यामल में निर्दिष्ट साधना-पथ का अनुसरण करते हैं।[४] और शाबर तन्त्र का अनुव्रजन करने वाला 'भाण्डिकेर' कहा गया है।[५] किन्तु इन सबों में भिन्न शाक्त उपासना की एक और गुरु परम्परा सम्प्रदाय है जो मेरी संहिता की अनुगामिनी है।[६] इसे तन्त्र की स्मार्त परम्परा माननी चाहिये। क्योंकि स्मार्तों के आचार-विचार के परिपालन के लिये ही यह अधिक आग्रहशील देखा जाता है। कौल परम्परा का उल्लेख करके भी अपनी सम्मति स्मार्त परम्परा के प्रति इसमें कण्ठतः अनेकशः व्यक्त की गयी हैं, जो इसके पाठक को स्पष्ट परिलक्षित होता है। इससे स्थूल दृष्ट्या दो विषयों की जानकारी होती है, जो प्रायः इतने स्पष्ट रूप से अन्यत्र नहीं मिलते हैं। एक तो यह कि डामर, यामल तथा शाबरतन्त्र आदि विभिन्न सम्प्रदायों का प्रातिनिध्य करते हैं। अतएव विविध नामों से अभिहित होने वाले ये तन्त्र-ग्रन्थ उपासना की प्रक्रिया में साम्प्रदायिक भेद का निर्वाह करते हैं। दूसरी बात यह है कि महाकाल-संहिता की रचना के पूर्व इन चारों सम्प्रदायों की पूर्ण प्रसिद्धि हो गयी थी और इन चारों सम्प्रदायों के ग्रन्थों से तान्त्रिक साहित्य पूर्ण समृद्ध हो चुका था।

---

१. वेदाविरुद्धं कुर्वन्ति यद् यदागमचोदितम्।
आगमादेशितमपि जहति श्रुत्यदेशितम्॥ (गु० ख० १२ पटल)

२. कपालडामरप्रोक्तमतसंचारिणो नराः।
कापालिका निगद्यन्ते ते महाकौलिका अपि॥ (गु० ख० १० पटल)

३. संहितां भैरवप्रोक्तां ये पुनः समुपासते।
दिगम्बरास्ते विख्याता न पुनर्नग्नरूपिणः॥
एतेऽपि कौलिकश्रेष्ठाः श्मशानादिषु निर्घृणाः। (गु० ख० १० पटल)

४. प्रपन्ना यामलप्रोक्तं ये पन्थानं सुरेश्वरि।
ते मौलेयाः परिख्याता महाकौलिकतो वराः॥ (गु० ख० १० पटल)

५. ये च शाबरतन्त्रज्ञास्तन्मतैकप्रवर्तिनः।
विख्याता भाण्डिकेरास्ते मौलेयसदृशा मताः॥ (गु० ख० १० पटल)

६. मदुक्तसंहितोक्तिज्ञा मध्यस्थाः परिकीर्तिताः। (गु० ख० १० पटल)

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि इस तरह का साम्प्रदायिक विभाजन और डामर एवं यामल आदि तन्त्र-ग्रन्थों के नामों का रहस्य अन्यत्र प्रायः इतने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित नहीं हुए हैं। अतएव इस संहिता के प्रकाशन से तान्त्रिक साहित्य की साम्प्रदायिक विकास-परम्परा पर आलोकपात हुआ है।

उक्त क्रम के अग्रिम सन्दर्भ से यह भी ज्ञात होता है कि समाज में इस तान्त्रिक उपासना की बड़ी निन्दा हो गयी थी। महाकाल कहते हैं कि उक्त चारों ही सम्प्रदाय समाज में गर्हित माने जाते हैं। इन लोगों का आचरण घृणित एवं बीभत्स है। कापालिक और दिगम्बर निर्घृण होकर श्मशान में रहते है तथा शव का वस्त्र पहनते हैं। वेदमार्ग को छोड़कर सब कुछ अर्थात् अभक्ष्य एवं अपेय भी खाते-पीते हैं। गोमांस भी इनके लिये अभक्ष्य नहीं है। अपनी माँ को छोड़ कर सभी स्त्रियों के साथ संभोग करते हैं। इस तरह इनके पाप-कर्मों की जड़ बड़ी गहरी है।[1] दिगम्बर साधक इनसे भी अधिक पापी होते हैं। ये नरमांस भी देवी को अर्पित कर प्रसन्नतापूर्वक उसे प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं।[2] इस तरह डामर, यामल, भैरव-संहिता तथा शाबर-तन्त्र को मानने वाले शाक्तो के उक्त चारों सम्प्रदाय कदाचारी होने से निन्द्य[3] हैं। इसलिये इस संहिता में निर्दिष्ट साधनाक्रम का अनुव्रजन इष्ट है।[4]

इस संहिता में किसी दूसरे प्रसंग में पुनः देवी पूछती हैं कि यदि उपर्युक्त पांचों सम्प्रदाय एक ही शिव के मुख से निःसृत हैं, तब इन सभी सम्प्रदायों में एवं सभी सम्प्रदायों के ग्रन्थों में एकवाक्यता क्यों नहीं है? मतभेद का क्या कारण है? किस सम्प्रदाय की प्रवृत्ति श्रेष्ठ है? सभी सम्प्रदायों का सार क्या है? तथा किस पक्ष का अवलम्बन उचित

---

१. गर्ह्यकृतकर्मकर्तारौ निर्घृणौ निन्द्यतां गतौ।
सर्वाधमौ परिज्ञेयौ कापालिकदिगम्बरौ॥
श्मशानवासिनौ नित्यौ कुणपाम्बरधारिणौ।
सर्वभक्षी च बीभत्सौ वेदमार्गवहिष्कृतौ॥
भक्षयेतामभक्ष्यं हि गोमांसं सुरवन्दिते।
शक्तिश्चैषामसंभोग्या स्वकीया जननी तथा॥
विस्तारबीजमित्येवं वर्तते पापकर्मणाम्। (गु० ख० १० पटल)

२. दिगम्बरः पापतमो देवि कापालिकादपि।
नरमांसं यदश्नाति देव्यै दत्त्वा प्रसादवत्॥ (गु० ख० १० पटल)

३. डामरं यामलं चैव तथा भैरवसंहिताम्।
तथा शाबरतन्त्राणि शास्त्रमेषां प्रकीर्तितम्॥
कुर्वन्ति देव्याः पूजादि तत्तन्मन्त्रोदितक्रमैः।
पूजां कृत्वा उपादेयाः कदाचारा विगर्हिताः॥ (गु० ख० १० पटल)

४. मतज्ञानैः किमेभिस्तै प्रकृतं शृणु साम्प्रतम्। (गु० ख० १० पटल)

है ?[१] इसके उत्तर में महाकाल का कहना है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने सभी प्राणियों के लिये एक ही प्रकार के धर्म का उपदेश किया था, जो चारों वेदों, अट्ठारह पुराणों एवं सभी इतिहास-ग्रन्थों में अभिहित है। पश्चात् ऋषियों ने उसी एकविध धर्म की अपनी वृद्धि से विवेचन कर वर्ण और आश्रम का विभाग तथा प्रत्येक के लिये पृथक् धर्म की व्यवस्था की।[२] इसी तरह शिव ने एक ही आगमिक धर्म को कहा है, किन्तु लोक में विस्तारपूर्वक प्रचार के लिये उनके अंशभूत हम लोगों ने बहुत सारे ग्रन्थों का निर्माण किया।[३] हम लोगों ने मनुष्यों को सदाचारी एवं कदाचारी देखकर सब तरह के लोगों के लिये प्रत्येक विषय की व्यवस्था आगमों में की हैं। यद्यपि देवी की आराधना के लिये कही गयी सभी बातें लोगों में शुभप्रद हैं। तथापि मनुष्य के स्वभाव की विविधता के कारण तदनुकूल उपासना-मार्ग के बाहुल्य की व्यवस्था हुई है। समर्याद, निर्मर्याद, सघृण, निर्घृण, सलज्ज, निर्लज्ज, सज्ञान, अज्ञान, सात्विक, राजस तथा तामस आदि विविध स्वभाव वाले मनुष्यों के लिये उक्त पाँच शाक्त-सम्प्रदायों का आविर्भाव एवं डामर, यामल तथा शाबर आदि तन्त्रों का

---

१. डामरं यत्कपालाख्यं संहिता या च भैरवी।
यामलं शावरं तन्त्रं सर्वं शिवमुखोद्गतम्॥
एवं त्वमपि देवेश संहिता स्वमतेन हि।
त्रिपुरघ्नादुपश्रुत्य मह्यं व्याहृतवानसि॥
सर्वेषामागमानां चेदुक्तः प्रथमनायकः।
सर्वैकवाक्यता तर्हि कथं न भवति प्रिये॥
श्रेष्ठं किमेष ज्ञातव्यं कर्तव्यत्वेन निश्चितम्।
पञ्चानामपि पक्षाणां मध्ये सारतरं नु किम्॥
एवं विधेयमथवा सर्वमेव सुरेश्वर।
एतत्सर्वमशेषेण निर्णीयाज्ञापय प्रभो॥ (गु० ख० १२ पटल)

२. सम्यक् पृष्टं त्वया देवि सन्देहस्यापनुत्तये।
एवंविधा त्वदन्या का जिज्ञासुर्विद्यते भुवि॥
चतुर्ष्वपि च वेदेषु पुराणेष्वखिलेषु च।
इतिहासादिषु तथा धर्म एकः स्वयंभुवा॥
भूतसर्गं विधायैव निर्दिष्टः सार्वलौकिकः।
अनन्तरं तु मुनयः एकरूपतया स्थितम्॥
तमेव धर्मं देवेशि विविच्य स्वमनीषया।
वर्णाश्रमविभागेन कल्पयामासुरञ्जसा॥ (गु० ख० १२ पटल)

३. एवमागमिको धर्मं एक एव पुरारिणा।
कथितो लोकविस्तारहेतवे ग्रन्थविस्तरैः॥
अनन्तरं तदीयांशभूतैरस्माभिरीश्वरि। (गु० ख० १२ पटल)

उद्भव द्रष्टव्य है ।[१] इनमें कापालिक आदि निन्द्य हैं । क्योंकि वे नरकपाल में मदिरापान करते हैं तथा शक्ति रूप में बहिन, कन्या और पुत्रबधू का भी परिग्रह करते हैं । जब कि वेद में नरास्थि को इतना अशुचि माना गया है कि उसका स्पर्श होने पर वस्त्र-सहित स्नान का विधान है ।[२] किन्तु आगम में प्रसिद्ध होने से तथा शिव के कहने के कारण यहाँ कुछ ग्राह्य एवं कुछ हेय होता है ।[३] नरकपाल में पान एवं भोजन के साथ उसके स्पर्श का भी निषेध है । इसका कारण वेद में इसकी अशुचिता का प्रतिपादन है । किन्तु जप के लिये नरास्थि की माला बनायी जा सकती है । इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है ।[४] कापालिक आदि तान्त्रिकों के बीच नरमांस का भोजन प्रसिद्ध है, जो सर्वथा अवश्य त्याज्य है ।[५] श्रुति में निन्दित आचार ही कदाचार है, जो त्याज्य है । वेदानुमत आचार ग्राह्य है जिसे सदाचार कहते हैं । महाकाल-संहिताकार अपनी मान्यता प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जैसे जलमिश्रित दूध में हंस दूध का ग्रहण एवं जल का त्याग करता है । इसी तरह आगम में उक्त

---

१. कदाचारसदाचारौ निरीक्ष्य नरजातिषु ।
सर्वागमानां विषयव्यवस्था परिकल्पिता ॥
शुभदो निखिलो धर्मो देव्याराधनहेतुकः ।
आगमाऽभिहितः किन्तु भिन्न आचार इष्यते ॥
निर्मर्यादा, ममर्यादा निर्घृणाः सघृणास्तथा ।
निर्लज्जाश्च सलज्जाश्व सज्ञाना ज्ञानवर्जिताः ॥
सात्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथा नराः ।
तत्परत्वं न सर्वेषां व्यवस्था परिकल्प्यते ॥ (गु० ख० १० पटल)

२. पूर्वमप्युक्तमेतत्ते इदानीमपि कथ्यते ।
तत्र कापालिका निन्द्या नृकपालमयानि हि ॥
कुलद्रव्यप्रदानाय ये पात्राणि प्रकुर्वते ।
कल्पयन्ति तथा शक्तीर्भगिनीदुहितृस्नुषः ॥
. ...
श्रुतौ नरास्थिसंस्पर्शात् संचैलं स्नानमीरितम् ।

३. आगमादिप्रसिद्धत्वाद् रुद्रस्य वचनादपि ।
किंचिद्धातव्यमुभयोः किंचिद्ग्राह्यं द्वयोरपि । (गु० ख० १२ पटल)

४. कापालिकमते त्याज्ये करोटो पानभोजने ।
अस्पर्शश्च तथामुष्याः श्रुत्युक्तौ हेय ईश्वरि ॥
न मालाकरणे दोषो जपार्थं तस्य कश्चन ।
पानभोजनपात्रादिकरणे दोष एव हि ॥ (गु० ख० १२ पटल)

५. नरमांसाशिता साक्षादत्र मा संशयोऽस्तु ते ।
सर्वेष्वपि मतेष्वेवं बोद्धव्यं कमलानने ॥ (गु० ख० १२ पटल)

भद्र आचार-विचार का ग्रहण और अभद्र का त्याग करना चाहिये।[1] अपनी इस मान्यता की पुष्टि में प्रमाण रूप से मनु की उक्ति का उल्लेख किया हैं। मनु का कथन है कि नीच से भी उत्तम विद्या, दुष्कुल से भी कन्या-रत्न, उन्मत्त से भी महामन्त्र और अन्त्यज से भी सुवर्ण का ग्रहण करना चाहिये।[2] अतएव हे देवि, इस संहिता में कापालिक आदि तान्त्रिकों के साम्प्रदायिक ग्रन्थों से शुभ विचार एवं आचरण का परिग्रह एवं अशुभ का त्याग किया गया है।[3] वस्तुतः सनातन धर्म की यह स्मार्त परम्परा वेद, पुराण एवं आगम का परस्पर समन्वय करती हुई साधना-पथ का प्रदर्शन करती है। धार्मिक व्यक्ति वैदिक उपासना सन्ध्यावन्दन, गायत्रीजप, पुरुषसूक्त द्वारा शालग्राम की पूजा तथा षडङ्ग-शतरुद्रीय मन्त्रों के पाठ के साथ मूर्तिपूजा करके पौराणिक उपासना का महत्व स्थापित करता है। दशहरा आदि पर्वकालों में गंगा स्नान आदि तीर्थयात्रा का विधान भी पौराणिक उपासना की ही देन मानी जायगी। शैव, शाक्त या वैष्णव में से किसी एक का आश्रय पाकर प्रायः प्रत्येक उपासक जीवन में अवश्य अग्रसर होता हुआ देखा गया है। इस स्थिति में वेद, स्मृति, पुराण तथा आगम के समन्वय के साथ तात्कालिक समाज के अनुकूल शाक्त साधना के एक नूतन सम्प्रदाय की स्थापना इस संहिता की महत्वपूर्ण देन मानी जायगी, जो अन्य सम्प्रदायों कीं अपेक्षा अर्वाचीन होते हुए भी उपादेय तथा आदरणीय है।

५—विषय-वस्तु :—उपास्य, उपासक तथा उपासना

उपास्य—अन्य शाक्त आगमों की तरह महाकाल संहिता स्थूल दृष्टि से उपास्य, उपासक और उपासना इन तीन विषयों के साङ्गोपाङ्ग प्रतिपादन में सीमाबद्ध है। अन्य तान्त्रिक विषयों का परिचय इन्हीं के अङ्ग रूप में हुआ है। इस संहिता का प्रस्तुत खण्ड देवी गुह्यकाली को उपास्या मानता है। डा० रेग्मी महोदय ने अपनी पुस्तक 'मिडिएवल नेपाल (भाग १ पृ० ३५४) में कहा है कि खृष्टीय चतुर्दशशतक में गुह्यकाली या गुह्येश्वरी देवी पीठदेवता रूप में प्रसिद्ध थी। नेपाल (काठमाण्डू) में पशुपति नाथ मन्दिर के निकट यह सिद्धपीठ विराजमान है। यहाँ कुण्ड जैसा बना हुआ है जो अनवरत जल से प्लावित रहता

---

१. तेषां ये हि कदाचारा निन्दिताः श्रुतिवर्त्मनि।
अस्माभिस्ते परित्यक्ता यदभद्रं तदुरीकृतम्॥
मिश्रिताभ्यां पयोऽम्बुभ्यां क्षीरं हंसो यथा पिबेत्।
शुभाशुभाभ्यां हि तथा शुभमेव श्रयेत् सुधीः॥ (गु० ख० १२ पटल)

२. यदुक्तं मनुनार्थेऽस्मिन्नवधेहि तदीश्वरि।
नीचादप्युत्तमां विद्यां कन्यारत्नं सुदुष्कुलात्॥
अप्युन्मत्तान् महामन्त्रममेध्यादपि काञ्चनम्। (गु० ख० १२ पटल)

३. अतएव महेशानि प्रोक्तं यद्यत् स्थले स्थले।
कापालिकैः शुभं वाक्यं तन्मयात्रोपवर्णितम्॥
तेषामेव परित्यक्तं यदसद्यौक्तिकं वचः॥ (गु० ख० १२ पटल)

है। इसके ऊपर कुम्भ पर कुम्भ रखकर उस कुण्ड को ढक दिया गया है। वहीं एक भाग में देवी की प्रतिमा भी है तथा यन्त्र-राज उल्लिखित है। सती के गुह्य अंग के गिरने से यह गुह्येश्वरी सिद्धपीठ माना जाता है। इस संहिता में गुह्य.ाली का परिचय निम्न श्लोक में उपलब्ध है—

'इयं हि वर्णत: काली जन्मना च गिरीन्द्रजा।
मया हि गोपिता यस्मात्तस्माद् गुह्या वभूव ह॥'[1]

जन्म से पर्वतराज हिमालय की कन्या वर्ण से श्याम तथा शिव द्वारा संरक्षिता होने से गुह्या अर्थात् गुह्यकाली कहलाती हैं।

यहाँ दुर्गा सप्तशती में इसका साम्य परिलक्षित होता है—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत् सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचल कृताश्रया॥५।८८॥

नवम पटल में क्रम न्यास के प्रसङ्ग में, छह आम्नायों में प्रसिद्ध देवियों का विवरण देते हुए संहिताकार ने गुह्यकाली को उत्तराम्नाय की आद्या देवी कहा है। वस्तुत: एक ही चित्स्वरूपा शक्ति विभिन्न अवसरों में अनेक उपासकों द्वारा विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अनन्त नामों से प्रसिद्ध होकर उपासिता हुई हैं। देवी के तीन ध्यानों की उपलब्धि से इस आशय की सम्पुष्टि होती है। औपनिषदिक ब्रह्म एवं गुह्यकाली के अनाख्या (अनिर्वचनीय) स्वरूप का ध्यान तुल्य रूप में पाया जाता है। इस प्रसङ्ग में अथर्वगुह्योपनिषत् एवं ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर द्वारा कृत ध्यान द्रष्टव्य है। जहाँ इष्ट देवी गुह्यकाली को चिद्विलासिनी, निर्गुणा, निराकारा प्रबोधानीतगोचरा, साक्षिणी, परानन्दा तथा प्रत्यग्ज्योति:स्वरूपा आदि विशेषणों से विभूषित कर अद्वैता कहा गया है। इतना ही नहीं, महाकाल-संहिता की गुह्यकाली तो निर्गुण ब्रह्म से बढ़ कर है। महाकाल कहते हैं कि वह (गुह्यकाली) हम लोगों से या निर्गुण ब्रह्म से बाध्य नहीं है। हम लोग उनका नियन्ता नहीं हैं, अपि तु उनकी (गुह्यकाली की) इच्छा ही इस सकल चराचर की नियामिका है। वही निर्गुण-ब्रह्म-रूपिणी है। उनके वश में पूरा संसार है, वह किसी के वश में नहीं हैं। वह इस संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करती है। उनका सर्जन पालन या संहार किसी से सम्भव नहीं है। (द्र० गु० ख० १।१३३-३६।)

देवी एवं महिषासुर के संवाद प्रकरण में इस संहिता के त्रयोदशतम पटल में शारदी पूजा के प्रसंग में प्रसङ्गत: काली एव कृष्ण के ऐक्य का प्रतिपादन —

यद् यद् विभूति-मत्सत्व श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

को वस्तुत: गुह्यकाली (चित्शक्ति) के साथ सबद्ध करता है—

स्त्रीणां त्रैलोक्यजातानां कामोन्मादैकहेतवे।
वंशीधरं कृष्णदेह चकार द्वापरे युगे॥१३।२४१॥

---

1. गु० ख० पटल ६ श्लोक १३३६।

भासा गुह्यकाली का स्वरूप ध्यान द्वितीय उपासक द्वारा किया गया है। जो 'विराट ध्यान' के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ भागवत के द्वितीय स्कन्ध के प्रथम अध्याय में वर्णित भगवान के विराट ध्यान से बहुत साम्य देखा जाता है। मानवों की आराध्या गुह्यकाली सृष्टि, स्थिति एवं संहार रूप काल के भेद से तीन प्रकार की होती है। जो प्रथम पटल का प्रथम ध्यान है। (द्र० श्लो० २८-१०१)।

श्लोक संख्या ८२ के द्वितीय चरण के परिवर्तन से पूरा ध्यान सृष्टि, स्थिति एवं संहार रूप ध्यान में परिवर्तित होता है। 'नृत्यमानां सदोदितां' स्थिति ध्यान में पाठ होगा। 'सृजन्तीं च मुहुर्मुहुः' सृष्टि ध्यान में पाठ होगा और 'जगत्संहारकारिणीम्' संहार ध्यान में पाठ होगा। इनका मुख्य स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—प्रकृति रूप में भगवती दशमुखी हैं इनकी चौवन भुजाएँ एवं सत्ताईस आँखें हैं।[1] देवी के दस मुख दस जानवरों के मुखों से परिकल्पित है। पैरों तक लटकते हुए इनके बालों के संभार हैं। यह मद्य तथा मांस आदि का सेवन कर योगिनी आदि सहचरियों के साथ श्मशान में हँसती हुई घूमती रहती हैं। इनके इसी स्वरूप के विकार अन्य स्वरूप हैं। अतएव वे गौण माने गये हैं। इन गौण रूपों का विस्तृत एवं विशेष परिचय इनके विविध ध्यानो में मिलता है। साथ ही इस प्रसंग में एक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण कथा यहाँ अवतरित होती है। घोर तपस्या के बाद देवों को जब वर-प्राप्ति का अवसर मिला तो आपस में विवाद उपस्थित हुआ कि जब एक साथ हम लोगों ने तपस्या की है, एक साथ देवी का साक्षात्कार मिला है। तब वर-लाभ के समय के पौर्वापर्यजन्य विलम्ब क्यों किसी को सह्य करना पड़ेगा। फलतः भक्ततोषिणी देवी ने एक ही समय में सभी देवताओं को वर देने के लिए अपनी उतनी मूर्तियाँ बनायीं जितने वर-प्रार्थी थे। तथा जिस देवता ने जितने मुखों से उनकी स्तुति की उनको उतने मुखों से देवी ने वर-प्रदान किया। इस तरह व्यवहार सम्पादनार्थ देवी की अनेक-मुखता सिद्ध होती है। पुनः मुखभेद से भुजाओं में भी भिन्नता आती है। अतएव इनकी विविधरूपता सिद्ध होती है जो अनेक ध्यानों में वर्णित है। सारांश यह है कि परमार्थतः निर्गुणा तथा निराकारा भगवती देवताओं के कलह-शान्त्यर्थ शरीर-परिग्रह कर साकारा एवं सगुणा हुईं।[2] इस तरह व्यवहार-दशा में शाक्त तन्त्र के विशाल साहित्यों द्वारा इनकी

---

१. मिथिला के लब्धप्रतिष्ठ तान्त्रिक साधक स्वर्गीय महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह महाशय ने मधुबनी (भौरागढ़ी) में इस प्रतिमा का सविधि निर्माण कराकर स्थापन किया है। भारत में प्रायः यह एक ही स्थान है जहाँ दशमुखी गुह्यकाली की प्रतिमा हैं। यह प्रतिमा इस संहिता में प्राप्त निर्देश के अनुसार पूजित होती है। आज भी सर्वसाधारण के लिये इस प्रतिमा का दर्शन दुर्लभ है।

२. निर्गुणा सगुणा जाता निराकारापि साकृतिः।
अदेहाऽपि सदेहाभूदरूपा रूपधारिणी॥
तुलनीय—
चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

अनन्तरूपता के परिचय मिलने पर भी परमार्थ दशा में एक ही चित्स्वरूपा अद्वैता शक्ति की सत्ता सिद्ध होती है। इस सन्दर्भ में उदाहरणार्थ गुह्यकाली के सुधाधारा-स्तोत्र के दो श्लोक यहाँ उद्धृत हैं—

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥
विशुद्धा परा चिन्मयी स्वप्रकाशा-
ऽमृतानन्दरूपा जगद्व्यापिका च।
तवेदृग्विधाया निराकारमूर्तेः
किमस्माभिरन्तर्हृदि ध्यायितव्यम् ॥

इसी तरह गुह्यकाली के 'सिद्धि तत्व-स्तोत्र' में भी इस रूप का परिचय वर्णित है। देवी गुह्यकाली सभी देवताओं के ऊपर एक एवं चित्प्रकाशस्वरूपा है। इसी की शक्ति से संसार सामर्थ्यशाली है। यह देवी दैत्य एवं दानवों के वध के लिये सौम्य स्वरूप को छोड़ कर भयंकर रूप धारण करती हैं। यही देवी कपिल आदि मुनियों द्वारा सत्ययुग में चण्डयोगेश्वरी नाम से, त्रेता युग में राजाओं द्वारा सिद्धिविकराली नाम से तथा द्वापर में ब्राह्मणों द्वारा सिद्धिकराली नाम से उपासिता हुई है। और अब कलियुग में आपामर जनता द्वारा गुह्यकाली रूप में उपासिता होती हैं।

या व्याप्य शक्त्या निजया जगन्ति
विष्टभ्य भूतानि तथाऽखिलानि।
वर्वर्ति सर्वोपरि चित्प्रकाशा
सा गुह्यकाली परिपातु विश्वम् ॥

× × × ×

सौम्यस्वरूपमपहाय करालरूपं
या दैत्यदानववधाय बिभर्ति गुह्या।
सा नः सदा वसतु चेतसि वाचि काये
तापत्रयप्रबलपावकवारिधारा ॥

× × × ×

या ध्याता कपिलादिभिः कृतयुगे श्रीचण्डयोगेश्वरी
त्रेतायां क्षितिपैश्च सिद्धिविकरालीति प्रसिद्धाख्यया।
विप्रैः सिद्धिकराल्यनाद्यभिधया या द्वापरे गीयते
सर्वैरेव जनैस्तथा कलियुगे श्रीगुह्यकालीति च ॥

फलतः अन्य शाक्त आगम की तरह महाकाल-संहिता भी शक्ति-अद्वयवाद की प्रतिष्ठा में अपनी कृतकृत्यता का अनुभव करता है।

ख—उपासक

यहां देवी के उपासकों के तीन प्रकार वर्णित हैं। प्रथम उपासक रूप में ब्रह्मा विष्णु तथा महेश का उल्लेख है।[१] इन्होंने अद्वैतभाव से वैदिक वाक्यों द्वारा इनकी उपासना की है। वे वैदिक मन्त्र उपनिषद् के साररूप पंच महावाक्य हैं। प्रायः इसी तरह उपनिषद् में भी ब्रह्म-साक्षात्कार का उपाय वर्णित है। प्रथम उपासक के लिये इन मन्त्रों का अनवरत जप ही 'उपासना' है। इसी सन्दर्भ में, इस संहिता में अथर्वगुह्योपनिषद् का आविर्भाव होता है। इस संहिता का केवल इतना ही अंश अड्यार पुस्तकालय मद्रास से 'अनपब्लिशड उपनिषद्स' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हो सका है। यहाँ द्रष्टव्य है कि बृहदारण्यक, ईशावास्य, कठ, श्वेताश्वतर, मुण्डक तथा महानारायण आदि प्रसिद्ध उपनिषदों की पंक्तियाँ यथाप्रसंग यत्र तत्र उद्धृत हैं। उपनिषदों में ब्रह्म के चिन्तन रहने से ब्रह्मवाचक या ब्रह्म के विशेषण रूप में व्यवहृत पद नपुंसक लिङ्ग में निदिष्ट हैं। और इस संहिता में स्त्रीलिंग निर्देश द्वारा गुह्यकाली पक्ष में उन वाक्यों का समन्वय कर लिया गया है। इस तरह निगम के साथ शाक्त आगम का विषयगत तथा प्रक्रियागत साम्य एवं समन्वय लक्ष्य करने योग्य है। यहाँ आचारांश में केवल साधारण संशोधन हुआ है। वैदिक परम्परा वेदमन्त्रों के उच्चारण का अधिकारी शूद्र को नहीं मानती है, ब्राह्मणों को भी स्नान आदि द्वारा शुचिता-सम्पादन के बाद ही यहाँ अधिकृत माना गया है। किन्तु महाकाल-संहिता में जिस किसी भी समय जिस किसी भी परिस्थिति में शूद्र तथा स्त्री को भी देवी की उपासना के प्रसंग में इन वैदिक मन्त्रों का अधिकारी स्पष्टतः प्रतिपादित किया गया है।[२]

द्वितीय उपासक रूप में इन्द्र आदि दश दिक्पाल तथा विविध देवयोनि विशेषों का उल्लेख है।[३] इन्होंने भी अद्वैत भाव से महावाक्यात्मक वैदिक मन्त्रों के जप द्वारा देवी की उपासना की है। वे महावाक्य निम्न निर्दिष्ट हैं—'तत्वमसि, तत्त्वमहमस्मि, अयमात्मा, सा तयाऽमृतः कैवल्यायोपतिष्ठते।' इसे 'भावनाख्य उपासना'[४] पद से परिभाषित किया गया है। पुनः इन देवताओं के द्वारा विहित 'क्रियाख्य उपासना'[५] का निर्देश भी किया गया है। इन उपासना मन्त्रों का स्वरूप भी वैदिक परम्परा से प्रभावित प्रतीत होता है। जैसे—'शक्तेर्जातः शिवः स्वयम् अन्ते लयमस्यामेष्यति। परमात्मनः समुत्पन्नो जीवात्मा जन्महेतवे लयमेष्यति तत्रान्ते। ओं हंसः सोऽहम्। जीवात्मनः प्रजातानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च लय-

---

१. त आद्योपासकास्तस्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। १।१३९।

२. त्रिकालमुच्चरच्छूद्रोऽपीदं मुच्येत किल्बिषैः। १।१६०।
तिष्ठन् पश्यन् हसन् जल्पन् स्वपन्नश्नन् पिबन् व्रजन्।
जपन्ननुक्षणमपि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १।१५८ ॥

३. इन्द्रश्चेन्दुश्च वायुश्च कुबेरो वरुणस्तथा।
तस्या उपासकाः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवोद्भवाः ॥ (१।१६४-१७१)

४. द्रष्टव्य, महाकालसंहिता गुह्यकालीखण्ड २।८८-९०।

५. द्रष्टव्य वही, २।१००-११३

मेष्यन्ति तत्रान्ते'। तथा—'अमृताद्बुत्थितं तीर्थमन्तेऽत्र लयमेष्यति।' इस तरह द्वितीय उपासक द्वारा देवी की दो प्रकारों की उपासना का विवरण यहाँ दिया गया है।

किसी-किसी साधक का कहना है कि उक्त क्रियाख्य एवं भावनाख्य उपासना से क्रमशः तान्त्रिक साधना के 'दिव्याचार' एवं 'वीराचार' की ओर संकेत किया गया है। क्योंकि दिव्याचार भावना प्रधान होता है और वीराचार क्रिया प्रधान। दोनों ही आचारों में गौण मुख्यभाव से भावना तथा क्रिया का समावेश अवश्य रहता है। किन्तु एक के प्राधान्य से आचार का नामकरण संगत होता है। यह विषय तान्त्रिक साधकों में प्रसिद्ध है। किन्तु सब इससे सहमत नहीं हो सकते हैं। क्योंकि सभी बातों को स्पष्ट कहने वाला संहिताकार आदिनाथ इसी दिव्याचार एवं वीराचार को क्यों रहस्य में रखेगा?

तृतीय उपासक से यहाँ मानव साधक अभिप्रेत हैं। वसिष्ठ, विश्वामित्र, दुर्वासा तथा च्यवन आदि विविध महर्षियों एवं भिन्न-भिन्न युगों के अनेक चक्रवर्ती राजाओं का उल्लेख यहाँ परवर्ती साधकों का प्रवर्तक होना है।[1] गुरु के प्रति अधिक श्रद्धा एवं इष्टदेवी के प्रति प्रचुर भक्ति रखने वाला व्यक्ति इस साधना का अधिकारी है। साथ ही अधिकारी भी तब ही इसमें प्रवृत्त हो सकता है, जब उसे गुरु की आज्ञा एवं उपासना-क्रम का उपदेश प्राप्त हो।[2] प्रमादवश शास्त्र देखकर या किसी से कुछ सुनकर या इनकी पूजा कहीं देखकर इस साधना में नहीं पड़ना चाहिये। इस तरह की भूल से व्यक्ति केवल स्वयं ही दुर्गति नहीं पाता है अपितु इसकी वंश-परम्परा नष्ट हो जाती है, महाकाल-संहिता की ऐसी कठोर आज्ञा है।[3] तृतीय उपासक रूप में जिन महर्षियों तथा राजाओं का यहाँ उल्लेख हुआ है, वे किस उद्देश्य से प्रवृत्त हुए थे तथा कैसे उन्हें साफल्य मिला, इसका निर्देश विनियोग और फलश्रुति रूप में कर दिया गया है। इससे इस उपासना की अविच्छिन्न परम्परा का परिचय मिलता है। इस तरह इसकी उत्कृष्टता का प्रतिपादन पश्चाद्भव साधकों का प्रवर्तक होता है।

ग—उपासना

दार्शनिकों ने जिसे निदिध्यासन कहा है प्रायः वही आगमों में उपासना पद से परिचित है। अविच्छिन्न स्मृति-प्रवाह रूप ध्यान अथवा तन्मयता ही उपासना की पराकाष्ठा है। इसे रामानुज-मतावलम्बी वैष्णव गण 'ध्रुवा स्मृति' कहते हैं। दैवी कृपा या भावना के प्रकर्ष से यही ध्यान, तन्मयता, ध्रुवास्मृति या उपासना दर्शन रूप में परिणत होकर इष्ट साक्षात्कार कराती है, जो साक्षात् मोक्ष का साधक है।

---

१. द्रष्टव्य वही, २।३०-३१

२. गुरूपदेशतो लब्धे जपन्यासार्चनादिके।
पश्चात् तत्साधयेत् सर्वं सदा तद्भावभावितः ॥ म० सं० बीजकोष ३।७॥

३. न शास्त्रमालोक्य वदेन्नाचरेन्न जपेदपि
न पश्येन्नोपदिश्याच्च न कुर्यान्नैव साधयेत्। ३।६। (वही)
यस्य कस्यापि नाख्येयमाख्याते ब्रह्महा भवेत्।
देवी क्रुद्धा च तं पापं सान्वयं पातयत्यधः॥ ३।५॥

यद्यपि आचार्य उदयन ने कुसुमाञ्जलि में मनन को उपासना कहा है, निदिध्यासन को नहीं—

'न्यायचर्चेयमीशस्य मननव्यपदेशभाक्।
उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता॥'[1]

तथापि मनन की प्रगाढ़ता ही निदिध्यासन का अन्तिम सोपान है। अतएव यहाँ किसी प्रकार के विरोध या असङ्गति का प्रसर नहीं है। तद्विषयक निरन्तर चिन्तन ही निदिध्यासन है जो उपासना में सर्वथा विद्यमान है।

इस उपासना में भी यहाँ कोटि का निर्देश हुआ है। उपासना की उत्तम कोटि है योग। वायु को रोक कर षट्चक्र के भेदन द्वारा स्वाधिष्ठान कुण्डलिनी तथा सहस्रार-सदाशिव का सामरस्य[2] पारस्परिक संयोग से यौगिक प्रक्रिया से विलक्षण उपासना होती है। इस खण्ड के शारीरयोगकथन नामक एकादश पटल में योग का सर्वाङ्ग पूर्ण विवेचन प्रस्तुत हुआ है। योग के अवतरण में कहा गया है कि कापालिक आदि तान्त्रिक गण ऐहिक सिद्धि की कामना से प्रत्यह पूजा में सुरा एवं मांस आदि देवी को अर्पित कर स्वयं प्रसाद रूप में लेते हैं। स्त्रियों के साथ सम्भोग में प्रवृत्त होते हैं तथा अपने स्वच्छन्द आचार-विचारों का पालन करते हैं। किन्तु इनकी प्रवृत्ति मोक्ष के लिये नहीं होती है।[3] कुछ साधक ऐसे भी हैं जो मोक्ष के लिये ही संकल्प लेकर साधना में प्रवृत्त होते हैं। अतएव वे संसार से विरक्त रहते हैं। तथा जो साधक न केवल ऐहिक सिद्धि को तृणवत् तुच्छ मानते हैं अपि तु स्वर्ग को भी कड़वे तुम्बीफल के समान हेय मानते हैं, वे योगाभ्यास द्वारा मोक्ष की ओर उन्मुख होते हैं।[4] वे जप, ध्यान, पूजा, बलि एवं स्तव आदि के पीछे नहीं पड़ते हैं। ब्रह्मा के मानस पुत्र

---

१. द्रष्टव्य, न्यायकुसुमांजलि ।१।३।

२. स्वाधिष्ठाने कुण्डलिनी सहस्रारे सदाशिवः ।
तयोर्यथासामरस्यं तत्पूर्वं ते मयोदितम् ॥६।१॥

३. देवि कापालिकाः कौला भाण्डिकेरा दिगम्बराः ।
मोलेया भैरवाध्वन्या वामाचारकराश्च ये ॥
तेषां नित्यार्चने बुद्धिरैहिकार्थधृतात्मनाम् ।
देव्यै दत्वा सुरां मांसं स्वयं समुपभुज्य च ॥
रममाणाः सह स्त्रीभिः स्वच्छन्दाचारचारिणः ।
साधयन्त्यैहिकानर्थान् सिद्धीरपि च काश्चन ॥
कामयाना ऐहिकार्थान् कुर्वते नामृते रतिम् ।

४. ये कैवल्ये कृतात्मानो विरक्ताः शुद्धबुद्धयः ।
ये सिद्धीरैहिकफलं तृणवद् गणयन्ति च ॥
येषां स्वर्गेऽपि देवेशि कटुतुम्बीफलाकृतिः ।
ते योगमेवाभ्यस्यन्ति नार्चाध्यानबलिस्तवान् ॥

एवं उनके कुलोद्भव अन्य ऋषिगण इसी कोटि के साधक हैं।[१]

इस योगाभ्यास का मुख्य फल है सांसारिक बन्धन से छुटकारा, पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों का क्षय तथा निर्मल ज्ञान का प्रकाश।[२] इन्हीं के बल पर साधक को मुक्ति मिलती है। आरोग्य, देह में सुगन्धि का आविर्भाव, चिरजीवित्व, सर्वज्ञत्व, आकाशचारित्व, इच्छानुकूल रूप प्राप्ति, दूरदर्शिता, दूरश्रोतृता तथा विविध सिद्धियों[३] की प्राप्ति इसके गौण फल माने गये हैं।[४] इस संहिता में योग की सारी विधियाँ—क्रमयोग, हठयोग, प्राणायाम तथा योगासन आदि वर्णित हुई हैं।[५] इस प्रसंग के उपसंहार में आदिनाथ कहते हैं कि त्रिकालज्ञ तथा सर्वान्तर्यामी त्रिपुरघ्न ने विषयों में आसक्त मनुष्यों का हार्दिक अभिप्राय समझ कर न्यास, जप, बलि एवं पूजा आदि के साथ मांस-भोजन, सुरा-पान तथा सुन्दरी-सहवास का वर्णन किया है।[६] क्योंकि स्वेच्छाचारी मानव परिष्कृत वैदिक

---

१. ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा ये तेषां च कुलोद्भवाः।
ब्रह्मर्षयस्तपोनिष्ठाः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः॥
तेऽन्यान् प्रकारान् संत्यज्य योगाभ्यासं प्रचक्रिरे।

२. योगेन भवबन्धोऽयं विनाशमुपगच्छति।
कर्माणि क्षयमायान्ति पूर्वजन्मकृतान्यपि॥
ज्ञानं प्रकाशतेऽत्यर्थं शुद्धं यद्दोषवर्जितम्।
ज्ञानयोगबलादेव भवेन्मुक्तिर्नचान्यथा॥
फलमुक्तं मुख्यमस्य।

३. अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य तथा यत्रकामावसायित्व ये आठ सिद्धियाँ योगशास्त्र में प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त आठ उपसिद्धियाँ - अञ्जन, गुटिका, पादुका, धातुवाद, खड्ग, बेताल, यक्षिणी तथा खेचरी सिद्धियाँ एवं स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, विद्वेषण, क्षोभण तथा आकर्षण—ये आठ प्राकृत सिद्धियाँ भी इस प्रसंग में परिग्राह्य हैं।

४. ·········· वक्ष्ये गौणमतः परम्।
आरोग्यं देहसौगन्ध्यं चिरजीवित्वमेव च॥
सर्वज्ञत्वं खेचरत्वं कामरूपित्वमेव च।
जायते दूरदर्शित्वं दूरश्रोतृत्वमेव च॥
अणुत्वं च महत्त्वं च शरीरस्य निजेच्छया। (११ पटल)

५. क्रमयोगो हठयोगः प्राणायामविधिस्तथा।
आसनानां च सर्वेषां विधानमुपवर्णितम्॥ (पटल ११)

६. त्रैकालिकज्ञानशाली त्रिपुरघ्नो जगत्पतिः।
चतुर्युगाचारधर्ता सर्वान्तर्याम्यधीश्वरः॥
ज्ञात्वा हार्दमभिप्रायं लोकानां विषयैषिणाम्।
न्यासपूजाजपबलिप्रभृतीनुक्तवान् परः॥
कामकेलिः सह स्त्रीभिर्यत्रमांससुराशनम्॥ (पटल ११)

आचार में संकोच करने की प्रवृत्ति से अभिभूत रहता है। इस तरह के लोगों के लिये यौगिक प्रक्रिया का अवलम्बन दुष्कर ही नहीं कभी-कभी असाध्य भी कहा जाना अनुचित नहीं है।[१] अतएव करुणा वश भगवान शिव ने दोनों ही (भोग तथा योग) मार्गों को दिखाया है। जिसको जिस मार्ग के अवलम्बन की इच्छा हो वह उस रास्ता पर चले।[२]

उत्कट चंचल एवं क्रियाशील मन निरन्तर सांसारिक विषयों के साथ अपना घनिष्ठतम सम्बन्ध बना कर स्वच्छन्दता से जहाँ कहीं भी विचरण के लिये प्रस्तुत रहता है। अतएव ऋषियों ने बन्ध तथा मोक्ष के हेतु रूप में इसी के ऊपर बल दिया है—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'। इस मन को एकाग्र तथा निश्चल बनाकर केवल इष्ट देवी की ओर निरन्तर उन्मुख रखना एवं उन्हीं की अनुचिन्तना मे अपने को अर्पित कर देना ध्यान या मानसिक पूजा है। इसे उपासना की दूसरी कोटि कहा गया है। इसमें देवी के स्वरूप-ध्यान का नैरन्तर्य रहता है।

उत्तम और मध्यम कोटि की उपासना का सोपान होने के कारण 'पूजा' अधम कोटि की उपासना है। इस तरह स्थूल दृष्टि से उपासना के तीन प्रकार है—योग, ध्यान और पूजा। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि प्रथम पटल में इस प्रसंग में कहा गया है कि देवी के ध्यान (अर्थात् स्वरूप का परिचय) तीन प्रकार के उपलब्ध हैं—'निराकार ध्यान, विराट् रूप ध्यान एवं साकार ध्यान। उपासक का त्रैविध्य यथावसर यहाँ पहले ही प्रतिपादित हो चुका है। सपर्या (पूजा) का त्रैविध्य--योग, मानस पूजा तथा प्रतिमा या यन्त्र की पूजा है। पूजा के विधान भी तीन प्रकार के हैं—नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य। और इन सभी विधियों के निश्चायक उपासना की पद्धति अथवा उपासक का आचार भी तीन है—वैदिक, पौराणिक एवं आगमिक। प्रस्तुत प्रसंग में शाक्त आगमिक या तान्त्रिक निश्चायक विवक्षित है। यद्यपि मूल में निश्चायक के लिये 'निश्चय पद का प्रयोग हुआ है। किन्तु उसे लाक्षणिक मानना चाहिये। जैसे आयुर्वै घृतम्' प्रयोग आयुवर्द्धक घृत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी तरह निश्चायक अर्थ के लिये निश्चय पद का प्रयोग संगत होता है। कारण अर्थ के प्रतिपादनार्थ कार्य रूप अर्थ के वाचक पद का प्रयोग अनेकशः देखा गया है। इस तरह—

ध्यानं च त्रिविधं तस्याः सपर्या च त्रिधा मता।
विधानं त्रिविधं चैव निश्चयश्च त्रिधा मतः ॥१।१३७॥ सङ्गत होता है।

---

१. आचारस्य च सङ्कोचः स्वेच्छाचारित्वमेव च।
प्ररोचनातया सर्वं वर्तिष्यन्नीदृशेऽध्वनि।
दुष्करत्वादसाध्यत्वाद् योगं तदनु वै जगौ ॥ (११ पटल)

२. वर्त्मद्वयं भगवता दर्शितं करुणावशात्।
यस्येच्छा वर्तते यत्र स तत्र रमतां सुखम् ॥ (११ पटल)

६.—इस संहिता का वैशिष्ट्य

तान्त्रिक उपासना की चर्चा होते ही साधारणतः जिज्ञासा होती है कि इसमें सुरा, सुन्दरी और प्राणिवध का विधान कैसे सङ्गत होता है ?

ताराभक्तिसुधार्णव के षष्ठ तरंग के उपसंहार में आगम-प्रामाण्य के प्रसंग मे मैथिल साधक नरसिंह ठाकुर ने इन तीनों ही मुद्दों की वैदिक मूलकता शिष्टाचार शुद्धता तथा आगमानुसार परिष्कृत वैधता प्रतिपादित की है। सौत्रामणि एवं वाजपेय यज्ञों में होता के लिये सुरापान की वैधता, आश्वलायनभाष्य में पुंश्चली ब्रह्मचारी समागम का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद के आदि में वामदेवी उपासना में पर कलत्र ग्रहण परक मन्त्रों का उल्लेख एवं अश्वमेघ एवं गोमेध आदि यज्ञ में पशुमारण आदि का विधान यहाँ उल्लिखित हुआ है।

तन्त्रालोक में प्राचीन आगमाचार्य अभिनवगुप्त ने इसका प्रतिबन्दी उत्तर देते हुए कहा है किसी भी वस्तु के औचित्य का निर्णय उसके उपयोग पर निर्भर है। वस्तु का गुण या दोप उपयोगाधीन है स्वाधीन नहीं। इसीलिये सौत्रमणि यज्ञ में 'होता' के लिये सुरापान वैध होकर भी सर्वत्र दूसरों के लिये अवैध एवं निन्द्य माना गया है। इसी तरह मत्स्य और मांस का भक्षण अर्थात् जीवहिंसा वैदिक यज्ञ और तान्त्रिक पूजा में विहित एव पुण्य-जनक होकर भी अन्यत्र पाप का जनक होता है। सारांश यह कि एक ही वस्तु में उप-योग भेद से गुण अथवा दोष होता है, जिसके आधार पर लोक-व्यवहार में उसक औचित्य या अनौचित्य का विचार है। इसी युक्ति के आधार पर जो वस्तु लोक-व्यवहार मे तथा धर्मशास्त्र में निन्द्य कही गयी है, वही वस्तु शाक्ततन्त्र में वीर साधक के लिये प्रशस्त है।[1] जैसे लोक-व्यवहार में छुरा का उपयोग डाक्टर द्वारा जीवनदान के लिये किया जाता है और डकैतों द्वारा वह वध के लिये देखा गया है। शैवाचार्य अभिनवगुप्त की इस युक्ति के

---

१. यदि वा वस्तुधर्मोऽपि मात्रापेक्षानिबन्धनः।
सौत्रामण्यां सुरा होतुः शुद्धाऽन्यस्य विपर्ययः॥
भक्ष्यादिविधयोऽप्येवं न्यायमाश्रित्य चर्चिताः।
सर्वज्ञानोत्तरादौ च भाषते स्म महेश्वरः॥
लोकसंरक्षणार्थं तु तत्तत्त्वं तैः प्रगोपितम्।
बहिः सत्स्वपि भावेषु शुद्ध्यशुद्धी न नीलवत्॥
यद्द्रव्यं लोकविद्विष्टं यच्च शास्त्रबहिष्कृतम्।
युज्जुगुप्स्यं च निन्द्यं च वीरैराहार्यमेव तत्॥ तन्त्रालोक भाग ३।

तुलनीय—महाकालसंहिता गुह्यकालीखण्ड के द्वादश पटल की अधोनिर्दिष्ट पंक्तियां
आलभेत वृषं श्वेतं यज्ञे गोमेधनामनि।
× × × ×
अश्वमेधे तथैवाश्वं शङ्खचूड़े च हस्तिनम्।
ब्रवीति यत्र वेदोऽपि तत्र कैव विचारणा॥

औचित्य की रक्षा में ज्ञानार्णवतन्त्र एक क़दम और बढ़कर कहता है कि किसी आचरण का निन्द्य या प्रशस्त होना कर्ता की वासना पर निर्भर है। शुभ वासना से किया गया आचरण प्रशस्य तथा पुण्यप्रद होता है। जन्म के समय नंगे शरीर के निर्गत होने से मातृयोनि से शिशु के शिश्न का स्पर्श पाप का जनक नहीं होता है। किन्तु वही शिशु तरुण अवस्था में कामवासना से अभिभूत होकर मातृगमन रूप अतिपातक न कर बैठे इसके लिये धर्मशास्त्र में कहा है कि मां के साथ बेटा को एक आसन पर नहीं बैठना चाहिये। बलवान इन्द्रियों का कोई भरोसा नहीं है। ये जानकार लोगों को भी गिरा देती हैं। अर्थात् काम के तीव्र वेग में विवेकी व्यक्ति भी अगम्यागमन कर बैठता है।[१]

कुलार्णव तन्त्र में भी इन्हीं बातों को दुहराया गया है। यहाँ कहाँ गया है कि पितृ-कर्म, देवपूजा तथा यज्ञ आदि के अवसर पर किया गया प्राणिबध वैध है अर्थात् वह अधर्म का जनक नहीं होता है। अन्यथा (स्वार्थवश) किया गया वही पाप का जनक अवश्य होता है। जहाँ अकारणं तृण का छेदन भी निषिद्ध है उस स्थल में प्राणिवध की तो वात ही नहीं उठती। कौल दर्शन में भैरव ने प्रतिपादित किया है कि जिसके उपयोग से वैदिक रीति में पाप होता है, वही इस मार्ग में सिद्धि के लिये विहित होने से पुण्यप्रद माना गया है। सारांश यह कि शास्त्रीय रीति से देवता और पितर की आराधना करके गुरु का स्मरण करता हुआ साधक यदि सुरापान एवं प्राणि वध पूर्वक मांसभक्षण में प्रवृत्त होता है, तो वह कदापि पाप का भागी नहीं होगा।[२]

पूजा में देवीबुद्धि से परस्त्री के साथ सम्भोग, बलि के लिये पशु की हिंसा तथा मदिरा-पान पाप का जनक नहीं होता है। किन्तु स्वेच्छा से अपनी वासना के तृप्त्यर्थं इन कर्मों में प्रवृत्त व्यक्ति अवश्य पातकी माना जायेगा। इस वासना का मूल है मन। अतएव कहा गया है—

---

१. मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ मनुस्मृति ॥

२. पितृदेवतयज्ञेषु वैधहिंसा विधीयते।
आत्मार्थं प्राणिनां हिंसा कदाचिन्नोदिता प्रिये ॥ ५।४५ ॥ (कुलार्णवतन्त्र)
अनिमित्तं तृणं वापि छेदयेन्न कदाचन।
देवतार्थं द्विजार्थं वा हत्वा पापैर्न लिप्यते ॥ ५।४६ ॥
मामनादृत्य यत्पुण्यं पापं स्यात् प्रतिभाषतः।
मन्निमित्तं चरेत् पापं पुण्यं भवति शाम्भवि ॥ ५।४७ ॥
यैरेव पतनं द्रव्यैः सिद्धिस्तैरेव चोदिता।
श्रीकौलदर्शने चापि भैरवेण महात्मना ॥ ५।४८ ॥
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य देवि शास्त्रोक्तवर्त्मना।
गुरुं स्मरन् पिबन् मद्यं खादन् मांसं न दोषभाक् ॥ ५।८५ ॥

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'।
मनसैव कृतं पापं न शरीरकृतं कृतम्।
यैरेवालिङ्गिता कान्ता तैरेवालिङ्गिता सुता ॥

साधक के लिये मनोनिग्रह आवश्यक एवं अनिवार्य है। यह साधारण साधक के लिये कठिन ही नहीं, कभी-कभी असम्भव प्रतीत होने लगता है। गुरु मनोनिग्रह का अभ्यास करा कर शिष्य को साधना में प्रवेश कराता है। अतएव गुरु की आज्ञा के विना साधना के लिये उद्यत होना निषिद्ध है। शास्त्र पढ़कर या किसी साधक की साधना देखकर इसमें नहीं पड़ना चाहिये। अन्यथा उसको अनिष्ट फल का भोग करना पड़ता है। और गुरु का उपदेश पाकर जप, पूजा तथा न्यास आदि में प्रवृत्त साधक सिद्धि का भागी होता है।[1]

इस प्रसंग में इस संहिता की अपनी मान्यता लोकरुचि के अनुकूल, वैदिक आचार के साथ शाक्त परम्परा के समन्वय को देखती हुई अधिक व्यवहारिक है। मद्यपान, परस्त्री सम्भोग तथा जीवहिंसा के प्रसंग में संहिताकार ने तीन प्रकार से समाधान किया है। आगम के प्रति आस्थावान् इस संहिताकार का प्रथम समाधान है कि इस तरह के विधान का रहस्य अज्ञात है। इतना ही कहा जा सकता है कि देवी का ऐसा स्वभाव है कि इन विधानों से वह अधिक सन्तुष्ट होती हैं। अतएव राजाज्ञा की तरह इन विधानों में विचार के बिना ही प्रवृत्त होना चाहिये।[2] फलतः देवी की पूजा में किये गये पशुमारण आदि कर्म पुण्य के ही जनक होते हैं। वही यदि स्वार्थवश किया जाये तो उससे नरक अवश्य प्राप्त होता है। जैसे यज्ञ में पशुहिंसा पाप का जनक नहीं होती उसी प्रकार देवी की पूजा में पर-स्त्री के साथ सम्भोग भी पाप का हेतु नहीं माना जा सकता है।

इसका दूसरा समाधान यह है कि शीघ्र सिद्धि पाने के लिये शूद्र को इन आचरणों का अधिकार है, द्विज को नहीं। इसी उद्देश्य से आगमों में इन आचरणों का वर्णन हुआ है।[3] इसके तृतीय समाधान में इन्होंने विधान का संशोधन किया है। बारह प्रकार के मद्य के स्थान में उसके अनुकल्प रूप में इतने ही प्रकारों के उपमद्य का निर्देश किया गया है।[4]

---

१. न शास्त्रमालोक्य वदेन्नाचरेन्न जपेदपि।

२. परस्त्रीसङ्गमो मद्योपसेवा प्राणिमारणम्।
स्वार्थं चेन्नरकायैव देवार्थं सुकृताय हि ॥
को हेतुर्नैव जानामि देवीप्रीतिकरा इमे।
राजाज्ञेवाप्रणोद्येयं सैव ब्रूते सनातनी ॥
न पापजनकं यादृक् यज्ञार्थं पशुघातनम्।
न किल्विषकरस्तादृक् परस्त्रीसङ्गमादिकः ॥ पटल १० ॥

३. श्रूयते यत् फलाधिक्यं तन्त्रादौ मद्यदानतः।
तद्धि शूद्रपरं ज्ञेयं नैव द्विजपरं प्रिये ॥ ६।४१९ ॥

४. उपमद्यानि चैतानि द्वादश स्युर्वरानने।
द्विजो दित्सति चेन्मद्यं दद्यादेतानि नो सुराम् ॥
पातित्यं किन्तु नामीभिस्तैरेव पतितो भवेत्। ६।४४०-४१ ।

इन उपमद्यों के अर्पण से पाप नहीं होता है न साधक को मादक द्रव्य सेवन जन्य उत्तेजना ही होती है। ककड़ी, कूष्माण्ड तथा आम आदि फल अथवा शालिचूर्ण (चावल का आटा) या दुग्धपिण्ड (खोआ मक्खन) से देय बलि पशु का निर्माण कर अर्पित करने से हिंसा-जन्य दोष से बचते हुए आगमीय रीति का परिपालन सुलभ है।[1] सगे-सम्बन्धी से भिन्न सुन्दरी के साथ देवी बुद्धि से पूजा के समय सम्भोग करने से अथवा उसकी पूजा करने से साक्षात् शास्त्रीय विचार का अथवा लोकाचार का उल्लंघन नहीं होता है।[2] सबसे अधिक बचाव तो यह है कि दिन में संपाद्य सात्विक पूजा में ही द्विज का अधिकार है रात्रि-पूजा में नहीं।[3] विशेष कर शाक्तपूजा का अनधिकारी स्मार्त वैदिक तथा शैव को कहा गया है। और इन आचरणों का विधान निशीथ पूजा में किया गया है, दिवा पूजा में नहीं। अतएव लोकाचार और वैदिक विचार से इस संहिताकार का सर्वथा समन्वय प्रशंसनीय है। परवर्ती तान्त्रिक ग्रन्थों में इस आशय की पुष्टि सप्रमाण की गयी है। जैसे ताराभक्तिसुधार्णव में नरसिंह ठाकुर ने किसी तान्त्रिक ग्रन्थ के वचन का उद्धरण देकर कहा है कि वामाचारी ब्राह्मण साधक को भी मद्य, मांस एवं मैथुन से सर्वथा परहेज रखना चाहिये—

वामागमोऽपि विप्रस्तु मद्यं मांसं न भक्षयेत्।
स्वकीयां परकीयां वा नाकृष्य ब्राह्मणो यजेत्॥

इसी तरह पुरश्चर्यार्णव के प्रथम तरंग में भी महाकालसंहिता एवं तन्त्र के इस आशय के वचन उद्धृत हुए हैं।

यद्यपि जहाँ कहीं भी अवसर मिला है, इन्होंने पूर्व प्रचलित इन तान्त्रिक आचरणों की जमकर निन्दा की है। अतएव इनका हार्दिक अभिप्राय तो कौल आचरण के विरोध में ही प्रतीत होता है। तथापि आगम-रीति की साधना के एक सम्प्रदाय का प्रवर्तक हठात् अपने को आगमीय मत से सर्वथा पृथक् कैसे कर लेते !

बलि के लिये पशु हिंसा के प्रसंग में संहिताकार ने एक रोचक कथा प्रस्तुत की है। देवता और ऋषियों में विवाद हुआ कि बलि किससे सम्पन्न हो, फलमूल से या छाग आदि पशु से ? ऋषि-गण सात्विक स्वभाव के कारण फलमूल के पक्षपाती थे और देवगण हिंसा-

---

१. इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्।
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम्॥
तत्तत्फलविशेषेण तत्तत्पशुमुपानयेत्।
कूष्माण्डं महिषत्वेन छागत्वेन च कर्कटीम्॥ म० सं० कामकला खण्ड पृ० ४२।

२. स्मृत्यध्वसञ्चरिष्णूनां योग्यायोग्यत्वमस्ति हि।

३. द्विजादीनां तु सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते।
शूद्राणां तु तथा प्रोक्तं रात्रिदृष्टं महामतम्॥ म० सं० कामकला खण्ड पृ० १९।

× × × ×

शैवाः स्मार्ताः याज्ञिकाश्च तां न कुर्वन्ति पार्वति।
म० सं० गुह्यकाली खण्ड १०।१६६३।

प्रिय होने से पशु-वध द्वारा इस विधि का सम्पादन चाहते थे। विवाद के निर्णय के लिये दोनों ही पक्ष तात्कालिक चक्रवर्ती राजा 'वसु' के निकट पहुँचे। वसु महाराज स्वयं सात्विक वृत्ति से रहते थे। अतएव इन्होंने ऋषियों के पक्ष में अपना निर्णय सुनाया और हिंसाजन्य पाप से असंस्पृष्ट होने को युक्ति रूप में प्रस्तुत किया। इसकी प्रतिक्रिया में क्रुद्ध होकर देवगण ने इनको तत्क्षण से पाताल में रहने का अभिशाप दिया। उस दिन से वसु महाराज पाताल में रहने लगे। पश्चात् दोनों पक्षों में किसी तरह समझौता होने पर यह निर्णय हुआ कि मृत्युलोक में जिसे जिस पक्ष में रुचि हो तदनुसार कार्य सम्पादन करे और पातालवासी महाराज वसु को प्रत्येक यज्ञ में हिस्सा मिलना चाहिये। उसी दिन से यज्ञ के आदि में 'वसोर्धारा' देने की प्रथा चली, जो आज भी प्रचलित है। इतना ही नहीं, यहाँ कहा गया है कि यज्ञों में गोमेध तथा अश्वमेध आदि का प्राशस्त्य देवगण की हिंसा-प्रियता का परिचायक है। यही कारण है कि पशु को 'देवानां प्रियः' कहा गया है। पश्चात् उपसंहार में संहिताकार ने कहा है कि विना प्राणिवध का फल मूल द्वारा बलिकर्म का सम्पादन उत्तम कल्प है। सात्विक स्वभाव वाले ब्राह्मण के लिये जीवहिंसा का निषेध यहाँ स्पष्टतः किया गया है — 'ब्राह्मणो जीवहत्यां हि कदाचिदपि नाचरेत्।'[1] राजस एवं तामस स्वभाव वाले क्षत्रिय एवं शूद्र के लिये जीवहिंसा में वैकल्पिक अधिकार है।[2] इस कथा से स्पष्टतः सिद्ध होता है कि संहिताकार ने जीवहिंसा के विरोध में अपना अभिमत व्यक्त किया है। इस कथा के सम्बन्ध में तथा वसोर्धारा के साथ 'वसु' महाराज के सम्बन्ध में भले ही किसी वेद विद्वान को विश्वास न हो किन्तु इस संहिताकार के सात्विक आचरण में पक्षपात का साक्षी यह कथा अवश्य मानी जा सकती है।

इसी तरह शक्तिपूजा का सर्वाङ्गपूर्ण विवरण तथा औचित्य इस संहिता में उपलब्ध है। यद्यपि इसके बिना कोटिकल्प तक जप करने पर भी मन्त्र के नहीं सिद्ध होने की बात कही गयी है।[3] इससे साधना में इसका माहात्म्य और अनिवार्य आवश्यकता सिद्ध होती है। तथापि इस संप्रदाय में प्रत्येक साधक इसका अधिकारी नहीं माना गया है। वैदिक आचार-विचार में निष्ठावान् याज्ञिक, स्मृतियों का अनुसरण करने वाला स्मार्त और शिव को इष्ट मानने वाले आगम के अनुगामी शैव को शक्तिपूजा का अधिकार नहीं है।[4] संन्यासी के लिए विशेष रूप से इस पूजा को वर्ज्य कहा गया है।[5] केवल कुलमार्ग के अनुगामी शाक्त को इस पूजा का अधिकार है।[6] वस्तुतः इष्टदेवी समझकर शक्ति (सुन्दरी स्त्री) की पूजा का विधान

---

१. द्रष्टव्य महाकाल संहिता कामकला खण्ड पृ० ४२

२. वही पृ० ६७

३. न साधकं विना नार्या न पुंसः साधिकामृते।
मन्त्राः सिद्ध्यन्ति देवेशि कल्पकोटिशतैरपि॥ गुह्यकाली खण्ड १०।१६७५।

४. शैवाः स्मार्ताः याज्ञिकाश्च तां न कुर्वन्ति पार्वति। वही १०।१६६३।

५. चतुर्थाश्रमिणो मुक्त्वा ये काल्यर्चनतत्पराः। वही १०।१६६७।

६. कौलानामागमज्ञानां तान्त्रिकाचारवर्तिनाम्।
अनुकल्पप्रदातॄणां मध्यस्थानां तथैव च॥ वही १०।१६६४।

है। अतएव शाक्त भी पूजा के व्याज से यदि कामातुर होकर किसी सुन्दरी के साथ संभोग करना चाहेगा तो वह पाप का भागी अवश्य होगा।[१] रुचिवैचित्र्य या भक्ति के अतिरेक से यदि किसी स्मार्त को शक्तिपूजा करने की उत्कट इच्छा हो तो वह इस संहिता में शक्तिरूप में परिगणित महिलाओं में से किसी को लेकर अपनी पूजा संपन्न कर सकता है। शाक्त के लिए नित्य पूजा में भी शक्तिपूजा की अनिवार्यता है। किन्तु स्मार्त के लिए नैमित्तिक या काम्य पूजा में ही वह विहित है। अभिप्राय यह कि तुष्यतु-दुर्जन-न्याय से यहाँ स्मार्त की प्रवृत्ति उपपन्न होती है। आगम-प्रतिपाद्य होने से किसी साधक को साक्षात् इसका निषेध कैसे बताया जा सकता है। वस्तुतः इसमें संहिताकार की अरुचि है। अतएव साधक विशेष को ही अधिकारी कहकर साधारण साधक को इससे विरत रहने का संकेत स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस संहिता के कामकला-खण्ड में स्पष्ट निर्देश है कि द्विज इस पूजा का सर्वथा अनधिकारी है—

'स्वयोषां परयोषां वा नैवाकृष्य द्विजो जपेत्[२]।'

मदिरा के प्रसंग में प्रस्तुत खण्ड के छठें पटल में विस्तार से विचार हुआ है। सर्वसाधारण साधक को इसके अर्पण का अधिकार नहीं है। गायत्री और यज्ञोपवीत के धारक ब्राह्मण के लिए किसी परिस्थिति में मदिरा का स्पर्श भी विहित नहीं है। संहिताकार का कथ्य है कि इस संसार में एक से एक उत्तम वस्तु विद्यमान है, जिसके अर्पण से देवी को प्रसन्न किया जा सकता है। इस स्थिति में उन वस्तुओं को छोड़कर कदन्न के मलरूप इस मदिरा के अर्पण में क्या तुक है। मदिरा और मांस तो भूत, प्रेत तथा पिशाच के लिए हैं। अतएव ब्राह्मण को चाहिए कि इन वस्तुओं को न स्वयं ग्रहण करें, न देवी को ही अर्पित करें। इस तरह के वस्तुओं के अर्पण से देवी उद्विग्ना हो जाती हैं तथा साधक से घृणा करने लगती हैं। वह सोचती हैं कि जिसने मद्य एवं मांस के उपयोग से परलोक, इहलोक, वेद, धर्म, जाति, कुल आदि अपना सब कुछ नष्ट कर चुका है, वह इनके अर्पण से मेरा भी सत्यानाश अवश्य करेगा। सिद्ध तथा शुष्क अन्न के दुर्गन्धपूर्ण द्रव रूप मद्य को जो व्यक्ति अमृत समझ कर पीता है, वह विष्ठा की स्पृहा क्यों नहीं करता है। इस तरह की उक्ति द्वारा संहिताकार ने वस्तुतः मदिरापायी कि निन्दा ही की है। पुनः आगे देवी कहती हैं कि सात्त्विक पदार्थ कन्द, मूल, फल, फूल तथा पत्तों से अथवा इन वस्तुओं के अभाव में केवल भक्तिपूर्वक जल देने से जब मैं सन्तुष्ट होती हूँ, तो पुनः इन अस्पृश्य पदार्थों का अर्पण साधक क्यों करता है? देवी की स्पष्ट उक्ति है कि सात्त्विक पदार्थों के अर्पण से वह जितना अधिक तृप्त होती है उतना मद्य या मांस के विविध प्रकारों के अर्पण से नहीं। अपनी तपस्या के प्रभाव से इन्द्र को भी स्वर्ग के सिंहासन से गिराने में समर्थ वसिष्ठ तथा विश्वामित्र आदि ऋषियों ने कभी भी मदिरा का अर्पण नहीं किया। इन ऋषियों को मदिरा के सारे दोष ज्ञात थे। अतएव वे इसे पाप का जनक और निन्द्य समझते थे। मद्य न केवल निन्द्य

---

१. कालीबुद्ध्या च सम्पूज्या न कामाकुलया धिया। वही १०।१६६६।

२. द्रष्टव्य महाकालसंहिता कामकलाखण्ड पृ० ४३।

है अपि तु घृणित, पातित्य का कारण, परलोक का विनाशक, नरक का हेतु, ब्राह्मणत्व का नाशक, तथा म्लेच्छ तुल्य बनानेवाला होता है। श्रुति के अनुगामी ऋषियों ने इसका सर्वथा परित्याग किया है। यदि मद्य में दोष नहीं रहता और वह धर्म का जनक होता तो ऋषिगण अर्पण करते। सारांश यह कि धर्म की ऐसी व्यवस्था को मानकर द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) देवी को मद्य का अर्पण नहीं करें—उनकी ऐसी आज्ञा है। देवी कहती हैं कि जो साधक मेरे इस वचन का अनादर कर शास्त्र की व्यवस्था नहीं मानते हुए मोह वश या लोभ से मेरी पूजा में मद्य का व्यवहार करेगा वह धर्मराज के निकट अवश्य दण्डित होगा। इसलिए द्विज को पूजा में मद्य का व्यवहार कथमपि नहीं करना चाहिए। इस प्रसङ्ग में संहिताकार ने निर्णय देते हुए कहा है कि शूद्र एकान्त में देवी को मद्य अर्पित कर स्वयं महाप्रसाद रूप में उसका ग्रहण कर सकता है। शूद्र के मद्यार्पण से देवी काली सद्यः उस पर प्रसन्न होती हैं। द्विजों के लिए मद्यदान की जितनी निन्दा हुई है उतनी ही अधिक प्रशस्ति शूद्र द्वारा मद्यार्पण होने से समझनी चाहिए। संहिताकार ने स्पष्ट कहा है कि तान्त्रिक ग्रन्थों में मद्यदान के माहात्म्य का कीर्तन शूद्रपरक है, द्विजपरक नहीं। क्योंकि यह वैदिक नियम है कि स्वयं साधक जिस अन्न का ग्रहण करेगा उसके इष्टदेव और पितर उसी अन्न का ग्रहण करते हैं। पुनश्च भक्ति के आधिक्य से या रुचि के वैचित्र्य के कारण यदि मद्यार्पण में द्विज की उत्कट इच्छा हो तो वह इसके अनुकल्प उपमद्य के अर्पण का अधिकारी है। यथा गुड़ और अदरख का बराबर हिस्सा मिलाने से तथा कांसा के बर्तन में नारियल का जल रखने से उपमद्य बन जाता है। इस तरह द्वादशविध मद्यों के अनुकल्प यहाँ वर्णित हैं। यद्यपि धर्मभीरु साधक को इसका अर्पण भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि मद्य हो या उपमद्य, मद्य का नाम तो जाता नहीं है। तथापि दोनों में भेद भी है। अतएव मद्य के स्पर्श से पाप होता है और इसके अर्पण से भी पाप नहीं होता है।[1]

प्रस्तुत खण्ड का प्रतिपाद्य

महाकाल संहिता के गुह्यकाली खण्ड का प्रथम भाग यहाँ प्रथम पटल से नवम पटल पर्यन्त प्रस्तुत है। प्रथम पटल में पञ्चाकारा (अनाख्या, भासा, सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूपा) भगवती के पाँच ध्यान वर्णित हैं। अनाख्या (निराकार) रूपा का ध्यान औपनिषदिक ब्रह्म के स्वरूप के समान ही वर्णित हुआ है जो अथर्वगुह्योपनिषत् में द्रष्टव्य है। भासा रूपा देवी का ध्यान भागवत में उपलब्ध भगवान विष्णु के विराट् ध्यान का साम्य रखता है। सृष्टि रूपा के ध्यान में पहले देवी के ही प्रभाव से आविर्भूत रक्त समुद्र के मध्य रक्त-बालुकामय द्वीप की कल्पना होती है, जो रक्त मांस आदि से परिपूरित है। उस द्वीप में अयुत योजन विस्तृत मण्डल की कल्पना होती है। उस मण्डल में शत योजन विस्तृत भयङ्कर श्मशान है, जहाँ नरमुण्डों का तोरण लगा हुआ है। उसके अन्दर एक रत्न सिंहासन है। इस सिंहासन के चार कोणों को चारों वेद एवं चारों युग धारण किए हुए हैं। उसके ऊपर एक सिंहासन है, जिसका धारण आठ दिक्पालों ने किया है। इसके ऊपर भी एक सिंहासन है।

---

१. महाकालसंहिता गुह्यकालीखण्ड ६।३७८-४४२।

इसका धारण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव रूप पञ्च प्रेत द्वारा हुआ है। इसके ऊपर भी एक चौथा सिंहासन है, जिसे आठ भैरवों ने धारण किया है। इसके ऊपर षोडश दल कमल है। इसके दल षोडश प्रकार के यज्ञों से बने है। इसके ऊपर शिव का ही आसन बना हुआ है। इसके ऊपर अष्टदल कमल है जिसके दल धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश, विवेक, काम तथा मोक्ष के हैं। इस पर स्निग्ध श्यामला भगवती दशमुखी गुह्यकाली विराजमान हैं। इनकी सत्ताइस आँखे हैं। वाम, दक्षिण तथा सम्मुख में दो-दो आँखें हैं तथा अन्य सात मुखों में तीन-तीन आँखें हैं। द्वीपी के समान ऊर्ध्व मुख है, इसके नीचे श्वेत सिंह का मुख है उसके नीचे कृष्ण शृगाल का मुख है, इसके वाम भाग में लालवर्ण वानर का मुख है, दक्षिण भाग में काला भालू का मुख है, इसके नीचे किर्मीर वर्ण का मानव मुख है, इसके वाम भाग में पिङ्ग वर्ण का गरुड़ का मुख है तथा दक्षिण भाग में मगर का हरितवर्ण मुख है, इसके वाम भाग में हाथी का गौर वर्ण मुख तथा दक्षिण भाग में काले वर्ण का घोड़ा का मुख विराजमान है। घोर अट्टहास करती हुई हमेशा मूखों को कँपाती हुई भ्रूभङ्ग द्वारा आकृति को टेढ़ी करती हुई, जटाजूट एवं अर्धचन्द्र धारण करने वाली, रुधिर टपकते हुए नर मुण्डों की माला पहनी हुई, विशाल सघन एवं लम्बे बालों को पैरों तक लटकाती हुई भगवती हमेशा योगिनीयों के साथ श्मशान में घूमती रहती हैं। इनकी चौवन भुजाओं में विविध अस्त्र-शस्त्र विराजमान हैं। इसी तरह की आकृति स्थिति एवं संहार ध्यान में भी कल्पित की गयी हैं। साधारण अन्तर यह है कि जहाँ जगत्-संहारकारिणी संहाराकारा भगवती कही गयी हैं वहाँ स्थितिस्वरूपा भगवती नृत्यमाना सदोदिता होती है तथा सृष्टि रूपा भगवती प्रजा सृष्टि कर्त्री होती हैं।

यद्यपि पञ्चम पटल के उपसंहार में कहा गया है कि भीमातन्त्र और वामकेश्वर संहिता में ध्यान का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। कपालडामरतन्त्र, कालानल तन्त्र एव शाबर तन्त्र में इसका साङ्गोपाङ्ग स्वरूप उद्घाटित हुआ है। तथापि ग्रन्थ विस्तार के भय से पृथक् रूप से प्रत्येक ध्यान का कथन यहाँ नहीं हुआ है। उक्त तन्त्रों से अपेक्षित ध्यानों का सग्रह करना चाहिए अथवा स्वयं उसका ऊह करना चाहिए। भरतोपास्या, रामोपास्या तथा हिरण्यकशिपूपास्या भगवती गुह्यकाली के मन्त्र भी निर्दिष्ट हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का वर्णन यहाँ गुह्यकाली के प्रथम उपासक रूप में हुआ है।

द्वितीय पटल में निराकारा देवी के शरीर परिग्रह की रोचक तथा पौराणिक कथा मुख्य रूप से कही गयी है। एवं द्वितीय उपासक रूप में इन्द्र आदि दिक्पालों का और अन्य देव योनियों का उल्लेख भी हुआ है। तृतीय पटल में एकाक्षर से लेकर अयुताक्षर पर्यन्त अट्ठाइस मन्त्रों का साङ्गोपाङ्ग उद्धार हुआ है। ऋषि, छन्द, देवता शक्ति, कीलक, तत्त्व तथा विनियोग मन्त्र के सात अङ्ग आगमों में प्रसिद्ध ही है, जो यहाँ वर्णित हुए हैं। चतुर्थ पटल में मोक्ष साधक विशिष्ट छह मन्त्र शाम्भव, महाशाम्भव, तुरीया, महातुरीया, निर्वाण तथा महानिर्वाण अभिहित हुए हैं। तथा पञ्चम पटल में मुख्यत: तीन विषयों का प्रतिपादन हुआ है। पुनर्जन्म की कथा वर्णित हुई है। प्रत्येक मन्त्र के यन्त्र, षडङ्गन्यास तथा तान्त्रिकगायत्री

यहाँ कही गई हैं। यन्त्र के प्रसङ्ग में इस संहिताकार का कहना है कि जैसे पूजा के बिना जप नहीं किया जाता है, इसी तरह यन्त्र के बिना पूजा नहीं होती है—'न पूजा यन्त्रमन्तरा'। काम, क्रोध तथा लोभ आदि से होने वाले सभी प्रकारो के दुःखों के नियन्त्रण करने से यह यन्त्र कहलाता है। इसलिए यन्त्रों का परिचय आवश्यक है।

गुह्यकाली के सभी मन्त्रों की यन्त्र पर पूजा विहित है। अन्यथा पूजा अपरिपूर्ण रहती है उसमें सम्पूर्णता नहीं आती है—

गुह्यकाल्याः मनूनां हि सर्वेषां यन्त्रपूजहम्।
साङ्गं भवति देवेशि सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥५।१११॥

यहाँ प्रत्येक मन्त्र के लिए पृथक्-पृथक् यन्त्र का उल्लेख हुआ है। केवल चतुर्थ पटल में निर्दिष्ट शाम्भव आदि छह मन्त्रों का केवल जप विहित है। यदि किसी साधक को उन मन्त्रों की पूजा में आग्रह हो तो विशेष परिस्थिति में उनके लिए विशिष्ट यन्त्रों का स्वरूप यहाँ प्रदर्शित हुआ है। इस तरह कुल चौबीस यन्त्रों का उद्धार यहाँ किया गया है। यद्यपि मन्त्र लगभग छत्तीस हैं। तथापि एक-एक यन्त्र पर दो अथवा तीन मन्त्रों की पूजा का निर्देश कर समन्वय किया गया है। षष्ठ पटल में साधक की दिनचर्या, वस्तु अर्पण करने का मन्त्र, जिसे यहाँ 'उपमन्त्र कहा गया है, विविध प्रकारों के मातृका न्यास पीठन्यास तथा योगरत्न नामक गुह्यकाली का विशेष पीठन्यास, पूजा के अनेक उपचार, पञ्चोपचार, दश उपचार, षोडश उपचार तथा बत्तीस उपचार या राजोपचार भी सविस्तर बताये गये हैं।

सप्तम, अष्टम तथा नवम पटलों में पचीस विशेष न्यास तथा तीन षोढा न्यास कहे गये हैं। पौराणिक कथाओं को कहते हुए उनके औचित्य एवं आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। तान्त्रिकों के लिए न्यास तथा भूतशुद्धि का महत्त्व बहुत अधिक है। न्यास द्वारा साधक अपने शरीर में देवत्व का आधान करता है। मन्त्रमय देवता को आत्मा में संक्रान्त करने की विधि तन्त्र में प्रसिद्ध है। 'न्यासस्तन्मयताबुद्धिः' तान्त्रिकों का सिद्धान्त है तथा भूतशुद्धि द्वारा शरीर को शुद्ध किया जाता है।

सप्तम पटल में दश न्यासों का वर्णन है। इनमें प्रथम वक्त्रन्यास है। दशमुखी गुह्यकाली के वक्त्र न्यास का विवरण साङ्गोपाङ्ग प्रस्तुत करते हुए सहिताकार ने एकादशमुखी आदि अधिक मुख वाली देवियों के वक्त्रन्यास का प्रकार श्लोक ५७ से ६३ तक में बताया है। इसी तरह उससे कम मुख वाली देवियों के उक्त न्यास के विषय में भी ६४ से ६६ श्लोक में कहा गया है। इस न्यास की फलश्रुति में कहा गया है कि ब्राह्मण वाग्मी होता है। राजा की अव्याहत आज्ञा चलती है। वैश्य के धन में अभिवृद्धि होती है तथा शूद्र को चिरकाल तक भोग सुख के बाद देवी की सन्निधि प्राप्त होती है।

(२) अस्त्र न्यास के दो प्रकार वर्णित हैं। दोनों ही दशमुखी गुह्यकाली के ही न्यास माने गये हैं। इनमें दूसरा अधिक फलद कहा गया है। उससे कम अथवा अधिक मुखी देवी के अस्त्र न्यास के प्रसंग में वक्त्रन्यास की तरह ही यहाँ ऊह करने के लिये कहा गया है। इसके अनुष्ठान करने वाले को निरलस (आलस्य रहित) होना आवश्यक है।

(३) दूतीन्यास राजाओं के लिये अधिक प्रशस्त है। इसके अनुष्ठान से विविध ऐहिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यद्यपि कपालडामर तन्त्र में चौबीस दूतियाँ वर्णित हैं। यही बात ब्रह्म यामल में कही गई हैं। भीमातन्त्र में पचीस दूतियाँ अभिहित हुई हैं। कालानल-तन्त्र में तिरसठ दूतियाँ उल्लिखित हैं। तथापि पूजा के प्रसंग में यहाँ गुह्यकाली की पचीस दूतियाँ उद्धृत हुई हैं।

(४) डाकिनी न्यास मुख्यतः राजाओं के लिये विहित है। इसके अनुष्ठान से सद्यः डाकिनी सिद्ध होती हैं। दूतीन्यास की तरह इसका भी विधान वर्णित है।

(५) योगिनी न्यास साधक का उत्कृष्ट रक्षक है। इसके बिना पूजा सफल नहीं होती है तथा विघ्न बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं। इसके अनुष्ठान से सिद्धियाँ मिलती हैं, बैरियों को कष्ट होता है, अचल सम्पत्ति मिलती है तथा आयु बढ़ती है।

(६) कुलतत्त्व न्यास को न्यासराज कहा गया है। घर में इसे लिखकर रखने से भी विपत्तियों का नाश तथा सिद्धियों का लाभ होता है। क्योंकि उस घर में देवी स्वयं वास करती है जहाँ इसे लिख कर रखा जाता है। त्रिपुरघ्न की आज्ञा से तथा लोक के कल्याण के लिये कपाल डामर तन्त्र से यहाँ (इस संहिता में) इसका संग्रह किया गया है।

(७) सिद्धिचक्र न्यास के अनुष्ठान से शीघ्र विविध सिद्धियों की प्राप्ति होती है। ऐहिक फल की कामना से इसके नित्य अनुष्ठान का विधान है और स्वर्ग या मोक्ष की कामना से इसका अनुष्ठान काम्य कहा गया है।

(८) कैवल्य न्यास नाम के अनुरूप गुणशाली है। इसके अनुष्ठान से मोक्ष अवश्य होता है।

(९) अमृत न्यास प्रसन्नाविधि अर्थात तीर्थ शोधन के लिये आवश्यक माना गया है। इसके दो कल्प हैं—प्रकृति कल्प और विकृति कल्प। प्रथम कल्प मुख्य है और दूसरा गौण।

(१०) जय विजय न्यास विवाद तथा युद्ध में विजय की कामना से किया जाता है। विजय के इच्छुक व्यक्ति के लिए प्रतिदिन इसका अनुष्ठान विहित है। इसको कवच की तरह संरक्षक, महा उन्नति का साधक तथा दीर्घजीवन दाता कहा गया है। देवताओं के लिए भी इसे दुर्लभ माना गया है।

अष्टम पटल में भावना, समय, सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या, भासा, मन्त्र, सिद्धि तथा विराट् इन दश न्यासों का सविस्तर मन्त्रोद्धार वर्णित है। यहाँ इन न्यासों की महिमा बताते हुए महाकाल ने कहा है कि इन न्यासों के करने की केवल इच्छा से लोगों के अभीष्ट अवश्य सिद्ध होते हैं—

'येषां चिकीर्षयाऽपि स्यात् सिद्धिः सार्वत्रिकी नृणाम्।' ८।१।

(१) भावना न्यास में उन पचपन कालियों की भावना की जाती हैं, जो देवी के अयुताक्षर मन्त्र में उल्लिखित हैं। अतएव इसे अन्वर्थसंज्ञक—अर्थ के अनुरूप नाम—माना गया है। यह सर्वश्रेष्ठ एवं मोक्ष का साधक है। इसके माहात्म्य के प्रसंग में इतना

कहना पर्याप्त है कि देवगण इसी के करने से देवता बने हैं। इसके विना मानसी पूजा व्यर्थ हो जाती है। भावना, समाधि, ध्यान तथा अध्यात्मचिन्तन योग के पर्याय हैं। और इसका साधक योगी (शिव) कहा गया है। कठिन एवं दुरूह होने से विद्वान् ही इसकी साधना का अधिकारी हो सकता है।

(२) समयन्यास भी भावनान्यास के समान माना गया है। इसका विनियोग समय के पालन के लिए होता है। यहाँ समय से संहिताकार का अभिप्राय सिद्धान्त प्रतीत होता है।

(३) सृष्टि न्यास के अवतरण में महाकाल ने कहा है कि पञ्चाकारा (सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या तथा भासा आकार वाली) भगवती का आद्य आकार सृष्टि है। देवी ने जिस रूप में जिस वस्तु की सृष्टि की है उनकी उसी रूप का उल्लेख यहाँ हुआ है। इसका साधक शास्त्रों में अपनी कल्पना द्वारा युक्ति की अभिवृद्धि कर प्रतिष्ठित होता है तथा छह माहों के अन्दर वाक्सिद्धि प्राप्त करता है।

(४) स्थितिन्यास भी मुख्य ही है। भगवान विष्णु इसी के बल पर सृष्टि के पालन में समर्थ हैं।

(५) संहारन्यास के करने से भगवती अधिक प्रसन्न होती हैं। विद्यार्थी के लिये इस न्यास का विशेष महत्त्व है। विना पढ़ कर भी इसका साधक गद्य तथा पद्य की रचना कर सकता है। किन्तु इन तीनों ही न्यासों के फल ऐहिक सिद्धियाँ ही हैं मोक्ष नहीं।

(६) अनाख्या न्यास का विनियोग मुक्ति के लिए कहा गया है। इसकी तुलना किसी से भी नहीं हो सकती है। इसके अनुष्ठान से अन्य न्यासों के करने की अपेक्षा नहीं रहती है। और इसके नहीं करने पर भी अन्य न्यासों के करने से विशेष सिद्धि नहीं होती हैं अर्थात् यही न्यास उत्तमोत्तम है।

(७) भासान्यास के प्रसंग में महाकाल का कहना है कि यह न्यास सभी आगमों में गोपनीय माना गया है। अनाख्या न्यास से भी यह श्रेष्ठ है। जैसे तुरीया न्यास मन्त्र का जप कर्ता अवश्य मुक्त होता है, इसी तरह इसके साधक का भी सांसारिक बन्धन छूट जाता है। फलतः यह भी मोक्ष का साधक है।

(८) मन्त्रन्यास देवी की प्रीति के लिये किया जाता है। पतित ब्राह्मण तथा महिला को इसका अनधिकारी कहा गया है। यह न्यास संसार रूपी समुद्र में पार करने के लिये जहाज की तरह है।

(९) सिद्धिन्यास सांसारिक सुख भोग प्रदान करता है। ऋषिगण तथा राजाओं ने इसके अनुष्ठान से अभीष्ट की सिद्धि पायी है।

(१०) विराट् न्यास में देवी के ध्यान एवं पूजा आदि का समावेश है। इसी से यह न्यासराज है। इसका विनियोग मोक्ष के लिये होता है। डामर, यामल या शाबर तन्त्र आदि किसी तान्त्रिक ग्रन्थों में यह नहीं पाया जाता है। केवल मन्त्रकल्प मे सर्वश्रेष्ठ इस संहिता में ही यह विशेष रूप से कहा गया है।

नवम पटल में बीजन्यास, कूटन्यास, क्रमन्यास, धातुन्यास तथा तत्त्वन्यास को कह कर पश्चात् लघु षोढान्यास, महा षोढान्यास तथा महा निर्वाण षोढान्यास का विवरण यथाक्रम सविस्तर कहा गया है। साथ ही पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत कर साधक को प्रेरित करने का प्रयास भी हुआ है। जैसे सिद्धपीठ के उद्भव का कथन, नदी की महिमा का कथन तथा तीर्थों में शिवलिङ्ग के स्थापन का रहस्योद्घाटन आदि रोचक कथाएँ साधकों को उत्प्रेरित करने के लिये पर्याप्त हैं।

(१) बीजन्यास में ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों को बीज रूप में कहा गया हैं। अतएव संसार के आदि कारण शम्भु की तरह यह बीजन्यास सर्वश्रेष्ठ माना गया है। संसार की सृष्टि के लिए इसका विनियोग विहित है।

(२) कूटन्यास वज्रडामर में मूलतः अभिहित है। वहाँ से इसका यहाँ संकलन हुआ है। यह शीघ्र फल देने वाला माना गया है। सावधानी से भक्तिपूर्वक इसका विधान वर्णित है। इसका विनियोग कैवल्य पद की प्राप्ति के लिए होता है। फलश्रुति में इसे सिद्धिदाता भोगदाता तथा मोक्षदाता कहा गया है।

(३) क्रमन्यास में देवियों का रोचक विवरण प्रस्तुत हुआ है। शक्ति आगम के छह आम्नाय प्रसिद्ध हैं। जहाँ देवियों के ध्यान तथा पूजा आदि वर्णित हैं। यहाँ जिन क्रमों से जिस आम्नाय में जिन देवियों का ध्यान आदि वर्णित है उन्हीं क्रमों में उस आम्नाय की देवियाँ इस न्यास में कही गई हैं। इस तरह आम्नायों के विभागानुसार देवियों का स्वरूप-परिचय यहाँ सुलभ हो सका है। प्रकृत देवी गुह्यकाली उत्तराम्नाय की आद्या देवी मानी गयी हैं। इन विषयों का विस्तृत विवरण डामरों में मिलता है। वहीं से सारांश का संकलन यहाँ हुआ है। छह आम्नायों की सभी देवियाँ यथाक्रम यहाँ एक ही न्यास मे कही गयी हैं तथा उनके मन्त्रों का निर्देश भी हुआ है। स्वभावतः यह न्यास अन्य न्यासो से उत्तम है। कपाल डामर तथा इस संहिता को छोड़कर अन्यत्र यह न्यास वर्णित नहीं है। कपाल डामर में इसका विशेष परिचय उपलब्ध है। यह न्यास भक्ति, भुक्ति तथा मुक्ति का साधक है।

(४) धातु न्यास का विनियोग कैवल्य लाभ के लिए कहा गया है। धातु पद के नानार्थक होने पर भी प्रकृत में शारीरिक अंग रूप अर्थ अभिप्रेत है। यह न्यास गृहस्थ, सन्यासी तथा कौल सबों के लिए नित्य अनुष्ठेय माना गया है। सृष्टि आदि पाँचों न्यासों के बराबर यह एक ही धातुन्यास है।

(५) तत्त्वन्यास का अनुष्ठान तत्त्वज्ञान के लिये होता है। फलतः इसके नाम के अनुरूप गुण हैं। यह अपरिग्रही के लिए नित्य और गृहस्थ तथा कौलों के लिये काम्य कहा गया है।

षोढान्यास से छह विशिष्ट न्यासों की समष्टि अभिप्रेत है। इसके दो प्रकार यहाँ वर्णित हुए हैं--लघुषोढा तथा महाषोढा। बाद में महाषोढा ही निर्वाण महाषोढा पद से भी कहा जाने लगा। इसके अनुष्ठान से साधक के शरीर में देवी का निवास भी होता है। अतएव इसके अनुष्ठाता के लिए किसी से बातचीत करना या किसी को नमस्कार करना आदि वर्जित है। यह सभी प्रकारों के पापों का नाशक होकर भी मोक्ष का साधक नहीं है।

इससे ऐहिक सिद्धियां मिलती हैं। इसके अनुष्ठान के समय शक्ति को अपने वाम जंघा पर बैठाने का विधान है।

इस तरह महिला साधिका के लिये पुरुष को अवश्य बैठाने का विधान हैं। सन्यासी के लिये यहाँ द्वार बन्द है। वह इसका अनधिकारी माना गया है। इसके अनुष्ठान के लिए समय का बन्धन नहीं है। अतएव यह जिस किसी भी समय किया जा सकता है। महाकाल का स्पष्ट कथन है कि इस तरह की सिद्धिदा दूसरी विद्या नहीं है, यह सम्पूर्ण आगम शास्त्र में प्रसिद्ध है। इसके अनुष्ठान से गुह्यकाली सन्तुष्ट होती हैं। लघुषोढा में उग्र-मातृक्रमन्यास, कालीकुलन्यास, पीठन्यास, योगिनीन्यास, दैवतन्यास तथा मन्त्रक्रमन्यास सम्मिलित हैं।

महाषोढान्यास के प्रसंग में संहिताकार ने कहा है कि यह न्यास कपाल डामर, यामल तथा भैरवी संहिता आदि किसी तन्त्र ग्रन्थ में उद्धृत नहीं हैं। त्रिपुरघ्न के प्रसाद से मैं जानता हूँ, अतएव केवल इसी संहिता में यह उपलब्ध है। इससे इसका महत्व स्वत: ज्ञात होता है। लघुषोढा न्यास की अपेक्षा यह महाषोढा कोटिगुण अधिक फलवती है। इसके प्रतिदिन अनुष्ठान करने से तीनों लोक काँपने लगते हैं। इसमें तीर्थशिवलिंगन्यास, पर्वत-नरसिंहन्यास, नद्यृषिन्यास, अस्त्रभैरव न्यास, यज्ञमहाराज न्यास तथा कल्पसिद्ध न्यास सम्मिलित है। यही महाषोढान्यास यदि बिना किसी कामना से किया जाता है तो निर्वाण महाषोढान्यास कहलाता है। इस न्यास के माहात्म्य के प्रसंग में कहा गया है कि जहाँ यह लिखकर भी रख दिया जाता है, वहाँ सर्वविध मंगल का आधिक्य और किसी भी प्रकार के विघ्नों का सर्वथा क्षय अवश्य होता है। यहीं इस संस्करण की समाप्ति होती है।

इससे अधिक रोचक प्रसंग इसके अपर अंश (उत्तरार्द्ध) में उपलब्ध हैं। नित्य नैमित्तिक एवं काम्य आदि पूजा के प्रकार, आवरण-पूजा का सविस्तर वर्णन, शक्तिपूजा तथा बिन्दुपूजा का साङ्गोपाङ्ग निर्देश इसके अंग रूप में सात्त्विक, राजस आदि विविध उपचार, विविध सम्प्रदायों का पूजा विषयक मतभेद आदि इसके दशम पटल में आये । एकादश पटल हठयोग एवं क्रमयोग का पुङ्खानुपुङ्ख विचार करता है। द्वादश पटल में नैमित्तिक एवं ग्रहण कालिक पूजा का विवरण है। त्रयोदश पटल में शारदी एवं वासन्ती दुर्गा पूजा का सविस्तर वर्णन है और तदङ्गतया पौराणिक एवं तान्त्रिक विचार एवं आचार का स्पष्ट संकेत वस्तुत: स्पृहणीय चित्र प्रस्तु करता है। चतुर्दश पटल में पवित्रारोहण एवं दमनारोपण विधि का वर्णन है। यहीं यह खण्ड समाप्त होता है। पवित्रारोहण विधि वैष्णव तन्त्र से उधार लिया हुआ प्रतीत होता है। वैष्णव अपने इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण को यज्ञोपवीत सविधि अर्पित करते हैं—यही पवित्रारोहण है। दमनारोपण विधि से कामदेव की सविधि पूजा अभिप्रेत है। यह इस संहिता का रोचक प्रसंग प्रस्तुत करता है। आशा है कि शीघ्र ही अनालोचित एवं अनुपेक्षणीय उत्तरार्ध के विषयों की आलोचना अग्रिम खण्ड के प्रकाशन के समय विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने का सुअवसर प्राप्त होगा।

प्रयाग
गुरु पूर्णिमा २०३३

किशोरनाथ झा

महाकालसंहिता

गुह्यकालीखण्डः

प्रथमः पटलः

[गुह्यकाल्या मन्त्राणामष्टादशभेदकथनम्, गोपनीयतावर्णनं च]

महाकाल उवाच

गुह्यकाल्यास्तु मन्त्राणामष्टादश भिदाः प्रिये ।
सर्वागमेषु गोप्यास्ते न प्रकाश्याः कदाचन ॥१॥

[मन्त्रभेदादेव तस्या ध्यानादौ भेदः]

मन्त्राणां भेदतो ध्यानभेदाः स्युर्विविधास्तथा ।
यन्त्रभेदा अपि तथा वाहनानां भिदास्तथा ॥२॥

[उपासकनिर्देशस्तन्नाम्नैवोपास्यमन्त्रप्रसिद्ध्यभिधानम्]

यो मन्त्रो येन चाभ्यस्तस्तन्नाम्ना स प्रकीर्तितः ।
ब्रह्मणा च वसिष्ठेन रामेण च तथा प्रिये ॥३॥
हिरण्याक्षानुजेनापि कुबेरेण यमेन च ।
भरतेन दशास्येन बलिना वासवेन च ॥४॥
विष्णुनान्यैश्च देवैश्च दैत्येन्द्रैर्विविधैरपि ।
उपासिता सिद्धिहेतोर्लब्धा सिद्धिश्च भूयसी ॥५॥

[मुखभेदेन गुह्यकाल्या अनेकरूपतावर्णनम्]

शतवक्त्राशीतिवक्त्रा षष्टिवक्त्रा तथैव च ।
षट्त्रिंशदानना त्रिंशदानना[1] परिकीर्तिता ॥६॥
तथा विंशतिवक्त्रा[2] च दशवक्त्रा च कालिका ।
पञ्चवक्त्रा त्रिवक्त्रा च द्विवक्त्रा चैकवक्त्रिका ॥७॥

---

१. विंशदानना (?) ख घ । २. तथैकविंशवक्त्रा ख ।

[भरतोपासिताया गुह्यकाल्या मुख्यत्वनिर्देशः]

या गुह्यकाली तन्मध्ये भरतोपासिता प्रिये ।
दशवक्त्रा षोडशार्णा चतुःपञ्चाशदोर्युता ॥८॥
सर्वासां गुह्यकालीनां सा वै मुख्यतमा स्मृता ।
तामेवादौ व्याहरामि व्याहरिष्ये ततः पराः ॥९॥
षोडशाक्षरिको मन्त्रः कीलितोऽथाप्यकीलितः ।
तत्रादौ कीलितं वच्मि ततो वक्ष्याम्यकीलितम् ॥१०॥

[भरतोपासितायास्तस्याः कीलितमन्त्रोद्धारः]

कीलकाकीलकध्यानमेकमेव हि पार्वति ।
आदौ वेदादिमुद्धृत्य ततः पस्य द्वितीयकम् ॥११॥
एकारयुक्तं तदधो रेफं बिन्दुं च योजयेत् ।
सिद्धिशब्दं ततः प्रोच्य करालि[1] च विनिर्दिशेत् ॥१२॥
लज्जाकूर्चम[2]नुस्मृत्य कफोणिं वाममुद्धरेत् ।
वामं[3] दृग् विन्द्वधो वह्नियुक्तं कुर्यात् ततश्च तम् ॥१३॥
वधूबीजं पुनर्मन्त्रद्वितीयं बीजमुद्धरेत् ।
हृन्मन्त्रो वह्निजाया च मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१४॥

[तस्या एवाकीलितमन्त्रोद्धारः]

अथवा कामिनीबीजात् पूर्वं क्रोधमनुस्मरेत्[4] ।
इयं हि भरतोपास्याऽकीलितापि च शापतः ॥१५॥

[रामोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्राभिधानम्]

रामोपास्यामथो[5] वक्ष्येऽक्षरसप्तदशान्विताम् ।
सापि हारीतमुनिना कीलिता तपसो बलात् ॥१६॥

---

१. करालीं ख ।
२. क्रोध० ख घ । इह पाठभेदेन न काचिद्धानिः । हूं इत्येकस्य कृते कूर्चक्रोधयोरुभयोः संकेतस्य बीजोद्धारावसरे दर्शनात् । ३. वाम० ख घ ।
४. इतः पूर्वं ख पुस्तके पंक्तिद्वयमधिकम् —
अथाकीलितमन्त्रं तु शुद्धं गुप्तं निशामय ।
कुलाङ्गना योगिजायारुभीरु परिदीपितम् [?] ॥
५. ० मतो ख घ ङ ।

आदौ तस्यैव मन्त्रस्य चतुरोऽर्णान् समुद्धरेत् ।
द्वितीयबीजोपरि च हसखं विनियोजयेत् ॥१७॥
एवं तु पञ्चमं बीजं षष्ठं खेन च वर्जितम् ।
सप्तमं हसहीनं च करालि तदनन्तरम् ॥१८॥
त्रयोदशैकादशके स्थाने सप्तममक्षरम् ।
पञ्चमं द्वादशस्थाने द्वितीयं च चतुर्दशे ॥१९॥
आद्यं[1] पञ्चदशे कुर्याद् वह्निजायान्तगो मनुः ।
हारीतोपासिता ह्येषा च्यवनोपासितां शृणु ॥२०॥

[च्यावन्याः सप्तदशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

षष्ठपञ्चमयोरस्य[2] व्यत्ययः समुदीरितः ।
एतावतैव भवति च्यावनी सुमहाफला[3] ॥२१॥

[निर्दिष्टमन्त्रचतुष्टयस्य ऋष्यादिवर्णनम्]

षोडशाक्षरयोर्मन्त्रभेदयोरधुना ब्रुवे ।
ऋष्यादिकं ततः सप्तदश्याश्च[4] कथयामि ते ॥२२॥
अथर्वा ऋषिरुद्दिष्टो जगतीच्छन्द उच्यते ।
देवता गुह्यकाली च द्वितीयार्णं तु कीलकम् ॥२३॥
शक्तिस्तु दशमं बीजं द्वितीये नवमं भवेत् ।
पुरुषार्थचतुष्कस्य सिद्धये कामनास्थितिः ॥२४॥
सप्तदश्यास्तु मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिर्मतः ।
छन्दश्च सुप्रतिष्ठाख्यं देवता गुह्यकालिका ॥२५॥
पञ्चमार्णं कीलकं स्यात् सप्तमं शक्तिरुच्यते ।
तदेव विपरीतं हि च्यावन्यां समुदीरितम् ॥२६॥
प्रयोगः सर्वसिद्धयर्थे जपे प्रोच्चारितो भवेत् ।

[अन्यमन्त्राणामुद्धाराय प्रतिज्ञा]

अन्येषां मन्त्रभेदानां यदोद्धारं[5] वदामि ते ॥२७॥

---

१. आद्य पञ्चदशे क घ । २. पञ्चमाष्टमयोरस्य ख ।
३. सुमहाबला ख । ४. सप्तदश्यं घ ङ । ५. यदुद्धारं (?) ख घ ।

तदा ऋष्यादिकं तेषां कथयिष्यामि पार्वति ।

[भरतरामाभ्यामुपासितयोरेकं ध्यानम्]

भरतोपासिता या च रामोपास्या च या स्मृता ॥२८॥
ध्यानं तयोरेकमेव कथ्यमानं मया शृणु ।
ध्यायेद्देवीप्रभावोत्थप्रोच्छलद्रक्तवारिधिम् ॥२९॥
उत्तुङ्गोत्तुङ्गकल्लोलप्रपूरितदिगन्तरम् ।
तत्र द्वीपं रक्तमांसपूरितं रक्तबालुकम् ॥३०॥
नवकोटिकचामुण्डाकोटिभैरववेष्टितम् ।
तन्मध्ये मण्डलं ध्यायेद् योजनायुतविस्तृतम् ॥३१॥
भैरवीकोटिघटितं प्राकारं तत्र चिन्तयेत् ।
एकं श्मशानं तन्मध्ये शतयोजनविस्तृतम् ॥३२॥
चिन्तयेत् प्रोच्छलद्वह्निज्वालाव्याप्तर्क्षमण्डलम् ।
योगिनीकोटिविहितकरतालिकवेष्टनम्[1] ॥३३॥
नारान्त्रनद्धमुण्डस्रक्कृततोरणमालिकम्[2] ।
तदन्तःस्थायिनीं कालीं ध्यायेन्निश्चलमानसः ॥३४॥
रत्न[3]सिंहासनं दिव्यं हीर[4]मुक्तादिनिर्मितम् ।
धारयन्तं चतुष्कोणे युगं वेदं च[5] चिन्तयेत् ॥३५॥
सत्यं युगं च ऋग्वेदं शुक्लवर्णं च पूर्वगम् ।
त्रेतायुगं यजुर्वेदं पीतवर्णं च दक्षगम् ॥३६॥
द्वापरं सामवेदं च रक्तं पश्चिमदिग्गतम् ।
अथर्ववेदं च कलिं श्याममुत्तरदिग्गतम् ॥३७॥
उपवेदस्य शुभ्रस्य मूर्ध्नि सिंहासनं स्थितम् ।

[दिक्पालध्यानम्]

तस्य सिंहासनस्योर्द्ध्वमन्यत् सिंहासनं महत् ॥३८॥

---

१. वेष्टितम् ख घ । २. नरान्त्रनद्धमुण्डेषु कृततोरणमालिकाम् ख ।
३. रक्त क ख । ४. हृद्यं ख ।
५. वि छ ।

स्वस्वास्त्रवाहनयुतैर्दिगष्टपतिभिर्वृतम्[1] ।
देव्याः सिंहासनधरांस्तांश्च ध्यायेदतन्द्रितः ॥३९॥
स्वां स्वां दिशमवष्टभ्य स्थितान् परमशोभनान्[2] ।
इन्द्रं पीतं सवज्रं च स्थितमैरावतोपरि ॥४०॥
पावकं रक्तवर्णं च छागस्थं शक्तिपाणिनम्[3] ।
यमं कृष्णं कासरस्थं दण्डहस्तं भयानकम् ॥४१॥
निर्ऋतिं[4] धूम्रवर्णं च खड्गहस्तं तुरङ्गकम्[5] ।
वरुणं पाशहस्तं च शुभ्रं मकरवाहनम् ॥४२॥
श्यामं वायुं ध्वजधरं हरिणोपरि संस्थितम् ।
गदाधरं कुबेरं च कुङ्कुमाभं नरे स्थितम्[6] ॥४३॥
ईशानं शुभ्रवर्णं च शूलहस्तं वृषस्थितम् ।

[पञ्चप्रेतध्यानम्]

सिंहासनं तृतीयं च पञ्चप्रेतैर्धृतं प्रिये ॥४४॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेताः स्थिताः सिंहासनादधः[7] ॥४५॥
पीतः श्यामस्तथा रक्तो धूम्रः श्वेतः क्रमादिमे ।
दण्डं शक्तिं[8] च चक्रं च शूलं खट्वाङ्गमेव च ॥४६॥
धारयन्तो मुखन्यस्ततर्जनीकास्त्रिलोचनाः[9] ।
केशरिद्विपकोलाश्च फेत्काररवभीषणाः [?] ॥४७॥

[भैरवाख्यपीठध्यानम्]

षष्ठं पीठं ततो ध्यायेद् भैरवाख्यं भयानकम् ।
खर्वं स्थूलतरं घोरं कृष्णवर्णं चतुर्भुजम् ॥४८॥

---

१. दिशां पतिभिरावृतम् छ ।
२. शोभितान् ख घ ।
३. पाणिकम् घ ।
४. नैर्ऋतं ख, घ ।
५. तुरङ्गगम् ख घ, छ ।
६. नरस्थितं ख ।
७. सिंहासनोपरि ख ।
८. दण्डं चक्रं च शक्तिं चेति समुचितपाठः ।
९. स्त्रिलोचनम् ख ।

पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च कीकसाभरणाङ्कितम्[1] ।
खट्वाङ्गं कर्त्रिकां दक्षे कपालं डमरुं ततः[2] ॥४९॥
धारयन्तं मुण्डमालायुतं दंष्ट्रोग्रभीषणम् ।
तदूर्ध्वं षोडशदलं पद्मं यज्ञोपकल्पितम् ॥५०॥
ज्योतिष्टोमश्चाग्निष्टोमो[3] वाजपेयश्च षोडशी ।
चयनं पुण्डरीकञ्च[4] राजसूयोऽश्वमेधकः[5] ॥५१॥
बार्हस्पत्यं विश्वजिच्च गोमेधो नरमेधकः ।
सौत्रामण्यर्द्धसावित्री सूर्यक्रान्तो बलम्भिदः ॥५२॥
एतादृशैः षोडशभिर्दलैः पद्मं प्रकल्पितम् ।
तस्योपरि ततो ध्यायेच्छिववासनमनुत्तमम् ॥५३॥
बिन्दुनादयुतं नीलं शशाङ्ककृतलाञ्छनम् ।
महार्घरत्नाभरणं त्रिनेत्रं भीमदर्शनम् ॥५४॥
वज्रदंष्ट्रानखस्पर्शं पद्मपृष्ठं शिवोत्तमम् ।
पिङ्गोग्रैकजटाभारं द्विभुजं नागहारिणम् ॥५५॥
वसानं चर्म वैयाघ्रं शूलखट्वाङ्गधारिणम् ।
अष्टपत्राम्बुजं तस्योपरिष्टान्नवमासनम्[6] ॥५६॥
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुर्दिशि ।
यशो विवेकः कामश्च मोक्षश्चेति विदिग्दिशि ॥५७॥

[दशमुख्या गुह्यकाल्या ध्यानम्]

एवमष्टदलाम्भोजोपविष्टां गुह्यकालिकाम् ।
ध्यायेन्नीलोत्पलश्यामामिन्द्रनीलसमद्युतिम् ॥५८॥
घनाघनतनुद्योतां स्निग्धदूर्वादलद्युतिम् ।
ज्ञानरश्मि[7]घटाटोपज्योतिर्मण्डलमध्यगाम् ॥५९॥

---

१. ...भरणान्वितम् ख घ ।
२. तथा ख घ ।
३. ज्योतिष्टोमाग्निषोमौ ख घ ।
४. पुण्डरीकं च ख घ ।
५. राजसूयाश्वमेधकः ख घ ।
६. ० ष्टान्तरमा० ङ, ...ष्टान्नरमा० क, च ।
७. च्छटा ङ ।

दशवक्त्रां गुह्यकालीं सप्तविंशतिलोचनाम्* ।
द्विद्विनेत्रयुतां वक्त्रे वामदक्षिणसम्मुखे ॥६०॥
सप्तस्वन्येषु वक्त्रेषु त्रित्रिलोचनसंयुताम् ।
ऊर्ध्ववक्त्रं [द्वीपिकाख्यं] चण्डयोगेश्वरीति हि ॥६१॥
तस्याधः केशरिमुखं श्वेतवर्णं विभीषणम्[1] ।
तस्याधः फेरुवक्त्रं च कृष्णं त्रैलोक्यडामरम् ॥६२॥
वानरास्यं ततो वामे रक्तवर्णं महोल्वणम्[2] ।
ऋक्षवक्त्रं भवेद्दक्षे धूम्रवर्णं भयङ्करम्[3] ॥६३॥
नरास्यं तदधो ज्ञेयं किर्म्मीराभं मदोत्कटम् ।
गारुडास्यं ततो वामे पिङ्गवर्णं सुचञ्चुकम् ॥६४॥
दक्षिणे मकरास्यं च हरिताभं प्रकीर्तितम् ।
गजास्यं वामतः प्रोक्तं गौरवर्णं स्रवन्मदम् ॥६५॥
हयास्यं दक्षिणे काल्याः श्यामवर्णं विचिन्तयेत् ।
महादंष्ट्राकरालानि दारुणस्वनवन्ति च ॥६६॥
अट्टाट्टहासयुक्तानि स्रवद्रक्तानि सर्वदा ।
लेलिहानविनिष्क्रान्तललज्जिह्वान्वितानि च ॥६७॥
अहर्निशं कम्पमानान्यास्यानि दधतीं शिवाम् ।
भीमनिर्ह्रादिनीं भीमां भ्रूभङ्गकुटिलाननाम् ॥६८॥
पिङ्गलोर्ध्वजटाजूटां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
नानारत्नविनिर्माणसुमुण्डस्वर्णकुण्डलाम्[4] ॥६९॥
स्रवद्रक्तनृमुण्डस्रक्कृतनक्षत्रमालिकाम् ।
आकण्ठगुल्फलम्बिन्यालंकृतां मुण्डमालया[5] ॥७०॥

---

* तुलनीयो रावणकृतः भुजंगप्रयातः स्तोत्रराजः । कामकला खण्ड पृ० १४५ ।
"महाभीषणां घोरविंशार्द्धवक्त्रांस्तथा सप्तविंशान्वितैर्लोचनैश्च ।
पुरो दक्षवामे द्विनेत्रोज्ज्वलाभ्यां तथान्याननै त्रित्रिनेत्राभिरामाम् ॥"

१. इतः १४५ तमं श्लोकं यावत् घ पुस्तके नास्ति । २. ज्ज्वलम् छ ।
३. भयानकम् ख छ । ४. ०स्वर्णभूषणाम् ख ।
५. तुलनीयः कामकलाखण्डः, समानं ध्यानमुभयत्र । पृ० ८ ।

श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ।
शवदीर्घागुंलीपंक्तिमण्डितोरःस्थलस्थिराम् ॥७१॥
कठोरपीवरो[1]त्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ।
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ॥७२॥
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ।
अन्त्रनद्धार्भकशिरोबलत्किंकिणिमण्डिताम् ॥७३॥
चतुःपञ्चाशता दोष्णा भूषितां जगदम्बिकाम् ।
रत्नमालां कपालं च चर्मपाशं तथैव च ॥७४॥
शक्तिं खट्वाङ्गमुण्डे च भुशुण्डीं धनुरेव च ।
चक्रं घण्टां ततो बालप्रेतशैलमतः परम् ॥७५॥
नरकङ्कालनकुलौ सर्पमुन्मादवंशिकाम् ।
मुद्गरं वह्निकुण्डं च डमरुं परिघं[2] तथा ॥७६॥
भिन्दिपालं च मुसलं पट्टिशं प्रास[3] एव च ।
शतघ्नीं च शिवापोतं वामहस्तेषु बिभ्रतीम् ॥७७॥
अथ दक्षभुजे रत्नमालां कर्त्रीमसिं तथा ।
तर्जनीमंकुशं दण्डं रत्नकुम्भं त्रिशूलकम् ॥७८॥
पञ्च पाशुपतान् बाणान् शोषकोन्मादमूर्च्छकान् ।
संहारकान् मृत्युकरानेवंनामप्रधारिणः ॥७९॥
कुन्तं च पारिजातं च छुरिकां तोमरं तथा ।
पुष्पमालां डिण्डिमं च गृध्रं चैव कमण्डलुम् ॥८०॥
मांसखण्डं स्रुवं बीजपूरं सूचीं तथैव च ।
परशुं च गदां यष्टिं मुष्टिं कुणपलालनम् ॥८१॥
धारयन्तीं महारौद्रीं जगत्संहारकारिणीम्[4] ।
जपापुष्पाभनागेन्द्रकृतनूपुरयुग्मकाम् ॥८२॥
पीतभोगीन्द्रविहितसर्वहस्तैककङ्कणाम्[5] ।
पाटलोरगनिर्माणलसदङ्गदशोभिताम् ॥८३॥

---

१. पिङ्गलो ङ
२. डिण्डिमं छ
३. पाश० घ छ । प्रासमेव ङ ।
४. नृत्यमानां सदोदिताम् ज
५. इयं पंक्तिः ख छ पुस्तकयोः नास्ति ।

धूसराहिकृतस्फीतकटिसूत्रावलम्बिनीम् ।
सुपाण्डुरभुजङ्गेन्द्रकृतयज्ञोपवीतिनीम्[1] ॥८४॥
पिशङ्गाशीविषाभोगकृतहारमहोज्ज्वलाम् ।
कल्माषपवनाहारकृतताटङ्कशोभिताम्[2] ॥८५॥
श्वेतदर्वीकरानद्धजटामुकुटमण्डिताम् ।
वैयाघ्रचर्मवसनां द्वीपिचर्मोत्तरीयकाम् ॥८६॥
किङ्किणीजालशोभाढ्यां वीरघण्टानिनादिनीम् ।
नूपुरारावललितां[3] घर्घरारावभीषणाम् ॥८७॥
कटकाङ्गदकेयूरनरास्थिकृतशोभनाम् ।
रक्तपद्ममयीमालापादपद्मावलम्बिताम्[4] ॥८८॥
काञ्चीकह्लारकप्रेङ्खत्कटीमध्यविराजिताम् ।
ब्रह्मसूत्रोज्ज्वलत्कण्ठयोगपट्टोत्तरीयकाम् ॥८९॥
सौम्योग्रभूषणैर्युक्तां नागाष्टकविराजिताम् ।
रत्नकुण्डलकर्णश्रीं[5] पञ्चकालानले[6] स्थिताम् ॥९०॥
पद्मोपरि स्थितां देवीं नृत्यमानां सदोदिताम्[7] ।
पद्मासनसुखासीनां सर्वदेवाधिदेवताम् ॥९१॥
मुक्तहुङ्कारजिह्वाग्रं चालयन्तीं विचिन्तयेत् ।
त्रिकोटिशक्तिचामुण्डानवकोटिभिरन्विताम् ॥९२॥
महायोगिनिकोटीनामष्टादशभिरूर्जिताम् ।
चरन्तीं च हसन्तीं च डाकिनीषष्टिकोटिभिः ॥९३॥
भैरव्यशीतिकोटीभिः परिवारैश्च वेष्टिताम् ।
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ॥९४॥
महाप्रलयकोटचर्कविद्युदर्बुदसन्निभाम् ।
दुर्निरीक्ष्यां महाभीमां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥९५॥

---

१. ०कृतताटङ्कशोभिताम् ख, इतः षट् पंक्तयः छ पुस्तके न सन्ति ।
२. अयं श्लोकः ख पुस्तके नास्ति । ३. रूपलावण्यललितां ङ ।
४. ०लम्बिनीम् ख, छ । ५. गण्डश्रीः क, कुण्डश्रीः ङ ।
६. ० नलस्थिताम् ख । ७. जगत्संहारकारिणीम् ज ।

शत्रुपक्षक्षयकरीं दैत्यदानवसूदिनीम् ।
निर्विकारां निराभासां कूटस्थां चिद्विलासिनीम् ॥९६ ॥
अद्वैतां परमानन्दां नित्यां शुद्धां निरञ्जनीम्[1] ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्या भासा पदाभिधाम्[2] ॥९७
वेदान्तवेद्यां कैवल्यरूपां निर्वाणकारिणीम् ।
गुणातीतामात्मरूपप्रबोधातीतगोचराम् ॥९८॥
शुद्धचैतन्यनिर्वाणज्ञानानन्दमुपेयुषीम्[3] ।
परानन्दामृतघनां तुरीयपदनिर्मलाम् ॥९९॥
प्रत्यग्ज्योतिःस्वरूपां च साक्षिवाचामगोचराम् ।
पञ्चक्रमस्य मध्यस्थां गुह्यकालीं परेश्वरीं ॥१००॥
एवं ध्येया महाकाली[4] प्रोद्भिन्ननवयौवना ।
एवं ते कथितं देवि समासाद्ध्यानमुत्तमम् ॥१०१॥
दशास्यगुह्यकाल्यास्तु किमिदानीं हि पृच्छसि ।

[शतशीर्षाया गुह्यकाल्या मन्त्रध्यानादिजिज्ञासा]

देव्युवाच
शतशीर्षा तु या प्रोक्ता गुह्यकाली परात्परा ॥१०२॥
मुख्यो मन्त्रश्च कस्तस्या ध्यानं वा कीदृशं पुनः[5] ।
एतत्सर्वमशेषेण कथयस्व मम प्रभो ! ॥१०३॥

[एतस्या महोग्रतरत्वप्रतिपादनम्]

महाकाल उवाच
साधु पृष्टं त्वया देवि सा महोग्रतरा स्मृता ।
हिरण्यकशिपूपास्या सर्वासांमाद्यरूपिणी ॥१०४॥

[शतशीर्षाया गुह्यकाल्याः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

उद्धरामि मनुं तस्यास्तत्र चेतोऽवधारय ।
रामोपास्यासप्तमार्णं पञ्चमार्णं[6] सवामदृक् ॥१०५॥

---

१. निरञ्जनाम् ख । २. सृष्टिः स्थितिश्च संहारानाख्या भासापराभिदाम् ख ।
३. इतः पंक्तित्रयं ख, छ पुस्तकयोर्नास्ति । ४. गुह्यकाली, ज ।
५. छ पुस्तके पंक्तिरियं नास्ति । ६. सप्तमार्ण ख० ।

तस्याद्यं च द्वितीयं च एतस्य त्रिचतुर्थकम्[1] ।
लज्जाबीजं च छ्रींकारं[2] क्रोधस्त्रीकमलाह्रियः ॥१०६॥
रेफो हकारः क्षमला वरया[3]स्तदनन्तरम् ।
वामाक्षिकर्णसंयुक्तं कूटमेतत् प्रकीर्तितम्[4] ॥१०७॥
एकादशं महाकूटमक्षरं परिकीर्तितम् ।
लक्ष्मीप्रणवलज्जानां बीजानि तदनन्तरम् ॥१०८॥
द्वितीयबीजं निर्नेत्रं प्रथमं च ततः परम् ।
एवं काल्याः षोडशार्णा सर्वागमसुगोपिता ॥१०९॥

[निरुक्तमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

कालानलोऽस्य मन्त्रस्य ऋषिश्छन्दश्च शक्वरी[5] ।
आद्या या गुह्यकाल्याख्या देवता सा प्रकीर्तिता ॥११०॥
आद्यं बीजं हि बीजं स्याच्चतुर्थं चैव कीलकम् ।
शक्तिरेकादशं[6] बीजं विनियोगश्च सिद्धये ॥१११॥

[शतशीर्षाया गुह्यकाल्या ध्यानम्]

ध्यानमस्या विधेहि त्वं कथ्यमानमतः परम् ।
शतवक्त्रा गुह्यकाली दोर्दण्डायुतमण्डिता[7] ॥११२॥
सिंहेभबाजिशरभक[8] पिफेरुगरुत्मताम् ।
ऋक्षोष्ट्रखरवक्त्राणां प्रस्तारोऽधःक्रमात् प्रिये ॥११३॥
शतत्रयेण नेत्राणां शोभितानां सदैव हि ।
आगुल्फलम्बिविस्रस्तजटोपरि[9] विराजिताम् ॥११४॥
शिवविष्णुशिरोन्यस्तप्रत्यालीढपदक्रमाम् ।
वामे पञ्चसहस्राणि बाहूनां बिभ्रतीं शिवाम् ॥११५॥

---

१. द्विचतुर्थकम् ख ।
२. च्छ्रींकरं (?) क, ख, घ, ङ ।
३. ० वर्ण्याः क, घ वैरयः ख वरया ङ ।
४. ० इयं पंक्तिः छ पुस्तके नास्ति ।
५. शर्करी क, ख, घ, ङ ।
६. ० दशबीजं क, ख, घ ।
७. दोर्दण्डायतमण्डिता क, ख, घ ।
८. फणि छ ।
९. ० स्तजटासंभार वि ० ङ ।

तावन्त्येव हि चापानां धारयन्तीं कराम्बुजैः ।
दक्षे च पञ्च साहस्रे शरास्त्राणि च बिभ्रतीम् ॥११६॥
व्याघ्रचर्मपरीधानां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
अष्टोत्तरसहस्राभिर्मुण्डमालाभिरन्विताम् ॥११७॥
लेलिहानमहाभीमललज्जिह्वाकरालिनीम् ।
भ्रूकुट्यरालवदनां त्र्यक्षां सर्वानने अपि ॥११८॥
शार्दूलत्वक्परीधानां विश्वविस्तारिताननाम् ।
गलन्नृमुण्डहाराढ्यां नादापूरितपुष्कराम्[1] ॥११९॥
ज्वलद्द्रुतवहाकारविस्रस्तकचसञ्चयाम् ।
नरास्थिकृतसर्वाङ्गभूषणां जगदम्बिकाम् ॥१२०॥
कोटिकोटिमहाघोरभैरवीयोगिनीयुताम् ।
शतवक्त्रां गुह्यकालीं गलद्रुधिरचर्चिताम् ॥१२१॥
सिंहासनासृग्ध्वजासनाद्यैः पूर्ववद् युताम् ।
एवंरूपां गुह्यकालीं ध्यायेन्निश्चलमानसः ॥१२२॥
ध्यात्वैवं पूजयेत् पूर्वप्रकारैरेव[2] सुन्दरि ।

[अशीतिमुख्या गुह्यकाल्या जिज्ञासा]

देव्युवाच

अशीतिवक्त्रामाचक्ष्व गुह्यकालीं करालिनीम् ॥१२३॥
सा कियद्भिर्भुजैर्युक्ता कस्योपास्या च सा प्रभो ।
गुह्यकाल्यास्तु वक्त्राणां कति भेदाः स्युरीश्वर ॥१२४॥
बाहूनां वा तथास्त्राणां तन्मे कथय साम्प्रतम् ।

[अस्या मन्त्रादेरतिगोपनीयतानिर्देशः]

महाकाल उवाच

स्त्रीस्वभावात् प्रिये सर्वं पृच्छसि[3] त्वमसाध्वसा ॥१२५॥
अकथ्यं सर्वमेवेदं तवापि पुरतः सदा ।
प्रकाश्यो मातृजारोऽपि प्रकाश्यं स्वधनं तथा ॥१२६॥

---

१. ० पूरितदिङ्मुखाम् ख । २. सर्वप्रकारैरेव क, घ सर्वप्रकारेण च, ख ।
३. पृच्छसे ख ।

प्रकाश्य: स्वापमानश्च[1] प्रकाश्यं छन्नपातकम् ।
प्रकाश्यं न्यासहरणं स्नुषादिगमनं तथा ॥१२७॥
न प्रकाश्यमिदं सर्वं कृन्तत्यपि शिरस्यपि ।
गोप्याद् गोप्यतरं ज्ञेयं सारात्सारतरं स्मृतम्[2] ॥१२८॥
तत्सर्वमपि देवेशि कथयाम्यवधारय ।

[दशवक्त्राया गुह्यकाल्या मुख्यत्वमन्यासां च गौणत्वम्]

दशवक्त्रा तु या प्रोक्ता गुह्यकाली मया तव ॥१२९॥
प्रकृति: सा परिज्ञेया कालीनां जगदम्बिका ।
अन्या विकृतय: प्रोक्ता: कार्यकारणभेदत: ॥१३०॥
तत्संवन्धाद् वक्त्रबाह्वोराधिक्यमुपजायते ।
तेषु तेषु च कल्पेषु निमित्तं तत्तदैश्वरम् ॥१३१॥
आसाद्य कुरुते सैव स्वेच्छया स्वाङ्गवैभवम्[3] ।
तत्रोत्तमानां सत्त्वाना[4] माकारो नाम[5] जायताम् ॥१३२॥
अधमानां कथमिति चेत्सन्देह: शृणूत्तरम् ।

[गुह्यकाल्या: सर्वातिशायिमहिमवर्णनम्]

सा किं बाध्याऽस्मदादीनां निर्गुणब्रह्मणोऽपि वा ॥१३३॥
वयं किं तन्नियन्तारस्तदिच्छैव नियामिका ।
सैव ज्ञेया वरारोहे निर्गुणब्रह्मरूपिणी ॥१३४॥
जगत्सर्वं वशे तस्या वश्या कस्यापि सा न च ।
विश्वं सर्वं सृजति सा कोऽपि सृजति तां नहि ॥१३५॥
सा पालयति संसारं तां पालयति कोऽपि न ।
तां न संहरते कोऽपि सा सर्गं[6] संहरत्यद: ॥१३६॥
तदाज्ञयाऽनिलो वाति सूर्यस्तपति तद्भयात् ।
तद्भियाग्नि: पचत्यन्नं मृत्युश्चरति तद्भयात् ॥१३७॥

[गुह्यकाल्युपासकत्रैविध्यम्]

तस्या[7] उपासका ज्ञेयास्त्रिविधा: परमेश्वरि ।
ध्यानं च त्रिविधं ज्ञेयं सपर्या च त्रिधा मता ॥१३८॥

---

१. प्रकाश्यं स्वापमानं च ख । २. परम् ङ । ३. भैरवम् [?] ख । ४. सन्ध्यानां [?] ख ।
५. ताम० ख । ६. सर्वं ख, साङ्ग० ङ । ७. तस्मादुपासका: ख, एतस्या उपा० क ।

[उपासकभेदेनोपासनाभेदः]

विधानं त्रिविधं चैव निश्चयश्च त्रिधा मतः ।
प्रत्येकं कथ्यमानं मे मनो दत्त्वा निशामय ॥१३८॥
त्रिगुणेभ्यः समुत्पन्ना ये त्रयोऽपि तदंशकाः ।
त आद्योपासकास्तस्या विष्णुब्रह्ममहेश्वराः ॥१३९॥

[आद्योपासकैरुपासिताया ध्यानम्]

ध्यानं तस्या निराकारं ते त्रयः कुर्वतेऽन्वहम् ।
तच्च ध्यानं दुष्कराख्यं मनो दत्त्वा निशामय ॥१४०॥
अरूपामरसगन्धामस्पर्शाममितामजाम् ।
निर्विकारां गुणातीतां निष्प्रपञ्चां निरञ्जनाम् ॥१४१॥
कालातीतां चिदानन्दां वेदवेदान्तबोधिताम् ।
निरीहामजरां शुद्धां[1] नित्यां चैतन्यरूपिणीम् ॥१४२॥
अस्थूलामनणुं[2] सत्यामह्रस्वां चित्कलातिगाम् ।
आत्मारामामनाद्यन्तां तामदीर्घामलोहिताम्[3] ॥१४३॥
अस्नेहामदृशं सूक्ष्मामच्छायामसमीरणाम् ।
अनाकाशामतनुमनासां[4] कर्णवर्जिताम् ॥१४४॥
निराभासामनाधाराम दृश्या[5]मननेहसाम् ।
अग्राह्यामनवस्थाख्यां निस्त्रैगुण्यामतीन्द्रियाम् ॥१४५॥
अपाणिपादां निर्वर्णां विभुं सर्वगतां पराम् ।
असंस्कारामसंयोगामनिच्छां बुद्धिसाक्षिणीम् ॥१४६॥
एवंविधां जगद्धात्रीं ध्यायन्ति त्रय[6] एव हि ।

[आद्योपासकोपासितायाः पूजोपकरणम्]

तेषां मनस्तु गन्धः स्यात् बुद्धिः पुष्पाणि कीर्तिता ॥१४७॥
धूपश्च कथितस्तेषामेकीभावेन भावना ।
ज्योतींषि चक्षुषां दीपो नैवेद्यं स्वकलेवरम् ॥१४८॥

---

१. शुभ्रां ख। २. ० मकृशां ख। ३. ० न्तामदीर्घाममलां हिताम् ख।
४. अनाकारामतमसामङ्गां ख, अनाकाशामतमसङ्गां ङ।
५. ० मदेश्यामनने० ख। ६. तत्र ख।

प्रत्याहारः समाधिश्च प्राणायामश्च धारणा ।
पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयमेतत् प्रकीर्तितम् ॥१४९॥
अनादि यन्महावाक्यं तन्न्यासमिति कथ्यते ।
न्यास एव हि विज्ञेयः पूजाविधिरिह प्रिये ॥१५०॥

[पञ्च महावाक्यानि]

महावाक्यान्यनादीनि पञ्चैव हि वरानने ।
नैव तेषामृषिश्छन्दो बीजशक्ती न कीलकम् ॥१५१॥
सृष्टेः पूर्वमिदं सर्वं तदा नैषां समुद्भवः ।
तानि पञ्चावधेहि त्वं महावाक्यानि सुन्दरि ॥१५२॥
आदौ तारं ततस्तत्सत् त्र्यक्षरं प्रथमं भवेत् ।
द्वितीयं सोऽहमस्मीति चतुरक्षरमीरितम् ॥१५३॥
ब्रह्माहमस्मीति ततस्तृतीयं वर्णपञ्चकम् ।
तत्सदुक्त्वाहमेवेति चतुर्थं स्यात् षडक्षरम् ॥१५४॥
अहमेवेदमित्युक्त्वा सर्वमित्यथ संवदेत् ।
सप्ताक्षरमिदं ज्ञेयं पञ्चमं परमेश्वरि ॥१५५॥
देवता केवलं चैषां गुह्यकाली प्रकीर्तिता ।
पञ्चैतान्यपि वाक्यानि न्यासस्तेषामुदाहृतः ॥१५६॥

[पञ्चमहावाक्यमहिम्नः कीर्तनम्]

सैव सत्यमसच्चान्यदिति तेषां विनिश्चयः ।
इदानीमपि पूयन्ते गृणन्तोऽमूनि पञ्च हि ॥१५७॥
महापातकजैर्घोरैर्न लिप्यन्ते नरा अघैः ।

[महावाक्यजपे समयकामचारता]

तिष्ठन् पश्यन् हसन् जल्पन् स्वपन्नश्नन् पिबन् व्रजन् ॥१५८॥
जल्पन्ननुक्षणमिदं ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
नैतादृशं किमप्यस्ति पातकं जगतीतले ॥१५९॥
एतदुच्चारयन् नित्यं यन्न नाशयति प्रिये ।

[शूद्रस्यापि महावाक्यजपाधिकारः]

त्रिकालमुच्चरच्छूद्रोऽपीदं मुच्येत किल्विषैः ॥१६०॥
किं पुनस्ते त्रयो वर्णाः स्वधर्मस्थाः वरानने ।
वेदान्तेऽप्ययमेवार्थः सर्वासूपनिषत्सु च ॥१६१॥

उदीरितो विस्तरेण मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
वैखानसानां यतीना[1]मपरिग्रहिणां तथा ॥१६२॥
न्यासपूजाजपध्यानादि तेषामिदमेव[2] हि ।
एतज्जपातिरिक्तं हि तेषां कर्म न चेतरत् ॥१६३॥
इति ते कथिता देवि प्रथमोपासकास्त्रयः ।

[द्वितीयोपासकनामनिर्देशः]

द्वितीयोपासकादीनां श‍ृण्वनुक्रममादरात् ॥१६४॥
इन्द्रश्चन्द्रश्च वायुश्च कुबेरो वरुणस्तथा ।
यमोऽग्निर्निर्ऋतिस्त्वष्टा धाता पूषा भगोऽर्यमा ॥१६५॥
अंशुर्दिवाकरो मित्रो नासत्यौ वसवस्तथा ।
रुद्राश्च विश्वेदेवाश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥१६६॥
स्वायम्भुवाद्या मनवो मरीच्याद्या महर्षयः ।
सुरर्षयो नारदाद्याः शुक्राद्याश्चासुरर्षयः[3] ॥१६७॥
ब्रह्मर्षयः सनन्दाद्या वासुक्याद्या भुजङ्गमाः ।
राजर्षयो मरुत्ताद्या दक्षाद्याश्च प्रजर्षयः ॥१६८॥
उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो भौमाद्याः किन्नरास्तथा ।
हाहाद्याश्चापि गन्धर्वास्तथा विद्याधरर्षयः ॥१६९॥
असुरा विप्रचित्ताद्या नमुच्याद्याश्च दानवाः ।
हिरण्याक्षादयो दैत्या रावणाद्याश्च राक्षसाः ॥१७०॥
तस्या उपासकाः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवोद्भवाः ।

[द्वितीयोपासकोपासितायाः ध्यानस्य वेदप्रतिपाद्यत्वम्]

ध्यानं चैषां विराड्रूपं वेदोक्तं तन्निशामय ॥१७१॥
अथर्ववेदमध्ये तु शाखा मुख्यतमा हि षट् ।
स्वयम्भुवाद्याः[4] कथिताः पुत्रायाथर्वणे[5] पुरा ॥१७२॥

---

१. यतिनां च । २. ० ध्यानादे तेषामि० क, ख ।
३. इतः पञ्च पंक्तयः ख पुस्तके न दृश्यन्ते ।
४. स्वयम्भुवाय ख, वा याः शा० उ० । ५. पुत्राद्याथर्वणे छ ।

तासु गुह्योपनिषदस्तिष्ठन्ति वरवर्णिनि ।
नामानि शृणु शाखानां तत्राद्या वारतन्तवी ॥१७४॥
मौञ्जायनी द्वितीया तु तृतीया तार्णबैन्दवी ।
चतुर्थी शौनकी प्रोक्ता पञ्चमी पैप्पलादिका ॥१७५॥
षष्ठी सौमन्तवी ज्ञेया सारात्सारतरा इमाः ।
गुह्योपनिषदो गूढाः[1] सन्ति शाखासु षट्स्वपि ॥१७६॥
ता एकीकृत्य सर्वास्तु मयाऽस्यां विनिवेशिताः ।
संहितायां साधकानामुद्धाराय वरानने ॥१७७॥
तास्ते वदामि यत्प्रोक्तं ध्यानं कुर्वन्ति देवताः ।

[द्वितीयोपासकोपासितायाः ध्यानम्]

विराड्ध्यानं हि तज्ज्ञेयं महापातकनाशनम् ॥१७८॥
ब्रह्माण्डाद् बहिरूर्ध्वं हि महत्तत्त्वमहङ्कृतिः[2] ।
रूपाणि पञ्च तन्मात्राः पुरुषः प्रकृतिर्नव ॥१७९॥
महापातालपादान्तलम्बां तस्याः[3] जटां स्मरेत् ।
ब्रह्माण्डोर्ध्वकपालं[4] हि शिरस्तस्याः विभावयेत् ॥१८०॥
देवीलोकं[5] ललाटं च षड्त्रिंशल्लक्ष[6]योजनम् ।
मेरुः सीमन्तदण्डो[7]ऽस्याः ग्रहरत्नसमाकुलः ॥१८१॥
अजवीथी[8] नागवीथी भ्रुवावस्याः प्रकीर्तिते ।
शिवलोकश्च वैकुण्ठलोकः कर्णावुभौ मतौ ॥१८२॥
रोहितं तिलकं ध्यायेन्नासां मन्दाकिनीं[9] तथा ।
चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ च पक्ष्माणि किरणास्तथा ॥१८३॥
गण्डौ स्यातां तपोलोकसत्यलोकौ यथाक्रमम् ।
जनलोकमहर्लोकौ कपोलौ परिकीर्तितौ ॥१८४॥

---

१. रूढा ख ।
२. इतः पंक्तिद्वयं शा० उ० नास्ति ।
३. जयं शा० उ० ।
४. ब्रह्माण्डार्धं क शा० उ० ।
५. लोको शा० उ० ।
६. षड्विंशल्लक्ष० क ।
७. सीमन्तदण्डाग्र छ ।
८. अन्तर्वीथी शा० उ० ।
९. नासा मन्दाकिनी तथा शा० उ० ।

स्यातां हिमाद्रिकैलासौ तस्या देव्यास्तु कुण्डले ।
स्वर्लोकश्च भुवर्लोको देव्या ओष्ठाधरौ मतौ ॥१८५॥
दिक्पतीनां ग्रहाणां च लोकाश्चाधो[1]रदावली ।
गन्धर्वसिद्धसाध्यानां पितृकिन्नररक्षसाम् ॥१८६॥
पिशाचयक्षाप्सरसां मरीचेः पायिनां[2] तथा ।
विद्याधराणामाज्योष्मपानां सोमैकपायिनाम् ॥१८७॥
सप्तर्षीणां ध्रुवस्यापि लोका ऊर्ध्वरदावली ।
मुखं च रोदसी ज्ञेयं द्यौर्लोकश्चिबुकं तथा ॥१८८॥
ब्रह्मलोको गलः प्रोक्तो [3]नभो वक्षःस्थलं तथा ।
हारो नक्षत्रमाला स्यात् बाहवो दिक्विदिक्चयाः[4] ॥१८९॥
तत्तल्लोकफलं चास्त्रं [?] पृष्ठं द्यौः परिकीर्तिता ।
तथान्तरीक्षमुदरं गिरयोऽन्त्राणि सर्वशः ॥१९०॥
जठरः सिन्धवः प्रोक्ता वायवः प्राणरूपिणः ।
वनस्पतय ओषध्यो लोमानि परिचक्षते ॥१९१॥
विद्युद्दृष्टिरहोरात्रं निमेषोन्मेषसंज्ञकम् ।
विश्वं तु हृदयं प्रोक्तं पृथिवी पाद उच्यते ॥१९२॥
तलं तलातलं चैव पातालं सुतलं तथा ।
रसातलं नागलोकाः पादांगुल्यः प्रकीर्तिताः ॥१९३॥
वेदा वाचः स्यन्दमाना नद्यो नाड्योऽमिता मताः ।
कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च ऋतवोऽयनमेव च ॥१९४॥
पक्षा मासास्तथा चाब्दाश्चत्वारोऽपि युगाः प्रिये ।
कफोणिर्मणिबन्धश्च जङ्घोरुकटिवंक्षणाः[5] ॥१९५॥
प्रपदाश्च स्फिचश्चैव सर्वाङ्गानि प्रचक्षते ।
वैश्वानरः कालमृत्यू जिह्वात्रयमिदं स्मृतम् ॥१९६॥

---

१. श्चाथ शा० उ० । २. मरीचियायिनां शा० उ० ।
३. इतः १८९ तमश्लोकस्य तृतीय चरणं यावत् घ, ङ, छ पुस्तकेषु नास्ति ।
४. ० विदिक् तथा ख । ५. कटिवक्षसः ख, तदूरुकटिबन्धनाः शा० उ० ।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं मन्त्रमस्याः[1] प्रचक्षते ।
प्रलयो भोजनकालस्तृप्तिस्तेन च नाल्पिका[2] ॥१६७॥
ज्ञेयः पार्श्वपरीवर्तो महाकल्पान्तरोद्भवः ।
विराड्रूपस्य ते ध्यानमिति संक्षेपतोऽर्पितम् ॥१६८॥

[एतस्याः स्वरूपज्ञानमेव पूजेतिनिर्देशः]

तस्याः स्वरूपविज्ञानं सपर्या परिकीर्तिता ।
तदेव हि श्रुतिप्रोक्तमवधारय पार्वति ॥१६९॥

[अथगुह्योपनिषदारम्भः]

यथोर्णनाभिः सूत्राणि सृजत्यपि गिलत्यपि[3] ।
यथा पृथिव्यामौषध्यः संभवन्ति गरन्त्यपि[4] ॥२००॥
पुरुषात् केशलोमानि जायन्ते च क्षरन्त्यपि ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते तथा तस्यां जगन्त्यपि ॥२०१॥
ज्वलतः पावकात् यद्वत् स्फुलिङ्गाः कोटिकोटिशः[5] ।
निर्गत्य च विनश्यन्ति विश्वं तस्यास्तथा प्रिये ॥२०२॥
ऋचो[6] यजूंषि सामानि दीक्षा यज्ञाश्च दक्षिणाः[7] ।
अध्वर्युर्यजमानश्च भुवनानि चतुर्दश ॥२०३॥
ब्रह्मविष्ण्वादिका देवाः मनुष्याः पशवो वयः[8] ।
प्राणापानौ व्रीहयश्च सत्यं श्रद्धा विधिस्तपः ॥२०४॥
समुद्रा गिरयो नद्यः सर्वं स्थावरजङ्गमम्[9] ।
विसृज्येमानि सर्गादौ स्वं प्रकाशयते ततः ॥२०५॥
जङ्गमानि विधायार्थं[10] विष्टभ्य[11] प्रतिभूतकम् ।
नवद्वारं[12] पुरं कृत्वा गवाक्षाणीन्द्रियाणि च ॥२०६॥

---

१. मनुमस्याः ख, घ, तनुमस्याः शा० उ० । २. नासिका (?) शा० उ० ।
३. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् १।१।७।
४. गिलन्त्यपि ख, घ, शा० उ० निगिलन्त्यपि छ, गलन्त्यपि ङ ।
५. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् २।१।१।
६. तुलनीया बृहदारण्यकोपनिषत् १।२।५। तथा ५।१४।२। प्रश्नोपनिषत् २।६ ।
७. सदक्षिणाः शा० उ० । ८. यतः शा० उ० ।
९. सर्वे स्थावरजङ्गमाः शा० उ० । १०. विधायाथ ख, विधायान्धे शा० उ० ।
११. विशत्यप्रतिभूतकम् शा० उ० । १२. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।१८ ।

सा पश्यत्यत्ति वदति[1] गच्छति[2] क्रीडतीच्छति ।
शृणोति जिघ्रति तथा रमते विरमत्यपि ॥२०७॥
तया मुक्तं[3] पुरं तद्धि मृतमित्यभिधीयते ॥
अन्तःशरीरे[4] ज्योतिर्मयीं तां ।
भाग्येनैव पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥२०८॥
बृहच्च[5] तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं–
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके[6] च
पश्यत्स्विहैव[7] निहितं गुहायाम् ॥२०९॥
न[8] चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्योगैस्तपसा[9] कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व–
स्ततस्तु तां पश्यति[10] निष्कलां ध्यायमानः ॥२१०॥
यथा[11] नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय[12] ।
तथा विद्वान्नामरूपाद् विमुक्तः
परात्परां जगदम्बामुपैति ॥२११॥

---

१. वहति शा० उ० । २. स्पृशति शा० उ० ।
३. भुक्तं ख । ४. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् ३।१।५।
"ये तपः क्षीगदोषास्ते नैव पश्यन्ति भाविताम् ।
ज्योतिर्मयीं शरीरेऽन्तर्ध्यायमानां महात्मभिः ॥" इतिं
अन्तःशरीरे इत्यारभ्य क्षीणदोषाः इत्यन्तस्य स्थाने शाक्तोपनिषदि पाठः ।
५. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् ३।१।७ । ६. तदिहास्ति किञ्चित् शा० उ० ।
७. पश्यन्त्विहैवं ख, घ । ८. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् ३।१।८ ।
९. नहि सा शा० उ० । १०. निष्कलां च शा० उ० ।
११. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् ३।२।८। तथा प्रश्नोपनिषत् ६।५।
१२. गच्छन्त्यस्तं नामरूपे विहाय शा० उ० ।

सर्वे[1] वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो[2] ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥२१२॥
[3]परत्परां जगदम्बामुपैति ॥
सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥२१३॥
[4]एषैवालम्बनं श्रेष्ठमेषैवालम्बनं परम् ।
एषैवालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥२१४॥
[5]इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥२१५॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषात्तु परा देवी सा काष्ठा सा परा गतिः ॥२१६॥
[6]यथोदकं गिरौ वृष्टं[7] समुद्रेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यँस्तामेवानु विधावति ॥२१७॥
[8]एका गुह्या सर्वभूतान्तरात्मा
एका रूपं बहुधा या करोति ।
तामात्मस्थां येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥२१८॥

---

१. तुलनीया कठोपनिषत् १।२।१५। २. यदिच्छातो ख ।
३. इतः पञ्च पंक्तयः ख, घ, ङ, शा० उ० न सन्ति ।
४. तुलनीया कठोपनिषत् १।२।१७। ५. तुलनीया कठोपनिषत् १।३।१०।
६. तुलनीया कठोपनिषत् २।१।१४। ७. सृष्टं शा० उ० ।
८. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।१२।

[1]नित्या नित्यानां चेतना चेतनाना-
मेका बहूनां या विदधाति कामान् ।
तामात्मस्थां येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥२१९॥

न[2] तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तामेव भान्तीमनुभाति सर्वं
तस्या भासा सर्वमिदं विभाति ॥२२०॥

[3]यस्याः परं नापरमस्ति किञ्चित्
यस्या नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ।
वृक्ष[4] इव स्तम्भादि वितिष्ठत्येका
तयेदं पूर्णं[5] भगवत्या सर्वम्[6] ॥२२१॥

[7]ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् ।
× × × ॥२२२॥

य[8] एतां विदुरमृतास्ते भवन्ति ।
अथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥२२३॥

[9]सर्वाननशिरोग्रीवा सर्वभूतगुहाशया ।
सर्वत्रस्था भगवती तस्मात् सर्वगता शिवा ॥२२४॥

---

१. तुलनीया कठोपनिषत् २।२।१३। श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।१३। इतः पंक्तिचतुष्टयं शा० उ० छ पुस्तकयोश्च नास्ति ।

२. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।१४।

३. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।९। महानारायणोपनिषत् १०।४।

४. वृक्ष इव स्तब्धा दिवि तिष्ठत्येका यदन्तः पूर्णमवगत्य पूर्णः शा० उ० ।

५. विश्वं, ख ।

६. च पूर्णम् ख, घ, पूर्णे छ ।

७. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।१०। इतः पंक्तित्रयं शा० उ० नास्ति ।

८. तुलनीया महानारायणोपनिषत् १।११।

९. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।११।

[1]सर्वतः पाणिपादान्ता सर्वतोऽक्षिशिरोमुखा ।
सर्वतः श्रुतिमत्येषा सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२२५॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासा सर्वेन्द्रियविवर्जिता ।
सर्वेषां प्रभुरीशानी सर्वेषां शरणं सुहृत् ॥२२६॥
नवद्वारे पुरे देवी हंसी लीलायते[2] बहिः ।
ध्येया सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥२२७॥
[3]अपाणिपादा जवना गृहीत्री
पश्यत्यचक्षुः सा[4] श्रृणोत्यकर्णा ।
सा वेत्ति वेद्यं न तस्या अस्ति[5] वेत्ता
तामाहुरग्र्यां जगतो[6] महीयसीम् ॥२२८॥
सा[7] चैवाग्निः सा च सूर्यः सा वायुः सा च चन्द्रमा ।
सा चैव शुक्रं[8] सा ब्रह्म सा चापः सा प्रजापतिः ॥
सा चैव स्त्री सा च पुमान् सा कुमारः कुमारिका ॥२२९॥
ऋचोऽक्षरे[9] परमे व्योमन्
यस्यां देवा अधिरुद्रा निषेदुः ।
यस्तां न वेद किमृचा करिष्यति
ये तां विदुस्तद्वैमे[10] समासते ॥२३०॥
छन्दांसि[11] यज्ञाः क्रतवो व्रतानि
भूतं भव्यं यच्च वेदाः वदन्ति ।
सर्वं देवी सृजते विश्वमेतत्
तस्याश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥२३१॥

---

१. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।१६,१७,१८।
२. लीनायते ख । लीलायती शा० उ०, लोलायते बहिः छ ।
३. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।१९।
४. स श्रृणोत्यकर्णः क, घ, ङ ।
५. तस्यास्तु शा० उ० ।
६. महतीं शा० उ० ।
७. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।२,३।
८. विणुः ख ।
९. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।८।
१०. त इमे शा० उ० ।
११. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।९,१०।

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् प्रभुं तस्या महेश्वरीम् ।
अस्या अवयवैः सूक्ष्मैर्व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥२३२॥
या[1] देवानां प्रभवा चोद्भवा च
विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा[2] ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
सा नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥२३३॥
[3]सूक्ष्मातिसूक्ष्मं सलिलस्य[4] मध्ये
विश्वस्य स्रष्ट्रीं तामनेकामनाख्याम् ।
विश्वस्यैकां परिवेष्टयित्रीं
ज्ञात्वा गुह्यां शान्तिमत्यन्तमेति ॥२३४॥
सा[5] ह्येव काले भुवनस्य गोप्त्री
विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा[6] ।
यस्यां मुक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च[7]
तामेव ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥२३५॥
घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मां
ज्ञात्वा कालीं सर्वभूतेषु गूढाम् ।
कल्पान्ते वै सर्वसंहारकर्त्रीं
ज्ञात्वा गुह्यां मुच्यते सर्वपाशैः[8] ॥२३६॥
एषा देवी विश्वयोनिर्महात्मा
सदा जनानां हृदये[9] सन्निविष्टा ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्ता
य एतां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२३७॥

---

१. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।१२। २. रूढा ख।
३. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।१४। ४. कलिलस्य ख।
५. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।१५,१६,१७। ६. रूढा ख।
७. देवाः शा० उ०। ८. सर्वपापैः शा० उ०।
९. हृदि शा० उ०।

यदा[1] तमस्तं न दिवा न रात्रि-
न सन्न चासद् भगवत्येव गुह्या ।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्याः प्रसृता पुराणी[2] ॥२३८॥
नैनामूर्ध्वं न तिर्यञ्चं[3] न मध्ये परिजग्रभत् ।
न तस्याः प्रतिमाप्यस्ति[4] तस्या[5] नाम महद् यशः ॥२३९॥
न सदृशं तिष्ठति रूपमस्याः
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनाम्[6] ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्ता
य एतां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२४०॥
अथेतरे दुःखमेवापियन्ति[7] ॥
भूयश्च[8] सृष्ट्वा त्रिदशानप्यथैशी[9]
सर्वाधिपत्यं कुरुते भवानी ।
सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च[10] तिर्यक्
प्रकाशयन्ती भ्राजते गुह्यकाली ॥२४१॥
नैव[11] स्त्री न पुमानेषा नैव चेयं नपुंसका ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेनैव युज्यते ॥२४२॥
धर्मावहां[12] पापनुदं भगेशीं
ज्ञात्वात्म[13]स्थाममृतं विश्वधाम[14] ।
तामीश्वराणां परमं[15] महेश्वरीं[16]
तां देवतानां परमां[17] च देवताम् ॥२४३॥

---

१. यदा तमस्तत्र दिवा न रात्रिः शा० उ० तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।१८,१९,२० ।
२. पुराणि क, घ, ङ, परा सा शा० उ० । ३. तिर्यक् च शा० उ० ।
४. प्रतिमा चास्ति ख, प्रतिमास्ति ङ, प्रतिमाभिश्च शा० उ० ।
५. यस्य क, घ, ङ । ६. कश्चिदेनाम् शा० उ० । ७. इयं पंक्तिः शा० उ० नास्ति ।
८. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ५।३-४ । ९. ०नप्येशी क, नथेशी ङ, ०नप्यथेशी ख, घ ।
१०. दिशश्चोर्ध्वमध० ख । ११. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ५।१० ।
१२. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।६,७ । १३. ज्ञात्वात्मसंस्थाम० ख ।
१४. विश्वमातरम् शा० उ० । १५. परमां शा० उ० । १६. महेशीं ख ।
१७. परदेवतां च शा० उ० ।

पतिं पतीनां परमां पुरस्तात्
विदाम[1] तां गुह्यकालीमनीशाम्[2] ।
तस्या[3] न कार्यं करणं च विद्यते ।
न तत्समा चाभ्यधिका च दृश्यते ॥२४४॥
परास्याः शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।
कश्चिन्न तस्याः पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव वा किञ्चिल्लिङ्गम्[4] ॥२४५॥
सा कारणं कारणाधिपाधिपा[5]
कश्चिन्न चास्याः जनिता न चाधिपा[6] ।
एका देवी सर्वभूतेषु गूढा
व्याप्नोत्येतत् सर्वभूतान्तरस्था ॥२४६॥
कर्माध्यक्षा सर्वभूताधिवासा
साक्षिणी वेत्त्री[7] केवला निर्गुणा च ।
एका[8] वशिनी[9] निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा या करोति ॥२४७॥
नानारूपं या च वक्त्रं विधत्ते[10]
नानारूपान् या च बाहून् बिभर्ति ।
नित्या नित्यानां चेतना चेतनाना-
मेका[11] बहूनां या विदधाति कामान्[12] ॥२४८॥

---

१. विद्यावतां शा० उ० ।
२. ० कालीं मनीषाम् ख ।
३. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।८,९,११ ।
४. नैव तस्याश्च लिङ्गम् शा० उ० ।
५. कारणाधिरूपा ख, कारणकारणाधिपा शा० उ० ।
६. नास्याश्च कश्चिज्जनिता नचाधिपः शा० उ० ।
७. च स्त्री ख, साक्षिण्येषा केवला निर्गुणा शा० उ० ।
८. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।१२,१३,१८ ।
९. वशिन्येका शा० उ० एकाविनी ख ।
१०. नानारूपा दशवक्त्रं विधत्ते शा० उ० ।
११. सा ख ।
१२. कायान् ख ।

तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवीं मुच्यते सर्वपाशैः ।
या[1] ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
या वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै [तस्यै ?] ॥२४९॥
या वै विष्णुं पालने सन्नियुङ्क्ते
रुद्रं देवं संहृतौ चापि गुह्या ।
तां वै[2] देवीमात्मबुद्धिप्रकाशां
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥२५०॥
निष्कलां[3] निष्क्रियां शान्तां निरवद्यां निरञ्जनाम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥२५१॥
बह्वाननकरां देवीं गुह्यामेकां समाश्रये ॥
इयं हि गुह्योपनिषत् सुगूढा
यां वै ब्रह्मा वन्दते विश्वयोनिः[4] ।
एतां [5]जल्पन्तश्चान्वहं तन्मया ये
सत्यं सत्यममृतास्ते बभूवुः[6] ॥२५२॥
वेदवेदान्तयोर्गुह्यं पुराकल्पप्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय[7] दातव्यं नापुत्रशिष्याय वै पुनः ॥२५३॥
यस्य देव्यां परा भक्तिर्यथा देव्यां तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥२५४॥
॥ इत्यथर्ववेदे गुह्योपनिषत्[8] ॥

---

१. इतः पंक्तिद्वयं घ, छ, शा० उ० नास्ति ।
२. वै ख नास्ति ।
३. तुलनीया श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।१९, इतः पंक्तित्रयं शा० उ० नास्ति ।
४. यस्या ब्रह्मा देवता विश्वयोनिः शा०, उ०।
५. कल्पान्तश्चा ० ख, एतां जपंश्चांन्वहं भक्तियुक्तः शा० उ० ।
६. सत्यं सत्यं ह्यमृतः संबभूव शा० उ० ।
७. सा प्रशान्ताय दातव्यं पुत्र शिष्याय वै पुनः ख, न प्रज्ञाता प्रदातव्यं ना पुंत्र शिष्याय वै पुनः क, ना शिष्याय च वै पुनः शा० उ० ।
८. इत्यथर्वगुह्योपनिषत् समाप्ता ख, घ ।

महाकाल[1] उवाच
गुह्योपनिषदित्येषा गोप्याद् गोप्यतरा सदा ।
चतुर्भ्यश्चापि वेदेभ्यः एकीकृत्यात्र योजना[2] ॥२५५॥
उपदिष्टवन्तः सर्गादौ सर्वानिव दिवौकसः ।
एवंविधं हि यद् ध्यानमेवंरूपं च कीर्तितम् ॥२५६॥
सा सपर्या परिज्ञेया विधानमधुना शृणु ।

[द्वितीयोपासकोपासितायाः विधानम्]

सोऽहमस्मीति प्रथमं साहमस्मि[3] द्वितीयकम् ॥२५७॥
तदहमस्मि[4] तृतीयं च महावाक्यत्रयं भवेत् ।

[स्वागमस्य वेदपुराणाभ्यामुपोद्बलनम्]

आद्यान्येतानि वाक्यानि गोप्याद्[5] गोप्यतराणि हि ॥२५८॥
वेदेषु च पुराणेषु कथितानि स्वयंभुवा ।
देवीसन्तोषकारीणि पठ्यन्ते तत्त्वदर्शिभिः ॥२५९॥

[ऊर्ध्वनिर्दिष्टमहावाक्यत्रयस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ब्रह्मविष्णुमहारुद्रास्त्रयाणामृषयो मताः ।
जगतीपंक्तिगायत्रीच्छन्दांसि परिचक्षते ॥२६०॥
तथानल्पफलाः प्रोक्ताः सुखैश्वर्यविधायकाः ।
देवता गुह्यकाली च रजःसत्त्वतमोगुणाः ।
सर्वेषां प्रणवो बीजं हंसः शक्तिः प्रकीर्तिता ॥२६१॥
मकार[6]श्च अकारश्च उकारश्चेति कीलकम् ।
एभिर्वाक्यत्रयैः[7] सर्वं कर्म प्रोक्तं[8] विधानकम्[9] ॥२६२॥
अनुक्षणं जपश्चैषां[10] निश्चयः परिकीर्त्यते[11] ।
द्वितीयोपासकानां हि परिपाटीयमीरिता ॥२६३॥

---

१. इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति ।
२. योजिता शा० उ० । ३. सोऽहमस्मि शा० उ० । ४. तदस्म्यहं शा० उ० ।
५. गोप्यादिहारभ्य २५९ तम श्लोकस्य तृतीयचरणं यावत् गायत्र्यन्तं घ, छ पुस्तकयोः शा० उ० इत्यत्रापि नास्ति ।
६. मकारश्चाप्यकारश्च शा० उ० । ७. एभिर्वाक्यैस्त्रयैः ख । ८. प्रोतं शा० उ० ।
९. विधानतः शा० उ० । १०. जपंश्चैवं शा० उ० । ११. परिकीर्तितः शा० उ० ।

[द्वितीयोपासकविहितोपासनाया महिमा]

एवमाचरते यस्तु[1] मनुष्यो भक्तिभावितः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः कैवल्यायोपतिष्ठते[2] ॥२६४॥
सर्वाभिः सिद्धिभिस्तस्य किं कार्यं कमलानने[3] ।
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
विश्वम्भरा पुण्यवती च तेन ।
अपारसंसारसमुद्रमध्ये
ईदृग्विधो निश्चयो यस्य जातः ॥२६५॥
मेरुमन्दरतुल्यानि पातकानि महान्त्यपि ।
तं प्राप्य विलयं यान्ति तूलानीव हि पावके[4] ॥२६६॥
जपन्यासार्चनैस्तस्य किं कार्यं वरवर्णिनि ।
यस्येदृशं विधानं हि जागरूकं सदा हृदि[5] ॥२६७॥
जपन्यासार्चनैस्तस्य किं कार्यं वरवर्णिनि ।
विधानस्यास्य महिमा मया वक्तुं न शक्यते ॥२६८॥
त्रुटिमात्र[6]मपीदं हि विधानं विदधत्[7] प्रिये ।
सप्तावरान् सप्तपूर्वान् तारयेद् वंशसंभवान् ॥२६९॥
सायुज्यमोक्षमाप्नोति स्वयमप्यतिनिर्ममः[8] ।
एतस्य हि विधानस्य क्रियमाणस्य पार्वति ॥२७०॥
सिद्धयो विघ्नकारिण्यः फलप्राप्तिश्च तादृशी ।
ध्यानपूजाजपन्यासाः केवलायासहेतवः ॥२७१॥
महाफलमनायासादिदमेकं विशिष्यते ॥२७२॥
द्वितीयरूपं देव्यास्तु द्वितीयोपासकास्तथा ।
इति ते कथितं सर्वं तृतीयमधुना शृणु ॥२७३॥

इति[9] श्रीमहाकालसंहितायां द्वितीयोपासककथनं नाम प्रथमः पटलः ।

---

१. एवं चाप्यातुरो यस्तु शा० उ० ।
२. ० योपकल्पते ख, घ ।
३. इह गुह्योपनिषदः समाप्तिः शा० उ० ।
४. पावकम् ख, घ ।
५. इतः पंक्तिद्वयं घ पुस्तके वारद्वयमागच्छति ।
६. श्रुतिमात्र छ ।
७. विधिवत् घ ।
८. निर्मलम् ख, घ ।
९. इति महाकालसंहितायां द्विशतैकाशीतितमः पटलः क, छ ।

द्वितीयः पटलः

महाकाल उवाच

अथ सृष्टेषु सर्वेषु देवेषु जगदम्बया[1] ।
दत्ताधिकारेषु तथा तत्तत्कार्यैकसिद्धये ॥ १ ॥
बभूव प्राकृतः सर्गो मैथुन्यः कामसंभवः ।
तत्रादौ मनवो जाताश्चतुर्दश च वासवाः ॥ २ ॥
मरीच्याद्याश्च मुनयस्तद्वंश्याश्चापरे तथा ।
इन्द्रादयस्तथा रुद्रा आदित्या वसवोऽनिलाः ॥ ३ ॥

[उत्कर्षार्थं देवेषु पारस्परिकः कलहः]

ते च स्वस्याधिकारस्योत्कर्षार्थमतिरेकतः ।
अहमहमिकया बद्धस्पर्धास्तुल्येऽपि जन्मनि ॥ ४ ॥

[देव्याः प्रसादार्थं देवानां कृच्छ्रं तपः]

चक्रुस्तपो महाघोरं देव्याराधनहेतवे ।
निराहारास्तपोनिष्ठास्तच्चित्तास्तत्परायणाः ॥ ५ ॥
केचिद् वर्षायुतं देवि केचिन्नियुतमेव च ।
अन्ये च प्रयुतं दत्तचित्ता भक्तिपरायणाः ॥ ६ ॥
ध्यानलीना यतात्मानस्तदर्पितमनःक्रियाः ।
पूर्वोदितोपनिषदो गृणन्तो वाक्यसंयुताः ॥ ७ ॥

---

१. जगदम्बिका (?) ख, घ ।

ततस्तुतोष देवानां[1] गुह्यकाली वरानने ।
वर्षवातातपक्लिष्टवपुषां शुद्धचेतसाम् ॥ ८ ॥

[देवेभ्यो वरं दातुं देव्या आविर्भावः]

अथैषां[2] वरदानार्थमाविरासीत् सुरेश्वरी ।
वरं वृणुध्वमित्युक्तास्तेऽहंपूर्विकयोद्धृताः ॥ ९ ॥
व्यवदन्त मिथः सर्वे गणरूपा दिवौकसः ।
निवेदयामासुरपि देव्यै स्वस्वाशयं च ते ॥१०॥
तुल्ये तपसि सर्वेषां स पुरस्ताद् ग्रहीष्यति ।
वरं त्वत्तो जगद्धात्रि पश्चात् कथमहं पुनः ॥११॥
वरं वा दित्ससि यदि तदा युगपदर्पय ।
तुल्ये तपसि तुल्यायां तव प्रीतौ सुरेश्वरि ॥१२॥
मत्तः पूर्वं वरमयं ग्रहीष्यति कथं शिवे ।
पश्चादहं कथमिति दुःखं मां बाधते महत् ॥१३॥
एवं सर्वेऽपि कलहायमानास्तु परस्परम् ।
गृहीतवन्तो न वरमीर्ष्याकुलितमानसाः ॥१४॥

[देवादीनां कलहापाकृतये देव्या विविधमुखतावर्णनम्]

इत्थं परस्परं तेषामहङ्कारानुवर्तिनाम् ।
विवादं प्रेक्ष्य देवानां हसन्ती त्रिदशेश्वरी ॥१५॥
चक्रे तावन्ति वक्त्राणि युगपद् वरदत्तये ।
सदाशिवायैकवक्त्रा त्रिवक्त्रा त्रिगुणाय च ॥१६॥
प्रेतेभ्यः पञ्चवक्त्राऽभूद् वरदानार्थमम्बिका ।
सप्तर्षीणां सप्तवक्त्रा वसूनामष्टतुण्डिका ॥१७॥
ग्रहाणां नववक्त्रा च दिक्पालानां दशानना ।
एकादशास्या रुद्राणां सूर्याणां द्वादशानना ॥१८॥
त्रयोदशास्या विश्वेषां वेतालानां तथैव च ।
चतुर्दशमुखेन्द्राणां मनूनां तावदानना ॥१९॥

---

१. देवीनां ख । २. तथैषां ख, घ ।

अग्नीनां वरदानार्थं गुह्या पञ्चदशानना ।
सिद्धानां[1] षोडशास्या च साध्ये सप्तदशानना ॥२०॥
अष्टादशास्या यक्षाणामूनविंशा च रक्षसाम् ।
विंशत्यास्या किन्नराणामेकविंशाप्सरःसु च ॥२१॥
गुह्यकानां पिशाचानां तावद्वक्त्रा महेश्वरी ।
द्वाविंशास्या[2] भास्कराणां गन्धर्वाणां द्वयोत्तरा ॥२२॥
विद्याधराणां त्रिंशास्या षट्त्रिंशास्या प्रजेशितुः ।
तुषितानां षष्टयास्या मारुतानामशीतिका ॥२३॥
दैत्यानामसुराणां च दानवानां शताधिका ।
महाकल्पे तु संप्राप्ते अयुतास्या भविष्यति ॥२४॥
द्विलक्षबाहुर्नियुतदीर्घदेहा भविष्यति ।
एवंभूत्वा जगद्धात्री वरं तेभ्यो ददौ पुरा ॥२५॥

[देव्याः विस्मापकत्वं स्वरूपम्]

निर्गुणा सगुणा जाता निराकाराऽपि साकृतिः ।
अदेहाऽपि सदेहाभूदरूपा रूपधारिणी ॥२६॥
यथा यथा मुखाधिक्यं भुजाधिक्यं तथा तथा ।
अस्त्राधिक्यं भुजाधिक्यादस्त्राधिक्यात्करालता[3] ॥२७॥
तत्तन्निमित्तमित्युक्तं यत्पुरा तदुदीरितम् ।
तिर्यग्भ्यां मुखकर्तृत्वे कारणं तु पुरोदितम्* ॥२८॥

[देव्या वरमासाद्य देवानां स्वनियोगेऽवस्थितिः ।]

वरं युगपदासाद्य देव्या देवा यथोचितम्[4] ।
जग्मुः स्वस्वाधिकाराणां पालनार्थं त्रिविष्टपम् ॥२९॥

[नृपादिभिः विविधमुखायाः यथारुचि स्वरूपविशेषाणामुपासनम्]

ततः प्रभृति भूपालाः सोमसूर्यान्वयोद्भवाः ।
नानागोत्रोद्भवाश्चापि ऋषयो मुनयस्तथा ॥३०॥

---

१. गुह्यानां ख ।
२. द्वात्रिंशास्या [?] ख ।
३. ० करा मता ख, घ ।
४. यथोदितम् ख, घ, छ ।

* अस्यैव प्रथम पटले १३०-३२ श्लोकेषु प्रतिपादितम् ।

युगे युगे मनुष्याश्च साधकाश्च विशेषतः ।
उपासांचक्रिरे देवीं तावत्तावन्मुखां प्रिये ॥३१॥

[मुखभेदेन बाहुभेदनिरूपणम्]

अथ वक्त्रभिदा देवि बाहुभेदान् निशामय ।
येषां येषां च जन्तूनामाकारेण मुखं भवेत् ॥३२॥
दशानना तु या गुह्या चतुःपञ्चाशबाहुका ।
नरद्वीपिहरिग्राहशिवेभकपिवाजिनाम् ॥३३॥
तार्क्ष्यर्क्षाखारिवक्त्रा सा करास्त्रे पूर्वमीरिते ।
अथाधिक्ये तु वक्त्राणां भुजानां वरवर्णिनि ॥३४॥

[कियद्भुजा का भगवतीत्यस्य नियमकथनम्]

आस्ये तु विषमेऽष्टानां दशमानां [दशानां च ?] समे तथा ।
कराणामतिरेकत्वमिति सिद्धान्त ईरितः ॥३५॥
अष्टास्त्रगणमेकत्र दशास्त्रमितरत्र च ।
क्रमेण वक्ष्यमाणेषु ज्ञेयं साधकसत्तमैः ॥३६॥

[देव्या मुखवर्णनम्]

अथादौ मुखमाख्यास्ये तत्र यत्ना भवेश्वरि ।
अस्त्रवद् वदनस्यापि विषमे च समे तथा ॥३७॥
वैक्रियेयञ्च विषमे समे चातुष्पदं भवेत् ।
विहाय नागशरभावनन्ताष्टपदौ हि तौ ॥३८॥
शिखिहंसश्येनशुककाकोलूकपदायुधान् ।
क्रौञ्चसारसकङ्कांश्च विषमास्ये तु योजयेत् ॥३९॥
खलकोलवृषाजोष्ट्रमृगसैरिभपन्नगान् ।
विश्वकद्रूमयाङ्घ्री च समे वक्त्रे विनिर्दिशेत् ॥४०॥
करेष्वेवं दशास्याया वक्ष्यमाणान् प्रवेशयेत् ।
टङ्कं[1] हुलां शुकं चैव शीर्षकं वामतो न्यसेत् ॥४१॥
दक्षे वज्रायोगुडे च करकं चार्धचन्द्रकम् ।
शारिघं क्रकचं शल्यं दर्पणं निषढं[2] तथा ॥४२॥

---

१. टंकं तूलां घ. । २. निषचं [?] ख. घ. ।

फा०--५

ऋष्टिं च कौरजं शातकर्णीं कन्दुकशङ्कुकौ ।
पुस्तकं रत्नसंपीठं हेतिं चापि फणीमुखम् ॥४३॥
व्याख्यानमुद्रां डमरुमस्थिभेदीं नराचकम् ।
शत्रुजिह्वापद्मसुधाभाण्डशंखाभयं तथा ॥४४॥
ताम्बूलं चामरं रत्नदर्वीं व्यजनकं वरम् ।
मधुपर्कस्तथा वीणा जालं दीपकरण्डकम् ॥४५॥
ध्वजश्च स्रुवहस्तश्च कशा चाथ चपेटिका ।
अत ऊर्ध्वं च दिव्यास्त्रं समेषु विषमेषु च ॥४६॥
तावत्येव हि विज्ञेया संख्या तु वरवर्णिनि ।
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं शाङ्करास्त्रमतः परम् ॥४७॥
वैष्णवास्त्रं तथा प्राजापत्यास्त्रं तदनन्तरम् ।
कौवेरास्त्रं[1] तथाग्नेयं कम्पनास्त्रं तथैव च ॥४८॥
ऐन्द्रास्त्रं वारुणास्त्रं च ज्ञेयमष्टोत्तरे शते[2] ।
वायव्यास्त्रं च याम्यास्त्रं[3] कालास्त्रं भौतिकास्त्रकम् ॥४९॥
पार्जन्यास्त्रं वैद्युतास्त्रं नागास्त्रं पार्वतास्त्रकम् ।
पाषाणास्त्रं च सौपर्णं त्वाष्ट्रं तामसतैमिरे[4] ॥५०॥
मातङ्गजम्भकैषीकचाक्रमौदुम्बरं तथा ।
दानवास्त्रं च गन्धर्वं पैशाचं जृम्भगं तथा ॥५१॥
प्रस्वापनं हैमनं च राक्षसं सौरमेव च ।
गुह्यास्त्रं चापि भारुण्डं शावरं कालकूटकम् ॥५२॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चापि वामतः सन्निवेशयेत् ।
वेतालं शारभं राजसार्क्षं स्कन्दं तथैव च ॥५३॥
प्रमथास्त्रं वैनायकं [5]गणास्त्रौत्पातमेव च ।
ज्वरास्त्रं चापि कूष्माण्डं मूर्च्छनं भ्रामकं तथा ॥५४॥

---

१. कौरवास्त्रं छ ।
२. ० मष्टोत्तरेण ते ख ।
३. पाश्यास्त्रं ख ।
४. तामसमेनिरे क, तामसतौमरे ङ, ।
५. नायास्त्रौत्पातमेव च ख, इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति, नागास्त्रौत्पातमेव च छ ।

गालनं माकरं स्वाप्नं मोहनं स्तम्भनं तथा ।
बलामतिबलां चापि निमीलनमचेतनम् ॥५५॥
उन्मादास्त्रं सर्वशेषे द्विषष्टिशतबाहुका ।
पादास्त्रं[1] मुखतो देव्यास्तन्न संभवति प्रिये ॥५६॥
प्रतिषिद्धा स्वयं देव्या निर्वेदं गतया तया[2] ।
हेतुं कञ्चित् समालम्ब्य जुगुप्साकरुणाश्रयम् ॥५७॥

[देवीमहाकालयोः मूर्त्युपसंहारविषयकं प्रश्नोत्तरम्]

देव्युवाच
को हेतुस्तत्र देवेश का जुगुप्सा कृपाथ का ।
कथं देव्या स्वका मूर्तिः स्वयमेवोपसंहृता ॥५८॥
न ह्यल्पं कारणं भावि तदन्तर्द्धानकारकम् ।
कथय त्वं समासेन महत्कौतूहलं मम ॥५९॥
महाकाल उवाच
श्रूयतां देवदेवेशि तन्निषेधस्य कारणम् ।
अद्यापि[3] केनचिन्नैव रहस्यं ज्ञायते त्विदम् ॥६०॥
न **यामलादौ** कथितं नैवेदं **वामकेश्वरे** ।
त्रिपुरघ्नस्तु मां प्राह रहस्यमिदमुत्तमम् ॥६१॥
त्रयोविंशत्यास्यया हि गुह्यकालिकया पुरा ।
स्वशक्तिभिः संवृतया क्रीडन्त्या पितृकानने ॥६२॥
दौहित्रान् गौतमस्यर्षेः जारूथ्याँस्त्रीन् मुनीश्वरान् ।
पैलिङ्गं [पैङ्गलि] शरलोमानं पलाशायनमेव च ॥६३॥
संश्चिकीर्षून् मृतं तातं समायातान् महानिशि ।
स्वेच्छयोपस्थितान् वीक्ष्य विप्रानापानमत्तया ॥६४॥
भक्षिताः सशवा यद्वद् द्वीपिन्या शशशावकाः ।
कालचक्रनृसिंहेन देवीसन्निधिवर्त्तिना ॥६५॥

---

१. पादास्त्रमुखता देव्या० ङ, पादास्तु मुखता देव्या च ।
२. तथा ख, घ । ३. अस्यापि ख, घ ।

त्वया कृता ब्रह्महत्या सहासमुखमीरिता ।
विमृशन्त्याक्षया चेष्टां ततः सपितरस्त्रयः ॥६६॥
ते तस्य[1] जीविता विप्राः सञ्जातकृपया तया ।
जातनिर्वेदया प्रोक्ता चामुण्डा भैरवी पुरः ॥६७॥
सशवा भक्षिता विप्रा यादृगाकारया[2] मया ।
न कदापि भविष्यामि तादृशाकारधारिणी ॥६८॥
अद्यप्रभृति युष्माभिर्ज्ञातव्यं मदुदीरितम् ।
ततः प्रभृति सा मूर्त्तिरन्तर्द्धानमुपागता ॥६९॥
एतस्मात् कारणाद्देवि सा नोपास्या हि कर्हिचित्[3] ।
न कासरास्यं हि विना पादास्त्राननता[4] भवेत् ॥७०॥
विषमास्याष्टबाहुत्वमतो दूरीबभूव ह ।
चतुर्विंशाननायास्तु दश दोष्णां विधीयते ॥७१॥
भैरवं[5] चाप्युलूकं च तथापस्मार एव[6] च ।
अन्तर्द्धानं मारणं च वामतः सन्निवेशयेत् ॥७२॥
त्रैदशं चापि सैंहं[7] च जातस्पन्द[8]विषादकम् ।
दक्षिणे सन्निवेष्टव्यं शतादूर्ध्वं द्विसप्ततिः ॥७३॥
क्रौञ्चसारसकङ्काहिविश्वकद्रूमयाङ्घ्रिकैः ।
त्रिंशद्वक्त्रा गुह्यकाली ध्यातव्या जगदम्बिका ॥७४॥
वामे महिषखड्ग[9]र्क्षकौञ्जरं[10] योगिनीं तथा ।
दक्षे भैरवचामुण्डाडाकिनीनारसिंहकम् ॥७५॥
वाराहं च ततो दोष्णां त्वशीतिं च[11] शताधिकम् ।

[षट्त्रिंशदाननायाः मुखभेदवर्णनम्]

षट्त्रिंशदाननायास्तु मुखभेदं निशामय ॥७६॥

---

१. उद्वस्य ख घ । २. यादृशाकारमत्तया ख घ ।
३. कस्यचित् ङ च । ४. विनोदरज्जनता क ।
५. फैरवं ङ । ६. स्मारमेव च ख, घ ।
७. स्नेहं च ख । ८. जाड्यास्यन्दविषादकम् ख, ङ ।
९. खड्गार्क्ष ख, घ । १०. कुञ्जरं घ० ।
११. त्वशीतिश्च शताधिका ख, घ, ०काम् ङ ।

बाभ्रवं कामठं नाक्रं पारावतमथापि च ।
कारण्डवं च हारीतं षडेतानि प्रयोजयेत् ॥७७॥
पूर्वोदितस्तु[1] नियमो नातः परमुदीर्यते ।
समास्ये दशबाहूनामाधिक्यमिति पार्वति ॥७८॥
बाहवस्त्रिशदास्यायाः यावन्त्यस्त्राणि च क्रमात् ।
भवेत्तच्चतुरावृत्त्या नागदृ[दि]क्कुञ्जरोन्मिताः ॥७९॥
तस्या वक्त्रे द्विगुणिते षष्टिवक्त्रा प्रजायते ।
बाहवस्त्रिशदास्याया यावन्तः परिकीर्तिताः ॥८०॥
तेषां द्वात्रिंशदावृत्त्या षष्ट्यास्यायाः कराः स्मृताः ।
ते युगाक्षिद्विपशराः[2] पिण्डीभूता भवन्ति हि ॥८१॥
अतः परमशीत्यास्यां यत्ना भूत्वा निशामय ।
विंशास्याचतुरावृत्तिमशीत्यास्यां विनिर्दिशेत् ॥८२॥
अष्टाशीतिशतं नागयुगघ्नं बाहवो मताः ।
नागदृ[दि]क्तुरगावार्कनिघ्नाः षट्त्र्य[3]शकुञ्जराः ॥८३॥
शतास्या पूर्वमेवोक्ता सक्करास्त्रा मया तव ।
एतावन्तो विशेषाः स्युरन्यत्सर्वं पुरोक्तवत् ॥८४॥
आसनाद्यहिभूषादिरूपरक्तार्णवादयः ।
ईदृगाकारणीं गुह्यां मनुष्याः समुपासते ॥८५॥
ऋषयः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि स्त्रियस्तथा ।
यस्यां यस्यां यस्य यस्य भक्तिरुत्पद्यते प्रिये ॥८६॥
उपास्ते स स तां तां हि फलभाक् चापि जायते ।

[महावाक्यद्वैविध्याभिधानम्]

इदानीं श्रूयतां शेषमहावाक्यं महोदयम् ॥८७॥
तद्द्विधा भावनाख्यं च क्रियाख्यं च भवेदिह ।

[भावनाख्यमहावाक्यनिरूपणम्]

पुरोऽवधारयाद्यं हि द्वितीयं तदनन्तरम् ॥८८॥

---

१. पूर्वादिस्तु क । २. च द्विपराः ख ।
३. त्र्यंशकुञ्जराः ख ।

[1]आदौ तत्त्वमसि ज्ञेयं तत्त्वमस्मि ततः परम् ।
अयमात्मा ब्रह्म ततस्ततो ब्रह्माहमस्मि च ॥८९॥
अयमात्मा सा तयाऽमृतः कैवल्यायोपतिष्ठते ।
भावनाया इदं शेषमहावाक्यं महाफलम् ॥९०॥

[महावाक्यानामृष्यादिनिरूपणम्]

प्रत्येकमेषामृष्यादि शृणु यत्नेन चेतसा ।
ऋषिराद्यस्य सनकः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ॥९१॥
ज्ञेया गुह्या देवता च प्रणवो बीजमुच्यते ।
शक्तिः कलामृतं बीजं कीलकं परिकीर्तितम् ॥९२॥
उपयोगोऽस्य विज्ञेयः सदा कैवल्यमुक्तये ।
सनन्दर्षिर्द्वितीयस्य मध्याच्छन्दो विधीयते ॥९३॥
देवता सैव विज्ञेया ब्रह्मबीजं प्रकीर्तितम् ।
आनन्दः [2]शक्तिरुद्दिष्टो शान्तिः कीलकमुच्यते ॥९४॥
उपयोगस्तु सर्वेषां पूर्वोदितफलाप्तये ।
सनातनस्तृतीयस्य ऋषिः संकीर्त्यते प्रिये ॥९५॥
छन्द उक्था गुह्यकाली देवीबीजं तथापरम् ।
शक्तिर्नादः कीलकं तु क्षेत्रज्ञः समुदीरितः ॥९६॥
तुर्यर्षिरासुरिर्ज्ञेयो गायत्री छन्द उच्यते ।
देवी गुह्याऽव्ययं बीजं शक्तिश्चापि निरञ्जनम् ॥९७॥
तत्त्वं च कीलकं ज्ञेयमुपयोगस्तु पूर्ववत् ।
ऋषिः शेषस्य कपिलश्छन्दश्च बृहती मता ॥९८॥
बीजं तु वाग्भवं प्रोक्तं मोक्षः शक्तिः प्रकीर्त्यते ।
निर्वाणं कीलकं चापि उपयोगस्तु पूर्ववत् ॥९९॥

[सप्रपञ्चं क्रियाख्यमहावाक्यनिरूपणम्]

यत्क्रियाख्यं महावाक्यं तदिदानीं निशामय ।
एतेषामुपयोगश्च क्रियायामेव दृश्यते ॥१००॥

---

१. इयं पंक्तिः घ नास्ति ।   २. रुद्दिष्टा ख, घ ।

सर्गादौ यत्समुत्पन्नं यस्मादन्ते नयिष्यति ।
यत्र तद्भावना देवि महावाक्यं क्रियात्मकम् ॥१०१॥
योगिनां तच्च षट्त्रिंशद् वैदिकानां च विंशतिः ।
वेदान्तिनां द्वादश च चत्वार्येव हि मन्त्रिणाम् ॥१०२॥
तस्योपयोग आसनशोधनादौ प्रकीर्तितः ।
प्रथमं तु महावाक्यं शक्तेर्जातः शिवः स्वयम् ॥१०३॥
लयमेष्यति चान्तेऽस्याः सर्वेषामुत्तमं त्विदम् ।
अस्य शक्तिशिवाख्यस्य महावाक्यस्य पार्वति ॥१०४॥
सदाशिव ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ।
देवते द्वे शक्तिशिवौ कामार्णं शक्तिरुच्यते ॥१०५॥
प्रासादं कीलकं ज्ञेयं बीजं वाग्भवमुच्यते ।
विनियोगः सामरस्यानन्दानुभवसिद्धये ॥१०६॥
जपे चेति प्रतिज्ञाय षड्दीर्घैर्मायया न्यसेत् ।
षडङ्गं योगिनीकूर्चकामिन्यर्णत्रयं जपेत् ॥१०७॥
यथाशक्ति द्वितीयं तु महावाक्यं ततः स्मरेत् ।
परमात्मनः समुत्पन्नो जीवात्मा [1]जन्महेतवे ॥१०८॥
लयमेष्यति तत्रान्ते द्वितीयं तत् प्रकीर्तितम् ।
अस्य परमात्मजीवात्ममहावाक्यस्य पार्वति ॥१०९॥
ब्रह्मा ऋषिः समुद्दिष्टो गायत्री छन्द उच्यते ।
परमात्मा च जीवात्मा देवता परिकीर्तिता ॥११०॥
पाशः शक्तिः समुद्दिष्टः प्रणवं कीलकं मतम् ।
नादबीजं हि बीजं स्यात् जीवात्मपरमात्मनोः ॥१११॥
सामरस्याख्यकैवल्यनिर्वाणे विनियोगता ।
षडङ्गं चापि षड्ह्रस्वैः कृत्वा मन्त्रं जपेदनु ॥११२॥
ओं हंसः सोऽहमिति वै यथाशक्ति जपेदमुम् ।
तृतीयं तु महावाक्यं निशामय महेश्वरि ॥११३॥
जीवात्मनः प्रजातानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
लयमेष्यति तत्रान्ते ऋष्यादिं विनिबोध[2] मे ॥११४॥

---

१. आत्महेतवे ख । २. च निबोध ख, घ, ङ ।

अस्य जीवात्मतन्मात्रेन्द्रियवाक्यस्य पार्वति ।
ऋषिः प्रजापतिः प्रोक्तः प्रतिष्ठा छन्द उच्यते ॥११५॥
देवता चापि तन्मात्रजीवात्मेन्द्रियमुच्यते ।
वाग्भवं शक्तिराख्याताङ्कुशं कीलकमुच्यते ॥११६॥
प्रासादं बीजमुद्दिष्टं वाङ्मनोनेत्रश्रावसाम् ।
घ्राणजिह्वात्वचः सामरस्ये च विनियोगता ॥११७॥
शब्दादिभिः षडङ्गं स्यात् षड्दीर्घं प्रजपेन्मनुम् ।
चतुर्थं तु महावाक्यममृतात्तीर्थमुत्थितम् ॥११८॥
लयमेत्यन्ति [ति ?] चान्तेऽत्र महावाक्यं ततः स्मृतम् ।
अस्थ तीर्थामृतन्यासस्य कौशिक ऋषिर्मतः ॥११९॥
पंक्तिश्छन्दोऽमृतं देवी शक्तिरप्यमृतं भवेत् ।
मायाबीजं स्मरः कीलः सामरस्योपयोगिता ॥१२०॥
योगिनीकूर्चरावाणां जपं कुर्याच्च शक्तितः ।
क्रियाख्यं तु महावाक्यमित्येतत् परिकीर्तितम् ॥१२१॥

[तृतीयपटले वर्णयिष्यमाणविषयाभिधानम्]

उपासकानां देव्याश्च इति भेदा मयेरिताः ।
यावद्यावन्मुखायास्तु यो यो मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥१२२॥
तेषां मनूनामुद्धारमेकवर्णायुतावधि ।
ऋषिच्छन्दोबीजशक्तिकीलकादिसमन्वितम् ॥१२३॥

[गुह्यकालीखण्डस्य विषयवस्तुवर्णनम्]

अतः परं सावधाना श्रृणु यत्नेन चेतसा ।
न्यासभेदान् यन्त्रभेदान् पूजाभेदांस्ततः परम् ॥१२४॥
पवित्रदमनारोपशरत्कालोपरागिकीः ।
क्रियाः श्रोष्यसि यच्छ्रुत्या सर्वपापक्षयो भवेत् ॥१२५॥

इति महाकालसंहितायां त्रिविधध्यानदेवतोपसकादिनिर्णयो नाम द्वितीयः पटलः ।

तृतीयः पटलः

[विधातुरुपास्याया एकाक्षरमन्त्रोद्धारः]

महाकाल उवाच

एकयैव हि शाकिन्या भवेदेकाक्षरी शुभा ।
ऋषिर्हिरण्यगर्भोऽस्य छन्द उक्था प्रकीर्तिता ॥ १ ॥
देवता गुह्यकाली च कालीबीजं तु बीजकम् ।
कूर्चः शक्तिः स्मरः कील उपयोगस्तु मुक्तये ॥ २ ॥
देव्यस्य तारैकमुखी द्विबाहुरसिचर्मधृक् ।
विधात्रुपासिताध्यानं सर्वमन्यत् [1]पुरोक्तवत् ॥ ३ ॥

[अनङ्गोपास्यायास्त्र्यक्षरमन्त्रोद्धारः]

तारत्रपाशाकिनीभिस्त्र्यक्षरोऽन्यो भवेन्मनुः ।
अस्यर्षिः परमेष्ठी स्याज्जगतीच्छन्द उच्यते ॥ ४ ॥
मन्त्रदेवी गुह्यकाली मायाबीजमुदीर्यते ।
लक्ष्मीः शक्तिर्योगिनी च कीलकं समुदाहृतम् ॥ ५ ॥
सर्वासामेव सिद्धीनां साधनायोपयोगिता ।
त्रिमुखी मनुजद्वीपिफेरुवक्त्रेण शोभिता ॥ ६ ॥
चतुर्भुजा खड्गशूलौ दक्षिणे बिभ्रती शिवा ।
वामकरे पाशमुण्डौ दधाना कालविग्रहा ॥ ७ ॥
अनङ्गोपासिता विद्या त्रैलोक्यस्यापि मोहिनी ।
स्त्रीवश्यकारिणां नृणां सद्यः प्रत्ययदायिनी ॥ ८ ॥

---

१. पुरोदितम् घ ।

[वरुणोपास्यायास्त्र्यक्षरमन्त्रोद्धारः]

योगिनीशाकिनीस्त्रीभिस्त्र्यक्षरो ह्यपरो मनुः ।
ऋषिराथर्वणो ह्यस्य मध्याच्छन्द उदीर्यते ॥ ९ ॥
देवी गुह्या स्मरो बीजं शक्तिः काली निगद्यते ।
अङ्कुशः कीलकं चापि विनियोगोऽस्य सम्पदे ॥१०॥
एषापि त्र्यानना ज्ञेया गजवाजिनराकृतिः ।
चतुर्दोर्मण्डिता रक्ता दधाना दक्षिणे भुजे ॥११॥
बाणाङ्कुशौ वामकरे चापफेरुशिशून् क्रमात् ।
वरुणोपासिता विद्या तव देवि मयोदिता ॥१२॥

[पावकोपास्यायाः पञ्चाक्षरमन्त्रोद्धारः]

[1]रावकूर्चाग्निकान्ताभिस्ताराद्याभिर्वरानने ।
पञ्चाक्षरी महाविद्या पावकोपासिता मता ॥१३॥
ऋषिरीश्वर एतस्य छन्दोबीजे बृहत्स्मरौ ।
मेघः शक्ती रमा कीलं देवता गुह्यकालिका ॥१४॥
पुरुषार्थचतुष्कस्य सिद्धये विनियोगता ।
पञ्चानना नरद्विपफेरुसिंहखगाकृतिः ॥१५॥
अष्टबाहुः कृपाणेषुचक्राक्षाणि च दक्षिणे ।
धारयन्ती वामकरे [2]चर्मचापाङ्कुशस्रजः ॥१६॥
रक्तश्यामवपुर्भासा सर्वमन्यत् पुरोदितम् ।

[अदित्युपास्यायाः* पञ्चाक्षरमन्त्रोद्धारः]

प्रणवो भौवनेशीरुड्योगिनीशाकिनीयुतः ॥१७॥
पञ्चाक्षरः क्रमेणान्यो गुह्यकाल्या महामनुः ।
ऋषिः पितामहो ह्यस्य गायत्रीच्छन्द इष्यते ॥१८॥

---

१. तार घ । २. चर्मपाशाङ्कुशस्रजः क ।

* इयमादित्योपास्या भवितुमर्हति न तु अदित्युपास्या । अग्रे सूर्योपास्यावत् विष्णुतत्त्वनामकपञ्चाक्षरमन्त्राधिष्ठात्र्यः करानना स्त्राणां विवरणस्य तथैव सङ्गतिर्जायते । न चैतस्मात् पूर्वं क्वचित् सूर्योपास्यायाश्चर्चापि दृश्यते । अनुक्तस्य सादृश्यं ग्रन्थकृतान्यत्र प्रतिपादयितुं न शक्यमिति ।

गुह्या देवी रमा बीजं शक्तिकीले स्मरामृते ।
वश्यकर्मणि भूपानां विनियोगोऽस्य कीर्तितः ॥१९॥
एषापि पञ्चवदना तार्क्ष्यर्क्षेन्द्राश्वदन्तिभिः ।
पूर्ववच्चाष्टदोर्युक्ता तैरेवास्त्रैश्च मण्डिता ॥२०॥
अ[आ]दित्युपासिता प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ।

[शच्युपास्यायाः पञ्चाक्षरमन्त्रोद्धारः]

योगिनीकूर्चरमणीरावैर्मायादिभिर्मनुः ॥२१॥
पञ्चाक्षरः शच्युपास्यः सौभाग्यफलदायकः ।
ऋषिः स्वयम्भूर्बृहतीच्छन्दो गुह्या च देवता ॥२२॥
बीजमस्य समुद्दिष्टं नालीकं वरवर्णिनि ।
चण्डः शक्तिः कीलकं च खेचरी भवति प्रिये ॥२३॥
विनियोगः सर्वकार्यसिद्धये परिकीर्तितः ।
पीतारुणेयं वर्णेन षण्मुखी दशबाहुका ॥२४॥
इभाश्वतार्क्ष्यमकरकपिफेरुमुखाकृतिः ।
शूलं चक्रं गदां शक्तिं बीजपूरं च दक्षिणे ॥२५॥
गृध्रराजं शिवापोतमङ्कुशं रत्नमालिकाम् ।
नृमुण्डं वामहस्ते च धारयन्ती महेश्वरी ॥२६॥
ध्यानपूजादिकं चान्यत् समानं सर्वमेव हि ।

[दानवोपास्याया नवाक्षरमन्त्रोद्धारः]

पुरतः शाकिनीं दत्त्वा डाकिनीं तदनन्तरम् ॥२७॥
वर्णादारभ्य भारत्यास्तृतीयात् सप्तमावधि ।
वर्णनितानन्तराले शिरोऽन्तः स्यान्नवाक्षरी ॥२८॥
ऋषिः स्वयम्भूरुद्दिष्टश्छन्दः पंक्तिरियं सुरी ।
एषा बीजवती कुन्तबीजेन परमेश्वरि ॥२९॥
योगिनी शक्तिरुद्दिष्टा[1] भूतः कीलकमुच्यते ।
मारणायाभिचाराय विनियोगोऽस्य कथ्यते ॥३०॥

१. ०रुदिता घ० ङ० ।

अष्टास्या षोडशभुजाङ्गभासा कृष्णलोहिता ।
द्विपक्षंतार्क्ष्यपञ्चास्यकपिग्राहाश्वफेरुभिः ॥३१॥
त्रिशूलखड्गचक्रेषुगदाप्रासत्रिकर्तृका ।
दधाना दक्षिणे हस्ते वामे पाशं च चर्म च ॥३२॥
अहिकोदण्डपरशुघण्टामालाकपालकान् ।
दानवोपासिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥३३॥

[मृत्युकालयोरुपास्याया नवाक्षरमन्त्रोद्धारः]

एतस्यैव द्वितीयार्णं महातश्चण्डतोऽप्यनु ।
संबोधनपदं योगेश्वर्या मन्त्रो नवाक्षरः ॥३४॥
ऋषिर्मृत्युञ्जयोऽप्यस्य छन्दस्त्रिष्टुवुदीरितम् ।
एतन्नामयुता गुह्यकाली भवति देवता ॥३५॥
स्यादत्र खेचरीबीजं स्त्रीकाल्यौ शक्तिकीलके[1] ।
विनियोगस्तु योगेन कैवल्यपदलब्धये ॥३६॥
तारं विना भारतीयमुखानि क्रमतो नव ।
भुजैर्युताष्टादशभिस्तत्तदस्त्रोपशोभितैः ॥३७॥
खड्गाङ्कुशौ रत्नमालां त्रिशूलं परशुं तथा ।
बाणान् पाशुपतान् पञ्च गदां मुष्टिं च कर्तृकाम् ॥३८॥
दक्षिणे वामतश्चर्म पाशं खट्वाङ्गमेव च ।
भुशुण्डीं चक्रधनुषी घण्टामुन्मादवंशिकाम् ॥३९॥
कपालं क्रमतश्चेति बिभ्रती घोररूपिणी ।
देवेशि मृत्युकालाभ्यामियं पूर्वमुपासिता ॥४०॥

[भरतोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

या पूर्वमुद्धृता विद्या भरतोपासिता प्रिये ।
अन्योन्यव्यत्ययात्तस्या बीजानामुपजायते ॥४१॥
आद्यया त्रपया ज्ञेयो भरतोपासितो मनुः ।

[च्यावन्याः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

पुरस्थया तु योगिन्या च्यावनी परिकीर्तिता ॥४२॥

---

१. शक्तिबीजके (?) घ०

[हारीतोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

हारीतोपासिता प्रोक्ता प्रथमोच्चारणाद् रुषः ।

[जाबालोपास्यायाः षोडशार्णमन्त्रोद्धारः]

जाबालोपासिता सैव पुरतः स्थितया स्त्रिया ॥४३॥

[दक्षोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

पुरोगया तु शाकिन्या सा दक्षोपासिता भवेत् ।

[विविधमुनिभिरुपासितानां देवीनां स्वरूपस्य ऋष्यादीनां च निरूपणम्]

पूर्वोदितानि वक्त्राणि दशैवासां भवन्ति हि ॥४४॥
चतुष्पञ्चाशदस्त्राणि भुजास्तावन्त एव च ।
ऋष्यादिकं च भारत्याः पूर्वमेवोदितं प्रिये ॥४५॥
च्यावन्याः क्रौञ्चपादाख्यऋषिश्छन्दश्च वार्हतम् ।
सैव देवी वधूबीजं सेतूग्रौ शक्तिकीलके ॥४६॥
स एव विनियोगः स्यात् सर्वेष्वेव मनुष्वपि ।
ऋषिर्मधूको हारीत्यास्त्रैष्टुभा छन्दसान्वितः ॥४७॥
एषा देवी बलिर्बीजं गारुडः शक्तिरीरिता ।
मेघः कीलकमाख्यातं विनियोगः स एव हि ॥४८॥
ऋषिः पैङ्गस्तु जाबाल्याः शक्वर्या छन्दसा सुरी ।
सा बीजमक्षो धनदा शक्तिर्विद्युच्च कीलकम् ॥४९॥
कौषीतकऋषिर्दाक्ष्या अत्यष्टिश्छन्द उच्यते ।
देवीयं मानसं बीजं शक्तिकीले गदामहे ॥५०॥
रामोपास्या ऋषिच्छन्दोऽन्विता पूर्वं समुद्धृता ।

[हिरण्यकशिपूपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

अतो हिरण्यकशिपूपासितां त्वं निशामय ॥५१॥
डाकिनीकोषवेदादिरावा माया च योगिनी ।
क्रोधाङ्गनारमालज्जास्ततः कूटोऽप्यनाहतः ॥५२॥
लक्ष्मीस्तारो भौवनेशी फेत्कारी डाकिनी तथा ।
इयं हिरण्यकशिपूपासिता षोडशाक्षरी ॥५३॥

[एतन्मन्त्रस्योपासनानिषेधः ।]

पूर्वमप्युद्धृता चैषा सांप्रतं च समुद्धृता ।
महाप्रलयकर्तृत्वान्नोपास्येयं नृणां प्रिये ॥५४॥

शतशीर्षायुतकरा दुर्निरीक्ष्यतराकृतिः ।

[ब्रह्मोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

ऋष्यादिः पूर्वमुक्तोऽस्य ब्रह्मोपास्यामतः शृणु ॥५५॥
सानुफेत्कारिडाकिन्यस्तारलज्जारमास्ततः ।
रावात् सिद्धिपदं प्रोच्य करालि तदनन्तरम् ॥५६॥
योगिन्यनङ्गशाकिन्यो हृन्मन्वन्तास्ततः परम् ।
इयं सप्तदशी ब्रह्मोपासिता परमेश्वरी ॥५७॥
आदिनारायणऋषिर्वार्हतच्छन्दसान्वितः ।
महागुह्या देवतास्य देवि काल्यन्तयापि[?]च ॥५८॥
सृष्ट्या बीजेन चैवैषा शक्त्या कर्णिकयान्विता ।
वेतालकीलकेनाद्या मुक्त्या च विनियोगिनी ॥५९॥
करास्त्राननभेदोऽस्या भारत्येव प्रकीर्त्यते ।

[वसिष्ठोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

लक्ष्मीर्लज्जा च सानुश्च भोगः कूटोऽप्यनाहतः ॥६०॥
ततश्च डाकिनीहारौ संहिता मेखलापि च ।
अतो नु योषिद्योगिन्यौ संबुद्धिर्गुप्त[ह्य]नामनि ॥६१॥
अस्त्रान्ता सप्तदशिका वासिष्ठी परिकीर्तिता ।
ऋषी रुचिर्बृहच्छन्दो गुह्येयमपि देवता ॥६२॥
धौमावत्येन कूटेन बीजमस्योपवर्णितम् ।
प्रलयः शक्तिरुदिता बलिः कीलकमिष्यते ॥६३॥
विनियोगोऽमृतायैव भारतीवद् वरानने ।

[विष्णुतत्त्वनामकपञ्चाक्षरमन्त्रोद्धारः]

प्रणवो डाकिनी कृत्या डाकिनीप्रणवौ ततः ॥६४॥
पञ्चाक्षरो महामन्त्रः सर्वाद्यः परिकीर्तितः ।
विष्णुना विधृतं यस्मात् तत्त्ववच्चापि चिन्तितम् ॥६५॥
नाम्ना ख्यातं विष्णुतत्त्वं मन्त्राणामुत्तमोत्तमम् ।
ऋषिरस्य विरूपाक्षश्छन्दसा सुप्रतिष्ठया ॥६६॥

आदिशक्तिर्महागुह्या देवता परिकीर्तिता ।
सावित्री नामकं कूटं बीजमस्य शुचिस्मिते ॥६७॥
शक्तिस्तु गोसवो ज्ञेयो नरमेधस्तु कीलकम् ।
विनियोगोऽस्य मन्त्रस्थ सर्वस्मिन्नपि कर्मणि ॥६८॥
अस्याः करान्ननास्त्राणि सूर्योपास्यासमानि हि ।

[अम्बाहृदयनामकाष्टाक्षरमन्त्रोद्धारः]

कुलाङ्गनां समुद्धृत्य देवि वेदाननानननाम् ॥६९॥
डाकिन्योरन्तरे भोगं स्मरं हृन्मन्त्रसंयुतम् ।
उद्धृत्योपास्य देवेशि मन्त्रमंष्टाक्षरं त्विमम् ॥७०॥
मातृतः पितृतश्चापि कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
आरुणेय ऋषिः प्रोक्तो गायत्रीच्छन्द इत्यपि ॥७१॥
गुह्याम्बा देवताप्यस्य बीजं त्रेता प्रगीयते ।
विकुन्तः शक्तिरुदिता शूलं कीलकमिष्यते[1] ॥७२॥
प्रयोगः सर्वसिद्ध्यर्थं[2] विशेषेण तु मुक्तये ।
अम्बाया हृदयं यस्मादतोऽम्बाहृदयं त्विदम् ॥७३॥
अस्यापि सर्वं विज्ञेयं भारतीवद् वरानने ।

[उत्तराम्नायगोपितायाः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

आदौ लज्जां ततो लक्ष्मीं ततस्तारं च डाकिनीम् ॥७४॥
ततो नु दद्यात् फेत्कारीं भाषाकूटमतः परम् ।
मेखलाहारमहिलायोगिनीकूर्चडाकिनीः ॥७५॥
ततो नु मानसं [3]वक्त्रं हार्दमन्त्रान्तमुद्धरेत् ।
ख्याता महाषोडशीयमुत्तराम्नायगोपिता ॥७६॥
ऋषिरस्या लोमपादश्छन्दः पंक्तिरुदाहृता ।
गुह्यातिगुह्या देव्यस्या नृसिंहो बीजमिष्यते ॥७७॥
शक्तिः पिण्डः काकिनी तु कीलकं समुदाहृतम् ।
निःश्रेयसपदावाप्त्यै विनियोगोऽस्य कथ्यते ॥७८॥

---

१. मुच्यते घ । २. सर्वसिद्ध्यर्थे क ।
३. वज्रं घ ।

एकादशास्योपास्या हि विज्ञेया वरवर्णिनि ।

[त्रयोदशास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

तारत्रपारमाकामयोगिनीकामिनीरुषः ॥७९॥
रावः काली डाकिनी च मानसं वज्रमेव च ।
चण्डसानूत्तमाङ्गान्ता षोडशार्णा प्रकीर्तिता ॥८०॥
अस्यर्षिः शरलोमाख्यो मध्यया च्छन्दसा युतः ।
षोडशार्णेश्वरी गुह्यकाली देवी प्रकीर्तिता ॥८१॥
हाकिनी[1]दीर्घमन्दाराः बीजशक्तिककीलकाः ।
त्रयोदशास्या विज्ञेया मन्त्रदेवी महाफला ॥८२॥

[रावणोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रोद्धारः]

मायानङ्गौ रावकूर्चौ सृणिबीजं ततः परम् ।
गुह्यकाल्याश्च संबुद्धिः कालीयोगिन्यनुक्रमात् ॥८३॥
फेत्कारिचण्डौ तदनु योगिनी स्त्र्यग्निवल्लभा ।
रावणोपासिता ज्ञेया देवी सप्तदशाक्षरी ॥८४॥
ऋषिः कात्यायनो ह्यस्य छन्दसानुष्टुभान्वितः ।
देवता सौघनो बीजं शक्तिर्नागश्च कथ्यते ॥८५॥
कुण्डं कीलकमुद्दिष्टं विनियोगश्च सिद्धये ।
प्रकृतेः सर्वमेवेह ग्राह्यमन्यत् सुरेश्वरि ॥८६॥

[रावणोपास्यायाः षट्त्रिंशदक्षरमन्त्रोद्धारः]

तारमैधत्रपालक्ष्मीस्मररावाश्च योगिनी ।
कूर्चोऽङ्गना डाकिनी च तदन्ते भुवनेश्वरी ॥८७॥
सम्बोधनपदं पश्चाद् गुह्यकाल्याः प्रकीर्तितम् ।
[2]एकादशोऽपि बीजानि प्रतिलोम्ना ततः परम् ॥८८॥
त्रपायोगिन्यङ्गनाश्च ततः परमुदीरयेत् ।
अस्त्रत्रयान्ते हृच्छिरसी ज्ञेया षट्त्रिंशदक्षरी ॥८९॥
इयमप्युग्रतोऽप्युग्रा रावणोपासिता मता ।
ऋषिः [3]करन्धमश्चास्य छन्दो विकृतिरीरिता ॥९०॥

---

१. दीपमन्दारा ङ । २. एकादशानि घ ।
३. कबन्धमश्चास्य घ ।

उग्रोग्रा गुह्यकाली सा देवता परिकीर्तिता ।
जम्भो बीजं क्षमा शक्तिर्भारुण्डा कीलकं मतम् ॥९१॥
उग्राय कर्मणेऽप्यस्य विनियोगः प्रकीर्तितः ।
इयं प्रकृतिवत् ख्याता रक्षःसप्तदशी यथा ॥९२॥

[महाविद्याया अष्टपञ्चाशदक्षरमन्त्रोद्धारः ।]

ताराभ्यां डाकिनीमुक्त्वा महाचण्डं यथाक्षरम् ।
योगेश्वरि त्रपावध्वौ ततो जय महा वदेत् ॥९३॥
मङ्गले रावतः सिद्धिकरालिनि वदेत् प्रिये ।
भौवनेशी योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी ततः ॥९४॥
कालिशब्दान् महाशब्दान्निर्वाणात् सिद्धि चोद्धरेत् ।
प्रदे महाभैरवितो विच्चे घोरे ततः परम् ॥९५॥
हारकूर्चौ फट्त्रयान्ते भवेदनलवल्लभा ।
महाविद्या मया प्रोक्ता ह्यष्टपञ्चाशदक्षरा ॥९६॥
सम्मोहन ऋषिस्त्वस्या जगतीच्छन्द उच्यते ।
मङ्गला गुह्यकाली च देवता परिकीर्तिता ॥९७॥
भोगसिद्धिफलाः[1] कूटाः बीजशक्तिककीलकाः ।
समुपास्या षोडशास्या तथा पञ्चदशानना ॥९८॥

[भोगविद्यायाः द्विशताधिकसप्ताशीत्यक्षरमन्त्रोद्धारः]

अतः परं भोगविद्यामाकर्णय वरानने ।
आदौ तारं समुद्धृत्य ततश्चापि नमो महा- ॥९९॥
माये प्रोद्धृत्य रुड्रावौ त्रैलोक्यत्राणकारिणि ।
योगिनी बीजयुगलं सिद्धिसिद्धि ततः परम् ॥१००॥
त्रपाबीजद्वयं प्रोच्य धारयद्वितयं वदेत् ।
ततः पुत्रधनेत्युक्त्वा ततो धान्य सुवर्ण च ॥१०१॥
पश्चाद् रत्नहिरण्येति ततो दारकुटुम्ब च ।
महानिधि इति प्रोच्य सिद्धीर्देहि द्वयं ततः ॥१०२॥

---

१. भोगसिद्धिकरा घ ।

महागौरि स्मृतिमहामेधा इत्यपि कीर्तयेत् ।
यशोऽस्त्रराज्यसौभाग्यसर्वदीप[य ?] ततः परम् ॥१०३॥
समस्तकर्म इत्युक्त्वा करि सिद्धि इतीरयेत् ।
चामुण्डे इति संलिख्य पूरयद्वितयात् त्रपा ॥१०४॥
ततः समुद्धरेद्देवि सर्वपूर्वं मनोरथान् ।
सर्वसम्पदमित्युक्त्वा वर्षयुग्मं ततः परम् ॥१०५॥
वर्षापयद्वयं तत्र पातयद्वितयं लिखेत् ।
निधिमुक्त्वा ददयुगमष्टैश्वर्यं विसन्धि च ॥१०६॥
ददद्वयाद् गृहधनायुःसुखं समुदीरयेत् ।
पुनर्ददद्वयं प्रोच्य निधान इति चोच्चरेत् ॥१०७॥
ततो धान्यहिरण्यं च ततो ददयुगं पुनः ।
सर्वत्र सर्ववृद्धिं च ततः कुरुयुगं वदेत् ॥१०८॥
धरद्वयं त्रपावध्वोर्युगं युगमुदीरयेत् ।
एकाद् रावाद्रत्नमयवर्षमुक्त्वा ददद्वयम् ॥१०९॥
सर्वयक्षानिति प्रोच्य युगमादेशयोद्धरेत् ।
आज्ञापयद्वयं पश्चात् श्रियं राज्यं ततः परम् ॥११०॥
ददद्वयादविघ्नं च विसन्धि कुरु युग्मकम् ।
नमो महायक्षराजाराधितायै ततः परम् ॥१११॥
ह्रीयोगिनीवधूनां च त्रितयं त्रितयं ततः ।
महाधनानि च ततो ददयुग्मान् ममेत्यपि ॥११२॥
ततः सर्वधनं प्रोच्य प्रयच्छद्वितयं वदेत् ।
सिद्धिगौरि ततः कूर्चयुग्मं हार्दमनुस्ततः ॥११३॥
पिशाचिनीत्रयादग्निवल्लभान्तो महामनुः ।
सप्ताशीत्यधिकं देवि वर्णानां हि शतद्वयम् ॥११४॥
वर्तते मन्त्रराजेऽस्मिन् सर्वसिद्धिविधायकम् ।
पूरयद्वितयस्यान्ते पूर्णमेकं शतं भवेत् ॥११५॥
यक्षानित्यस्य ये वर्णे द्विशतं पूर्णतां गतम् ।
सप्ताशीतिश्च देवेशि स्वाहान्ते पूर्णता मिता ॥११६॥

भोगप्रदत्वादेषा हि भोगविद्येति कथ्यते ।
देवैश्च दानवैश्चापि सम्राड्भिर्मुनिभिस्तथा ॥११७॥
भोगेच्छुभिः पूर्वमेषाराधिता जगदम्बिका ।
जातुकर्ण ऋषिश्चास्या विराट्छन्दः प्रकीर्तितम् ॥११८॥
भोगेश्वरी गुह्यकाली देवता परिकीर्तिता ।
लज्जाबीजं विधिः शक्तिश्चञ्चुः कीलकमिष्यते ॥११९॥
विनियोगः सुखैश्वर्यावाप्तये परिकीर्तितः ।
आरभ्यैकाननां यावदशीतिवदना भवेत् ॥१२०॥
सर्वा भवन्ति देवेशि . उपास्या मनुनामुना ।
उपदिष्टो हि यस्य स्यादेष मन्त्रो वरानने ॥१२१॥
तस्याधिकारो विज्ञेयः सहस्रार्णायुतार्णयोः ।
अगृहीत्वा तु यो विद्यामेतां ताविच्छति प्रिये ॥१२२॥
स भक्ष्यतामुपायाति तस्या देव्या न संशयः ।
गुरूपदेशाधिगतैस्तन्मन्त्रस्य सुरेश्वरि ॥१२३॥
महामन्त्रेषु गुप्तेषु षट्स्वप्यस्याधिकारिता ।

[शताक्षर्या मन्त्रोद्धारः]

[1]अतः शताक्षरीं विद्यां सावधाना निशामय ॥१२४॥
डाकिनी भूतिनी मन्त्रं [2]चण्डे चण्ड च कीर्तयेत् ।
चामुण्डेऽपि त्रपाबीजं कूर्चो योषिच्च योगिनी ॥१२५॥
विच्चे घोरे महाप्रोच्य मदोन्मनि इतीरयेत् ।
उक्त्वा बीजे कामशक्ती गुह्येश्वरि ततो वदेत् ॥१२६॥
तारबीजात् परेत्युक्त्वा निर्वाणे ब्रह्मरूपिणि ।
तस्यानु तार[तारः?]शाकिन्यौ ततः सिद्धिकरालि च ॥१२७॥
आप्यायिनि पदं प्रोच्य नव पञ्च समुद्धरेत् ।
ततोऽपि चक्रनिलये पश्चाद् घोराट्टराविणि ॥१२८॥

---

१. अथ घ ।   २. अस्त्रं घ ।

कलासहस्र इत्युक्त्वा ततश्चापि निवासिनि ।
त्रिकौरजं च कुलिकमश्रुबीजमतः परम् ॥१२९॥
अवर्णेश्वरि उच्चार्य प्रकृत्यपर इत्यपि ।
शिवनिर्वाणदे प्रोच्य डाकिन्यनलवल्लभा ॥१३०॥
इयं शताक्षरी विद्या महाघौघप्रणाशिनी ।
ऋषिः सन्तानकोऽभुष्याश्छन्दो मध्या प्रकीर्तिता ॥१३१॥
निर्वाणगुह्यकाली च देवताऽस्याः समर्थिता ।
बीजं भुशुण्डी शक्तिश्च पिञ्जला परिपठ्यते ॥१३२॥
कीलकं प्रलयश्चापि प्रयोगः सर्वसिद्धये ।
अस्योपास्या तु विंशास्या सर्वमन्यत् पुरोदितम् ॥१३३॥

[गुह्यकाल्याः सहस्राक्षरमन्त्रोद्धारः]

इदानीं सावधाना त्वं सहस्रार्णमनुं शृणु ।
बीजानामथ कूटानां नवानां हि प्रयोगतः ॥१३४॥
ख्याता नवनवार्णेति सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमा ।
वेदादिलज्जायोगिन्यः कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ॥१३५॥
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी च नवैव हि ।
जयद्वयं भगवति गुह्यकालि ततो वदेत् ॥१३७॥
ततः सिद्धिकरालीति कालि कापालि चेत्यपि ।
मैधाङ्कुशामृतशक्तिर्नृसिंहाः सोमविद्युतौ ॥१३७॥
ततश्च खेचरीप्रेतौ [1]बीजान्येतानि वै नव ।
ततो नरानुरुधिरमांस इत्यपि चोद्धरेत् ॥१३८॥
परिपूर्णकपाले च नरदीप [द्वीप ?] ततः परम् ।
सिंहफेरुकपीत्युक्त्वा क्रमेलक इतीरयेत् ॥१३९॥
भल्लूक[2]गरुडौ प्रोच्य गजतो [3]मकरेति च ।
हयतो वदनेऽनूद्य पाशलक्ष्मीस्मरार्णकान् ॥१४०॥

---

१. बीजान्यस्यानि वै [illegible] २. भल्लूकगरुड प्रोच्य ङ ।
३. मकरस्तथा ङ ।

बीजे मानसवज्राख्ये कापालं चापि [1]काकिनीम् ।
मुक्तानागाविति नररक्तार्णव ततो वदेत् ॥१४१॥
द्वीपमध्य इति प्रोच्य प्रज्ज्वलद्धुत इत्यपि ।
वहज्ज्वालाजटालाच्च महा इत्यपि कीर्तयेत् ॥१४२॥
ततः श्मशानवासिन्याः संबुद्धिकथनं प्रिये ।
चण्डविश्वौ भूतमयू घनसोमक्षणप्रभाः ॥१४३॥
नीलयक्षाविति नव भैरवी तदनन्तरम् ।
चामुण्डाशतकोट्युक्त्वा ततः परिवृते वदेत् ॥१४४॥
गुह्यातिगुह्यपरमरहस्य तदनन्तरम् ।
कुलाकुलाच्च समयचक्रप्राग्वर्तिनीति च ॥१४५॥
सान्निविष्टितुङ्गांश्चतुरो मेखलान्तान् समुद्धरेत् ।
मन्दारसेतुतश्चूडामणि बलिमतः परम् ॥१४६॥
सर्वशेषे तथा जम्भबीजानां नवकं त्विदम् ।
नवकोटि इति प्रोच्य गुह्यानन्त इतीरयेत् ॥१४७॥
तत्त्वधारिणि चोद्धृत्य ततः परमतः शिव– ।
सामरस्याच्चारिणि च सृष्टिस्थिति वदेत् ततः ॥१४८॥
प्रलयात् कारिणि प्रोच्य ततो भल्लार्धचन्द्रकौ ।
वत्सदन्तक्षुरप्रौ च ततः संदंशकं वदेत् ॥१४९॥
नालीकं च भुशुण्डीं च गदाप्रासौ च ते नव ।
वह्निस्फुलिङ्गपिङ्गाच्च वदेल्लितजटापदम् ॥१५०॥
भारशब्दाद् भासुरे च महादैत्याच्च दानव ।
पिशाचराक्षसेत्युक्त्वा भूतप्रेतपदं वदेत् ॥१५१॥
कूष्माण्डभयतो ब्रूयाद् विनाशिनिपदं प्रिये ।
अनाहतो भोगसृष्टी फेत्कारी त्रेतया सह ॥१५२॥
कराली कृत्यया युक्ता तर्जनी च कटंकटा ।
एतानि नव बीजानि सर्वदीर्घान्वितानि हि ॥१५३॥

---

१. कामिनी घ ।

ततः कटकटायेति मानतो विकटेति च ।
दीर्घदंष्ट्रार्चर्चितेति नृकपाले ततः परम् ॥१५४॥
लेलिहानमहाभीमरसना तदनन्तरम् ।
विकराले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले ततो वदेत् ॥१५५॥
सृष्टिकूटं [1]स्थितिकूटं कूटं संहारमेव च ।
ततोऽनाख्याकूटमुक्तं भासाकूटं ततः परम् ॥१५६॥
कुण्डलिन्यास्ततः कूटं पौरुषं कूटमेव च ।
पैशाचकूटं च ततः सिद्धिकूटमतः परम् ॥१५७॥
नव कूटानि सङ्कीर्त्य ततो नारायणादि च ।
ततः पाशुपतान्ताच्च [प्रस्वापनान्ताच्च ?[2]]
त्रयस्त्रिशत् समुद्धरेत् ॥१५८॥
ततः कोटि महादिव्यास्त्रसन्धान इतीरयेत् ।
विधायिनि इति प्रोच्य सकलाञ्च सुरासुर ॥१५९॥
सिद्धविद्याधरेत्युक्त्वा किन्नरोरग इत्यपि ।
सेवितेति प्रकीर्त्येति चरणे च प्रकीर्तयेत् ॥१६०॥
ततः कमल इत्युक्त्वा युगले बद्ध इत्यपि ।
नारान्त्रयोगपट्टेति [3]भूषिते तदनन्तरम् ॥१६१॥
विभूतिरूषिते प्रोच्य असंख्येति विसन्धिमत् ।
ततो महिम संकीर्त्य विभवे च प्रकीर्तयेत् ॥१६२॥
तैजसामरमौदुम्बरकूर्मौ द्रावणं तथा ।
आसुरं च समूहं च बुद्धि च त्रिशिखामपि ॥१६३॥
बीजान्येतानि नव वै समुद्धृत्य वरानने ।
चतुःपञ्चाशपदतो दोर्मण्डलविराजिते ॥१६४॥

---

१. स्थितेःकूटं घ ङ । २. नारायणास्त्राभिधोपकूटस्य यत्र वर्णनं तत्र त्रयस्त्रिंशत्तम उपकूटः प्रस्वापनाभिध उल्लिखितः उपकूटोद्धारप्रकरणे । पाशुपतस्य च कूटस्य चर्चा कूटोद्धारप्रकरणे दृश्यते । स च द्वितीय एव कूटः अत एव त्रयस्त्रिंशत्संख्यासंरक्षणम् प्रस्वापनान्तपाठेनैव सङ्गच्छते पंक्तिस्तु पाशुपतान्ताच्चेति प्रामादिकीति शङ्के ।
३. भूतिदे क ।

ततो हरिहरेत्युक्त्वा विरिञ्चि इति कीर्तयेत् ।
सभाजिते समुद्धृत्य शोणितार्णव उद्धरेत् ॥१६५॥
मज्जनोन्मज्जनपदात् प्रिये इति पदं प्रिये ।
जगज्जननि संलिख्य प्रवदेज्जगदाश्रये ॥१६६॥
शिवविष्णुपदे प्रोच्य रूपशब्दं ततो वदेत् ।
सिंहासनाधिरूढे च कूटं पुष्करमन्ततः[1] ॥१६७॥
हैरण्यगर्भकूटं च सत्त्वकूटं ततः परम् ।
बृहद्रथन्तरे कूटे कूटं ज्येष्ठं महत्तथा ॥१६८॥
सामगुह्ये ततः कूटे नवैतानि भवन्ति हि ।
जयद्वयं जीवयुगं ज्वलयुग्मं ततः परम् ॥१६९॥
प्रज्वलद्वितयं प्रोच्य अचिन्त्येति विसन्धिकम् ।
प्रभावे तद्वदमितबलतश्च पराक्रमे ॥१७०॥
पूर्ववच्चागणेयेति ततो गुणगणेऽपि च ।
ततोऽजितेऽमिते चैव तथा चैवापराजिते ॥१७१॥
अलक्षिते च अद्वैते सर्वं चैव विसन्धिकम् ।
नित्यप्रभाविहङ्गाश्च पौष्पदानवमन्मथाः ॥१७२॥
कुन्त[म्भ?]दस्रौषधीकाश्च नवैतानि विनिर्दिशेत् ।
महामाये महाविद्ये महाऽविद्ये ततः परम् ॥१७३॥
भगमालिनि चेत्युक्त्वा ततश्चापि भगप्रिये ।
भगाङ्किते च तस्यानु भगरूपिण्यतः परम् ॥१७४॥
ततो भगवतीत्युक्त्वा महाकामातुरेऽपि च ।
महाकालप्रिये प्रोच्य प्रचण्डाच्च कलेवरे ॥१७५॥
विकटोत्कटदंष्ट्रातो रौद्ररूपिणि चोद्धरेत् ।
पुष्कराभिधहैरण्यगर्भसत्त्वाख्यकूटकाः ॥१७६॥
स्वाधिष्ठानं ततः कूटं कूटं च मणिपूरकम् ।
कूटं चानाहतं पश्चात् पौण्डरीकं ततः परम् ॥१७७॥

१. ० मन्वतः घ ।

बाजिमेधस्ततो कूटो राजसूयस्ततः परम् ।
क्रनादेतानि कूटानि नवोद्धृत्य वरानने ॥१७८॥
व्योमकेशि ततो लोलजिह्वे इत्यपि कीर्तयेत् ।
सहस्रद्वय उल्लिख्य करतश्चरणे तथा ॥१७९॥
सहस्रत्रयनेत्रे च महामांस ततः परम् ।
रुधिरप्रिये संकीर्त्य मदघूर्णितलोचने ॥१८०॥
महामारि ततः खर्परहस्ते परिकीर्तयेत् ।
महाशङ्खसभा प्रोच्य कुले उक्त्वा सदार्द्रना- ॥१८१॥
रचर्मावृत उल्लिख्य शरीरे तदनन्तरम् ।
तूणज्याशङ्कुवेतालकोटिघण्टाख्यपिञ्जलाः ॥१८२॥
चिताध्वजौ चेति नव विश्वकर्त्रि ततः परम् ।
विश्वतो व्यापिके प्रोच्य विश्वाञ्च जननीत्यपि ॥१८३॥
विश्वेश्वरि ततो विश्वाधारे इत्यपि कीर्तयेत् ।
विश्वसंहारिणि कुलाकुलचक्र इतीरयेत् ॥१८४॥
ततः समुद्धृतपदं चोद्धरेद् वरवर्णिनि ।
परमानन्दरस च सामरस्यप्रतिष्ठिते ॥१८५॥
ततः समुद्धरेद्देवि संहारिणि विहारिणि ।
प्रहारिणि ततः प्रोच्य दैत्यमारिणि इत्यपि ॥१८६॥
नरनारीविमोहि स्यान्निखड्गाञ्जनपादुका ।
धातुवादाच्च गुटिका यक्षिणीसिद्धितः प्रदे ॥१८७॥
कूटं महाव्रतं सौत्रामणिस्तदनु षोडशी ।
विश्वजित् कूटतो दीक्षासोमसर्वस्वदक्षिणे ॥१८८॥
ततो बार्हिरथं कूटं नरमेधगवामयौ ।
अमूनि नव कूटानि ततो रक्तसमुद्र च ॥१८९॥
वासिनि प्रज्वलित च पावकज्वालजाल च ।
[1]जटातोऽष्टपदान्मुण्डाष्टत्रिशूलाङ्कितोद्धरेत् ॥१९०॥

---

१. जटालाष्ट ङ ।

श्मशानकृतवासे च षोडशंद्वादशाष्ट च ।
दलतः सरसीरुह् च. बद्धपद्मासनेऽपि च ॥१६१॥
रोगदारिद्रयचतो बन्धुवियोगपदमीरयेत् ।
[1]नरकार्ति ततो नाशिनि द्वादशपदं प्रिये ॥१६२॥
कोटिब्रह्माण्ड संकीर्त्य वर्तिभूतशिरस्तथा ।
किरीटनिघृष्टचरणयुगले तदनन्तरम् [?] ॥१६३॥
ततस्त्रिंशच्च वीजानामुद्धरेद् वरवर्णिनि ।
वेदादिमैधपाशह्रीलक्ष्मीकामाश्च योगिनी ॥१६४॥
वधूकूर्चौ शाकिनी च डाकिनीप्रलयौ तथा ।
फेत्कारी कालिका चापि हयग्रीवश्च धर्मयुक् ॥१६५॥
तार्क्ष्यचण्डौ विश्वभूतौ किन्नरश्च महारुषा ।
क्षेत्रपालामृते सोमः शक्तिर्विद्युच्च खेचरी ॥१६६॥
चांमुण्डा च त्रिशक्तिश्च त्रिंशद्बीजान्यमूनि हि ।
तथैकादशकूटानि सर्वपापहराणि च ॥१६७॥
नारसिंहं च लैङ्गं च हंसो भोगश्च शक्तियुक् ।
निर्वाणं च महानिर्वाणं रजस्तमसी ततः ॥१६८॥
विशुद्धाज्ञे च देवेशि मया ते परिकीर्तिते ।
ततो महामन्त्रमयशरीरे इति कीर्तयेत् ॥१६९॥
सर्वागमतत्त्वरूपे इति उद्धारयेत् प्रिये ।
गुडत्रयं तथाध्वैकसम्भ्रमत्रितयं तथा ॥२००॥
एका रुडश्रुत्रितयं रम्भावध्वोर्युगं युगम् ।
अस्त्रत्रयान्ते हृन्मन्त्रस्तदन्ते पावकाबला ॥२०१॥

[सहस्राक्षरमनावक्षरसंख्यानिर्णयप्रकाराभिधानम्]

सहस्राक्षरिको मन्त्रस्तव देवि मयोदितः ।
न्यूनातिरिक्ततादोषादस्य मन्त्रस्य पार्वति ॥२०२॥

---

१. नरकोत्पाततो क ।

जपान्मृत्युमवाप्नोति तदर्थं निर्णयं शृणु ।
यस्मिन् वर्णे शतं पूर्णं तन्मयैव निगद्यते ॥२०३॥
द्वीपमध्यस्य मे वर्णे पूर्णमेकं शतं भवेत् ।
चारिण्याश्चाक्षरे देवि द्विशती पूर्णता मिता ॥२०४॥
भीवर्णे त्रिशती भीमरसनाया वरानने ।
षिवर्णे रूषिते शब्दस्यापि पूर्णा चतुःशती ॥२०५॥
ज्वल ज्वल युगस्यान्ते पूर्णा पञ्चशती प्रिये ।
महाकालप्रिये मेऽर्णे षट्शती पूर्णतां गता ॥२०६॥
चर्मावृतशरीरेऽत्र रीवर्णे शतसप्तकम् ।
गुटिकाया गुवर्णे च समाप्ताष्टशती तथा २०७॥
व्रेऽर्णे ब्रह्माण्डशब्दस्य पूर्णा नवशती ध्रुवम् ।
स्वाहान्ते तु सहस्रार्णं पूर्णं भवति निश्चितम् ॥२०८॥

[सहस्राक्षरमन्त्रस्य ऋष्यादिकथनम्]

अस्यर्षिश्च्यवनः प्रोक्तश्छन्दोऽतिजगती तथा ।
त्रिंशद्वक्त्रा गुह्यकाली देवता परिकीर्तिता ॥२०९॥
बीजं हि डाकिनी प्रोक्तं शक्तिर्भासाख्यकूटकम् ।
फेत्कारी प्रलयश्चापि कीलकं तत्त्वमित्यपि ॥२१०॥
सर्वाभीष्टप्रसिद्ध्यर्थं विनियोग उदाहृतः ।
दशाननादिषट्त्रिंशदाननावधि कालिका ।
उपासनीया भवति मन्त्रेणानेन सुन्दरि[१] ॥२११॥

[सहस्राक्षरमन्त्रस्योत्कृष्टताभिधानम्]

बहुभिः किं वचोजालैः महिमास्य मनोरियान् ।
इति वक्तुं न शक्नोमि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२१२॥

[देवी शिवं प्रसाद्यायुताक्षरमन्त्रं जिज्ञासते]

देव्युवाच

मन्त्राब्धिपारग श्रेष्ठ ! नाथ !! हे करुणानिधे !!!
त्वत्तः श्रुता मया मन्त्रोद्धारा ऋष्यादिभिः सह ॥२१३॥

---

१. मन्त्रेण सुरसुन्दरि घ ।

आरभ्यैकाक्षरान् मन्त्रादासहस्रार्णमीश्वर ।
येन येन च मन्त्रेण या योपास्या भवेत् पुनः ॥२१४॥
तदप्याकर्णितं सर्वं श्रुत्वा चैवावधारितम् ।
इदानीमयुताक्षर्याः समुद्धारं वद प्रभो ॥२१५॥
तया कीदृग्विधा देवी समुपास्या नृणां भवेत् ।
केन चाराधिता तेन मन्त्रेण जगदम्बिका ॥२१६॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यमानं त्वया शनैः ।
अनुक्षणं मे शुश्रूषा वर्तते त्वदुदीरणात् ॥२१७॥

[द्वयोरयुताक्षरमन्त्रयोः निर्देशः]

महाकाल उवाच
सत्यं धन्यासि देवेशि शुश्रूषानुक्षणं यतः ।
वर्तते तव मन्त्राणामाकर्णनविधौ सदा ॥२१८॥
शुश्रूषुभ्यः प्रदातव्यमित्याम्नायस्य निश्चयः ।
त्वं च शुश्रूषसेऽत्यर्थमतो वक्ष्यामि निश्चितम् ॥२१९॥
देवेशि ! द्वे ह्ययुताक्षर्यौ गुह्यकाल्या महाफले[1] ।
विष्णुनाराधिता त्वेका मया चाराधिताऽपरा ॥२२०॥
उभे अपि वदिष्यामि तव देवेशि निश्चितम् ।
विष्णुनाराधिता या तु सा सपत्नप्रमाथिनी ॥२२१॥
ख्याता नाम्ना कल्पलता सदैहिकफलप्रदा ।
उपासिता विष्णुना हि वधार्थं कालनेमिनः ॥२२२॥
या मयाराधिता देवि सा तु मोक्षैकदायिनी ।
बीजमालामयमन्त्रमालानाम्ना प्रथां गता ॥२२३॥
मुमुक्षून् कृतवैराग्यान् त्यक्तसंसारवासनान् ।
उपदिष्टवानहं पूर्वं मुनीन् कैवल्यलब्धये ॥२२४॥

[कल्पलताख्यस्य मालामन्त्रायुतार्णस्य विष्णूपासितस्याभिधानम्]

विष्णवाराध्यां च तत्रादौ निशामय वरानने ।
ममाराध्यां तु तस्यानु श्रोष्यसि प्रयता सती ॥२२५॥

१. इयं पंक्तिः घ पुस्तके न दृश्यते ।

आम्नायशीर्षमैध ह्रीश्रीकामा योगिनीरुषौ ।
योषिच्छाकिनिडाकिन्यः फेत्कारीप्रलयादिमाः ॥२२६॥
कुलिकः कालिनृहरिभासाकूटास्ततः परम् ।
[1]जयत्रयाद् भगवति गुह्यकालि ततः परम् ॥२२७॥
कात्यायिन्यनु वै सिद्धिकरालि तदनन्तरम् ।
कापालि शवत्रवाहिन्यतः परं सकलेरयेत् ॥२२८॥
सुरतस्यानु च मनोरञ्जनि स्यात्ततः परम् ।
दैत्यदानवदर्पेति भञ्जन्यनु दशोद्धरेत् ॥२२९॥
वदनं प्रोच्य तस्यानु धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
नृमुण्डमालाधारिण्यनु सृष्टिस्थिति कीर्तयेत् ॥२३०॥
प्रलय प्रोच्य कारिण्यतो नरेति पदोद्धृतिः[2] ।
रुधिरानुवसामांसमस्तिष्कान्त्रेति[3] कीर्तयेत् ॥२३१॥
परिपूरित इत्युक्त्वा कपाले तदनन्तरम् ।
ततो विकटरावे च घोररूपे च कीर्तयेत् ॥२३२॥
ततः कटकटायेति मानतो दशनेत्यपि ।
पंक्तिप्रकटदंष्ट्रा च ततोऽपि च भयङ्करि ॥२३३॥
बद्धनारान्त्रयोगेति तदन्ते पट्टभूषिते ।
दशबीजानि नाग्रे स्युः केवलान्यक्षराणि तु ॥२३४॥
योगिनी भैरवी प्रोच्य डाकिनी शाकिनी ततः ।
चामुण्डाशक्तितो भूतवेतालप्रेत इत्यपि ॥२३५॥
पिशाच तस्यानु विनायकस्कन्दाच्च जम्भक ।
दैत्यदानवयक्षेति राक्षसेति ततः परम् ॥२३६॥
गन्धर्वगुह्यकेत्युक्त्वा ततो घोणक इत्यपि ।
क्षेत्रपालाद् भैरवेति कूष्माण्डबटुकेत्यपि ॥२३७॥
सिद्धतः खेचरादीनि ततो नवति चोद्धरेत् ।
महापद्मसमाजाच्च भासुरे च सुरेश्वरि ॥२३८॥

---

१. जयद्वयात् छ । २. पदोद्धरेत् ष । ३. मांसमस्तिष्कान्त्रेति ङ ।

त्रिशूलखड्ग उच्चार्य खेटकेति ततः परम् ।
खट्वाङ्ग इति संकीर्त्य तस्यानु [1]परिघोच्चरेत् ॥२३९॥
गदाचक्रभुशुण्डी च तोमरप्राशपट्टिश–
भिन्दिपालाच्च परशु शक्ति वज्र ततः परम् ॥२४०॥
[1]पाशाङ्कुशाच्छत्रङ्गनाग शिवापोताक्ष कीर्तयेत् ।
माला मुण्डाद् गृद्ध्रशैलनकुलायिततः परम् ॥२४१॥
ततः कुण्डवरा प्रोच्य भयर्व्यापृतकर्कश ।
भुजदण्डे ब्रह्मविष्णुमहादेवेन्द्र चन्द्र च ॥२४२॥
वायुतो वरुण प्रोच्य कुवेरात् पावके तथा ।
शाननिर्ऋतिसिद्धेति विद्याधर ततो वदेत् ॥२४३॥
गन्धर्वकिन्नरावित्युरगशब्दं ततोऽप्यनु ।
विभावनीयचरणकमलाद् युगले तथा ॥२४४॥
नियुतात् करतश्चापि चरणे इति कीर्तयेत् ।
सर्वेश्वरि ततः प्रोच्य सर्वदुष्टक्षयङ्करि ॥२४५॥
सर्वदेवेति संकीर्त्य महेश्वरि ततः परम् ।
कोटितो नियुतेत्युक्त्वा ततः प्रहरणायुधे ॥२४६॥
विसन्ध्यचिन्त्यप्रभावे ततोऽमितबलेत्यपि ।
पराक्रमेऽगणेयेति ततो गुणगणेऽपि च ॥२४७॥
असंख्यमहिम प्रोच्य विभवे अजिते तथा ।
तत आख्याय अमिते ततश्चैवापराजिते ॥२४८॥
अलक्षिते च अद्वैते ततोऽनन्ते प्रकीर्तयेत् ।
अव्यक्ते च ततोऽदृश्ये अग्राह्ये च अतीन्द्रिये ॥२४९॥
अपारे उग्रचण्डे च प्रचण्डोग्रतरे तथा ।
श्मशानचारिणि प्रोच्य ब्रह्माणि तदनन्तरम् ॥२५०॥
नारायणि ततः शार्ङ्ग्यैन्द्रि कौमारि चेत्यपि ।
वाराहि नारसिंहि स्यात् चामुण्डे भैरवीत्यपि ॥२५१॥

---

१. इतः पंक्तिद्वयं घ पुस्तके नास्ति।

आग्नेयि ऐशानि तथा ततो वारुणि कीर्तयेत् ।
ततः कौवेरि वायव्ये शोणितार्णव ईरयेत् ॥२५२॥
मज्जनोन्मज्जनपदात् प्रिय इत्यपि च प्रिये ।
जगज्जननि संकीर्त्य ततश्च जगदाश्रये ॥२५३॥
उक्त्वा जगत्कारिणि च ज्वलप्रज्वलयोर्युगम् ।
जयद्वन्द्वं जीवयुगं भासाकूटं ततः परम् ॥२५४॥
नृसिंहकालीकुलिकफेत्कारीप्रलयास्तथा ।
डाकिनी शाकिनी रामा कूर्चयोगिनिमन्मथाः ॥२५५॥
लक्ष्मीत्रपामैधताराः शिवविष्णु ततः परम् ।
रूपसिंहासना प्रोच्याधिरूढे ग्रह इत्यपि ॥२५६॥
नक्षत्रोत्पातभूतोन्मादावेशभय इत्यपि ।
विनाशिनि ततः प्रोच्य तथा त्रैकालिकानि च ॥२५७॥
मम पातकोप उल्लिख्य पातकानि ततः परम् ।
पुनरुक्त्वा पातक महापातकानि ततोऽप्यनु[?] ॥२५८॥
शमय द्वितयं प्रोच्य ततः प्रशमय द्वयम् ।
ततश्च नाशय युगं विनाशय युगं तथा ॥२५९॥
पच द्वन्द्वं हन युगं विद्रावय युगं ततः ।
तथा विध्वंसय युगं भस्मीकुरु तथैव च ॥२६०॥
ततो निखिलदुरितविमोचिनिपदं वदेत् ।
देवि देवि महादेवि महाघोरे ततः परम् ॥२६१॥
[1]महावामे महा प्रोच्य जटाजूटपदं ततः ।
भारे ज्ञान ततो बुद्धिमानलक्ष्मीकवित्व च ॥२६१॥
सर्वशेषे ततो ब्रूयाद् देवि राज्यप्रदे पदम् ।
[2]सृणिप्रासादोरुरोषभूताः पीयूषमेव च ॥२६३॥
रतिकालौ खेचरी च भारुण्डा मानसादिमा ।
कापालं द्रावणं नीलं वेतालो वज्रमेव च ॥२६४॥

---

१. महारावे घ। २. सृष्टि० घ।

चामुण्डाशक्तिवज्राणि रौद्रकूर्चौ च योगिनी ।
लज्जावध्वौ महाचण्डयोगेश्वरि ततो वदेत् ॥२६५॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य बलिं गृह्णयुगं ततः ।
गृह्णापय युगं पश्चात् युगलं भक्ष भक्षय ॥२६६॥
नाशयोच्चाटय हन त्रुट छिन्धि पचापि च ।
मथ विद्रावय तथा मारयापि दमापि च ॥२६७॥
निवारय स्तम्भय च ततो मर्दय शोषय ।
पातयातः खादय च ततो हर धमेति च ॥२६८॥
उद्वासय मोहय च क्षोभय छिन्धि त्रासय ।
मुशोन्मूलय संकीर्त्य जृम्भय स्फोटयापि च ॥२६९॥
विक्षोभय तुरु प्रोच्य ततो हिलि किलीत्यपि ।
चल चालय ततश्चिन्तय स्मरोत्तिष्ठ पश्य च ॥२७०॥
सप्तत्रिंशत्क्रियाणां हि युगं युगमुदीरयेत् ।
षट्पञ्चाशच्च देवीनां सम्बोधनपदं ततः ॥२७१॥
आदौ दक्षिणकाल्याश्च भद्रकाल्यास्ततः परम् ।
श्मशानकाल्याश्च ततः कालकाल्यास्ततः परम् ॥२७२॥
गुह्यकाल्याः कामकलाकाल्याश्च तदनन्तरम् ।
धनकाल्याः सिद्धिकाल्याश्चण्डकाल्यास्तथैव च ॥२७३॥
महालक्ष्म्याश्च मातङ्ग्यास्तस्या राजपदात् पुनः ।
ततोऽनु भुवनेश्वर्या वागीश्वर्यास्ततः परम् ॥२७४॥
तत उच्छिष्टचाण्डाल्याः क्लिन्नाया नित्यपूर्वतः ।
मदद्रवाया भैरव्याश्चाण्डालिन्यास्ततोऽप्यनु ॥२७५॥
त्रिपुटायास्त्वरितायाश्शूलिन्यास्तदनन्तरम् ।
ततो वनजयार्णाभ्यां दुर्गयोरपि पार्वति ॥२७६॥
प्रस्तारिण्याः वज्रशब्दपूर्वायास्तदनन्तरम् ।
सिद्धिराज्यजयेभ्यो हि लक्ष्मीणां तदनन्तरम् ॥२७७॥
पद्मावत्यास्ततः कालसंकर्षिण्या वरानने ।
कुब्जिकायास्ततोऽप्यन्नपूर्णायाः परिकीर्तयेत् ॥२७८॥

कुक्कुटचा धनदायाश्च शबरेश्वर्यास्ततः परम् ।
किरान्याश्चैव बालायास्ततोऽपि परिकीर्तयेत् ॥२७९॥
तथा त्रिपुरभैरव्याः सुन्दर्यास्त्रिपुरान्ततः ।
ततो नीलसरस्वत्याः सरस्वत्यास्ततः परम् ॥२८०॥
ततश्च छिन्नमस्ताया नासाया छिन्नमन्ततः ।
पुनर्नीलपताकाया घण्टायाश्चण्डतोऽपि च ॥२८१॥
चण्डेश्वर्यास्ततः प्रोच्य चामुण्डायास्ततोऽप्यनु ।
बगला हरसिद्धानु फेत्कारिण्यास्ततोऽप्यनु ॥२८२॥
ततोऽनु मृत्युहारिण्या नाकुल्याश्च ततः परम् ।
ततो नु लवणेश्वर्या नित्याया षोडशोत्तरात् ॥२८३॥
ततो जये च विजये अघोरेऽरुन्धति क्रमात् । ।
सावित्रि गायत्रि ततो विश्वरूपे ततः परम् ॥२८४॥
बहुरूपे च विकटरूपेऽरूपे ततः परम् ।
महामाया समुच्चार्य रूपेऽपि तदनन्तरम् ॥२८५॥
महाविद्ये महाऽविद्ये भगमालिनि चोद्धरेत् ।
भगप्रिये समुद्धृत्य ततोऽपि च भगाङ्किते ॥२८६॥
भगरूपिणि संलिख्य ततो भगवतीत्यपि ।
महाकामातुरे प्रोच्य महाकालप्रिये तथा ॥२८७॥
प्रचण्डशब्दतो ब्रूयात् ततोऽपि च कलेवरे ।
विकटोत्कटदंष्ट्रातो रौद्ररूपिणि चोद्धरेत् ॥२८८॥
व्योमकेशि ततो लोलजिह्वे इत्यपि कीर्तयेत् ।
सहस्रद्वय इत्युक्त्वा करतश्चरणे ततः ॥२८९॥
सहस्रत्रयनेत्रे च महामांस ततोऽपि च ।
रुधिरप्रिये चोच्चार्य मदतश्च विघूर्णित ॥२९०॥
लोचने च महामारि हस्ते खर्परवर्णतः ।
शोणिताशनि इत्युक्त्वा महाशङ्खसमाकुले ॥२९१॥
सदार्द्रनरचर्मावृतशरीरे ततः परम् ।
तारा वाणा ग्रहा रावा लज्जार्का योगिनी पुनः ॥२९२॥

वसुचन्द्रा जिनाः कूर्चा दन्ता वध्वस्ततः परम् ।
तर्कानला शाकिनी च डाकिनी तावती ततः ॥२९३॥
आवध्य प्रणवान्तानि प्रतिलोम्ना च तावती ।
फेत्कारित्रितयं पश्चात् त्रिसौपर्णास्त्रमेव च ॥२९४॥
द्विश्चित्रकूटमरुणकूटमेकं ततो वदेत् ।
विश्वकर्त्रि ततो विश्वव्यापिके परिकीर्तयेत् ॥२९५॥
विश्वतो जननीत्युक्त्वा ततो विश्वेश्वरीत्यपि ।
विश्वाधारे च संकीर्त्य विश्वसंहारिणीत्यपि ॥२९६॥
कुलाकुलसमुद्भूतपरमानन्द इत्यपि ।
रससामरस्य संकीर्त्य ततश्चापि प्रतिष्ठिते ॥२९७॥
सर्वदुष्टानिति प्रोच्य युगलं युगलं ततः ।
एकत्रिंशत् क्रियाणां हि क्रमेणैव वदेत् प्रिये ॥२९८॥
चूर्णय प्रथमं प्रोच्य चूर्णापय ह्लसापि च ।
ततः कह करेत्युक्त्वा मार भिन्धि ततो वदेत् ॥२९९॥
छिन्धि प्रोच्य दह्योल्लिख्य ततश्चालय कीर्तयेत् ।
मुखे प्रवेशय किरि ततः किलि कुरु प्रिये ॥३००॥
रुरुत्कीर्त्य किचीत्युक्त्वा कट ग्रस च घातय ।
इत्यूनविंशमुच्चार्य मोटयानु च भञ्जय ॥३०१॥
घूर्णापय स्तोभय च धरोद्गिर वमेत्यपि ।
ततो भिलि विचीत्युक्त्वा भ्रम भ्रामय चोद्धरेत् ॥३०२॥
उद्धरेत् सर्वशेषे तु मूर्च्छापय पदं प्रिये ।
पाशः कला सर्वमेधाश्वत्थनिःश्रेणयः क्रमात् ॥३०३॥
पञ्चास्त्राणि शिखाः पञ्च पिशाचिन्यपि तावती ।
केसरः काकिनी नेमिश्छन्दो विश्वश्च कौणपी ॥३०४॥
मम सर्वाभीष्टसिद्धिं दद देहि युगं युगम् ।
दापय द्वितयं प्रोच्य निष्पादय युगं वदेत् ॥३०५॥
ततोऽनुपूरय युगं तद्वद्दीपय चेतय ।
आनन्दय युगं धेहि निधेहि च युगं युगम् ॥३०६॥

विभावय युगं प्रोच्य योजय द्वन्द्वमुल्लिखेत् ।
ततः समुद्धरेद्देवि संहारिणि विहारिणि ॥३०७॥
प्रहारिणि समुल्लिख्य ततो दितिजमारिणि ।
दण्डलज्जागोऽशुशुक्लाः कामवेगाकुले ततः ॥३०८॥
विभा वधूर्विराट् चैव फैरवं च कुमारिका ।
सुरतातुरे चोल्लिख्य प्रतिष्ठां च रमां वदेत् ॥३०९॥
कैंकरं चापि सूचीं वैराजं तदनन्तरम् ।
मदनोन्मादिनि प्रोच्य नदीक्रामरतीर्लिखेत् ॥३१०॥
प्राणमेघौ समुद्धृत्य नरनारीविमोहिनि ।
खड्गाञ्जन समुद्धृत्य पादुकाधातुवाद च ॥३११॥
गुटिका प्रोच्य यक्षिण्याद्यष्ट इत्यपि कीर्तयेत् ।
महासिद्धि इति [०सिद्धीरिति ?] प्रोच्य रचय द्वितयं ततः ॥३१२॥
ततो विरचय द्वन्द्वं पूरयानु प्रपूरय ।
अनुकम्पयानु वितर चतुर्णां च युगं युगम् ॥३१३॥
कृपाकटाक्षं मयि च मुञ्च द्वन्द्वं दिश द्वयम् ।
विदिश प्रेरय तथा युगलं युगलं मतम् ॥३१४॥
पोषय द्वयमुल्लिख्य तुष्यद्वन्द्वमतः परम् ।
रक्तसमुद्रवासिन्यनुप्रज्वलितपावक ॥३१५॥
ज्वालजालजटालाष्टमुण्डाष्ट तदनन्तरम् ।
त्रिशूलाङ्कित उच्चार्य श्मशान इति कीर्तयेत् ॥३१६॥
कृतवासे षोडश च द्वादशाष्टदलेत्यपि ।
ततोऽनु सरसि प्रोच्य रुहबद्ध इतीरयेत् ॥३१७॥
पद्मासने ब्रह्मविष्णुशिवादिपदमीरयेत् ।
त्रयस्त्रिंशत्कोटिशब्दात् विबुधाष्ट समुद्धरेत् ॥३१८॥
चत्वारिंशत् कोटिदैत्यदानवा तदनन्तरम् ।
विज्ञातागणिता प्रोच्य प्रभावेऽमितशब्दतः ॥३१९॥
दारिद्र्यवन्ध्य प्रोद्धृत्य वियोगकथनं ततः ।
त्रिविधोत्पातकालेति ग्रहोपसर्ग इत्यपि ॥३२०॥

राजचौररिपु प्रोच्य दावाग्निसमरोद्धरेत् ।
शस्त्रास्त्रपातसंकीर्त्य ततः केसरि संलिखेत् ॥३२१॥
शार्दूलशरभेत्युक्त्वा महिषाच्च वराह च ।
फैरवाद्रासभाच्चैव मातङ्गाच्च [1]वृकादि च ॥३२२॥
ततो विधिनजन्तुः स्यात् भुजङ्गम [2]ततः परम् ।
सागरावर्तदस्यु स्यात्ततश्चतुरशीत्यपि ॥३२३॥
ज्वरशोथाच्च शूलार्घ [द्य?]साध्यरोग प्रकीर्तयेत् ।
महामार्यनु दुःस्वप्नग्रहपीडा इतीरयेत् ॥३२४॥
विषासंकीर्त्य परिषाभिचार तदनन्तरम्[?] ।
विश्वासघातकेत्युक्त्वा दुष्टवञ्चक इत्यपि ॥३२५॥
[3]सर्वस्वहारक प्रोच्य मायावि तदनन्तरम् ।
न्यासापहारिवृषलनष्टभूपाल इत्यपि ॥३२६॥
कलहात् कारकाद्द्यात् गरदानपि सुन्दरि ।
स्याद्दोर्दण्डायुतेनेति उद्वासय युगं ततः ॥३२७॥
महाङ्कुशेन संकीर्त्य विघट्टय पदद्वयम् ।
भयङ्करात् शङ्खरवेण उत्फालय युगं ततः ॥३२८॥
क्रोधावेशेन संकीर्त्य धूनयानु विधूनय ।
एतयोर्युगलं प्रोच्य वज्राधिककठोर च ॥३२९॥
तराद् चपेटाद् घातेन लोठय द्वितयं पुनः ।
विलोठय युगं प्रोच्य प्रहारेण च मुष्टितः ॥३३०॥
तुद द्वयं समाभाष्य करतालिकया ततः ।
नुद युगं च खड्गेन भञ्ज युग्मं ततो वदेत् ॥३३१॥
त्रिशूलेन कृन्त युगं चक्रेण तदनन्तरम् ।
विश्लेषय द्वयं दण्डेनानु द्विः शमयोच्चरेत् ॥३३२॥
युगं प्रशमय प्रोच्य वज्रेण [4]किचि युग्मकम् ।
कुन्तेनानु युगं फेरु गदया पोथय द्वयम् ॥३३३॥

---

१. वृषादि च घ । २. मतः घ । ३. सर्वस्वहारके घ । ४. चिकि क ।

विपोथय द्वयं प्रोच्य तोमरेण ततः परम् ।
प्राणान् परिघातय द्विर्भिन्दिपालेन द्विः किंचि ॥३३४॥
शक्त्यानु खण्डय द्वन्द्वं विखण्डय युगं ततः ।
ततः कटकटायाच्च मानाद्रसनया तथा ॥३३५॥
चर्वय द्विः समुच्चार्य मुसलेन ततः परम् ।
पिपद्विर्नागपाशेन वेष्टय द्वितयं ततः ॥३३६॥
उक्त्वा परशुना द्विश्च क्षिप प्रक्षिपयुग्मकम् ।
प्रासेन लम्भ युगलं प्रलम्भय युगं ततः ॥ ३३७॥
कुन्तेन मर्माणि युगं पाटयं द्विर्विपाटय ।
पट्टिसेनेति संकीर्त्य तिलशो ध्मधम द्वयम्[1] ॥३३८॥
अयोगुडेन संकीर्त्य उड्डापय युगं ततः ।
[2]हुलय स्फोटय प्रोच्य प्रस्फोटय वधोच्चरेत् ॥३३९॥
बन्ध मोहय संकीर्त्य विमोहय ततोऽप्यनु ।
मूर्च्छयानन्तरं मूर्च्छापय शब्दं समुच्चरेत् ॥३४०॥
द्विद्विरष्टौ समुच्चार्य ततो द्वादश ईरयेत् ।
कोटिब्रह्माण्डोदराच्च वर्तिभूतशिरस्तथा ॥३४१॥
किरीटकोटिमणितो मयशेखर इत्यपि ।
निघृष्टचरणेत्युक्त्वा कमलाद् युगले ततः ॥३४२॥
खेचराद् भूचराद् वारिचरात्पातालतश्चर ।
रोदसीतश्चरानन्तशक्तितो निवहा तथा ॥३४३॥
नन्दिते च समुल्लिख्य त्रिलोकीवन्दिते तथा ।
सपुत्राच्च कलत्राच्च परिवारं च मां तथा ॥३४४॥
रक्ष पाहि समुल्लिख्य ततः पालय पावय ।
वर्द्धयानन्दयाह्लादय साधय समुद्धरेत् ॥३४५॥
प्रसाधयेति संकीर्त्य पूरयानु प्रपूरय ।
भूषयेति [3]समुद्धृत्य विभूषय च हर्षय ॥३४६॥

---

१. भिन्दिशोषयमद्वयम् घ । २. कुलया [?] घ ।
३. समुच्चार्य घ ।

प्रहर्षय च उल्लिख्य मोदयानु प्रमोदय ।
युगं युगं सप्तदश क्रियापदमुदीरयेत् ॥३४७॥
रूपं चक्षुर्महाप्राणो नागः पुरुष एव च ।
मोहस्तृष्णाश्वास इति निर्वेदो वैश्वदेवकः ॥३४८॥
कालसन्तोषवैराग्य कृपाभेरी च पञ्चमः ।
ह्रयापिभीमाभौसाम वियाजोमथि [?] सौमकौ[1] ॥३४९॥
आश्विनश्च समूह्यश्च कौटिल्यं निष्ठुरस्तथा ।
वृत्तिः प्रगाढो वेधी च दुरी दर्वी मठी रया ॥३५०॥
ब्रघ्नश्चैषां यावतिथो [?] यो यः कमललोचने ।
स [2]तावद्वार उल्लेख्य इत्येतस्य विनिश्चयः ॥३५१॥
मूर्तिभेदे विभिन्नेति पञ्चाशल्लिपितः क्रमः ।
ततः सङ्कलिते वर्णमय इत्यपि कीर्तयेत् ॥३५२॥
ततो नु देवता प्रोच्य स्वरूपिणि समुद्धरेत् ।
ततः षण्मुनिबीजानि प्रतिलोमानुलोमतः ॥३५३॥
प्रणवस्त्रिपुटासंविन्मित्र आङ्गिरसस्तथा ।
रथन्तरश्च पिच्छा च मन्थानो- बृहदप्यथ ॥३५४॥
ज्येष्ठश्च कौमुदी चापि मण्डलं पूतना तथा ।
प्रेतो द्रोहः शङ्खिनी च सुदर्शनमथापि च ॥३५५॥
द्रावणो धनदा मीनं तत्त्वं भैरव्यनन्तरम् ।
ब्रह्माप्यनु विरिञ्चिश्च स्रग् दानवसृणी ततः ॥३५६॥
भूतचण्डनिराकारपरन्तपककच्छपाः ।
अनन्तत्रिकुटासिंहयक्षपक्षिसमाधयः ॥३५७॥
एकमारभ्य यावत् स्यादङ्कानां पञ्चविंशतिः ।
अष्टत्रिंशच्च बीजानामुक्तानां परमेश्वरि ॥३५८॥
क्रमाद् विवर्द्धिता ज्ञेया विषमाङ्केन निश्चितम् ।
प्रासादपाशभैरव्यो नृसिंहहृदनेहसः ॥३५९॥

---

१. विजयामधिसोमकौ घ । २. एतावद्वार घ ।

आधारो मानवो विश्वपूर्णकुम्भकरम्भयः ।
भासाकूटं च फेत्कारी प्रलयो डाकिनी तथा ॥३६०॥
वधूकूर्चौ योगिनी च लज्जाकामरमास्तथा ।
कालीसुधाङ्कुशाः शक्तिः प्रासादो मानसंतथा ॥३६१॥
[1]भारुण्डा चापि कापालं वज्रं मेघाश्च कन्धरौ ।
पुनः सुधा च विद्युच्च मैधरावौ श्रुतेर्मुखम् ॥३६२॥
बीजान्येतानि तावन्ति तैरेवाङ्कैर्वरानने ।
पञ्चसप्ततिमारम्य यावदेकं भवेत् पुनः ॥३६३॥
व्यूत्क्रमाद् विनियोज्यानि तैरेव विषमाङ्ककैः ।
पुनर्ब्र्ध्नं समारम्य यावद्धि [2]त्र्यक्षरं भवेत् ॥३६४॥
तैरेवाङ्कैर्वियोज्यं हि विपरीतक्रमेण च ।
मेरुगह्वर उद्धृत्य विनिष्क्रान्त इतीरयेत् ॥३६५॥
पञ्चसप्ततिबीजेति ततो वर्णावलीत्यपि ।
ततः सङ्कलिते प्रोच्य व्यपतः कलितापि च ॥३६६॥
पञ्चाशल्लिपिबीजाच्च व्यपतः कलितोऽपि च[3] ।
सृष्टिसंहारमन्त्राश्च[4] क्रमतो रूपधारिणि ॥३६७॥
सर्वमन्त्रात्मिके प्रोच्य सर्वयन्त्रात्मिके तथा ।
सर्वतन्त्रात्मिके पश्चात् स्वेच्छाकारिणि इत्यपि ॥३६८॥
स्वेच्छाचारिणि इत्युक्त्वा स्वेच्छातो रूपधारिणि ।
ब्राह्मप्राजापत्य उक्त्वा द्रौहिणेति ततः परम् ३६९॥
हिरण्यगर्भ उच्चार्य नारायणाच्च वैष्णव ।
सौदर्शनाच्च त्रैविक्रमाग्नेयज्वाल[5] इत्यपि ॥३७०॥
प्राकम्पनैन्द्रानलतो याम्यनैर्ऋतवारुणाः ।
वायव्यकौबेरैशानपारमेष्ठ्य इतीरयेत् ॥३७१॥

---

१. इतः पङ्क्तित्रयं घ पुस्तके न दृश्यते । २. ० यावदुपाक्षरं घ ङ ।
३. कलितापि च ङ । ४. ०मन्त्राच्च घ ।
५. ०ज्वालनेत्यपि घ ।

ततश्चानन्तकालेति भौतपार्जन्यवैद्युतः ।
वारिवाहेय इत्युक्त्वा पार्वतेति समुद्धरेत् ॥३७२॥
पाषाणनागसौपर्णकालकं च ततः परम् ।
वैश्वदेवत्वाष्ट्रशब्दात् तामसात्तैमिरेत्यपि ॥३७३॥
प्रस्वापनाच्च मातङ्गाज्जम्भकैषीकदानव ।
ततो जृम्भणगान्धर्वपैशाचोदुम्बरेत्यपि[1] ॥३७४॥
[2]राक्षसाच्छौरचान्द्राच्च चाक्रहैमनशाबर ।
भारुण्डब्रह्म इत्युक्त्वा ततो ब्रह्मशिरो वदेत् ॥३७५॥
गुह्यकात् कालकूटाच्च वैतालात् सारभर्क्ष च ।
वेतालराजस प्रोच्य ततो वैनायकेत्यपि ॥३७६॥
स्कान्दप्रामथगाणोत्पातज्वा[ज्व ?]रान् मौर्च्छनेत्यपि ।
कौष्माण्डभ्रामर प्रोच्य माकराङ्गाननेत्यपि ॥३७७॥
ततः स्तम्भनसंमोहनबलातिबलापि च ।
ततो नैमिलनस्वाप्नाच्चेतनोन्मादमुद्धरेत् ॥३७८॥
सापस्मारान् मारणोच्चाटन भैरव इत्यपि ।
चामुण्डा डाकिनी प्रोच्य योगिनी नारसिंह च ॥३७९॥
वाराहसैंहशार्दूलमाहिषात् फैरवन्त्यपि ।
ततः पाशुपताद्यूनत्रिंशत्कोटि समुद्धरेत् ॥३८०॥
महास्त्रसन्धानपदात् कारिण्यस्त्रत्रयं पुनः ।
पूर्वोद्धृतां भोगविद्यां वारमात्रं ततो वदेत् ॥३८१॥
ततः [3]समुद्धरेद्देवि नववारं शताक्षरीम् ।
हिरण्यकशिपूपास्यां नववारं ततोऽप्यनु ॥३८२॥
ब्रह्मोपास्यां च तस्यानु नववारं समुद्धरेत् ।
वासिष्ठीं नववारांश्च रामोपास्यां च तावतः ॥३८३॥
नव वारान् विष्णुतत्त्वं नवाम्बाहृदयानि च ।
वदेन्महाषोडशीं च नववारांस्ततः परम् ॥३८४॥

---

१. पैशाचोरग चेत्यपि घ. । २. राण्डोराक्षसापिवेशते पूर्णनागते [?] घ. ।
३. समुच्चरेद्देवि ङ ।

ततः समुद्धरेद्देवि द्विवारं जयमङ्गलाम् ।
रावणोपासितां षट्त्रिंशदर्णां च द्विवारकाम् ॥३८५॥
द्विवारं त्र्यक्षरीं दाक्षीं षड्वारं भारतीं ततः ।
तारं ततोऽनु सकलं मन्त्रशब्दान् स्वरूपिणि ॥३८६॥
मनोवाग समुद्धृत्य गोचरे गुह्यकालि च ।
त्रिशाकिन्यस्त्रियोगिंन्यस्त्रिवध्वश्च त्रिरस्त्रकम् ॥३८७॥
हृन्मन्त्रान्ते शिरोमन्त्रः समाप्तैषाऽयुताक्षरी ।

[अयुताक्षरमन्त्रेऽक्षरसंख्यानिर्णयप्रकाराभिधानम्]

न्यूनातिरिक्तवर्णानां ज्ञानार्थं परमेश्वरि ॥३८८॥
मया निगद्यमानं तं निर्णयं शृणु सादरा ।
वसाशब्दस्य साकारे समाप्तिमगमच्छतम् ॥३८९॥
रावर्णे राक्षसस्यापि द्वे शते पूर्णतां गते ।
पोताक्षस्य क्षकारेऽपि पर्याप्ता त्रिशती प्रिये ॥३९०॥
यमक्षरे क्षयंकर्य्याः परिपूर्णा चतुःशती ।
प्रचण्डोग्रतरेऽर्णे च पूर्णं पञ्चशतं तथा ॥३९१॥
फेत्कार्यर्णे षट्शती च परिपूर्णा वरानने ।
हृनयुग्मस्य हे वर्णे प्रथमे शतसप्तकम् ॥३९२॥
तथा चाष्टशती पूर्णा महाचण्डेऽन्तिमेऽक्षरे ।
स्तम्भयस्य द्वितीये स्ते शतानां नवकं गतम् ॥३९३॥
हिलिद्वन्द्वस्यादिमे हौ सहस्रं पूर्णतामितम् ।
च्छौ तथोच्छिष्टचाण्डाल्या गता रूद्रशती प्रिये ॥३९४॥
भैरव्या वेऽक्षरे सूर्यशती पूर्णत्वमागता ।
कवर्णे कटरूपायाः पूर्णा विश्वशती तथा ॥३९५॥
महामांसस्य से वर्णे पूर्णेन्द्रशतिकापि च ।
चतुर्विंशतिकूर्चस्याष्टमेऽर्णे तिथिशत्यपि ॥३९६॥
षट्त्रिंशड्डाकिनीकस्य षोडशे क्षितिभृच्छतम् ।
षष्ठे द्वादशमायाया गिरीन्द्रशतिका भवेत् ॥३९७॥
हसद्वयस्य प्रथमे सार्णे द्वीपशती मता ।
स्तम्भय प्रथमे भेऽर्णे ऊनविंशशती गता ॥३९८॥

निष्पादयेति ष्पावर्णे प्रथमे विंशतिः शतम् ।
एकविंशशती जाता बीजे वैराजके प्रिये ॥३९९॥
विदिशेत्यादिमे वौ च द्वाविंशतिशती मता ।
चत्वारिंशत् शकारेऽर्णेऽनलपक्षशती गता ॥४००॥
वर्णे चतुरशीत्याश्च चतुर्विंशशती व्यगात् ।
विघट्टय द्वितीये ट्टे पञ्चविंशशती व्यगात् ॥४०१॥
कृन्तान्ते न्ताक्षरेऽप्याद्ये षड्विंशतिशती स्मृता ।
विखण्डय द्वितीये खे शतानां सप्तविंशतिः ॥४०२॥
न्यधमेति द्वितीये मेऽष्टाविंशतिशती गता ।
चरणस्य णवर्णे तु ऊनत्रिंशच्छती व्यगात् ॥४०३॥
साधयस्य द्वितीये धे गता त्रिंशच्छती तथा ।
समाप्ता सप्तमाश्वासें एकत्रिंशच्छती प्रिये ॥४०४॥
भेर्याः पञ्चदशार्णे तु द्वात्रिंशच्छतिका गता ।
त्रयस्त्रिंशच्छती पूर्णा चतुर्थे सथि [?] सुन्दरि ॥४०५॥
चतुस्त्रिंशच्छती चापि कौटिल्यदशमे प्रिये ।
प्रगाढान्ते समाप्तेयं पञ्चत्रिंशच्छती तथा ॥४०६॥
मध्यास्तु सप्तमे वर्णे षट्त्रिंशशतिकापि च ।
विभिन्नेत्यस्य वौ वर्णे सप्तत्रिंशच्छती तथा ॥४०७॥
बृहद्बीजद्वादशे तु अष्टत्रिंशच्छती व्यगात् ।
प्रेतस्य सप्तमे बीजे नवानल[1]शती गता ॥४०८॥
सुदर्शनस्य विंशार्णे चत्वारिंशच्छती तथा ।
नीलपञ्चदशे बीजे भूवेदशतिकापि[2] च ॥४०९॥
पञ्चत्रिंशत्सु[3] भैरव्याः करवेदशती मता ।
विरिञ्च्यन्ते समाप्ता तु त्रिवेदशतिका प्रिये ॥४१०॥
युगाब्धिशतिका पूर्णा दानवान्ते तथैव च ।
सप्तचत्वारिंशभूते बाणाब्धिशतिका गता ॥४११॥

---

१. नराननशती घ । २. ०का भवेत् घ ।
३. पञ्चविंशत्सु घ ।

[1]पञ्चत्रिंशद्विधाकारे षडब्धिशतिका व्यगात् ।
तिथ्यर्णे कमठस्यापि मुनिवेदशती तथा ॥४१२॥
द्विपञ्चाशत्स्वनन्तस्य गजार्णवशती मता ।
विंशत्यर्णे मृगेन्द्रस्य ग्रहवेदशती गता ॥४१३॥
यक्षार्णस्यैत्र पञ्चाशद्वर्णेष्वेषुशती व्यगात् ।
समाधिसप्तमार्णे तु भूबाणशतिका तथा ॥४१४॥
प्रासादस्य कराग्नौ तु द्विपञ्चाशच्छती गता ।
पाशस्य शैलबाणार्णेऽनलबाणशती प्रिये ॥४१५॥
त्रयोदशे नृसिंहस्य वेदबाणशती व्यगात् ।
बाणबाणशती वेदवेदार्णे मानसोऽपि च ॥४१६॥
आधारद्वादशार्णे तु षट्पञ्चाशच्छती गता ।
मानवस्योनपञ्चाशदर्णेद्रीषुशती तथा ॥४१७॥
पूर्णोनत्रिंशदर्णे तु नागबाणशती प्रिये ।
करम्भेः सप्तदशके नरबाणशती तथा ॥४१८॥
त्रयोदशे तु फेत्कार्याः षट्सहस्री प्रपूरिता ।
त्रयोदशे तु डाकिन्याश्चन्द्रर्तुशतिका गता ॥४१९॥
कूर्चैकोनत्रिंशदर्णे करतर्कशती व्यगात् ।
त्रिषष्टिशतिका पूर्णा कामार्णे द्वादशाक्षरः [रे ?] ॥४२०॥
सुधा त्रयोदशे वर्णे चतुःषष्टिशती गता ।
नवमे मानसे पूर्णा पञ्चषष्टिशती प्रिये ॥४२१॥
चतुर्थ्यां चपलायां तु षट्षष्टिशतिका गता ।
पुनर्मध्या ऊनविंशे शैलर्तुशतिका तथा ॥४२२॥
त्रयोदशाक्षरे वेद्या नागाङ्गशतिका व्यगात् ।
अङ्कतर्कशती पूर्णा कौटिल्यनवमाक्षरे ॥४२३॥
मध्यैकादशवर्णे तु पूर्णं सप्तसहस्रकम् ।
एकादशे पञ्चमस्य चन्द्राश्वशतिकाऽप्यगात् ॥४२४॥

१. सप्तविंशन्निराकारे षड्विंशशतिका व्यगात् घ ।

इति तृतीये पक्षाश्वशतिका पूर्णतामिता ।
मन्त्रात्मिके मकारेऽर्णे त्रिसप्ततिशती गता ॥४२५॥
पार्जन्यपाक्षरे पूर्णा वेदाश्वशतिका प्रिये ।
शरभाया रवर्णे च शरवाजिशती गता ॥४२६॥
फैरवान्ते च षट्सप्तशतिका पूर्णतामिता ।
फट्त्रयान्ते पक्षकराङ्गतुरगाः प्रकीर्तिताः ॥४२७॥
ततश्च भोगविद्यायाः सप्ताशीतिशतद्वयम् ।
नववारं शताक्षर्युच्चारणात् परमेश्वरि ॥४२८॥
शतानि नव जायन्ते वर्णानां तस्य वै मनोः ।
जायन्ते पिण्डिता वर्णा ग्रहाम्बरवसुद्विपाः ॥४२९॥
हिरण्यकशिपूपास्या वेदवेदेन्दुवर्णिका ।
ब्राह्मवासिष्ठरामाणामङ्केषुयुगवर्णकाः ॥४३०॥
विष्णुतत्त्वाम्बाहृदयमहाषोडशिकासु च ।
चन्द्रर्तुकरसंख्याका [?] मन्त्रवर्णा भवन्ति हि ॥४३१॥
पिण्डिताङ्कास्तु जायन्ते गुणाश्वर्तुग्रहोन्मिताः ।
रसेशसंख्यका देवि ज्ञातव्या जयमङ्गला ॥४३२॥
द्विसप्तत्यर्णिका चापि रावणोपासिता प्रिये ।
दाक्षी षडर्णा षण्व[ण्ण]वतिभारती परिकीर्तिता ॥४३३॥
सर्वशेषे च वर्णानां [1]सप्तत्रिंशद् व्यवस्थिता ।
मिलिता दशसाहस्रवर्णाः सर्वे भवन्ति हि ॥४३४॥
अयं ते कथितो देवि मालामन्त्रोऽयुताक्षरः ।

[मालामन्त्राभिधस्यास्य माहात्म्यकीर्तिनम्]

सर्वेषां मूलमन्त्राणां बीजमेतदुदीर्यते ॥४३५॥
मन्त्रस्यास्य प्रभावं किं व्याख्यास्याम्यहमीश्वरि ।
सैव वक्तुं न शक्नोति यस्या मन्त्रोऽयमीदृशः ॥४३६॥
न भारतीं न वासिष्ठीं न ब्राह्मीं न च राघवीम् ।
हिरण्यकशिपुं नापि नाम्बाहृदयमेव च ॥४३७॥

---

१. सप्तविंशद्व्यवस्थिता घ।

[1]मङ्गलां च सहस्त्रार्णो [सहस्त्रार्णां] रावणोपासितामपि ।
न वेत्ति यो भोगविद्यां न च वेत्ति शताक्षरीम् ॥४३८॥
न षोडशीं सप्तदशीं स नार्हत्ययुताक्षरीम् ।
मालामन्त्रो ह्ययं प्रोक्तो गुह्यकाल्या वरानने ॥४३९॥
एतस्य महिमानं नो वक्तुं शक्नोमि विस्तरात् ।
[2]बलेन यश्च गृह्णाति यो ददाति बलेन च ॥४४०॥
पततः खर्परे काल्यास्तावुभौ पुरुषाधमौ ।
अयुताक्षरनामानं मन्त्रराजं पुरा हरिः ॥४४१॥
कालनेमिवधात् पूर्वं पठित्वा समरं गतः ।
जघान तत्प्रसादेन तं च दैत्यांश्च कोटिशः ॥४४२॥
प्रतिगृह्योपदेशं स मत्तः कमललोचने ।
लक्षवारं जजापामुं ततः सिद्धिं परां गतः ॥४४३॥
मालां नरास्थिघटितां कृत्वा योऽष्टोत्तरं शतम् ।
जपत्यवश्यमाप्नोति स सिद्धिं नात्र संशयः ॥४४४॥

[मालामन्त्रायुतार्णस्य ऋष्यादि निर्देशः]

मालामन्त्रायुतार्णस्य वामदेवऋषिर्मतः ।
त्रिष्टुप्छन्द इति ख्यातं गुह्यकाली च देवता ॥४४५॥
योगिनी कीलकं प्रोक्तं शाकिनी शक्तिरुच्यते ।
डाकिनीबीजमुद्दिष्टं प्रयोगः सर्वसिद्धये ॥४४६॥
विशेषतश्च कैवल्यलब्धये परिकीर्तितः ।

[अस्य जपविधिनिर्देशः]

एकवक्त्रां समारभ्य यावत् स्यात् शतवक्त्रिका ॥४४७॥
सर्वा अनेन मन्त्रेण शक्यन्ते समुपासितुम् ।
अङ्कानां यत्र बाहुल्यं बीजे भवति पार्वति ॥४४८॥
आदाय कठिनीं तत्र सावधानः शनैर्वदेत् ।
अधिके सिद्धिहानिः स्यात् न्यूने तु मरणं भवेत् ॥४४९॥
दिवाजपाद् रात्रिजपोऽमुष्य देवि महाफलः ।
जपान्ते बलिदानं हि देयमावश्यकं प्रिये ॥४५०॥

---

१. इतः पंक्तित्रयं घ पुस्तके नास्ति ।   २. इतः पंक्तित्रयं घ पुस्तके नास्ति ।

निशामयेयुर्नान्यं हि जपकालेऽस्य सर्वथा ।
किं बहूक्तेन देवेशि यद्यदिच्छति साधकः ॥४५१॥
तत्सर्वममुना कर्तुं शक्नोत्येवावहेलया ।
त्वरितेन न जप्तव्यमित्येतस्य विनिश्चयः ॥४५२॥
धीरस्यैवाधिकारोऽत्र य उच्चारयते शनैः ।
इति ते कथिता देवि विष्णूपास्यायुताक्षरी ॥४५३॥

[शिवोपास्यबीजमालामयायुताक्षरमन्त्रमहिम्नः कीर्तनम्]

अधुना मदुपास्यां त्वं शृणु सावहिता सती ।
उक्ताया वक्ष्यमाणा हि कोटिकोटिगुणा मता ॥४५४॥
यावन्ति सन्ति बीजानि संहितोक्तानि सुन्दरि ।
अमुष्यां सन्ति तावन्ति भीमातन्त्रोदितान्यपि ॥४५५॥
शाम्भवाद्या रत्नहलान्ता ये कूटाः प्रकीर्तिताः ।
उपकूटास्तथा नारायणाद्यास्त्रैदशान्तकाः ॥४५६॥
उच्चावचास्तथा चान्ये ये कूटाः परिकीर्तिताः ।
ते सर्वे तत्र तिष्ठन्ति रत्नानीव महोदधौ ॥४५७॥
एकैकस्यैव कूटस्य बीजस्यापि वरानने ।
उच्चारणाद् यत्फलं स्यात् तद्वक्तुं नैव शक्यते ॥४५८॥
किमुतैषां समस्तानां व्याहाराद् यत्फलं भवेत् ।
अत एवाह्वया चैषा बीजमालामयीति हि ॥४५९॥
यथा कामकलाकाल्या मन्त्रश्रेष्ठाऽयुताक्षरी ।
मृत्युञ्जयप्राणनाम्ना प्रसिद्धिं समुपागता ॥४६०॥
बीजमालामयी तद्वद् गुह्यकाल्याः स्मृता भुवि ।
अस्या मया न महिमा वर्णितुं शक्यते प्रिये ॥४६१॥
सप्तद्वीपवतीपृथ्वीदानात् यत्फलमुच्यते ।
एतस्यास्त्वेकयावृत्त्या तत्फलं समवाप्यते ॥४६२॥
यथैतया चिरायुष्ट्वं प्राप्नोति हि जिजीविषुः ।
न तथा तैः कोटिमन्त्रैर्जपितैरपि कोटिशः ॥४६३॥
ब्रह्मणो दिवसेऽतीते कल्पान्ते समुपस्थिते ।
सप्तस्वपि समुद्रेषु प्रयातेष्वेकतां भुवि ॥४६४॥

सप्तर्षिलोकपर्यन्तं जलेन प्लाविते सति ।
नष्टचन्द्रार्कतारासु ज्वलन्तीषु हरित्सु च ॥४६५॥
जनलोकं प्रति गते महर्लोकनिवासिनि ।
त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवे निधनं समुपागते ॥४६६॥
देवीं ध्यायन् जपन्नेतां मार्कण्डेयो महातपाः ।
तिष्ठत्यस्याः प्रसादेन तत्तद्भूते तदात्मवान् ॥४६७॥
चतुर्विंशतिकल्पान् स तस्थावेव मुनीश्वरः ।
योगमास्थाय योगीन्द्रः समीरण इवाम्बरे ॥४६८॥
आरभ्य रौरवात् कल्पात् यावत् स्यात् श्वेतसूकरः ।
तावत् स शश्वास मुनिरग्रे चापि श्वसिष्यति ॥४६९॥

[चतुर्विंशतिकल्पविवृतिः]

एतत्प्रसङ्गेन शृणु चतुर्विंशतिकल्पकान् ।
रौरवः प्रथमः कल्पः प्राणकल्पस्ततः परम् ॥४७०॥
सद्योजातस्तत्पुरुषोऽघोर ईशान एव च ।
ज्ञानसारस्वतोदानगारुडाः कूर्म एव च ॥४७१॥
नारसिंहो वामनश्चाग्नेयः सोमश्च मानवः[1] ।
वैकुण्ठश्च ततो लक्ष्मीस्तस्याप्यनु रथन्तरः ॥४७२॥
गौरी माहेश्वरश्चापि त्रिपुरं यत्र[2] पातितम् ।
पितृकल्पस्ततो ज्ञेयः यमकल्प[3]स्ततोऽप्यनु ॥४७३॥
साम्प्रतं श्वेतवाराहनामा कल्पः प्रकीर्त्यते ।
यत्र भूत्वा श्वेतकोल उज्जहार हरिर्महीम् ॥४७४॥
षडन्यानपरान् स्थित्वा देवीमेव प्रवेक्ष्यति ।
सामर्थ्यं खलु यत्किञ्चित् भवत्या दृश्यते मम ॥४७५॥
तत्सर्वं तत्प्रसादेन सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
मान्धातृप्रमुखानां च भूपानां यः पराक्रमः ॥४७६॥
सोऽप्येतस्याः प्रसादेन तदपि ज्ञायतां त्वया ।
एवमादीनि चान्यानि बहून्यस्याः फलानि हि ॥४७७॥

---

१. वामनः क । २. त्रिपुरत्रय घ, छ । ३. पद्मकल्पः ङ ।

न ग्रन्थगौरवभयात् कथ्यन्ते वरवर्णिनि ।
बीजकूटातिरेकेण कठिनास्याः समुद्धृतिः ॥४७८॥
सम्यगभ्यस्ततार्तीयतुर्याध्यायेन शक्यते ।
उद्धारोऽस्याः प्रिये कर्तुं नान्येन मनसापि हि ॥४७९॥
प्राप्तपूर्वायुतार्णोऽस्या उपदेशेऽधिकारवान् ।
ततस्तुरीयनिर्वाणशाम्भवादिषु च क्रमात् ॥४८०॥
तथा चानुपदिष्टो यः पुस्तके लिखितां त्विमाम् ।
ईहमानः शुभं स्वस्य न कदाप्यवलोकयेत् ॥४८१॥
इमांश्च शाम्भवादींश्च प्रार्थयेत कदापि न ।
तुष्टो गुरुश्चेद्ददाति गृह्णीयात् संयतस्तदा ॥४८२॥
विदध्यादत एवादौ तथा तुष्टो गुरुर्यथा ।
भवेच्छुश्रूषया दानैराज्ञाकारितयापि वा ॥४८३॥
यतिनो वापि भूपस्य भवेदत्राधिकारिता ।
कदाचिद् भक्त्यतिशयाद् प्राप्तुमर्हति मानवः[1] ॥४८४॥
सहस्रं भारतीं जप्त्वा ब्राह्मीं पञ्चशतीं तथा ।
त्रिशतीं वापि वासिष्ठीं शतं दश ततः परम् ॥४८५॥
त्रिसहस्रं समुच्चार्यं तथैकमयुतं ततः ।
ततोऽमुं प्रतिगृह्णीयादप्रमत्तेन चेतसा ॥४८६॥
अकारयन् विधिममुं गुरुरप्यवसीदति ।
प्राप्य तद्वासरं भूयाद्भविष्याशी जितेन्द्रियः ॥४८७॥
गुरवे दक्षिणां दद्याद् येन तुष्टः स वै भवेत् ।
नैनां शक्नोति कण्ठस्थां कर्तुं मेधाव्यपि प्रिये ॥४८८॥
अतो लिखापयेच्छुद्धां कुङ्कुमालक्तहिङ्गुलैः ।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यामेकवारं शनैर्जपेत् ॥४८९॥
एकावृत्तिः सदा कार्या न द्वितीया कदाचन ।
आलस्याद्यैर्द्वितीयायामयथाकीर्तनं भवेत् ॥४९०॥

१—वा न वा क, ङ।

अयथाकीर्तनाद् देवि सद्यो नश्यति सान्वयः ।
शृणुष्वाथ दत्तचित्ता बीजमालामयीं मनुम् ॥४९१॥

[शिवोपास्यबीजमालामयायुताक्षरमन्त्रोद्धारः]

मैधत्रयं जयद्वन्द्वं गुह्यकालि ततः परम् ।
ततः सिद्धिकराल्यन्ते प्रणवत्रितयं वदेत् ॥४९२॥
कालि कापालि संलिख्य विकरालि ततः परम् ।
भौवनेशी योगिनी रुट् कामिनी शाकिनी ततः ॥४९३॥
मुण्डमालिनि संकीर्त्य त्रिशूलिनि समुद्धरेत् ।
महाबलिनि चोल्लिख्य लक्ष्मीकामाङ्कुशांस्ततः ॥४९४॥
कालीपाशौ[1] ततः प्रोच्य कात्यायनि पदं लिखेत् ।
शववाहिनि चोद्धृत्य सृष्टिस्थित्यनुकारिणि ॥४९५॥
गारुडं च महाक्रोधं प्रासादं क्षेत्रपालिनम् ।
कलां भगवति प्रोच्य चामुण्डे तदनन्तरम् ॥४९६॥
नरकङ्कालपदतो धारिणि प्रोद्धरेत् ततः ।
सिद्धचण्डहयग्रीवधर्मविश्वांश्च भौतकम् ॥४९६॥
जयां च नवपञ्चानु[2] चक्रवासिनि कीर्तयेत् ।
महाट्टहासिन्युद्धृत्य मयुं सान्ध्यमनेहसम् ॥४९७॥
धनदामपि गौरीं च कुलिकादित्यप्रेतकान् ।
मेघः श्मशानवासिन्यनु महाघोर ईरयेत् ॥४९८॥
रावोऽमृतं नारसिंहं चामुण्डामपि च क्षमाम् ।
शक्तिदस्त्रौ शङ्खकुम्भौ नद्यर्णं तदनन्तरम् ॥४९९॥
ब्रह्मविष्णुपदाद् रुद्रेश्वरतश्च सदाशिव- ।
पञ्चप्रेताधिरूढे च भारुण्डां मानसं ततः ॥५००॥
नाकुलं धृतिकूष्माण्डलाङ्गलान् सोममेव च ।
रतिं त्वष्टारमुद्धृत्य जगज्जननि कीर्तयेत् ॥५०१॥
जगदाश्रये संकीर्त्य जगत्संहारिणीत्यपि ।
ततश्च काकिनीबीजं दानवं तदनन्तरम् ॥५०२॥

---

१. काली पाणौ क, कालपाशौ घ । २. धनदां चानु क ।

ततः कापालवज्रौ चानन्तप्राणावुदुम्बरम् ।
ब्रह्मासुरं तैजसं च विरिञ्चि तदनन्तरम् ॥५०३॥
डाकिनी भूत उल्लिख्य वेताल प्रेत इत्यपि ।
चतुर्णां केवलं नाम न तु बीजं सुरेश्वरि ॥५०४॥
तथाग्रे वक्ष्यमाणस्यानुपदं त्र्यक्षरस्य[1] च ।
भैरवीमध्यचारिण्यनुचक्रावेश भं खगीम्[?] ॥५०५॥
त्रिशिखासितपीडामरशान्तिविषशेमुषीः ।
दुर्गे दैत्यान् मर्दिनि च भद्रे क्षेमङ्करीत्यपि ॥५०६॥
उग्रर्द्धिमालानीलहि्याचूडाख्यत्रिशक्तिकाः ।
गणेशाप्सरसौ वैश्वदेवं पश्चात् प्रयाजकम् ॥५०७॥
कुलाकुलाच्च समयचक्रप्रवर्त्तनीत्यपि ।
महामारीनिर्वर्तिन्यनु यक्षामरकच्छपान् ॥५०८॥
तापिन्याधाररराथन्तर्यगन्धर्वान् समङ्गलान् ।
बृहच्च त्रिपुटां तत्त्वं रौद्रं द्रावणमेव च ॥५०९॥
ततः सर्वागमात् तत्त्वस्वरूपिणि समुद्धरेत् ।
लेलिहानाच्च रसनाकरालिनि ततः परम् ॥५१०॥
ज्येष्ठशुक्लत्रिकूटांश्च मित्रमन्थानच्छान्दसान् ।
पूरकं कुम्भकं चैव केसरं नेमिमेव च ॥५११॥
आनन्दमुण्डौ च तथा सुदर्शनमतः परम् ।
चतुर्वेदा इति प्रोच्य ततो वेद्यानुभाव च ॥५१२॥
विमोहितास्त्रैगुणित[2]त्रिदेवे तदनन्तरम् ।
परोल्काद्वीपप्रियकवृत्ता येष्टीश्च [यष्टीश्च?] वेदिकाः ॥५१३॥
जम्भं बलिं तुङ्गमेखलामन्दारान् प्रयोजयेत् ।
रक्तार्णवद्वीपपदात् प्रज्वलत्पावकेत्यपि ॥५१४॥
शिखान्तश्चारिणि महादुःखपापौघहारिणि ।
शिखामहाशब्दमात्रं न तु बीजं वरानने ॥५१५॥

---

१. द्व्यक्षरस्य घ । २. ०स्त्रै गुणिक० घ ।

जगतीं च तथा नन्दां जटां हैमं च वैमलम् ।
कबन्धक्रकचारिष्टश्मशानशवसौकलान् ॥५१६॥
टङ्कन्यासर्षभाद्वैतान् क्रमात् पञ्चदशोद्धरेत् ।
ततो बृहल्लम्बमानोदरि शब्दं विनिर्दिशेत् ॥५१७॥
ततो महाचण्डयोगेश्वरि शब्दादसन्धिमत् ।
अपमृत्युहरि प्रोच्य विश्वेश्वरि ततः परम् ॥५१८॥
चपलाभैरवीनागान् कङ्कालं च कुमारकम् ।
निरञ्जनं मणिबले ज्ञानादित्रितयं ततः ॥५१९॥
अध्वरं कीर्तिनित्यौ च नवकोटिकुलाकुल– ।
-चक्रेश्वरि स्यात् सकलगुह्यानन्तपदं ततः ॥५२०॥
तत्त्वधारिण्यनु ब्रूयात् महामारीप्रवर्तिनि ।
स्मृतिं विभूतिद्वितयं वृषं तदनु नन्दिनीम् ॥५२१॥
तारकादि ततः पञ्च विशुद्धि पुष्टिसुप्रभे ।
कौमुदी[1]वर्त्मनी प्रोच्य वदेच्चतुरशीति च ॥५२२॥
–कोटिब्रह्माण्डपदतः सृष्टिकारिणि कीर्तयेत् ।
प्रज्वलज्वलतोल्लिख्य लोचने वज्र कीर्तयेत् ॥५२३॥
–नखदंष्ट्रायुधे दुर्निरीक्ष्याकारे ततः परम् ।
सूक्ष्माद्वयं श्रेष्ठषट्कं सृष्टियुग्मं ततः परम् ॥५२४॥
तन्त्रत्रयं वि[द्वि ?]कापालं त्रिवृत् पञ्चकमन्वतः ।
परापरात् सामरस्यरसमोहिनि कीर्तयेत् ॥५२५॥
परमेति समुद्धृत्य ततः शिवनिवासिनि ।
विकराल समुद्धृत्य वेशधारिणि संलिखेत् ॥५२६॥
डाकिनीप्रलयौ प्रोच्य फेत्कारीपूतने ततः ।
हारं च शङ्खिनीं फैरवं कुमारीं ततः परम् ॥५२७॥
विहङ्गमं ततः सूचीं वैराजं धूममेव च ।
ललिताकर्णिके उक्त्वा शृङ्खलां च परन्तपम् ॥५२८॥

१. कौमारी० छ ।

आज्ञाबीजमनुस्मृत्य नक्षत्रनरमुण्ड च ।
ततो मालालङ्कृते च चतुर्दश इतीरयेत् ॥५२९॥
–भुवनोक्त्वा सेविते च पादपद्मे ततः परम् ।
सप्तविंशति संलिख्य नयने तदनन्तरम् ॥५३०॥
मानवं बीजमालिख्य कलङ्कं खेटमेव च ।
निद्रां प्रतिष्ठां च विभां केशं मन्त्रावलीमपि ॥५३१॥
दण्डं कोटिं तथा घण्टां सिञ्जिनीहाक्षुधांस्ततः ।
सन्तानं कोरकं प्रोच्य बीजं डामरकं ततः ॥५३२॥
दिगम्बरीति संकीर्त्य ततोऽपि सकलोद्धरेत् ।
मन्त्रतन्त्राधि संकीर्त्य दैवते तदनन्तरम् ॥५३३॥
गुह्यातिगुह्य सम्भाष्य परापरपदं ततः ।
शक्तितत्त्वावतारे च पूर्णां वेतालमेव च ॥५३४॥
विधिं च पिञ्जलामुक्त्वा तस्याप्यनु चिताध्वजौ ।
अनाहतं भोगसृष्टी त्रेतां तदनु कीर्तयेत् ॥५३५॥
करालीमपि कृत्यां च तर्जनीं च कटंकटाम् ।
नाराचशूलौ कुन्तं च सारिघं शङ्कुमेव च ॥५३६॥
ततो महाभोगिराजभूषितेति समुद्धरेत् ।
भुजदण्डे मनोवागगोचरे तदनन्तरम् ॥५३७॥
प्रपञ्चातीत उद्धृत्य ततो निष्कल ईरयेत् ।
ततस्तुरीयाकारे च तत्पश्चात् तीक्ष्णरेचकौ ॥५३८॥
समाधिं च सटामुक्त्वा हाकिनीमप्यथो वटीम् ।
भल्लं च भिन्दिपालं च राकामेषौ ततः परम् ॥५३९॥
औषधिं च करम्भं च तस्यानु दारयुग्मकम् ।
अर्द्धेन्दुयुग्मं जाय [या ?] न्तं प्रचण्डं संहितामपि ॥५४०॥
कोशपिण्डौ समुद्धृत्य महाशब्दाच्च खेचरी ।
ततः सिद्धिविधायिन्यनु गगनग्रासिनीत्यधि ॥५४१॥
ततः प्रबल उच्चार्य जटाभाराच्च भासुरे ।
ततः समुद्धरेद् वेदोपवेदमय इत्यपि ॥५४२॥

सिंहासनाधिरूढे च विराजं कैकरं तथा ।
सावित्रीमनु च स्वापं क्षुरप्रं प्रासमेव च ॥५४३॥
मुसलद्वितयं तूणं मोक्षयुग्ममतः परम् ।
तोमरं चक्षुनाद्वन्द्वं प्रतापद्वितयं ततः ॥५४४॥
ततोऽरुणायुगं प्रोच्य गदासन्दंशके वदेत् ।
नालीकं पर्शुमुद्धृत्य मुद्गरं तदनन्तरम् ॥५४५॥
घोराट्टहासपदतः सन्त्रासित इतीरयेत् ।
ततस्त्रिभुवने प्रोच्य नवकोटिपदं लिखेत् ॥५४६॥
मालामन्त्रमयेत्युक्त्वा ततोऽपि च कलेवरे ।
गतसंन्ध्यतिविकरालातुरे ततो घोणकी बीजम् ॥५४७॥
भ्रमरं गामपि सन्ध्याविद्येऽप्योजोयुगं कल्पम् ।
मुक्तामहाक्रमानपि ततोऽनु शिक्षाचतुष्कं च ॥५४८॥
मस्करपञ्चकमस्यानु गदेदंशुं मनोयुगं चापि ।
कल्पान्तकालपदतो वदेत् प्रकाशिततमोगुणे चापि ॥५४९॥
तदनु समुद्धृत्य महारुद्रशरीरेत्यपि ब्रूयात् ।
संक्रामितनिजवैभवशब्दस्य ङौ यथा रूपम् ॥५५०॥
संबुद्धिस्तेन भवेदथो समुन्मूलितप्रणत ।
ततो नाना भवे प्रोच्य अभवे चापि विसन्धिकम् ॥५५१॥
नन्दायांशुजटा[1]हैमजगतीस्तदनन्तरम् ।
भुशुण्डीयुगलं पश्चात् पक्षं मन्दारमेव च ॥५५२॥
वैमलं च तथोद्धारं मेखलां कुण्डमेव च ।
ब्रह्मास्त्रं वीरपुटकौ दुष्कृतं पद्ममेव च ॥५५३॥
प्राजापत्यास्त्रसंमोहौ तन्द्रां च कुटिलामपि ।
ततो लिखेद् वीरघण्टा[2] किंकिनीडमरुतच [?] ॥५५४॥
निनादिते सन्धियुक्तं ततोऽपरि[3]मितेत्यपि ।
ततः कायबलेत्युक्त्वा निर्दिशेच्च पराक्रमे ॥५५५॥

---

१. ०जपे है० क, ङ । २. इतश्चतस्रः पंक्तयः क पुस्तके न सन्ति । ३. क्रमतोऽपरि० क ।

चण्डातिचण्डकाण्डानु लिखेत् खण्डिततदानव ।
उद्धृत्य राक्षसपदं दितिजेति ततः परम् ॥५५६॥
ततः समूहे विगतमोह इत्यपि कीर्तयेत् ।
सागरं गुप्तिसन्तोषौ हायिपाकौ ततः परम् ॥५५७॥
ध्यानचञ्चू तत्पुरतो लिखेत्साधकसत्तमः ।
विजयं मन्दमालिख्य केकराक्षीमतः परम् ॥५५८॥
आग्नेयास्त्रं तामसास्त्रं शाम्भवं कूटमेव च ।
नारायणास्त्रं कालास्त्रं ततश्चापि पिशाचिनी ॥५५९॥
रम्भाब्रध्ननिराकारकौणपीस्तदनूद्धरेत् ।
ततः पाशुपतं कूटं त्रैपुरं कूटमेव च ॥५६०॥
चर्पटं मणिमालां च शाङ्करास्त्रमतः परम् ।
शुद्धविद्यासम्प्रदायसिद्धशुद्ध ततः परम् ॥५६१॥
ततश्चैतन्यपदतः स्वरूपे परिकीर्तयेत् ।
प्रकृत्यपर संलिख्य शिवनिर्वाण इत्यपि ॥५६२॥
ततो नु साक्षिणीत्युक्त्वा त्रिलोकीरक्षिणीत्यपि ।
ब्रह्मरन्ध्रपदं प्रोच्य विनिविष्ट ततः परम् ॥५६३॥
[1]सदाशिवैकरसता सिन्धुशब्दमुदीरयेत् ।
मज्जनोन्मज्जनपदात् प्रिये इत्यपि च प्रिये ॥५६४॥
सृष्टिस्थितीति प्रवदेत् संहारानाख्यया सह ।
ततो भासादि निर्वर्ण्य पुनर्बहुविधेत्यपि ॥५६५॥
भेदप्रकाशिनि प्रोच्य रूपं रसमतः परम् ।
गन्धं स्पर्शं च शब्दं च स्यादुल्काद्वित्रयं ततः ॥५६६॥
खलं च कुक्कुटं चैव वैष्णवास्त्रमतः परम् ।
सौपर्णास्त्रं ततो दद्यात् कूटं माहेश्वराह्वयम् ॥५६७॥
कौवेरास्त्रं वारुणास्त्रं प्रियभ्रूजम्बुकानपि ।
काकं च पुष्कलं दत्वा भार्गवं कूटमुद्धरेत् ॥५६८॥

---

१. इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति ।

ततः परापरं कूटं , नागास्त्रं तदनन्तरम् ।
ततस्तत्पुरुषं कूटं कूटं श्रीकण्ठमेव च ॥५६९॥
चण्डीं पातालमुद्धृत्य भगमालिनि कीर्तयेत् ।
भगप्रिये ततः प्रोच्य ततो ब्रूयाद् भगातुरे ॥५७०॥
ततो भगाङ्किते स्मृत्वा तस्यानु भगरूपिणि ।
भगलिङ्गद्राविणि ,च कालचक्र ततः परम् ॥५७१॥
नरसिंहानु सुरत ततश्च रसलोलुपे ।
व्योमकेशि पदात् पिङ्गकेशि ब्रूयाद् वरानने ॥५७२॥
ततो नियुतवक्त्रेति करानुचरणे ततः ।
त्रिलोकीशरणे प्रोच्य पुरुचूडामणी वदेत् ॥५७३॥
भ्रज्यादेशौ च्छटा चापि मठीमुक्त्वा रयां वदेत् ।
ततो नु देवि निःश्रेणीं ततो नेत्रादिपञ्चकम् ॥५७४॥
मस्करं चापि विघसं कूटं वैहायसं ततः ।
वामदेवं ततः कूटं नारसिंहं ततोऽपि च ॥५७५॥
सद्योजातं ततः कूटं वायुबीजं ततः परम् ।
ऐषीकास्त्रं कम्पनास्त्रं पैशाचास्त्रमतः परम् ॥५७६॥
वायव्यास्त्रं तथैन्द्रास्त्रं क्षेत्रं स्थाणुं ततः परम् ।
दीर्घदंष्ट्रापदं प्रोच्य ततश्चूर्णित इत्यपि ॥५७७॥
मृतब्रह्मकपाले च चन्द्रखण्डाङ्कितेत्यपि ।
भाले देहप्रभा प्रोच्य जाले जितमेघतः ॥५७८॥
त्रयस्त्रिंशत्कोटिपदान् महादिव्यास्त्र इत्यपि ।
सन्धानकारिणि प्रोच्य महाशङ्खसमाकुले ॥५७९॥
उद्धृत्य खर्परपदं विसृस्त इति कीर्तयेत् ।
हस्ते रक्तद्वीपपदात् प्रिये इत्यपि कीर्तयेत् ॥५८०॥
मदनोन्मादिनि प्रोच्य महोन्मादपदं वदेत् ।
ततश्च वंशीवादिनि च महाप्राणमतः परम् ॥५८१॥
समानं च तथोदानं व्यानं चापानमन्वतः ।
सारं धानां तथाऽलक्ष्यमक्षरं च महोदयम् ॥५८२॥

महाङ्कुशमहानङ्गमहामारीस्ततः परम् ।
महाद्रावं महामायामघोरं कूटमेव च ॥५८३॥
रौद्रकूटं चन्द्रकूटं कूटमैशानमेव च ।
ततश्च शङ्करं कूटं कूटं मृत्युञ्जयाह्वयम् ॥५८४॥
व्योमकूटं समुच्चार्य पार्जन्यास्त्रमुदीरयेत् ।
याम्यास्त्रमथ भूतास्त्रं त्वाष्टास्त्रं तैमिरास्त्रकम् ॥५८५॥
पाषाणास्त्रं पार्वतास्त्रं खड्गखेटकशब्दयुक् ।
प्रवदेत् खर्परपदं ततः खट्वाङ्गचक्र च ॥५८६॥
चापशूल इति प्रोच्य. ततः परिघमुद्गरम् ।
ततो भुशुण्डीपरशुगदाशक्त्यपि कीर्तयेत् ॥५८७॥
तोमरप्रासतो भिन्दिपालशब्दं ततः परम् ।
[1]कर्त्रिकुणपशब्दं च हुलाकुन्तानु पट्टिशा- ॥५८८॥
-दि यावदस्त्र उल्लिख्य शस्त्रधारिणि कीर्तयेत् ।
नागं कूर्मं च कृकरं देवदत्तं धनञ्जयम् ॥५८९॥
तुलानुदात्तस्वरितोदात्तानपि च निष्कलम् ।
मातङ्गास्त्रं जम्भकास्त्रं दानवास्त्रमतः परम् ॥५९०॥
औदुम्बरास्त्रं चक्रास्त्रं रोदसीकूटमेव च ।
कूटं चैन्तामणेयाख्यं लैङ्गकूटमतः परम् ॥५९१॥
ततस्तुरीयाकूटं च कूटमाग्नेयमेव च ।
कल्कं ज्वालां तथा प्रौढ़ क्रूरं मत्सरमेव च ॥५९२॥
ततश्च भैरवीकूटं सौरास्त्रं तदनन्तरम् ।
आनन्दकूटं गुह्यास्त्रं कूटं मार्तण्डमेव च ॥५९३॥
गान्धर्वास्त्रं शुष्कनरकपाल इति वै ततः ।
ततो नु मालाभरणे विद्युत्कोटिसमप्रभे ॥५९४॥
उद्धरेदूर्ध्वकेशीति विद्युत्केशि ततः परम् ।
शवमांसपदात् खण्ड ततः कवलिनीत्यपि ॥५९५॥

---

१. पुनः कुणपशब्दं च कुलाकुन्तानुपट्टिश घ ।

महानादाट्टाट्टहासिन्यपि ब्रूयात् ततः परम् ।
वमदग्निमुखि प्रोच्य फेरुकोटच्यपि चोद्धरेत् ॥५९६॥
ततः परिवृते प्रोच्य चर्चरी करतालिका ।
ततश्च त्रासितपदादुद्यत्त्रिभुवनेऽपि च ॥५९७॥
नृत्यशब्दानु निहितपादाघात इतीरयेत् ।
परिवर्तित उल्लिख्य ततो भूवलयेत्यपि ॥५९८॥
ततो धारिणि[1] उद्धृत्य भुग्नीकृतपदं वदेत् ।
ततः कमठशब्दानु शेषभोगे समुद्धरेत् ॥५९९॥
पुरुषप्रकृती प्रोच्य महात्तत्त्वसहङ्कृतिम् ।
तन्मात्रमथ नान्दीं च बलिं पृथुमतः परम् ॥६००॥
नदं च तारकं चैव तथास्त्रं जृम्भणाह्वयम् ।
हंसकूटं कलाकूटमस्त्रं प्रस्वापनं तथा ॥६०१॥
चित्रकूटं मन्त्रकूटं राक्षसास्त्रं ततः परम् ।
कूटं वारुणसंज्ञं च डाकिनीसंज्ञमेव च ॥६०२॥
हैमनास्त्रं ततः कूटं वाराहं परिकीर्तितम् ।
आरुणं च ततः कूटं भारुण्डास्त्रं ततः परम् ॥६०३॥
वर्णकूटं च तार्तीयकूटं तदनु चोद्धरेत् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चापि पतनं संहृतिं तथा ॥६०४॥
भव्यगोत्रे समुच्चार्य रत्नबीजं ततो वदेत् ।
वसामेदोमांसशब्दाद् वदेच्छोणितभोजिनि ॥६०५॥
कुरुकुल्ले कृष्णतुण्डि रक्तमुण्डि ततः परम् ।
चण्डे शबरि विन्यस्य, पीवरे रक्षिके ततः ॥६०६॥
भक्षिके यमघण्टे च चर्चिके तदनन्तरम् ।
नामभिः केवलं वर्णा न तु बीजं वरानने ॥६०७॥
उक्त्वा दैत्यासुरपदं यक्षराक्षसदानव ।
कूष्माण्डप्रेतपदतः प्रोच्चरेद् भूतडाकिनी ॥६०८॥

---

१. धारण क ख ।

ततो विनायकस्कन्दघोणकक्षेत्रपाल च ।
पिशाचब्रह्मपदतो राक्षसेति समुद्धरेत् ॥६०९॥
वेतालगुह्यक प्रोच्य सर्पनाग ततः परम् ।
ततश्च ग्रहनक्षत्रोत्पातचौराग्नि कीर्तयेत् ॥६१०॥
तस्यानु स्वापदपदाद् युद्धवज्रोपलाशनि- ।
-वर्षविद्युन्मेघविषोपविषेति ततः परम् ॥६११॥
पुनः कपटकृत्याभिचारविद्वेषणोद्धरेत् ।
ततोऽपि वशीकरणोच्चाटनोन्मादतः परम् ॥६१२॥
आपस्मारपदाद् भूतप्रेत इत्यपि कीर्तयेत् ।
-पिशाचावेश उल्लिख्य ततो नदनदीत्यपि ॥६१३॥
-समुद्रावर्तकान्तारपदात् घोरान्धकार च ।
महामारीति संप्रोच्य बालग्रह इतीरयेत् ॥६१४॥
ततो हिंसकसर्वस्वापहारिपदमीरयेत् ।
मायाविद्युद्दस्यूक्त्वा ततो वञ्चक इत्यपि ॥६१५॥
दिवाचरपदाद् रात्रिचर सन्ध्याचरेत्यपि ।
ततः शृङ्गिनखि प्रोच्य दंष्ट्रिविद्यूद्धरेत् प्रिये ॥६१६॥
-दुल्कारण्यदवप्रान्तरादिनानाविधेत्यपि ।
महोपद्रवशब्दानु प्रभञ्जनि समुद्धरेत् ॥६१७॥
उद्धृत्य सर्वमन्त्रेति तन्त्रयन्त्र ततः परम् ।
कुप्रयोगपदं प्रोच्य प्रमर्द्दिनि समुद्धरेत् ॥६१८॥
सर्वबन्धपदाद् दुःखप्रमोचिनि ततः परम् ।
सर्वाहितेति संलिख्य निकृन्तन्यनु संवदेत् ॥६१९॥
षडाम्नायाच्च समयप्रकाशिनि पदं प्रिये ।
ततः परमशब्दाच्च शिवपर्यङ्क इत्यपि ॥६२०॥
निवासिनि प्रज्वलत् पावकज्वालापदं वदेत् ।
जालातिभीषणपदात् श्मशानपदकीर्तनम् ॥६२१॥
विहारिणि समुद्धृत्य विसन्धि तदनन्तरम् ।
वदेदचिन्त्यामितेति गणेयेति ततः परम् ॥६२२॥

प्रभावबल उच्चार्य पराक्रमगुणेत्यपि ।
वशीकृतपदात्कोटिब्रह्माण्डपरिकीर्तनम् ॥६२३॥
वर्तिभूतपदात् सङ्घे विराड्रूपिणि चोद्धरेत् ।
सर्वदेत्र समुद्धृत्य महेश्वरिपदं ततः ॥६२४॥
पुनः सर्वजनेत्युक्त्वा मनोरञ्जनि कीर्तयेत् ।
उल्लिख्य सर्वपापेति ततश्चैव प्रणाशिनि ॥६२५॥
-विसन्ध्याध्यात्मिका प्रोच्य ततश्चाप्याधिदैविका- ।
-धिभौतिकादिविविधहृदयाधि समुद्धरेत् ॥६२६॥
ततो निर्दलिनि प्रोच्य नियुतेति ततः परम् ।
प्रचण्डदोर्बलिन्युक्त्वा कैवल्य तदनन्तरम् ॥६२७॥
ततो निर्वाणनलिनि गौरि संकीर्तयेदपि ।
अरूपे च विरूपे च विश्वरूपे ततः परम् ॥६२८॥
नादमश्वत्थदुर्द्धर्षौं श[स?]र्वं तदनु कीर्तयेत् ।
सिद्धिविद्ये महाविद्ये विलिख्य तदनन्तरम् ॥६२९॥
पश्चादिरोषआयूंषि विष्वगिच्छे ततः परम् ।
अष्टावसन्धीन् प्रवदेत् अजितेऽलक्षिते तथा ॥६३०॥
अमिते च तथाऽद्वैते ततोऽप्यनु[न्व?]पराजिते ।
ततोऽप्रतिहते प्रोच्यागोचरेऽव्यक्त इत्यपि ॥६३१॥
ततोऽप्सरोऽञ्जने उक्त्वा प्लुतमार्णवमुच्यते ।
अस्रेन्द्रिये ततो भद्रे सुभद्रे च किरात्यपि ॥६३२॥
उक्त्वा मातङ्गि चाण्डालि द्वेषं सुखलये ततः ।
मांसाहौं द्राविणि प्रोच्य द्रविणि भ्रामरीत्यपि ॥६३३॥
भ्रमरीत्यपि संबोध्य लौल्यदुःखक्षयाणि च ।
अस्थिरोषौ समुच्चार्य उल्कापुञ्जिजम्नि चोद्धरेत् ॥६३४॥
वेतण्डभण्डिनि पदाद् भवेत् प्रलयताण्डव ।
ततो नु मण्डिनि ब्रूयात् कुणपं कौरजं ततः ॥६३५॥
कर्तरीं च शतघ्नीं च प्रोच्चार्यानङ्गमालिनि ।
विसन्ध्यनङ्गवेगाकुलेऽनङ्गप्रियेत्यपि ॥६३६॥

रेतो मेदो मज्जनमाधर्मानपि ततः परम् ।
इन्द्रोपेन्द्रानु जननि मृत्युञ्जयगृहिण्यपि ॥६३७॥
मोहमात्सर्यसंवेशालस्यान्यपि ततः परम् ।
सावित्रि गायत्रि ततः महित्र्यपि सवित्र्यपि ॥६३८॥
विषादं च प्रमादं च परमं सहजं तथा ।
व्यानन्दं च ततो ब्रूयात् सरस्वति वरानने ॥६३९॥
मेधे लक्ष्मि प्रविन्यस्य प्रदे चापि विभूतितः ।
धाराप्रवाहावुद्धृत्य ततः कामप्रदे वदेत् ॥६४०॥
कामाङ्कुशे कामदुग्धे ततः कामस्रवेऽपि च ।
विवेकद्रोहमौनानि शोकं तदनु कीर्तयेत् ॥६४१॥
[१]विखेदं समनूद्धृत्य कुमारि युवतीरयेत् ।
वृद्धे षड्जर्षभौ भेरीं गान्धारं तदनन्तरम् ॥६४२॥
कात्यायनि समुद्धृत्य विसन्धीश्वरि कीर्तयेत् ।
सन्ध्ये महारात्रिपदादनुब्रूयान्महानिशि ॥६४३॥
होतृमैत्रावरुणकावच्छावाक[?]मतः परम् ।
ग्रावस्तुतमथाध्वर्यकरङ्किणि[२] ततः परम् ॥६४४॥
करङ्कधारिणि प्रोच्य कलङ्किन्यनु चोच्चरेत् ।
याजप्रयाजावुल्लिख्यानुयाजं च वियाजकम् ॥६४५॥
मायूरि कुक्कुटि प्रोच्य नारसिंहि ततः परम् ।
शान्ति स्वस्त्यनु च ब्रूयात् पदं वै पुष्टिवर्द्धनि ॥६४६॥
जीवसत्त्वे तथाधानं ग्लानीर्ष्ये श्रममेव च ।
ततो नु गङ्गे यमुने सरस्वति ततः परम् ॥६४७॥
गोदावरीपदात् नर्मदे[३] कावेरि प्रकीर्तयेत् ।
कौशिकीत्यनु संबोध्य दर्शनं च विसर्गयुक् ॥६४८॥
तस्यानूद्धृत्य वागङ्घ्री भावनाक्षान्तिनासिकाः ।
व्यरतिं[४] निर्भयं नीतिमृगधोयजुरेव च ॥६४९॥

---

१. इयं पंक्तिः क ख पुस्तकयोर्नास्ति । २. ०कलङ्किनि घ ।
३. धर्मदे क, ङ । ४. च्यवतिं क, ङ ।

ततो नु सामाथर्वाणौ सन्तानपदतः प्रदे ।
पुनः सन्तानमालानु भारिणीति समुद्धरेत् ॥६५०॥
रचनां सुप्तिमुल्लिख्य स्पर्शवाणी समुद्धरेत् ।
क्लमं निषादमादानमवज्ञां भयमेव च ॥६५१॥
कौलाचारव्रतिन्युक्त्वा कौलाचाराच्च कुट्टिनि[1] ।
तस्यानु कुलधर्मोक्त्वा रक्षिके परिकीर्तयेत् ॥६५२॥
श्रद्धां दयामार्जवं च तुष्टिवैराग्यनिष्ठुरान् ।
विसृष्टिं गमनं चिन्तां ततो विश्वम्भरे वदेत् ॥६५३॥
सन्धियुक्तं च तस्यानु अचले परिकीर्तयेत् ।
उक्त्वा प्रचण्डदयिते महिते पशुपत्यनु ॥६५४॥
शचीशबर्योः संबुद्धिः सन्ध्याया अपि च प्रिये ।
स्रुवं लोभमुपस्थं च रसनां मानमेव च ॥६५५॥
तृष्णामदोर्मिनाशाञ्च गर्वक्रूरौ ततः परम् ।
मूर्च्छामुच्चार्य विलिखेज्जगत्कारणकारिणि ॥६५६॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभगिनि ततोऽप्यनु समुद्धरेत् ।
सुषुप्तिशङ्काधीराश्च व्यपराधं परिक्रमम् ॥६५७॥
असूयायोगविकृपाघृणाव्यालम्भबुद्बुदान् ।
महारौद्रि ततो रुद्रावतारे परिकीर्तयेत् ॥६५८॥
रुद्राविणि समुद्धृत्य द्रविणि द्राविणीत्यपि ।
दैन्यक्षमेतिरोगाञ्च कौटिल्यस्थैर्यमध्यमान् ॥६५९॥
आश्वासमथ निर्वेदं सम्मानं पञ्चमं तथा ।
धैवतं प्रश्रयं हास्यं[2] सङ्कल्पिनि ततोऽप्यनु ॥६६०॥
विकल्पिनि समुद्धृत्य प्रपञ्चाच्च प्रकल्पिनि ।
कषायमर्तिसंभोगं चर्चिकारोहधारणाः ॥६६१॥
वृत्त्यारोहतंम्भरार्थजुगुप्साः कक्षया सह ।
स्तोभहिङ्कारहूवापि बीजानि तदनन्तरम् ॥६६२॥

---

१. रक्षिके परिकीर्तयेत् घ । २. प्रश्रयहास्यं क ।

[1]अबीजे तदनूद्धृत्य नानाबीजे समुच्चरेत् ।
जगद्बीजे ततो बीजार्णवे परिलिखेत् प्रिये ॥६६३॥
सर्वबीजमयीत्युक्त्वा ततः पञ्चदशोद्धरेत् ।
शीर्षकं शल्यशङ्कू च निषढं हेतिमेव च ॥६६४॥
पोतृसंवेदिसंकुण्डमखानपि वृतिं ततः ।
दिक्कोलतमईर्ष्याधूर्बीजानि तदनन्तरम् ॥६६५॥
अमूर्ते च विमूर्ते च नानामूर्ते ततः परम् ।
मूर्त्यतीते च सकलपदान् मूर्तिधरेऽपि च ॥६६६॥
भ्रान्तिप्रवेशरोमाञ्चदिष्टहुङ्कारदुर्म्मराः ।
कीलास्थिभेदवैतस्तिककटंकटरज्जुकाः ॥६६७॥
दक्षिणाग्नि गार्हपत्याहवनीयमथापि वा ।
त्रेता चर्मारणी सामिधेनीश्चरुमुदूखलम् ॥६६८॥
[कु?]जुहूं ध्रुवां स्रुवामुक्त्वा ऋगन्तेऽवभृथं वदेत् ।
महामाये ततो मायातीते मायिनि चोद्धरेत् ॥६६९॥
मायामोहिनि संकीर्त्य वात्सल्यं कपटं वदेत् ।
चपलाशावितर्कांश्च तत उन्माथपञ्चकम् ॥६७०॥
ऐष्टचत्रयं च भीमाभं नाराशंसीं तथैव च ।
संहर्षमनुतापं च सप्तर्ध[2]स्तदनन्तरम् ॥६७१॥
[3]योगेश्वरि पदाद् योगैकगम्ये परिकीर्तयेत् ।
योगातीते ततश्चण्डातिचण्डपदतो महा- ॥६७१॥
-चण्डयोगेश्वरि प्रोच्य चण्डिकेऽपि च कीर्तयेत् ।
समीहाद्वितयं जाड्यद्वितयं बोधपञ्चकम् ॥६७२॥
तावच्छुरीकं मर्यादाद्वितयं चमसद्वयम् ।
कृपाद्वयं खेदयुगं प्रतिप्रस्थातृपञ्चकम् ॥६७३॥
कालेश्वरि ततः प्रोच्य कालवञ्चनि कीर्तयेत् ।
कालातीते समुद्धृत्य ततः कालातिकाल[4] च ॥६७४॥

---

१. इतः षट् पंक्तयः घ पुस्तके न सन्ति । २. सप्तभूस्त० घ ।
३. इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति । ४. ०कालि घ, ङ ।

महाकालीश्वरीत्युक्त्वा प्रतिहर्तृनते ततः ।
गाम्भीर्यद्रोहसिंहाश्च वैरास्यालम्भसंमदान् ॥६७५॥
सुब्रह्मण्यचतुष्कं च संयाजादीश्च तावतः ।
ब्रह्माण्डेश्वरि संकीर्त्य ब्रह्माण्डाच्च कलेवरे ॥६७६॥
कोटिब्रह्माण्डपदतः सृष्टिकारिणि कीर्तयेत् ।
आवेगं च प्रकाशं च स्थानीसंस्थाचतुष्टयम् ॥६७७॥
ब्रह्माज्यसोमानौत्सुक्यं दम्भोग्रे व्याधिकांस्ततः ।
मृतिक्षतापराधांश्च जुगुप्सां च सहायिनीम् ॥६७८॥
सर्वैश्वर्येऽनुसर्वेश्वरैकगम्ये ततः परम् ।
सर्वैश्वर्याद्दायिनी च सर्वसर्वेश्वरीत्यपि ॥६७९॥
अपि श्वास[स्वाहा?]स्वधाकारौ वषट्कारमनन्तरम् ।
अनार्यमर्चारिजसी शिवाध्रुवप्रमोदकान् ॥६८०॥
ततश्च नवबीजानि द्रुमशेषं कुणीमुखम् ।
खवेदकरसंख्यानां देवीनां मनुमन्त्रतः ॥६८१॥
इष्टिं सानुं महानङ्गं व्रतमक्षं च मारिषम् ।
अजं दक्षिणमालिख्य वैद्युतास्त्रमुदीरयेत् ॥६८२॥
धूमकालीति संबोध्य तारकूटं समुच्चरेत् ।
उत्तरं पश्चिमं ज्योतिर्गूढाखण्डतलानि च ॥६८३॥
समुद्धरेदर्थभौमावस्त्रहार्दशिरांसि च ।
पूर्वनारदह्रस्वांश्च पुण्यखातोक्षनान्दिकान् ॥६८४॥
कूटं च वैष्णवं दत्वा शाबरास्त्रमुदीरयेत् ।
संबोध्य जयकालीति जय जीव द्वयं द्वयम् ॥६८५॥
गायत्रीं धारणां चारुं देवसात्वतवर्तकान् ।
कर्णिकां लूमयुगलं फट्त्रयान्ते शिरो वदेत् ॥६८६॥
आदौ त्रैविक्रमं कूटं मेरुकूटमनन्तरम् ।
ततोऽस्त्रं कालकूटाख्यं शृङ्खलां सुक्तं शिफाम्[1] ॥६८७॥

---

१. शिफम् घ ।

संबोधनं चोग्रकाल्याः सेतुसन्तानतोरणान् ।
दद्यात्ततो हृच्छिरसी मैत्रचर्चाविबुद्बुदान् ॥६८८॥
योगप्राग्भवकीलालतुण्डकोदण्डसंग्रहान् ।
ज्वालाकालीत्युपस्मृत्य परमावृत्तसाकलान् ॥६८९॥
अस्त्रशीर्षे पराकूटं चित्कूटं ज्येष्ठकूटकम् ।
संबुद्धिं धनपूर्वायाः काल्याः पावकवल्लभाम् ॥६९०॥
कुब्जसंज्ञे च सान्निध्यं पुराणं मुख्यमेव च ।
औपह्वरं[1] घोरनादकालिशब्दं ततो वदेत् ॥६९१॥
मूर्वलां कुशिकं रागमस्त्रं वेतालनामकम् ।
हृन्मूर्द्धानौ नैगमाण्डे चरमोन्माथकापिलान् ॥६९२॥
व्ययं रेतोऽर्चिषी कीलं हारिणीं रञ्जिनीं लघुम् ।
भोगस्वायम्भुवप्राणकूटांश्च तदनन्तरम् ॥६९३॥
ततः कल्पान्तकाल्याश्च संबोधनपदं प्रिये ।
उत्पातास्त्रं पट्टयुक्ती लाङ्गलं सारसं ततः ॥६९४॥
त्रिकूटं गह्वरं[2] कूटं भद्रिकास्त्रशिरांसि च[3] ।
त्रिस्थानोत्तंसकल्याणसंघातातीतजङ्गमान् ॥६९५॥
वेतालकालीत्युद्धृत्य मौञ्जीवेतण्डसाक्षिणः ।
याम्यकूटं शारभास्त्रं वेणुसाधककौलिकान् ॥६९६॥
अस्त्रत्रयं हृद्द्वयं च शिर एकं ततः परम् ।
गर्भसूत्रषडङ्गायसूच्यर्घक्षोभणेश्वरान् ॥६९७॥
ब्राह्मं कूटं पद्मकूटं कूटं राथन्तरं ततः ।
कङ्कालकालीं संबोध्य महाङ्कुशमहाविषे ॥६९८॥
वागुरासिन्धुविस्तारवत्सार्ततरणो[लो ?]त्तमान् ।
शेषे शिरो भानबले[4] प्राग्वंशसमरावपि ॥६९९॥
ताटङ्कद्वीपसुरसानस्त्रं राजसमेव च ।
शिखा युगन्धरा विद्या नग्नकालि ततः परम् ॥७००॥

---

१. औपस्करं घ ।
२. नागलं घ ।
३. भद्रिकाश्च शिरांसि च, घ ।
४. भारबले घ ।

नैगमेडाबृहत्कूटान्यतः परमुदीरयेत् ।
[1]ततो युगन्धराविद्ये दद्यादस्त्रशीर्षमनू अपि[?] ॥७०१॥
रङ्कयोनी धेनुनीले भृङ्गारं भ्रामरीमपि ।
ततो ब्रह्माण्डं भूरङ्गौ[ङ्कौ ?]महामारी प्रभञ्जने ॥७०२॥
कलशौण्डिलभावांश्च वामनो[2]न्मादशैशुकान् ।
घोरघोरतरात् कालि ब्रह्माण्डपरिवर्तिनि ॥७०३॥
सौपर्णानन्तकूटे च स्कान्दार्क्षास्त्रे ततः परम् ।
उत्कोचिनीं वर्धमानं महामोहमनन्तरम् ॥७०४॥
मध्यखर्वग्रहानन्ते शिरोमनुमतः परम् ।
प्रचण्डां सिद्धकूटं च ततो दुर्जयकालि च ॥७०५॥
[3]काकीमुखद्वीपजम्भकरुणोल्लोलकार्पटान् ।
ततो वैनायकं चास्त्रं कालरात्रिं ततः परम् ॥७०६॥
हृन्मन्त्रभ्रूण[4]पुन्नागव्योमसर्वार्थशिञ्जिनीः ।
मन्थानकालि चोद्धृत्य पुटकं वह्निवल्लभाम् ॥७०७॥
निर्मोकं च महारात्रिं कालरात्रिमतः परम् ।
कैलासकूटं चोद्धृत्य कालि संहारशब्दतः ॥७०८॥
ज्वलप्रज्वलयोर्युग्मं[5] भीषणाकारमेव च ।
गोपय द्वितयं प्रोच्य मां ततो रक्ष कीर्त्यते[6] ॥७०९॥
युगान्तमन्तकं चोक्त्वा वेगं सैन्धवमेव च ।
अस्त्रं स्वाहां वैधसं च सन्धानीं लिङ्गमेव च ॥७१०॥
गुह्यकाख्यं ततः कूटमाज्ञाकालि ततः परम् ।
नैमयं हृन्मनुं प्रोच्य कीर्तयेन्नाभसोलूकौ ॥७११॥
प्रमथास्त्रं च त्रिपुरां रौद्रकालि ततः परम् ।
अर्चामुकुलमालिख्य रौद्रं घोषमतः परम् ॥७१२॥

---

१. ततो वरानने दद्यादस्त्रशीर्षमनू अपि क, ङ । २. वासनोन्माद० घ ।
३. इतः द्वे पंक्ती घ पुस्तके न स्तः । ४. तृण क तूण ङ ।
५. ज्वलप्रज्वल उल्लिख्य क, ङ। ६. युग्मकम् घ ।

अस्त्रत्रयं समुच्चार्यं वदेद्धृंच्छिरसी ततः ।
मातृबीजं तर्जनं च शङ्कुं कुहकमेव च ॥७१३॥
ततश्च नैर्ऋतं कूटं तिग्मकाल्युच्चरेत् ततः ।
वैकारिकं मज्जनं च गणास्त्रं तदनन्तरम् ॥७१४॥
महेन्द्रमर्द्रि[1] हृन्मन्त्रं याम्यं नायकमेव च ।
ज्वरास्त्रं समनूद्धृत्य ततः कृतान्तकालि च ॥७१५॥
करनिष्पिष्टपदतो भवेत्त्रिभुवनेति [?] च ।
तुरुयुग्मं हसद्वन्द्वमात्मानं जीवनीमपि ॥७१६॥
प्रपञ्चकूटमैन्द्रं च फट्त्रयान्ते शिरोऽपि च ।
आज्ञाकूटं योगकूटं पिङ्गलाकूटमेव च ॥७१७॥
महारात्रिपदात् कालि सर्वविद्याप्रकाशिनि ।
ककुदैन्द्रे विलासं च हार्दमन्त्रमतः परम् ॥७१८॥
पूतं घाटीं वाडवं च शिखामद्वयमेव च ।
सङ्ग्रामकालीत्युच्चार्य जयदे तदनूद्धरेत् ॥७१९॥
जयमुक्त्वा देहि युगं नादकूटं ततो वदेत् ।
भौरभारपरां[2]श्चैव हार्दयुग्माच्छिरोऽपि च ॥७२०॥
हन-[इन ?]मुग्रं संयमं च फैरवं कूटमेव च ।
भीमकालि भयं प्रोच्य मे पदान्नाशयद्वयम् ॥७२१॥
वेत्रसन्धानहार्दांश्च स्फुरप्रस्फुरयोर्युगम् ।
चटयुग्मं कहयुगं शवकालि ततो वदेत् ॥७२२॥
कूष्माण्डास्त्रं नादकूटं स्थावरं वह्निवल्लभाम् ।
कुठारवेधिन्यापाढान् घटीतश्चण्डकालि च ॥७२३॥
सुषुम्णाकूटतः कर्त्रीं स्वाहान्तां समुदीरयेत् ।
ततः शारङ्गखट्वाङ्गौ ताण्डवं कूटमेव च ॥७२४॥
वदेद् रुधिरकालीति फडन्ते चाग्निवल्लभा ।
पद्मकूटं मूर्च्छनास्त्रं घोरकालि ततः परम् ॥७२५॥

---

१. मंत्रि घ । २. ०पदांश्चैव क ।

नमोऽस्तु ते समुद्धृत्य स्वाहान्तं समुदीरयेत् ।
वज्रकूटं ततः प्रोच्य कालिके चाभयङ्करात् ॥७२६॥
कोटिकल्पान्तपदतो ज्वालासमपदं ततः ।
शरीरे भौमकूटं च नमः फड् वह्निवल्लभाम् ॥७२७॥
प्रत्यञ्चं[1] भ्रामकास्त्रं च धराकूटमतः परम् ।
सन्त्रासकालि प्रोद्धृत्य भयं मे शमयोद्धरेत् ॥७२८॥
स्वाहा तदन्ते कोरङ्गीं प्रेतकालि ततो वदेत् ।
संहारकूटं हृच्छीर्षे सं सां स्वस्तिकमेव च ॥७२९॥
करालकालिं संबोध्य फट्त्रयं हार्दमेव च ।
संज्ञां[2] रोगं वीरकूटं विकरालाच्च कालि च ॥७३०॥
चण्ड[3]चण्डे त्रिभुवनमावेशय ततो वदेत् ।
स्वाहा कापिलकूटं च कालि प्रलयशब्दतः ॥७३१॥
सूर्यावर्तं तथा राहुं गालनास्त्रं ततः परम् ।
स्वाहा हृदयमस्त्रं च कौलुञ्चं खोटमेव च ॥७३२॥
चन्द्रावर्तं च बालां च जीवकूटमथो वदेत् ।
विभूतिकालि संकीर्त्य श्रियं मे देहि दापय ॥७३३॥
अन्ते स्वाहा वैटपं च मारण्डं तदनन्तरम् ।
अपरान्तं त्रिदैवं च भोगकालि ततोऽप्यनु ॥७३४॥
प्राजापत्यं ततः कूटं हृदयं दहनाबलाम् ।
तारावर्तद्वयं दत्वा प्रतानद्वितयं ततः ॥७३५॥
माकरास्त्रं च वासिष्ठं कूटं तदनु कीर्तयेत् ।
कालकालीति संबोध्य मृत्युपाशं ततो वदेत् ॥७३६॥
छिन्धि द्विः परविद्या- च माकृष्य तदनूच्चरेत् ।
दर्शयानलकान्तां च त्र्यस्रं कौलशिलं ततः ॥७३७॥
नागान्तकोग्रकूटौ च स्वप्नास्त्रं तदनन्तरम् ।
तत उक्त्वा वज्रकालि पुनर्वज्रमयाक्षरान् ॥७३८॥

---

१. प्रत्यग्ध्रवं क । २. संज्ञा घ ।
३. चण्डमुण्डे घ ।

कलेवरे समुच्चार्यं प्रकरीवह्निवल्लभे ।
विमर्दं विधृतिं चैव मधुपर्कं त्रिदैवतम् ॥७३९॥
गुह्याकूटं च विकटकालिशब्दं ततः परम् ।
देहोदरे च विकटात् फैरवास्त्रमतः परम् ॥७४०॥
अस्त्रपञ्चकशेषे तु कीर्तयेद् वह्निकामिनीम् ।
औपदेयं विनादं च धौमात्रत्यं च कूटकम् ॥७४१॥
विद्याकालि समुच्चार्य विद्यां देहि ततः परम् ।
दापयान्ते ततः शीर्षं बिन्दुकं दाक्षिकं तथा ॥७४२॥
कूटं स्वाप्नात्रतेयं च ततोऽस्त्रं मारणाभिधम् ।
पुनश्चाङ्गिरसं कूटं कालि कामकलापदात् ॥७४३॥
सौमतं च विरूपं च शेषे हृच्छिरसी वदेत् ।
त्रयीमयं शेखरं च कूटं पौष्करमेव च ॥७४४॥
शक्तिकाल्यनु मौलिञ्जं हार्दं मनुमतः परम् ।
अपरान्तं च विसरं त्रैदशास्त्रमतः परम् ॥७४५॥
ततो दक्षिणकालीति कूटं हैरण्यगर्भकम् ।
स्वाहान्तं तदनूद्धृत्य चामरव्यजने शुभे ॥७४६॥
उन्मादास्त्रं महत्कूटं मायाकालि ततः परम् ।
नमोऽन्ते विजयामुक्त्वा भद्रकालि ततो वदेत् ॥७४७॥
ऋक्कूटं सत्त्वकूटं च स्तम्भनास्त्रं ततोऽपि च ।
अस्त्रहार्दशिरांस्यन्ते बीजं श्रीकण्ठमेव च ॥७४८॥
सम्भूतिं च त्रिदैवं च पैशाचं कूटमेव च ।
महाकालीति संबोध्य विचित्रं बीजमीरयेत् ॥७४९॥
हार्दद्वयं शिरश्चैकं ततः संहारिणं लिखेत् ।
विरतिं चतुरस्रं च कालि चापि श्मशानतः ॥७५०॥
उच्चार्य मानवं कूटं कीर्तयेद्धन्यविस्मृती ।
अस्त्रहार्दौ च संलिख्य शिल्पं सिद्धिफलं ततः ॥७५१॥
मोहनास्त्रं ततो दत्वा नाभसं कूटमुद्धरेत् ।
पाणिगीर्तिं तथोल्लोप्यं कुलकालीति कीर्तयेत् ॥७५२॥

दिगम्बरं च सम्पूर्णां हार्दास्त्रे शीर्षमेव च ।
पौरुषाख्यान्महाकूटान् नादकालीति कीर्तयेत् ॥७५३॥
संन्यासं मौनमुद्धृत्य विटङ्कान्तेऽग्निवल्लभाम् ।
समक्षं कुलमुद्रां च निर्वाणं कूटमेव च ॥७५४॥
बलास्त्रं च तमःकूटं मुण्डकालि ततः परम् ।
भस्मगुह्यकपाटौ च तदन्ते हार्दमीरयेत्[1] ॥७५५॥
सङ्कल्पं च विकल्पं च कूटमादित्यनामकम् ।
सिद्धिकालि समुच्चार्य वनस्पत्यन्तगं शिरः ॥७५६॥
अङ्कुरं च विधानं च वासवं कूटमेव च ।
उदारकालि चोल्लिख्य ततोऽस्त्रद्वितयाच्छिरः ॥७५७॥
मौलं रसपुटं रन्ध्रं ततश्चापि [2]बलास्त्रकम् ।
शक्तिकूटं संविधानं शिरोऽस्त्रहृदयान्यतः ॥७५८॥
योगतन्द्रां च कलहं विकरालीमतः परम् ।
[3]शक्तिकूटं रजःकूटं कालि चोन्मत्तशब्दतः ॥७५९॥
ततश्च लक्ष्मबीजान्ते शिरो हृदयमीरयेत् ।
विकोशं[4] विक्रमं तन्तुं महानिर्वाणकूटकम् ॥७६०॥
अचेतनास्त्रं च ततः कालि सन्तापशब्दतः ।
संसृष्टिं संक्रमं प्रोच्य फडन्ते हृदयं शिरः ॥७६१॥
विशिखां चक्रतुम्बीं च भासाकूटं ततः परम् ।
काल्याः कपालपूर्वायाः संबुद्धिस्तदनन्तरम् ॥७६२॥
ततोऽमृतं मयि प्रोच्य निधेह्यनलवल्लभाम् ।
विहारं चूलिकां सृष्टिकूटं प्रोच्य क्रमात् प्रिये ॥७६३॥
आनन्दकालि चोद्धृत्य हार्दमस्त्रं ततो वदेत् ।
कुशं विसृष्टिं विन्यस्य स्थितिकूटमतः परम् ॥७६४॥
निर्वाणकालीत्याजिख्यानाख्याकूटं शिरोऽन्वितम् ।
पारीन्द्रं जैमनं वध्वा कूटं साम यजुस्तथा ॥७६५॥

---

१. हार्दमेव च क ।
२. चलास्त्रकम् ? क ।
३. इतः पंक्तिद्वयं घ पुस्तके नास्ति ।
४. विकाशं घ ।

कालि भैरवशब्दाच्च त्रिफडन्तेऽग्निवल्लभाम् ।
पञ्चपञ्चाशतं कालीं चैवमुद्धृत्य पार्वति ॥७६६॥
कपालडामरीयांस्तु महामन्त्रान्[1] समुद्धरेत् ।
कलावतीं च मञ्जीरं कूटमाथर्वणं ततः ॥७६७॥
निमीलनास्त्रं च ततः पुनर्महिषमर्द्दिनि ।
ततोऽप्याङ्गिरसं कूटं फडन्ते मस्तकं ततः ॥७६८॥
विखलं कैतकौत्तानं सर्गानाडीमनन्तरम् ।
ज्योतिष्टोमाह्वयं कूटं राजमातङ्गि च प्रिये ॥७६९॥
सकलं मे वशं प्रोच्य कुर्वन्ते वह्निवल्लभाम्[2] ।
यौक्तिकं व्युत्तरं प्रोच्य प्रत्ययातङ्क[3]चूलिकान् ॥७७०॥
नाडीं च हस्तिजिह्वाख्यां प्रभाकूटं ततः परम् ।
उच्छिष्टमातङ्गि ततो वदेत् सर्वज्ञतां ततः ॥७७१॥
पुनर्मे जनय प्रोच्य फट् स्वाहा कीर्तयेत् ततः ।
हितां नाडीमनुस्मृत्य रोहितं वर्णमेव च ॥७७२॥
माहित्रसूक्तं च ततो विरजां च तरङ्गिणीम् ।
कूटं ज्योतिर्मयं चैव लक्ष्म्याः संबोधनं ततः ॥७७३॥
निधिं मयीति संलिख्यं निवेशय शिरोऽपि च ।
कूटमग्निष्टोमसंज्ञं नाडीमपि च शङ्खिनीम् ॥७७४॥
सर्वस्वं च विसारं च महालक्ष्मि ततः परम् ।
प्रसीद द्वितयाच्छीर्षं विघटीं वरुणानदीम् ॥७७५॥
हंससूक्तमुलूकास्त्रं नाड़ीमपि च घर्घराम् ।
पारावतीमपि नदीमत्यग्निष्टोमकूटकम् ॥७७६॥
विश्वलक्ष्मीति संबोध्य त्वरयुग्मं ततः परम् ।
राज्यं मे देहि चोद्धृत्य तदन्ते किं विलम्बसे ॥७७७॥
स्वाहा च सर्वशेषे स्यान् माया हारं ततः परम् ।
शुक्लवर्णं च संबुद्धिरन्नपूर्णापदस्य हि ॥७७८॥

---

१. महासंयमान् क । २. ० वल्लभौ क ।
३. प्रत्ययानेकचूलिकान् क ।

अन्नैर्मे गृहमुच्चार्य पूरयान्ते शिरोऽपि च।
नाडीं विसर्गामुच्चार्य चाक्रिकं मुरलापगाम् ॥७७९॥
वाजपेयं ततः कूटं वाग्वादिनि ततोऽपि च।
माध्वीकसूक्तं च नभो रक्षकं[1] बीजमेव च ॥७८०॥
चम्पावतीं च ह्लदिनीं सूर्यक्रान्ताख्यकूटकम्।
धमनीधमनीं पश्चाद् वनदुर्गे ततः परम् ॥७८१॥
तदन्ते हृदयं चास्त्रं सन्तारं विप्रियं ततः।
चण्डां नाडीं रौद्रसूक्तं ततो ज्योतीरसापगाम् ॥७८२॥
कात्यायन्याश्च संबुद्धिमन्तर्धानास्त्रमेव च।
सर्पामयं ततः कूटं नीलवर्णं ततः परम् ॥७८३॥
सर्वशेषे भवेत्स्वाहा मञ्जरीबीजमेव च।
ततो नु कम्पिनीं नाडीं दृषद्वत्यापगां ततः ॥७८४॥
सर्वतोभद्रकूटं च भारुण्डासूक्तमप्यतः।
कल्माषवर्णमपि च तुम्बुरेश्वरि चेत्यपि ॥७८५॥
अस्त्रहृच्छिरसां दद्यादेकैकं तदनु प्रिये।
शुद्धनिद्रां समालिख्य विजयाऽघोर इत्यपि ॥७८६॥
कूटे ततोऽर्धसावित्री शेषे स्वाहां नियोजयेत्।
सम्भावनां शोणनदीं तथा धवलवर्णकम् ॥७८७॥
पद्मावत्याश्च संबुद्धि सूक्तमौशनसं ततः।
ततो वेगवतीं नाडीं नमोऽन्ते कङ्ककूटकम् [?] ॥७८८॥
जय दुर्गे समुच्चार्य निम्नानाडीमथेरयेत्।
हृच्छीर्षे तदनूद्धृत्य दुर्गे युग्मं ततः परम् ॥७८९॥
रक्षिण्यन्ते शिरो दत्वा वंकक्षं तदनन्तरम्।
कूटं च पुण्डरीकाख्यं नाडीं मधुमतीं ततः ॥७९०॥
संबुद्धिर्जयलक्ष्म्याश्च संग्रामे जयमीरयेत्।
मे देहि दापयेत्युक्त्वा ततो घर्घरनिम्नगाम् ॥७९१॥

---

१. वर्णकं घ।

मेधासूक्तं पाण्डुवर्णं फण्नमोवह्निवल्लभाम् ।
बीजं संजीवनीं दत्वा सावित्रीकूटमन्वतः ॥७९२॥
सतीं नाडीं तदन्ते च धनलक्ष्मि पदं ततः ।
धनमुक्त्वा ततो वर्षं वर्षापय युगं युगम् ॥७९३॥
नमस्ततः समाधानं नाडीमपि सरस्वतीम् ।
सिन्धुस्रवन्तीमुल्लिख्य सूक्तमाथर्वणं ततः ॥७९४॥
पूर्णेश्वरि ततो दत्वा धूमवर्णं[1] तथोच्चरेत् ।
मनोरथं पूरय च शेषे स्वाहां लिखेत् प्रिये ॥७९५॥
ततो विस्वरितं बीजं षोडशीकूटमेव च ।
तस्यानु धमनीं नाडीं ततश्च बगले पदम् ॥७९६॥
ऐन्द्रवारुणसूक्तं च गोमतीसरितं ततः ।
पीतवर्णं हृदस्त्रे च बीजं वैधानमेव च ॥७९७॥
अपस्मारास्त्रमुल्लिख्य कूटं सौत्रामणीयकम् ।
चामुण्डेश्वरि रक्ताच्च संबोधनतया वदेत् ॥७९८॥
क्षिप्तानाडीं शोणवर्णं पौरुषं सूक्तमेव च ।
गण्डकीं निम्नगां शीर्षं बीजं विद्यावलं ततः ॥७९९॥
इन्दिरां विक्रियं चापि वंक्षुस्रोतस्वतीं ततः ।
सम्बोधनं सरस्वत्याः सूक्तं वैनायकं ततः ॥८००॥
ततश्च भासुरां नाडीं हरिद्वर्णं ततः परम् ।
[2]आश्वमेधिककूटं च शिरोऽस्त्रहृदयान्यतः ॥८०१॥
शालङ्कं बभ्रुवर्णं च तमसां निम्नगामपि ।
महानदीनदीमुक्त्वा महामन्त्रेश्वरीरयेत् ॥८०२॥
नाडीमलम्बुषामुक्त्वा कूटं वै कोण्डपामयम् ।
स्वाहा विवृत्तं हृदयं ततः शूलिनि चोद्धरेत् ॥८०३॥
राजसूयं ततः कूटं नदीं मन्दाकिनीमपि ।
नाडीं विश्वोदरामुक्त्वा तदन्ते वह्निकामिनीम् ॥८०४॥

---

१. मधुवर्णं घ । २. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति ।

पाषाणं त्वाष्ट्रसूक्तं च शौकवर्णमनन्तरम् ।
भुवनेश्वरि संकीर्त्य नाडीं सङ्कोचिनीं वदेत् ॥८०५॥
आदित्यामयकूटं च स्वाहा विपृथुमेव च ।
ततः स्विष्टकृतं कूटं शतद्रुतटिनीमपि ॥८०६॥
यन्त्रप्रमथिनीमुक्त्वा सूक्तं वायव्यमेव च ।
नाडीमावेशनीमुक्त्वा कर्बुरं वर्णमीरयेत् ॥८०७॥
त्रैलोक्यविजये प्रोच्य विजयं प्रवदेत्ततः ।
कुरुयुग्मं जययुगं फट्शिरस्तदनन्तरम् ॥८०८॥
फल्गुस्रोतस्वतीं प्रोच्य तदन्ते गुह्यखेचरीम् ।
गवामयं ततः कूटं लौहित्यतटिनीमपि ॥८०९॥
गुह्या महाभैरवीति ततः परमुदीरयेत् ।
पूर्णां नाडीं श्वेतवर्णं सूक्तं पर्यायनामकम् ॥८१०॥
ततः संतल [संबल ?] बीजं च फट्त्रयं हृच्छिरोऽपि च ।
स्निग्धां नाडीं च संगूढं सूक्तं हैरण्यकेशकम्[1] ॥८११॥
लक्ष्मि ब्रूयाद् राज्यसिद्धिपदपूर्वं[2] वरानने ।
फेनिलां तटिनीमुक्त्वा पाण्डुरं वर्णमीरयेत् ॥८१२॥
राज्यश्रियं मयि प्रोच्य निधेह्यन्ते शिरो वदेत् ।
लेपबीजं विजम्भं च वर्णौ कपिलपाटलौ ॥८१३॥
नाड्यौ तेजस्विनीदृप्ते राजराजेश्वरीति च ।
नर्मदाचन्द्रभागाख्यह्रदिन्यौ तदनन्तरम् ॥८१४॥
शिवसंकल्पवैभ्राजसूक्ते तदनु कीर्तयेत् ।
ततः कूटौ गजाक्रान्तौ कन्दर्पबलशातनौ ॥८१५॥
फट्द्वयं हृदयं चापि शीर्षमेकं ततः परम् ।
बीजं संहारिणीमुक्त्वा कूटं गोसवमीरयेत् ॥८१६॥
सुवर्णरेखातटिनीमश्वारूढे ततः परम् ।
सूक्तन्तरत्समन्दीयं [सूक्तं गृत्समदीयं ?] नाडीमपि च कर्षिणीम् ॥८१७॥

---

१. केशवं (?) घ। २, पूर्णं क।

ततो धूसरवर्णान्ते हृच्छीर्षे परिकीर्तयेत् ।
शुभंयुनामकं बीजं बीजं संप्रत्ययं तथा ॥८१८॥
नाचिकेतससूक्तं च नाडीमपि विलम्बिनीम् ।
[1]वज्रप्रस्तारिणि प्रोच्य नदीमैरावतीमपि ॥८१९॥
कूटमैडं श्यामवर्णं शिरो हृदयमेव च ।
[2]नाडीं प्रबुद्धां संव्यानं नित्यक्लिन्ने ततः परम् ॥८२०॥
प्रसन्ना भव संकीर्त्य कूटं चैव महाव्रतम् ।
नमः स्वाहा समुच्चार्य सूक्तं वै नीललोहितम् ॥८२१॥
लोहितं वर्णमनु च कूटं गोदोहमन्वतः ।
सम्बोधनमघोराया घोरघोरतराक्षरात् ॥८२२॥
रूपे[3] पाहि युगं प्रोच्य त्रिलोकीं तदनन्तरम् ।
वदेच्च क्षेपणीं नाडीं स्वाहा च तदनन्तरम् ॥८२३॥
ततः सम्बलबीजं च नाडीमथ यशस्विनीम् ।
शुचिवर्णं समुद्धृत्य जय भैरवि कीर्तयेत् ॥८२४॥
[4]जयप्रदे समुल्लिख्य जययुग् विजयद्वयम् ।
देविकातटिनीं ब्रह्मयज्ञकूटं ततः परम् ॥८२५॥
अस्त्रशीर्षे च हृदयमतः परमुदीरयेत् ।
पर्णाशां तटिनीमुक्त्वा बीजं धम्मिल्लनामकम् ॥८२६॥
ततो जयमहाशब्दाच्चण्डयोगेश्वरीरयेत् ।
ततो रसवहां नाडीं तुङ्गभद्रातरङ्गिणीम् ॥८२७॥
बार्हस्पत्यं ततः सूक्तं धूसरं वर्णमेव च ।
कूटं बहुसुवर्णं च शीर्षं हृच्चास्त्रमेव च ॥८२८॥
कपिशं वर्णमालिख्य कूटं विश्वजितं तथा ।
चण्डयोगेश्वरि ततः पुनर्नाडीं प्रकाशिनीम् ॥८२९॥

---

१. ब्रह्मप्र० घ । २. इतः पंक्तिचतुष्टयं क पुस्तके नास्ति ।
३. रूपेण हि युगं० (?) क । ४. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति ।

अनन्ताख्यं ततः सूक्तं सिप्रां स्रोतस्वतीं ततः ।
शुद्धवत्यं ततः सूक्तं स्वाहान्तं परिकीर्तयेत् ॥८३०॥
स्वाहाकारं कूटमुक्त्वा बीजं संवर्तकं तथा ।
त्वरिते इति संलिख्य हृन्मन्त्रं शेषतो वदेत् ॥८३१॥
कावेरीं तटिनीमुक्त्वा विवर्तकमतः परम् ।
आलस्याख्यां ततो नाडीं त्रिपुटे तदनन्तरम् ॥८३२॥
सर्वं साधय शीर्षं तु विवत्सं बीजमन्वतः ।
कूटं तनूनपातं च नाडीं क्लिन्नाह्वयामपि ॥८३३॥
महाचण्डपदाद् योगेश्वरि संकीर्तयेत्ततः ।
ऐन्द्रगोपं ततो वर्णं सूक्तमैन्द्राग्नमेव च ॥८३४॥
अस्त्रं च हृदयं चान्ते निर्युक्ति तदनन्तरम् ।
अश्वप्रतिग्रहं कूटं वितन्द्राबीजमेव च ॥८३५॥
चण्डकापालेश्वरि च पदमेतत्ततो वदेत् ।
रूक्षां नाडीं कुहूनाडीं हारीतं वर्णमेव च ॥८३६॥
अस्यवामीयसूक्तं च नदीं गोदावरीमपि ।
फट्त्रयं च नमोद्वन्द्वं शीर्षमेकमतः परम् ॥८३७॥
सम्भावं हृदयं प्रोच्य स्वर्णकूटेश्वरीति च ।
नाडीं प्रशान्तां तदनु नदीं भीमरथीमपि ॥८३८॥
हविष्यान्तं ततः सूक्तं वर्णं हरिणमेव ।
नद्यावर्तं पुनः कूटं शेषे स्वाहां समुद्धरेत् ॥८३९॥
कूटं रथक्रान्तसंज्ञमनुवृत्तिमतः परम् ।
वार्तालि[1] पदतो ब्रूयाद् धूतपापाभिधां नदीम् ॥८४०॥
तन्द्रावतीमथो नाडीं राजसं वर्णमेव च ।
अन्ते फट् काद्रवं वर्णं कूटं बलभिदं ततः ॥८४१॥
संयोगबीजमालिख्य चण्डवार्तालि[2] कीर्तयेत् ।
ततो विभ्रान्ति नाडयन्ते स्वाहाशब्दं विनिर्दिशेत् ॥८४२॥
गुप्ताचाराह्वयं बीजं जयवार्तालि[3] चेत्यपि ।

१ वार्तानि क । २. वार्तानि क ङ । ३. वार्तानि क ङ ।

सूक्तं च नतमंहाख्यं नाडीं च ज्वालिनीं ततः ॥८४३॥
सर्वज्ञतां देहि चोक्त्वा दापयान्तेऽग्निवल्लभाम् ।
तैत्तिरं वर्णमालिख्य वियोगं बीजमेव च ॥८४४॥
इषुसंज्ञं ततः कूटं ज्वलयुग्ममतः परम् ।
[1]चैतन्यभैरवि प्रोच्य रुचिं नाडीं शिरोऽपि च ॥८४५॥
उक्त्वा विष्णुक्रान्तकूटं हृत् कालाद् भैरवीत्यपि ।
पुनः कालेश्वरपदात् गृहिणीति समुद्धरेत् ॥८४६॥
कालं मे नाशयेत्युक्त्वा सर्वशेषेऽनलाबलाम् ।
पाटलं बीजमालिख्य कूटमग्निचितं ततः ॥८४७॥
तस्यानु वारणां नाडीमुग्रचण्डे ततः परम् ।
सूक्तं च पावमानाख्यं नदीं भोगवतीमपि ॥८४८॥
गौरवर्णं ततो ब्रूयादस्त्रस्वान्तशिरांसि च ।
विकटं भैरवं कूटं श्मशानपदतस्ततः ॥८४९॥
उग्रचण्डे ससन्ध्युक्त्वा महाघोरा- ततो वदेत् ।
कारधारिणि संकीर्त्य धूम्रां नाडीं समुद्धरेत् ॥८५०॥
फट् स्वाहा पश्चिमे चोक्त्वा पिप्पलं बीजमन्वतः ।
अपुनर्भविकां नाडीं रुद्रचण्डे ततः परम् ॥८५१॥
[2]नदीं शीतां [सिप्रां] [3]कृष्णवर्णं हृदयं शिर एव च ।
[4]समित्कूटं समुद्धृत्य प्रचण्डे इति वै ततः ॥८५२॥
नाराशंसी ततः सूक्तं शबलं वर्णमेव च ।
नाडीमपि च निर्वाणां निर्विन्ध्यातटिनीमपि ॥८५३॥
हृदस्त्रे शीर्षमन्ते च बीजं विनिमृयं ततः ।
वैकारिकं ततः कूटं [5]फडन्ते नम ईरयेत् ॥८५४॥
[6]रक्तवर्णं वैश्वदेवसूक्तं तदनु कीर्तयेत् ।
नमः फडन्ते चोद्धृत्य कालवर्णं समुच्चरेत् ॥८५५॥

---

१. इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति ।
२. नाडीं शीतां घ ।
३. वर्णं घ ।
४. इतः पंक्तिद्वयं घ. पुस्तके नास्ति ।
५. तदन्ते चण्डनायिके घ ङ ।
६. इतः पंक्तित्रयं केवलं ङ पुस्तके ।

चण्डे धुनीं मालिनीं च फडन्ते नम ईरयेत् ।
विपक्षश्येनकूटं च नाडीमपि मरीचिकाम् ॥८५६॥
पुनश्चण्डवति प्रोच्य प्रसन्ना भव चेरयेत् ।
वज्रकूटं समाभाष्य शेषे स्वाहा विनिर्दिशेत् ॥८५७॥
द्वादशाहं कूटमादौ चित्रवर्णमतः परम् ।
सम्बुद्धिमतिचण्डायाः लक्ष्मीसूक्तमनन्तरम् ॥८५८॥
घोररूपमुपेत्युक्त्वा शमयान्ते शिरोऽपि च ।
विरागं हरितं वर्णं चण्डिके तदनन्तरम् ॥८५९॥
कृपामुक्त्वा कुरुद्वन्द्वं नमः स्वाहा च पश्चिमे ।
गोगनिःश्रेणिकां नाडीं ज्वालाकात्यायनीत्यपि ॥८६०॥
उपांशुकूटं तदनु वर्णं वारुणमन्वतः ।
सोमारौद्रं ततः सूक्तं फडन्ते शिर[1] ईरयेत् ॥८६१॥
विसंज्ञां वज्रकूटं च नाडीमपि कपर्द्दिनीम् ।
उन्मत्तमहिषेत्युक्त्वा मर्द्दिनीत्यपि कीर्तयेत् ॥८६२॥
ततो विपाशां तटिनीं सङ्करं वर्णमन्वतः ।
अस्त्रं शिरश्चण्डिनं च नमो मुण्डमतः परम् ॥८६३॥
मधुमत्यनु संकीर्त्य भोगसिद्धिमितीरयेत् ।
प्रपच्छ वह्निजायां च गङ्गां सरितमेव च ॥८६४॥
सौभाग्यकारिणं कूटं त्रिपुरापदतो वदेत् ।
वागीश्वरि ततः शब्दं तुरीयां नाडिकामपि ॥८६५॥
स्वाहान्ते तदनु ब्रूयात् संविप्रत्ययबीजकम् ।
चण्डवारुणि संकीर्त्य सर्वमावेशयेत्यपि ॥८६६॥
मूलानाडीं ततो वर्णं पिङ्गलं समुदाहरेत् ।
नमः स्वाहा तदन्ते च त्रिप्रत्ययमतः परम् ॥८६७॥
दीक्षा सोमं ततः कूटमघोरा सौम्य इत्यपि ।
मैत्रावरुणसूक्तं च फडन्ते वह्निकामिनीम् ॥८६८॥

---

१. शिरसीरयेत् घ ।

उक्त्वोच्चशिखरं बीजं हारिद्रं वर्णमेव च ।
पौर्णमासं ततः कूटं धनदा घोर इत्यपि ॥८६९॥
धनं प्रयच्छ चेत्युक्त्वा नाडीमपि च तापिनीम् ।
फट् स्वान्तं तदनु ब्रूयान्नदीं कोकनदाह्वयाम् ॥८७०॥
कालरात्रीति संकीर्त्य कालं मे नाशयेत्यपि ।
ततश्च हृदयं शीर्षं विपाशं बीजमन्वतः ॥८७१॥
मायूरं च ततो वर्णं कूटमश्वप्रतिग्रहम् ।
किरातेश्वरि चोद्धृत्य जगद्वशमितीरयेत् ॥८७२॥
मा[आ ?]नयान्ते वह्निजायां पालितातटिनीमपि ।
कूटं बर्हिरथं पश्चाद्दिगम्बरि ततः परम् ॥८७३॥
स्वान्तमस्त्रं तदन्ते च ततः सम्मोहबीजकम् ।
सौभरं च ततः कूटं कालसंकर्षिणीत्यपि ॥८७४॥
चन्द्रावतीं ततो नाडीं कालं वञ्चय चेत्यपि ।
तिमिरातटिनीमुक्त्वा स्वाहा शेषे प्रयोजयेत् ॥८७५॥
विनर्मं समनूद्धृत्य नाडीमप्यथ लम्बिकाम् ।
जय [1]कङ्केश्वरि प्रोच्य कौसुम्भं वर्णमित्यपि ॥८७६॥
गोमेधकूटं [2]सुरभीनाडीमपि ततः परम् ।
सरस्वतीं च तटिनीं सूक्तमार्यम्णमेव च ॥८७७॥
हृदस्त्रशीर्षण्यन्ते संभ्रान्तिमथ कीर्तयेत् ।
कूटं ततश्च चयनं सिद्धिलक्ष्मि ततः परम् ॥८७८॥
अग्नीषोमीयसूक्तं च नाडीं नन्दामथोच्चरेत् ।
यमुनातटिनीमुक्त्वा वर्णमुल्वणमेव च ॥८७९॥
अन्ते नमः पदं प्रोच्य नाडीं तदनु कृन्तिनीम् ।
वैनतेयं ततः कूटं ततश्च भ्रमराम्बिके ॥८८०॥
जय [3]द्वन्द्वं ज्वलयुगं सम्पत्तिं च ददद्वयम् ।
स्वाहा [4]विष्कम्भबीजं च नमः पदमतः परम् ॥८८१॥

---

१. रिङ्केश्वरि घ छ ।
२. ऋषभी (?) घ ।
३. भयंद्वन्द्वं (?) ।
४. विक्षतबीजं च घ ।

महामोहिनि सन्ध्याद्यं मोहय द्वितयं वदेत् ।
जगद्वशं कुरु ततो नमोऽप्यन्ते समीरयेत् ॥८८२॥
पूषां नाडीं नदीं तापीं कूटं वै विष्णुविक्रमम् ।
[1]सम्बुद्धिं शबरेश्वर्याः कुकृत्यं नाशयेत्यपि ॥८८३॥
[1]शरीरं च ततो ब्रूयाद् गोपय द्वितयं प्रिये ।
स्वाहा संक्षतबीजं च चित्रां नाडीमतः परम् ॥८८४॥
महार्णवेश्वरि प्रोच्य रत्नं पश्चाद् ददद्वयम् ।
ततोऽस्त्रशिरसी उक्त्वा नाडीमुक्त्वा पयस्विनीम् ॥८८५॥
ताम्रपर्णीं स्रवन्तीं च गान्धारीनाडिकामथ ।
[1]चण्डेश्वर्याश्च संबुद्धिं सूक्तं गारुडमेव च ॥८८६॥
फट्त्रयं वह्निजाया च ततो विभ्रान्तिबीजकम्[2] ।
कूटमभ्युदयाख्यं च श्रीसूक्तं तदनन्तरम् ॥८८७॥
बाभ्रव्याश्चैव सम्बुद्धिं नमः स्वाहा ततः परम् ।
अव्यक्तानामिकां नाडीं वितस्तासरितं तथा ॥८८८॥
संबुद्धिं वज्रपूर्वायाः कुब्जिकायास्ततः परम् ।
शेषार्णान् पञ्चवर्गाणां शुद्धान् सर्गेन्दुवर्जितान् ॥८८९॥
अघोरामुखि चोद्धृत्य [3]किणियुग्मं ततः परम् ।
विच्चे शब्दं तत प्रोच्य नमः स्वाहा ततः परम् ॥८९०॥
अन्यासु पञ्चदशसु कुब्जिकासु वरानने ।
तत्तत्पूर्वोपपदतः सम्बोधनतया वदेत् ॥८९१॥
विंशत्यर्णांस्तु शेषीयांस्तानेव समुदाहरेत् ।
सर्वस्वदक्षिणं कूटं नाडीमाप्यायनीं तथा ॥८९२॥
देवीं समयपूर्वां च कौशिकातटिनीं ततः ।
दर्शकूटं मोक्षपूर्वां नाडीमप्युत्तरां ततः ॥८९३॥
कृष्णवेणीं च तटिनीं भोगपूर्वां तथेश्वरीम् ।
मानस्तोकाख्यसूक्तं च नदीं मलप्रहारिणीम्[4] ॥८९४॥

---

१. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति । २. कूटकम् क ।
३. किलि घ । ४. प्रवाहिणीम् घ ।

जयपूर्वां तथेशानीं कूटं च नरमेधकम् ।
किरणां तटिनीं चापि सिद्धिपूर्वामथेश्वरीम् ॥८९५॥
कामदं कूटमालिख्य श्रीसूक्तं तदनन्तरम् ।
आवेशपूर्विकां देवीं सम्मोहामथ नाडिकाम् ॥८९६॥
कृतमालां नदीं चापि [1]चिन्तामण्युत्तरां शिवाम् ।
कूटं च पौर्णकामाख्यं नाडीमपि च कोटराम् ॥८९७॥
परापूर्वां तथा देवीमचलानाडिकां ततः ।
पयोष्णीसरितं चापि हंसपूर्वां महेश्वरीम् ॥८९८॥
सोमस्रवाख्यां तटिनीं कावेरीं कूटमेव च ।
रत्नपूर्वामथेशानीं नाडीं स्वप्नवहां ततः ॥८९९॥
सरितं करतोयां च कुलपूर्वां च देविकाम् ।
बाहुदां तटिनीमुक्त्वा नाडीमपि च घण्टिकाम् ॥९००॥
ज्ञानपूर्वां [1]शिवां चापि नैर्ऋतं[2] सूक्तमेव च ।
गजच्छायं तथा कूटं नीलपूर्वां महेश्वरीम् ॥९०१॥
शरावतीं च तटिनीं [3]लम्बिनीं नाडिकामपि ।
देवीं कलापूर्विकां च कूटं वै नागयज्ञकम् ॥९०२॥
अग्निज्वालां तथा नाडीं कौशिकीं तटिनीमपि ।
निर्वाणपूर्विकां देवीमेताः षोडश कुब्जिकाः ॥९०३॥
विसंभ्रान्ति समालिख्य मेक[ख]लानामिकां नदीम् ।
संबोधनं च कुक्कुट्याः[4] राजानं तदनुद्धरेत् ॥९०४॥
मोहय द्वितयं प्रोच्य वशीकुरुयुगं वदेत् ।
शेषे नमः शिरश्चापि तटिनीमूर्मिलां ततः ॥९०५॥
नाडीं विकल्पामुल्लिख्य धनदे च प्रकीर्तयेत् ।
धनं मे देहि संभाष्य दापयान्ते शिरो वदेत् ॥९०६॥
कूटं ब्रह्मसवाख्यं च तत उत्पलिनीं नदीम् ।
कोरङ्गीत्यपि संबोध्य विवर्णां नाडिकां लिखेत् ॥९०७॥

---

१ इतः 'पयोष्णी सरितं चापि' इति यावत् क पुस्तके त्रुटितम् । २. यज्ञं च क ।
३. तपिनीं घ । ४. चक्रायाः क ।

फड्डुत्तमाङ्गं[1] सरयूमापगां तदनन्तरम् ।
संबुद्धिमपि डामर्याः कूटं त्रैलोक्यमोहनम् ॥६०८॥
स्वान्तमस्त्रं शिरश्चापि धीरानाडीमथोद्धरेत् ।
उद्धृत्य रक्तदन्तीति द्विवारं कमलानने ॥६०९॥
भयं मोचय शीर्षं च हृदस्त्राच्चर्चिके वदेत् ।
उक्त्वा शत्रुभयं शब्दमुन्मूलय च सन्धिमत् ॥६१०॥
नमः स्वाहा ततोऽनूद्य नाडीमप्यथ गालिनीम् ।
सङ्कटादेवि विन्यस्य सङ्कटं द्विश्च नाशय ॥६११॥
वदेत् फट् च तथा स्वाहा रञ्जनीं नाडिकां ततः ।
शङ्खचूडं ततः कूटं देवीसूक्तमनन्तरम् ॥६१२॥
चण्डघण्टे इति प्रोच्य पापं मे शमयेत्यपि ।
सिद्धिमुपनयेत्युक्त्वा फट्पूर्वं च शिरस्तथा ॥६१३॥
रेवतीद्रावणीमन्दास्तिस्रो नाडीः समुद्धरेत् ।
ततः संबोध्य चामुण्डां नरमुण्ड इतीरयेत् ॥६१४॥
कङ्कालमालाधारिण्यनु ब्रूयाद् भीषणानने ।
आपगां च ततो दद्यान्नाम्ना चेरावतीं प्रिये ॥६१५॥
फड्युग्मं च नमः स्वाहा तदन्ते समुदीरयेत् ।
चेतनानामिकां नाडीं बन्धुरामपि निम्नगाम् ॥६१६॥
अष्टाकपालकूटं च करालिनि महापदात् ।
पुनर्नीलपताके च फड्युग्मं शिर एव च ॥६१७॥
सर्पसत्रं कूटमादौ नाडीं च [2]भ्रामणीमपि ।
प्रवाहिनीमथ नदीं हरसिद्धे ततः परम् ॥६१८॥
दुःखमुक्त्वा हरद्वन्द्वं सिद्धिमुक्त्वा ददद्वयम् ।
अस्त्रमुक्त्वा शिरोद्वन्द्वं हृदयं चैकमेव हि ॥६१९॥
[3]आदौ सभङ्गां तटिनीं मुदितामथ नाडिकाम् ।
अनङ्गमालादेव्याश्च संबोधनमतः परम् ॥६२०॥

---

१. षड्डुत्तमाङ्गं (?) क । २. भ्रमणीमपि क । ३. इतः पंक्तित्रयं घ पुस्तके नास्ति ।

दीर्घसत्रमतः कूटं फडन्ते दहनाङ्गनाम् ।
चर्मण्वतीं नदीमुक्त्वा रण्डां नाडीमतः परम् ॥९२१॥
फेत्कारीति समुल्लिख्य कूटं रत्नहलं ततः ।
ततश्च [1]स्वान्तमूर्द्धानौ क्रमेण विनियोजयेत् ॥९२२॥
पुरतोऽवभृथं कूटं नाडीं च कपिलां ततः ।
संबुद्धि भोगवत्याश्च भोगं प्रयच्छ चेत्यपि ॥९२३॥
नाड्याश्च विश्वदूतायाः अन्ते स्वाहा समुद्धरेत् ।
नाडीं सौवीरिकानाम्नीं ततश्च लवणेश्वरि ॥९२४॥
फट् स्वाहान्ते ततो दद्यान् नदीं वेत्रवतीं प्रिये ।
सुमुखीमपि नाडीं च मृत्युहारिण्यतः परम् ॥९२५॥
[2]मृत्युं ततो हरद्वन्द्वं तस्यान्ते शिर एव च ।
चन्द्रा नाड्यनु च स्वान्तं नाकुलीति पदं तथा ॥९२६॥
सर्वमुच्चाटय स्वाहा तत एवं वदेत् प्रिये ।
हेमाभिधां ततो नाडीं वज्रवाराहि चेत्यपि ॥९२७॥
सम्पदं तु पदं प्रोच्य देहि युग्ममतः परम् ।
अस्त्रस्वान्तशिरांस्यन्ते प्रवदेद् वरवर्णिनि ॥९२८॥
आदावस्त्रत्रयं प्रोच्य हृदयं च शिरस्ततः ।
संबुद्धि भूतभैरव्यास्ततः परमुदीरयेत् ॥९२९॥
भैरवं तदनु प्रोच्य चालय द्वितयं वदेत् ।
चटप्रचटयुग्मं च कहयुग्ममतः परम् ॥९३०॥
ततः प्रलयशब्दानु मुखानलमितीरयेत् ।
वमयुग्मं समुद्धृत्य द्विषन्तमिति कीर्तयेत् ॥९३१॥
हनद्वन्द्वं समुल्लिख्य सम्पदा गृहमित्यपि ।
पूरयद्वितयादन्ते शिरो हृत् फट्त्रयं तथा ॥९३२॥
मैत्रीनाम्नीं तु धमनीमुक्त्वा नम इतीरयेत् ।
ससन्धि चण्डखेचर्याः सम्बोधनपदं प्रिये ॥९३३॥

---

१. स्वाहामूर्द्धानौ (?) घ।   २. इतस्तिस्रः पंक्तयः घ पुस्तके न सन्ति ।

ग्रहतारापदस्यान्ते विमर्दिनि समालिखेत् ।
विकटोर्ध्वपदस्यान्ते चरणे इति कीर्तयेत् ॥६३४॥
अस्त्रवह्न्यङ्गने उक्त्वा शेषे नम इतीरयेत् ।
नाडीं विशालामुद्धृत्य भगवत्यर्धमस्तकि ॥६३५॥
पञ्चवर्गीयशेषार्णान् विपरीततया वदेत् ।
ततश्छिप्पिनि[1] विच्चे च शङ्खिनि द्राविणि स्मरेत् ॥६३६॥
ह्लियुग्मं क्लियुगं हृदयास्त्रशिरांसि च ।
[2]उदयं कूटमालिख्य व्यालबीजमतः परम् ॥६३७॥
नाडीं च धोरणीनाम्नीं कामाख्ये तदनन्तरम् ।
कामान् पूरय तस्यान्ते फट् स्वाहा समुदीरयेत् ॥६३८॥
मुखरं बीजमालिख्य नाडीमपि च लोहिनीम् ।
धूमावतीति तदनु धूमवर्णे ततः परम् ॥६३९॥
धूमाङ्गरागे तस्यान्ते धूमलोचन इत्यपि ।
वाचमुल्लिख्य तदनु स्तम्भयद्वितयं स्मरेत् ॥६४०॥
ससन्धिहृदयद्वन्द्वाद् द्विरस्त्रं शिर एककम् ।
[3]नमः सप्लुततारान्तेऽस्तकूटं समुदाहरेत् ॥६४१॥
हाटकेश्वरि तस्यान्ते तस्याप्यनु च हाटकम् ।
प्रयच्छ वह्निजायां च तस्यान्ते समुदीरयेत् ॥६४२॥
पुरुगं तर्पणं वात्यां नाडीमपि च पूतनाम् ।
मन्दारकूटं तदनु ततो हृदयशब्दतः ॥६४३॥
शिवदूतिपदं प्रोच्य [4]दुष्टप्राण प्रकीर्तयेत् ।
[5]द्रविणि द्राविणिं ततो मांसशोणितभोजिनि ॥६४४॥
रक्तकृष्णमुखीत्युक्त्वा मा मां पश्यन्तु शत्रवः ।
श्रीपादुकां पूजयामि हृदयाय नमस्ततः ॥६४५॥

---

१. ततः शिप्पिणि क ।
२. इतः पंक्तित्रयं घ ङ पुस्तकयोरेव दृश्यते ।
३. नमः सन्तु ततो रान्तेऽस्तकूटं समुदाहरेत् (?) घ । ४. भ्रमरि भ्रामरीरयेत् घ ङ छ ।
५. इतः षट् पंक्तयः घ ङ पुस्तकयोः सन्ति ।

वैरुधं कुहिकां भेदं कूटं चाचलनामकम् ।
ततो नाडीं विचित्रां च शिवदूति शिरः पदात् ॥६४६॥
ततो भगवति प्रोच्य दुष्टचाण्डालि कीर्तयेत् ।
ततो रुधिरमांसानु भक्षिणि प्रविभावयेत् ॥६४७॥
कपालखट्वाङ्गपदाद् धारिण्यपि ततः परम् ।
यो मां द्वेष्टि तमित्युक्त्वा ग्रस मारय भक्षय ॥६४८॥
हन पच च्छेदय दहामीषां तु युगलं वदेत् ।
श्रीपादुकां पूजयामि शिरसे प्रोच्य वै शिरः ॥६४९॥
उपलं यातनां भानं कूटौ चक्रास्तनामकौ ।
शिवदूति शिखाशब्दान् महापिङ्गल इत्यपि ॥६५०॥
जटाभाराच्च विकटरसनापदमीरयेत् ।
कराले सर्वसिद्धिं च देहि दापय युग्मकम् ॥६५१॥
रत्नवृष्टिं वर्ष वर्ष ततः परमुदीरयेत् ।
श्रीपादुकां पूजयामि शिखायै वषडित्यपि ॥६५२॥
आर्यां गर्हां प्रयत्नं च डाकिनीकूटमन्वतः ।
मन्थानकूटं तदनु कवचाच्छिवदूत्यपि ॥६५३॥
महाश्मशानवासिन्यनु घोराट्टानु हासिनि ।
ततो विकटतुङ्गानु कोकामुखि समीरयेत् ॥६५४॥
महापातालतुलितोदरि भूत इतीरयेत् ।
वेतालसहचारिण्यनूद्य श्रीपादुकां ततः ॥६५५॥
पूजयामीति कवचाय हूमित्यपि निर्दिशेत् ।
रिष्टं काष्ठां च कोष्ठं च किंजल्कं कूटमेव[1] च ॥६५६॥
नीलकूटं च नेत्रानु शिवदूति ततः परम् ।
लेलिहानोपपदतो रसनाशब्दमीरयेत् ॥६५७॥
भयानके च विस्रस्तचिकुरेति च कीर्तयेत् ।
भारभासुर उल्लिख्य चामुण्डाभैरवीत्यपि ॥६५८॥

---

१. मन्वतः क ।

डाकिनीगणशब्दाच्च ततः परिवृते वदेत् ।
आगच्छद्वितयं प्रोच्य सान्निध्यं कल्पयद्वयम् ॥९५९॥
त्रैलोक्यडामरे[1] प्रोच्य पिशाचिनि महापदात् ।
श्रीपादुकां पूजयामि ततो नेत्रत्रयाय च ॥९६०॥
अन्ते वौषट् ततो बर्हं वन्दामपि चतुष्पथम् ।
मालाकूटं चण्डकूटं शिवदूत्यस्त्रशब्दतः ॥९६१॥
ततः परापरपदं ततो गुह्यातिगुह्यतः ।
रक्षिके समयादुक्त्वा त्रीण्यस्त्राणि समादिशेत् ॥९६२॥
मम सर्वोपद्रवांश्च मन्त्रतन्त्रानु संभवान् ।
परेण संलिख्य कृतान् कारितांस्तदनन्तरम् ॥९६३॥
ये वा करिष्यन्त्युद्धृत्य तान् सर्वानिति कीर्तयेत् ।
हनयुग्मं मथद्वन्द्वं मर्दयद्वितयं तथा ॥९६४॥
[2]दंष्ट्राकरालीति चण्डनिकटे तदनन्तरम् ।
श्रीपादुकां पूजयामि ततोऽस्त्राय फडित्यपि ॥९६५॥
ह्रेतुं मेधां च वरटं कूटे मायाकुलाभिधे ।
शिवदूतीति संलिख्य व्यापकोपपदात् प्रिये ॥९६६॥
हूं हूंकारपदाद् घोरनादवित्रासितेत्यपि ।
जगत्प्रिये क्ष्टिबीजं वारणं विवरं तथा ॥९६७॥
प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते ।
ततोऽनु पदविन्यासत्रासितेति समुद्धरेत् ॥९६८॥
ततः सकलपाताले गलद्रुधिरशब्दतः ।
मुण्डमालाधारिणि च महाघोराच्च रूपिणि ॥९६९॥
ज्वालामालिपदात् पिङ्गजटाजूटे ततः परम् ।
विसन्ध्यचिन्त्यमहिमबलप्रभाव इत्यपि ॥९७०॥
[3]दैत्यदानवशब्दाच्च निकृन्तनि समुद्धरेत् ।
श्रीपादुकां पूजयामि हृदयास्त्रशिरांसि च ॥९७१॥

---

१. हाकिनि घ ।
२. इतः षट् पंक्तयः घ पुस्तके न सन्ति ।
३. दैव घ ।

नैर्ऋत्यकूटं शपथमहाशङ्खार्गलान् वदेत् ।
गुह्यातिगुह्यमेतद्धि बालापञ्चाक्षरं मनुम् ॥९७२॥
क्ष्वेडेलिककुडुक्कांश्च बगले वश्यशब्दतः ।
नाडीं च माण्डवीं[1] पश्चाज्जगत्त्रयमितीरयेत् ॥९७३॥
वशीकुरु शिरश्चापि पतङ्गं मेहनीमपि ।
त्रिकण्टकीति संबोध्य धारिणीं नाडिकां वदेत् ॥९७४॥
मोहय द्वितयं प्रोच्य युग्मं युग्मं जय ज्वल ।
हृदस्त्रशीर्षाण्यन्ते च स्तनकालं कराटिकाम् ॥९७५॥
हयग्रीवेश्वरीत्युक्त्वा मयि विद्यां निधेहि च ।
अन्ते स्वाहा वेध्यदाहौ कुब्जिकां तदनन्तरम् ॥९७६॥
खेचरीनामकं कूटं ततः परमुदीरयेत् ।
भीमादेवीति संबोध्य महाभीमे ततः परम् ॥९७७॥
विकरालतराकारधारिणीति समुद्धरेत् ।
भयं मे मोचय युगं शत्रुं च जहि युग्मकम् ॥९७८॥
अन्ते फट् वह्निरमणीं भाजनं श्लेषमेव च ।
नाडीं सुकल्पामथ च शक्तिसौपर्णिकेत्यपि ॥९७९॥
शक्तिं प्रदर्शय ततो नमः स्वाहा समुद्धरेत् ।
ईशं वशं च सन्तानं सपिण्डं च प्रहारिणम् ॥९८०॥
गन्धर्वकूटं तदनु यूपं त्वष्टारमेव च ।
उड्डीशं च विकारं[2] च शक्तिविद्यामतः परम् ॥९८१॥
कण्ठीरवं ततो दत्त्वा कल्पां नाडीमथोच्चरेत् ।
ततः कामकलामुक्त्वा स्वाहा पाश्चात्यमुद्धरेत् ॥९८२॥
इमं त्रिपुरसुन्दर्याः षोडशार्णाह्वयं मनुम् ।
सकृदुच्चारयन् सप्तद्वीपदानफलं लभेत् ॥९८३॥
निर्वेशमेषणां वारीं व्यूहकूटमतः परम् ।
संग्रामजयलक्ष्मीति तदनु प्रविभावयेत् ॥९८४॥

---

१. मानवीं घ। २. निकारं च, घ छ।

जयमुक्त्वा देहियुगं तुभ्यं च हृदयं शिरः ।
व्यासं नमोऽनु विजयप्रदायै तदनन्तरम् ॥६८५॥
किं विलम्बस उल्लिख्य जयं मे समुपस्थितम् ।
साधयित्वैनमुपनय स्वाहा तदनु कीर्तयेत् ॥६८६॥
प्रक्षेपं च वितानं च सिद्धान्तं[1] करणं तथा ।
त्रिजटाख्यं[2] ततः कूटं क्षेमङ्करि ततो वदेत् ॥६८७॥
क्षेमं ततः कुरुयुगं ततो मधुमतीरयेत् ।
सिद्धिं दर्शय युग्मं च फट्त्रयं वह्निवल्लभाम् ॥६८८॥
लम्बाङ्के बलभीषां च ततो मूकाम्बिकेऽपि च ।
मणिकूटमथोल्लिख्य मूकं वादय वादय ॥६८९॥
परविद्यां द्विधाकृत्य त्रुट च्छिन्धि युगं युगम् ।
अस्त्रयुग्मं शिरश्चैकं हृदयं तावदेव च ॥६९०॥
अपवर्गोपसर्गौ च करकाकरके अपि ।
[3]उग्रतारे समुद्धृत्यास्त्रयुग्मं वह्निवल्लभाम् ॥६९१॥
अवारं बृंहतिं पारं ततो नीलसरस्वति ।
स्वाहा निकारमाक्रोशं विस्तारं प्रश्नमेव च ॥६९२॥
उच्चखण्डं तथा कूटं तत एकजटेऽपि च ।
प्रवाहं प्रमितिं छन्दः प्रकारं जैमनं शिरः ॥६९३॥
ततश्च पाठं क्रांत्तिं च [4]बृद्धिमुत्क्रममेव च ।
वज्रवैरोचनीये च रत्नकूटमतः परम् ॥६९४॥
हृदन्ते शिर उद्दिश्य बीजानां श्रुतिमेव च ।
उड्डियानं ततो बीजं पिङ्गले तदनन्तरम् ॥६९५॥
जगदावेशिनि प्रोच्य जगन्मोहय मोहय ।
जटाजूटे पिङ्गलतः प्रसीद शिर एव च ॥६९६॥

---

१. हृदयं क ।
२. त्रिपुराख्यं घ ।
३. उग्रतो वशमुद्धृत्यास्त्र युग्मं वह्निवल्लभाम् घ ।
४. इतः ६९५ तम श्लोकस्य प्रथम चरणं यावत् घ पुस्तके नास्ति ।

सम्प्रदायमृतङ्कं च गोष्ठं वेहण्डमेव च।
ब्रह्माणीति च संबुद्धि सेतुकूटं ततः परम् ॥९९७॥
प्रकाशयद्वयात् पूर्वं निगमं परिकीर्तयेत्।
त्रिलोकीमिति संकीर्त्य सृजयुग् विसृजद्वयम् ॥९९८॥
अस्त्रद्वयं शिरो दत्वा निस्तारं शापमेव च।
प्रीतिं समयकूटं च ततो माहेश्वरीति च ॥९९९॥
चन्द्रखण्डाङ्कितपदाद् भाले इत्यपि कीर्तयेत्।
भुजङ्गभोगशब्दाच्च भूषिताच्च कलेवरे ॥१०००॥
जययुग्मं जीवयुगं प्रसीदद्वितयं तथा।
तदन्ते शिर उल्लिख्य पृश्नि मार्जनमेव च ॥१००१॥
क्षुद्रं तृप्ति ततश्छिप्पि हेमकूटमनन्तरम्।
महाशक्तिपदस्यान्ते धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥१००२॥
[1]भगवत्यनु कौमारि मयूरध्वज ईरयेत्।
ताम्रचूडपदात् पिच्छावतंसित इतीरयेत् ॥१००३॥
जययुग्मं द्विविजयं तदन्ते शिर ईरयेत्।
श्रीवत्समाराधनकं कूटं चैवापराजितम् ॥१००४॥
वैष्णवीत्यपि सङ्कीर्त्य सुपर्णवाहिनीत्यपि।
कैवल्यमिति संलिख्य प्रयच्छ शिर एव च ॥१००५॥
याच्ञामपि च संवित्तिमपायं तदनन्तरम्।
प्रासादकूटं तदनु वाराहि तदनन्तरम् ॥१००६॥
दंष्ट्रासमभ्युद्धृतेति ततो धरणिमण्डले।
चक्रशब्दाद् विनिःकृत्त दितिजदानव इत्यपि ॥१००७॥
पीवरोरुपदाद् बाहुदण्डक्षोभितसागरे।
ज्वलप्रज्वलयोर्युग्मं संदर्शितपदादनु ॥१००८॥
विश्वरूपावतारे च फट्युग्मं शीर्षमेव च।
अवस्थां वचनं चापि धातुकूटमतः परम् ॥१००९॥

---

१. इयं पक्तिः घ पुस्तके नास्ति।

नारसिंहीति संबोध्य खरतो नखरेति च ।
विपाटितमहादैत्यविग्रहे तदनन्तरम् ॥१०१०॥
सटाविनिर्धूतपदात् सप्तलोके ततः परम् ।
नीराजनं च प्रादेशं फट्त्रयं शिर एव च ॥१०११॥
भाषां निसर्गं चयनं कूटं स्वस्तिकमेव च ।
विष्णुमाये ततो मायां नाशयद्वितयं ततः ॥१०१२॥
ज्ञानं प्रकटयेत्युक्त्वा तदन्ते शिर ईरयेत् ।
आरञ्जिं वशिकं गञ्जां तदन्विन्द्राणि कीर्तयेत् ॥१०१३॥
उक्त्वा पुनर्बुद्धिकूटं[1] राज्यं मे देहि चेत्यपि ।
शीर्षं दुर्गं युगं दुष्टं प्रतीच्छां स्वातिमेव च ॥१०१४॥
ऋद्धिकूटं च परमहंसेश्वरि ततो वदेत् ।
ततो योगवतीत्युक्त्वा पुनर्धर्मप्रवर्तिनि ॥१०१५॥
वैराग्येणेति संलिख्य मुक्तिं साधय चेत्यपि ।
अन्ते शिरः सर्गवर्गौ वासिताबीजमन्वतः ॥१०१६॥
संबुद्धिं च ततो दद्यान् मोक्षलक्ष्म्या वरानने ।
ज्ञानेच्छाकृतिसंज्ञानि कूटानि तदनन्तरम् ॥१०१७॥
अज्ञानं शमयेत्युक्त्वा ज्ञानं प्रकटयेत्यपि ।
कैवल्यं मयि चोल्लिख्य निधेह्यनलवल्लभाम् ॥१०१८॥
वारुणीं प्रतिमानं च बृंहतीं लम्बिकामपि ।
ततः श्रौतपदं कूटं शातकर्णि ततः परम् ॥१०१९॥
भ्रामकि क्षामकीत्युक्त्वा ततः कान्तारवासिनि ।
गुह्याबीजं द्रावबीजं फट्त्रयं तदनन्तरम् ॥१०२०॥
हृदयं च शिरश्चैव जंकारद्वितयं ततः ।
विघ्नं हार्दमनुं शीर्षं तदन्ते जातवेदसि ॥१०२१॥
जातवेदोमुखि प्रोच्य ज्वालामालिनि कीर्तयेत् ।
ततश्च सन्धिरहितमाग्नेयास्त्रमितीरयेत् ॥१०२२॥

---

१. वृद्धिकूटं क० ।

वमयुग्मं धमयुगं स्फुरंप्रस्फुरयुग्मकम् ।
अस्त्रं स्वाहानु तपनं चितिमुत्सर्गमेव च ॥१०२३॥
उच्चार्य च महानीले शत्रुसैन्यमितीरयेत् ।
स्तम्भयद्वितयं प्रोच्य मारयद्वितयं ततः ॥१०२४॥
शिरोहृदस्त्राणि ततः सन्तापं वर्द्धनीमपि ।
कूटं श्रौत्रक्रमं पश्चात् ततश्चैवापराजिते ॥१०२५॥
राज्यसिद्धि जयाल्लक्ष्मी अमन्तं द्विपदं[1] पुनः ।
देहि दापय च स्वाहा चञ्चलत्रितयं पुनः ॥१०२६॥
कूटं श्रौतजटाख्यं च गुह्येश्वरि ततः परम् ।
गुह्यविद्यासमयतः प्रकाशिनि समीरयेत् ॥१०२७॥
प्रपञ्चातीतशब्दाच्च स्वरूपे तदनन्तरम् ।
मामुक्त्वा रक्षयुगलं महाविघ्नपदात् पुनः ॥१०२८॥
पञ्चमीभ्यसतः सर्वोपद्रवं शिर एव च ।
ग्रहग्राहौ तथा ज्योत्स्नां श्रौतवाल्लेय[2]कूटकम् [?] ॥१०२९॥
हृद्द्वयास्त्रशिरांस्युक्त्वा विसन्ध्यप्यभये ततः ।
ततो भवभयं प्रोच्य मोचयान्ते च निर्वृतिम् ॥१०३०॥
देह्यस्त्रयुग्महृच्छीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ।
[3]तीर्थं वाटीमथालोकं कल्पकूटं ततः परम् ॥१०३१॥
कूटं श्रौतघनं चापि धर्मकूटमनन्तरम् ।
संबुद्धिरेकवीरायास्ततः परमुदीरयेत् ॥१०३२॥
महाबलपरा प्रोच्य क्रमे भगवतीति च ।
जगदावेशिनि ततस्त्रिलोकीं तदनु प्रिये ॥१०३३॥
वशीकुरु शिरः प्रोच्य तापं वर्णं पशुं वदेत् ।
ततः श्रौतध्वजं कूटं महाविद्ये ततः परम् ॥१०३४॥
सर्वमुक्त्वा मोहय च उच्चाटय युगं युगम् ।
युगं युगं किरि किलि छिन्धियुग्मं कहद्वयम् ॥१०३५॥

---

१. न्तं त्रिपदं घ, ङ । २. वार्तेय घ । ३. इतः पंक्तित्रयं घ पुस्तके नास्ति ।

अस्त्रद्वयान्ते शीर्षं च चञ्चलापोषनिस्तलान् ।
कूटं श्रौतस्रजं स्मृत्वा ततो वैराग्यकूटकम् ॥१०३६॥
संबुद्धिर्भगवत्याश्च तामस्याश्च ततः परम् ।
तमः स्वरूप उल्लिख्य ममाज्ञानं ततः परम्[1] ॥१०३७॥
नाशयोन्मूलय हन त्रुट ध्वंसय मूर्च्छय ।
षण्णां युगं युगं लेख्यं ततश्चैश्वर्यकूटकम् ॥१०३८॥
हृदयं चोत्तमाङ्गं च ततोऽनु समुदीरयेत् ।
भगं गुह्यं शेखरं च ततश्च कुलकुट्टनि ॥१०३९॥
ततो मालाह्वयं कूटं कुलचक्रप्रवर्तिनि ।
गुह्यविद्यापदाद् दद्यात् प्रकाशिनि ततः परम् ॥१०४०॥
धातुं मूर्तिमघं चोक्त्वा फट् स्वाहा नम एव च ।
रेखाकूटं नैगमेयं कुलेश्वरि ततः परम् ॥१०४१॥
गुह्यातिगुह्यसमयकुलचक्रप्रवर्तिनि ।
इत्युदीर्य ततो दद्यान्नाम्ना कूटं महोदयम् ॥१०४२॥
विश्वपालिक उद्धृत्य विश्वं पालय पालय ।
उल्लिख्य त्वामहमिति नमाम्यनलवल्लभाम् ॥१०४३॥
ऋतमंशं तथा द्रावं निवृत्त्याख्यं च कूटकम् ।
संबुद्धि विश्वरूपायास्तदनन्तरमीरयेत् ॥१०४४॥
ततश्चतुर्दशपदाद् भुवनं परिकीर्तयेत् ।
ससन्धि चात्मन्युल्लिख्य संदर्शय शिरोऽपि च ॥१०४५॥
निन्दाखण्डमृणं दत्त्वा कैशरेयं च कूटकम् ।
रक्तमुख्यनु वै नीललोहितेश्वरि कीर्तयेत् ॥१०४६॥
कल्पान्तनर्तकि प्रोच्य नृत्य गाय द्वयं द्वयम् ।
हसद्वयं चर्चरीतस्तालिके परिकीर्तयेत् ॥१०४७॥
मां रक्ष रक्ष च ततो ब्रूयात् संवर्तकारिणि ।
सर्वशेषे वदेत् स्वाहा व्याडमर्घं कणं रयिम् ॥१०४८॥

---

१. इयं पंक्तिः घ ङ पुस्तकयोरेव दृश्यते ।

शुद्धकूटं जयन्त्याश्च संबुद्धिं तदनु क्षिपेत् ।
द्विषन्तं जहि चाभाष्य जयन्तं पाहि चेत्यपि ॥१०४९॥
राज्यं भगं श्रियं देहि तदन्तेऽनलवल्लभाम् ।
अहङ्काराह्वयं कूटमादौ देवि विभावयेत् ॥१०५०॥
ससन्धिहृदयद्वन्द्वमेकानंशे तथैव च ।
सृष्टिस्थितिप्रलयतः कारिणीत्यपि कीर्तयेत् ॥१०५१॥
सदाशिवार्धतनुतो हारिण्यपि ततः परम् ।
सर्वंकृत्येति चाभाष्य प्रमर्दिन्यपि कीर्तयेत् ॥१०५२॥
हृदग्निवल्लभे चोक्त्वा सन्ध्यासूक्तं च वर्म च ।
अविद्याकूटमुद्धृत्य ब्रह्मवादिनि कीर्तयेत् ॥१०५३॥
ब्रह्मज्ञानमिति प्रोच्य प्रकाशय ततः परम् ।
विसन्ध्यज्ञानमिति च शमयानलवल्लभाम् ॥१०५४॥
गोष्ठीं ललाटं निष्ठां च मोहकूटमनन्तरम् ।
मयुं जन्यां पुटं चापि ततः कामाङ्कुशे इति ॥१०५५॥
प्रपञ्चातीतपदतः सम्बिदालम्बिनीत्यपि ।
उक्त्वा ततो भवभयं हरयुग्मं नमः शिरः ॥१०५६॥
तामिस्रादीनि देवेशि त्रीणि कूटानि निर्दिशेत् ।
ततः संबोधनं दद्यादावेशिन्याः वरानने ॥१०५७॥
मृगाङ्कमीरिणीं मन्दामुलूकं राजमेव च ।
सर्वमाविष्टमिति च साधयद्वितयं ततः ॥१०५८॥
फट्त्रयं शीर्षमेकं च हृदयं तावदेव च ।
इलामंहो गुरुं केतुं योनिकूटमतः परम् ॥१०५९॥
मायूरि च पदं पश्चात् चित्राङ्कि तदनन्तरम् ।
सर्वसिद्धिं प्रयच्छेति विघ्नं नियच्छ चेत्यपि ॥१०६०॥
सर्वं स्थूलाकारमिति दर्शयानलवल्लभाम् ।
वेशमुद्भिदमन्धं[?] च विपाकं कूटमन्वतः ॥१०६१॥
त्रिकालवेदिनि प्रोच्य ततः सर्वज्ञतां पुनः ।
उद्धृत्य साधय युगं ततस्त्रिभुवनेति च ॥१०६२॥

वृत्तान्तमावेदय च ततः कर्णपिशाचिनि ।
पुनः कर्णमुपेत्येति सकलं तदनूद्धरेत् ॥१०६३॥
चराचरं च कथय ततो मूर्धानमीरयेत् ।
खरं वीथीं कणां कूटं ततश्चोपाधिनामकम् ॥१०६४॥
महामारीति संबोध्य महामरककारिणि ।
कङ्कालिनि ततो दत्वा पुनः कङ्कालधारिणि ॥१०६५॥
खट्वाङ्गभ्रामिणि[1] प्रोच्य खट्वाङ्गं भ्रामय द्वयम् ।
विसन्ध्यप्यपमृत्युं च हरयुग्मं ततो वदेत् ॥१०६६॥
ब्रह्मविष्णुशिवेत्युक्त्वा वाह्निनीतीरयेत्ततः ।
अस्त्रत्रयं हृद्द्वयं च शीर्षमेकमतः परम् ॥१०६७॥
द्रवं च सवनं दत्वा तत इन्द्राक्षि कीर्तयेत् ।
स्वाराज्यं ददयुग्मं च दापयद्वितयं ततः ॥१०६८॥
हरिहरशब्दान् महिते त्रिलोकललिते तथा ।
ततस्तारिणि संकीर्त्य तारय प्रतिकीर्तयेत् ॥१०६९॥
शत्रून् मारय युग्मं च विद्ये चापि प्रचण्डतः ।
अस्त्रद्वयं शिरःस्वान्तं वस्तु दैवं तथा वदेत् ॥१०७०॥
कूटं मनःसंज्ञकं च दिष्टं घोणकि चोद्धरेत् ।
ततो भूतपिशाचेति प्रेतयक्षानु राक्षस ॥१०७१॥
कूष्माण्डयोगिनीत्युक्त्वा डाकिनीभयमेव च ।
ततश्च नाशययुगं श्मशानं चानयद्वयम् ॥१०७२॥
ततश्च प्रविशेत्युक्त्वा गह्वरं हट्टयुग्मकम् ।
हृदयास्त्रशिरांस्यन्ते [2]यत्नं जालं विसर्गकम् ॥१०७३॥
ततो मङ्गलचण्डीति संबोधनपदं प्रिये ।
मङ्गलैर्गृहमित्युक्त्वा पूरयद्वितयं ततः ॥१०७४॥
ततो वदेच्च मङ्गल्यावतारेऽस्त्रं शिरस्तथा ।
किणं वितानं शरणं कूटं बुद्ध्याह्वयं ततः ॥१०७५॥

---

१. ० धारिणि घ। २. पलं क।

चण्डोग्रकापालिनि च ततः परमुदीरयेत् ।
खड्गाञ्जनेति चोद्धृत्य पादुकासिद्धिमेव च ॥१०७६॥
मेऽनु देहि द्वयं प्रोच्य ह्यव्याहतगतिं ततः ।
प्रोच्चरेत् सन्धिरहितं प्रयच्छद्वितयं तथा ॥१०७७॥
चिताङ्गारपदाद् भस्मधारिणीति [1]समुच्चरेत् ।
धरद्वयं चट्टयुगं हृदयास्त्रे ततः परम् ॥१०७८॥
प्रदाय गुणकिञ्जल्कौ चित्तकूटमनन्तरम् ।
सम्पत्प्रदे भैरवीति ततः परमुदीरयेत् ॥१०७९॥
सम्पदं ददयुग्मं च वृष्टिं चापि हिरण्यतः ।
संकीर्त्य वर्षयुगलं वर्षापययुगं वदेत् ॥१०८०॥
धनधान्यानु रत्नानि देहि देहि [2]ततोऽपि च ।
दापयद्वितयं प्रोच्य धूर्बीजं समुदीरयेत् ॥१०८१॥
अस्त्रद्वयं शिरः प्रोच्य हृदयं तदनूद्धरेत् ।
मूलं तिथिं दुर्घटं च ससन्धि हृदयद्वयम् ॥१०८२॥
ततश्च फेरुचामुण्डे मालाकङ्कालशब्दतः ।
शुष्कान्त्रधारिणि ततश्चर्मशार्दूलशब्दतः ॥१०८३॥
वासिन्यनन्तरं ब्रूयान्नरमुण्डाच्च कुण्डले ।
शुष्कोदरि तथा शुष्कानने तदनु कीर्तयेत् ॥१०८४॥
हाहावर्णात् सन्धिहीनमनलेत्यपि कीर्तयेत् ।
खट्वाङ्गधारिणि ततो युगमुड्ड कहद्वयम् ॥१०८५॥
गणबीजं ततो दत्वा त्रिरस्त्रं हृदयं शिरः ।
प्रवहं छद्म च रयं चामुण्डे च श्मशानतः ॥१०८६॥
पिण्डाह्वयं ततः कूटं पुनर्मातङ्गभोग च ।
ताटङ्किन्यनु वै शैलपदतः कटिसूत्रिणि ॥१०८७॥
प्रज्ज्वलद्घोरशब्दाच्च चितानलनिवासिनि ।
वमन्मुखानल प्रोच्य भस्मीकृतपदं वदेत् ॥१०८८॥

---

१. समुद्धरेत् घ ।
२. ततो वदेत् घ ।

दानवेऽनु हुं हुं कारनादत्रासित इत्यपि ।
पुनस्त्रिभुवनेत्युक्त्वा फट्त्रयाद् हृदयं शिरः ॥१०८९॥
सङ्गति हृदयं प्रोच्य कङ्कालिनि विनिर्दिशेत् ।
कङ्कालाच्च करङ्काच्च किङ्किणीशब्दमीरयेत् ॥१०९०॥
नादभूषितशब्दाच्च विग्रहे परिकीर्तयेत् ।
महार्णवाच्छायिनि च महोरग च भूषिते ॥१०९१॥
पुनः प्रापञ्चबीजं हि ततो ब्रह्माण्डचर्वणा ।
जातशब्दात् कटकटा महानाद ततः परम् ॥१०९२॥
पूरिताम्बर उल्लिख्य भीमाकाराच्च धारिणि ।
महाप्रहारिणि ततश्चारिण्यपि श्मशानतः ॥१०९३॥
तुरु मर्दं ज्वल तथा द्वितयं द्वितयं द्वयम् ।
फट्त्रयं हृदयद्वन्द्वं स्वाहा चैकमतः परम् ॥१०९४॥
सामां वादं मौलिकं च महामायूर्यतः परम् ।
महाचाण्डालिनि ततः सर्वकृत्याप्रमर्दिनि ॥१०९५॥
ये मां द्विषन्ति प्रत्यक्षं परोक्षं तदनूद्धरेत् ।
तान् सर्वान् दमयुगं च मर्दय द्विर्विपातय ॥१०९६॥
शोषयोत्सादय हन पाटयैषां युगं युगम् ।
प्रणतानिति संकीर्त्य पालय द्वितयं वदेत् ॥१०९७॥
पाहियुग्मं हृच्छिरसी अस्त्रत्रितयमन्वतः ।
रमणीं [1]कूटबीजं च नमो रुद्रपिशाचिनि ॥१०९८॥
प्रेतभूषण उल्लिख्य प्रेतालङ्कारमण्डिते ।
[2]जम्भयुग्मं हसद्वन्द्वं ब्रह्माणि तदनन्तरम् ॥१०९९॥
माहेश्वरि पुनश्चोक्त्वा वाराह्यपि च कीर्तयेत्[3] ।
[4]वैनायकि च चामुण्डे महाविद्ये ह्यतः परम् ॥११००॥
जगद्ग्रासिनि चोद्धृत्य जगत्संहारिणीत्यपि ।
पीवरी शबरीत्युक्त्वा नायिका नायिकेत्यपि ॥११०१॥

१. कूहबीजं (?) क । २. जृम्भ ङ ।
३. नायिका नायिकेत्यपि क । ४. इतस्तिस्रः पंक्तयः घ ङ पुस्तकयोः दृश्यन्ते ।

हं चक्ष हं भक्ष तथा फट्त्रयं वह्निवल्लभाम् ।
पणवारावूषरं च फट्त्रयं हृदयद्वयम् ॥११०२॥
ततश्च कालशबरि कालं वञ्चय वञ्चय ।
तुरुद्वन्द्वं मुरुयुगं महाकालाद्गृहिण्यपि ॥११०३॥
चन्द्रिके चन्द्रखण्डावतंसिते तदनन्तरम् ।
विसन्ध्यट्टाट्टहासिन्यनु ब्रूयान् मर्मरीण्यपि ॥११०४॥
चर्पटिन्यप्यनु ततो ब्रूयाद् वै तुन्दिलोदरि ।
डामरि[1] क्षामरि प्रोच्य ततो वै कुलसुन्दरि ॥११०५॥
हं हं हं खिलि चाभाष्य [2]तदेवार्णत्रयं भिनि ।
स्वाहा रीतिं भद्रिके च ततो लाङ्गूलिनीत्यपि ॥११०६॥
महामार्जारिणि प्रोच्य चटप्रचटयोर्युगम् ।
कहद्वयं धमद्वन्द्वं वमयुग्मं मुखानलात् ॥११०७॥
महाकान्तारगहनाद् वासिन्यपि समुद्धरेत् ।
नाशयानु वदेत् पापं दुःस्वप्नं च हरानु वै ॥११०८॥
लोहिन्यनु तथास्त्रं च चतुरर्णं त्रिवारकम् ।
हृच्छीर्षे तदनूद्धृत्य तेजनं बीजमालिखेत् ॥११०९॥
प्रेतमातङ्गि तदनु प्रेतासनपदं ततः ।
योगपट्टिन्यपि पुनः क्रूणपाद् भोजिनीत्यपि ॥१११०॥
प्रेतवेतालमध्यानु चारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वमावेदयेति च ॥११११॥
अस्त्रद्वयं शिरः स्वान्तं फुल्लवासौ ततः परम् ।
संबुद्धि कुरुकुल्लायास्तदनु प्रवदेत् प्रिये ॥१११२॥
[3]द्विर्द्विर्बन्ध छिन्धि ततो वदेच्चिक्रियुगं ततः ।
त्रिजटे सर्वमुच्चार्यमपि स्फुरतु इत्यपि ॥१११३॥

---

१. भ्रामरि घ । २. तदेव त्रितयं स्तम्भिनि क ।
३. इतः पंक्तित्रयं घ पुस्तके न सन्ति । तत्राधोनिर्दिष्टे पंक्ती दृश्येते
"कापालिनि च कापालवेशधारिणि कीर्तयेत् ।
कङ्कालिनि च कङ्कालमालाधारिण्यपीरयेत्" ॥
ङ छ पुस्तकयोस्तु घ पुस्तकानुसरणमिह, परमेकाधिकाऽपि पंक्तिरधोलिखिता विद्यते—
"निःसन्ध्याने च माले च ताले च परिकीर्तयेत् ।

[१]फट्द्वयं हृद्द्वयं शीर्षं घण्टिकाबीजमप्यनु ।
घनाघनाकारधारिण्यनु श्यामाम्बरे वदेत् ॥१११४॥
तरुच्छदसनुपिहितजघने तदनन्तरम् ।
गुञ्जाहारिण्यपि ततो मयूरानु च पिच्छ च ॥१११५॥
चित्रचूडे इति प्रोच्य दिगम्बरि ततो वदेत् ।
तुभ्यं नमस्ततः शीर्षं तुण्डाबीजं ततः परम् ॥१११६॥
कालिङ्गीति च संबोध्य महोत्पातप्रवर्तिके ।
ततो भुजगरूपाच्च धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥१११७॥
हृच्छिरोऽन्तो महामन्त्रो मया ते परिकीर्तितः ।
द्विशताधिकोनचत्वारिंशन्मन्त्रामुना गताः ॥१११८॥
चत्वारिंशत्तमां देवीमथ त्वं वै निशामय ।
न प्राप मृत्युं येनासौ मृकण्डतनयो मुनिः ॥१११९॥
जैगीषव्यो लोमशश्च नारदो बलिरेव च ।
हनूमान् कपिलो व्यासो जमदग्निसुतोऽपि च ॥११२०॥
मृत्युं जयति येनासौ नाम्ना मृत्युञ्जयो मनुः ।
मृत्युञ्जया गुह्यकाली तस्मादेषा प्रकीर्त्यते ॥११२१॥
एतेनैव तु मन्त्रेण येयमुक्तायुताक्षरी ।
वीर्याधिक्यवती ज्ञेया मदुपास्या वरानने ॥११२२॥
यो वेद त्र्यम्बकमिति मृत्युञ्जयमनुः[२] स्थितः ।
तन्मन्वधिष्ठातुरियमुक्ता शक्तिः शिवस्य हि ॥११२३॥
एतन्मन्त्रमविद्वांसो हन्यन्ते मृत्युना प्रिये ।
ज्ञात्वैनं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये[३] ॥११२४॥
[४]जिजीविषा चेद् भवति मृत्युं तर्तुमथापि वा ।
तदाग्रहोऽत्र कर्तव्यः सत्यं सत्यं वरानने ॥११२५॥
किमन्यैर्मन्त्रविस्तारैः शरीरं परिरक्षितुम् ।
वेदमृत्युञ्जयान् मन्त्रादयं मन्त्रो विशिष्यते ॥११२६॥

---

१. इयं पंक्तिः घ ङ छ पुस्तकेषु नास्ति ।
२. मुनिः क ।
३. नान्यः पन्थाविमुक्तकम् घ ।
४. इयं पंक्तिः केवलं घ पुस्तके मिलति ।

यतो मन्त्रस्यास्य देवी गुह्यकाली प्रकीर्तिता ।
महिमा वर्णितुं नास्य शक्यो वर्षायुतैरपि ॥११२७॥
सामान्यतो वरारोहे मया ते परिकीर्तितः ।
अशक्नुवानः पठितुं संम्पूर्णामयुताक्षरीम् ॥११२८॥
इमं मन्त्रं जपन् देवि सम्पूर्णायाः फलं लभेत् ।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः सद्यो मृत्युविनाशनः ॥११२९॥
अस्योद्धारमिदानीं त्वं सावधाना निशामय ।
तुरीयाख्यं हि यद्बीजं तदादौ प्रतिकीर्तयेत् ॥११३०॥
षट्चक्रबीजं तदनु बीजं सर्वागमं ततः ।
आम्नायातीतबीजं हि ततः परमुदीरयेत् ॥११३१॥
तत ऐकात्म्यकूटं च विज्ञानमयकूटकम् ।
आनन्दमयकूटं च कूटत्रयमुदीरयेत् ॥११३२॥
ततश्च बीजं विलिखेच्छक्तिसर्वस्वनामकम् ।
बीजं परापरं तस्मात् तस्माच्चिच्छक्तिबीजकम् ॥११३३॥
अन्ते शाम्भवबीजं च ततो मृत्युञ्जये पदम् ।
अस्त्रं ततः शिरः शेषे मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ॥११३४॥
नानया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये संभविष्यति ।
बहुनोक्तेन किं देवि मन्त्रमेनमवाप्य हि ॥११३५॥
शिवो मृत्युञ्जयत्वं हि प्राप्तवान् सृष्टयनेहसि ।
वेदमृत्युञ्जयो मन्त्रो नानेन सदृशो भवेत् ॥११३६॥
इमं मन्त्रं जपन्तं हि वीक्ष्य क्वचन साधकम् ।
कालमृत्यू पलायेते यमश्चापि वरानने ॥११३७॥
सर्वान् मन्त्रान् परित्यज्य मन्त्रमेनं समाश्रयेः ।
जिजीविषसि चेत् कल्पपरार्द्धं वरवर्णिनि ॥११३८॥
मृत्युञ्जय ऋषिश्चास्य बृहतीच्छन्द उच्यते ।
मृत्युञ्जया गुह्यकाली देवता परिकीर्तिता ॥११३९॥
बीजं तत्त्वार्णवं बीजं प्रोक्तमेतस्य पार्वति ।
कूटं ह्यपुनरावृत्तिः शक्तिरस्याः प्रकीर्तिता ॥११४०॥

मन्त्रस्यैतस्य चैतन्यकूटं वै कीलकं भवेत् ।
ध्यानादिकं तु पश्चात्ते कथयिष्यामि पार्वति ॥११४१॥
शेषं त्वमयुताक्षर्याः निबोधातः परं शुभम् ।
अद्वैतकूटमुल्लिख्य ततः सकलमन्त्र च ॥११४२॥
पुनर्मयशरीरेति कल्पितेति ततः परम् ।
षडाम्नायाद्देवतेति प्रतिपन्न ततः परम् ॥११४३॥
ततो निखिलतत्त्वेति [1]सञ्चारित ततोऽप्यनु ।
समस्तभूतसङ्घे च तदनन्तरमीरयेत् ॥११४४॥
जययुग्मं ततः प्रोच्य प्रज्वलद्वितयं वदेत् ।
ततोऽनयं समुद्धृत्य कापालव्रतधारिणी ॥११४५॥
युल्क[युक्त?]बीजाच्च विलिखेत् समयक्रमचारिणि ।
ततो विराधबीजाच्च कौलसिद्धान्तकारिणि ॥११४६॥
बन्धकूटं समुच्चार्य बन्धं संसारतो वदेत् ।
मोचयद्वितयं प्रोच्य छेदयद्वितयं तथा ॥११४७॥
विसन्ध्यविद्याक्लेशाच्च विपाकपदमीरयेत् ।
प्रपञ्चाशयमिथ्याध्यासाहङ्काराच्च वासना ॥११४८॥
पाशच्छेदिनि चोद्धृत्य वासनाकूटमुद्धरेत् ।
परमार्थस्वरूपिण्यनु [निस्त्रै ?] त्रैगुण्य इतीरयेत् ॥११४९॥
स्थालीं च कुञ्चिकामुक्त्वा षाडूर्मेयं च कूटकम् ।
शुद्धविद्यावलम्बिन्यनु च मायाविमोचनि ॥११५०॥
उक्त्वा परमशब्दं च शिवपर्यङ्क इत्यपि ।
ततो निलयिनि प्रोच्य विकारातीत ईरयेत् ॥११५१॥
ग्रावाणं बल्कलं चापि बीजद्वयमतः परम् ।
[2]योगभूमिं तथा कूटं नैमित्तमपि कूटकम् ॥११५२॥
सर्वं विसन्धि विज्ञेयमासमाप्तेरतः परम् ।
श्रुत्यगोचर उद्धृत्य ततोऽप्यवितथे वदेत् ॥११५३॥

१. सन्तारित घ । २. इतः पंक्तिद्वयं घ पुस्तके नास्ति ।

सत्यविज्ञानानन्दब्रह्माकारिणि समुद्धरेत् ।
पुराण इति चाभाष्य ब्रह्मपुच्छप्रतिष्ठिते ॥११५४॥
निर्विकारे च चरमे निरिन्धन इतीरयेत् ।
पथ्यं च बालरण्डां च ततो बीजद्वयं लिखेत् ॥११५५॥
अस्थूलेऽप्यनणोऽह्रस्वेऽदीर्घे चैवाप्यलोहिते ।
अस्नेहे च तथोच्छ्राये तत एवं वदेत् प्रिये ॥११५६॥
अतमोवाय्वनाकाशे ततोऽसङ्गेऽरसेऽपि च ।
अगन्ध इति चाभाष्य अचक्षुःश्रोत्र ईरयेत् ॥११५७॥
पाणिपादे तथाऽवाक् चाप्यमनस्क इतीरयेत् ।
अतैजसि समुल्लिख्य तथा चैवाप्यनिन्द्रिये ॥११५८॥
अप्राणे चामुखेऽमात्रे ह्यलिङ्गे चाप्यनन्तरे ।
अबाह्येऽप्यनदृष्टे चानुपादान इतीरयेत् ॥११५९॥
ततोऽनु प्रकृते प्रोच्यानुद्भवे तदनन्तरम् ।
अमृत्यो चान[ल?]घोऽप्युक्त्वा तथा चैवामहीयसि ॥११६०॥
अशरीरे तथाऽबन्धेऽपुण्यपापे ततः परम् ।
ततः समुद्धरेद्देवि प्रणिधानपुरस्सरम् ॥११६१॥
मनोजवामोदकयोर्मध्ये कूटं निरञ्जनम् ।
योगविद्ये तत्त्वविद्ये[1] मोक्षविद्ये ततः परम् ॥११६२॥
ज्योतीरूपे समुद्धृत्य प्रशासितपदं वदेत् ।
ततः सूर्याचन्द्र इति प्रपूरित ततोऽप्यनु ॥११६३॥
द्यावापृथिव्यनु वदेद्रोदसीपदमप्युत ।
पाताले शब्दतो ब्रूयाच्छब्दं देवि हिरण्मये ॥११६४॥
विरजे निष्कले कर्त्रि ईशे साक्षिणि चोल्लिखेत् ।
आत्मक्रीडे तथा चात्मरते सत्ये ततः परम् ॥११६५॥
अनन्ते महितेऽप्युक्त्वा बृंहितेऽज्जे ततः परम् ।
ततश्च शाश्वते प्रोच्य परापर उदीरयेत् ॥११६६॥

---

१. तत्त्वकूटे क ।

सुषुप्त्यवस्थितेत्युक्त्वा तुरीयाभिध ईरयेत् ।
जातवेदसि संलिख्य मानस्तोक उदीरयेत् ॥११६७॥
शुक्लब्रह्मामृतमयि पदतः परमामृता- ।
नन्दपायिनि चिन्मात्रावयवे तदनन्तरम् ॥११६८॥
पृथिवीरूप उल्लिख्य अरूपे तदनन्तरम् ।
तेजोरूपे वायुरूपे आकाशाद्रूप इत्यपि ॥११६९॥
ततो लिङ्गशरीराच्च रूपे इत्यपि कीर्तयेत् ।
जरायुजाण्डजोद्भिज्ज रूपे स्वेदजशब्दतः ॥११७०॥
संसाररूपे सगुणनिर्गुणात्मिक इत्यपि ।
चण्डि चण्डप्रतीके च जनिते मरणेत्यपि ॥११७१॥
भयदारिणितो भक्तजनतारिणि कीर्तयेत् ।
शब्दाद् विश्वजनादूर्ध्वं मोहिनि प्रतिकीर्तयेत् ॥११७२॥
ततः सकलशब्दाच्चानु मनोरथदोहिनि ।
तन्मात्रकूटतः प्रेतवाहिनीति समुद्धरेत् ॥११७३॥
[1]वषडोजस्विबीजानु वौषड् वाध्यनुकीर्तयेत् ।
शफानु श्रौषडिति च ततस्त्रिभुवनेत्यपि ॥११७४॥
सृष्टिप्रलयसंहारमहानाट्याद्यनु प्रिये ।
सूत्रधारिणि संकीर्त्य ततो निखिलगुह्यतः ॥११७५॥
कालिकासंप्रदायाच्च पालिनि प्रतिकीर्तयेत् ।
[2]ततो भुजगराजाच्च भोगमालिनि संलिखेत् ॥११७६॥
नवपञ्चानु चक्रानु ततो निलयिनीरयेत् ।
इध्मबीजं प्रमाणाख्यकूटं च तदनूद्धरेत् ॥११७७॥
सर्वभावावबोधिन्यनु रंकं प्रविभावयेत् ।
उक्त्वा सकलशब्दाच्च निष्कलाश्रयिणीरयेत् ॥११७८॥
ततो विलिख्य पूत्यण्डं सृष्टिस्थितिपदं वदेत् ।
पुनर्वदेच्च संहारानाख्याभासापदं प्रिये ॥११७९॥

---

१. तव पदोजस्विनी तां तु क । २. इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति ।

चण्डयोगेश्वरीत्याद्यभिधानेति ततः परम् ।
ततो भेदसहस्रेति यथार्थपदमीरयेत् ॥११८०॥
प्रवर्तयित्रि संभाष्य कौलबीजमतः परम् ।
षडाम्नायपदात् सारभूते इत्यपि संलिखेत्[1] ॥११८१॥
विद्यातत्त्वं च तत्त्वार्णवबीजं तदनन्तरम् ।
षडाम्नायातीत इति कूटमैन्द्रियकं ततः ॥११८२॥
ततोऽप्यक्षरकूटं च प्रज्ञाकूटं ततः परम् ।
कूटं प्रकृतिसंज्ञं च त्रिकालाबाधिते ततः ॥११८३॥
कूटं ततः प्रात्ययिकं सत्ताकूटमतः परम् ।
कूटं च पारमार्थाख्यं कूटं जीवात्मनामकम् ॥११८४॥
प्रमेयातीत इति च कूटं च परमात्मकम् ।
प्रतिबिम्बमथाभासं [2]कूटद्वयमतः परम् ॥११८५॥
निर्वासन इति प्रोच्य सूक्ष्मं नित्यं च साक्षिणम् ।
कूटानिमांस्त्रीनुद्धृत्य निर्विकल्प इतीरयेत् ॥११८६॥
सदसत्कूटमुल्लिख्य कूटं चोपशमाह्वयम् ।
स्मृतिकूटं समाभाष्य सत्तामात्रे वदेत् ततः ॥११८७॥
चैतन्यकूटमस्यानु प्रबोधं कूटमन्वतः ।
तस्यानु सन्तताभ्यासशब्दानन्दमये वदेत् ॥११८८॥
तदन्वाशयकूटं च कूटं चिद्घननामकम् ।
चिदाकारिणि संलिख्य कूटमेकाख्यमुद्धरेत् ॥११८९॥
सामरस्यपदस्यान्ते लयिनीति समुद्धरेत् ।
लयं चापुनरावृत्ति कूटद्वयमिदं वदेत् ॥११९०॥
अकारोङ्कारशब्दाच्च मकाराद्रूप इत्यपि ।
प्रवृत्ति च निर्वृत्ति च निर्विभक्तितया वदेत् ॥११९१॥

---

१. कीर्तयेत् घ ।
२. ११८५ श्लोकस्य चतुर्थ चरणतः ११८७ श्लोकस्य तृतीयचरणं यावत् घ पुस्तके नोपलभ्यते ।

तस्याप्यनु वदेद्देवि रूपद्विपथचारिणि ।
चतुरर्णं महावाक्यं वेदान्तप्रतिपादितम् ॥११९२॥
कूटं ब्रह्ममयं पश्चादस्त्रत्रितयमन्वतः ।
ससन्धि हृदयद्वन्द्वं प्रणवं तदनन्तरम् ॥११९३॥
सायुज्यबीजं तदनु सर्वशेषे शिरो वदेत् ।
इयं समाप्ता देवेशि मनूनामयुताक्षरी ॥११९४॥
बीजमालामयीनाम्नी मन्त्राणामुत्तमोत्तमा ।

[बीजमालामयमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

महाकालोपासितेयं विज्ञेया साधकोत्तमैः ॥११९५॥
विष्णूपास्यायुताक्षर्याः कोटिकोटिगुणाधिका ।
त्रिपुरघ्न ऋषिश्चास्याः बृहतीच्छन्द उच्यते ॥११९६॥
एकवक्त्रादि चारभ्य शतवक्त्रावसानिका ।
श्रीगुह्यकाली देव्यस्याः बीजं भासाख्यकूटकम् ॥११९७॥
फेत्कारी शक्तिराख्याता प्रलयः कीलकं मतम् ।
डाकिनी कथ्यते तत्त्वं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥११९८॥
विनियोगः साधयितुं मन्त्रस्यास्य प्रकीर्तितः ।

[निर्दिष्टमन्त्रे न्यूनाधिकाक्षरदोषनिरासाय संख्यानिर्णयः]

न्यूनाधिकार्णदोषाणां परिहाराय कीर्त्यते ॥११९९॥
यस्मिन् यस्मिन् शतं पूर्णं वर्णे देवि यथाक्रमात् ।
पञ्चवक्त्रस्य त्रेवर्णे शतं सम्पूर्णतां गतम् ॥१२००॥
डाकिनीभूतशब्दस्य तेऽर्णे पूर्णं शतद्वयम् ।
करालिन्याः कवर्णेऽपि त्रिशती पूर्णतामियात् ॥१२०१॥
लम्बमानोदरीत्यस्य विवर्णे च चतुःशती ।
तथा ज्वलनवर्णस्य मध्ये पञ्चशती स्मृता ॥१२०२॥
भुवर्णे भुवनस्यापि सम्पूर्णा षट्शती प्रिये ।
[1]वागुरे वर्णइत्यस्य वर्णे सप्तशतीमता ॥१२०३॥

---

१. वागगोचर इत्यस्य घ ।

नालीकबीजेऽष्टशती परिपूर्णा वरानने ।
नानाभरस्य भेवर्णे नवशत्यपि पूरिता ॥१२०४॥
सहस्रं कौगपीबीजे परिपूर्णं वरानने ।
षट्कूटाख्ये महाबीजे पूर्णा रुद्रशती तथा ॥१२०५॥
तथा च द्वादशशती भास्करे परिनिष्ठिता ।
[1]महाप्राणाह्वये वर्णे त्रयोदशशती तथा ॥१२०६॥
स्वरिते शक्रशतिका मन्त्रस्यास्य समापिता ।
नृवर्णे नृतुशब्दस्य पूर्णा तिथिशती प्रिये ॥१२०७॥
सम्पूर्णा षोडशशती भक्षिके केऽक्षरे तथा[2] ।
कृत्याभिचाररेवर्णे सामिधेनी[3]शती गता ॥१२०८॥
[4]प्रातरादेर्दिवर्णे च अष्टादशशती व्यगात्[5] ।
प्राक्षरे च प्रभावस्य ह्यूनविंशशती गता ॥१२०९॥
गौर्या रिवर्णे सम्पूर्णे द्वे सहस्रे वरानने ।
उल्कान्तिमेऽर्णे सम्पूर्णाऽप्येकविंशशती तथा ॥१२१०॥
कामप्रदे देऽक्षरे च द्वाविंशतिशती गता ।
सरस्वत्यादिमे वर्णे त्रयोविंशश्शती व्यगात् ॥१२११॥
चतुर्विंशशतीपूर्णा बीजे निष्ठुरनामनि ।
तथा च प्रश्रये बीजे पञ्चविंशशती गता ॥१२१२॥
दक्षिणाग्नौ महाबीजे षड्विंशतिशती तथा ।
सप्तविंशशती तद्वत्स्फे समाप्तिमगात् प्रिये ॥१२१३॥
गम्ये म्यवर्णे सम्पूर्णाऽष्टाविंशतिशती तथा ।
उग्रकाल्यादिमे वर्णे ऊनत्रिंशच्छती स्मृता ॥१२१४॥
वेतालकालि शेषार्णे सहस्रत्रितयं गतम् ।
एकत्रिंशच्छती पूर्णा स्कान्दास्त्रे वरवर्णिनि ॥१२१५॥

---

१. वंशीवादिनि दौ वर्णे घ ।
२. भवेत् घ ।
३. सप्तदशशती घ ।
४. प्रान्तरादे० घ ।
५. गता क ।

द्वात्रिंशच्छतिका रौद्रकाली मन्त्रान्तरे गता[1] ।
परिपूर्णा द्वितीयेऽर्णे त्रयस्त्रिंशच्छती प्रिये ॥१२१६॥
ज्वालापदस्य लावर्णे चतुस्त्रिंशच्छती गता ।
देहीति देऽक्षरे पञ्चत्रिंशच्छतमगात्तथा ॥१२१७॥
विद्याकालीति कावर्णे षट्त्रिंशच्छतिका गता ।
श्मशानकाल्या मन्त्रान्ते सप्तत्रिंशच्छती गता ॥१२१८॥
संक्रमाख्ये महाबीजे अष्टत्रिंशच्छती गता ।
नाड्यां तु हस्तिजिह्वायां ग्रहवह्निशती गता[2] ॥१२१९॥
वाग्वादिनि द्वितीयेऽर्णे चत्वारिंशच्छती स्मृता ।
देहीति ह्रौ च भूवेदशती पूर्णत्वमागता ॥१२२०॥
अभवत् तमसानद्यां नेत्रवेदशती प्रिये ।
राज्यश्रियं राक्षरे च त्रिचत्वारिंशदेव च ॥१२२१॥
चतुश्चत्वारिंशदगात् पाहि पाहि तृतीयके ।
पञ्चचत्वारिंशदगात् चण्ड्योगे च योऽक्षरे ॥१२२२॥
चैतन्यभैरवीत्यस्य वौ षट्वेदशती गता ।
कालवर्णे सप्तचत्वारिंशच्च समगात् तथा ॥१२२३॥
प्रयच्छेति छकारेऽष्टचत्वारिंशदीरितम् ।
दिगम्बरि नमो मेऽर्णेऽप्यूनपञ्चाशदुच्यते ॥१२२४॥
शबरेश्वरीति रे वर्णे पूर्णं पञ्च सहस्रकम् ।
एकपञ्चाशच्छती च अघोरा प्रथमाक्षरे ॥१२२५॥
सिद्धिकुब्जिक इत्यस्याः कौवर्णे द्वीषुशत्यपि ।
त्रिपञ्चाशच्छती पूर्णा किणि ण्यर्णे वरानने ॥१२२६॥
पूर्णा पुनरघोराया आद्यर्णेऽब्धीषुशत्यपि ।
पञ्चपञ्चाशच्छती च कुक्कुट्याः प्रथमाक्षरे ॥१२२७॥
शेषे सङ्कटमित्यस्य पूर्णार्त्विषुशती तथा ।
स्वाहाद्वयस्यादिमेऽर्णे सप्तपञ्चाशदीरिता ॥१२२८॥

---

१. हृदयद्वितयस्य हि इत्यधिकः ङ पुस्तके । २. व्यगात् घ ।

फट्त्रयान्तनमोनेऽर्णेऽष्टपञ्चाशच्छती तथा ।
एकोनषष्टिशतिका भगवत्यत्य[न्त?]वर्णके ॥१२२९॥
हाटकेश्वरि मन्त्रान्ते षट्सहस्रं प्रपूरितम् ।
द्वेष्यस्य प्रथमे वर्णे एकषष्टिशतं गतम् ॥१२३०॥
वर्षं वर्षेति शेषार्णे द्विषष्टिशतिका तथा ।
भयानके च भे वर्णे त्रिषष्टिशतिकापि च ॥१२३१॥
चतुःषष्टिशती पूर्णा रक्षिके सर्वशेषके[1] ।
क्रुष्टिबीजे पञ्चषष्टिशती चापि वरानने ॥१२३२॥
षट्षष्टिशतिका पूर्णा क्ष्वेडबीजे वरानने ।
फट्स्वाहेत्यत्र फे वर्णे सप्तषष्टिशती गता ॥१२३३॥
क्षेमङ्कर्यास्तृतीयेऽर्णे चाष्टषष्टिशती गता[2] ।
अङ्कर्तुशतिका पूर्णा स्वाहा प्रथमवर्णके ॥१२३४॥
भाने [ले?] भार्णे तथा सप्तसहस्रं परिपूरितम् ।
प्रासादकूटे निरगादेकसप्ततिशत्यपि ॥१२३५॥
सप्तलोकेऽपि शेषार्णे द्विसप्ततिशती गता ।
टैऽर्णे प्रकटयस्यापि त्रिसप्ततिशती व्यगात् ॥१२३६॥
मैन्यमित्यस्य शेषार्णे चतुःसप्ततिशत्यपि ।
फट्स्वाहास्वाक्षरे पञ्चसप्ततिः परिपूरिता ॥१२३७॥
[3]फट्द्वयस्यादिमे वर्णे षट्सप्ततिशती गता ।
कुलेश्वर्यास्तृतीयेऽर्णे सप्तसप्ततिशत्यपि ॥१२३८॥
चर्चरीतालिके पूर्णेऽष्टसप्ततिशती गता ।
अज्ञानमित्यस्यादौ च नवाद्रिशतिका व्यगात् ॥१२३९॥
[4]शूलाकारस्य शे वर्णेऽष्टसाहस्रं प्रपूरितम् ।
भ्रामयद्वितयस्यान्ते एकाशीतिशतं तथा ॥१२४०॥

---

१. सर्ववर्णके क । २. व्यगात् घ ।
३. इतः पूर्वं पंक्तित्रयं घ पुस्तकेऽधिकं दृश्यते :—

स्वाहाद्वयस्यादिमेऽर्णे सप्तपञ्चाशदीरिता ।
फट्त्रयान्तं नमोनेऽर्णेऽष्टपञ्चाशच्छती तथा ॥
वर्षं वर्षेति × पञ्च सप्ततिः परिपूरिता । [?]

४. स्थूलाकारस्य ?ङ ।

फा०—१८

राक्षसस्य क्षवर्णे च द्वाशीतिशतमीरितम् ।
गतिमित्यस्य गे वर्णे त्र्यशीतिशतमप्युत ॥१२४१॥
[1]गता चतुरशीतिश्च कङ्कालस्य लवर्णके ।
वमन्मुखाखाक्षरे च पञ्चाशीतिशतं तथा ॥१२४२॥
प्रहारिण्याश्च ह्यवर्णे षडशीतिशतं तथा ।
पाटयद्वितयाद्ये च सप्ताशीतिशतं गतम् ॥१२४३॥
नायिकायाश्च कावर्णे अष्टाशीतिशतान्यपि ।
एकोननवतिशतं भिनि स्वाहेति नेऽक्षरे ॥१२४४॥
भोजिनि न्यक्षरे चापि सहस्रनवकं व्यगात् ।
घनाकारेति रेवर्णे भूमिग्रहशती गता ॥१२४५॥
षडाम्नायतृतीयेऽर्णे शतद्विनवतिर्व्यगात् ।
प्रथमार्णे वासनायाः शतत्रिनवतिस्तथा ॥१२४६॥
निरिन्धने च ने वर्णे चतुर्नवतिशत्यपि ।
अनुद्भवे वेऽक्षरे च शतपञ्चनवत्यपि ॥१२४७॥
बृंहिते मध्यमे वर्णे षण्नवत्यपि भामिनि ।
संसाररूपे पे वर्णे शतसप्तग्रहा गता ॥१२४८॥
पालिन्यन्तेऽष्टनवतिशत्यपि प्रमदे व्यगात् ।
त्रिकालावाधिते तेऽर्णे एकोनमयुतं तथा ॥१२४९॥
सायुज्यवीजाच्छीर्षान्ते पूर्णयमयुताक्षरी ।
इत्ययं कथितो देवि वर्णानां नियमस्तव ॥१२५०॥
येन व्यत्यासभावं हि न गच्छेन् मन्त्रराडयम् ।

[बीजमालामयमन्त्रस्य महिम्नः कीर्तनम्]

परार्द्धादधिका संख्या यदि स्याद् वरवर्णिनि ॥१२५१॥
अहं च कोटिवक्त्रः स्यां कल्पकोटिं लिखामि च ।
महिमानं तथाप्यस्य वक्तुं शक्नोमि नेश्वरि ॥१२५२॥
पदे पदे नृणां मृत्युः प्रमादाश्च पदे पदे ।
दिने दिने तथा रोगाः पापानि च दिने दिने ॥१२५३॥

---

१. इतस्तिस्रः पंक्तयः घ ङ पुस्तकयोरेव मिलन्ति ।

सर्वमिच्छति चेत्तत्तु दुस्तरं दैवतैरपि ।
तदस्याः संग्रहः कार्यः सर्वकल्याणहेतवे ॥१२५४॥
मन्त्रा गोप्यतराः सन्ति गुह्यकाल्याः सहस्रशः ।
बीजमालामयीतुल्यो न भूतो न भविष्यति ॥१२५५॥
विद्यमाने मनावस्मिन् सर्वाशापरिपूरके ।
जना मृत्युविपत्तिभ्यां ग्रस्यन्ते कौतुकं महत् ॥१२५६॥

[निरुक्तमन्त्रस्य फलश्रुतिः]

लिखित्वा स्थापनाल्लक्ष्मीः पाठान्मृत्युविनाशनम् ।
अभ्यासात् सिद्धयः सर्वाः धारणान्मोक्षमाप्नुयात् ॥१२५७॥
तपस्यन्तु तपस्या वा भृगुपातं पतन्तु वा ।
सर्वतीर्थानि कुर्वन्तु अभ्यसन्तु तथागमान् ॥१२५८॥
यजन्तु वाश्वमेधाद्यैर्वादैश्च विवदन्त्वपि ।
युञ्जन्तु योगमार्गैश्च कुर्वन्त्वनशनादिकम् ॥१२५९॥
पठन्तु चतुरो वेदान् पूजयन्त्वखिलान् सुरान् ।
इमं मन्त्रं विना देवि जन्ममृत्यू तरन्ति न ॥१२६०॥
आत्रेया भार्गवाः कौत्सा माण्डूकायनशार्कराः ।
भारद्वाजाश्च शाण्डिल्या वात्स्या मौञ्जायनास्तथा ॥१२६१॥
[1]पाराशर्यायणाः काप्यास्तथा चोद्दालकायनाः ।
जैगीषव्या आरुणेया वामकक्षायणास्तथा ॥१२६२॥
जातुकर्णा देवलाश्च तथा माध्यन्दिनायनाः ।
कात्यायना गार्त्समदा माण्ठेया सौभरास्तथा ॥१२६३॥
वैजवापाश्च कैशोर्या गालवा बाभ्रवास्तथा ।
राथीतरा भानुकेया वाध्योगा औपवेशिकाः ॥१२६४॥
साञ्जीवेयाश्च कौत्साश्च नैध्रुवेयाश्च हारिताः ।
लाट्यायना आर्तभागाः काहोलौदश्विता अपि ॥१२६५॥

---

१. इतः पूर्वं ङ पुस्तके पंक्तित्रयमधिकं दृश्यते :—
कौशीतकेया माण्डव्या जावालाङ्गिरसाः कचाः ।
पौतिमास्याः गौपवनाः वासिष्ठाः कौशिकास्तथा ॥
कौण्डिन्या गोतमा आग्निवैश्या गार्ग्यायणास्तथा ।

आपस्तम्बाश्च हारीतास्तथा शातातपान्वयाः ।
पैठीनसीया मधुकाः पैङ्गा पौष्पिञ्जिनस्तथा ॥१२६६॥
नारायणीयाः काण्वाश्च कौशल्या आश्वलायनाः ।
पैप्पलादाश्च काबन्धाः शारभङ्गाः करन्धमाः ॥१२६७॥
सौर्यायणाश्च गर्गाश्च सैब्या राथन्तरास्तथा ।
एवमाद्या असंख्याता ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥१२६८॥
गोत्रप्रवर्तका वेदव्याख्यातारोऽतिरेतसः ।
ऋषिवंशाद्यभूताश्च शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥१२६९॥
उपासांचक्रिरे सर्वे वेदधारणतत्पराः ।
मन्त्रराजेन चैतेन गुह्यकालीं वरानने ॥१२७०॥
वेदादभ्यधिकं ज्ञात्वा बीजमालामयं मनुम् ।
अतस्तमपहायापि चक्रुरस्मिन् परिश्रमम् ॥१२७१॥
स्वस्वाभीष्टं च संप्रापुः सिद्धिमेतत्प्रसादतः ।
केचिद् वेदाम्बुधेः पारं केचिद् योगाम्बुधेर्ययुः ॥१२७२॥
केऽप्यापुश्चिरजीवित्वं वाक्सिद्धिमपरेऽपि च ।
केचिच्छेकुः स्वानुभावाज् जगद् विपरिवर्तितुम् ॥१२७३॥
केचिदिन्द्रं पातयितुं क्रुद्धास्तदुर्णया[रणा?]दिभिः ।
केचित् कैवल्यमापुश्च केचिद्देव्यां लयं तथा ॥१२७४॥
एवं राजर्षयः सर्वे नानामन्वन्तरोद्भवाः ।
सोमसूर्यान्वयोद्भूताः महाबलपराक्रमाः ॥१२७५॥
पुरूरवाश्च नहुषाः इक्ष्वाकुर्निमिरेव च ।
मरुत्तो रन्तिदेवश्च सुहोत्रः पौरवः शिविः ॥१२७६॥
शशबिन्दुश्च भरतो दिलीपो रघुरेव च ।
हैहयः कार्तवीर्यश्च दिवोदासः प्रतर्दनः ॥१२७७॥
अजमीढश्च दुष्यन्तो रामो दाशरथिस्तथा ।
मान्धाता पुरुकुत्सश्च दिलीपश्च गयस्तथा ॥१२७८॥
अम्वरीषो ययातिश्च रन्तिदेवो भगीरथः ।
पृथुर्वैण्यो हरिश्चन्द्रः आयूरजिरविन्धमः ॥१२७९॥

खट्वाङ्गो मुचुकुन्दश्च नीलो हरिर्हयो हरिः ।
परन्तपो वीरबाहुः शत्रुञ्जयविदूरथौ ॥१२८०॥
एते चान्ये च भूपालाः सप्तद्वीपेश्वराः प्रिये ।
एतन्मन्त्रप्रसादेन कांस्कान्नापुर्मनोरथान् ॥१२८१॥
न चक्रुः किं किमैश्वर्यं कांस्कान् भोगान्न लेभिरे ।
न ददुः कानि दानानि जितवन्तो न कान् रिपून् ॥१२८२॥
न दुर्लभमभूत्तेषां विपिने वसतामपि ।
सम्राट्त्वं सार्वभौमत्वं चिरञ्जीवित्वमेव च ॥१२८३॥
सप्तद्वीपेश्वरत्वं च भोगादिषु समर्थताम् ।
समरे जयतां चापि त्यागित्वं बाहुशालिताम् ॥१२८४॥
लेभिरेऽस्य प्रसादेन मन्त्रराजस्य पार्वति[1] ।
एवं विज्ञाय यः कुर्याद् भक्तिभावं कलावपि ॥१२८५॥
ऋषीणामिव भूपानामिवास्यापि हि सिद्ध्यति ।
राज्यलिप्सुर्लभेद् राज्यं विद्यां विद्यार्थ्यपि प्रिये ॥१२८६॥
कामिन्यर्थी कामिनीं च धनार्थी प्राप्नुयाद्धनम् ।
आयुरर्थ्यायुराप्नोति मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥१२८७॥
अणिमाद्यष्टसिद्ध्यर्थी सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ।
किं बहूक्तेन देवेशि यद्यदिच्छति साधकः ॥१२८८॥
तत्क्षणं तत्तदाप्नोति मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ।
एवं विदित्वा सकलं प्रभावं मन्त्रभूपतेः ॥१२८९॥
विहायान्यान् मनून् सर्वान् कुर्वमुष्मिन् महाग्रहम् ।
अनेनैवाहमलभं महाकालत्वमीश्वरि ॥१२९०॥
त्वं यास्यसि परां सिद्धिं यद्येनां धारयिष्यसि ।
न विस्तरभयाद् वच्मि महिमानममुष्य हि ॥१२९१॥
संक्षेपेणोदितः सर्वो व्यासात्त्वमवधारय ।
भाग्येनास्योपदेशः स्यात्[2] भाग्येनामुं पठत्यपि ॥१२९२॥

---

१. भामिनि ङ २. स्याच्चान्येन न विशेषतः क

अपि तद्धारयेदेनं भाग्यं देव्या अनुग्रहः ।
अतः परं निबोध त्वं महागुह्यासु गोपितान् ॥१२६३॥
मन्त्रान् षट् तु पूर्वेण शाम्भवादीन् वरानने ।
तुरीयामपि निर्वाणं महानिर्वाणमित्यपि ॥१२६४॥

इति महाकालसंहितायामेकाक्षरादारभ्यायुताक्षरपर्यन्त-
मष्टाविंशतिमन्त्रोद्धारो नाम
तृतीयः पटलः

चतुर्थः पटलः

[शाम्भवादिषडुत्तममनूद्देशः]

महाकाल उवाच

अधुना श्रृणु देवेशि[1] शाम्भवादीन् मनूत्तमान् ।
यदेकवार[2]स्मरणान्न पतेद् भवसागरे ॥१॥
अन्ये भाग्योदयैर्लभ्या मन्त्रा ये पूर्वमीरिताः ।
एते सुराणामप्राप्या देव्यनुग्रहमन्तरा ॥२॥
अथ कृतावधाना त्वं श्रृण्वेतान् षण्मनूत्तमान् ।
शाम्भवश्च तुरीया च निर्वाणमिति कथ्यते ॥३॥
एत एव पुनश्चान्ये महोपपदतस्त्रयः ।

[निर्वाणस्य पारिभाषिकं स्वरूपम्]

पुंल्लिङ्गः शाम्भवो ज्ञेयस्तुरीया स्त्रीस्वरूपिणी ॥४॥
तयोः संयोगतः सामरस्यान्निर्वाणमुच्यते ।
शाम्भवश्च तुरीयायां तुरीया शाम्भवे तथा ॥५॥
संयुज्य प्राप्नुयादैक्यं तदा निर्वाणमुच्यते ।

[सामरस्यपदार्थनिर्वचनम्]

सामरस्यपदं नाम एकीभावेन भावना ॥६॥
तदग्रे संप्रवक्ष्यामि विविच्य वरवर्णिनि ।
एकाक्षरादिमारभ्य तथा चैवायुताक्षरम् ॥७॥
उद्धृता ये मया बीजोपबीजैः कूटैर्युताक्षरैः[3] ।
[4]भोगप्रदाः सिद्धिदाश्च ज्ञेयास्तत्तत्फलप्रदाः ॥८॥

[षण्णां निर्दिश्यमानमन्त्राणामधिकारितिर्णयः]

महामन्त्राः षडेते हि केवलं मोक्षसाधिनः[5] ।
नैतत् तुल्या भविष्यन्ति यद्यप्यन्येऽमृतप्रदाः ॥९॥

---

१. वक्ष्यामि क ख ।
२. पठनान्नापतेद् क ।
३. कूटकैर्युताः ङ, छ ।
४. अङ्गप्रदाः क ख ।
५. मोक्षदायिनः घ, ङ, छ ।

मन्त्रेषूक्तेषूपयोगो गृहिणामेव केवलम् ।
वानप्रस्थयतीनां हि भवेदेष्वधिकारिता ॥१०॥
देवीमाद्यांश्रमो[मा?]नैव काङ्क्षतो [न्तो?]ह्यैहिकं फलम् ।
एषामतोऽमीष्वाधिक्यादधिकारं प्रचक्षते ॥११॥
द्वितीयाश्रमिकस्तस्मान्नाप्नोति[1] ह्यैहिकार्थ्यसौ ।
स्वधर्मस्थायिनां देव्यां महाभक्त्यतिशायिनाम् ॥१२॥
कदाचिन् मोक्षमिच्छूनां गृहिणामपि वा भवेत् ।
न सिषाधयिषेत् सिद्धिमेतैर्मन्त्रैर्वरानने ॥१३॥
कुर्वंन् भक्ष्यत्वमाप्नोति तस्या देव्या न संशयः ।
निःश्रेयसं यदा वाञ्छेत् तदैतेष्वाग्रहं चरेत् ॥१४॥
अन्ये सिद्धिफला मन्त्राश्चैते मुक्तिफलाः स्मृताः ।
रूपमेतज्जिघृक्षूणां पुरतो व्याहरामि ते ॥१५॥
पश्चात् फलान्यप्येतेषां कथयिष्यामि ते प्रिये ।

[एतन्मन्त्रजिघृक्षुस्वरूपनिर्देशः]

तृतीयमायुषो भागं संप्राप्तः सत्यवाङ् मुनिः ॥१६॥
अदारो वा सदारो वा निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
परित्यक्तषड्रयिश्च[2] कामक्रोधविवर्जितः ॥१७॥
समः सर्वेषु भूतेषु भोगत्यागी प्रियंवदः ।
[3]पूताशी मितवाग् वीरः समो मानापमानयोः ॥१८॥
रुद्राक्षमालाभरणः परित्यक्तवृथाकथः ।
एकासने स्थितो ध्यानी भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥१९॥
तरुत्वगम्बरो व्याघ्रमृगकृत्तिधरोऽपि च ।
नित्यं त्रिसवनस्नायी कन्दमूलफलाशनः ॥२०॥
दीक्षां पाशुपतीं प्राप्तस्त्यक्तसंसारवासनः ।
योगाभ्यासरतो वायुधारणापरिनिष्ठितः ॥२१॥

---

१. न्यथैतेषां क । २. षडूर्मिश्च ङ । ३. पुताशी घ ।

पञ्चाक्षरीजपरतः[1] शिवस्य परमेशितुः ।
सदैव भूमिशयनः कुशासनशयोऽपि च ॥२२॥
एतादृशः शाम्भवस्य योग्यो मन्त्रस्य पार्वति ।

[शाम्भवमन्त्रस्य महिमा]

एतस्य प्रत्यहजपाद्धारणाच्चिन्तनादपि ॥२३॥
नश्यन्ति [2]पुण्यपापानि जन्महेतुफलानि च ।
इमामाद्यां हि निःश्रेणीमारूढो वरवर्णिनि ॥२४॥
[3]अत्र संसिद्धरूपश्चेदीहेतान्यां हि तत्पराम् ।

[महाशाम्भवमन्त्रस्याधिकारिनिर्णयः]

स महाशाम्भवः प्रोक्तो मन्त्रराजोत्तमोत्तमः ॥२५॥
तस्यापि पूर्वरङ्गोऽसावुक्तो यः शाम्भवे प्रिये ।

[एतन्मन्त्रजिघृक्षोः विशेषस्वरूपवर्णनम्]

किन्तु मौनी त्यक्तदारः शान्तो दान्तः कुरूपधृक् ॥२६॥
मुण्डी जटी च भिक्षाशी तथा चैव दिगम्बरः ।
तदा महाशाम्भवाख्यां द्वितीयामधिरोहति ॥२७॥
अत्रापि सिद्धः क्रमतः पञ्च वा दश वा समाः ।

[तुरीयामन्त्राधिकारिनिर्णयः]

योगभूमिं तृतीयां तु तुरीयामभिवाञ्छति ॥२८॥
तत्राप्युक्तगुणाः सर्वे त्यजन्तः पौर्विकान् गुणान् ।

[तुरीयामन्त्रजिघृक्षोः विशेषस्वरूपवर्णनम्]

बाह्यसंवित्तिरहित उन्मत्तजडवद् भ्रमन् ॥२९॥
समदृष्टिस्तूभययोरमेध्यघनसारयोः ।
समनिन्दास्तुतिर्ज्ञानी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥३०॥
एतां तृतीयां निःश्रेणीं तुरीयानामधारिणीम् ।
आरूढो देवदेवेशि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥३१॥
अत्रापि सिद्धः क्रमतस्तावतः परिवत्सरान् ।
चतुर्थीं प्रसमीहेत तामेव हि महापदात् ॥३२॥

---

१. ०जपपरः घ । २. पापपुण्यानि घ । ३. भूत्या घ ।

[महातुरीयामन्त्राधिकारिनिर्णयः, परमहंसलक्षणम्]

तत्र त्यागो यज्ञसूत्रशिखावैदिककर्म्मणाम् ।
न पुण्यपापे नाधर्मो योगाभ्यासविधिर्न च ॥३३॥
नाच्छादनं समीहेत न स्नानादि समाचरेत् ।
स वै परमहंसाख्यो यतिश्रेष्ठतया स्थितः ॥३४॥
यस्योष्णं च न शीतं च न सुखं दुःखमेव च ।
स्वां तनुं कुणपप्रायां पतयालुं समीक्षते ॥३५॥
तितीक्षाज्ञानवैराग्यशमादिगुणसंयुतः ।
अनाशीर्निर्वृतिध्वस्तप्राग्जन्माङ्कुरशृङ्खलः ॥३६॥
एवंरूपेण वर्तेत वत्सरान् दश पञ्च च ।
महातुरीयामन्त्रज्ञो जीवन्मुक्त इव स्थितः ॥३७॥

[निर्वाणमन्त्राधिकारिनिर्णयः]

पञ्चमीमथ निःश्रेणीं निर्वाणाख्यां प्रपद्यते ।
तस्य रूपमनाख्येयं तस्थुषः स्तम्भकुम्भवत् ॥३८॥
चित्रेष्वाकारिता यद्वत्तिष्ठन्ति यतिमुण्डिनः ।
तद्वत्तिष्ठति निःस्पन्दो मृतवच्छ्वासवर्जितः ॥३९॥
पेशस्कारी कीट इव ध्यायंस्तन्निष्कलं महः ।
ब्रह्मत्वं प्राप्नुयात् कालात् सदा तद्भावभावितः ॥४०॥
ब्राह्मणे पौष्कमे [पौक्कसे?] चापि द्विजातिज्ञानवर्जितः ।

[निर्वाणमन्त्रमहिम्नः कीर्तनम्]

एवंरूपो हि निर्वाणमन्त्रजापेन सिद्ध्यति ॥४१॥
लीनः परब्रह्मणि स्यात् मायोपाधिविवर्जितः ।
मन्त्रेणैतेन सत्यं हि स्यादस्य कृतकृत्यता ॥४२॥
एतेनैव हि निर्वाहो भवेत् संसारवर्त्मनि ।
नैव स्यात् पुनरावृत्तिर्यदि कालविपर्ययात् ॥४३॥

[कालवशतः ब्रह्मलीनस्य पुनः संसरणे शास्त्रीयप्रक्रियानिरूपणम्]

लीनोऽपि ब्रह्मणि कथं पुनरायाति संसृतौ ।
एतस्मिन् संशये देवि सिद्धान्तं त्वं निशामय ॥४४॥

स्कन्धशाखापुष्पदलमूलकन्दाः फलानि च ।
शिफाप्ररोहविटपाङ्कुरकोटरकान्यपि ॥४५॥
असंख्यातान्यस्य जन्मतरोर्देवि प्रचक्षते ।
प्रत्येकं विवरीतुं हि नैव शक्यमियत्तया ॥४६॥
आरभन्ते पुनश्चान्यान्यन्यान्येतान्यनुक्षणम् ।
एकद्वित्रिचतुर्नाशे किमस्य परिहीयते ॥४७॥
किन्तु निर्वाणाभिधोऽयं सर्वं दहति पादपम् ।
अर्धदग्धमिवैकं हि मूले मूलं च तिष्ठति ॥४८॥
कदाचित्तेन जायन्ते पुनः शाखादिपल्लवाः ।

[महानिर्वाणमन्त्रस्य प्रयोजनाभिधानम्]

एतदर्थं समुद्योगो महानिर्वाणके चरेत् ॥४९॥
येन दग्धं हि भवति तदपि प्रमदोत्तमे ।
द्विसप्ततिसहस्राणां संवर्तानामनन्तरम् ॥५०॥
लीनोऽपि ब्रह्मणि जनः पुनरेति भवार्णवे ।
इत्येष निश्चयो **वेदे पुराणे** च व्यवस्थितः ॥५१॥

[ब्रह्मणः सृष्टेरुपाख्यानम्]

ब्रह्मणो विद्यमानस्य प्राचीना ये हि जज्ञिरे ।
ब्रह्माणस्तेऽपि कालेन पुनरावर्तिनो ध्रुवम् ॥५२॥
एतस्माद्दशमो यस्तु ब्रह्मातीतो वरानने ।

[वासनामूलकसंसारकथा]

आख्यायिकां तस्य शृणु कथ्यमानां समाहिता ॥५३॥
चराचरं जगत्सृष्ट्वा स्थित्वा तावदनेहसम् ।
परमात्मनि लीनोऽसौ नभसीव समीरणः ॥५४॥
पुनर्भवेयं ब्रह्माऽहं सृजेयं त्रिजगत्यपि ।
आज्ञापयेयं त्रिदशानित्येवं वासना स्थिता ॥५५॥
तेनास्य जन्ममूलं हि मूले किञ्चिदवस्थितम् ।
स तत्तद्वासनायोगाद् गतेषु नवधातृषु ॥५६॥
जात एव सृष्टिकाले भृगुपुत्रो महातपाः ।
स च स्थित्वा कियत्कालं दानवः समजायत ॥५७॥

हतः शक्रेण नागोऽभूत् तक्षकान्वयभूषणः ।
अन्नोबीजेन [?] स [1]पुना राक्षसः संबभूव ह ॥५८॥
अगस्त्यशापनिर्दग्धः स पुनर्यक्षराडभूत् ।
मृतस्तत्रापि स मयुर्बभूवातीव सुस्वरः ॥५९॥
ततो भुव्यवतीर्णोऽसौ महाबलपराक्रमः ।
जातः प्रतिष्ठानपुरे चक्रवर्ती महीपतिः ॥६०॥
जम्बूद्वीपे समस्तेऽपि भ्रमन् स स्वेन कर्मणा ।
क्रमेण नानाविषये समजायत भूपतिः ॥६१॥
भूपः पञ्चशतं वारान् विप्रः पञ्चशतं तथा ।
वैश्यश्चतुःशतं जातः शूद्रस्त्रिशतमेव च ॥६२॥
निषादो द्वादशशतं चाण्डालोऽष्टशतं तथा ।
धीवरो द्विशतं चापि यवनोऽपि हि षट्शतम् ॥६३॥
तथाभीरो नवशतं पादूक्तावदेव च ।
व्याघ्रः सहस्रं हरिणश्चतुर्दशशतं तथा[2] ॥६४॥
एकादशशतं पोत्री त्रयोदशशतं कपिः ।
श्वा चाप्येकशतं जातः खरः पञ्चशतं तथा ॥६५॥
मत्तद्विपश्च द्विशतं त्रिशतं च पुनर्मयः ।
वाजी पञ्चशतं वारान् बलीवर्दः शतत्रयम् ॥६६॥
वस्तः सप्तशतं जातः उरणस्तावदेव च ।
द्विशतं मत्तगोमायुर्भल्लूकः शतमेव च ॥६७॥
ततः सप्तशतं सिंहो द्विशतं वृक एव च ।
पूर्णं शतं सैरिभश्च खड्गः सार्द्धशतद्वयम् ॥६८॥
गोधा च शल्लकश्चापि वारान् जातः शतं शतम् ।
मार्जारश्चाप्येकशतं बभ्रुर्द्विशतमेव च ॥६९॥

---

१. पुरा घ ।
२. पुनः घ ।

ग्राहः स विंशतिवारान् अशीतिं मीन एव च ।
कूर्मः षष्टिशतं भेको वन्यस्त्रिशतमुन्दुरः ॥७०॥
कुक्कुटः सप्ततिं वारांस्तथा पारावतः शतम् ।
उलूको दशवारांश्च मयूरो नवतिं तथा ॥७१॥
[1]काकः स विंशतिवारान् कोकिलस्त्रिशतं तथा ।
चत्वारिंशशतं हंसः कङ्कः पञ्चशतं[2] [3]पुनः ॥७२॥
श्येनः कीरो बकश्चाषो गृध्रश्च क्रोद्रुणः[?]कृमिः ।
प्रत्येकं स शतं वंशः स्तम्बो[3] वृक्षः शतं लताः ॥७३॥
पुनः स पुण्ययोगेन मनुष्यः समजायत ।
शैवाचार्यः पञ्च वारान् शतं देवलकोऽपि च ॥७४॥
स्थपतिर्दशजन्मापि तन्तुवायो जनित्रयम् ।
मालाकारोऽष्टवारं च व्याधो विंशतिमेव च ॥७५॥
शतं वारांस्तथा बन्दी वर्धकिर्द्विशतं तथा ।
मुण्डी पञ्चाशच्चैव शतं कान्तारतस्करः ॥७६॥
पञ्चवारांश्चित्रकारो नववारान्नटोऽपि च ।
जन्मद्वयं चर्मकारो द्विवारं शौण्डिकोऽपि च ॥७७॥
सूचीजीवी त्रिवारं च पञ्चापि द्विजकिङ्करः ।
व्यापाद्यमानं व्याघ्रेण गोपयित्वा स वाडवम् ॥७८॥
हतस्तेनैव तत्पुण्याज्जातोऽसौ मुनिपुङ्गवः ।
शाण्डिल्यगोत्रे विख्यातो देवलान्वयभूषणः[4] ॥७९॥
आख्यया चञ्चुरिरिति पश्य योऽयं वरानने ।
केतुमालगिरेः कूटे तिष्ठन् भूमिरुहस्थले ॥८०॥
बृहद्रथन्तरादीनि सामानि खलु गायति ।
इदं सर्वं मया ध्यानाज् ज्ञातं देव्याः प्रसादतः ॥८१॥

---

१. इयं पंक्तिः घ पुस्तके न दृश्यते ।
२. तथा क ख ।
३. सर्पः पञ्चशतं तथा घ, शतं वृक्षः शतं लताः ङ ।
४. ० न्वयसंभवः घ ङ ।

एष एव स्वकर्मानुसारेण पृथिवीतले ।
पुनः पुनर्जायमानो ह्यवसाने परार्द्धयोः ॥८२॥
द्वात्रिंशत्कोटिजन्मान्ते पुनर्ब्रह्मा भविष्यति ।
पुण्यानि पुण्यानि भुवि जनयन्ति बहूनि हि ॥८३॥
पापानि पापानि तथा नृणां संसारवर्त्मनि ।
पुण्यं हि हैमं निगडं पापं चायसमुच्यते ॥८४॥
हेमैर्हि स्वर्गभोगः स्यादायसैर्निरयो भवेत् ।

[जन्ममरणयोः निदानाभिधानम्]

उभयं जन्ममरणनिदानं परिकीर्त्यते ॥८५॥
तत्राभिमानिनं सौख्यं दुःखं निर्वेदजं त्विदम् ।
द्वयोर्यद् बलवत्त [त्र ? त] देकं बाधते परम् ॥८६॥
पापं निहत्य पुण्यं स्यात् पुण्यं हत्वा तथैव च ।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य प्राणानतिसुदुस्त्यजान् ॥८७॥
एष एवायुतं वारान् भविता विप्र एव हि ।
वत्सात्रिगोत्रशाण्डिल्यभृगुकश्यपतिग्मिनाम् ॥८८॥
[1]माण्डूक्यकुत्सभरद्वाजकौशिकाङ्गिरसामपि [?] ।
मौद्गल्यगौतमोत्तङ्कदक्षारुणज[ब?]रूथिनाम् ॥८९॥
गोत्रे सम्भूय सम्भूय पुनः प्राप्स्यति देवताम् ।
अष्टादशशतं शक्रः कुवेरश्च शतत्रयम् ॥९०॥
तथा पञ्चशतं पाशी रविश्चन्द्रः शतं शतम् ।
यमः सहस्रमग्निश्च वारान् पञ्चशतं तथा ॥९१॥
चतुःशतं नैर्ऋतं च वायुः सप्तशतं पुनः ।
कालो मृत्युर्विधाता च चतुस्त्रिद्विशतं क्रमात् ॥९२॥
भूत्वा भूत्वा सर्वशेषे जगत्स्रष्टा भविष्यति ।
इत्यस्य विप्रवर्यस्य वृन्दशः खर्वश[खण्डश ?]स्तथा ॥९३॥

---

१. माण्डिकुत्सभर० क ।

भूतानि च भविष्याणि जन्मानि कथितानि ते ।
गहना संसृतिगतिर्वासनामूलसंभवा ॥९४॥
किञ्चिच्छिष्टस्य मूलस्य पुनर्मूलानि लक्षशः ।
जायन्ते तेन वृक्षाश्च प्ररोहन्त्येव कोटिशः ॥९५॥
तेषां फलैश्च बीजैश्च परार्द्धादधिका द्रुमाः ।
जन्मद्रुमूलेनैकेन कियन्त्यस्य न जज्ञिरे ॥९६॥
कियन्ति ते[1] भविष्यन्ति जन्मादीनि वरानने ।
मूले दग्धे न मूलानि प्ररोहन्ति कदाचन ॥९७॥
सहस्रमेव ब्रह्माणो न न्यूना नाधिकास्तथा ।
पुनः पुनर्हि जायन्ते जगत्स्रष्टुं त एव हि ॥९८॥
एतन्मन्त्रोपदेशादावेवमाह पुरद्विषः ।
निर्विण्णोऽपि हि निर्वाणादतो नैव प्रसिद्ध्यति ॥९९॥

[महानिर्वाणमन्त्रमहिम्नः कीर्तनम्]

तस्मात् पुनरनावृत्त्यै महानिर्वाणमीहते ।
एतस्मान्मन्त्रराजाद्धि ब्रह्मण्येव विलीयते ॥१००॥

[जीवब्रह्मणोरैक्यनिर्देशः]

न पृथग्रूपता तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यथाग्नेर्न पृथग् भिन्ना दाहिका शक्तिरुच्यते ॥१०१॥
यथाकाशमिवाकाशे यथा चैवानिलेऽनिलः ।
विलीनो ब्रह्मणि स हि ब्रह्मैव भवति ध्रुवम् ॥१०२॥
लीयते हि विशेषेण विलीनस्तेन चोच्यते ।
महानिर्वाणतः स स्यान्नान्येन हि कदाचन ॥१०३॥
निर्वाणादधिकं यस्मान्महानिर्वाणमित्यतः ।
[2]एतस्मादधिको नान्यो मन्त्रस्त्रिजगतीतले ॥१०४॥
येन ब्रह्माणमभ्येति किमुतान्यान् सुरासुरान् ।
विनाशधर्मिणो भोगानीहमानः पुनः पुनः ॥१०५॥

---

१. कियन्ति न भवि० ङ । इतः परमेकाधिका पंक्तिरिह ङ पुस्तके
यतेत तस्य दाहाय प्रयतेनान्तरात्मना । २. ०दपरो ङ ।

पतत्यविरतं घोरे जनः संसारसागरे ।
कथं नेहेत सायुज्यं जानन् संसारयातनाम् ॥१०६॥

[भोगमाहात्म्यनिरूपणम्]

अहो भोगस्य माहात्म्यं येन त्रिजगतीतले ।
अपनीय हि कैवल्यादात्मनो हि वशे कृतम् ॥१०७॥
किं सिद्धिभिः किं च भोगैः किं वा स्त्रीकाञ्चनेहया ।
पततो नरके घोरे योनावपि मुहुर्मुहुः ॥१०८॥
[1]पतयालुं निरीक्ष्य स्वां पक्वव्युष्टिनिभां तनुम् ।
म्रियमाणानि भूतानि मृतान् पितृपितामहान् ॥१०९॥
सिद्धिं भोगं स्पृहां चापि वाञ्छन्ति खलु साधकाः ।
अहो सामर्थ्यमेतस्य मोहमस्याद्य दृश्यताम् ॥११०॥
तिष्ठत्येतादृशे मन्त्रे महानिर्वाणनामनि ।
पच्यन्ते नरके घोरे स्वकर्मदहनैर्नराः ॥१११॥
किं बहूक्तेन देवेशि समासादवधार्यताम् ।
अमृतं त्वमृतप्रायं भोगाश्चामेध्यसन्निभाः ॥११२॥
देवाशयाश्च देवाश्च सुधायामेव सस्पृहाः ।
ग्राम्यकोलाशया ग्राम्यकोलाश्चामेध्यसस्पृहाः ॥११३॥

[उद्दिष्टषण्मनूनां फलनिर्देशः]

अतः परं क्रमेणैषां फलं समवधारय ।
ततोऽमीषां समुद्धारं कथयिष्यामि ते क्रमात् ॥११४॥
शाम्भवस्य तु मन्त्रस्य [2]तत्रादौ फलमुच्यते ।
अन्यजन्माङ्कुराणि स्युर्भस्मसादमुना प्रिये ॥११५॥
आद्यायां खलु निःश्रेण्यामारूढः स्थिरपाद् यदि ।
तदा द्वितीयामारोढुं शक्नोत्याशु न चान्यथा ॥११६॥

---

१. पतमानां क ।
२. बीजं तदिह कथ्यते क । घ छ पुस्तकयोस्तु—
"शाम्भवस्य तु मन्त्रस्य तत्रादौ फलमुच्यते
महानिर्वाण मन्त्रस्य बीजं तदिह कथ्यते ॥

यथा त्रिदण्डसंन्यासो ज्ञानकर्मसमुच्चयः ।
तथा शाम्भवमन्त्रोऽयं ज्ञानकर्मफलात्मकः ॥११७॥
महाशाम्भवमन्त्रेण कषायः परिपठ्यते[1] ।
हृदयग्रन्थयस्तस्य जायन्ते प्रत्यहं श्लथाः ॥११८॥
छिन्नाः स्युः संशयाश्चापि क्षयं कर्माणि यान्ति च ।
आनन्दममलं रूपमाविर्भवति चेतसि ॥११९॥
स वरिष्ठो ब्रह्मविदामात्मारामः प्रजायते ।
अतः परस्यापि फलं निबोध कमलानने ॥१२०॥
आधारदेशवर्णानिहोजात्याश्रमसंविदः ।
भवन्ति न कदाप्यस्य तत्रैव न्यस्तचेतसः ॥१२१॥
अन्तः प्रवेष्टुमिच्छोर्नु यथा जवनिकैकिका ।
अन्तरायो भवेत्तद्वद् ब्रह्मण्यस्य विवक्षितः ॥१२२॥
निर्वाणस्य फलं प्रोक्तं पूर्वमेव मया तव ।
फलं ह्यपुनरावृत्तिर्महानिर्वाणकस्य च ॥१२३॥

[महानिर्वाणमनोरधिकोत्कृष्टत्वनिर्देशः]

महाशाम्भवमन्त्रो हि सदाशिव उदीर्यते ।
महातुरीया रूपा हि जगदम्बा प्रकीर्त्यते ॥१२४॥
तयोरैक्यं सामरस्यं भावनाया मनोस्तथा ।
तेनैव, नान्येन पुनः कदाचिदपि पार्वति ॥१२५॥
भवेदपुनरावृत्तिस्त्रिसत्येन ब्रवीम्यहम् ।

[गृहस्थानामिहानधिकारः]

अतो वच्मि गृहस्थानां नाधिकारोऽत्र वर्तते ॥१२६॥
ते भोगलम्पटाः सर्वे तथा सिद्ध्यभिकाङ्क्षिणः ।
भोगसिद्धी न चेहेते यतिवैखानसौ पुनः ॥१२७॥
तेषामतोऽधिकारोऽस्ति मन्त्रेष्वेतेषु भागवत् ।

[यतिवैखानसयोरिह षट्सु निर्दिष्टमन्त्रेष्वधिकारः नान्यस्य]

[2]भोगलिप्सुर्गृहस्थश्चेदिमामिच्छति साधकः ॥१२८॥

---

१. परिपच्यते घ ।
२. मोक्षलिप्सु [?] क ।

सद्यः पतति शैलाग्राद् वातभुग्न इव द्रुमः ।
यद्येवं यतये दद्याद् गृहिणे स [न ?] कदाचन ॥१२९॥
न गृहस्थो गृहस्थाय संप्रदद्याज्जिजीविषुः ।
प्रदाता संग्रहीता च कामाल्लोभाद्धठाद् बलात् ॥१३०॥
दत्वा गृहीत्वा पततो नरके जन्मजन्मनि ।
पुत्राय भक्तियुक्ताय कदाचिद्दीयते न वा ॥१३१॥
किमुतान्यत्र दातव्यमित्येवं ब्रह्मशासनम् ।

[यतिवैखानसयोरिह षट्सु निर्दिष्टमन्त्रेष्वधिकारः नान्यस्य]

सनकश्च सनन्दश्च सनातन ऋतश्रवाः ॥१३२॥
दत्तात्रेयश्च कपिलो दुर्वासा नारदस्तथा ।
जैगीषव्यश्च कण्वश्च चमसः पिप्पलायनः ॥१३३॥
मार्कण्डेयो जामदग्न्यः श्वेताश्वतर एव च ।
संवर्तः शरलोमा च शरभङ्गश्च शार्करः ॥१३४॥
अन्तरीक्षश्चोपमन्युः करभाजन एव च ।
राजश्रवा नाचिकेतोऽप्यथर्वा चाश्वलायनः ॥१३५॥
पैठीनसिर्वीतहव्यो रैभ्यः कात्यायनोऽपि च ।
एते भिक्षुसधर्माणस्त्यक्तस्त्रीभववासनाः ॥१३६॥
परस्परस्य गुरवः षण्मन्त्रोपासका मताः ।
राज्यस्था अपि भूपालाः श्रूयन्ते यतिवृत्तयः ॥१३७॥
एषामुपासका भूत्वा तेरुः संसारसागरम् ।
सुराष्ट्रे शास्त्रयस्त्रिशत् षट्षष्टिश्च त्रिगर्तजाः ॥१३८॥
हैहयाः पञ्चपञ्चाशत् जनकाः सप्तसप्ततिः ।
राज्यं कृत्वा महीं भुक्त्वा निर्वाणाल्लेभिरेऽमृतम् ॥१३९॥
अतो ह्यनवलिप्तस्य स्त्रीहेमभवनादिषु ।

[मुक्ति कामयमानस्य गृहस्थस्यापि कदाचिदधिकारः]

मुमुक्षोर्गृहिणोऽप्येषु भवेदेवाधिकारिता ॥१४०॥
न तु भोगप्रसक्तस्य गृहिणो विषयैषिणः ।
कुर्वतश्चैहिकं कर्म काङ्क्षतोऽमृतमुत्तमम् ॥१४१॥
गृह्णीयान्नैव दद्यात्तु मन्त्रानेतान् वरानने ।
ग्रहीतोर्द्ध्वगतिं गच्छेद्दाता चाधोगतिं तथा ॥१४२॥

एतज् ज्ञात्वा समासेन दानग्रहणयोः फलम् ।
यस्मै यथा रोचते हि स तदेव करिष्यति ॥१४३॥

[मन्त्रोद्धारनियमविशेषस्य निर्वचनम्]

मन्त्रोद्धारस्य समयमथान्यच्छृणु कञ्चन ।
बीजानां नामभिस्तत्तद्बीजादौ समुपस्थिते ॥१४४॥
सर्वसाधारणाः सर्वगम्याश्च सुलभा अपि ।
भविष्यन्तीति गूढार्थस्तदर्थमुपकल्पितः ॥१४५॥
तत्तच्छब्दादिभिस्तत्तत्पर्यायान्यपदादिषु ।
प्रत्युपस्थापितेष्वेव तत्तदुन्नेयमीश्वरि ॥१४६॥
उपदेशेनैव गुरोर्भवेयुः प्रकटा हि ते ।
त्रिपुरघ्नेनैतदर्थं निबन्धोऽयं पुरोदितः[1] ॥१४७॥

[शाम्भवमन्त्रोद्धारः]

अथ शाम्भवमन्त्रस्य समुद्धारं निशामय ।
इदं प्राथमिकं द्वारं ब्रह्मणि प्रतितिष्ठताम् ॥१४८॥
त्रैवर्णिकश्च प्रकृतिर्निनादो योगवत्यपि ।
रूपादिशृङ्गानिर्वाच्यशिखरे तदनन्तरम् ॥१४९॥
अवबोधकशक्त्युच्चैरेतन्नामाङ्कुरादिमौ ।
नवाक्षरः शाम्भवोऽयं जन्मतूलदवानलः ॥१५०॥

[ऊर्ध्वनिर्दिष्टमन्त्रस्य महिमा]

यथा ग्रीष्मर्तुघर्मेण हिमानी प्रविलीयते ।
एवमस्योपदेशेन लीयन्ते जन्मकोटयः ॥१५१॥
प्रविशन्ति समुद्रेषु यथा नदनदीगणाः ।
स्वं रूपं प्रतिमुच्यैव यान्ति तन्मयरूपताम् ॥१५२॥
एवं नामाकारजातिदेशकालविवर्जितः ।
एतन्मन्त्रोपासकस्तु याति ब्रह्ममयात्मताम् ॥१५३॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१५४॥

---

१. कृतः पुरा घ ङ ।

[1]भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मन्त्रेऽमुष्मिन्नुपासिते ॥१५५॥
इमां तु ज़पतो विद्यां मुञ्चतो भववासनाम् ।
किमन्यैर्वेदवेदान्तोपनिषद्ग्रन्थकोटिभिः ॥१५६॥
महिमानं शम्भुरस्य वेत्ति नान्यः सुरोऽपि चेत् ।
ज्ञास्यन्ति किं पुनर्लोकाः भोगैहिकफलेप्सवः ॥१५७॥
उपासना तु भिन्नास्य साग्रे प्रकटयिष्यते ।

[शाम्भवमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

महारुद्र ऋषिस्त्वस्य बृहतीच्छन्द उच्यते ॥१५८॥
शाम्भवी गुह्यकाली च देवता परिकीर्तिता ।
प्रणवो बीजमुद्दिष्टं शाकिनी शक्तिरेव च ॥१५९॥
त्रपा कीलकमुद्दिष्टं विनियोगस्तु मुक्तये ।

[महाशाम्भवमन्त्रः]

इदानीमवधेहि त्वं महाशाम्भवमुत्तमम् ॥१६०॥
यमेकवारमुच्चार्य भवाब्धौ न पतेज्जनः ।
गर्भजन्ममृतित्राता गिरामुद्भव एव च ॥१६१॥
त्रिदशानां मन्दिरं च मर्त्यपञ्चमुखोऽपि च ।
वनिता रक्तपा सिद्धा दीप्ताविश्वान्तश्रृङ्गके ॥१६२॥
हैमवीर्याधानश्रृङ्गान्तद्वीपशिखरे ततः ।
सर्वोच्चाद्योच्चमस्यानु कल्पात् पञ्चाङ्कुरी ततः ॥१६३॥
इयं पञ्च[सप्त?]दशी ख्याता महाशाम्भव[2]नामिका ।

[महाशाम्भवमन्त्रमहिमा]

शिव एव भवेत् साक्षादेतस्य प्रत्यहं जपात् ॥१६४॥
मुक्त एव स वै किन्तु तत्त्वाकृतिधरः परः ।

[महाशाम्भवमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋषिर्महाशम्भुरस्य छन्दोऽतिजगती तथा ॥१६५॥

---

१. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् २।२।८। २. ०तामपि क, नायिका ङ, छ।

गुह्यकाली महाशाम्भवी तथा देवता मता ।
व्ययंबीजं भवेद् बीजं नान्दिकं शक्तिरुच्यते ॥१६६॥
कृत्या तथा कीलकं च तत्त्वं ब्रह्म प्रकीर्त्यते ।
प्रयोगोऽस्य भवेज्जीवन्मुक्तये परमेश्वरि ॥१६७॥
इमं जपं न कुर्वीत कर्मणां फलकाङ्क्षया ।
क्रियामेकां विदध्यात् स फलवासनयोज्झिताम् ॥१६८॥
भस्मोद्धूलनरुद्राक्षधारणारूपिणीं प्रिये ।
नालापमाचरेत् कैश्चिन्न [1]बाह्ये दृष्टिमीरयेत् ॥१६९॥
अन्तर्निष्ठः सदा भूयात् ब्रह्मार्पितमनःक्रियः ।
आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं
कुर्यादाहारं प्राणसन्धारणार्थम् ।
प्राणा धार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं
तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयान्न भूयः ॥१७०॥
एवं कुर्वन् स सिद्धः स्यान् महाशाम्भविके पदे ।
जातेदृग्विधरूपस्य नरस्य कृतकृत्यता ॥१७१॥

[तुरीयामन्त्रोद्धारः]

अथ श्रृणु तुरीयायाः समुद्धारं वरानने ॥१७२॥
महाशाम्भवतोऽप्येनां त्वं मन्यस्व महीयसीम् ।
यतो निर्वाणबीजत्वेनोदिता त्रिपुरारिणा ॥१७३॥
पञ्चविंशत्यब्धि[?]मादौ ततोऽनृजुमनन्तरम् ।
निगमाक्रान्तमस्यानु चतुर्थशिखरं ततः ॥१७४॥
अद्वैविध्यमतःश्रृङ्गं श्रृङ्गमन्यात्मकं ततः ।
ततो दैहिकयन्त्रान्ता हितां [2]कुरुयुगं प्रिये ॥१७५॥
चतुर्थ्यङ्कुरमस्यानु सर्वशेषे प्रयोजयेत् ।
महाविद्या तुरीयेयं मुक्तिदात्री नवाक्षरी ॥१७६॥

[तुरीयायाः स्वरूपम्]

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत् [3]प्रकाशते ।
तेभ्यो विलक्षणा ज्ञेया चिन्मात्रैकप्रकाशिनी ॥१७७॥

---

१. राज्ये ख, घ । २. हिताङ्कुरयुगं घ, ङ ।
३. प्रकाशिताम् ख । तुरीया कैवल्योपनिषत् १।१७ । गन्धर्वतन्त्रम् ४२।५१ ।

[1]यत् परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्तुरीयापदाभिधम् ॥१७८॥
अस्यामेवाखिलं विश्वमस्यामेवाखिलं महः ।
अस्या एव प्रपञ्चोऽयमिति ज्ञात्वा प्रमुच्यते ॥१७९॥
[2]एतस्या जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथिवी विश्वधारिणी ॥१८०॥
[3]त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो भिन्नतमः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥१८१॥
एष वै पन्था अमृतस्य लोके
नान्या काचिद् विद्यते मोक्षदात्री ।
अप्राप्यैनां ज्ञानिनो बुद्धिदोषा-
दन्येष्वसारेष्वाग्रहं सञ्चरन्ति ॥१८२॥
इमां वाचा मनसा कर्मणा ये
अन्त[4]र्विष्टा मुक्तिमार्गे जयन्ति ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥१८३॥
एतां जानीथ[5] सदसद् वरेण्यं
परं विज्ञानाद् यद् वरिष्ठं जनानाम् ।
[6]यदर्चिमद् यदणुभ्योऽणु च
यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च ॥१८४॥
[7]तुरीया धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते[?] ।
अप्रमत्तेन बोद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥१८५॥

---

१. तुलनीया कैवल्योपनिषत् १।१६ । केवलं चतुर्थचरणे भेदः, उपनिषदि "स त्वमेव त्वमेव तदिति" पाठः । गन्धर्वतन्त्रम् । ४२।५० ।
२. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् २।१।३ । कैवल्योपनिषत् १।१५ । गन्धर्वतन्त्रम् ४२।४९ ।
३. तुलनीया कैवल्योपनिषत् १।१८ । गन्धर्वतन्त्रम् ४२।५२ ।
४. अन्तर्निष्ठाः ख, ङ, । ५. जानथ ख, ङ, ।
६. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् २।२।२ ।
७. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् २।२।४ ।

[1]यया सर्वान् जन्मपाशांश्छिनत्ति
यया ब्रह्मण्येव लीयते[2] सत्यम् ।
तामेवैकां जानथ तुरीया-
मन्या वाचो मुञ्चथाऽमृतस्यैष सेतुः ॥१८६॥
[3]अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्य[न?]न्तं महतः परं ध्रुवं
[4]विचार्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥१८७॥
[5]अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयंध्रुवाः[6] पण्डितं मन्यमानाः ।
[7]दन्दह्यमानाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः ॥१८८॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा[8] सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥१८९॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति [9]संसारं चाधिगच्छति ॥१९०॥
किं ते दारैः किं धनैः किं च भोगै-
र्भूयोभूयः पततां जन्मसिन्धौ ।
तुरीयां वै जपथाऽजस्रमेवं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥१९१॥
[10]नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि स प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥१९२॥

---

१. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् २।२।५ । २. लीयेत ङ।
३. तुलनीया कठोपनिषत् १।३।१५ । ४. निचाय्य ख ।
५. तुलनीया मुण्डकोपनिषत् २।८ । ६. धीराः ख ।
७. जंघन्यमानाः क ८. यत्नेन मनसा सदा ख घ । तुलनीया कठोपनिषत् १।३।५ ।
९. यस्माद् भूयोऽभिजायते क । इतः परं पंक्तिद्वयमधिकं ख घ पुस्तकयोः —
यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयोऽभिजायते ॥
१०. तुलनीया कठोपनिषत् १।३।६ ।

[तुरीयामन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथास्या ऋषिदैवत्ये छन्दोबीजे निशामय ।
कीलकं च वरारोहे ऋषिः परसदाशिवः ॥१९३॥
तुरीया गुह्यकाली च देवता परिकीर्तिता ।
छन्दः प्रतिष्ठा संप्रोक्ता प्रणवं बीजमुच्यते ॥१९४॥
माया च कीलकं ज्ञेयं योगो भेदापनुत्तये ।
इति ते कथितो देवि तुरीयामन्त्र उत्तमः ॥१९५॥
आख्याता श्रुतिरप्यस्या महिमप्रतिपादिका ।
यत्रास्या महिमानं हि वेदः[1] कथयति स्वयम् ॥१९६॥
तन्त्रादयस्तु तत्रान्ये कथयिष्यन्ति किं प्रिये ।

[महातुरीयामन्त्रावतरणम्]

एनामेवातः परं हि महापूर्वां निशामय ॥१९७॥
इयमेव पराकाष्ठा सर्वमन्त्रानुपासताम्[2] ।
यया न शोचते मर्त्यो जन्ममृत्यू भवार्णवे ॥१९८॥
देशकालजनुर्जातिममतेहाविवर्जितः ।
परब्रह्ममयाकारो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥१९९॥

[महातुरीयामन्त्रोद्धारः]

अस्याः शृणूद्धारमतो यत्नतः परमेश्वरि ।
ध्वनिकालोऽनु निखिलाम्नायं निगडमेव च ॥२००॥
सृष्टिस्थितीतरत्क्ष्माजं रत्नस्रजमथापि च ।
[3]छायासंज्ञामुहुरनागमनाख्यं त्रिशृङ्गकम् ॥२०१॥
अद्वितीयात्मताश्रृङ्गं त्रिशेषेन्द्रियजोच्चकम् ।
[4]दर्पाधिक्याख्यशिखरं बृंहणप्रचुरोच्चरेत् ॥२०२॥

---

१. वेदाः कथयन्ति स्वयम् क । २. सर्वमन्त्रा उपासिता ख ।
३. द्वा संज्ञा क, द्वया संज्ञा मुहुरनाख्यं त्रिशृङ्गकम् घ :
४. हर्षाधिक्या ङ । इर्ष्याधिक्या ख, घ ।

द्वितीययुगयुग्मं च वर्षपापाङ्कुरे परम्[1] ।
ज्ञानसामर्थ्ययुगलं ततः परमुदीरयेत् ॥२०३॥
महातुरीयानाम्नीयं महासप्तदशी मता ।
यथा सुधोद्धृता देवैर्निर्मथ्य क्षीरसागरम् ॥२०४॥
तथागमाब्धिं निर्मथ्य महातुर्या मयोद्धृता ।
मयोद्धृता यद्यपीयं मयैवैषा प्रकीर्तिता[2] ॥२०५॥
महिमानं तथाप्यस्याः वक्तुं शक्नोमि नेश्वरि ।
वेदान्तोपनिषत्सांख्ययोगेष्वस्या वरानने ॥२०६॥
प्रभावो वर्णितः कृत्स्नो ब्रह्मविद्याप्रकाशिषु ।
अज्ञानान्नोदितं **सर्वैस्तन्त्रयामलडामरैः** ॥२०७॥
मया व्याहृर्यमाणं तं तत्तदुक्तं निशामय ।
[3]अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते ॥२०८॥
ततो भूय इव ते तमो यत्र विद्यायां रताः ।
अन्धं तमो जन्म मृत्युमेतन्मन्त्रेतरो मनुः ॥२०९॥
अविद्येति समाख्याता गूढमेतत् तवोदितम् ।
[4]असूर्या नाम ते लोकाः अन्धेन तमसा वृताः ॥२१०॥
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येऽविद्वांस इमां जनाः ।
महातुरीयां चेज्जानीयादियमेतादृशीति वा ॥२११॥
क्रिमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसञ्ज्वरेत्[5] ।
नेयं शुक्ला न च रक्ता न पीता
न पिङ्गला हरिता लोहिता वा ।
पन्थाश्चैपो[6] ब्रह्मणेहानुचिन्ता[7]
तयैवैति ब्रह्मवित् पुण्यकृच्च ॥२१२॥

---

१. पापाङ्कुरमतः परम् ख, ङ । २. प्रकाशिता घ, ङ ।
३. इतः पंक्तित्रयं क, ङ पुस्तकयोः नास्ति । तुलनीया ईशोपनिषत् ९, केवलमिह यत्र विद्यायां रता इति पाठः तत्र य उ विद्यायां रात इति ।
४. तुलनीया ईशोपनिषत् ३ । केवलमिह ''येऽविद्वांस इमां जनाः'' इति पाठस्तत्र तु ये के चात्महनो जनाः, इति पाठः ।
५. संज्वरेत् क, घ । ६. पन्थाश्चैषा ख, ङ । ७. चित्ता ङ ।

महातुरीया येयमुक्ता मया ते
नाज्ञः [1]प्रापैनां महाभाग एताम् ।
प्राप्तुं शक्नोत्येष आदेश ईशे-
नोक्तः पूर्वं त्रिपुरघ्नेन देवि ॥२१३॥
मनसैवानु द्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव[2] पश्यति ॥२१४॥
तामेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद् ब्रह्म[3]शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत् ॥२१५॥
एवं महातुरीयाया महिमानोऽमिताः प्रिये ।
शक्यन्ते केन वा वक्तुं तस्याः सर्वं यथार्थतः ॥२१६॥
आकर्णयत ऋष्यादीन् मनोरस्य मयोदितान् ।
अनादीश्वरनामास्य ऋषिरुक्तो वरानने ॥२१७॥
छन्दः प्रतिष्ठा कथिता सुवर्णप्रथमा पुनः ।
महातुरीयोपपदात् गुह्यकाली च देवता ॥२१८॥
आनन्दकूटं यत्प्रोक्तं बीजमस्य तदेव हि ।
कूटं मार्त्युञ्जयं चापि कीलकं परिपठ्यते[4] ॥२१९॥
अजन्ममृत्यवे चास्याः प्रयोगः परिकीर्तितः ।
[5]निर्वाणमधुना वच्मि तत्र[6] चेतो निवेशय ॥२२०॥
यत्र प्रतिष्ठितो नैनां तुरीयामभिवाञ्छति ।
काष्ठानि दहतो वह्नेर्धूमो निःसरते यथा ॥२२१॥
काष्ठेऽतीते स हि यथा न भवेदेवमेव हि ।
कर्माणि काष्ठान्युक्तानि धूमो जन्ममृती तथा ॥२२२॥
निर्धूमोऽग्निस्तद्विरहादतो निर्वाणमुत्तमम् ।
चत्वारोऽपि हि यत्रैते निवर्तन्ते परस्परम् ॥२२३॥

---

१. पापो ना ख, ङ ।
२. एतामेव ख । तुलनीया कठोपनिषत् २।१।११ ।
३. बहूंच्छब्दान् ख, ङ । ४. परिकथ्यते ख, घ ।
५. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति । ६. तव ख ।

विम्बतो न यथा भिन्नः प्रतिबिम्बः कदाचन ।
न जीवात्मा तथा भिन्नः कदापि परमात्मनः ॥२२४॥
अमुष्य वक्ष्यमाणस्य निर्वाणस्य जपान्नरः ।
न तथा ब्रह्मणो भिन्नः कदाचिदपि जायते ॥२२५॥

[निर्वाणमन्त्रः]

निर्वाणमेतादृशं त्वं निबोध जगदीश्वरि ।
शरीरोद्धर्वोन्नमनकृत् पञ्चविंशाध्रि [ब्धि]मेव च ॥२२६॥
गुणसाम्यं ततो चक्रानऌपा सिद्धिकामिनी ।
श्रुत्युल्लङ्घनकृच्चापि वायुरोधनकारिणी ॥२२७॥
तुर्यादिगुणश्रृङ्गे द्वे उद्धार्ये तदनन्तरम् ।
अभेदाकथ्यसंज्ञे द्वे स्यातां वै शिखरे ततः ॥२२८॥
भिन्नाभिन्नज्ञाननाम्नी[1] ते एव तदनन्तरम् ।
षण्मन्त्रं शाम्भवक्ष्माजं ततो यात्रितमं[2] कुरु[?] ॥२२९॥
चतुर्थक्ष्माजमस्यानु निर्वाणशिखरं ततः ।
य एवादौ स एवान्ते ततो भवति पार्वति ॥२३०॥
इत्यूनविंशत्यर्णोऽयं निर्वाणाख्यो महामनुः ।

[एतन्मन्त्रमहिम्नः कीर्तनम्]

महिमानं फलं चास्य कथयिष्यामि ते कियत्[3] ॥२३१॥
महिमानं शिवो वेत्ति फलं ब्रह्मणि लीनता ।
एतस्मादपरं किं वा फलं तत्रैव[4] विद्महे ॥२३२॥
न पुण्यपापे न च जन्ममृत्यू
न शोकमोहौ न सुखं न दुःखम् ।
न शीतमुष्णं न च क्षुत्पिपासे
न कर्म देहेन्द्रियजातयश्च ॥२३३॥

---

१. धाम्नो ख २. यातितमङ्कुरम् ङ ।
३. प्रिये ख । ४. तन्नैव ख, ङ ।

न हानिवृद्धी न दिवा न रात्रिः
न सन्न चासन्न जरा न पातः ।
न भूमिरापो न च तेजवायू
न खं न कालो न च देश आस्ते ॥२३४॥

[1]न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥२३५॥

[2]अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥२३६॥

[3]वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥२३७॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
[4]एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
एकं रूपं बहुधा यः करोति ॥२३८॥

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।
[5]नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥२३९॥

---

१. तुलनीया कठोपनिषत् २।२।१५ । २. तुलनीया कठोपनिषत् २।२।९ ।

३. तुलनीया कठोपनिषत् २।२।१० ।

४. एकस्तथा ङ । तुलनीया कठोपनिषत् । २।२।१२ । केवलं तत्र चतुर्थचरणः विपरिवर्तेन विद्यते 'न लिप्यते लोकदुःखेन वाह्यः' ।

५. तुलनीया कठोपनिषत २।२।१३ ।

[1]तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्द्देश्यं परमं सुखम् ।
कथं नु तद् विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥२४०॥
[2]संसाररूपं यद् घोरं जन्ममृत्युजराभिधम् ।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृता भवन्ति ॥२४१॥
[3]यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥२४२॥
[4]तां मोक्षमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
[5]नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ॥२४३॥
निष्कैवल्यं परं ब्रह्म निर्वाणेनैव लभ्यते ।
दग्ध्वा सर्वाणि काष्ठानि विधूमोऽङ्गारसञ्चयः[6] ॥२४४॥
ज्वालामाली ज्वलन्नग्निर्यथा निर्वाण उच्यते ।
जन्ममृत्यू तथा दग्ध्वा निष्कर्मा ज्ञानसंयुतः ॥२४५॥
ब्रह्मरूपी निराकारस्तथा निर्वाणजापकृत् ।

[निर्वाणमन्त्रस्य ऋष्यादिन्यासः]

ऋष्यादिमधुना वच्मि निर्वाणस्यावधेहि तत् ॥२४६॥
परमात्मा ऋषिः प्रोक्तो बृहतीच्छन्द उच्यते ।
निर्वाणगुह्यकाल्याख्या देवता परिनिष्ठिता ॥२४७॥
बीजं ब्रह्ममयं कूटं सायुज्यं कीलकं मतम् ।
विनियोगोऽस्य ब्रह्मणि लयने परिकीर्तितः ॥२४८॥

[महानिर्वाणमन्त्रफलकथनम्]

महानिर्वाणनामानं मन्त्रराजं शृणुष्व तम् ।
येन ब्रह्माणमत्येति[7] जन्मनां कोटिशस्तदा[8] ॥२४९॥
कदाचिद्वासनायोगान्निर्वाणाज्जन्मभाग् भवेत् ।
नैवामुना वरारोहे कदाचिदपि तद् भवेत्[9] ॥२५०॥

---

१. तुलनीया कठोपनिषत् २।२।१४ ।
२. ,, ,, २।३।२ ।
३. ,, ,, २।३।१० ।
४. ,, ,, २।३।११ । मोक्ष इत्यस्य स्थाने योग इति तत्र पाठः
५. ,, ,, २।३।१२ ।
६. संभृतः ङ ।
७. मभ्येति ख ।
८. कोटिकोटिशः ङ ।
९. तद् भजेत् ङ ।

[महानिर्वाणमन्त्रोद्धारः]

वेदोपढौकनकरः शब्दकालस्ततः परम् ।
गि[गी?]रुत्पत्तिस्तथा विश्वागमश्च तदनन्तरम् ॥२५१॥
गीर्वाणगेहं निगडं नरकेशरवानतः ।
सृष्टिस्थितीतरत्क्ष्माजं सिद्धा स्त्री रक्तपायिनी ॥२५२॥
रत्नस्रगस्यानुभवेद् दीप्तोच्चं तदनन्तरम् ।
प्रतिमण्डलं च तदनु शृङ्गं सृष्टिस्थितीतरत् ॥२५३॥
संज्ञोच्चं स्वर्णगर्भोच्चं शृङ्गं वाऽपुनरागतिः ।
द्वीपान्ताख्यं ततः शृङ्गं शृङ्गमेकत्वसाधकम् ॥२५४॥
शिखराणामादिभूतं विशेषज्ञानतोच्चकम् ।
वधूः सिद्धा शोणितपा हर्षाधिक्योच्चमेव च ॥२५५॥
युं [पुं?] मृगेन्द्रो ब्रह्मशृङ्गं सुरागारं ततोऽपि च ।
द्वितीययुगभूमीजं वाणीजन्माप्यतः परम् ॥२५६॥
ततोऽभिचारक्ष्माजं च तथा चैवागम[मा?]स्यकम् ।
[1]पापं च ज्ञानसामर्थ्यमङ्कुरद्वितयं ततः ॥२५७॥
त्रयस्त्रिंशद्वर्ण एष महानिर्वाणनामकः ।
किमस्य मम चाकथ्यं महित्वं च फलं प्रिये ॥२५८॥
सैव जानाति देवेशि फलदात्री हि या भवेत् ।
कदाचित् कालयोगेन निर्वाणात् पुनरागतिः ॥२५९॥
नैतेन पुनरावृत्तिः कोटिकोटिविधेरपि ।
आख्यायिका चैतदर्थं पुरैव कथिता मया ॥२६०॥
इयं हि परमा काष्ठा गुह्यकालीमनोः प्रिये ।
अस्याः **शाकलशाखायां** प्रपञ्चः सुमहान् स्मृतः ॥२६१॥
शाकला आश्मरथ्याश्च तथा चैवौडुलोमयः ।
वामदेव्या(वा)वैजवापा वादरायणिनस्तथा ॥२६२॥

---

१. इतः पूर्वं महानिर्वाणशिखरं सर्वशेषाङ्कुरं ततः
इत्यधिकः ख, ङ, छ पुस्तकेषु ।

सर्वे वेदान्तोपनिषज्ज्ञाननिष्ठा यतिव्रताः ।
महानिर्वाणमन्त्रस्योपासकाः परिकीर्तिताः ॥२६३॥
पूर्वमेव फलं चास्य कथितं तव पार्वति ।
आग्रहोऽस्मिन् प्रकर्तव्यः फलश्रुत्यां हि तेन किम् ॥२६४॥
एकीभावो येन हि ब्रह्मणि स्यात्
पुनः पुनर्येन पातो भवे न ।
महानिर्वाणोऽयं मन्त्रराजाधिराजो
मातुर्योनिं जन्ममृत्यू तरन्ति ॥२६५॥
किं वा वेदैः कोटिभिश्चागमानां
किं वेदान्तैः किं तथा सांख्ययोगैः ।
यस्यामुष्मिन् मानसं साध्यलग्नं[1]
तं वै श्रेष्ठं सर्वदेवेषु मन्ये ॥२६६॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
विश्वम्भरा पुण्यवती च तेन ।
अपारसंसारसमुद्रमध्ये
लीनं चेतो यस्य मन्त्रे ह्यमुष्मिन् ॥२६७॥
दारैर्न सिद्धिर्न धनैर्विमुक्तिः
न पुत्रगेहैर्जनिमृत्युनाशः ।
न कामभोगैर्भवभीतिनाश-
स्त्वेवं विदित्वा कुरु यत्नमत्र ॥२६८॥
इत्येष कथितो देवि महानिर्वाणमन्त्रराट् ।
अपुनर्भवमिच्छूनामेष एवावलम्बनम् ॥२६९॥
एकाक्षरादिमारभ्य यावत् स्यादयुताक्षरम् ।
भोगादीनिच्छतां ते स्युर्मोक्षादीन् षडिमे स्मृताः ॥२७०॥
वाग्विसर्गेण बहुना किमायासफलेन च ।
श्रुत्युद्वेगकरेणापि ग्रन्थगौरवकारिणा ॥२७१॥

---

१. साधु लग्नं ख

[1]समासादवधेहि त्वं भक्तो मन्त्रफलं प्रिये।
महानिर्वाणनामानं मन्त्रं जपति योऽन्वहम् ॥२७२॥
न तस्य पुनरावृत्तिः पराद्धैर्ब्रह्मणोऽपि हि।
इत्येष मन्त्रसर्गस्ते कथितः सकलो मया ॥२७३॥

[पञ्चमपटलकथावतारः]

मन्त्राणां यन्त्रभेदांस्तु सांप्रतं कथयामि ते।

इति महाकालसंहितायां
षण् मन्त्रोद्धारो नाम
चतुर्थः पटलः

---

१. इयं पंक्तिः केवलं ङ पुस्तके दृश्यते।

पञ्चमः पटलः

महाकाल उवाच

न जपः स्याद् विना पूजां न पूजा यन्त्रमन्तरा ।
तस्माद् यन्त्रोद्धारमहं कथयामि सुरेश्वरि ॥१॥
मन्त्राणामिह सर्वेषां भिन्नं भिन्नं हि मण्डलम् ।

[यन्त्रमण्डलमहिमा]

यस्य यस्य मनोर्यो यो मण्डलः परिकीर्तितः ॥२॥
स स तेनैव सम्पूज्य एवमाह पुरद्विषः ।
मन्त्रेणान्येन चान्यस्मिन् मण्डले परिपूजिते[1] ॥३॥
सिद्धिहानिस्तथा मृत्युः फलं चापि न जायते ।
तस्मात् तत्तन्मनूनां हि यन्त्रं तत्तत्क्रमाद् ब्रुवे ॥४॥
एकाक्षरादिमारभ्य यावत् स्यादयुताक्षरम्[2] ।
यथोदितं तथा यन्त्रस्यापि देवि प्रकीर्त्यते ॥५॥

[प्रथमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुत्रिकोणषट्कोणवृत्तपञ्चारवर्तुलम् . . ।
षोडशाष्टदलाम्भोजचतुर्द्वाः शूलमुण्डि च[3] ॥६॥
सर्वाद्यं यन्त्रमेतत्ते कथितं परमेश्वरि ।
एकाक्षरत्र्यक्षराणां मन्त्राणां पूजनोचितम् ॥७॥
विधातृकामवरुणोपासितानां प्रकीर्तितम् ।

[द्वितीययन्त्रविवरणम्]

बिन्दुत्रिपञ्चषट्कोणद्वादशच्छदपद्मयुक् ॥८॥
अष्टारवृत्तसंयुक्तं चतुर्द्वारसमन्वितम् ।
अष्टशूलाष्टमुण्डाढ्यं यन्त्रमेतदुदीरितम् ॥९॥

---

१. मण्डलोपरि पूजितः क, । २. ० युताक्षरः ख ।
३. चतुर्द्वार शुमुण्डितम् ख ।

पञ्चाक्षराणां मन्त्राणामर्चनीयं[1] महाफलम् ।
वैश्वानरादितीन्द्राण्युपासितानामिदं मतम् ॥१०॥

[तृतीययन्त्रविवरणम्]

बिन्दुषट्कोणपञ्चारत्रिकोणाष्टदलाब्जयुक् ।
वृत्ताष्टार[2]चतुर्द्वारि वज्रि शूलि च मुण्डि च ॥११॥
अष्टसंख्यान्वितं किन्तु पविरन्तर्गतः प्रिये ।
नवाक्षराणां मन्त्राणां प्रोक्तं यन्त्रमदस्तव ॥१२॥
दानवाली[3] [दि?] मृत्युकालोपासितानां वरप्रदम् ।

[चतुर्थयन्त्रविवरणम्]

सबिन्दुत्र्यारपञ्चारं विभिन्ननवकोणयुक् ॥१३॥
[4]वृत्तयोरन्तरेऽष्टारयुतं तदनु भामिनि ।
वस्वर्कभूपच्छदनाम्भोजवृत्तान्वितं [हि ?] तत् ॥१४॥
अष्टाशनिसमायुक्तमन्तर्बहिरथापि च ।
अष्टशूलाष्टमुण्डाद्यं [ढ्यं?] वह्निज्वालायुतेन हि ॥१५॥
श्मशानेनावृतं शेषे शोणितोदेन वेष्टितम् ।
यन्त्रराजमिदं देवि पूजनाय प्रकल्पितम् ॥१६॥
भरतश्च्यवनश्चापि हारीतश्च जबालजः[5] ।
दक्षश्चैते जनाः पञ्च पूजयन्त्यमुनाम्बिकाम् ॥१७॥

[पञ्चमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुः पञ्चारषट्कोणत्रिकोणनवकोणतः[6] ।
अष्टारवृत्तसहितषोडशच्छदपद्मधृक्[7] ॥१८॥
पुनर्वृत्तान्वितः शेषे पूर्ववत् सकलं प्रिये ।
पूज्योऽयं रामयक्षेशनाहुषाणां वरानने ॥१९॥

---

१. मर्चनाय ख, घ, ङ । २. वृत्ताष्टरे चतुर्द्वारि ख । ३. दानवानां ख ।
४. वृत्तयोरन्तरेऽष्टार इत्यनन्तरं पञ्चदशतमश्लोकपूर्वार्द्धं यावत् क पुस्तके न दृश्यते ।
५. जावालिजः क जबालकः ख । ६. कोणगः ख, घ, ङ ।
७. पद्मयुक् ख, घ ।

[ऊर्ध्वनिर्दिष्टयन्त्रपञ्चकस्य पञ्चचक्रेति परिभाषिकी संज्ञा]

नवपञ्चचक्रनिलयेत्येवं यत्प्रोच्यतेऽम्बिका ।
पञ्चचक्रमिदं तत्र तव देवि मयोदितम् ॥२०॥

[षष्ठयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुत्रिकोणौ पञ्चारषट्कोणौ वृत्तमेव च ।
अष्टारनवकोणौ च षोडशाष्टच्छदाम्बुजे ॥२१॥
वृत्तं पुनर्भारती च वज्रशूलशिरांसि हि ।
हिरण्यकशिपूपास्यमनोर्यन्त्रमिदं स्मृतम्[1] ॥२२॥

[सप्तमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुत्रिकोणषट्कोणनवकोणा यथाक्रमम् ।
वर्तुलाष्टारपञ्चारद्वादशाष्टदलाम्बुजम्[2] ॥२३॥
तदन्ते पूर्ववत् सर्वं यन्त्रेऽमुष्मिन् वरानने ।
सप्तदश्या इदं ब्रह्मोपासितायास्तु मण्डलम् ॥२४॥
विष्णुतत्त्वाभिधस्यापि पञ्चाक्षरमनोरिदम् ।

[अष्टमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुवृत्तं त्र्यारवृत्तं षट्कोणं वर्तुलं ततः ॥२५॥
नवकोणं वर्तुलं च षोडशाष्टदलाम्बुजे ।
वज्रहीने शूलमुण्डे देये तदनु भामिनि ॥२६॥
न श्मशानं ज्वलद्वह्नि किन्तु रक्तार्णवो भवेत् ।
वासिष्ठसप्तदश्याश्च प्रोक्तं मण्डलमीदृशम् ॥२७॥

[नवमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुपञ्चारषट्कोणाष्टारं त्र्यारं च वर्तुलम् ।
षोडशद्वादशवसुदलाम्बुजसमन्वितम् ॥२८॥
पुनर्वृत्तं मुण्डमन्तर्बहिः शूलं गताशनि ।
सप्रज्वलद्वह्निपितृवनरक्ताब्धिलोलितम् ॥२९॥

---

१. मतम् क । २. दलाम्बुजे क ।

अम्बाहृदयनाम्नोऽदो मण्डलं कथितं मनोः ।
[1]रावणोपासितायाश्च सप्तदश्या इदं मतम् ॥३०॥
चत्वारि चक्राण्येतानि पूर्वोक्तानि च पञ्च च ।
[एतत्समष्टे नवपञ्चचक्रेति पारिभाषिकी संज्ञा]
मिलित्वा स्युर्नवैतानि नवपञ्चाभिधान्यतः ॥३१॥

[दशमयन्त्रविवरणम्]

[2]अतो निशामय महाषोडश्या यन्त्रमुत्तमम् ।
महारुद्राराधिता या गुप्ता या यामलादिषु ॥३२॥
आदौ बिन्दुस्ततस्त्र्यारं वर्तुलं तदनन्तरम् ।
दत्वा तदनु पञ्चारं षट्कोणं तदनन्तरम् ॥३३॥
पुनरष्टारमस्यानु नवकोणमुदाहृतम् ।
पुनर्वृत्तत्रयं दत्वा पुनरष्टारमिष्यते ॥३४॥
ततः परं चतुर्विंशषोडशद्वादशाष्टभिः ।
दलैः क्लृप्तानि पद्मानि त्रीणि देयानि पार्वति ॥३५॥
कोणेष्वष्टाशनियुत[3]मन्तस्तत्र चतुर्ष्वपि ।
बहिर्मुण्डचतुष्केण[4] शूलैरष्टभिरन्वितम् ॥३६॥
चतुर्द्वारान्वितं तेषु चतूरारसमन्वितम् ।
शूलाग्रेष्वष्टसु बहिश्चतुःकोणस्थितेषु हि ॥३७॥
डाकिनीभिस्तथाष्टाभिरन्वितं कमलानने ।
चतुर्मुण्डं बहिर्मुण्डं[5] मुण्डे योगिनि राजितम् ॥३८॥
प्रज्वलत्पावकोद्दामश्मशानपरिवेष्टितम् ।
कल्लोलितासृगुदधिसंवेष्टितमतः परम् ॥३९॥
वज्रैरष्टभिरून्नं हि ज्ञेयमन्तः सुरेश्वरि ।
महारुद्रोपासितायाः षोडश्या यन्त्रमीरितम्[6] ॥४०॥

---

१. च्यवनोपासितायाश्च ख । २. अथो क, ङ ।
३. कोणेष्वष्टाशीतियुतं [?] क । ४. बहिर्मुण्डचतुष्कोण क, ख ।
५. बहिस्तुण्डं क । ६. यन्त्रमीदृशम् ख, घ, ङ, छ ।

[एकादशतमयन्त्रविवरणम्]

विश्वेदेवाराधिता या षोडशार्णा पुरोदिता ।
तस्या यन्त्रं साम्प्रतं ते कथयामि विशेषत: ॥४१॥
त्र्यारगौ बिन्दुपञ्चारौ नवारं तदनन्तरम् ।
वृत्ताष्टारौ ततो दत्वा षट्कोणं तदनु स्मृतम् ॥४२॥
परिदाय[1] ततो वृत्तं पुनरष्टारमेव च ।
षोडशाष्टद्वादशकदलैर्युग्[2] जलजान्वितम् ॥४३॥
पुनर्वृत्तं कोणसंस्थमन्तर्वज्राष्टकं पुन: ।
चतुर्मुण्डाष्टशूलाद्यं बहिश्चापि सुरेश्वरि ॥४४॥
पूर्ववच्च श्मशानेन रक्तोदेनापि वेष्टितम् ।
अदो यन्त्रं षोडशार्णापूजनार्थमुदाहृतम् ॥४५॥

[द्वादशतमयन्त्रविवरणम्]

रक्ष:[5]षट्त्रिंशदक्षर्या यन्त्रं समवधारय ।
यत्पूजनेन देवानामाराध्यत्वमुपेयिवान् ॥४६॥
बिन्दुषट्कोणपञ्चारवृत्ताष्टारत्रिकोणयुक् ।
नवारवृत्ते तदनु द्वात्रिंशद्दलमम्बुजम्[3] ॥४७॥
ततो द्वादशपत्राख्यं षोडशच्छदनं बहि: ।
[4]पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारं शाकिनीशोभितान्तरम् ॥४८॥
अष्टशूलचतुर्मुण्डविराजितपदं बहि: ।
ज्वलच्छ्मशानसंशोभिरक्तोदरहितं प्रिये ॥४९॥

[त्रयोदशतमयन्त्रववरणम्]

बिन्दुषट्कोणपञ्चारत्रिकोणाष्टारसंयुतम् ।
पुनर्वृत्तनवारौ च पुनर्वृत्तस्य पञ्चकम् ॥५०॥
अष्टषोडशद्वात्रिंशद्दलाब्जानि तत: परम् ।
पुनर्वृत्तत्रयं दत्वा चतुर्द्वारं विधापयेत्[6] ॥५१॥

---

१. परिधाय ख ।
२. ० युंतं क ।
३. ० मम्बुजे क ।
४. इत: पंक्तिचतुष्टयं ख पुस्तके नास्ति ।
५. वक्ष्ये षट्त्रिंश० घ ख ।
६. निधापयेत् घ ।

पूर्ववन्मुण्डशूलानां श्मशानासृगुदन्वता ।
समाजस्तत्र कर्तव्यः प्रिये कुलिशमन्तरा[१] ॥५२॥
अष्टपञ्चाशदर्णाढ्या या प्रोक्ता जयमङ्गला ।
तस्य मन्त्रस्य यन्त्रं हि कथितं तव सुन्दरि[२] ॥५३॥
अनेनाराधयन्[३] मन्त्रं जयं मङ्गलमाप्नुयात् ।
अतः प्रकाशिता देव्या नाम्नेयं जयमङ्गला ॥५४॥

[चतुर्दशतमयन्त्रविवरणम्]

इदानीं भोगविद्याया यन्त्रं समवधारय ।
सिद्धिः स्यात् सर्वभोगानां यस्मिन् यन्त्रे प्रपूजिते ॥५५॥
बिन्दुत्रिकोण[४]षट्कोणत्र्यारपञ्चारसंयुतम् ।
पुनस्त्रिवृत्तमष्टारं त्रिकोणं तदनन्तरम् ॥५६॥
नवकोणं पुनर्दत्वा षोडशच्छदमम्बुजम्[५] ।
पुनरष्टदलाम्भोजं चतुर्विंशदलं ततः ॥५७॥
त्रिभिर्वृत्तैश्च संवेष्ट्य चतुर्द्वारमतः परम् ।
कामबीजं लिखेत्तेषु कोणेष्वन्तः पवीन्[६] लिखेत् ॥५८॥
[७]चत्वारि मुण्डानि बहिः शूलान्यष्टौ तथा लिखेत् ।
लक्ष्मीमग्रेषु शूलानां मुण्डानां कामिनीमपि ॥५९॥
पूर्ववच्च श्मशानेन रक्तोदेनापि वेष्टितम् ।
महायन्त्रमिदं नाम्ना ख्यातं भुवनमोहनम् ॥६०॥
अनेन भोगमाप्नोति भोगविद्यामनुं जपन् ।
सहासदृष्टिपातैश्च मोहयत्यपि कामिनीः ॥६१॥

[पञ्चदशतमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुत्रिवृ[८]त्तषट्कोणाष्टारपञ्चारवर्तुलाः ।
षोडशच्छदमम्भोजं जिनच्छदमतो बहिः ॥६२॥

---

१. कुलिशसंभवा ख, घ । २. संहृदि क ।
३. ० नाराधयेन् ख घ । ४. त्रिवृत्त क ।
५. मम्बुजे क । ६. पुनर्लिखेत् ख, घ ।
७. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति । ८. त्रिकोण क ।

ततः पुनस्त्रिवृत्तं च चतुर्द्वारोपशोभितम् ।
अष्टशूलचतुर्मुण्डं बहिःकोणप्रकल्पितम् ॥६३॥
ततः श्मशानरक्तोदौ दातव्यौ पूर्ववत् प्रिये ।
गुह्येश्वरीशताक्षर्या इदं यन्त्रं फलप्रदम् ॥६४॥
अस्मिन् प्रपूजयेद्देवि विंशत्यास्यां महेश्वरीम् ।

[षोडशतमयन्त्रविवरणम्]

सहस्राक्षरिके मन्त्रे त्रिंशद्वक्त्रा हि कालिका ॥६५॥
तस्या यन्त्रं प्रवक्ष्यामि तत्र चेतो निवेशय[1] ।
बिन्दुवृत्तं त्रिकोणं च पञ्चारं वृत्तमेव च ॥६६॥
षट्कोणाष्टारवृत्तं[2] च नवकोणं च वर्तुलम् ।
वस्वर्कषोडशद[3]लैः द्वात्रिंशच्छदभाञ्जि हि ॥६७॥
पद्मानि तत्र देयानि ततः परमधीश्वरि ।
एषामनु च तत्रैव देयं वर्तुलपञ्चकम् ॥६८॥
द्वारश्चतस्रो [4]रावाढ्यास्ततो देयाः सुरेश्वरि ।
[5]अन्तःकोणेषु पवयोऽष्टौ च देयाश्चतुर्ष्वपि ॥६९॥
मायाशनीनां मूर्ध्नि स्याद् बहिःशूलाष्टकैर्युतम् ।
वह्द्भिः शाकिनीं मूर्ध्नि प्रत्येकं परमेश्वरि ॥७०॥
तस्यानु मुण्डप्राकारोऽस्य श्मशानमनूद्यते ।
प्रज्वलत्पावकज्वालं ततो रक्तार्णवः प्रिये ॥७१॥
सम्पूर्णं मण्डलं ह्येतत्[6] तव देवि मयोदितम् ।
ख्यातं नवनवार्णायाः पूजने फलदायि च ॥७२॥

[सप्तदशतमयन्त्रविवरणम्]

विष्णूपास्यायुतार्णस्य सांप्रतं वच्मि मण्डलम् ।
अशेषपापदलनं[7] श्रवणेनैव पार्वति ॥७३॥

---

१. निशामय ख । २. ० वृत्ते च क ।
३. वस्वर्कषोडशजिन द्वात्रिंशच्छदभाञ्जि च ख, घ, छ । ४. भोगाद्याः ख ।
५. अतः कोणेषु पञ्चमोऽष्टौ क ।
६. इतः आरभ्य ७३ तम श्लोकस्य द्वितीयचरणं यावत् क पुस्तके न दृश्यते।
७. हरणं ख, घ ।

बिन्दुरर्द्धंविधोर्मूर्ध्नि त्रिपञ्चारमतः परम् ।
वृत्तं नवारषडरमष्टारं तदनन्तरम् ॥७४॥
नव वृत्तानि देयानि ततोऽनन्तरमीश्वरि ।
दन्तैर्जिनैर्नृपैः सूर्यैर्नगैः यन्त्राङ्क[1]चिह्नितैः ॥७५॥
पद्मैरावेष्टितं पश्चात् त्रिभिर्वृत्तैस्ततः परम् ।
चतुर्द्वार्मुण्डशूलाष्टराजितं [2]तन्निरक्षरम् ॥७६॥
श्मशानमुण्ड[3]प्राकाररक्तोदैः परिवेष्टितम् ।
उक्तं पूर्वायुताक्षर्याः यन्त्रं कमललोचने ॥७७॥

[अष्टादशतमयन्त्रविवरणम्]

मदुपास्यायुतार्णस्य[4] यन्त्रं जानीहि साम्प्रतम् ।
सर्वेभ्यो मण्डलेभ्योऽदो मुख्यं गुप्तं महत्तरम् ॥७८॥
नातः परतरं यन्त्रं भूतं वा भावि वा प्रिये ।
सर्वे मन्त्रा यथा तस्मिंस्तिष्ठन्त्येकत्र वृंहिताः ॥७९॥
तथा सर्वाणि यन्त्राणि तिष्ठन्त्यत्र न संशयः ।
बिन्दुः सेन्दू रावशीर्षे वृत्तैः पञ्चभिरावृतः ॥८०॥
पञ्चाराष्टारसंयुक्तस्ततः परमपि प्रिये ।
युक्तस्ततस्त्रिभिर्वृत्तैस्त्रिकोणेन ततः परम् ॥८१॥
पुनर्वृत्तत्रयेणाद्यः षट्कोणेन ततः परम् ।
वर्तुलैस्त्रिभिरस्यानु नवकोणैस्ततोऽप्यनु ॥८२॥
ततो नु पञ्चभिर्वृत्तैरावृतः स हि पार्वति[5] ।
पुनः संवेष्टितः कार्यः पूर्ववत् पद्मपञ्चकैः ॥८३॥
चतुर्द्वार्मुण्डशूलाद्य[ढ्य ?]स्तादृक्पितृवनान्वितः ।
मुण्डप्राकाररुधिरसागराभ्यामथावृतः ॥८४॥
यन्त्रराजोऽयमुदितश्चतुर्वर्गैकसाधकः ।
अनेनैव हि यन्त्रेण मया साराधिताम्बिका ॥८५॥

---

१. पत्राङ्कचिह्नितै ख, घ, छ । २. चतुरक्षरम् क ।
३. श्मशानतुण्डप्राकार ० क । ४. मदुपास्यायुताक्षर्या क ।
५. पञ्चभिर्वर्तुलैर्वृत्तैरावृतः स हि पार्वति ख घ ।

प्राप्तं देवाधिपत्यं च सर्वज्ञत्वमथापि च ।
इत्यष्टादश यन्त्राणि कथितानि मया तव ॥८६॥
गृहिणामुपयोगाय भवन्ति फलदानि हि ।

[शाम्भवादिषण्मन्त्राणां पूजानिषेधः]

मन्त्राणां शाम्भवादीनां [1]षण्णां वै केवलो जपः ॥८७॥
प्रत्यहं भिक्षुभिः कार्यो न तु पूजा कदाचन ।

[शाम्भवादिषण्मन्त्रजपे गृहिणामनधिकारः]

नैषां तत्राधिकारोऽस्ति ब्रह्मशासनमीदृशम् ॥८८॥

[पुनः मुमुक्षोर्गृहस्थस्य कृते षट्सु शाम्भवादिमन्त्रेषु अधिकारविशेषः]

उपास्यन्ते कदाचिच्चेत् गृहिणा मनवो हि ते ।
तदा तेषां पूजनार्थं त्रिपुरघ्नेन वै पुरा ॥८९॥

[निर्दिष्टषण्मन्त्राणां यन्त्रप्रकारवर्णनम्]

षण्णां[2] तेषां मनूनां हि यन्त्राणि कथितानि च ।
गृहस्थैस्तेन[3] यन्त्रेण पूज्याराध्या च भक्तितः ॥९०॥

[ऊनविंशतमयन्त्रविवरणम् ।]

बिन्दुस्त्रिकोणषट्कोणनवकोणान्तरस्थितः ।
[4]त्रिवृत्तावेष्टितस्तत्त्वदलाम्बुजसमावृतः ॥९१॥
सवेदादिचतुर्द्वारमण्डितः परिवर्जितः ।
मुण्डत्रिशूलदम्भोलिश्मशानरुधिरार्णवैः ॥९२॥
इदं शाम्भवमन्त्राराधनायोक्तं पुरारिणा ।

[विंशतितमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुरष्टारमध्यस्थस्तद्बहिस्त्रिनवारकौ ॥९३॥
त्रिवृत्तषोडशाम्भोजसतारद्वाश्चतुर्युतः ।
बहिः सायुज्यबीजाढ्यः कोणेषु हि चतुर्ष्वपि ॥९४॥

---

१. तेषां ख ।
२. यस्मात् क ।
३. ततस्तैस्तेन ख घ ।
४. विवृत्तावेष्टितः ? क ।

महाशाम्भवमन्त्रस्य यन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ।

[एकविंशतितमयन्त्रविवरणम्]

संपूर्णबिन्दुरर्धेन्दुबिन्द्वष्टकविराजितः ॥९५॥
पञ्चवृत्तस्त्रिरावृत्तिमध्यतारावलीयुतः ।
साष्टारः षोडशदलसरसीरुहवेष्टितः ॥९६॥
[1]अन्तश्चतसृषु द्वाःसु बहिःकोणेषु च प्रिये ।
क्रमेणैव प्रदातव्ये बीजे ब्रह्मनिरञ्जने ॥९७॥
इदं यन्त्रं तुरीयायास्त्रिपुरघ्नेन कीर्तितम् ।

[द्वाविंशतितमयन्त्रविवरणम्]

सबिन्दुरन्तःप्रणवस्त्रिवृत्त[2]परिवेष्टितः ॥९८॥
स जन्ममृत्युहरणस्तत्र मध्यस्थवर्तुलः[3] ।
बहिरष्टारावृतोऽसौ स चान्तर्ब्रह्मसंयुतः ॥९९॥
अष्टच्छदाम्बुजद्वन्द्वपरिवेष्टितविग्रहः ।
[4]तुरीयया चतुर्द्वारकोणयोर्बहिरूर्जितः ॥१००॥
महातुरीयानामेदं यन्त्रं समुपवर्णितम् ।

[त्रयोविंशतितमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुस्त्रितयवृत्ताक्तः पुनर्वेदादिवेष्टितः ॥१०१॥
पुनस्त्रिवृत्तस्तस्यानु ब्रह्मणा परिमण्डितः ।
पुनस्त्रिवर्तुलस्यान्ते सायुज्यपरिबृंहितः ॥१०२॥
पुनर्वृत्तत्रयस्यान्ते चतुर्विंशदलाम्बुजम् ।
चतुर्विंशतितत्त्वानां बीजं तत्तद्दलेऽर्पयेत् ॥१०३॥
शाम्भवं हि चतुर्द्वाःसु मध्य एव निवेशयेत् ।
तत्तत्क्रमेण देवेशि चिच्छक्तिः कोणगा बहिः ॥१०४॥
देवि निर्वाणनाम्नेदं यन्त्रं ख्यातं महीतले ।

[चतुर्विंशतितमयन्त्रविवरणम्]

बिन्दुस्त्रिवृत्तसंविष्टस्त्रिकोणेनावृतस्ततः ॥१०५॥

---

१. अन्ते चतसृषु ख घ ।
२. प्रणवत्रिवृत्त ? ख ।
३. वर्तुले ख, वर्तुलं घ ।
४. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति ।

पञ्चवृत्तावृतः कार्यः षट्कोणेन ततः परम् ।
सप्तवृत्तावृतः पश्चादष्टारेण ततः परम् ॥१०६॥
नववृत्तावृतः पश्चात् षडम्बुजसमावृतः ।
वस्वर्कभूपालजिनदन्तषड्त्रिंशपत्रकैः ॥१०७॥
युक्तानि तानि पद्मानि पुनर्वृत्तानि चै नव ।
ह्रीनैर्बीजानि चत्वारि द्वाराणि तदनन्तरम् ॥१०८॥
महानिर्वाणनाम्नेदं ख्यातं यन्त्रं सुगोपितम् ।
नातः परतरं यन्त्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१०९॥
अनेनाराधयेद्देवीं महानिर्वाणनामिकाम्[1] ।
चतुर्विंशतियन्त्राणि मया ते कथितानि हि ॥११०॥
गुह्यकाल्याः मनूनां हि सर्वेषां यन्त्रपूजनम् ।
साङ्गं भवति देवेशि सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥१११॥
सर्वेष्वेव हि यन्त्रेषु बिन्दुरावश्यको भवेत् ।
यथा सर्वेषु मन्त्रेषु शाकिनीबीजमिष्यते ॥११२॥
तथा सर्वेषु यन्त्रेषु बिन्दुस्तिष्ठति सर्वथा ।
न शाकिनी यत्र देवि तत्रावश्यं हि डाकिनी ॥११३॥
अन्तर्भावो हि डाकिन्यां शाकिन्या वर्तते ध्रुवम् ।
अस्मिन्नर्थे पुरा प्रोक्तं त्रिपुरघ्नेन वै वचः ॥११४॥
न बिन्दुमन्तरा यन्त्रं न मन्त्रो रावमन्तरा ।
न शक्तिमन्तरा जापो न पूजा बलिमन्तरा ॥११५॥
इत्येतत् कथितं यन्त्रं समस्तं[2] तव पार्वति ।
ज्ञायतां मण्डलं तत्तन्मन्त्राणां तैरपि क्रमैः ॥११६॥
येन क्रमेण यन्त्राणि मया ते कथितानि हि ।

[निर्दिष्टसकलमनूपास्यायास्तान्त्रिकगायत्र्युद्देशः]

तेन क्रमेण सर्वेषां गायत्रीमधुना ब्रुवे ॥११७॥
यस्य यस्य हि मन्त्रस्य यद् यद् यन्त्रं प्रकीर्तितम् ।
तत्तद्यन्त्रेण चाराध्यः स स मन्त्रो यथा प्रिये ॥११८॥

---

१. नामिकीम् ख घ । २. सष्टमं क, सप्तमं ङ ।

तथैव यस्य मन्त्रस्य या गायत्री प्रकीर्तिता ।
तया स मन्त्रः संजप्यो नान्यया वै कदाचन ॥११९॥
महान् दोषः कृते हि स्यादेवं रुद्रानुशासनम् ।
मृत्युः पुत्रादिनाशश्च दारिद्र्यं राजबन्धनम् ॥१२०॥

[गायत्रीनिर्माणस्य सामान्यनियमः]

महानिर्वाणमवधि आरभ्यैकाक्षरं मनुम् ।
क्रमेण वक्ष्ये गायत्रीं तत्तन्मन्त्रजपाय हि ॥१२१॥
त्रिपदा सा च विज्ञेया त्रिकर्तृपदिकापि च ।
पदद्वयं ङेऽन्तमादौ शेषे चैकं सुबन्तकम् ॥१२२॥

[गायत्रीनिर्माणे विशेषनियमः]

त्रिकर्तृपदिकस्यापि विशेषं वच्मि कञ्चन ।
सर्वादौ विद्महेत्येवं मध्ये धीमहि चेत्यपि ॥१२३॥
सुबन्तीयपदस्यानु पदमेवं प्रचोदयात् ।
तत्पूर्वं तन्न इत्येवमित्युद्धारो मयोदितः ॥१२४॥
सर्वाद्ये स्यात् क्वचिद् बीजं क्वचिन्नैव च पार्वति ।
विशेषस्तत्र तत्रैव प्रतिपाद्यो मयैव ते ॥१२५॥

[एकाक्षरमन्त्रोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

मायाबीजं भगवती महामाया ततः परम् ।
रौद्रीत्येकाक्षरमनोर्गायत्री परिकीर्तिता ॥१२६॥[1]

[कामोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

कामादनङ्गाकुला च भगमालिन्यतः परम् ।
चण्डा शेषे पञ्चशरोपासितत्र्यक्षरीमनोः[2] ॥१२७॥

[वरुणोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

आदौ लम्बोदरी ज्ञेया वेगमाला ततः परम् ।
सृष्टिः शेषे च वरुणोपासितत्र्यक्षरीमनोः ॥१२८॥

---

१. इतः पंक्तिद्वयं ख पुस्तके नास्ति । २. त्र्यक्षरी मता ख घ।

[अनलोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

कूर्चबीजाच्चण्डघण्टा ज्वालामालिन्यतः परम् ।
प्रभा शेषेऽनलोपास्यपञ्चाक्षरमनोरियम् ॥१२९॥

[सूर्योपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

योगिनीतो महाघोरा भद्रकाली ततः परम् ।
शेषे विरूपादित्यर्कपञ्चाक्षरमनोरियम् ॥१३०॥

[शच्युपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

कात्यायनी चण्डिका च शेषे भीमापदं भवेत् ।
इन्द्राण्युपास्यपञ्चार्णगायत्री परिकीर्तिता ॥१३१॥

[दानवोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

डाकिन्यर्णात् कटकटा कराला तदनन्तरम् ।
चामुण्डा, दानवोपास्यनवाक्षरमनोरियम् ॥१३२॥

[मृत्युकालोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

प्रणवात् कालरात्रिश्च कालसंकर्षिणी ततः ।
शेषे काली मृत्युकालोपासिता त्रि पदा[1] त्वियम् ॥१३३॥

[भरतोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

रावात् कापालिनी सिद्धिकराली तदनन्तरम् ।
शेषे गुह्या भारतीयषोडशार्णस्य वै मनोः ॥१३४॥

[च्यवनोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

करालिनी वधूबीजान्मुण्डमालिन्यतः परम् ।
देवी भवेत् सर्वशेषे गायत्री च्यावनी त्वियम् ॥१३५॥

[हारीतोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

फेत्कारिण्युग्रचण्डा च विकटदंष्ट्रा ततः परम् ।
शेषे चण्डी च हारीतोपासिता त्रि पदा मता ॥१३६॥

[जाबालोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

आदावुग्रायुधा[2] ज्ञेया ततोऽनु च दिगम्बरा ।
शेषे श्यामा च जाबालोपासितस्य मनोरियम् ॥१३७॥

---

१. द्रुपदा त्वियम् ख घ ङ छ । २. आदावुग्रा सुधा ? ज्ञेया क ङ ।

[दक्षोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

त्रिशूलिनी प्रथमतस्ततोऽनु च महोदरी ।
ततोऽनु भीषणा दक्षोपासिता परिकीर्तिता ॥१३८॥

[रामोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

अट्टाट्टहासिनी ह्यादौ घोरदंष्ट्रा ततः परम् ।
शेषेऽघोरा रामचन्द्रोपासिता त्रिपदा स्मृता ॥१३९॥

[हिरण्यकशिपूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

उल्कामुखी ततः कालान्तका शेषे च तामसी ।
हिरण्यकशिपूपास्या गायत्री तव वर्णिता[१] ॥१४०॥

[ब्रह्मोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

वज्राङ्गा कुरुकुल्ला च शेषे संहारिणी तथा ।
ब्रह्मणाराधिता या हि गायत्री प्रतिपादिता ॥१४१॥

[वसिष्ठोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

हारान्महाकौलिनी च भीमदंष्ट्रा ततः परम् ।
शेषे कोका च वासिष्ठसप्तदश्याः प्रकीर्तिता ॥१४२॥

[विष्णुतत्त्वमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

कुलकुट्टन्यादिभूता केकराक्षी ततोऽप्यनु ।
शक्तिः शेषे विष्णुतत्त्वगायत्री सिद्धिदायिनी ॥१४३॥

[अम्बाहृदयमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

अनाख्यानु च चैतन्यमयी भासा च पश्चिमे ।
अम्बाहृदयमन्त्रस्य गायत्री सर्वसिद्धिदा ॥१४४॥

[रुद्रोपास्यायाः—उत्तराम्नायगोपितायाः गायत्र्युद्देशः]

जालन्धरा कर्णिकातो भीषणा तदनन्तरम् ।
महामारी चापि महाषोडशी[२] रुद्रसेविता ॥१४५॥

[विश्वेदेवोपास्यायाः—त्रयोदशास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

अभया सिद्धिदा चापि गौरी च तदनन्तरम् ।
विश्वेदेवोपासितेयं षोडशार्णा महाफला ॥१४६॥

---

१. कीर्तिता ख घ । २. महामाया ख ।

[सप्तदशार्णायाः रावणोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

कृत्याबीजोत्तरं देयोन्मत्ता पिङ्गजटा ततः ।
शेषे फेरुः सप्तदशी रावणोपासिता मता ॥१४७॥

[षट्त्रिंशदक्षर्याः रावणोपास्यायाः गायत्र्युद्देश]

आदौ फेत्कारिणी नाम न तु बीजं वरानने ।
ततो महायोगिनी च कुक्कुटी तदनन्तरम् ॥१४८॥
षट्त्रिंशदक्षरी चेयमपि रावणसेविता ।

[अष्टपञ्चाशदक्षरोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः, इयं जयमंगलानाम्नी गायत्री]

भोगबीजात् जयपदाऽमङ्गला तदनन्तरम् ॥१४९॥
चण्डयोगेश्वरीमध्ये सिद्धिदा शैषिकं पदम् ।
विविच्य तुभ्यं कथिता गायत्री जयमङ्गला ॥१५०॥

[भोगविद्यामन्त्रोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

महालक्ष्मीस्ततो भोगप्रदा पद्मा ततः परम् ।
इत्येषा भोगविद्याया गायत्री देवि विश्रुता ॥१५१॥

[शताक्षरमन्त्रोपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

आप्यायिनी देवि मनोन्मनी[1] गुह्येश्वरी ततः ।
शताक्षर्यास्तु गायत्री विख्याता यामलादिषु ॥१५२॥

[सहस्राक्षरमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

भैरवी चण्डपदतो लोलजिह्वा ततः परम् ।
धूम्रा शेषे सहस्रार्णा गायत्र्येषा प्रकीर्तिता[2] ॥१५३॥

[विष्णूपास्यायुताक्षरमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

आदौ महाखेचरी स्यात् व्योमकेशी ततः परम् ।
पालिनी सर्वशेषे च विष्णूपास्यायुताक्षरी ॥१५४॥

[शिवोपास्यायुताक्षरमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

अपमृत्युविनाशिन्यादौ स्यात् कामाङ्कुशा ततः ।
शेषे नीला ममोपास्यायुतार्णा कथिता मया ॥१५५॥

---

१. मदोन्मनी ख घ । २. प्रतिष्ठिता ख घ ।

[शाम्भवमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

आनन्दा च कलातीता चेतना तदनन्तरम् ।
इयं शाम्भवमन्त्रस्य गायत्री प्रतिपादिता ॥१५६॥

[महाशाम्भवमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

ज्योतिर्मयी निर्गुणा च शुद्धा शेषे वरानने ।
महाशाम्भवमन्त्रस्य गायत्र्येषा प्रकीर्तिता ॥१५७॥

[तुरीयामनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

भावाभासा निष्प्रपञ्चा बोधरूपा ततो भवेत्[1] ।
इयं तुरीया गायत्री ऋग्वेदे कथिता प्रिये ॥१५८॥

[महातुरीयामनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

अनिन्द्रिया ज्ञानरूपा निष्कैवल्या ततोऽपि च ।
महातुरीया गायत्री यजुर्वेदे प्रकाशिता ॥१५९॥

[निर्वाणमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

विरजा चित्कला चापि सत्त्वा च तदनन्तरम् ।
इयं निर्वाणगायत्री सामवेदोदिता प्रिये ॥१६०॥

[महानिर्वाणमनूपास्यायाः गायत्र्युद्देशः]

अद्वया[2] स्याद्देवि महानिर्वाणा तदनन्तरम् ।
अमृता[3] सर्वशेषे स्यान्महानिर्वाणकृन्मनोः ॥१६१॥
इत्येताः कथिता देवि गायत्र्यः सिद्धिदायिकाः ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां भिन्ना भिन्ना भवन्ति हि ॥१६२॥
पृथक्पृथक्तया तस्मात् क्रमेणामूः मयोदिताः[4] ।
त्रिपुरघ्नेनैतदर्थं यदुक्तं तन्निशामय ॥१६३॥
न गायत्रीं विना सन्ध्या न सन्ध्यामन्तरार्हणा ।
नवार्हणां विना भक्तिर्न मुक्तिर्भक्तिमन्तरा ॥१६४॥

---

१. ततः परम् ख घ ।
२. अद्वयाद्देवि ख घ ।
३. अद्वया ख घ ङ ।
४. मयेरिता ङ ।

येन क्रमेण मन्त्राणामुद्धारो दर्शितो मया।
ऋषिच्छन्दःप्रभृतयो यया रीत्या च दर्शिताः ॥१६५॥
[1]परिपाट्या यया यन्त्रसमुद्धारः प्रदर्शितः।
अनुक्रमण्या च यया गायत्र्यः प्रतिपादिताः ॥१६६॥

[सकलमनूनां षडङ्गन्यासप्रकरणम्]

षडङ्गन्यासमखिलं वक्ष्ये मर्यादया तया।
भिन्नो भिन्नः षडङ्गानां न्यासः सर्वस्य वै मनोः ॥१६७॥

[षडङ्गन्यासस्य सामान्यनियमः]

केषाञ्चिन्मन्त्रवर्णैः स्यात् केषाञ्चिदपि चापरैः।
बीजकूटोपकूटास्त्रवर्णनाड्यापगादिभिः ॥१६८॥
विशेषतस्तद् विज्ञाय गुरूणां सम्प्रदायतः।
करन्यासाङ्गविन्यासौ कुर्वीत प्रयतः सदा ॥१६९॥
कराङ्गन्यासयोर्मन्त्र एक एव हि पार्वति।
नमो मन्त्रोऽङ्गुष्ठहृदोः स्वाहा तर्जनिशीर्षयोः[2] ॥१७०॥
वषट् शिखामध्यमयोर्वर्मानामिकयो रुषा।
कनिष्ठादृक्त्रये वौषट् करपृष्ठास्त्रयोश्च फट् ॥१७१॥
एवं सर्वत्र नियमः पुरैव प्रतिपादितः।

[एकाक्षरमनोः षडङ्गन्यासः]

सिद्धकालीहयग्रीवधर्मतार्क्ष्याः[3] क्रमेण हि ॥१७२॥
गौर्यन्ताः प्रणवाद्याश्च रावैकार्णमनोरयम्।

[कामोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

केशरः काकिनी[4] नेमिश्छन्दो विश्वस्तथैव च ॥१७३॥
मन्त्वर्णत्रितयं शेषे कामोपास्यमनोरयम्।

[वरुणोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

निद्रा तथा योगिनी च पूर्णा धूम्रस्ततः परम् ॥१७४॥

---

१. इयं पंक्तिः ख पुस्तके नास्ति।
२. ० शेषयोः क, तर्जनीशीर्षयोः वषट् ख, घ।
३. धर्मलक्ष्म्यः क।
४. कामिनी क।

ललिता च निवृत्तिश्च पाश्युपास्यमनोरसौ ।

[अनलोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

पावकोपासितायास्तु विशेषो ह्यवधार्यताम् ॥१७५॥
तारः सिद्धिकराली[1] च ङेऽन्ताङ्गुष्ठहृदोर्भवेत् ।
रावस्तथा ङेऽन्तसिद्धिविकराली ततः परम् ॥१७६॥
कूर्चो ङेऽन्ता चण्डयोगेश्वरी च तदनन्तरम् ।
वह्निकान्ता कालसङ्कर्षिणी ङेऽन्ता ततोऽप्यनु ॥१७७॥
बीजत्रयं मनोराद्यं[2] वज्रकापालिनी तथा ।
ङेऽन्ता, ततो मनुः सर्वो गुह्यकाली च तादृशी ॥१७८॥
ईदृग्विधो विशेषो हि पावकेष्टमनोः प्रिये ।

[अर्कोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

एकैकं क्रमतो बीजं समस्तैरपि पश्चिमे ॥१७९॥
आदित्याराधितमनोर्न्यास एष मयोदितः ।

[शच्युपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

माया ङेऽन्ता चोग्रकाली प्रथमा परिकीर्तिता ॥१८०॥
योगिनी कालकाली च ङेऽन्ता तदनु भामिनि ।
कूर्चः कृतान्तकाली च ङेऽन्ता तस्याप्यनुस्मृता ॥१८१॥
वधूः संहारकाली च ङेऽन्ता [3]रावयुता ततः ।
काली कालान्तकपदाङ् ङेऽन्ता मन्त्रोऽखिलोऽपि हि ॥१८२॥
ङेऽन्ता कल्पान्तकाली च सर्वशेषे प्रकीर्तिता ।
अयं विशेषो देवेशि शच्युपास्यमनोः स्मृतः ॥१८३॥

[दानवोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

दानवोपासितायास्तु नवाक्षर्या निशामय ।
अचलं खेचरी चैव तामसास्त्रमतः परम्[4] ॥१८४॥
चिताप्रेतौ ललज्जिह्वा ङेऽन्ता वै प्रथमा भवेत् ।
[5]कपालोग्रौ च भौतास्त्रं कङ्कालमपि चासुरम् ॥१८५॥

---

१. सिद्धिकराला च क ।
२. भगे रावं ? घ ।
३. एव युता क रामयुता ङ ।
४. ० मनन्तरम् ख घ ङ ।
५. कालाग्रौ च भौतास्त्रं ख घ ।

ङेऽन्ता विकटदंष्ट्रा च द्वितीया मरिपठ्यते[1] ।
भारुण्डातैंजसे बीजे अस्त्रं पैशाचमेव च ॥१८६॥
काकिन्यौदुम्बरे ङेऽन्ता वज्रदन्ता तृतीयगा ।
विहङ्गमः पूतना च राक्षसास्त्रं ततोऽपि च ॥१८७॥
घण्टाजम्भौ कोटराक्षी ङेऽन्ता तुर्या मता प्रिये ।
[2]शिखा नालीकबीजं च तैमिरास्त्रं ततोऽप्यनु ॥१८८॥
पंक्तिचूडामणी ङेऽन्ता फेरुतुण्डा च पञ्चमी ।
भोगसृष्टी दानवास्त्रं त्रेता कृत्या तथैव च ॥१८९॥
मेघनादा तथा ङेऽन्ता षष्ठी भवति भामिनि ।
दानवाराधितकरषडङ्गन्यास ईरितः ॥१९०॥

[मृत्युकालोपासितमनोः षडङ्गन्यासः]

प्रभञ्जना च दण्डश्च निद्रा केशर एव च ।
हृदयाङ्गुष्ठयोर्न्यस्य भूतिनीमपि च त्रपाम्[3] ॥१९१॥
योगिनीं काकिनीं[4] शीर्षतर्जन्योर्विन्यसेत् प्रिये ।
प्रचण्डा गौस्तथा पूर्णा नेमिबीजमनन्तरम् ॥१९२॥
मध्यमाशिखयोर्दत्वा केकराक्ष्यंशुनामनी ।
बीजे धूमस्तथा छन्दोऽनामिकावर्मणोरपि ॥१९३॥
कालरात्रिस्तथा शुक्लो ललिता विश्व एव च ।
त्रिदृक्कनिष्ठयोर्देवि पोतमेषौ[5] ततः परम् ॥१९४॥
[6]निर्वृत्तिकुल्यस्त्रकरपृष्ठयोर्भवतस्तथा ।
तत्तन्मन्त्रैस्तेषु तेषु स्थानेषु परिविन्यसेत् ॥१९५॥
मृत्युकालोपासिताया नवाक्षर्याः षडङ्गकम् ।

[भरतोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

द्वे पञ्च त्रीणि च द्वे च द्वे पुनर्द्वे पुनस्तथा ॥१९६॥

---

१. परिकथ्यते ख ।
२. शिख्याना ० ङ ।
३. त्रयाम् क त्रयी ख ।
४. कालिनी ख घ ।
५. यौनमेषौ [?] क ।
६. त्रिवृत्तिकं न्यसेदस्त्र क ।

वर्णाक्षराणां भारत्यास्तत्तत्स्थाने प्रविन्यसेत् ।

[च्यवनोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

तावन्तोऽर्णाः सप्रणवास्तत्र तत्र स्थले न्यसेत् ॥१९७॥
यादृशी च्यावनीमन्त्रवर्णावल्यनु तिष्ठति ।

[हारीतोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

तारयोर्मध्यवर्तीनि देवि वर्णानि तानि हि ॥१९८॥
न्यसेत् स्थानेषु तेष्वेव हारीतोपासिते मनौ ।

[जाबालोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

रावयुग्मान्तरस्थानि तावन्त्यपि च तानि च ॥१९९॥
न्यसेत् स्थलीषु तास्वेव जाबालोपासितेऽपि च ।

[दक्षोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

ताररावौ तावदर्णास्ताररावौ ततोऽन्तरम् ॥२००॥
रीत्यानया दक्षसेव्यमन्त्रे समवधार्यताम् ।

[रामोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

वेदादिमाये सर्वेषु स्थानेषु प्रतिषट्स्वपि ॥२०१॥
चतुरोऽर्णान् भिन्नभिन्नान् शेषे सर्वत्र कीर्तयेत् ।
तानेव चतुरो वच्मि पृथग्रूपान् वरानने ॥२०२॥
प्रभञ्जना च विजयोऽनाहतः पक्ष एव च ।
भ्रामरी च तथा मन्दो भोगो वीरस्तथैव च ॥२०३॥
प्रचण्डा चाथ संमोहः सृष्टिर्वेताल एव च ।
केकराक्षी च पतनं त्रेता भौरो ततः परम् ॥२०४॥
कालरात्रिश्च संहारः कृत्या पुटक एव च ।
[1]पाटस्ततोऽनु दातव्यमुत्तलो[2] [?] च कटंकटा ॥२०५॥
वारी रामोपासितायाः सप्तदश्याः षडङ्गकम् ।

[हिरण्यकशिपूपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

प्रणवः शाकिनी माया फेत्कारी डाकिनी परा[3] ॥२०६॥

---

१. पोतस्ततो ख घ । २. ० व्यः सुस्थला ख घ ।
३. तथा ख ।

कूटे संहारपैशाचे प्राजापत्यास्त्रमेव च ।
श्मशानवासिनी ङेऽन्ता तारः कूर्चश्च योगिनी ॥२०७॥
प्रलयः कर्णिका चापि शक्तिसिद्धौ च कूटकौ ।
पाषाणास्त्रं तथा ङेऽन्ता देया खट्वाङ्गधारिणी ॥२०८॥
वेदादिर्मन्मथो रामा शृङ्खला हार एव च ।
अनाख्याकूटं भासाख्यं कूटं नागास्त्रमेव च ॥२०९॥
उल्कामुखी तथा ङेऽन्ता गायत्रीमुखवाग्भवौ ।
लक्ष्मीनृसिंहौ[1] कुलिकं पुष्करं कूटमन्वतः ॥२१०॥
हिरण्यगर्भकूटं च मातङ्गास्त्रमनन्तरम् ।
ततोऽनु देया देवेशि ङेऽन्ता वै मुण्डमालिनी ॥२११॥
वेदशीर्षं तथा काली कालरात्रिश्च कृत्यया ।
[2]नादान्तकसत्त्वकूटे स्वाधिष्ठानं च कूटकम् ॥२१२॥
जम्भकास्त्रं ततो ङेऽन्ता चण्डकापालिनी प्रिये ।
जन्महामेखलासानुचामराः सौमतोऽपि च ॥२१३॥
मणिपूरानाहताख्ये कूटं च तदनन्तरम् ।
चाक्रास्त्रं च तथा ङेऽन्ता चण्डयोगेश्चरी पुनः ॥२१४॥
इदं हिरण्यकशिपूपासितायाः षडङ्गकम् ।

[ब्रह्मोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

द्वे द्वे त्रीणि तथा पञ्च त्रीणि द्वे चाक्षरे क्रमात् ॥२१५॥
मन्त्रस्य[3] सुन्दरि ब्रह्मोपासितस्य प्रकीर्तितम् ।

[वसिष्ठोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः]

वासिष्ठसप्तदश्याश्च षडङ्गानि निशामय ॥२१६॥
दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लाः हृदयाङ्गुष्ठयोः स्मृताः ।
वेण्वादिपञ्चकं शीर्षतर्जन्योः समुदाहृतम् ॥२१७॥

---

१. ० नृसिंहं ख । २. नागान्तक ख ।
३. मन्त्रोऽस्य ? घ ।

मध्यमाशिखयोस्तद्वद्देयं कल्पादिपञ्चकम् ।
कवचेऽनामिकायाञ्च तथा चैवायपञ्चकम् ॥२१८॥
[1]कनिष्ठाक्षित्रये दद्याद्देवि पूर्वादिपञ्चकम् ।
अस्त्रे च करपृष्ठे च तथा द्वीपादिपञ्चकम् ॥२१९॥
इयान् विशेषो वासिष्ठ्यां मया ते समुदाहृतः ।

[विष्णुतत्त्वमनोः षडङ्गन्यासः]

अधुना विष्णुतत्त्वस्य षडङ्गन्यासमीश्वरि ॥२२०॥
अवधेहि समस्तेभ्यो न्यासेभ्यः कठिनं त्विदम् ।
कूटनाडीसूक्तवर्णसरिच्छिखरिणां प्रिये ॥२२१॥
[2]समाजः कथितः कोऽन्यस्तस्मादेषु भविष्यति ।
कूटं चैकं तथा नाडी चैका सूक्तं तथैककम् ॥२२२॥
वर्णश्चैकः सरिच्चैका गिरिश्चैकः क्रमादिमे ।
तारयोरन्तरालस्था न्यस्याः स्थानेषु तेषु हि ॥२२३॥
प्रत्येकं क्रमशस्तान् वै व्याहराम्यवधारय ।
अग्निष्टोमो वाजपेयो विश्वजिच्चयनं तथा ॥२२४॥
राजसूयोऽश्वमेधश्च कूटाः षट् क्रमतो मताः ।
पयस्विनी हस्तिजिह्वा गान्धारी वारणा कुहूः ॥२२५॥
विश्वोदराः क्रमेणैव नाड्यः षट् क्रमतोऽङ्गने ।
सोमारौद्रं पावमानी वैश्वदेवं च गारुडम् ॥२२६॥
हविष्यान्ताग्निषोमीयं सूक्तानि क्रमतो हि षट् ।
शुक्लो गौरः पाण्डरश्च कौसुम्भः कपिलोऽरुणः ॥२२७॥
षडिमे क्रमतो वर्णाः ज्ञातव्या न्यासकर्मणि ।
कावेरी यमुना गङ्गा सरयूर्गण्डकी तथा ॥२२८॥
ताम्रपर्णी च नद्यः षट् क्रमेणैव मयेरिताः ।
मेरुमन्दरकैलासत्रिकूटास्तोदयाश्च षट् ॥२२९॥

---

१. इयं पंक्तिः ख पुस्तके नास्ति । २. समानः क ।

गिरयः क्रमतः प्रोक्तास्तत्तत्स्थानाक्षरात्मकाः ।
स्यादेवं विष्णुतत्त्वस्य षडङ्गन्यास ईश्वरि ॥२३०॥

[अम्बाहृदयमनोः षडङ्गन्यासः]

षडादौ यानि बीजानि तिष्ठन्त्यस्य मनोः क्रमात् ।
तेष्वेकैकं हि तत्तच्च स्थानं मनुभिरेव तैः ॥२३१॥
अम्बाहृदयमन्त्रस्य विधेयो वरवर्णिनि ।

[रुद्रोपासितषोडश्या—उत्तराम्नायगोपिताया मनोः षडङ्गन्यासः]

रुद्रोपासितषोडश्या न्यासं जानीहि संप्रति ॥२३२॥
त्रीणि वर्णानि च द्वे च तथा चैकं च पञ्च च ।
पुनस्त्रीणि पुनर्द्वे च मन्त्रस्य कमलानने ॥२३३॥
तेषु तेषु न्यसेत् स्थानेष्वेवं रुद्रानुशासनम् ।

[विश्वेदेवोपास्यायाः—त्रयोदशास्याया मनोः षडङ्गन्यासः]

या षोडशार्णा कथिता विश्वेदेवाधिदेवता[1] ॥२३४॥
तस्या न्यासं प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ।
त्रितयं मन्त्रवर्णानामाद्यं योज्यं हृदि प्रिये ॥२३५॥
ततोऽनु द्वितयं शीर्षं शिखायां तावदेव च ।
तुर्येऽप्यादिसदृक्षं स्यात् कवचानामिकाह्वये ॥२३६॥
द्वितीयेन तृतीयेन तुल्यं ज्ञेयं च पञ्चकम् ।
चतुर्भिरपि वै शेषवर्णैरस्त्रं समापयेत् ॥२३७॥
एवं षोडशवर्णानि भवन्ति क्रमशः प्रिये ।

[रावणोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रस्य षडङ्गन्यासाय अवतरणम्]

षोढा न्यासे कामकलाकाल्या या रावणार्चिता ॥२३८॥
समुद्धृता सप्तदशी त्रैलोक्यविजयाह्वये ।
यन्त्रं यन्त्रप्रसङ्गेन तस्याः समुपवर्णितम् ॥२३९॥
कराङ्गन्यासमधुना कथयामि शुचिस्मिते ।
नास्या ऋष्यादिकं प्रोक्तं क्वापि पूर्वं मया ह्यतः ॥२४०॥

---

१. विश्वेदेवादिदेवता ख घ ।

एतत्प्रसङ्गेन पुरस्तदेव व्याहरामि ते[1] ।
पश्चात् षडङ्गन्यासं ते कथयिष्यामि दुर्ग्रहम् ॥२४१॥
ऋषिः शुनक आख्यातः शर्करी [क्वरी] छन्द उच्यते ।
दशानना गुह्यकाली देवता परिकीर्तिता ॥२४२॥
डाकिनी बीजमुदितं शाकिनी शक्तिरुच्यते ।
फेत्कारी कीलकं ज्ञेयं प्रयोगः सर्वसिद्धये ॥२४३॥
इति ऋष्यादिकं प्रोक्तमङ्गन्यासं निबोध मे ।
पुरतः कर्णिकायुग्मं मध्ये कूटं च गोसवम् ॥२४४॥
दुष्कृतद्वितयं शेषे ङेऽन्ता वै मुण्डमालिनी ।
एतावन्त्यस्य ईशानि हृन्मन्त्रेण समो हृदि ॥२४५॥
संभूतिं चतुरस्रं च मध्ये कूटं गवामयम् ।
दाक्षिकं सौमतं शेषे ङेऽन्ता कामाङ्कुशा ततः ॥२४६॥
अयं शिरसि विन्यस्यः शेषे शीर्षमनूक्षितः ।
नादान्तकं चामरं च गोमेधं कूटमन्वतः ॥२४७॥
भोगः सृष्टिस्ततो ङेऽन्ता देया देवि कपालिनी ।
शिखामन्त्रेण सहितः शिखायां न्यस्य ईदृशा ॥२४८॥
विरूपमपरान्तं च गोदोहं कूटमन्वतः ।
संसृष्टिं च विकोशं च ङेऽन्ता डमरुडामरी ॥२४९॥
न्यस्यः कवचमन्त्रेण कवचे वरवर्णिनि ।
नालीकं च भुशुण्डीं च [2]गजच्छायं च कूटकम् ॥२५०॥
ततोऽनु वीरवेतालौ ङेऽन्ता संमोहिनी ततः ।
नेत्रमन्त्रेण सहितो न्यसेन्नेत्रत्रयेऽपि च ॥२५१॥
चर्पटं मणिमालां च गुह्याकूटं ततः परम् ।
शाम्भवद्वितयं शेषे गुह्यकाली सङेऽन्तका ॥२५२॥
अस्त्रमन्त्रेण सहितो न्यस्योऽस्त्रेषु वरानने ।
इति रावणपूज्यायाः कठिनो न्यास ऊह्यताम् ॥२५३॥

---

१. व्याहराम्यहम् ख घ । २. गजच्छायां क ।

[रावणोपास्यषट्त्रिंशदक्षरमनोः षडङ्गन्यासः]

अन्यस्या अपि पौलस्त्याराधिताया निशामय ।
न्यासं षट्त्रिंशदक्षर्याः पूर्वस्याः सुगमं प्रिये ॥२५४॥
[1]मन्त्रवर्णाः क्रमेणैव न्यसनीया यतात्मना ।
न्यसनं येन संग्रामे जयमाप्नोति मानवः ॥२५५॥
क्रमेणास्या मन्त्रवर्णैर्दिग्भिरङ्कैरथादिभिः ।
ऋत्विग्भिर्गोभिरश्वैश्च तेषु स्थानेषु संन्यसेत् ॥२५६॥
षट् पञ्च चतुरो वर्णान् हृदि शीर्षे शिखासु[2] च ।
सप्त सप्त तथा सप्त कवचे च दृगस्त्रयोः ॥२५७॥

[भोगविद्यामनोः षडङ्गन्यासः]

अथो निशामय महामङ्गलाख्यमनोः प्रिये ।
न्यासस्तु भोगविद्यायाः महाद्भुतकरः प्रिये ॥२५८॥
भिन्नैर्भिन्नैर्महामन्त्रैर्जायते यत् षडङ्गता ।
या रावणोपासिता हि ख्याता सप्तदशी भुवि ॥२५९॥
तया सम्पूर्णयाङ्गुष्ठहृदोर्न्यासं समाचरेत् ।
विश्वेदेवाराधिता या षोडशार्णा मनूत्तमा ॥२६०॥
तया सम्पूर्णया शीर्षतर्जन्योर्न्यस्य ईश्वरि ।
या वासिष्ठी सप्तदशी मया ते कथिता पुरा ॥२६१॥
तया सम्पूर्णया न्यासः शिखामध्यमयोर्भवेत् ।
तथा रामोपासितायाः[3] ख्यातः सप्तदशीमनुः ॥२६२॥
तेनाखिलेनानामिकायां कवचेऽपि प्रविन्यसेत् ।
ब्रह्माराधितया सप्तदश्या संपूर्णया पुनः ॥२७३॥
नेत्रत्रये कनिष्ठायां न्यसनीयः प्रयत्नतः ।
महारुद्रार्चितमहाषोडश्या परिपूर्णया ॥२६४॥
न्यासो विधेयः खड्गास्त्रे तथा च करपृष्ठयोः ।
रीत्यानया भोगविद्याषडङ्गन्यास ईरितः ॥२६५॥

---

१. इयं पंक्तिः क पुस्तके २५६ तमश्लोकानन्तरं दृश्यते । २. शिलासु ? क ।
३. ० तो यः ख ।

[शताक्षरमनोः षडङ्गन्यासः]

अथ गुह्येश्वरीमन्त्रो शताक्षर्या य[1] उच्यते ।
तस्य न्यासं प्रवक्ष्यामि मन्त्रबीजार्णसम्भवम् ॥२६६॥
डाकिनी [2]भ्रामरी चण्ड़चामुण्डाङ्गुष्ठयोर्हृदि ।
ह्लीं रुट् स्त्री योगिनी विच्चे घोरे तर्जनिशीर्षयोः ॥२६७॥
कामबीजं शक्तिबीजं तथा गुह्येश्वरीति च ।
मध्यमाभ्यां शिखायै च वेदादि शाकिनीं तथा ॥२६८॥
ततः सिद्धिकरालीत्यनामिकाभ्यां च वर्मणे ।
कुलिकं संविदं चापि अवर्णेश्वरि चेत्यपि ॥२६९॥
कनिष्ठाभ्यां दृक्त्रितये शाकिनीं शिर एव च ।
प्रकृत्यपर इत्युक्त्वा शिवनिर्वाणदे तथा ॥२७०॥
करपृष्ठास्त्रयोस्तत्तन्मन्त्रेण [3]समुदाहृतम् ।
न्यासो विंशतिवक्त्राया गुह्येश्वर्याः प्रकीर्तितः ॥२७१॥
अनेनैवाराधनीयः किन्नरोपासितो मनुः ।

[सहस्राक्षरमन्त्रस्य षडङ्गन्यासः]

वक्ष्येऽधुना देवि नवनवार्णान्यासमुत्तमम् ॥२७२॥
विधाय वारमात्रं यं साक्षाद् रुद्रोऽभिजायते ।
बीजकूटोपकूटानि नवैव स्युर्यथा तथा ॥२७३॥
बीजानि स्युर्नवैवात्र न्यासे षट् प्रतिकाह्वयम् ।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा डाकिनी[4] तथा ॥२७४॥
केकराक्षी महारात्रिः कालरात्रिस्तथैव च ।
आद्यन्तस्थितवेदादिमैधाभ्यां परिवेष्टिता ॥२७५॥
ततः संबोधनं चण्डकापालिन्या वरानने ।
हृदयाङ्गुष्ठयोर्हार्दमन्त्रेंण परिविन्यसेत् ॥२७६॥
अनाहतस्तथा भोगः सृष्टिः फेत्कारिणी तथा ।
त्रेता कराली कृत्या च सर्वादिस्थकुलाङ्गना ॥२७७॥

---

१. यः शताक्षर ख घ ।
२. डामरी, ख ।
३. समुदाहरेत् ख ।
४. शाकिनी, ख ।

सर्वान्तःस्थितरावा च संबोधनतया स्थिता ।
वज्रकापालिनी शीर्षतर्जन्योस्तन्मनूत्तरा ॥२७८॥
सन्दंशकश्च नालीको भुशुण्डी परिघस्तथा ।
गदा च तोमरः [1]प्रासः सम्मुखस्थितमन्मथः ॥२७९॥
चरमस्थितकूर्चश्च संबुद्धिपदबृंहिता ।
सिद्धिकापालिनी न्यासः शिखामध्यमयोर्भवेत् ॥२८०॥
डमरुश्चैव नाराचः शूलो भल्लस्तथैव च ।
अर्द्धचन्द्रो वत्सदन्तः क्षुरप्रश्चेति सप्त वै ॥२८१॥
प्रासादेनादिसंस्थेन नृसिंहेनान्तशोभिना ।
युक्ता संबोधनतया ब्रह्मकापालिनी ततः ॥२८२॥
अनामिकावर्मणोश्च न्यसनीयो वरानने ।
भिन्दिपालश्च कुन्तश्च सारिघो मुसलस्तथा ॥२८३॥
ऋष्टिर्हूला च कुन्तश्च सप्तैते परिकीर्तिताः ।
आद्यस्फुरद्योगिनीकश्चरमे प्रेतराजितः ॥२८४॥
स्थिता संबोधनतया विष्णुकापालिनी ततः ।
नेत्रत्रये कनिष्ठायां तन्मन्त्रेण न्यसेद् बुधः ॥२८५॥
मनोजवामोदकश्च वासितारञ्जिके ततः ।
ओजस्विबाष्पौ च शफं सप्तैतेऽन्तरवर्तिनः ॥२८६॥
पुरतोऽङ्कुशसंबद्धा अन्ते कान्तोपशोभिता ।
संबोधनतया ज्ञेया रुद्रकापालिनी ततः ॥२८७॥
करपृष्ठास्त्रयोर्न्यस्यस्तेन मन्त्रेण पार्वति ।
ईदृङ् नवनवार्णायाः षडङ्गन्यास ईरितः ॥२८८॥
अगम्यः क्षुद्रबुद्धीनां कठिनश्च महाफलः ।

[विष्णूपास्यायुताक्षरमनोः षडङ्गन्यासः]

अधुना विष्णुपूज्या या ख्याता देव्ययुताक्षरी ॥२८९॥
तस्याः षडङ्गं वक्ष्यामि मनो दत्वा निशामय ।
तारः सारस्वतः पाशः कला लक्ष्मीस्त्रपा स्मरः ॥२९०॥

१. पाशः ख ।

काली रावश्च कूर्चश्च तन्मन्त्रेण युतो हृदि ।
प्रासादामृतयोगिन्यः प्रेतक्षेत्रपगारुडाः ॥२९१॥
भारुण्डा भैरवीरमाकामिन्यः शिरसि स्मृताः ।
मुक्तामहासानुरक्षोवेदीमन्दारपंक्तयः ॥२०२॥
ततस्तुङ्गेष्टिडाकिन्यः शिखामध्ये व्यवस्थिताः ।
कर्णिकाशृङ्खलाहारनालीकप्रलयाः क्रमात् ॥२९३॥
भुशुण्डीशूलनाराचसन्धानाः शिञ्जिनी तथा ।
न्यस्यः कवचमन्त्रेण कवचे परमेश्वरि ॥२९४॥
भोगः सृष्टिश्च फेत्कारी त्रेता चापि करालिनी ।
कृत्या कटंकटा चापि दुष्कृतं पद्ममेव च ॥२९०॥
उत्कोचिनी सर्वशेषें दृङ्मन्त्रेण दृशि न्यसेत् ।
चर्पटं मणिमालां च षट्चक्रं तदनन्तरम् ॥२९६॥
सर्वागममथाम्नायातीतमस्य निगद्यते ।
विद्यातत्त्वं तथा तत्त्वार्णवं देवि ततो भवेत् ॥२९७॥
शक्तिसर्वस्वमस्यानु परापरमतः परम् ।
ततः शाम्भवचिच्छक्तिकरपृष्ठास्त्रयोर्न्यसेत् ॥२९८॥
हृदि शीर्षे शिखायां च कवचेऽक्षित्रयेऽपि च ।
बीजानि स्युर्दश दश अस्त्रें ह्येकादश प्रिये ॥२९९॥
इत्येकषष्टिभिर्बीजैः षडङ्गन्यास इष्यते ।
विष्णूपास्यायुताक्षर्या [1]एवमाह पुरद्विषः ॥३००॥

[शिवोपास्यायुताक्षरमनो. षडङ्गन्यासः]

मामकीनायुताक्षर्या न्यासः संप्रति कथ्यते ।
तत्राप्येतादृशी रीतिः किन्तु कूटादिभिः स्मृता ॥३०१॥
संहारोऽनाख्यया सार्धं भासा पुष्करमेव च ।
हैरण्यगर्भं सत्त्वं च स्वाधिष्ठानमतः परम् ॥३०२॥
मणिपूरानाहते च महानिर्वाणमित्यपि ।
कूटैर्दशभिरेभिस्तु हृन्मन्त्रेण हृदि न्यसेत् ॥३०३॥

---

१. ख पुस्तके ३०० तमश्लोकस्य चतुर्थचरणः ३०१ तमश्लोकस्य प्रथमचरणश्च त्रुटितः ।

सरस्वती कुहूश्चापि वारणा च पयस्विनी[1]।
पूषा च शङ्खिनी पश्चात् गान्धारी हस्तिजिह्वया ॥३०४॥
अलम्बुषा तथा विश्वोदरा नाड्यो दश त्विमाः।
आभिः शीर्षे न्यसेद्देवि शीर्षमन्त्रेण साधकः ॥३०५॥
सोमारौद्रं पावमानी शिवसङ्कल्पपौरुषौ।
अस्यवामीयमैत्राग्नमग्निषोमीयमेव च ॥३०६॥
नतमंहहविष्यान्तौ मानस्तोकमतः परम्।
[2]एताभिर्दशनाडीभिः शिखायां विन्यसेत् सुधीः ॥३०७॥
अरुणो रक्तहरितौ धूमपिङ्गलधूसराः।
पीतेन्द्रगोपकल्माषकौसुम्भैर्दशवर्णकैः ॥३०८॥
कवचे विन्यसेद्देवि मन्त्रेण कवचात्मना।
गङ्गा गोदावरी सिप्रा विपाशा वरुणोर्मिला ॥३०९॥
मन्दाकिनीधूतपापादृषद्वत्यः सरस्वती।
क्रमाद्दशभिरेताभिरापगाभिर्दृशि न्यसेत् ॥३१०॥
कैलासमेरुमन्दारगन्धर्वास्तोदया मणिः।
त्रिकूटगह्वरौ रत्नोच्चखण्डाः क्रमतो मताः ॥३११॥
एकादशभिरेतैस्तु कूटैः पर्वतनामभिः।
शनैरुच्चारितैर्देवि करपृष्ठास्त्रयोर्न्यसेत् ॥३१२॥
एवमेकाधिका षष्टिः कूटानामुपजायते।
विष्णूपास्यावदत्रापि बीजवत् कूटसंस्थितिः ॥३१३॥

[शाम्भवमनोः षडङ्गन्यासः]

अधुना शाम्भवादीनां षडङ्गन्यास उच्यते।
सदा जपोपयोगित्वेऽधिकारो यतिनामपि।
तारप्रासादनृहरिज्ञानेच्छासंविदः क्रमात् ॥३१४॥
कूटत्रयं शाम्भवादि ङेऽन्ता च व्यापिनी ततः ॥३१५॥

---

१. यशस्विनी ङ। २. एतैर्दशभिः सूक्तैस्तु इति समुचित पाठः।

हृन्मन्त्रेण हृदि न्यस्यस्ततः सारस्वताह्वयः ।
लक्ष्मीर्माया मृडं चण्डविश्वौ च तदनन्तरम् ॥३१६॥
ततस्तत्पुरुषादीनि त्रीणि कूटानि चोद्धरेत् ।
ङेऽन्ता च चेतना शीर्षमन्त्रेण शिरसि न्यसेत् ॥३१७॥
पाशो नासत्यशक्ती च ऋक्षं विद्युन्निरञ्जनम् ।
कूटास्ततस्त्रयो देया अघोरेशानशङ्कराः ॥३१८॥
आनन्दिनी ततो ङेऽन्ता शिखामन्त्रैः शिखासु च ।
कला च कुलिकं प्रेतः क्रमो मुक्ता महाक्रमात् ॥३१९॥
श्रीकण्ठस्त्रैपुरं रौद्रं कूटत्रयमतः परम् ।
ङेऽन्ता च विमला वर्म मनुना वर्मणि न्यसेत् ॥३२०॥
नादाद्यं कुम्भकं प्रोच्य महाक्रोधमनन्तरम् ।
चूडामणिशिखाजम्भान् कूटं मृत्युञ्जयं ततः ॥३२१॥
आनन्दलिङ्गकूटौ द्वौ ततः परमुदीरयेत् ।
महासूक्ष्मा ततो ङेऽन्ता नेत्राणां त्रितयं न्यसेत् ॥३२२॥
क्षेत्राश्रुरावडाकिन्यः फेत्कारी प्रलयादिमा ।
परापरं नारसिंहं तुरीयान्तं त्रिकूटकम् ॥३२३॥
महामाया ततो ङेऽन्ता करपृष्ठास्त्रयोर्न्यसेत् ।
इति शाम्भवमन्त्रस्य षडङ्गन्यास ईरितः ॥३२४॥

[महाशाम्भवमनोः षडङ्गन्यासः]

अथो महाशाम्भवस्य अङ्गन्यासं [1]ब्रवीमि ते ।
षट्स्वप्यङ्गेषु बीजानि मध्ये पञ्चैव पार्वति ॥३२५॥
तानि भिन्नानि भिन्नानि सर्वत्रैव यथाक्रमम् ।
बीजद्वयं चादिभूतमन्ते[2] बीजद्वयं तथा ॥३२६॥
सर्वत्रैवं निबन्धोऽयं बोद्धव्यो गुरुमार्गतः ।
तौ तारमैधौ विज्ञेयौ सर्वत्रैवाद्यशेषगौ ॥३२७॥

---

१. ब्रवीम्यहम्, ख घ । २. चादिभूतमन्त्रैः ख ।

रूपं रसस्तथा गन्धः स्पर्शः शब्दस्तथैव च ।
ताभ्यामादौ तथान्ते च वेष्टिता ह्यमृता ततः ॥३२८॥
संबोधिता हृन्मनुना न्यसनीयो हृदि ध्रुवम् ।
चक्षुर्जिह्वा तथा घ्राणस्त्वक् श्रोत्रं चैव पञ्चमम् ॥३२९॥
ताभ्यां रुद्धं पुरोऽन्ते च संबुद्धिर्ज्ञानदा पदे ।
न्यसनीयो न्यासविदा शिरोमन्त्रेण मस्तके ॥३३०॥
महाप्राणः समानश्चोदानव्यानौ ह्यपानकः ।
आद्यन्तयोर्वृतस्ताभ्यां संबोधनतया स्थितः ॥३३१॥
अव्यक्ता न्यसनीया हि शिखायां सशिखामनुः ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥३३२॥
पूर्ववद् वेष्टितस्ताभ्यां चित्कला बोधनं ततः ।
न्यस्तव्यः सर्वभावेन कवचेनैव वर्मणि ॥३३३॥
पुरुषः प्रकृतिश्चैव महत्तत्त्वमहङ्कृतिः ।
तन्मात्रमावृतं ताभ्यां संबुद्धा बिन्दुनादिनी ॥३३४॥
नेत्रमन्त्रेण विन्यस्यो नेत्रमध्ये वरानने ।
अध्वा मनश्च [1]कूर्चश्च समाधिः सुरमन्दिरम् ॥३३५॥
ताभ्यामेवोपसृष्टं चाद्वैता संबोधनस्थिता ।
अस्त्रमन्त्रेण विन्यस्यः करपृष्ठास्त्रयोः प्रिये ॥३३६॥
महाशाम्भवमन्त्रस्य कथितो न्यास ईदृशः[2] ।

[तुरीयामनोः षडङ्गन्यासः]

न्यासोद्धारं तुरीयायाः साम्प्रतं कथयामि ते ॥३३७॥
प्रणवो योगिनी कूर्चो मायारावौ ततः परम् ।
ङेऽ[3]न्तामलक्षितां दद्यात् ततो बीजानि पञ्च वै ॥३३८॥
तान्येव व्यत्ययाद् दत्वा हृन्मन्त्रेण हृदि न्यसेत् ।
चैतन्याङ्कुशपीयूषप्रासादा मन्मथोऽपि च ॥३३९॥

---

१. कूर्मश्च, ख ।
२. ख पुस्तके ३३७ श्लोकस्थचतुर्थचरणः ३३८ श्लोकस्य प्रथमचरणश्च त्रुटितः
३. चिताम० ख, चिन्ताम० घ ।

एकामंशा ततो ङेऽन्ता तान्येव व्यत्ययात् पुनः ।
[1]शिरोमन्त्रेण शिरसि न्यसनीयः प्रयत्नतः ॥३४०॥
पाशो नृसिंहसान्वक्षडाकिन्यस्तदनन्तरम् ।
मानसी च तथा ङेऽन्ता तान्येव व्यत्ययात्पुनः ॥३४१॥
शिखायां च शिखामन्त्रसहितो न्यस्य ईश्वरि ।
कला च प्रलयो ह्वारः कर्णिका शृङ्खला तथा ॥३४२॥
असम्भवा तथा ङेऽन्ता विपरीतादमूनि च ।
सर्वममन्त्रः संन्यस्यो वर्मण्येव वरानने ॥३४३॥
सुरसं समरं चैव तन्द्रा च कुटिला तथा ।
सर्वशेषे घटीं दत्वा ङेऽन्तां नित्यां पुनर्वदेत् ॥३४४॥
घट्यादिसुरसान्तानि तानि पञ्च [2]पुनर्वदेत् ।
दृङ्मन्त्रेण दृशि न्यस्य इत्येषा वैदिकी स्थितिः ॥३४५॥
तुरीयामथ षट्चक्रं कौलचिच्छक्तिशाम्भवान् ।
कैवल्या च तथा ङेऽन्ता व्यत्ययस्तादृशः पुनः ॥३४६॥
अस्त्रमन्त्रेण चास्त्रेषु न्यसनीयो विजानता ।
इति ते कथितो न्यासस्तुरीयाया महाफलः ॥३४७॥

[महातुरीयामनोः षडङ्गन्यासः]

अथ वक्ष्ये देवि महातुरीयान्यासमुत्तमम् ।
यत्र प्रतिष्ठितः सर्वो न्यासवर्गो विधीरितः ॥३४८॥
उद्धारः कथितो ह्यस्य न्यासस्य प्रभुणोदितः ।
भवत्यवहिता भूत्वा शृणु तन्न्यासमुत्तमम् ॥३४९॥
[3]त्रीणि द्वे त्रीणि च द्वे च त्रीणि चत्वारि च क्रमात् ।
मन्त्रवर्णानि योज्यानि क्रमेणैव विपश्चिता ॥३५०॥
पञ्चभिः पञ्चभि[4]र्बीजैरेकैकं पुटितं च तत् ।
तारो मैधश्च कामश्च लक्ष्मीर्गारुडमेव च ॥३५१॥

---

१. इतः पंक्तित्रयं ख पुस्तके नास्ति । २. ततो वदेत् ख, घ ।
३. त्रीणि च द्वे च वै त्रीणि नव चत्वारि च क्रमात् ख । ४. वर्णै रे० क ।

नादान्तकोऽङ्कुशः क्षेत्रपालो भूतादियुग्मकम् ।
काली सर्वागमश्चापि कुलिकः प्रेत एव च ॥३५२॥
भैरव्यनन्तखेचर्य्यः शृङ्खलास्तदनन्तरम् ।
नासत्यकुम्भत्रिशिखानन्दाकाकिन्य एव च ॥३५३॥
निर्गुणापदसंबुद्धिस्ततः[1] परमुदीरयेत् ।
न्यस्यो हृदयमन्त्रेण हृद्यस्य समुपासकैः ॥३५४॥
त्रयोविंशतिबीजानि निर्गुणे चाक्षरत्रयम् ।
प्रथमाङ्गस्य नियम इत्येवं कथितो मया ॥३५५॥
माया च योगिनी कूर्चो वधू रावस्ततः परम् ।
संहारपीयूषरतिशक्तयश्च त्रिशक्तयः ॥३५६॥
क्षमा च मणिमाला च यक्षकङ्कालनेमयः ।
ततः कापालगोकर्णौ संबुद्धावजरामरा ॥३५७॥
शिरोमन्त्रेण शिरसि न्यसनीयो विजानता ।
बीजानि सप्तदश वै पञ्चार्णाश्चाजरामरे ॥३५८॥
निश्चयोऽयं द्वितीयाङ्गे मया ते प्रतिपादितः ।
मुक्ता हेम च सान्वक्षौ नृसिंहस्तदनन्तरम् ॥३५९॥
प्रतिबिम्बं ततः कूटं बलिस्तुङ्गः शिरोमणिः ।
ततश्चेष्टिमहानङ्गौ कूटं चैतन्यनामकम् ॥३६०॥
ततः शिखामहाक्रोधदक्षिणाजम्भपङ्क्तयः ।
ततश्च पुनरावृत्तिकूटं भोगश्च सृष्टियुक् ॥३६१॥
फेत्कारी त्रेतया युक्ता कृत्या च चरमे[2] स्थिता ।
संबोधनतयाऽन्नाख्या शिखायां सशिखा मनुः ॥३६२॥
प्रथमाङ्गस्य यावन्तो वर्णाः पूर्वं मयेरिताः ।
अमुष्मिन्नपि तावन्तः संबुद्धेरपि च प्रिये ॥३६३॥
नाराचशूलनालीकभुशुण्ड्यः [3]कुन्तसंयुताः ।
ऐकात्म्यकूटं तदनु डाकिनीशङ्कुसेतवः ॥३६४॥

---

१. संबुद्धि ततः, ख । २. परया ख । ३. कुम्भ० ख, घ ।

कोशपिण्डौ च विज्ञानमयकूटं ततः परम् ।
ताटङ्कलीलाभ्रामर्यः प्रचण्डा वीर एव च ॥३६५॥
भासासंबुद्धिरस्यानु [१]वर्मयुग् वर्मणि न्यसेत् ।
संबोधनाक्षरयुगं बीजानि दश सप्त वा ॥३६६॥
तुर्यस्याङ्गस्य च न्यासे मया ते प्रतिपादितः ।
विजया चैव [२]संभूतिश्चतुरस्रमनन्तरम् ॥३६७॥
मारण्डश्च विनादश्च कूटानन्दमयाह्वयः[३] ।
विरूपश्चापरान्तश्च प्रकरीबिन्दुकौ तथा ॥३६८॥
शेखरः सर्वशेषे स्यात् कूटं ब्रह्ममयं ततः[४] ।
दाक्षिकं सौमतं चापि प्रतानं विदिगेव च ॥३६९॥
चरमे विरतिश्चापि त्रेता च तदनन्तरम् ।
तन्द्रा ततोऽनु कुटिला रञ्जनी च घटी तथा ॥३७०॥
जघन्ये व्ययबीजं च संबुद्धिर्मोक्षदापदात् ।
नेत्रत्रये नेत्रमन्त्रैस्त्रिन्यस्यो मोक्षलब्धये ॥३७१॥
अत्रापि विंशतिर्वर्णास्त्रयोऽन्यस्तेषु [?] पिण्डिताः स्थिताः[५] ।
संबुद्धेरपि तावन्तो विराधो युक् तृतीयया ॥३७२॥
ग्रावा पथ्यः सारसश्च कृत्या मोदकवासिते ।
ओजस्वी च शफं रागो दुष्कृतं तदनन्तरम् ॥३७३॥
[६]पूत्यण्डकुञ्चिकाकामाः कल्पो रङ्कत्रयीमयाः ।
[७]चिच्छक्तिरौपह्वरं च शक्तिविद्या च नान्दिकम् ॥३७४॥
षट्चक्रसर्वागमौ च सायुज्यं तदनन्तरम् ।
आम्नायातीतमस्यानु तत्त्वार्णवमनन्तरम् ॥३७५॥
तत्पश्चात् शक्तिसर्वस्वं परापरमनन्तरम् ।
शाम्भवं सर्वशेषे स्यात् संबोधनतया ततः ॥३७६॥

---

१. वर्णयुग ख । २. संबुद्धि ख ।
३. कूटानन्दमया कृपा ख । ४. तथा ख घ ।
५. ० वर्णास्त्रयोऽन्यस्तेषु मिश्रिताः ङ छ ।
६. कृत्यण्डकुञ्चि तत्पश्चात् शक्तिसर्वस्वनामकम् ख ।
७. इतः पंक्तिचतुष्टयं ख पुस्तके न दृश्यते ।

महातुरीयाशब्दः स्यादस्त्रेणास्त्रमनुः प्रिये ।
न्यस्योऽयं करपृष्ठे च सर्वदैनामुपासता[1] ॥३७७॥
अत्रोनत्रिंशबीजानि पञ्च संबोधनस्य च ।
ज्ञातव्यानि वरारोहे षष्ठस्याङ्गस्य निश्चितम् ॥३७८॥
बीजानि मिलितानीह द्वात्रिंशादधिकं शतम् ।
संबोधनाक्षरं चैकविंशतिः परिकीर्तिता ॥३७९॥
इत्युक्तस्ते खलु महातुरीयान्यास उत्तमः ।
कठिनो बुद्धिसाध्यश्च कैवल्यफलदस्तथा ॥३८०॥

[निर्वाणमनोः षडङ्गन्यासः]

अधुनाख्यामि निर्वाणमन्त्रन्यासमनुत्तमम् ।
ऊनविंशत्यक्षरोऽयं निर्वाणाख्यो महामनुः ॥३८१॥
त्रिभिस्त्रिभिर्मन्त्रवर्णैः पदेनैकेन ङेऽन्तिना ।
सर्वशेषे चतुर्भिस्तु बीजैः कार्यो वरानने ॥३८२॥
ते[2] त्रपाभ्यां योगिनीभ्यां कूर्चाभ्यां स्त्रीयुगेन च ।
रावाभ्यां क्रमतो रुद्धा सर्वशेषे तु पार्वति ॥३८३॥
समस्तैः पञ्चभिश्चैतैरादावन्ते च संवृता ।
आदौ परमहंसी स्याच्चिन्मात्रा तदनन्तरम् ॥३८४॥
निस्त्रैगुण्ये[ण्या ?]तृतीया स्यात्तुर्या चैवापुनर्भवा ।
अविग्रहा पञ्चमी च षष्ठी चैतन्यमय्यपि ॥३८५॥
तत्तन्मन्त्रसमुद्देशैस्तेषु तेषु स्थलेषु वै ।
न्यसनीयानि सर्वाणि प्रयत्नेन विपश्चिता ॥३८६॥
इति निर्वाणमन्त्रस्य न्यासः समुपबृंहितः ।

[महानिर्वाणमनोः सामान्यषडङ्गन्यासः]

महापूर्वस्य तस्यैव संप्रति न्यासमादरात् ॥३८७॥
श्रोतुमर्हसि कल्याणि प्रयतेनान्तरात्मना ।
महातुरीयावदयं कठिनो धीमतामपि ॥३८८॥

---

१. सर्वदैवामुपासताम् ? क ख घ । २. निस्त्रपाभ्याम् ङ ।

अतः समाहितमना भूत्वा देवि निशामय ।
यथात्र तत्तद्बीजानां कूटानां तद्वदेव हि ॥३८९॥
समास्त्रऽपो[सोऽत्र?]सरिन्नाडीसूक्तवर्णजुषां प्रिये ।
त्रयस्त्रिंशन्मता वर्णा मन्त्रस्य परमेश्वरि ॥३९०॥
त्रिरारभ्यैकवृत्त्या तु यावदष्टावधि ध्रुवम् ।
षडङ्गार्णः समुद्दिष्टः षड्भिस्तैः पूर्ववद् वृतः ॥३९१॥
संबोधनतया चैकं नाम तेषु व्यवस्थितम् ।
इति सूत्रतया ह्युक्तं विशेषोऽप्यवधार्यताम् ॥३९२॥

[महानिर्वाणमनोः विशेषषडङ्गन्यासः]

हंसकूटं च नागास्त्रं पूर्णां नाडीमतः परम्[1] ।
शिवसङ्कल्पसूक्तं च वर्णश्चारुणसंज्ञकः ॥३९३॥
गङ्गापगाथ प्रणवः कूटो वाराहनामकः ।
पार्वतास्त्रं कुहूनाडी सूक्तं [2]चानन्तसंज्ञकम् ॥३९४॥
वर्णश्च रोहितः स्रोतस्वती च यमुना ततः ।
नादान्तकश्च तार्तीयकूटमस्त्रं च तामसम् ॥३९५॥
आवेशिनीमथो नाडीं पौरुषं सूक्तमेव च ।
श्वेतवर्णं निम्नगां च सरस्वत्याह्वयां ततः ॥३९६॥
मैधं कूटं नारसिंहं तैमिरास्त्रमनन्तरम् ।
नाडीं ततो घर्घराख्यां शौद्धवत्यञ्च सूक्तकम् ॥३९७॥
गौरवर्णं चन्द्रभागाह्वयामथ तरङ्गिणीम् ।
अवासनायाः संबुद्धिं ततः परमुदीरयेत् ॥३९८॥
सहृन्मन्त्रो हृदि न्यस्यः प्रथमाङ्गमिदं स्मृतम् ।
सप्तविंशतिबीजानि सन्त्यङ्गेऽस्मिन् वरानने ॥३९९॥
संबुद्धिश्चतुरर्णस्य निश्चित्य परिकीर्तितः ।
आदौ कूटं नारसिंहं त्वाष्टास्त्रं तदनन्तरम् ॥४००॥

---

१. ० मनन्तरम् ख घ ङ । २. चैतन्य ० क ।

क्षिप्तां नाडीं ततः सूक्तं माहित्रं परिकीर्तयेत् ।
धवलं वर्णमालिख्य विपाशातटिनीं ततः ॥४०१॥
बीजं सर्वांगमं दत्वा कूटं मार्तण्डमीरयेत् ।
सौपर्णास्त्रं ततो रूक्षानाडीं सूक्तं च वायवम् ॥४०२॥
शबलं वर्णमुल्लिख्य [1]नदीमैरावतीं वदेत् ।
प्रासादबीजमस्यानु कूटं वैहायसं ततः[2] ॥४०३॥
मातङ्गास्त्रं ततो दद्यात् रूक्षां नाडीं वरानने ।
सूक्तं तद्गृत्समदीयं वर्णं कल्माषसंज्ञकम् ॥४०४॥
देविकातटिनीमुक्त्वा शृङ्खलाबीजमुद्धरेत् ।
वायवीयं ततः कूटमस्त्रं नारायणाह्वयम् ॥४०५॥
नाडीं क्लिन्नामस्यवामीयसूक्तं च तदनन्तरम् ।
वर्णं च पाण्डुरं दत्वा गोमतीं निम्नगां वदेत् ॥४०६॥
नृसिंहबीजं कूटं तु भानवं परिचक्षते ।
ब्रह्मास्त्रं नाडिकां स्निग्धां हविष्म[ष्य ?]न्तं च सूक्तकम् ॥४०७॥
शौकवर्णं वितस्ताख्यां निम्नगामथ संवदेत् ।
संबोध्य बोधातीतां च शीर्षमन्त्रेण मस्तके ॥४०८॥
न्यस्यश्चतुस्त्रिंशदर्णो बीजानां परिकीर्तितः ।
चत्वारोऽपि तथा [3]नाम्नः कथितोऽङ्गे द्वितीयके ॥४०९॥
सिद्धिकूटं शाङ्करास्त्रं [4]वर्णा[?]नाडीमतः परम् ।
नतमंहाभिधं सूक्तं नीलवर्णमतोऽप्यनु ॥४१०॥
नर्मदासरितं बीजं संहाराख्यं ततो वदेत् ।
कूटं नाभसमस्यानु वैष्णवास्त्रं ततः परम् ॥४११॥
नाडीं सरस्वतीनाम्नीं नाराशंसीयसूक्तकम् ।
हरितं वर्णमस्यानु सिप्राख्यां तटिनीं ततः ॥४१२॥
ततोऽनु डाकिनीबीजं कूटमादित्यनामकम् ।
प्राजापत्यास्त्रमस्यानु नाडीं वै वारणाह्वयाम् ॥४१३॥

---

१. नाडीमै ० ख घ ।
२. वदेत् ख घ ।
३. नाड्यः क ।
४. रण्डा ।

पावमानीमथो सूक्तं लोहितं वर्णमेव च ।
काबेरीतटिनीमुक्त्वा मणिमालाङ्कुरं ततः ॥४१४॥
वासवाख्यं ततः कूटं कौबेरास्त्रमनन्तरम् ।
नाडीं पयस्विनी[1]मुक्त्वा सोमारौद्रं च सूक्तकम् ॥४१५॥
पाण्डुवर्णं कृष्णवेल्लां नदीं भासाख्यकूटकम् ।
पैशाचकूटमस्यानु अग्नेयास्त्रं ततः परम् ॥४१६॥
नाडीं [2]पयस्विनीं चैव मैत्रावरुणसूक्तकम् ।
श्यामवर्णं तुङ्गभद्रां नदीं कूटं ततः परम् ॥४१७॥
प्रतिविम्बाह्वयं शक्तिकूटं तदनु चोद्धरेत् ।
कम्पनास्त्रमथ प्रोक्तं पूषानाडीमपि स्मरेत् ॥४१८॥
[3]अग्निषोमीयसूक्तं च कालं वर्णमुदीरयेत् ।
नदीं भीमरथीं प्रोच्य संबोधनतया ततः ॥४१९॥
उपशान्तापदं चापि शिखायां सशिखा मनुः ।
ईदृग् विन्यसनीयोऽयं कूटानां नियमं शृणु ॥४२०॥
एकचत्वारिंशकूटाश्चत्वारोऽर्णाश्च संबुधौ ।
आदावाङ्गिरसं कूटमैन्द्रास्त्रं तदनन्तरम् ॥४२१॥
धमनीं शङ्खिनीं पश्चादैन्द्राग्नं सूक्तमेव च ।
धूमवर्णं नदीं गोदावरीं तदनु कीर्तयेत् ॥४२२॥
संहारकूटं तदनु धौमावत्यमनन्तरम् ।
वारुणास्त्रं च गान्धारीं धमनीं तदनन्तरम् ॥४२३॥
वैश्वदेवं ततः सूक्तं कपिलं वर्णमेव च ।
तापीं नदीं ततः कूटं चैतन्याख्यं विनिर्दिशेत् ॥४२४॥
कूटं ज्योतिर्मयं पश्चाद् वायव्यास्त्रं ततोऽपि च ।
नाडीमथो हस्तिजिह्वां भारुण्डासूक्तमेव च ॥४२५॥
वर्णं ततः पिङ्गलं च पयोष्णीमपि निम्नगाम् ।
हैरण्यगर्भकूटं च प्रभाकूटमनन्तरम्[4] ॥४२६॥

---

१. यशस्विनी ० ख घ ङ ।
२. यशस्विनीं क ।
३. अग्निष्टोमीय ० ख ।
४. ० मत परम् क ।

[1]याम्यमस्त्रं ततो दत्वा धमनीमप्यलम्बुषाम् ।
वैनायकं सूक्तमथो कर्बुरं वर्णमप्युत ॥४२७॥
करतोयां च सरितं ततः परमुदीरयेत् ।
कूटं ह्यपुनरावृत्तिनामकं तदनन्तरम् ॥४२८॥
कूटमग्निष्टोमसंज्ञं कालास्त्रं तदनु क्षिपेत् ।
विश्वोदरामथो नाडीं सूक्तं वायव्यमेव च ॥४२९॥
धूसरं वर्णमुदितं गण्डकीमपि निम्नगाम् ।
पौष्करं कूटमस्यानु वाजपेयं ततोऽपि च[2] ॥४३०॥
भौतास्त्रं धमनीं तेजस्विनीं सूक्तं च नैर्ऋतम्[3] ।
हारिद्र[4]वर्णं तदनु स्रवन्तीं बाहुदामपि ॥४३१॥
ऐकात्म्यकूटं च ततः पौण्डरीकं च कूटकम् ।
कौसुम्भवर्णं च नदीं सरयूं तदनन्तरम् ॥४३२॥
पार्जन्यास्त्रं शिरां चित्रां सूक्तं वैभ्राजनामकम् ।
संबुद्धिस्सत्त्वरूपायास्ततोऽनु वरवर्णिनि ॥४३३॥
वर्ममन्त्रेण विन्यस्यो वर्मण्येव विजानता ।
अष्टचत्वारिंशकूटाः संबुद्धौ चतुरक्षरम् ॥४३४॥
षोडशीनामकं कूटं वैद्युतास्त्रमनन्तरम् ।
अव्यक्तां धमनीं दत्वा सूक्तमार्यम्णमेव च ॥४३५॥
मायूरवर्णं च शरावतीमपि तरङ्गिणीम् ।
शाम्भवाख्यं ततः कूटं कूटं सौत्रामणीयकम् ॥४३६॥
जम्भकास्त्रं गालिनीं नाडीं मानस्तोकं च सूक्तकम् ।
पाटलं वर्णमुल्लिख्य कौशिकीं तटिनीं वदेत् ॥४३७॥
विज्ञानमयकूटं च बाजिमेधञ्च कूटकम् ।
ऐषीकं च शिरां[5] मन्दां लक्ष्मीसूक्तमनन्तरम् ॥४३८॥

---

१. याम्यमन्त्रं ततो दद्यात् ख ।
२. ततः परम् क ।
३. सूक्तं वैभ्राजनामकम् क ।
४. इतः पंक्तित्रयं क ख पुस्तकयोर्नास्ति ।
५. शिवामम्बां ख शिवनन्दां घ ।

पीतवर्णं नदीमुत्पलिनीमपि च कीर्तयेत् ।
ततश्च डाकिनीकूटं कूटं वै राजसूयकम् ॥४३९॥
चाक्रमस्त्रं रसवहां नाडीं सूक्तं च गारुडम् ।
शोणवर्णं च तटिनीमिरावत्याह्वयां ततः ॥४४०॥
आनन्दमयकूटं च कूटं स्विष्टकृतं ततः ।
औदुम्बरास्त्रं धमनीं ततो मधुमतीं लिखेत् ॥४४१॥
श्रीसूक्तं कपिशं वर्णं सभङ्गामपि निम्नगाम् ।
बीजं ततो नारसिंहं गोसवं कूटमेव[1] च ॥४४२॥
दानवास्त्रं द्राविणीं नाडीं देवीसूक्तं ततोऽपि च ।
बभ्रुवर्णं वेत्रवतीं नदीं ब्रह्ममयं ततः ॥४४३॥
कूटं महाव्रतं कूटं गान्धर्वास्त्रं ततोऽपि च ।
चेतनां धमनीं सूक्तं रौद्रमन्वैन्द्रगोपकम् ॥४४४॥
वर्णं चर्मण्वतीं नाम्नीं नदीं तदनु कीर्तयेत् ।
प्रासादबीजमस्यानु कूटं बहुसुवर्णकम् ॥४४५॥
पैशाचास्त्रं सतीं नाडीं सूक्तमाथर्वणं ततः ।
हारीतं वर्णमस्यानुं तमसां निम्नगामपि ॥४४६॥
संबुद्धि [2]ब्रह्ममय्याश्च दृशि दृङ्मनुभिर्न्यसेत् ।
पञ्चमेऽङ्गे पञ्चपञ्चाशद्बीजानि प्रचक्षते ॥४४७॥
संबुद्धेश्चतुरो वर्णांस्तथैवाह पुरद्विषः ।
आदौ विश्वजितं कूटं जृम्भणास्त्रमतः परम् ॥४४८॥
मुदितां धमनीं प्रोच्य सूक्तं माध्वीकनामकम् ।
हरिद्वर्णं धूतपापां तटिनीं तदनन्तरम् ॥४४९॥
त्रेताबीजं कूटमश्वक्रान्तं [3]प्रत्यायनास्त्रकम् ।
धमनीं भ्रामणीमुक्त्वा ऐन्द्रवारुणसूक्तकम् ॥४५०॥
हरितं वर्णमापगां निर्विन्ध्यां तदनन्तरम् ।
बीजं सारस्वतं कूटं [4]रथक्रान्तं च हेमनम् ॥४५१॥

---

१. ० मप्यतः ङ । २. निम्नपथ्याश्च ख ।
३. प्रस्वापनास्त्रकम् ख घ । ४. राक्षसास्त्रं ततः परम् ख घ ।

[1]अस्त्रं नाडीं च कपिलां सूक्तं त्वाष्ट्रं हि राजसम्।
वर्णं नदीं च विरजां कृत्याबीजमनन्तरम् ॥४५२॥
सावित्रीयं ततः कूटं राक्षसास्त्रं ततः परम्।
चण्डानाडीं हंससूक्तं वर्णं काद्रवमेव च ॥४५३॥
मुरलां तटिनीं तारं ततः कूटं गवामयम्।
भारुण्डमस्त्रं धमनीं कैवल्यां तदनन्तरम् ॥४५४॥
हैरण्यकेशसूक्तं च वर्णं तैत्तिरमेव च।
महानदीमपि नदीं दुष्कृतं बीजमन्वतः ॥४५५॥
अश्वप्रतिग्रहं कूटं शाबरास्त्रमविग्रहाम्।
नाडीं पर्यायसूक्तं च वर्णमुल्वणमेव च ॥४५६॥
वाग्मतीं निम्नगां चैव बीजं चिच्छक्तिनामकम्।
सर्वस्वदक्षिणं कूटं कालकूटास्त्रमेव च ॥४५७॥
तुरीयाख्यां महानाडीं सूक्तं [2]वैनायकं ततः।
वर्णं [3]सङ्करनामानं नदीं मन्दाकिनीमनु ॥४५८॥
सायुज्यं बीजमस्यानु चयनं कूटमन्वतः।
अस्त्रं भैरवसंज्ञं च नाडीं चैवापुनर्भवाम् ॥४५९॥
तत औशनसं सूक्तं कृष्णं वर्णं ततः परम्।
नदीमलकनन्दां च महानिर्वाणकूटकम् ॥४६०॥
कूटं च नरमेधाख्यमन्तर्द्धानास्त्रमेव च।
निर्वाणाख्यां ततो नाडीं सूक्तं वै नीललोहितम् ॥४६१॥
शुक्लवर्णं ततो [4]दद्यात् तटिनीं च प्रवाहिणीम्।
संबुद्धिमपवर्गायास्ततः परमुदीरयेत् ॥४६२॥
न्यस्योऽस्त्रश्चास्त्रमन्त्रेण तथैव करपृष्ठयोः।
षष्ठेऽङ्गे देवि बीजानां द्विषष्टिः परिकीर्तिता ॥४६३॥
चत्वारोऽर्णाश्च संबुद्धेरित्येतस्य विनिश्चयः।
सर्वैः कूटादिभिर्मन्त्रैर्वर्णैरपि तथैव च ॥४६४॥

---

१. इतः पंक्तित्रयं ख घ पुस्तकयोर्नास्ति।
२. नाचिकेतसम् ख, घ।
३. सकलनामानं।
४. दद्यां क।

संपिण्डितानि बीजानि सप्तषष्टिशतद्वयम् ।
चतुर्विंशतिवर्णाश्च संबुद्धेरपि पिण्डिताः ॥४६५॥
महानिर्वाणमन्त्रस्य दुरूहो न्यास ईरितः ।
मया विविच्य कथितो विद्वद्भिरवधार्यताम्[1] ॥४६६॥
नातः परतरो [2]ह्यस्ति कोऽपि मन्त्रो महीतले ।
प्रकाशितः पुरघ्नेन यतीनामेव मुक्तये ॥४६७॥
इति क्रमेण सर्वेषां मन्त्राणां न्यास ईरितः ।

[निर्दिष्टपञ्चपटलविषयाणां समासेन सूचनम्]

आरभ्य मन्त्रमेकार्णं महानिर्वाणपश्चिमम् ॥४६८॥
सर्वेषामुद्धृतिः प्रोक्ता क्रमेण प्रथमं तथा ।
तत ऋष्यादिकं चोक्तं तेनैवानुक्रमेण हि ॥४६९॥
पृथक् पृथक् च सर्वेषां गायत्र्यपि समुद्धृता ।
यन्त्रोद्धारास्तया रीत्या मन्त्राणां प्रतिपादिताः ॥४७०॥
तथा षडङ्गन्यासाश्च पृथक् पृथगुदाहृताः ।
वक्त्रभेदाद् बाहुभेदास्तेनास्त्राणां भिदा अपि ॥४७१॥
वक्त्राकृतीनां भेदाश्च समेषु विषमेषु च ।
येन मन्त्रेण यद्रूपा पूजनीया च कालिका ॥४७२॥
महावाक्यानि सर्वाणि आदिमध्यान्तगानि च ।
विविच्य ते मयोक्तानि मन्त्राणामुद्धृतेः पुरा ॥४७३॥

[प्रतिदेवीध्यानाकथने कारणनिर्देशः]

नोदितं तव देवेशि किन्तु ध्यानं पृथक् पृथक् ।
वक्त्रबाह्वस्त्रभेदादि कथयित्वा पुरा मया ॥४७४॥
प्रायः सूक्ष्मतया ध्यानं सर्वमेवोदितं तव ।
ऊहः किन्तु प्रकर्तव्योऽत्रापि वेदे यथोदितः ॥४७५॥
सोऽपि वक्त्रकरास्त्राणां नान्येषां वै कदाचन ।
गायत्रीन्यासयन्त्राणां प्रपञ्चोऽत्र यथोदितः ॥४७६॥

---

१. ० रपि धार्यताम् क । २. न्यासः कथितः संभविष्यति ख, घ ।

ध्यानानां तद्वदुदितो **भीमातन्त्रेण** पार्वति ।
ध्यानं तथा व्याजहार **वामकेश्वरसंहिता** ॥४७७॥
प्रत्येकध्यानकथने जायते ग्रन्थविस्तृतिः ।
अतो मया न कथितोऽमुष्मिन् ग्रन्थे विशेषतः ॥४७८॥
भीमातन्त्रे वामकेशे तथा **कालानले**ऽपि च ।
कपालडामरे तन्त्रे शाबरेऽपि [1]प्रदृश्यते ॥४७९॥
ऊहो वापि प्रकर्तव्यो ग्राह्यं तन्त्रोक्तमेव च ।

[सकलकालीध्याने यस्य साम्यं तस्येह निर्देशः]

रक्तार्णवं समारभ्य यावदष्टाब्जकल्पना ॥४८०॥
पुनरारभ्य देवेशि नागा[ना ?] कल्पप्रकल्पनाम् ।
यावन्निराकाररूपकथनं संप्रजायते ॥४८१॥
तावत्समानं सर्वासां कालिकानां मयोदितम् ।
वक्त्रेषु बाहुष्वस्त्रेषु विशेषो भवति ध्रुवम् ॥४८२॥
तत्राधिक्यं प्रकर्तव्यमन्यत् सर्वं पुरोक्तवत् ।

[गुह्यकालीखण्डस्य प्रतिपादयिष्यमाणविषयनिर्देशः]

यावन्तोऽन्ये स्मृता न्यासा यावान् पूजाविधिक्रमः ॥४८३॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यावद्वाच्यं मयात्र हि ।
होमो बलिः सूर्यचन्द्रोपरागविहिताः क्रियाः ॥४८४॥
पवित्रारोहणं चैव दमनारोपणं तथा ।
वासन्ती शारदी पूजा तथा या पार्वणी भवेत् ॥४८५॥
धारणार्हाणि यन्त्राणि प्रयोगा ये च सिद्धिदाः[2] ।
शिवाबलिविधानं च [3]प्रसन्नाविधिरेव च ॥४८६॥
सर्वासां तत्समानं हि विज्ञेयं परमेश्वरि ।
गुह्यकालीमनूनां हि परिपाटीदृशी मता ॥४८७॥
काल्यः स्युः पञ्चपञ्चाशदुक्ताः सर्वागमेषु च ।
तासु मुख्या गुह्यकाली तस्याश्चैष विनिश्चयः ॥४८८॥

---

१. प्रचक्षते ख । २. सिद्धये ख । ३. प्रपन्ना ख ।

गुह्या सर्वासु कालीषु गुह्यकाली ततः स्मृताः ।

[अग्रिमपटलविषयनिर्देशः]

आप्रत्यूषादाशयनं यावत्कृत्यं भवेदिह ॥४८९॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि पूजाक्रमपुरःसरम् ।
तत्सर्वं सर्वतन्त्रेषु समानं परिकीर्तितम् ॥४९०॥
समासेन पुरा प्रोक्तं वक्ष्ये व्यासेन सांप्रतम् ।
इष्टं हि विदुषामेतत् समासव्यासधारणम् ॥४९१॥
योगक्षेमार्पितहृदां समासेनैव धारणम् ।
अपरिग्रहिणां व्यासधारणं यतिनां स्मृतम् ॥४९२॥

इति श्रीमहाकालसंहितायां यन्त्रगायत्रीषडङ्गन्यासोद्धारो नाम
पञ्चमः पटलः

महाकाल उवाच

मूलाधारे कुण्डलिनी सहस्रारे सदाशिवः ।
तयोर्यथा सामरस्यं तत्पूर्वं ते मयोदितम् ॥१॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां तादृशी भावना स्मृता ।
षट्चक्रैरूर्ध्वनयनं षट्चक्रैरवतारणम् ॥२॥
पातञ्जलेन यत्प्रोक्तं योगशास्त्रादिषु प्रिये ।

[प्रातःकृत्यनिरूपणम्]

शयनीयात्समुत्थाय सर्वं तत् समुदाचरेत् ॥३॥
प्रागेव सूर्योदयतो विदध्यान्मन्त्रकर्म च ।
स्मृतिप्रोक्तं मृद्ग्रहणं कृत्वा[1] प्रक्षालयेत् पदे ॥४॥

[दन्तधावनविधिः]

ततः समाहरेद् दन्तधावनं विहितैधसाम् ।
ते चापामार्गबदरीनिर्गुण्ठीबिल्ववासकाः ॥५॥
अशोकचम्पकप्लक्षपर्णजम्बूधवश्रुवाः [ध्रुवाः] ।
एषामन्यतमं काष्ठं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ॥६॥
चूर्णिताग्रं त्वचा युक्तं गृह्णीयान् मनुनामुना ।
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥७॥
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च तन्नो धेहि[2] वनस्पते ।
कामं सास्त्रं समुच्चार्य दन्तधावनमाचरेत् ॥८॥

[मुखप्रक्षालनविधिः]

वामहस्तोदकाधारादुदकं दीर्घधारया ।
आदाय दक्षहस्तेनाभिमन्त्र्य मनुनामुना ॥९॥
मुखं प्रक्षालयेद् देवि हृदीष्टां देवतां स्मरन् ।
तारकालादित्यबीजैः स हि मन्त्रः प्रजायते ॥१०॥

---

१. शौचाचारांस्तथा चरेत् घ ङ छ ।   २. देहि घ ।

[आचमनविधिः]

पुनरादाय वार्यन्यदाचामेन् मनुनामुना ।
मैवादुक्त्वामृतं ङेऽन्तं कूर्चमस्त्रं ततः परम् ॥११॥

[शिरोमार्जनविधिः]

पुनरन्यज्जलं दक्षकरे संस्थाप्य पार्वति ।
वामहस्तस्याङ्गुलीभिः संमन्त्र्य मनुनामुना ॥१२॥
वारत्रयं वामहस्ताङ्गुलीभिर्देवतां स्मरेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्याच्छिरसि मार्जनम् ॥१३॥
आमृतं बीजमादौ च ङेऽन्तो वै वरुणस्ततः ।
सर्वशेषे शिखामन्त्रो मन्त्रोऽयमभिमन्त्रणे ॥१४॥
प्रणवश्चित्कला ङेऽन्ता लज्जा ङेऽन्ता तथा स्मृता[1] ।
रावो ङेऽन्ता गुह्यकाली शेषे सर्वत्र हृन्मनुः ॥१५॥

[वस्त्रपरिधापनमासनग्रहणम्]

रात्रिवासः परित्यज्य धौते ते परिधाय च ।
व्याघ्राजिने कम्बले वा कौशे[2] वाप्यासने स्थितः ॥१६॥
कृतपद्मासनो धीरो गुरुं वै प्रथमं स्मरेत् ।

[गुरुध्यानम्]

प्रातः शिरसि शुक्लेऽब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ॥१७॥
वराभययुतं[3] शान्तं स्मरेत् तं नामपूर्वकम् ।
एवंरूपं गुरुं ध्यात्वा दशकृत्वो गुरोर्मनुम् ॥१८॥
जपेत् स परमो ङेऽन्तो गुरुः हृन्मनुना युतः ।
ततः पठन् श्लोकममुं[4] नमस्कुर्याद् गुरुं प्रिये ॥१९॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२०॥

[देव्या ध्यानविधिः सजपमानसोपचारपूजाविधिश्च]

उक्तरूपां ततो देवीं ध्यात्वा हृदयपङ्कजे ।
तदोपचारैः सम्पूज्य मानसैरेव सुन्दरि ॥२१॥

---

१. मृता ख छ ।
२. कौशेयाद्यासने ख घ ।
३. कृतं ख ।
४. मनुं क ङ ।

मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा तदनन्तरम् ।
जपं समर्प्य संस्तूय[1] नत्वा च शिरसा मुहुः ॥२२॥

[देव्या निदेशग्रहणविधिः]

गुरुदेवतयोर्मन्त्रदेवयोश्च क्षणं पुनः ।
ऐक्यं सञ्चिन्त्य गृह्णीयादाज्ञां बद्धाञ्जलिः पठन् ॥२३॥
देवि श्रीगुह्यकालि[2] त्वं देह्यनुज्ञां महेश्वरि ।
प्रयतिष्ये निदेशात्ते योगक्षेमार्थसिद्धये ॥२४॥
एवं निदेशं संगृह्य योगक्षेमप्रयोजनम् ।
विदधीत वरारोहे स्वं स्वं धर्ममलङ्घयन् ॥२५॥

[स्नानविधिः]

ततः पूजनवेलायां नद्यां सरसि वा गृहे ।
मलापकर्षणं स्नानं विधायादौ वरानने ॥२६॥
मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात् तन्त्रोक्तविधिना सुधीः ।

[ऋष्यादिप्रकारनिरूपणम्]

कस्मिंश्चित् कर्मणि भवेदृष्यादिस्तु षडङ्गकम् ॥२७॥
क्वचित् त्र्यङ्गं क्वचिच्चापि सप्ताङ्गं पुनरुच्यते ।
ऋषिश्छन्दो देवता च बीजं शक्तिश्च कीलकम् ॥२८॥
षडङ्गमेतज् जगदुस्त्र्यङ्गं पूर्वार्धमस्य हि ।
सप्ताङ्गें तत्त्वमधिकं प्रकारो न चतुर्थकः ॥२९॥
स्नानादिकाले ऋष्यादि त्र्यङ्गमेव प्रचक्षते ।
आदौ तारमनुस्मृत्य ततोऽस्य पदमुच्चरेत् ॥३०॥
गुह्यकालीयपूजाङ्गस्नानस्य तदनन्तरम् ।
कात्यायन ऋषिः प्रोक्तः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ॥३१॥
अप्यस्या वारुणी गुह्यकाली प्रोक्ता च देवता ।
मन्त्रस्नाने विनियोग इति बद्धाञ्जलिः पठेत् ॥३२॥
आचम्य मूलमन्त्रेण मासपक्षतिथीः , स्मरेत् ।
षट्कोणं चक्रमालिख्य मध्ये ताराङ्कितं जले ॥३३॥

---

१. संभूय ख । २. भोः गुह्यकालि ख ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥३४॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य मुद्रयाङ्कुशसंज्ञया ।
सूर्यमण्डलतः सर्वतीर्थान्यावाहयेत् प्रिये ॥३५॥
आप्लाव्य धूमलाख्येन कवचेनावगुण्ठ्य च ।
सतालत्रितयास्त्रेण रक्षयित्वा च तज्जलम् ॥३६॥
मूलमन्त्रेणाभिमन्त्र्य वारानेकादश द्रुतम् ।
मूलेन तिलकं कृत्वा षडङ्गं न्यस्य विग्रहे ॥३७॥
संगृह्य दक्षेण जलं वामहस्ते निधाय च ।
अङ्गुलीमध्यविलगत्पाथोबिन्दुभिरल्पकैः ॥३८॥
मूलमन्त्रैः सप्तवारं कृत्वा शिरसि मार्जनम् ।
गृहीत्वोर्व्वरितं तोयं नीत्वा नासाग्रदक्षिणे ॥३९॥
धमन्येडाख्यया देहान्तरवर्त्त्यघसञ्चयम् ।
समाकृष्य विनिःसार्य नाड्या पिङ्गलया पुनः ॥४०॥
तदाक्रान्ततया कृष्णवर्णं वारि विचिन्त्य[1] च ।
पुरतो भाविते वज्राश्मनि क्षिप्त्वा दशोत्तराम् ॥४१॥
संजप्य त्रिपदां मूलमन्त्रस्मरणपूर्वकम् ।
त्रिर्विनिर्मज्य कलशमुद्रया करबद्धया ॥४२॥
शिरोऽभिषिञ्चेन्[2] मूलेन वारान् द्वादश सप्त वा ।
ततः पुनर्मूलमन्त्रं समुच्चार्य वरानने ॥४३॥
गुह्यकालीं ततो देवीं तर्पयामि नमोऽस्त्विति ।
इत्युच्चरंस्ततो वारांस्त्रींस्तां सन्तर्पयेत् पुनः ॥४४॥
ततो जलात् समुत्थाय वाससी परिधाय च ।

[तिलककरणविधिः]

पुनराचम्य देवेशि विदध्यात् तिलकं सुधीः ॥४५॥
शाक्तानामथ शैवानां तिलकद्वितयं स्मृतम् ।
भस्मनादौ त्रिपुण्ड्रं स्याच्चन्दनेनापरं भवेत् ॥४६॥

---

१. विचित्य च ख । २. ०ऽभिषिच्य ख घ ।

[विभूतिधारणमन्त्रनिर्देशः]

विभूतिधारणं कार्यं वैदिकं तान्त्रिकं तथा ।
वैदिकं तत्परिज्ञेयमथर्वशिरसि स्थितम् ॥४७॥
तान्त्रिकं यत् तद् ब्रवीमि मन्त्रं विस्तारपूर्वकम् ।
त्रिपुण्ड्रधारणस्यास्य कीर्तिता ऋषयस्त्रयः ॥४८॥
क्रमाद्धि कालाग्निरुद्रसंवर्तनचिकेतसः ।
पंक्तिश्छन्दः पञ्चमहाभूतानि खलु देवताः ॥४९॥
फली बीजं रुट् च शक्तिरङ्कुशं कीलकं मतम् ।
महापातकसंभूतपापनाशे नियोगता ॥५०॥
संस्मृत्येत्थं दक्षकरे विभूतिं विनिधाय हि ।
आच्छाद्य वामहस्तेन कपोताभिनयात्मना ॥५१॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण त्रिवारमभिमन्त्रयेत् ।

[विभूत्यभिमन्त्रणमनुः]

तारसारस्वतकुणीफलीतर्जनिधूमलाः ॥५२॥
ततोऽनूद्याग्नितत्त्वाय कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
वायुतत्त्वं तथाप्तत्त्वं पृथिवीतत्त्वमेव च ॥५३॥
ङेऽन्तानि त्रीणि तत्त्वानि क्रमेणैव पृथक् पृथक् ।
सर्वत्र शेषे कूर्चास्त्रे ततो वेधी दुरी तथा ॥५४॥
दर्वीगुडद्रुमाश्चापि ततः पञ्चमहापदात् ।
भूतान्येकादशेन्द्रियाणि पावयद्वितयं ततः ॥५५॥
विसन्ध्यशेषदुरितं ततोऽनु शमयद्वयम् ।
भस्म तुभ्यं त्रपाबीजादस्त्रं हृच्छिर एव च ॥५६॥
एवमेतेनाभिमन्त्र्य वामहस्तस्य पार्वति ।

[विभूत्या शिरोमार्जनविधिः]

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च संहिताभ्यां हि भस्मना ॥५७॥
वक्ष्यमाणैः पञ्चमन्त्रैः कुर्याच्छिरसि मार्जनम् ।

[मार्जनपञ्चमन्त्रनिर्देशः]

प्रासादबीजतो ङेऽन्तो हृन्मन्त्रान्तः सदाशिवः ॥५८॥
त्रपा विशुद्धिर्नन्दिन्यै शेषे हार्दमनुस्ततः ।
लक्ष्मीबीजाच्चेतनायै ह्यन्तो मन्त्रः स एव हि ॥५९॥

कूर्चात् कला नादबिन्दुरूपिण्यै हृन्मनुर्मतः ।
डाकिनीतो गुह्यकाली ङेऽन्ता हृन्मनुना युता ॥६०॥
किञ्चिद् गृहीत्वा तस्यैव भस्मनो मुद्रया तया ।

[ललाटे भस्मना रेखाकरणमन्त्रः]

रेखां ललाटे मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन विन्यसेत् ॥६१॥
सारस्वतं तथा पाशः प्रासादस्तदनन्तरम् ।
रुद्र एवाहमस्यानु भूयासमिति कीर्तयेत् ॥६२॥
ततोऽनु वज्रकवचमेवेदमिति चोच्चरेत्[1] ।
भूयात् तत्सत्ततोऽप्यस्त्रं नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥६३॥
ततो दक्षकराद् वामकरे[2] भस्म निधाय च ।
वक्ष्यमाणेन मनुना जलेनालोडयेत् प्रिये ॥६४॥
वेदादिर्भुवनेशी च शाकिनी तदनन्तरम् ।
सम्बोधनतया वाच्या स्यात् प्रचण्डकरालिनी ॥६५॥
शिरोमन्त्रान्वितः शेपे एष आलोडने मनुः ।
वर्तुलं मण्डलं कृत्वा षट्कोणं तस्य मध्यगम् ॥६६॥
त्रिकोणं तस्य चाप्यन्तस्तदन्तः शाकिनीमपि ।
मूलमन्त्रेण चावेष्टय तत्सर्वं मण्डलं प्रिये ॥६७॥
दक्षहस्तेन चाच्छाद्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।
तारमैश्वत्रपालक्ष्मीयोगिनीकामिनीरुषः ॥६८॥
शाकिनीं डाकिनीं दत्वा एह्येहि पदमुद्धरेत् ।
सम्बुद्धिं भगवत्याश्च गुह्यकाल्यास्ततोऽपि च ॥६९॥
सान्निध्यमत्रावेशयेति त्वामहं दध इत्यपि ।
ततस्तेनाहमामुक्तो इतिशब्दं विनिर्दिशेत् ॥७०॥
वज्रतनुर्विरजाश्च भूयासं तदनन्तरम् ।
पाशं कालं तथा प्रेतं फट्त्रयं शिर एव च ॥७१॥
ततः कनिष्ठावर्ज्याभिर्दक्षिणाङ्गुलिभिः प्रिये ।
भस्माम्बुलोडितं धृत्वा मन्त्रान् दश समुच्चरन् ॥७२॥

---

१. चोद्धरेत् ख । २. वामे करे ख ।

स्थानेषु दशसु न्यस्येत् क्रमेण वरवर्णिनि ।
शाकिनी गुह्यकाली च ङेऽन्ता हृन्मन्त्रसंयुता ॥७३॥
ललाटे, कूर्चतो ङेऽन्ता कराली हृन्मनूक्षिता ।
वक्षसि, त्रपया ङेऽन्ता घोरनादा नमोऽन्विता[1] ॥७४॥
नाभौ, भूतार्णतो ङेऽन्ता विकटदंष्ट्रा हृदन्विता ।
बाहुमूले, स्मरोऽनङ्गाकूला ङेऽन्ता हृदा युता ॥७५॥
कफोणौ, योगिनी बीजान् मता ङेऽन्ता कपालिनी ।
हृदा युङ् मणिबन्धे, च पुनरङ्कुशबीजतः ॥७६॥
ज्वालामालिन्यथो ङेऽन्ता नमो युक्ता गले स्मृता ।
बधूबीजाच्च चामुण्डा ङेऽन्ता पार्श्वे नमो युता ॥७७॥
प्रेतबीजाद्भैरवी च ङेऽन्ता कट्यां हृदन्विता ।
डाकिनीबीजतः सिद्धिविकराली वरानने ॥७८॥
ङेऽन्ता हृन्मनुसंपृक्ता व्यापके परिविन्यसेत् ।
इति ते कथितं देवि समन्त्रं भस्मधारणम् ॥७९॥

[चन्दनकरणविधिः]

चन्दनेनापि तत्कार्यमित्येवं तान्त्रिकी स्थितिः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मनैव तु ॥८०॥
चन्दनेन द्वयं कुर्याद् वान्यथा[2] तिलकी भवेत् ।
विभूतिधारणं त्वादौ तिलकं चन्दनेन च ॥८१॥
विशेषतस्तु शाक्तानां द्वयमावश्यकं प्रिये ।
अतो निबोध विधिवत् तद्वच्चन्दनधारणम् ॥८२॥
वामे करतले श्वेतं स्थापयित्वा तु चन्दनम् ।
मूलमन्त्रं विलिख्यात्र ततोऽनामिकया ननु ॥८३॥

[चन्दनस्य भूमिप्रक्षेपमन्त्रः]

गृहीत्वा प्रक्षिपेद् भूमौ पञ्च मन्त्रान् समुच्चरन् ।
ताराद्याश्च हृदन्त्याश्च ङेऽन्ता अपि समीरिताः ॥८४॥

---

१. नमोऽस्तुते ख । २. नान्यथा ख घ ।

ज्ञानेच्छे च क्रियाशक्तिकामाः सर्वे कलोत्तराः ।
आच्छाद्य दक्षिणेनैव ततः करतलेन तु ॥८५॥
गृणन् मन्त्रं वक्ष्यमाणं कुर्यात् तिलकमीश्वरि ।
अलङ्घयन् भस्मरेखां तीर्यग्रेखां विधानतः ॥८६॥
मायाकामरुषः सर्वजनमोहिनि चोद्धरेत् ।
सर्वाद् वशङ्करीत्युक्त्वा मां ततो रक्षयुग्मकम् ॥८७॥
अस्त्रं शिरोयुतं मन्त्रो मया ते परिकीर्तितः ।
एतत् तन्त्रोदितं देवि प्रोक्तं तिलकधारणम् ॥८८॥

[वैदिकतान्त्रिकभेदेन सन्ध्यावन्दनस्य द्वैविध्यम्]

ततो द्विजातिश्चेत् सन्ध्यां वेदप्रोक्तां विधाय हि ।

[शूद्रस्य वैदिकसन्ध्यावन्दनेऽनधिकाराभिधानम्]

आचरेत् तान्त्रिकीं शूद्रो न पूर्वामुत्तरां चरेत् ॥८९॥
न शूद्रस्याधिकारोऽस्ति वेदमन्त्रस्य भाषणे ।
उच्चरन् नरकं याति दर्पान्मोहाद्धठाद् बलात् ॥९०॥
[1]प्राणायामत्रयं कृत्वा तन्त्रोक्तं प्रथमं प्रिये ।

[शिरोमार्जनविधिः]

ततोऽष्टादशकृत्वो हि मूलमन्त्रं समुच्चरन् ॥९१॥
विदध्यान् मार्जनं मूर्ध्नि तत आचमनं चरेत् ।

[समन्त्र आचमनविधिः]

सर्वत्रादौ मैधमुक्त्वा स्वधा शेषे नियोजयेत् ॥९२॥
विद्यातत्त्वं शिवतत्त्वं शक्तितत्त्वं तथैव च ।
ङेऽन्तमेतत्त्रितत्त्वं हि मध्ये योज्यं वरानने ॥९३॥

[अङ्गन्यासः]

नासापुटादीनि स्वानि तत्तन्मुद्रादिभिः स्पृशेत् ।
ततो दक्षिणहस्तेन कृत्वा वामकरे जलम् ॥९४॥
अङ्गुलीसन्धिविगलदम्भोबिन्दुभिरल्पकैः ।

[समन्त्रः आत्मशुद्धिः]

आत्मानं प्रथमं सिञ्चेत् ततश्चापि धरातलम् ॥९५॥

---

१. इतः पञ्चपंक्तयः ख घ पुस्तकयोः न सन्ति ।

वक्ष्यमाणैरष्टमन्त्रैः क्रमेणैव वरानने ।
विजया च तथापापा महालक्ष्मीस्तथैव च ॥९६॥
कालकर्णी सर्वसिद्धिदा भूतावेशिनी[1] तथा ।
आनन्ददा कालरात्रिः ङेऽन्ता सर्वाः प्रकीर्तिताः ॥९७॥
प्रणवप्रथमाः सर्वाः हृन्मन्त्रान्ताः प्रकीर्तिताः ।
ततोऽवशिष्टमुदकं गृहीत्वा दक्षिणे करे ।९८॥
उपनासं तच्च कृत्वा तया नाडयेरया पुनः ॥
देहान्तर्वर्तिवृजिनमाकृष्याजन्मसञ्चितम् ॥९९॥
तत्संभ्रमेण प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं विचिन्त्य च ।
विरेचितं पिङ्गलया विभाव्यास्त्रेण पार्वति ॥१००॥
पुनः[2] कल्पितवज्राश्मन्यन्ते मन्त्रमुदीरयेत् ।
प्रक्षिपेत् तदिति प्रोक्त[3]मघमर्षणमीदृशम् ॥१०१॥
नारसिंहात् चण्डघण्टा ङेऽन्ता फट्संयुतापि च ।
चन्दनाक्षतपुष्पादिसहितं सलिलाञ्जलिम् ॥१०२॥
आदायोत्थाय पुरतो मूलमन्त्रं प्रकीर्त्य च ।
सारस्वतं डाकिनीं च प्रलयं तदनन्तरम् ॥१०३॥
फेत्कार्यमन्त्रणे च श्रीगुह्यकाल्यास्ततोऽपि च ।
एष तेऽर्घः शिरोयुक्त[4]इमं मनुमुदीरयेत् ॥१०४॥
सूर्यमण्डलवर्तिन्यै देव्या अर्घं प्रदाय च ।
जपित्वा सप्तधा मूलमुपस्थानं ततश्चरेत् ॥१०५॥

[देव्युपस्थानमन्त्रः]

वक्ष्यमाणेन मनुना करावुत्तोल्य संहतौ ।
तारं मैधं च मायां च लक्ष्मीं कामं वधूमपि ॥१०६॥
शाकिनीं डाकिनीं चैव प्रलयं तदनन्तरम् ।
फेत्कारीं च ततो त्रैतां भासाकूटमनन्तरम् ॥१०७॥

---

१. ० ता वैष्णवी ख घ । २. पुरः क ।
३. ० मपकर्षण ० ख । ४. ङेऽन्तं ख ।

गुह्यकालों भगवतीमुपतिष्ठ इतीरयेत् ।
गारुडं नारसिंहं च विश्वं किन्नरमेव च ॥१०८॥
अङ्कुशप्रेतसोमांश्च कर्णिकाहारश्शृङ्खलाः ।
कृत्यामनाख्याकूटं च ततोऽस्त्रं हृच्छिरोऽपि च ॥१०९॥
उपस्थायामुना देवि मन्त्रेण द्वादशाञ्जलीन् ।

[देव्या द्वादशाञ्जलिदानमन्त्रः]

दद्यान् मन्त्रं समुच्चार्यं वक्ष्यमाणं क्रमेण हि ॥११०॥
ङेऽन्ताः सर्वाः सप्रणवाः मुखे शेषें नमोऽन्विताः[1] ।
चण्डा कराला च तथा भ्रामरी ललितापि च ॥१११॥
ज्वालिनी च तथाघोरा शूलिनी जयमङ्गला ।
कुरुकुल्ला फेत्कारिणी कालसङ्कर्षिणी ततः ॥११२॥
सर्वशेषे गुह्यकाली इत्येवं परिनिष्ठिताः ।

[सन्ध्यावन्दने अङ्गन्यासविधिः]

अङ्गन्यासं ततः कुर्यात् सन्ध्यायां वरवर्णिनि ॥११३॥
प्रणवं वाग्भवं ङेऽन्तं हृदयं हृन्मनूक्षितम् ।
वेदादिं च त्रपाबीजं शिरसे वह्निवल्लभाम् ॥११४॥
तारं लक्ष्मीं शिखायै च वषट् तदनु कीर्तयेत् ।
वेदादिं कूर्चबीजं कवचाय च संभ्रमम् ॥११५॥
वेदादिं च बधूबीजं ततो नेत्रत्रयाय च ।
वौषट्, ततोऽपि प्रणवं शाकिनीं तदनन्तरम् ॥११६॥
ङेऽन्तमस्त्रं स्वमन्त्रोक्तं पठित्वा न्यासमाचरेत् ।
ततो देवीं क्षणं ध्यात्वा यथाशक्ति सुरेश्वरि ॥११७॥
तत्तन्मन्त्रोदितां तत्तद्गायत्रीं दशधा जपेत् ।
पञ्चाशद् वा शतं वापि [2]फलभूमात्र भूयसि ॥११८॥
ततो जपं समर्प्यानु स्तुत्वा नत्वा विसर्जयेत् ।
चन्दनाम्भोऽक्षतं पुष्पं समादाय विवस्वते ॥११९॥

---

१. समन्विताः घ । २. फलं भूयो न भूयसि क ।

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण दद्यादर्घं निभालयन्[1] ।
दण्डं त्रपामथादित्यं समुच्चार्य वरानने ॥१२०॥
ङेऽन्तं तद्गोत्रमुक्त्वा श्रीसूर्यभट्टारकाय हि ।
एष तेऽर्घः शिरोमन्त्रः सूर्यायार्घनिवेदने ॥१२१॥
मूलमन्त्रस्य च ततो ऋष्यादि च षडङ्गकम् ।
विधायाष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं जपेत् प्रिये ॥१२२॥
जले यन्त्रं विलिख्यातो ध्यात्वावाह्यात्र चण्डिकाम् ।
उपचारैर्जलमयैः सम्पूज्य वरवर्णिनि ॥१२३॥
[2]मूलमन्त्रं समुच्चार्यामन्तं नाम तथैव च ।
अहं ततस्तर्पयामि नम इत्येवमुच्चरन् ॥१२४॥
देवीमुखेऽमृतधिया वारान् वै पञ्चविंशतिम् ।
अर्पयेदथ मार्तण्डमण्डले तां विचिन्त्य च ॥१२५॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य वक्ष्यमाणं समुच्चरन् ।
पश्यन् सूर्यं पुष्पयुतं प्रक्षिप्य सलिलाञ्जलिम् ॥१२६॥
विसर्जयेद् गुह्यकालीं सूर्यमण्डल एव हि ।
वाग्भवत्रितयं चादौ मायां रावं रुषं स्त्रियम् ॥१२७॥
डाकिनीं कुलिकं चापि भोगं सृष्टिं गदामपि ।
उद्यदादित्यवर्त्तिन्यै ततः परमुदीरयेत् ॥१२८॥
शिवचैतन्यमय्यै च प्रकाशेति पदं ततः ।
तस्यानु शक्तिसहितमार्तण्डपदमीरयेत् ॥१२९॥
ततश्च भैरवाधिष्ठात्र्यै शब्दं परिकीर्तयेत् ।
श्रीगुह्यकाली देवी च ङेऽन्ता हृच्छिरसी ततः ॥१३०॥
पञ्चपञ्चाशदर्णाढ्यो मन्त्रस्तव [3]मयोदितः ।
एवं सन्ध्याविधिः कृत्स्नः कर्तव्यः कमलानने ॥१३१॥

१. विभावयेत् क छ । २. इतः पंक्तिचतुष्टयं ख घ पुस्तकयोर्न दृश्यते ।
३. मयेरितः ख घ ।

[गुह्यकालीपूजोपक्रमः]

ततो देवीं स्मरंश्चित्ते किञ्चिदुन्मीलितेक्षणः ।
वर्त्मेतरन्नेक्षमाणः पूजामण्डप[1]माविशेत् ॥१३२॥
ततः प्रक्षालितपदः शुचिराचान्त एव च ।
उपविश्यासने योग्ये पानीयमभिमन्त्रयेत् ॥१३३॥

[पादप्रक्षालनजलाभिमन्त्रणविधिः]

तारं गन्धोदके कूर्चफट्मन्त्रेण वरानने ।
समुच्चरन्निमं मन्त्रं पुनः प्रक्षालयेत् पदे ॥१३४॥

[पादप्रक्षालनमनुः]

वेदादिमायाकामांश्च शिरसा सह संयुतान् ।
इति प्रक्षाल्य चरणे मनुमन्यं समुच्चरन् ॥१३५॥
पूर्वाभिमन्त्रितजलैराचामेत् कुशवत् करः ।

[आचमनमन्त्रः]

वेदादिमायाशाकिन्यः कामकूर्चसृणिस्त्रियः ॥१३६॥
ततस्त्रितत्त्वपदतो ज्ञानरूपिणि चोद्धरेत् ।
मानसं वाचिकं चैव कायिकं निर्विभक्तिकम् ॥१३७॥
पदत्रयं समाभाष्य वृजिनानीति कीर्तयेत् ।
ततः संशमयाशेषविकल्पानित्यपि स्मरेत् ॥१३८॥
ससन्ध्यपनयेत्युक्त्वा वाग्भवं कामलं तथा ।
पाशं सधनदं प्रोच्य सृणिं च शिरसा सह ॥१३९॥
अयमाचमने मन्त्रः समुद्धृत्य प्रकाशितः ।

[शिखाबन्धनमन्त्रः]

ततो मैधामृतं शक्तिं बीजत्रयमुदाहरेत् ॥१४०॥
चण्डचण्डेतिपदतो महाचण्डपदं पुनः ।
चण्डोग्रकापालिनि मां प्रोच्य रक्षद्वयं वदेत् ॥१४१॥
ततः सर्वप्रमादेभ्यो युग्मं युग्मं रुडस्त्रयोः ।
शेषेऽग्निकान्तेत्येतेन शिखाबन्धनमाचरेत् ॥१४२॥

---

१. ० मण्डल० ख घ ।

[द्वारदेवतान्यासः]

गत्वा द्वारं ततस्तारं श्वसन् ता द्वारदेवताः।
नमः शेषे समाभाष्य सम्पूज्य द्वारदेवताः॥१४३॥

[स्तोत्रपाठेन पूजासाक्षित्वाभिधानम्]

पूजागृहं सम्प्रविश्य दक्षपादपुरस्सरम्।
कृताञ्जलिः श्लोकयुगं पठन् देवि समाहितः॥१४४॥
ओं देवि मे प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभूत्सदा।
तन्निस्सारय चित्तात् त्वं पापं फट् फट् च ते नमः॥१४५॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥१४६॥
एवं पठित्वा क्रोधास्त्रे पुनरुच्चार्यं सुन्दरि।

[पूजोपक्रमकालिककर्तव्यतानिर्देशः]

पार्श्वद्वयं तथोर्ध्वाधः क्रोधदृष्टयावलोक्य[1] च॥१४७॥
दक्षपार्ष्णिसमाघातैस्त्रिभिर्विघ्नान् धरोद्भवान्।
त्रिभिस्तालैरान्तरिक्षान्नस्त्रमन्त्रावलोकनैः ॥१४८॥
दिव्यांस्तथा समुच्चार्यं निःश्रेणिमस्त्र[2]मुच्चरन्।
पूजावेदिं सम्प्रविश्य पूजार्हं वस्तु दक्षिणे॥१४९॥
संस्थाप्याध्वरुडस्त्राणि स्मृत्वा वस्तु विलोक्य च।
फलीं दीपशिखां स्पृष्ट्वा [?] नृसिंहं बीजमुच्चरन्॥१५०॥
अङ्गुल्या वारि संस्पृश्य पाद्यमप्यत्र [3]संस्पृशेत्।
ततो नानाविधान् मन्त्रप्रयोगान् समुदाचरेत्[4]॥१५१॥

[अधिष्ठानस्य ऋष्यादिनिरूपणम्]

तत्राप्यादावधिष्ठाने ऋष्यादि त्वं निशामय।
ओमस्य श्रीदेव्यधिष्ठानस्यात्रेय ऋषिर्मतः॥१५२॥
उक्तं छन्दो जगत्याख्यं सर्वे देवाश्च देवताः।
बीजं मैधं त्रपाशक्तिरङ्कुशं कीलकं स्मृतम्॥१५३॥

---

१. ० वलोकयेत् ख घ।
२. निःश्रेणीमन्त्र ० ख घ।
३. मा स्पृशेत् क।
४. ० हरेत ख घ।

विनियोगोऽस्य कथितो देव्यधिष्ठान ईश्वरि ।
इति संस्मृत्य मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन साधकः ॥१५४॥
बद्धाञ्जलिर्भक्तिपूर्वं देव्यधिष्ठानमाचरेत् ।

[देव्यधिष्ठानमन्त्रः]

तारं मैधं तथा पाशं [1]मायां लक्ष्मीं स्मरं स्त्रियम् ॥१५५॥
कूर्चं रावं डाकिनीं च फेत्कारीं प्रलयादनु ।
बीजानि द्वादश प्रोच्य एह्येहि भगवत्यपि ॥१५६॥
सम्बोधनतया गुह्यकालीं प्रविश चेत्यपि ।
पूजालयं कल्पयानु सान्निध्यं सन्निवेशय[2] ॥१५७॥
दृष्टिमर्चोपकरणे मां ततो रक्ष युग्मकम् ।
ततः सर्वोपद्रवेभ्यस्त्वयि शब्दं समालिखेत् ॥१५८॥
ससन्ध्यधिष्ठितायामहं पूजामारभेऽपि च ।
रावः प्रेताङ्कुशौ तार्क्ष्यं फट् स्वाहा तदनन्तरम् ॥१५९॥
कारयेदिति मन्त्रेण देव्यधिष्ठानमीश्वरि ।
ततो बद्धाञ्जलिः श्लोकपञ्चकं समुदाहरेत् ॥१६०॥
गुह्यकालि परेशानि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
अत्राधिष्ठानमाधेहि परिवारगणैः सह ॥१६१॥
यथाशक्ति यथालाभं त्वदर्थमुपकल्पिते ।
दृष्टिं निवेशयेशानि पूजोपकरणेऽखिले ॥१६२॥
जलेऽनुलेपने पुष्पे धूपे दीपे बलौ तथा ।
नैवेद्येऽपि च ताम्बूले राजोपकरणेऽपि च ॥१६३॥
अधिष्ठितायां त्वय्यम्ब विघ्नाः नंक्ष्यन्ति सर्वशः ।
भूतानि विद्रविष्यन्ति मम रक्षा भविष्यति ॥१६४॥
मनोरथाश्च मे सर्वे सेत्स्यन्ति त्वत्प्रसादतः ।
पूजा च सफला देवि भवित्री त्वत्कृपावशात् ॥१६५॥

---

१. भार्यां क ।   २. सन्निवेशयेत् क ख घ ङ ।

कृताञ्जलिः पठेदेवं शुद्धं वचनपञ्चकम् ।
ततस्तु पूजासामग्रीं शोधयेत् सकलां प्रिये ॥१६६॥
भिन्नैस्तत्तन्मन्त्रपाठैः प्लवस्पर्शावलोकनैः।
क्वचित् स्यात् वैदिको मन्त्रः क्वचिच्चापि हि तान्त्रिकः ॥१६७॥
उभयं क्वचिदेव स्यान् मद्वाक्यात्तस्य निर्णयः ।
सर्वेषामुपचाराणां शोधनाच्छुद्धिरीरिता ॥१६८॥
शुद्धं देव्यै प्रदातव्यं नान्यथा वै कदाचन ।

[पूजोपचारप्रकाराभिधानम्]

ते च षोडश विज्ञेया दश वा पञ्च वा पुनः ॥१६९॥

[पूजायां षोडशोपचारस्य प्राधान्यम्]

परोऽपरोऽवरो ज्ञेय आद्यो मुख्यतमः स्मृतः ।
अन्येषामपि तत्रान्तर्भावो भवति भामिनि ॥१७०॥

[षोडशोपचारविवरणम्]

आसनं पाद्यमर्घ्यं च तत आचमनीयकम् ।
मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं भूषणमेव च ॥१७१॥
गन्धः पुष्पं धूपदीपौ नेत्राञ्जनमतः परम् ।
नैवेद्याचमनीये च प्रदक्षिणनमस्कृतिः ॥१७२॥
एते षोडश निर्दिष्टाः उपचाराः शिवार्चने ।
एभिः षोडशभिः पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ॥१७३॥
उपचारांस्तदा सम्यग् दशैतान् वितरेत् सदा ।

[दशोपचारविवरणम्]

पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयं चत्वार्यनुक्रमात् ॥१७४॥
गन्धः पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
पुनराचमनीयं च दशैतान् संप्रचक्षते ॥१७५॥

[पञ्चोपचारविवरणम्]

पूर्वोदितानि चत्वारि चन्दनं पञ्च ते स्मृताः ।
अभावे गन्धपुष्पाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ॥१७६॥

[द्वात्रिंशदुपचारविवरणम्]

द्वात्रिंशदुपचारांस्तु राज्ञामाहुर्वरानने ।
आवाहनं स्वागतं च सन्निधापनमेव च ॥१७७॥
संस्थापनं सन्निरोधकरणं तदनन्तरम् ।
सम्मुखीकरणं चापि सिन्दूरालक्तके तथा ॥१७८॥
ताम्बूलं पादुके चापि छत्रं व्यजनचामरौ ।
आरात्रिकं पुष्पमाला ततश्चात्मनिवेदनम् ॥१७९॥
एवं यावद् यस्य शक्यं देयं तावद्धि तेन हि ।
अतः परं तु सामग्र्याः ऋष्यादिं विद्धि शोधने ॥१८०॥

[सामग्र्याः ऋष्याद्यभिधानम्]

ओमस्य श्रीगुह्यकालीपूजासम्भारवस्तुनः ।
जमदग्निर्ऋषिः प्रोक्तः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ॥१८१॥
देवता च तथोत्तानाङ्गिरा बीजं फली मता ।
शक्तिः कूर्चं भौवनेशी कीलकं परिपठ्यते[1] ॥१८२॥
पूजासम्भारसामग्रीशोधने विनियोगता ।
अतः परं तु प्रत्येकशोधनं त्वं निशामय ॥१८३॥

[भूमिशुद्धिमन्त्रः]

माया लक्ष्मीर्योगिनी च शाकिनी मैधमेव च ।
रक्षद्वन्द्वं च कूर्चास्त्रशिरांसि तदनन्तरम् ॥१८४॥

[भूम्यभिमन्त्रणविधिः]

भूमिशुद्धिरियं प्रोक्ता शृणु भूम्यभिमन्त्रणम् ।
प्रणवं कामबीजं च लक्ष्मीं वाराहि चेत्यपि ॥१८५॥
पवित्रा भव भूमे च कूर्चास्त्रानलवल्लभा ।
धरणीमभिमन्त्र्येत्थं स्वासनं शोधयेत् ततः ॥१८६॥

[स्वासनशुद्धिमन्त्रः]

तारसारस्वतावाद्यौ मायारावरमास्त्रियः ।
कामपीठायानु कामसंभवाय प्रकीर्तयेत् ॥१८७॥

---

१. परिकथ्यते ख घ ।

कामार्हते कूर्चमस्त्रं हृच्च स्वासनशोधनम् ।

[सर्वोपकरणशुद्धिमन्त्रः]

तत्रोपविश्य तदनु सर्वमन्यच्च शोधयेत् ॥१८८॥
पाशं सबिन्दुसलिलं मैधं प्रणवमेव च ।
काममायारमाकूर्चरावामृतनृसिंहकान् ॥१८९॥
उक्त्वा पवित्रोदकाय फट्द्वयं नम एव च ।
पूजायाः साधयित्वेत्थं कायवाक्चित्तशोधनम् ॥१९०॥
समाचरेद् येन सर्वं शोधितं स्यात् सुरेश्वरि ।
संस्पृश्य हृदयं वक्ष्यमाणमन्त्रमुदाहरेत् ॥१९१॥

[कायवाक्चित्तशोधनमन्त्रः]

तारमैधौ पाशकले मायामृतरमारुषः ।
भैरवीक्षेत्रपप्रेतान् शाकिनीं डाकिनीमपि ॥१९२॥
कायं वाचं चित्तमुक्त्वा मे शोधय च सन्धिमत् ।
अशेषवृजिनान्युक्त्वा तथैवापनयेत्यपि ॥१९३॥
स्वाहा शेषे चतुस्त्रिंशद्वर्णाढ्यो मनुरीरितः ।
सर्वेषामुपचाराणां शोधनं वच्मि सांप्रतम् ॥१९४॥
विहितं च निषिद्धं च सुकरं दुष्करं तथा ।
केषाञ्चित् शोधनं नास्ति केषाञ्चिदपि तन्मतम् ॥१९५॥

[आसनप्रकाराभिधानम्]

आसनं प्रथमं श्रेष्ठं काञ्चनं राजतं तथा ।
वास्त्रं वा चार्मणं कौशं दारवं पौष्पमेव च ॥१९६॥
पूर्वं पूर्वं भवेच्छ्रेष्ठमधमं चोत्तरोत्तरम् ।
दक्षे दद्यादासनं च भग्नं नैव प्रदीयते ॥१९७॥

[सकलसाधारण आसनशुद्धिमन्त्रः]

तारप्रासादशाकिन्यो डाकिनीचण्डविद्युतः ।
अशेषमासनं प्रोच्य पावयास्त्राग्निवल्लभा ॥१९८॥

[पाद्यादीनां शुद्धिविधिः]

पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयानां जलशोधनात् ।
शुद्धिरुक्ता वरारोहे तोयमूलान्यमूनि हि ॥१९९॥

[जलशुद्धिमन्त्रः]

तथाप्यस्ति विशेषोऽत्र तमपि व्याहरामि ते ।
तारो ङेऽन्तं हि वरुणदैवतं जलमप्युत ॥२००॥
कूर्चमस्त्रं कुशाग्रेण कुसुमेनाभिमन्त्र्य वा ।
आलोडयेत् तत् पाद्यं स्यादतो द्रव्यं निशामय ॥२०१॥
जलश्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते ।

[अर्घशुद्धिविध्यभिधानम्]

अर्घतोयं च पूर्वोक्तमन्त्रेणैव तु शोधयेत् ॥२०२॥
तत्तद् द्रव्यं प्रदातव्यं दानमन्त्रं निशामय ।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ॥२०३॥
सदूर्वैर्जगदम्बाया अर्ध्यमुत्तममुच्यते ।

[अर्घदानमन्त्रः]

तच्च मूर्ध्नि प्रदातव्यं स्वाहामन्त्रेण साधकैः ॥२०४॥

[आचमनीयशुद्धिविध्यभिधानम्]

तथैवाचमनीयस्य जलं संशोध्य पूर्ववत् ।
जातीलवङ्गकक्कोलघनसारैर्युतं प्रिये ॥२०५॥

[आचमनीयदानमन्त्रः]

[1]स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।

[मधुपर्कशोधनविधिः]

शृण्वतो मधुपर्कस्यं शोधने मन्त्रमुत्तमम् ॥२०६॥
मैधं पाशं त्रपां रावं काकिनीं नेमिमेव च ।
क्षेत्रपं प्रेतभैरव्यौ बीजे गोमधुनी ततः ॥२०७॥
फेत्कारीं पावय द्वन्द्वं कूर्चास्त्रे शिरसा सह ।

[मधुपर्कदानमन्त्रः]

एतेन शोधनं द्रव्यमाज्यं दधि मधूक्षितम् ॥२०८॥
[2]स्वधामन्त्रेणैव दद्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे ।
पूर्ववत् तेन मन्त्रेण स्नानीयं जलशोधनम् ॥२०९॥

---

१. सुधा ० ख ग । २. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति ।

तच्च मूर्ध्नि प्रदातव्यं नमःपदपुरस्सरम् ।

[स्नानीयजलवर्णनम्]

अन्यानिवेदितं तोयं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् ॥२१०॥
हेमादिकुम्भपात्रस्थं स्नानीयं जलमुच्यते ।

[वस्त्वर्पणमन्त्रस्यसामान्यनियमः]

अर्घ्यमाचमनीयं च दद्यात् स्वाहापदेन हि ॥२११॥
मधुपर्कं स्वधाशब्दैरन्यत् सर्वं नमःपदैः ।

[पात्रनिर्णयः]

पात्रमेषां प्रिये वक्ष्ये परिमाणपुरस्सरम् ॥२१२॥
यद्द्रव्यसंभवं चापि शक्याशक्यतया स्थितम् ।
कलधौतं मुख्यमादौ ताम्रकांस्ये ततः परम् ॥२१३॥
दारवं मार्तिकं पत्रपुटकीयं ततः परम् ।
अभावे पूर्वपूर्वेषां प्रशस्तश्चोत्तरोत्तरः ॥२१४॥
आदौ मुख्यतमं ज्ञेयं षोडशाङ्गुलसम्मितम् ।
मध्यमं द्वादशमितमधमं स्याद् दशाङ्गुलम् ॥२१५॥
वस्वङ्गुलविहीनं तु पात्रं नैव तु कारयेत् ।
सर्वत्र स्वर्णवत्ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम् ॥२१६॥

[वस्त्रनिर्णयः]

निर्णयं त्वथ[1] वस्त्रस्य समाकर्णय भामिनि ।
पट्टमादौ प्रशस्तं हि तद् रक्तं पीतनीलि च ॥२१७॥
कार्पासं शुभ्रमुचितं कदाचिद् रक्तमेव वा ।
अधमं पीतचित्रं[2] स्यात् न [3]तन्नीलीयुतं क्वचित् ॥२१८॥
शाणं क्षौमं तथोर्णं च प्रशस्तं सर्ववर्णयुक् ।
निर्दशां मलिनं जीर्णं तथा गात्रावलम्बितम् ॥२१९॥
परकीयं चाग्निदग्धं सूचीविद्धं तथैव च ।
उप्तकेशमधौतं च श्लेष्मरक्तादिदूषितम् ॥२२०॥

---

१. खलु क ।
२. ० वस्त्रं क ।
३. तत्र नीली ० क ।

नीलीयुक्तं चाखुजग्धं नैव देव्यै निवेदयेत् ।

[वस्त्रशोधनमन्त्रः]

अथास्य शोधने मन्त्रं शृणु सावहिता सती ॥२२१॥
मञ्यालक्ष्मीकामवधूशाकिन्यो डाकिनी रतिः ।
शक्तिर्विद्युन्मेखला च कर्णिका हार एव च ॥२२२॥
मोहिन्याश्च वशिन्याश्च संबुद्धिस्तदनन्तरम् ।
वस्त्रं पवित्रयेत्युक्त्वा फण्नमो वह्निवल्लभा ॥२२३॥

[भूषणनिरूपणम्]

भूषणं स्वर्णरूप्यादिनिर्मितं गात्रभूषणम् ।
तच्चाङ्गुलीयकटकहारकेयूरकङ्कणम् ॥२२४॥
काञ्चीनूपुरकैतङ्कं रत्नमुक्तादिनिर्मितम् ।
अधृतं पूर्वमन्येन ग्रथितं पट्टतन्तुना ॥२२५॥
अलङ्काराणीदृशानि देवीयोग्यानि सुन्दरि ।

[भूषणशोधनमन्त्रः]

पाशाङ्कुशक्षेत्रपालगारुडामृतशक्तयः ॥२२६॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं फडन्ते वह्निकामिनी ।
इति भूषणसंशुद्धिरुदिता तव पार्वति ॥२२७॥

[गन्धनिरूपणम्]

प्रशस्तानप्रशस्तांश्च गन्धानाकर्णयाधुना ।
कर्पूरं कुङ्कुमं चैव मृगनाभिरथाम्बरम्[1] ॥२२८॥
गोरोचना च कक्कोलं नखजातीफले तथा ।
अगुरुर्मलयोद्भूतो मधूको बिल्व एव च ॥२२९॥
पद्मसालशठी[टी]निम्बदारूणि विहितानि हि ।
यथाशक्ति यथालाभं देवीयोग्यं प्रचक्षते ॥२३०॥
किन्तु सर्वेषु गन्धेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।

[चन्दनशोधनमन्त्रः]

त्रपाबीजं ङेऽन्तमथो वदेद् गन्धर्वदैवतम् ॥२३१॥

---

१. रथावरम् ख० ।

ङेऽन्तं तथा चन्दनानुलेपनं कूर्चमस्त्रयुक् ।
इति संशुद्धिरुदिता चन्दनस्य वरानने ॥२३२॥

[कुसुमनिर्णयाभिधानम्]

कुसुमानां निर्णयं त्वं निशामय वरानने ।
अगन्धानि सुगन्धानि पत्ररूपाणि चैव हि ॥२३३॥
स्थलजानि च वार्जानि लतावृक्षोद्भवानि हि ।
कानिचिद् विहितानीह निषिद्धानि च कानिचित् ॥२३४॥

[निषिद्धकुसुमानि]

तुलसीभिरपामार्गैर्धुस्तूरैः सिन्धुवारकैः ।
अर्कपुष्पैर्वासकैश्च नैव देवीं प्रपूजयेत् ॥२३५॥

[विहितपुष्पाणि]

शिरीषैः कर्णिकारैश्च चम्पकैः कोविदारकैः ।
वकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरु[र ?]ण्टकैः ॥२३६॥
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य मृदुदूर्वाङ्कुरैरपि ।
काञ्चनारैरशोकैश्च पुन्नागैः केतकीदलैः ॥२३७॥
सेफालिकाभिर्यूथीभिर्जातीभिर्दमनैरपि ।
शतवर्गैः[पत्रै ?]र्मल्लिकाभिरम्लानैर्बन्धुजीवकैः ॥२३८॥
झिण्टीभिश्च जपापुष्पैः करवीरैश्च किंशुकैः ।
पारिजातैः पाटलैश्च पङ्कैर्नीलोत्पलैरपि ॥२३९॥
माधवीभिर्मरुवकैरपराजितयापि च ।
अश[स ?]नैश्च कदम्बैश्च द्रोणपुष्पैश्च केशरैः ॥२४०॥
अर्चयेत् कुसुमैरेतैर्देवीं साधकसत्तमः ।

[विल्वपत्रार्पणमहिमा]

विल्वपत्रं यथा प्रीतिकरं देव्या वरानने ॥२४१॥
न तथान्यत् किञ्चिदस्ति पुष्पेषु प्रीतिकारकम् ।
अतो यत्नेन दातव्यं बिल्वपत्रं त्रिपत्रयुक् ॥२४२॥

[पुष्पशोधनमन्त्रः]

अथैषां शोधने मन्त्रं समाकर्णय यत्नतः ।
प्रणवं च त्रपां लक्ष्मीं प्रासादं शाकिनीमपि ॥२४३॥

दशशब्दांस्ततो ङेऽन्तान् क्रमशः परिकीर्तयेत् ।
लक्ष्मीदैवतं चाद्यं पुष्पं पुष्पस्रगित्यपि ॥२४४॥
पत्रं पत्रस्रक् च ततो जलजं स्थलजं ततः ।
सगन्धमथ निर्गन्धं नानारूपमतः परम् ॥२४५॥
कूर्चमस्त्रं सर्वपुष्पशोधने मनुरीरितः ।

[धूपप्रकाराभिधानम्]

धूपभेदानथो वक्ष्ये नानाविधफलप्रदान् ॥२४६॥
यक्षधूपः पत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलकः ।
कृष्णागुरुः सकर्पूरो गुग्गुलुः श्रीफलं तथा ॥२४७॥
तथा सरलनिर्यासो वर्तिर्वामोदिवस्तुयुक् ।
चोरपुष्पी मुरामासी बालैलैलेयकर्च्चुराः ॥२४८॥
इत्यादयो द्रव्यभेदा धूपस्य परिकीर्तिताः ।
सर्व एव हि देवेशि महामायाप्रिया इमे ॥२४९॥
भिन्नं भिन्नं फलं तेषां तदपि व्याहरामि ते ।

[धूपविशेषाणां पृथक् पृथक् फलाभिधानम्]

अगुरुं धूपमावेद्य वाजपेयफलं लभेत् ॥२५०॥
देव्यै दत्वा पत्रिवाहं राजसूयफलं लभेत् ।

[पत्रिवाहस्य परिचयः]

गन्धेन पद्मसदृशं वर्णतः कुङ्कुमप्रभम् ॥२५१॥
मर्दितं तैलवत् स्निग्धं तूलितं तूलवल्लघु ।
महाशरभशङ्खस्थं सिन्धुद्वीपसमुद्भवम् ॥२५२॥
साधारणानामप्राप्यं पत्रिवाहं प्रचक्षते ।
महिषाक्षं घृताक्तं च दत्वाविद्या[1] [?]मथापि वा ॥२५३॥
अश्वमेधफलं प्राप्य दुर्गालोके महीयते ।
कर्पूरैः स्वर्गमाप्नोति चोरपुष्पाद् धनं बहु ॥२५४॥
वर्तिभिर्भोगशालित्वं मुरया वरकामिनीम् ।
अन्यै राजप्रियत्वं च शृण्वतः शोधने मनुम् ॥२५५॥

---

१. बिन्दु ० ख घ, विघ्न ० ङ ।

[धूपशोधनमन्त्रः]

वाग्भवं मान्मथं लक्ष्मीं नाक्षत्रं वैद्युतं तथा ।
पदानि चत्वारि ततो ङेऽन्तानि समुदाहरेत् ॥२५६॥
सर्वादिमूलं हि वनस्पतिदैवतमित्यदः ।
ततोऽनु दारुनिर्यासोऽप्सरोदैवतमित्यपि ॥२५७॥
सत्त्वाङ्गसम्भवस्तुर्यः कूर्चास्त्रे सर्वशेषगे ।

[दीपप्रकाराभिधानम्]

घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ॥२५८॥
अधमस्तरुबीजोत्थस्त्रिविधं दीपलक्षणम् ।
नेत्राह्लादकरः स्वर्चिः खेदतापविवर्जितः ॥२५९॥
सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।
दक्षिणेन प्रदातव्यः प्रदीपः श्रीविवृद्धये ॥२६०॥
उच्चैरेव स कर्तव्यो न तु भूमौ कदाचन ।
वर्तिः श्वेताथवा रक्ता न पीता नासितापि च ॥२६१॥
शाणं वादरजं वास्त्रं जीर्णं मलिनमेव च ।
उपयुक्तं तु नादद्यात् वर्तिकार्थं कथंचन ॥२६२॥
दशां विवर्जयेत् प्राज्ञो यद्यप्यहतवस्त्रजाम् ।
निर्वीजं चाथ कार्पासं तज्जातास्तन्तवोऽपि वा ॥२६३॥
प्रशस्ता दीपवर्तिः स्यात् कदाचित् नूतनाम्बरम् ।
तैजसं दारवं लौहं मार्तिकं नारिकेलजम् ॥२६४॥
तृणराजोद्भवं चापि दीपपात्रं प्रशस्यते ।
नैव निर्वापयेद् दीपं देवार्थमुपकल्पितम् ॥२६५॥
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
शुद्धयर्थं मन्त्रमेतस्य समाकर्णय भामिनि[1] ॥२६६॥

[दीपशोधनमन्त्रः]

तारं मैधं क्षेत्रपालं तेजो बीजं[2] सबिन्दुकम् ।
वह्निदैवतशब्दं च दीपशब्दं तथैव च ॥२६७॥

---

१. भाविनि ख घ ।

२. वित्तं (?) क ।

घृततैलाक्तशब्दं च ङेऽन्ताः शब्दाः क्रमादिमे ।
शेषे कूर्चास्त्रयोर्योगः कर्तव्यः कमलानने ॥२६८॥

[अञ्जनप्रकाराभिधानम्]

सौवीरं जाम्बवं तथ्यं मायूरं श्रीकरं तथा ।
दग्धिका मेघनीला च ह्यञ्जनानि भवन्ति षट् ॥२६९॥
पञ्चाद्यास्तु वरारोहे नानाशैलसमुद्भवाः[1] ।
भिन्नजातीयकाः सर्वाः दृषदो जलदत्विषः ॥२७०॥
गाढं निघृष्य चैतानि शिलायां[2] तैजसेऽपि वा ।
प्रदद्याद् जगदम्बाया अञ्जनार्थं सुरेश्वरि ॥२७१॥
घृततैलादियोगेन ताम्राद्यायोज्य[3] वह्निना ।
यदञ्जनं जायते तद् दग्धिका परिकीर्तिता ॥२७२॥
विधवा नाञ्जनं कुर्यान् महामायार्थमुत्तमम् ।
सधवा वा कुमारी वा अथवा स्वयमेव हि ॥२७३॥
न मृत्पात्रे योजयेत्तु साधको नेत्ररञ्जनम् ।
पुष्पेण तत् प्रदातव्यं न हस्तेन कदाचन ॥२७४॥
अमुष्य संशुद्धिमतः समाकलय[4] यत्नतः ।

[अञ्जनशोधनमन्त्रः]

सारस्वतं तारमाये नागं कामं रमां वधूम् ॥२७५॥
रावं च नारसिंहं च कहयुग्मं धकद्वयम् ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांसि स्युः शेषेऽञ्जनविशुद्धये ॥२७६॥

[नैवेद्यप्रकाराभिधानम्]

नैवेद्यमधुना वच्मि यद् यद्[5] देव्यै निवेदयेत् ।
भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च चर्व्यं चोष्यं च पञ्चमम् ॥२७७॥
भक्ष्यादिपञ्चकैः काली दत्तैरेवाशु तुष्यति ।
उपचारसहस्रैस्तु तथा तुष्टा न जायते ॥२७८॥

---

१. ० शैलेयसंभवाः घ ।
२. निशायां ? ख ।
३. तप्ताया योज्य क ।
४. समाकर्णय घ ।
५. कियद् क ।

यथा नैवेद्यसंभारैराशु तुष्यति कालिका।
तत्स्यादाममनामं च फलाद्याममुदीर्यते ॥२७९॥
अनाममन्नमांसादि पक्वान्नं द्वयमुच्यते।
नादत्तं विधिवत् किञ्चिद् दत्तं भवति नैव चेत् ॥२८०॥
अतो देव्यै प्रदातव्यं सर्वं मन्त्रपुरस्सरम्।
शाल्योदनं हविष्यं च हविर्युक्तं सशर्करम् ॥२८१॥
निवेदयेत् कालिकायै सर्वाणि व्यञ्जनानि च।
फाणितं च सिता सर्पिः दुग्धमावर्तितं तथा ॥२८२॥
दध्यनुद्धृतसारं च रसालां कूर्चिकामपि।
व्रीहयः सिकताभृष्टा लाजाः सचिपिटा अपि ॥२८३॥
सक्तवश्च तथा धानाः पृषदाज्यं तु लामकम्[?]।
उपस्कृतानि मांसानि मत्स्याश्च विविधा अपि ॥२८४॥
पूजासु नाममांसानि योजयेद् वै कदाचन।
क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिष्याणि च सर्वशः ॥२८५॥
परमान्नं पिष्टकं च यावकं कृशरं तथा।
[1]मोदकं भर्जिततिलं कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत् ॥२८६॥
नारिकेलं कपित्थं[च ?]द्राक्षामलकमेव च।
दाडिमं श्रीफलं कोलं कूष्माण्डं पनसं तथा ॥२८७॥
वकुलं च मधूकं च रसालाम्रातके ड्हुम्।
कदलीं क्षीरिणं तालं करुणं[?]कर्कटीमपि ॥२८८॥
जम्बीरं पिण्डखर्जूरं बीजपूरं च जम्भलम्।
हरीतकीमामलकं षड्विधं नागरङ्गकम् ॥२८९॥
मातुलुङ्गं च लकुचं लवलीं करमर्दकम्।
शृङ्गाटकं कशेरुं च शालूकं च मृणालकम् ॥२९०॥
कुमुदानां पङ्कजानां फलानि च निवेदयेत्।
कलायमुद्गस्तिमिताङ्कुराणि द्विदलानि च ॥२९१॥

---

१. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति।

आर्द्रकं मूलकं चैव कन्दनामानि यानि च ।
लशुनं च पलाण्डुं च वर्जयित्वा च निन्दितम् ॥२९२॥
रसालपनसादीनां फलानां गाढवद् रसम् ।
घृतपक्वं सितायुक्तं यावत् संभवति क्षितौ ॥२९३॥
नैवेद्यत्वेन तत्सर्वमुचितं वरवर्णिनि ।
बालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलादिभिः ॥२९४॥
इक्षुदण्डैस्तद्विकारैस्तथा गुडसितादिभिः ।
पूजयेत् जगतां धात्रीं सर्वकामार्थसिद्धये ॥२९५॥
निषिद्धानि न देयानि कीटाद्युपहतानि च ।
वर्जयित्वा तु पक्वान्नं फलानि च दधीनि च ॥२९६॥
देव्यै पर्युषितं नैव दातव्यं विभवे सति ।
फलानां खलु पक्वानामलाभेऽप्याममिष्यते ॥२९७॥
अथैषां शोधने मन्त्रः सर्वेषामेक उच्यते ।

[नैवेद्यशोधनमन्त्रः]

मायालक्ष्मीकाममैधरावकूर्चामृताङ्कुशान् ॥२९८॥
नैवेद्यादीनि संकीर्त्य शोधय द्वितयं ततः ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते सर्वेषां शोधने मनुः ॥२९९॥

[पुनराचमनीयनिर्देशः]

पुनराचमनीयं तु मुख एव प्रदीयते ।
शोधनं तस्य पूर्वोक्तमन्त्रेणैव वरानने ॥३००॥
नैवेद्यानन्तरं देयमित्येतस्य विनिश्चयः ।

[नमस्कारनिर्वचनम्]

शिरोऽञ्जलिद्वयोर्योगं नमस्कारं विदुर्बुधाः ॥३०१॥

[प्रदक्षिणलक्षणम्]

देवालयं वा देवं वा मण्डलीकरणेन यत् ।
परिभ्रमेद् दक्षिणेन तत् प्रदक्षिणमुच्यते ॥३०२॥
सप्तधा नवधा वापि मुखेन स्तुतिमीरयेत् ।

[दण्डप्रणामाभिधानम्]

निपतेद् भूतले दण्डप्रणामः स हि कथ्यते ॥३०३॥

न चैषां शोधने मन्त्रो वर्तते नापि दैवतम् ।
इति षोडश आख्याता उपचाराः सुरेश्वरि ॥३०४॥
यद्दैवताश्च यद्द्रव्यास्तथा यल्लक्षणा अपि ।
द्वात्रिंशतामतस्तेषां द्रव्यलक्षणदैवतम् ॥३०५॥
कथयामि वरारोहे मनस्तत्र निवेश्यताम् ।
आवाहनं स्वागतं च संस्थापनमतः परम् ॥३०६॥
सन्निधापनमस्यानु सन्निरोधनमेव च ।
सम्मुखीकरणं चापि षडिमान्युदितानि ते ॥३०७॥

[आवाहनलक्षणम्]

दूरस्थिताया यदिहागमनं कार्यते प्रिये ।
पूजार्थमत्र बलतस्तदावाहनमुच्यते ॥३०८॥

[स्वागतस्वरूपम्]

अनुगृह्य कृपादृष्टया यत् त्वयेह समागतम् ।
तत् शुभागमनं चास्तामिति स्वागतमिष्यते ॥३०९॥

[संस्थापनस्वरूपम्]

गच्छेदनादरात् कच्चिदिति तत् स्थापनं हठात् ।
संस्थापनं तत् कथितं मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥३१०॥

[सन्निधापनस्वरूपम्]

कल्पितेष्वासनेषूच्चैर्गृहीत्वा करयोर्द्वयोः ।
उपवेश्यते यन्मानेन तदुक्तं सन्निधापनम् ॥३११॥

[सन्निरोधनस्वरूपम्]

पूजायामसमाप्तायामेव यायादियं क्वचित् ।
एतदर्थं वर्जनं तत् सन्निरोधनमुच्यते ॥३१२॥

[सम्मुखीकरणस्वरूपम्]

परि[रा]वृत्य कदाचिच् चेदियं तिष्ठेद् रुषान्विता ।
इत्यर्थं समदृष्टिर्या सम्मुखीकरणं हि तत् ॥३१३॥
अस्मिन्नेवान्तर्भवन्ति त्रीण्यन्यानि शुचिस्मिते ।
सकलीकरणं चैकमवगुण्ठनमित्यपि ॥३१४॥

अमृतीकरणं चापि तल्लक्षणमथोच्यते ।

[सकलीकरणम्]

देव्यङ्गानां समस्तानां विभागो यत्र एव च ॥३१५॥
मुखचक्षुकराङ्घ्रीणां सकलीकरणं हि तत् ।

[अवगुण्ठनलक्षणम्]

शीर्षन्यस्ताञ्चला यद्वदधोवक्त्रा कुलाङ्गना ॥३१६॥
तिष्ठेत् तद्वद् यत्करणमवगुण्ठनमुच्यते ।

[अमृतीकरणलक्षणम्]

एवंरूपा मद्भवने त्वं तिष्ठेः सर्वदैव हि ॥३१७॥
इति या भावना शश्वदमृतीकरणं मतम् ।
सम्मुखीकरणेष्वेव विशन्त्येतानि सुन्दरि ॥३१८॥
संस्काररूपानेतांस्तु केचिदाहुर्विपश्चितः ।
मुद्रारूपांस्तथा केचिदुपचारानथापरे ॥३१९॥
ये ते भवन्तु नैषां हि शोधने मनुरिष्यते ।
अदैवत्यास्तथाऽद्रव्या व्यापाराः करयोरिमे ॥३२०॥
सदा देव्याः प्रीतिकरा योजनीया विजानता ।
[1]अथान्यानधुना वक्ष्ये द्रव्यदैवतपूर्वकान् ॥३२१॥

[सिन्दूरप्रकाराभिधानम्]

सिन्दूरमरुणग्रावसम्भूतवर्णमुत्तमम् ।
मध्यमं नागजं प्रोक्तं हारिद्रमधमं स्मृतम् ॥३२२॥
शिलाजं वा नागजं वा अतिरिक्तं प्रशस्यते ।
ललाटेऽप्यथ सीमन्ते तद्देयममरेश्वरि ॥३२३॥

[सिन्दूरशोधनमन्त्रः]

मैधकामरमावध्वः शाकिनीप्रणवावपि ।
ङेऽन्तं शचीदैवतं च सिन्दूरमपि तादृशम् ॥३२४॥
हूंफट् शिरोभिः सहितः सिन्दूरस्य च शोधने ।

[अलक्तकनिरूपणम्]

लाक्षारससमुद्भूतमलक्तं संप्रचक्षते ॥३२५॥

---

१. इतः ३४२ तम श्लोक पर्यन्तं क पुस्तके त्रुटितमस्ति ।

तत्पादयोः प्रदातव्यं नखेन्दुद्युतिकारकम् ।

[अलक्तकशुद्धिमनुः]

निश्रेण्यस्त्रं तस्य शुद्धिरल्पेनैव मयोदिता ॥३२६॥

[ताम्बूलप्रकाराभिधानम्]

अतो वदामि ताम्बूलं यद्द्रव्यं यच्च दैवतम् ।
आवश्यकश्चतुर्णां हि तत्र योगो वरानने ॥३२७॥
शलाटुमथवा शुष्कं पूगं शकलशः कृतम् ।
नागवल्लीपलासानि द्वितीयो भाग उच्यते ॥३२८॥
भागस्तृतीयः खदिरः स हि स्वल्पतया स्थितः ।
तुर्यो जलजसत्त्वानां दृषतां वापि भस्म हि ॥३२९॥
अत आमोदहेतूनि वस्तूनि परिचक्षते ।
घनसारो लवङ्गैलाजातीफलमथापि वा ॥३३०॥
काश्मीरजं मृगमदः कक्कोलस्त्वगपि प्रिये ।
पूर्वोदितं समुदितं ताम्बूलमिति कथ्यते ॥३३१॥

[ताम्बूलदानफलाभिधानम्]

एतद् दत्त्वा कालिकायै यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं कथितुं नैव शक्नोमि वरवर्णिनि ॥३३२॥
सर्वसंयोगि ताम्बूलं दत्त्वा देव्यै तु साधकः ।
मन्वन्तरत्रयं पूर्णमुमालोके स तिष्ठति ॥३३३॥
सुस्वरो रूपवान् वाग्मी कमलामोदवन्मुखः ।
स्त्रीणां प्रियो राजमान्यः कविश्चापि प्रजायते ॥३३४॥
अधुना त्वस्य संशुद्धौ मन्त्रं ते कथयाम्यहम् ।

[ताम्बूलशोधनमन्त्रः]

तारं मैधं त्रपां लक्ष्मीं वधूं कामं सुधामपि ॥३३५॥
प्रासादं ङेऽन्तयुग् विद्याधरदैवतमित्यपि ।
रागहेतुकशब्दं च ताम्बूलं तादृशं वदेत् ॥३३६॥
कूर्चास्त्रे सर्वशेषे स्यात् मनुस्ताम्बूलशोधने ।

[पादुकाविवरणम्]

पादुका तैजसाभावे दारवी संप्रदीयते ॥३३७॥

पादयोस्ते च दातव्ये दक्षभागे सुरेश्वरि ।

[पादुकाशुद्धिमन्त्र]

प्रणवं सोमबीजं च भ्यामन्ते पादुके ततः ॥३३८॥

सोमदैवतमीदृक् च हूं फट् स्वाहा ततः परम् ।

[पत्त्रोर्णविवरणम्]

उदीचीदिग्भवं स्थूलं रक्तं वा नीलमेव वा ॥३३९॥

हेमतन्तौ संग्रथितं पत्त्रोर्णमिति कथ्यते ।

[छत्रस्वरूपम्]

छत्रं तन्निर्मितं मुख्यं मध्यमं वाससा कृतम् ॥३४०॥

तालपत्रादिवेणूत्थमधमं परिचक्षते ।

[छत्रदानमाहात्म्यम्]

तत्प्रदाय नरो देव्यै जायते मेदिनीपतिः ॥३४१॥

[छत्रशुद्धिमन्त्रः]

तारमैधे पाशमाये लक्ष्मीकामौ वधूरुषौ ।

चण्डविश्वौ रावशक्ती डाकिनीकुलिकौ ततः ॥३४२॥

छत्रायेति समुच्चार्य ङेऽन्तं वापीन्द्रदैवतम् ।

वरुणाधिदैवतायापि ततः परमुदीरयेत् ॥३४३॥

शोधय द्वितयं प्रोच्य पावयद्वितयं वदेत् ।

शेषे कूर्चं तथा चास्त्रं शिरोऽमुष्य तु शोधने ॥३४४॥

[चामरविवरणम्]

चामरं शुभ्रमेवेह दातव्यं न तु मेचकम् ।

उत्तराशास्थचमरगवीनां पुच्छमेव तत् ॥३४५॥

हेमदण्डेन रजतदण्डेनाथ समन्वितम् ।

दैर्घ्याद् बालोच्चयाच् चापि फलाधिक्यं प्रजायते ॥३४६॥

तेषां बहूनामुत्सर्गे तले चन्द्रातपस्य हि ।

विधाय लम्बमानानि देव्यै तानि निवेदयेत् ॥३४७॥

[चामरदानमहिम्नोऽभिधानम्]

सार्वभौमत्वमेतेन भवेत् तस्य न संशयः ।

बह्वभावे देयमेकं शृणु तच्छोधने मनुम् ॥३४८॥

[चामरशोधनमन्त्रः]

मैधं मायां रमां कामं शाकिनीं डाकिनीं सृणिम् ।
वितानं चामरं चापि नव बीजानि चोद्धरेत् ॥३४९॥
ङेऽन्तं प्रकीर्त्य सुरभिदैवतं चामरं तथा ।
[1]कूर्चमस्त्रत्रयं शेषे नमः स्वाहा समुद्धरेत् ॥३५०॥

[व्यजनप्रकाराभिधानम्]

व्यजनं बर्हिरचितं प्रशस्तं मुख्यमेव च ।
मध्यमं वस्त्रघटितमधमं वेणुनिर्मितम् ॥३५१॥
परसञ्चालनीयं वा स्वसञ्चार्यमथापि वा ।
प्रदद्याद् भक्तिभावेन देव्यास्तापापनुत्तये ॥३५२॥

[व्यजनशुद्धिमन्त्रः]

प्रणवं कामलं कामं कलाकालीमहारुषः ।
व्यजनं शुक्लदण्डौ च ङेऽन्तं वै वायुदैवतम् ॥३५३॥
व्यजनं तद्वदेवाद्यं हूं फट् स्वाहा ततः परम् ।

[आरात्रिकप्रकाराभिधानम्]

आरात्रिकं नाम दीपवृक्षः पार्वति कथ्यते ॥३५४॥
सचोर्ध्वाधोभावसंस्थः पङ्क्तिसंस्थोऽपि वा भवेत् ।
मण्डलाकारसंस्थो वा त्रिविधः परिकीर्तितः ॥३५५॥
पात्रं तैजसमेवात्र नैव मार्तिकदारवे ।
वृक्षवत् स प्रकर्तव्यो यावच्छक्योच्चतान्वितः ॥३५६॥
वर्तिः पूर्ववदत्रापि द्रव्यं तैलं हविस्तथा ।
अवरो नैव कर्तव्यः नाधिको नवतेरपि ॥३५७॥
वामेन वादयन् घण्टां दक्षेणैनं समुद्वहन् ।
उत्थायामुं चालयन् हि नीचोर्ध्वाधः क्रमेण हि ॥३५८॥
स्तुतिं मुखेनेरयंश्च कुर्यादारात्रिकं प्रिये ।
सर्वं दीपवदस्यापि शोधनं दैवतं तथा ॥३५९॥

---

१. ० मन्त्रयं (?) ख ।

[पुष्पमालाप्रकाराभिधानम्]

पुष्पमाला प्रदातव्या विधायारात्रिकं जनैः ।
एकजातीयकैः पुष्पैर्भिन्नजातीयकैरपि ॥३६०॥
माला तथैकवर्णा स्याद् भिन्नवर्णापि वा भवेत् ।
सा पुनस्त्रिविधा ज्ञेया परिणाहवशेन तु ॥३६१॥
पतेद् हृदयपर्यन्तं या मालामोदशालिनी ।
वैकक्षिका सा विज्ञेया [1]सर्वावरतया स्थिता ॥३६२॥
अधोऽवलम्बिनी नाभेः कौसुमी या सगुच्यते ।
सा [2]धोरणी परिज्ञेया मध्यमा पूर्वतोऽधिका ॥३६३॥
आगुल्फस्रंसिनी या तु पादपद्मोपरि स्थिता ।
वनमालेति सा प्रोक्ता[3] सर्वाभ्यः स्रग्भ्य उत्तमा ॥३६४॥
कश्चिद् विशेषोऽत्राप्यस्ति तमपि व्याहरामि ते ।
करवीरैर्जवापुष्पैर्वकैर्दमनकैरपि ॥३६५॥
नीलोत्पलैः सरसिजैर्लवङ्गैर्नागकेसरैः ।
जातीभिर्मालतीभिश्च मल्लिकाचम्पकादिभिः ॥३६६॥
रचिता या भवेयुर्हि स्रजः परमशोभनाः ।
मालाभ्योऽन्याभ्य एतास्तु देव्याः प्रीतिप्रदायिकाः ॥३६७॥
अतोऽन्येषु प्रसूनेषु तिष्ठत्सु वरवर्णिनि ।
अमीभिः कुसुमैस्तासां ग्रथने यत्नमाचरेत् ॥३६८॥

[मालाशोधनमन्त्रः]

पूतत्वकारकमथो शृण्वासां मन्त्रमुत्तमम् ।
तारो मेधं त्रपा लक्ष्मीः कामः स्त्री शाकिनी रतिः ॥३६९॥
रावः प्रेतो भैरवी च नरसिंहस्ततः परम् ।
स्रजं युग्मं पावय चं कूर्चास्त्रानलवल्लभाः ॥३७०॥

[आत्मनिवेदनम्]

आत्मनः सेवकत्वेन यद् देव्यै विनिवेदनम् ।
तदात्मवेदनं प्रोक्तं नास्य द्रव्यं न शोधनम् ॥३७१॥

---

१. सर्वावतरया क, ख, घ, ङ, छ । २. माधारणी ख । ३. विख्याता ख, घ ।

निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां करावुत्तानयन् पुरः ।
दासस्तवास्मीति मुहुरात्मानं विनिवेदयेत् ॥३७२॥
अदः संस्काररूपं स्यान्मुद्रारूपमथापि वा ।
इति राजोपचारास्ते मया ते प्रतिपादिताः ॥३७३॥

[बलिद्रव्यप्रकाराभिधानम्]

त्वमिदानीं बलेर्द्रव्यं शोधनं च निशामय ।
भूतेभ्यो डाकिनीभ्यो वा परिवारेभ्य एव वा ॥३७४॥
अथापि मूलदेव्यै वा नैवेद्याद् भिन्नमेव यत् ।
दीयते स बलिः प्रोक्तस्तस्य द्रव्यं निशामय ॥३७५॥
माषभक्तं तथा लाजा धानाः सक्तव एव वा ।
पृथुकास्तण्डुला वापि स्विन्ना व्रीहय एव वा ॥३७६॥
आमिषा[1] वा यवागूर्वा कृशरं पायसं तथा ।
आज्याभिषिक्तं दधि वा पक्वान्नानि फलानि वा ॥३७७॥
दग्धमीनो भटित्रं वा तेमनीकृतमेव वा ।
मदिरा वा प्रदातव्या बलित्वेन वरानने ॥३७८॥

[मद्यस्य सकलसाधारणबलित्वनिषेधः]

सर्वसाधारणत्वेन बलिर्नैषः[2] प्रकीर्त्यते ।
अधिकारविशेषेण[3] दातुं शक्यो बलिः स्वयम् ॥३७९॥
तत्राधिकारिणो मत्तः शृणु यत्नेन चेतसा ।

[द्विजस्य मद्यदाने तत्पाने चानधिकारत्वनिर्देशः]

त्रय्यध्वनीनो भूदेवस्त्रिपदायज्ञसूत्रधृक् ॥३८०॥
न कदाचित् स्पृशेद् हालां न च देव्यै निवेदयेत् ।
वस्तुष्वन्येषु तिष्ठत्सु देवीप्रीतिकरादिषु ॥३८१॥
किमेतया वै सुरया कदन्नमलरूपया ।
भूतप्रेतपिशाचार्थं यत्समस्तं[4] सुरामिषम् ॥३८२॥

---

१. आमिक्षा ख, घ । २. बलिरेषः क ।
३. अधिकारविशेषेण ख, घ । ४. पूयमन्नं ख, घ ।

तद् ब्राह्मणेन नो देयं देव्यै, नात्तव्यमेव वा ।
न चैतया तुष्यति सा बहु चापि घृणीयते[1] ॥३८३॥
उद्विग्ना सा भवेत् तस्मात् दद्यान्नैव द्विजः सुराम् ।
हतो वेदो हतो धर्मः परलोको हतः स्वकः ॥३८४॥
कुलं हतं हता जातिर्हतं ब्राह्मण्यमेव च ।
प्राज्ञंमन्येन मूर्खेण पिबता ज्ञानतः सुराम् ॥३८५॥
किं कृतं साधितं किं वा किं च वा समुपार्जितम् ।
यदयं हतवान् स्वस्य सर्वं मद्योपसेवनात् ॥३८६॥
एवमेवाज्ञानमयो मामप्याशु हनिष्यति ।
उद्विग्नैवं महामाया भवेत्तदवलोकनात् ॥३८७॥
कैवर्तपुक्कसम्लेच्छरजकान्त्यावशायिनाम् ।
चर्मकारनटप्रोथमेदोवेणूपजीविनाम् ॥३८८॥
सिद्धदुर्गन्धिशुष्कान्नद्रवं मद्यं निवेद्य हि ।
सुधावत् पिबतां पुंसां कथं विट्सु नहि स्पृहा ॥३८९॥
अन्ये न सन्ति वस्त्वाद्या[2] नैवेद्यकरणाय किम् ।
अस्पृश्यं च तदानीय मह्यं ददति कौलिकाः ॥३९०॥
ऋचो यजूंषि सामानि ह्यथर्वाङ्गिरसस्तथा ।
वेदेभ्यः कोटिगुणितान् महामन्त्रांस्तथैव च ॥३९१॥
ये [3]प्लावयन्ति देहस्थान् मद्यैराकण्ठपूरितैः ।
मामपि प्लावयिष्यन्ति किमाश्चर्यं हि ते जनाः ॥३९२॥
सात्त्विकैरेव नैवेद्यैः कन्दैः पुष्पैः फलैर्दलैः ।

[भक्तिः जलं च पूजायामत्यावश्यकमिति निरूपणम्]

अभावे तोयभक्तिभ्यां सत्यं तुष्टा भवाम्यहम् ॥३९३॥
न मद्यमांसविस्तारैः प्रेतराक्षसभोजनैः ।

[प्रसङ्गतः ऋषीणां नामनिर्देशः]

ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः मरीच्यत्र्यङ्गिरोमुखाः ॥३९४॥

---

१. घृणायते ख, घ ।   २. वल्ल्याद्याः क ।
३. मेढ्रया वमन्ति क ।

एतेषामन्वयोद्भूताः पुनरन्ये सहस्रशः ।
कश्यपश्चैव दुर्वासा दत्तात्रेयश्च चन्द्रमाः ॥३९५॥
वृहस्पतिर्विश्रवाश्च शक्तिर्दक्षो मृकण्डुजः ।
नारदः कपिलो व्यासः कालाग्निर्जमदग्निजः[1] ॥३९६॥
दाक्षः कविरथर्वा च शाण्डिल्यो गौतमो मनुः ।
नाचिकेतो भरद्वाजः श्वेताश्वतर एव च ॥३९७॥
और्वो दधीचिश्च्यवनः ऋचीकश्च पराशरः ।
शातातपो लोमशश्च जैगीषव्यश्च देवलः ॥३९८॥
पैठीनसिवीर्तहव्यः संवर्तोऽगस्तिरासुरिः ।
उपमन्युर्मतङ्गश्च तथा वाजश्रवाः कठः ॥३९९॥
उद्दालकश्चारुणेय आश्वलायन एव च ।
उत्तङ्कश्च यवक्रीतः कात्यायनऋतस्रवाः ॥४००॥
एते चान्ये च मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ईजानाः क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥४०१॥
गृणन्तो निगमं सर्वं कुर्वन्तो दुश्चरं तपः ।
ध्यायन्तो निष्कलं ब्रह्म जपन्तो मामकं मनुम् ॥४०२॥
सर्वदा सात्त्विकैरेवोपचारैः पूजयन्ति माम् ।
सदा मय्यर्पितहृदः सदा मद्भावभाविताः ॥४०३॥
सदा मच्छरणं प्राप्ताः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।
वाय्वाहारा निराहारा ऊर्ध्वरेतस एव च ॥४०४॥
तपोबलाद् भ्रंशयितुं शक्रमप्यलमीदृशः ।
न निवेदितवन्तस्ते किमर्थं मदिरामपि ॥४०५॥
विज्ञायास्यां महादोषं निन्द्यतां पापहेतुताम् ।
गर्हाकरत्वं पातित्यकारित्वं पूतितामपि ॥४०६॥
परलोकविनाशित्वं तथा नरकगामिताम् ।
विप्रत्वजातिहन्तृत्वं म्लेच्छतुल्यत्वकारिताम् ॥४०७॥

१. यमदग्निजः ? ख ।

अतस्तत्यजुरेवेमां संगृह्य श्रुतिपद्धतिम् ।
यद्यस्याः दोषराहित्यं पुण्यकारित्वमेव च ॥४०८॥
स्यात् तदा ते कथं मह्यं ददुर्नैव सुरां द्विजाः ।
धर्मव्यवस्थां ज्ञात्वेत्थमन्येऽपि च द्विजातयः ॥४०९॥
निवेदयिष्यन्ति नैव मह्यं मद्यं कथंचन ।
बोधिता अपि शास्त्रार्थैरनादृत्य वचो मम ॥४१०॥

[द्विजस्य मदिराव्यवहारे भयप्रदर्शनम्]

मोहाद् व्यवहरिष्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
ये केचित् तान् धर्मराजः शासिष्यति न संशयः ॥४११॥
तीव्रैर्दण्डैर्महाघोरनरकादिनिपातनैः ।
इति सत्यं पुरा मह्यं प्रोवाच जगदम्बिका ॥४१२॥
तत्तेऽहमवदं देवि देवीवक्त्रोत्थिताक्षरैः ।
अतः परं श्रुत्युदितं धर्मं मद्वाक्यमेव च ॥४१३॥
देव्याज्ञां च समुल्लंघ्य ये दास्यन्ति सुरां द्विजाः ।
तेषां शास्त्री महामाया श्रोतव्यं शृण्वतः परम् ॥४१४॥
द्विजेतरः संप्रदद्याद् देव्यै मद्यं सदा रहः ।
स्वयं महाप्रसादं च भुञ्जीत प्रत्यहं प्रिये ॥४१५॥
मांसानि दग्धमीनाश्च सर्वदैव निवेदयेत् ।
[1]शूद्रादीनामथैतैस्तु सद्यस्तुष्यति कालिका ॥४१६॥
द्विजानां यावती निन्दा कथिता मद्यदानतः ।
शूद्राणां तावती ज्ञेया प्रशस्तिर्वरवर्णिनि ॥४१७॥
अतः शूद्रः प्रयत्नेन देव्यै मद्यं निवेदयेत् ।
दीर्घायुष्ट्वमरोगित्वं वाग्मित्वं राजमान्यताम् ॥४१८॥
पुत्रक्षेत्रकलत्रार्थपरिपूर्णत्वमेव च ।
अन्ते स्वर्गादिगमनं शूद्रः प्राप्नोति मद्यदः ॥४१९॥
श्रूयते यत्फलाधिक्यं तन्त्रादौ मद्यदानतः ।
तद्धि शूद्रपरं ज्ञेयं नैव द्विजपरं प्रिये ॥४२०॥

---

१. इतः पंक्तिचतुष्टयं क ख पुस्तकयोः न दृश्यते ।

स्वयं यदन्नो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ।
पितरश्च तदन्नाः स्युरित्येवं वैदिकी स्थितिः ॥४२१॥
प्राणिजातिषु सर्वासु मानुष्यमतिदुर्लभम् ।
मानुष्येष्वपि देहेषु शूद्रः श्रेष्ठोऽन्त्यजातितः ॥४२२॥
शूद्राच्छतगुणो वैश्यो वैश्यात् साहस्रिको नृपः ।
नृपात् कोटिगुणो विप्रो [1]यज्ञस्वाध्यायतत्परः ॥४२३॥
अत एव हि सर्गादौ जगत् सृष्ट्वा चराचरम् ।
यद् यत् सारतरं वस्तु तद् ब्रह्मादाद् द्विजातये ॥४२४॥
वेदाः षडङ्गशास्त्राणि क्षमा सत्यं तपो धृतिः ।
शौचं दानं दया धर्मो विवेकः कलभाषिता ॥४२५॥
त्यागः शान्तिश्च मर्यादा स्वाध्यायोऽध्यात्मचिन्तनम् ।
यज्ञाः सर्वे हविर्गव्यं पयो मेध्यान्न[2]मेव च ॥४२६॥
एतेषां विपरीतानि ददौ शूद्रेभ्य एव हि ।
त्रयाणामपि वर्णानां दासभावमदात् ततः ॥४२७॥
सर्वशिल्पोपजीवित्वं मन्त्रराहित्यमेव च ।
[3]अनाशीस्त्वमशौचत्वमपांक्तेयत्वमेव च ॥४२८॥
अस्पृश्यत्वमपाठित्वमसंभाष्यत्वमेव च ।
मद्यमांसोपयोगित्वं तद्विक्रेतृत्वमेव च ॥४२९॥
देवेभ्यस्तत्प्रदातृत्वं तदुत्पादित्वमेव च ।
म्लेच्छादिदेशगमनं तत्संपर्कित्वमेव च ॥४३०॥
महासाहसकारित्वं वेदाश्रोतृत्वमेव च ।
एतस्मात् कारणाद् देवि वेदमर्यादयानया ॥४३१॥
ब्रवीमि मदिरादानेष्वेषामेवाधिकारिता ।
दोषोऽणुरपि नैतेषां देवेभ्यो मद्यदानतः ॥४३२॥
फलातिरेकता चापि श्रूयते निगमादिषु ।
अतः प्रयत्नतः शूद्रो दद्याद् देव्यै परिश्रुतम् ॥४३३॥

---

१. ज्ञेयः स्वाध्याय० घ । २. मेध्यत्व क ।
३. इतः पङ्क्तित्रयं क घ पुस्तकयोर्नास्ति ।

तामेव वर्जयेद् विप्रः सदा प्राणात्ययेऽपि हि ।
निशम्यापीदृशान् दोषानथ चेद् दातुमिच्छति ॥४३४॥
स च सा च विजानाति धर्मं वा पापमेव वा ।
कदाचिदनुकल्पोक्तां दद्याद् देव्यै सुरां द्विजः ॥४३५॥

[मदिराया द्वादशविधस्यानुकल्पस्याभिधानम्]

उपमद्यानि ते वच्मि तानि देव्यवधारय ।
आर्द्रकस्य गुडस्यापि समे भावे भवेत् सुरा ॥४३६॥
चिरन्तनं चारनालमाब्दिकं त्वार्द्धिकं तथा ।
ताम्रपात्रे तथा क्षौद्रं पयो गव्यं तथात्र च ॥४३७॥
नारिकेलोदकं कांस्ये रीतौ तालरसोऽपि च ।
रसालश्च[स्य] रसो रङ्गे शङ्खे वा पानसो द्रवः ॥४३८॥
मधूकपुटके द्राक्षा तत्पुष्पं तद्दलेऽपि च ।
चिञ्चारसः पद्मपत्रेऽश्वत्थे कारकपानकम् ॥४३९॥
उपमद्यानि चैतानि द्वादश स्युर्वरानने ।

[द्विजस्य मद्यस्थाने तदनुकल्पदानेऽधिकाराभिधानम्]

द्विजो दित्सति चेन्मद्यं दद्यादेतानि नो सुराम् ॥४४०॥
एतान्यपि न देयानि सात्त्विकैधर्मभीरुभिः ।
मद्यं वाप्युपमद्यं वा मद्यं नाम न गच्छति ॥४४१॥
पातित्यं किन्तु नामीभिस्तैरेव[1] पतितो भवेत् ।
इति ते कथितः कृत्स्नो निषेधो विधिरेव च ॥४४२॥
मद्यदाने वरारोहे शोधनं श्रृण्वतः परम् ।
मद्यानामुपमद्यानामेकमेव भवेद्धि तत् ॥४४३॥
ये प्रयच्छन्ति तेऽनेन मनुना शोधयेत्तु[2] तत् ।

[मद्याय तदनुकल्पस्य च शोधनमन्त्रः]

तारः सारस्वतः पाशः कुलकान्ता स्मरो रमा ॥४४४॥
कूर्चोऽङ्कुशः शाकिनी च छन्दो योगिन्यनन्तरम् ।
प्रेतो भैरव्यमा शक्तिर्नृसिंहो डाकिनी तथा ॥४४५॥

---

१. ० भिस्तथैव (?) ख । २. शोधयन्तु ख ।

प्रलयव्ययफेत्कारी कर्णिकाहारशृङ्खलाः ।
शेषे भासाभिधं कूटं चतुर्विंशतिरित्यतः[1] ॥४४६॥
डाकिनी दैवतं ङेऽन्तं तथा चैव सुरा बलिः ।
[2]पुनरेव हि वक्तव्यं तद्वन्निर्ऋतिदैवतम् ॥४४७॥
पुनर्मांसबलिस्तद्वच्छुद्धिं देहि द्वयं ततः ।
दोषं[3] नुदद्वयं प्रोच्य प्रणवद्वितयं ततः ॥४४८॥
कूर्चयुग्मं चास्त्रयुगं शिरोऽन्तो मनुरीरितः ।
एवं संशोध्य वस्तूनि सर्वाण्येव वरानने ॥४४९॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण समष्टिव्यष्टिशोधनम् ।
उक्तानामप्यनुक्तानां शोधितानामशोधिनाम् ॥४५०॥
कृताकृतानां सर्वेषां शोधनेऽयं [4]महामनुः ।
पृथक् पृथक्तया तत् तत् द्रव्यशुद्धिर्यदि प्रिये ॥४५१॥
कर्तुं न शक्यते तर्हि मन्त्रेणैतेन निश्चितम् ।
सर्वेषां शुद्धिरुदिता द्रव्याणामर्हणाजुषाम् ॥४५२॥
सर्वेषामुपचाराणां राजार्हाणामपि प्रिये ।
मन्त्रेणैकेन भवति विशुद्धिः शिववाक्यतः ॥४५३॥
तारं मैधत्रयं व्रीडां कामक्रोधौ वधूरमे ।
रावाङ्कुशौ तार्क्ष्यकाल्यौ सुधासोमौ रुचिक्रमौ ॥४५४॥
नृसिंहं मेखलाकुण्डे डाकिनीहारकर्णिकाः ।
तुरीयाहंसकूटौ च अस्त्रे ह्याग्नेयवारुणे ॥४५५॥
कूर्चमस्त्रत्रयं शीर्षं मन्त्रोऽयमुदितस्तव ।
यावन्ति शोध्यवस्तूनि संभवन्ति धरातले ॥४५६॥
तावन्त्यनेन मन्त्रेण शोधितानि स्युरीश्वरि ।
रीत्यानया द्रव्यशुद्धिं विधाय वरवर्णिनि ॥४५७॥

[कामपीठासनस्य ऋष्यादिनिर्देश]

कामपीठासने वस्तु स्मरेदृष्यादि साधकः ।
तारादस्य ङसन्तं श्रीकामपीठोपवेशनम् ॥४५८॥

---

१. ० तिबीजतः ख घ । २. इयं पंक्तिः ख, घ पुस्तकयोरेव दृश्यते ।
३. इतः पञ्च पंक्तयः ख पुस्तकेन दृश्यन्ते । ४. सदा मनुः ख ।

नारायण ऋषिः प्रोक्तः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ।
कूर्मरूपी विष्णुरपि देवता परिकीर्तिता ॥४५९॥
विनियोगस्तु पूजार्थं कामपीठोपवेशने ।
इति संस्मृत्य सिद्धार्थाक्षतानादाय पार्वति ॥४६०॥

[समन्त्रःविघ्नापसारणविधिः]

तारं ततो महाक्रोधं दारयद्वितयं ततः ।
विघ्नं हूं फट् सर्वशेषे विकीर्यानेन तान् प्रिये ॥४६१॥
पार्ष्णिघातत्रयेणान्तरायान् भौमान् विनाशयेत् ।
तालत्रयेणान्तरिक्षान् दिव्यान् दिव्येक्षणेक्षणैः ॥४६२॥
धृत्वासनं ततो ब्रूयाद् वैदिकं तान्त्रिकं मनुम् ।

[आसनशुद्धिमन्त्रः]

पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ॥४६३॥
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ।
आदावमुं पठित्वैवं तान्त्रिकं मन्त्रमुच्चरेत् ॥४६४॥

[आसनशुद्धेस्तान्त्रिकमन्त्रः]

तारं मैधं धरा बीजं बिन्दुनादविभूषितम् ।
मामुक्त्वा धारयद्वन्द्वमासनं पावय द्वयम् ॥४६५॥
पवित्रे वैष्णवि प्रोच्य हूं फट् स्वाहा च पश्चिमे ।
इति तान्त्रिकमुच्चार्य प्रणवं समुदाचरेत् ॥४६६॥
आधारशक्तिकमलासनाय हृदयं ततः ।
तारं मैधं कामपीठाय नमस्तदनन्तरम् ॥४६७॥
एवं सम्पूज्य निःश्रेण्यस्त्राभ्यां तत्रोपविश्य हि ।
बध्वा वीराद्यासनं च स्थित्वा चोदङ्मुखस्तथा ॥४६८॥
वामे गुरुभ्यो दक्षे च गणेशाय ततः परम् ।
मध्ये श्रीगुह्यकाल्यै च नमः सर्वत्र योजयेत् ॥४६९॥
पुष्पं गृहीत्वा गन्धाक्तं वक्ष्यमाणं मनुं पठन् ।
कराभ्यां मर्दयित्वा च समाघ्रायोपनासिकम् ॥४७०॥

वामभागे त्यजेत् पुष्पं दूरतोऽनवलोकयन्[1] ।
तारं मायां तथा कूर्चं फट्त्रयं वह्निवल्लभा ॥४७१॥

[भूतशुद्धिविधिः]

भूतशुद्धिं ततः कुर्यादघतृण्या [?] महारणिम् ।
तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि मनो दत्वा निशामय ॥४७२॥
हृत्पुण्डरीकादात्मानं ज्वलद्दीपशिखाकृतिम् ।
सुषुम्णा वर्त्मना [2]ब्रह्मबीजमन्त्रेण मस्तके ॥४७३॥
सहस्रदलमध्यस्थे संयोज्य परमात्मनि ।
पञ्च भूतानि वै लिङ्गशरीरप्रकृतीनि हि ॥४७४॥
तत्र तत्र विलीनानि तत्तद्रूपैर्विचिन्त्य च ।
देहभूमिं लिङ्गपीठभुवि वारिणि तज्जलम् ॥४७५॥
हृत्तेजसि च तत्तेजोमुखसंस्थे समीरणे ।
तं वायुं भालगगने तदाकाशं विचिन्त्य च ॥४७६॥
जीबात्मानं च संयोज्य परमात्मनि निश्चलम् ।
बुद्ध्यहङ्कारप्रभृतीन् सर्वान् लीनान् विभाव्य च ॥४७७॥
वामनासापुटेनैव पूरयित्वा समीरणम् ।
सबिन्दुं वायुबीजं च धूम्रवर्णं विभाव्य च ॥४७८॥
तदेव वीजं देवेशि पञ्चाशद्वारमीरयेत्[3] ।
तदुत्पन्नेन वातेन शुष्कं देहं विचिन्त्य च ॥४७९॥
दक्षनासापुटेनैव रेचयेद् वरवर्णिनि ।
पुनस्तेनैव मार्गेण वायुमुत्तोल्य सर्वशः ॥४८०॥
सनादं तेजसो बीजं रक्तवर्णं समुच्चरत्[4] ।
पञ्चाशद् वारं देवेशि दग्धं देहं विचिन्त्य च ॥४८१॥
वामनासापुटेनैव भस्मरूपेण पाप्मना ।
सहैव रेचयेद् वायुं ततो नासापुटेन च ॥४८२॥

---

१. ० नवलोकयेत् क । २. महावज्र क ।
३. ० मीरयन् ख, घ, पीडयन् ङ । ४. समुच्चरेत् ख ।

वामेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलमध्यगम् ।
विभाव्य परमात्मानं चन्द्ररूपं वरानने ॥४८३॥
सानुस्वारं वारिबीजं पञ्चाशद्वारमुच्चरन् ।
तस्माच् चन्द्रात् सुधावृष्ट्या देहमाप्लाव्य सुन्दरि ॥४८४॥
भूबीजेन सनादेन शुद्धं संयोज्य विग्रहम् ।
लीनीकृतानि यानीह पञ्चभूतानि वै पुरा ॥४८५॥
यथास्थानं स्थापयित्वा[1] ब्रह्मबीजं पुनर्गृणन् ।
अहङ्कारादिभिस्तत्त्वैः सहैव[2] परमात्मनः ॥४८६॥
जीवात्मानं समाकृष्य स्थापयित्वा हृदम्बुजे ।
देवरूपमथात्मानं चिन्तयेत् क्षणमूर्जितः ॥४८७॥
भूतशुद्धिरियं प्रोक्ता महाघौघप्रणाशिनी ।

[भूतापसारणविधिः]

पौराणिकेन मन्त्रेण तान्त्रिकेण तथैव च ॥४८८॥
भूतापसारणं कुर्याद् विकीर्य श्वेतसर्षपान् ।
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ॥४८९॥
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ॥४९०॥
अपसर्पन्तु ते सर्वे कालीपूजां करोम्यहम् ।
मैधमायामहाक्रोधप्रेतकूर्चोग्रभैरवीः ॥४९१॥
नृसिंहं डाकिनीं चैव फेत्कारीं तदनन्तरम् ।
पिशाचभूतवेतालराक्षसानिति कीर्तयेत् ॥४९२॥
उत्सारयद्वयं प्रोच्य यावत् पूजां करोम्यहम् ।
अन्ते कूर्चास्त्रमूर्द्धानो भूतप्रोत्सारणे मनुः ॥४९३॥
भूतशुद्धिं विधायेत्थं स्वं स्वं ध्यानं विधाय च ।
तत्तन्मन्त्रषडङ्गीयन्यासं कुर्वीत साधकः ॥४९४॥

---

१. छादयित्वा क । २. सदैव ख ।

[प्राणायामविधिः]

प्राणायामं ततः कुर्यात् तमपि व्याहरामि ते ।
मूलमन्त्रस्य जापेन वारं षोडशकेन हि ॥४९५॥
वामनासापुटेनैव पूरयित्वाऽनिलं बलात् ।
पुनस्तस्य चतुःषष्टयावृत्त्या वायुं विकुम्भ्य च ॥४९६॥
पुनर्द्वात्रिंशदावृत्त्या[1] मूलमन्त्रस्य पार्वति ।
नासापुटेन दक्षेण रेचयेत् सकलानिलम् ॥४९७॥
प्रकारेणेदृशेनैकः प्राणायामोऽभिजायते ।
आवश्यकं तत्त्रयं हि फलाधिक्यं तदुच्चये[2] ॥४९८॥

[मातृकान्यासः]

आरभेत ततो न्यासं मातृकाख्यं महाफलम् ।
स च नानाविधो ज्ञेयो यावच्छक्यं विधीयते ॥४९९॥
भेदाः कियन्तस्तस्यैव प्रकाश्यन्ते मया तव ।
सर्वं एव हि कर्तव्यो नास्त्यत्र नियमः प्रिये ॥५००॥
अकृते नैव दोषः स्यात् फलाधिक्यं कृते पुनः ।
तत्रादावभिधास्येऽहं शुद्धं प्रकृतिरूपिणम् ॥५०१॥
ततोऽनु सकलान् वक्ष्ये सर्वान् विकृतिरूपिणः ।

[मातृकान्यासस्य ऋष्याद्यभिधानम्]

न्यासस्य मातृकाख्यस्य ब्रह्मा ऋषिरुदीर्यते ॥५०२॥
छन्दो गायत्र्यपि प्रोक्ता देवतास्य पुनः प्रिये ।
मातृकाशब्दचरमे सरस्वत्यभिधीयते ॥५०३॥
हुलाबीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय एव च ।
तत्तद्दैवतमन्त्राङ्गत्वेनेति च निरूप्य हि ॥५०४॥
मातृकान्यास एवास्य विनियोग इतीष्यते ।

[मातृकान्यासान्तर्गत ऋष्यादि न्यासः]

स्मृत्वा करपुटेनैवं चरेदृष्यादिमस्य हि ॥५०५॥

---

१. ० द्वाविंशदावृत्त्या क । २. तदुच्यते ख ।

ब्रह्मणे ऋषये हार्दं शिरसि प्रतिविन्यसेत् ।
गायत्र्यै छन्दसे हृच्च मुख एव निवेशयेत्[1] ॥५०६॥
श्री मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमो हृदि ।
हल्भ्यो बीजेभ्यो नमश्च गुह्यमध्ये प्रविन्यसेत्[2] ॥५०७॥
स्वरेभ्यस्त्वथ शक्तिभ्यो नमो युञ्जीत पादयोः ।
प्रणवाद्यानिमान् सर्वान् विन्यस्य स्वकलेवरे ॥५०८॥
नमः श्री गुह्यकालीति मन्त्राङ्गत्वेन चेत्यपि ।
वर्णन्यासेऽपि च विनियोगाय नम इत्यपि ॥५०९॥
करसम्पुटयोर्न्यस्येदृष्यादिर्मातृकाभिधः ।

[मातृकान्यासान्तर्गतकरषडङ्गन्यासः]

एतस्या एव हि करंषडङ्गन्यास उच्यते ॥५१०॥
कुणपादिशतघ्नान्तं मध्ये वै बीजपञ्चकम् ।
आद्यन्तयोर्नादपाशौ हृदयाय नमो हृदि ॥५११॥
शीर्षकादिमहेत्यन्तं पञ्चबीजानि मध्यतः ।
प्रथमान्त्ये क्षेत्रकले शिरसेऽनु शिरो मनुः ॥५१२॥
कीलादिरज्जुचरमं मध्ये स्यादर्णपञ्चकम् ।
स्थाणुश[स]र्वौ पुरः पश्चात् शिखायै वषडित्यपि ॥५१३॥
उन्माथाद्यिरुणीशेषं पञ्चबीजानि मध्यतः ।
दुर्द्धर्षवाग्भवावादिचरमस्थौ वरानने ॥५१४॥
वर्मणे वर्ममनुना सहितः परिकीर्तितः ।
छुरिका पूर्वपाल्यन्तं मध्यतोऽक्षरपञ्चकम् ॥५१५॥
ताराश्वत्थावादिशेषौ ततो नेत्रत्रयाय हि ।
नेत्रमन्त्रेण सहितः कथितस्तव सुन्दरि ॥५१६॥
कुण्यादिद्रुमपर्यन्ता भवेन् मध्ये नवाक्षरी ।
आद्यन्ते नादनिःश्रेण्यावस्त्रायास्त्रमनूद्धृतः ॥५१७॥
इति ते मातृकान्यासः कराङ्गन्यास ईरितः ।

[मातृकाध्यानम्]

शृण्वतो मातृकाध्यानं यद्ध्यात्वा न्यासमाचरेत् ॥५१८॥

---

१. निवेदयेत् ख घ । २. प्रतिन्यसेत् ख ।

मातृका श्वेतदेहाभा त्रिनेत्रा शशिशेखरा ।
पञ्चाशद्वर्णरचितमुखबाहुशिरःपदा ॥५१९॥
चतुर्भुजा वामदोर्भ्यां सुधाकुम्भं च पुस्तकम् ।
दधती दक्षहस्ताभ्यां मुद्रामक्षस्रजं तथा ॥५२०॥
तुङ्गपीनस्तनी स्मेरमुखी श्वेताम्बुजासना ।

[मानसोपचारैः मातृकापूजाविधिः]

ध्यात्वेत्थं मानसैरेवोपचारैः परिपूज्य च ॥५२१॥

[सर्वाङ्गेषु अक्षरविन्यासक्रमः]

अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् बिन्दुसमन्वितान् ।
अङ्गेषु वक्ष्यमाणेषु विन्यसेदक्षरान् क्रमात् ॥५२२॥
ललाटे मुखवृत्ते च दक्षे नेत्रेऽक्षिण वामके ।
दक्षकर्णे वामकर्णे दक्षनासापुटे ततः ॥५२३॥
वामनासापुटे दक्षे गण्डे गण्डेऽथ[1] वामके ।
ओष्ठेऽधरे चोर्ध्वदन्तेऽधोदन्ते मूर्द्धजिह्वयोः ॥५२४॥
दक्षिणे भुजमूले च कूर्परे मणिबन्धके ।
मूलाग्रयोरङ्गुलीनामेवं वामभुजेऽस्य च ॥५२५॥
ततो दक्षिणपन्मूले जानुमध्ये च गुल्फके ।
पादाङ्गुलीनां मूलेषु तथैवाग्रे ततः परम् ॥५२६॥
वामाङ्घ्रेरप्येवमेव दक्षपार्श्वेऽनु वामके ।
पृष्ठे नाभौ च जठरे हृद्यंसे दक्षिणे ततः ॥५२७॥
पुनः ककुदि वामांसे हृदादौ दक्षिणे करे ।
हृदादावथ वामेऽपि तदाद्यो दक्षवामयोः ॥५२८॥
पादयोरथ सर्वाङ्गव्यापकं तदनु स्मृतम् ।
इति स्थानानि सर्वाणि क्रमेण कथितानि ते ॥५२९॥
भेदानथास्याः नामानि ब्रवीमि कमलानने ।

[सामान्यत मातृकाया द्वादशप्रकाराभिधानम्]

निस्तारा केवला प्रोक्ता शुद्धादौ प्रणवान्विता ॥५३०॥

१. कर्णेऽथ (?) क ।

फा०—३३

अन्तेऽपि तारसंयुक्ता [1]कालातीता निगद्यते ।
निर्बिन्दुभिरकाराद्यैर्नित्या सा परिकीर्तिता[2] ॥५३१॥
एषैवादौ सतारा चेत् ज्ञानदा कथ्यते बुधैः ।
अन्तेऽपि तेन सहिता मोक्षदा परिकीर्तिता[3] ॥५३२॥
विपरीतक्रमेणैषा चेत् क्षकारपुरस्सराः ।
पुनः षडन्या जायन्ते मातृका वरवर्णिनि ॥५३३॥
स्थूला सूक्ष्मा स्वप्रकाशाऽविग्रहा निर्गुणाऽमृता ।
इति द्वादशधा प्रोक्ताः सामान्या मातृकाः प्रिये ॥५३४॥
सर्वेषामेव देवानामर्च्या न्यासा इमे मताः ।

[विशेषमातृकान्यासाभिधानम्]

विशेषमधुना वच्मि शृणुष्व कलभाषिणि ॥५३५॥
केशवादिमिमामेव वैष्णवाः परिकुर्वते ।
श्रीकण्ठादि तथा शैवाः सौरा रव्यादिमेव च ॥५३६॥
हेरम्बादि च गाणेशाः स्वस्वेष्टाख्यपुरस्सराः ।
शाक्तेष्वपि प्रिये भूयान् विशेषः कीर्त्यते जनैः ॥५३७॥
भैरव्यादि त्रैपुरेयाः पाशादि भौवनेश्वराः ।
सारस्वताश्च मैत्र्यादि रमादि कामला अपि ॥५३८॥
एवं स्वस्वेष्टदैवत्यबीजादि सर्वं एव हि ।
कुर्वते स्वस्वतन्त्रोक्तकीर्तितां मातृकां बुधाः ॥५३९॥

[गुह्यकाल्या मातृकान्यासे विशेषाणामभिधानम्]

अतः परं गुह्यकाल्या मातृकान्यास ईश्वरि ।
विशेषाः सन्ति ये येऽस्मिन् कथयामि निशाम्यताम् ॥५४०॥
त एव मातृकावर्णा बिन्दुमन्तो [4]विसर्गिणः ।
सृष्टिक्रमस्थिता वापि संहारक्रमगाश्च ये ॥५४१॥
तत्तत्स्थानेषु विन्यस्याः किन्तु बीजोद्भवा भिदाः ।
आद्यस्थितैस्त्रपाबीजैः सिद्धिदा मातृकोच्यते ॥५४२॥

---

१. कलातीता ख ङ ।
२. परिकीर्त्यते ख घ ङ ।
३. परिगठ्यते ख घ ङ ।
४. ० ऽथ सर्गिणः ख घ ङ ।

तैरेव पुनरन्तस्थैः कौलिकी परिपठ्यते ।
तेषामेवादिसंस्थाभिर्योगिनीभिः करालिनी ॥५४३॥
अमूभिश्चरमस्थाभिर्विरजेति निगद्यते ।
रावाद्यैर्भोगदा ख्याता तदन्तैर्विजयापि च ॥५४४॥
गुह्यकाल्या मातृकासु विशेषाः परिकीर्तिताः ।

[वक्ष्यमाणस्य विराण्मातृकान्यासस्य महत्त्वप्रतिपादनम्]

सर्वासु मातृकास्वस्या मन्ये यां सर्वतोऽधिकाम् ॥५४५॥
तां ते ब्रवीमि यत्नेन धारयैनां वरानने ।
नातः परतरा कापि मातृका सम्भविष्यति ॥५४६॥
मातृका गुह्यकाल्यास्तु यावत्यस्ते मयेरिताः ।
तासु मुख्या वक्ष्यमाणा सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥५४७॥
प्रत्यहं विदधच् चैतां किमन्याभिः करिष्यति ।
अकुर्वन् प्रत्यहं चैनां किमन्याभिः करिष्यति ॥५४८॥
मातृकैषाऽन्वहं कार्या एतस्याः समुपासकैः ।
न्यासानन्यान् विहायापि गुह्याप्रीतिप्रदायिभिः ॥५४९॥
यामला डामरा नैनां तन्त्राण्यपि विदुः प्रिये ।
अहमेनां विजानामि वेद वा गुह्यकालिका ॥५५०॥
तृतीयो नैव जानाति सत्येनैव ब्रवीमि[1] ते ।
इयं विराण्मातृकाख्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥५५१॥
श्रीकण्ठादीनि नामानि शिवाख्यानि शिवस्य हि ।
पूर्णोदर्यादिभिः शक्तिनामभिर्मिलितानि हि ॥५५२॥
आदिभिर्मातृकावर्णैः प्रथमं [2]प्रथितानि हि ।
फलातिरेकं दधति तथैषापि वरानने ॥५५३॥
पञ्चाशन्नरसिंहैस्तु भिन्नभिन्नाभिधान्वितैः ।
शिवस्वरूपैः पञ्चाशत् काल्यः शक्तय एधिताः ॥५५४॥
यादृशं फलबाहुल्यं यच्छन्ति न्यासकर्मणि ।
तन्मया कथितुं नैव शक्यते सत्यमीश्वरि ॥५५५॥

---

१. प्रतीहि हे ङ । २. ग्रथितानि च ङ ।

नामानि भिन्नभिन्नानि ब्रवीमि पुरतोऽनयोः ।
ततो न्यासक्रमं वक्ष्ये बीजादिपुटितं प्रिये ॥५५६॥

[पञ्चाशन्नरसिंहनामानि]

ज्वालामाली करालश्च भीमश्चैवापराजितः ।
क्षोभणश्च तथा सृष्टिः स्थितिः कल्पान्त इत्यपि ॥५५७॥
अनन्तश्च विरूपश्च वज्रायुध[1]पराक्रमौ ।
प्रध्वंसनश्च तदनु विश्वमर्दन इत्यपि ॥५५८॥
उग्रो भद्रश्च मृत्युश्च सहस्रभुज एव च ।
विद्युज्जिह्वो घोरदंष्ट्रो महाकालाग्निरेव च ॥५५९॥
मेघनादश्च विकटस्तथा पिङ्गसटोऽपि च ।
प्रदीप्तो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ॥५६०॥
विदारो विक्रमश्चापि प्रचण्डः सर्वतोमुखः ।
वज्रो दिव्यश्च भोगश्च मोक्षो लक्ष्मीरपि क्रमात् ॥५६१॥
विद्रावणः कालचक्रः कृतान्तस्तप्तहाटकः ।
भ्रामकश्च महारौद्रो विश्वान्तकभयङ्करौ ॥५६२॥
प्रतप्तो विजयश्चापि सर्वतेजोमयस्तथा ।
ज्वालाजटालश्च खरनखरो नाददारणः ॥५६३॥
निर्वाणनरसिंहश्चेत्येकपञ्चाशदीरिताः ।
एषां पदानां सर्वेषामावश्यकतया स्थितम् ॥५६४॥
नरसिंहेत्युपपदं नियोज्यं न्यासकर्मणि ।

[पञ्चाशत्कालीनामानि]

अथ काल्योऽपि पञ्चाशदेतेषां शक्तयः क्रमात् ॥५६५॥
निगद्यन्ते मया तुभ्यं तत्र चेतो निवेशय ।
धूमो जयोग्रौ ज्वाला च घोरनादौ धनं तथा ॥५६६॥
ततः कल्पान्तवेतालो कङ्कालो नग्न एव च ।
घोरघोरतरश्चापि दुर्जयस्तदनन्तरम् ॥५६७॥

---

१. परापरौ कङ।

ततो मन्थानसंहारावाङ्गारौद्रावतः परम् ।
तिग्मः कृतान्तस्तदनु महारात्रिस्ततः परम् ॥५६८॥
संग्रामभीमौ च शवश्चण्डो रुधिर एव च ।
घोरो भयङ्करश्चापि सन्त्रासश्च प्रकथ्यते ॥५६९॥
करालविकरालौ च विभूतिर्भोग एव च ।
कालो वज्रश्च विकटो विद्या कामकला तथा ॥५७०॥
ततो दक्षिणमाये च पुनर्भद्र महेश्वरि ।
श्मशानकुलनादाश्च मुण्डसिद्धी ततः परम् ॥५७१॥
उदारोन्मत्तसन्तापकपालानि क्रमात् ततः ।
निर्वाणं सर्वशेषे स्यादिति पञ्चाशदीरिताः ॥५७२॥
पूर्वोदितानां पञ्चाशत्पदानां वरवर्णिनि ।
यथैवोपपदत्वेन नरसिंहः प्रकीर्तितः ॥५७३॥
तथैषामपि शब्दानां [1]काली ह्युपपदं भवेत् ।

[विराण्न्यासस्य प्रकाराभिधानम्]

अथ प्रकारं वक्ष्यामि विराण्न्यासस्य पार्वति ॥५७४॥
ऋषिर्विराण्न्यासस्य कालाग्नीरुद्रपश्चिमः ।
छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातं देवी निर्वाणमातृका ॥५७५॥
वेदादिबीजमुदितं शाकिनी शक्तिरुच्यते ।
हृन्मन्त्रः कीलकं प्रोक्तं विनियोगश्च मुक्तये ॥५७६॥
इति संस्मृत्य हस्ताभ्यामेनमृष्यादिमाचरेत् ।

[विराण्न्यासरीतिः]

उद्धराम्यधुना रीतिमस्य न्यासस्य पार्वति ॥५७७॥
तारं रावं तत्तदर्णं नृसिंहं तं तमेव च ।
तां तां कालीं विग्रहयुग्भ्यामन्तां हृन्मनुं ततः ॥५७८॥

---

१. शक्ती क ङ ।

कीर्तयेदनया रीत्याऽ[1]परमुन्नेयमीश्वरि ।
स्थानेषु तेषु तेष्वेव न्यसनीयं शनैः शनैः ॥५७९॥
इयं विराट्पूर्वा ते मातृका कथिता मया ।

[गुह्यकालीपूजायां विराण्न्यासस्यावश्यकताभिधानमेतन्महत्त्वख्यापनं च]

नानया सदृशी कापि मातृकान्या भविष्यति ॥५८०॥
न्यासानन्यान् विहायापि कुर्वीतिमां प्रयत्नतः ।
आरिराधयिषुश्चेत् स्याद् गुह्यकालीं वरानने ॥५८१॥
इमामवश्यं कुर्वीत प्रत्यहं भक्तिभावितः ।
विराट्मातृकानाम्ना ख्यातेयं कालिका प्रिया ॥५८२॥
सर्वशेषे विधायैनां मातृकां चरमाभिधाम् ।
ततः पूर्वोक्तरीत्यैव प्राणायामत्रयं चरेत् ॥५८३॥

[पीठन्यासाभिधानम्]

पीठन्यासं ततः कुर्याद् बहुविस्तारविस्तरम् ।
ऋषिस्तु पीठन्यासस्य माण्डूकायन उच्यते ॥५८४॥
प्रतिष्ठाच्छन्द उदितं देवता कूर्म एव च ।
बीजं मन्मथबीजं स्याच्छक्तिः कामठमक्षरम् ॥५८५॥
पीठन्यासे विनियोग इति संस्मृत्य हस्तयोः ।
कृत्वा यथोक्तवच्चास्य ऋष्यादिन्यासमुत्तमम् ॥५८६॥

[पीठन्यासाङ्गषडङ्गन्यासाभिधानम्]

षडङ्गन्यासमपि च विदधीत वरानने ।
तारमैधौ तु सर्वेषामङ्गानां पुरतः स्थितौ ॥५८७॥
तत्तदङ्गीयमन्त्रास्तु तत्तदङ्गस्य शेषगाः ।
मध्ये त्रपारमाकामप्रासादाङ्कुशगारुडाः ॥५८८॥
एवं षडङ्गं विन्यस्य पीठन्यासं समाचरेत् ।
आदौ तारं प्रयुञ्जीत शेषे हृन्मन्त्रमेव[2] च ॥५८९॥

---

१. परानुष्ठेयमीश्वरि क ।
२. हृन्मनुमेव ख घ ।

मध्ये पदानि ङेऽन्तानि वक्ष्यमाणानि संवदेत् ।
आधारशक्तिं च [1]मूलप्रकृतिं कूर्ममेव च ॥५९०॥
अनन्तं पृथिवीं क्षीरसमुद्रं तदनन्तरम् ।
श्वेतदीपं कल्पवृक्षं ततो वै रत्नवेदिकाम् ॥५९१॥
रत्नसिंहासनं चापि दशैतानि हृदि न्यसेत् ।
धर्मं न्यसेद् दक्षिणांसे वामांसे ज्ञानमेव च ॥५९२॥
वामोरौ चापि वैराग्यमैश्वर्यं दक्षसक्थिन च ।
न्यसेदधर्मं वदने चाज्ञानं वामपार्श्वके ॥५९३॥
नाभाववैराग्यमपि ह्यनैश्वर्यं ततः परम् ।
विन्यस्य दक्षिणे पार्श्वे न्यसेदेतान् पुनर्हृदि ॥५९४॥
अनन्तमथ पद्मं च शेषं चानन्तसीमनि ।
अग्रेऽपि पूर्ववत् सर्वं विशेषः कोऽपि वर्तते ॥५९५॥
प्रणवानन्तरं बीजमेकैकं देवि तिष्ठति ।
तद्बीजं नाम च मया प्रोक्तं[2] शेषं तु पूर्ववत् ॥५९६॥
नादं [3]स्थाणुं तथा पालीं सूर्यात् सोमाच्च वह्नितः ।
मण्डलं विग्रहयुतं शेषमन्यत् पुरोक्तवत् ॥५९७॥
दर्वीं फलीं तथोन्माथं सत्त्वं चापिं रजस्तमः ।
ततः सपाशमात्मानं पुनरात्मानमेव च ॥५९८॥
सनादमन्तरयुतं छुरिकासहितं पुनः ।
विन्यस्य परमात्मानं ज्ञानात्मानं त्रपान्वितम् ॥५९९॥
इति विन्यस्य हृदयकमलस्य वरानने ।
प्रादक्षिण्येन पूर्वादेः केशरेष्वष्टसु न्यसेत् ॥६००॥
दिशि तत्तत्क्रमेणैव तत्तद्बीजपुरस्सरम् ।
प्रभां सपाशां सकलां मायां स्थाणुयुतां जयाम् ॥६०१॥
सदुर्द्धर्षां तथा सूक्ष्मां विशुद्धां मेधसंयुताम् ।
सतारां नन्दिनीं प्रोच्य साश्वत्थां सुप्रभामपि ॥६०२॥

---

१. ० क्ति मूलं च ख । २. स्थानं ल, घ स्थालीं क । ३. प्रोच्यं ङ ।

सनादां विजयां चापि सर्वसिद्धिप्रदां ततः ।
सनिःश्रेणीं पुनर्मध्ये नरसिंहसमन्विताम् ॥६०३॥
समुच्चरेद् वज्रनखदंष्ट्रायुधमपीश्वरि ।
महासिंहं संभ्रमास्त्रयुतं तत् कर्णिकासु च ॥६०४॥
प्रेतं सदाशिवमहाप्रेतासनमुदीरयेत् ।
सर्वोपरिष्टाद् रावश्रीगुह्यकाल्यासनं वदेत् ॥६०५॥
इत्ययं कथितो देवि पीठन्यासो मया तव ।
सामान्यसर्वदेवानां साधारणतया स्थितः ॥६०६॥

[गुह्यकाल्या योगरत्नाख्यविशेषपीठन्यासाभिधानम्]

इदानीं गुह्यकाल्यास्तु[1] पीठन्यासं निशामय ।
योगरत्नमिति ख्यातमगम्यं त्रिदशैरपि ॥६०७॥
[2]स्थितं विशेषरूपेणासाधारणतयापि च ।
अप्राप्य संहितामेनामप्राप्यं दैवतैरपि ॥६०८॥
षण्मासमेनं विदधन् नृपसिंहासनं लभेत् ।
शताब्दजीवी च भवेन्महाविभव एव च ॥६०९॥
विद्यावान् राजमान्यश्च स्त्रीणां वल्लभ एव च ।
भोगवान् विजयी युद्धे देहान्ते मोक्षभाग् भवेत् ॥६१०॥

[योगरत्नाख्यपीठन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

योगरत्नाभिधेयस्य पीठन्यासस्य चास्य हि ।
विरूपाक्ष ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽतिजगती मता ॥६११॥
सदाशिवो देवता च रावो बीजं निगद्यते ।
शक्तिश्च डाकिनी ख्याता फेत्कार्यस्य च कीलकम् ॥६१२॥
पीठन्यासे चास्य विनियोगः कथित ईश्वरि ।
इति संस्मृत्य ऋष्यादिन्यासं कृत्वा यथोक्तवत् ॥६१३॥
षडङ्गन्यासमेतस्य सावधानः समाचरेत् ।
विमस्करं विविधसंवदेद्[?]वेण्वादि [3]पञ्चकम् ॥६१४॥

---

१. ० ल्यास्त्वं ङ । २. अस्मिन् ख ।
३. सप्तकम् ङ ।

हृदयाय नमश्चेति प्रथमाङ्गमुदाहृतम् ।
अदक्षिणमसंघातं सप्त द्वीपादिकान् वदेत् ॥६१५॥
ततोऽनु शिरसे स्वाहा द्वितीयाङ्गमिदं स्मृतम् ।
निःसात्वतं च निर्ह्लस्वं नान्द्यादीन् सप्त चोच्चरेत् ॥६१६॥
शिखायै वषडित्येवं तृतीयाङ्गमुदीरितम् ।
व्यर्घक्षोभणमाभाष्य सप्त रङ्कमुखानपि ॥६१७॥
कवचाय हूमित्येवं तुर्यमङ्गं मयेरितम् ।
कीलालकरुणाहीनं सप्त वैकारिकादिकान् ॥६१८॥
नेत्रत्रयाय वौषट् च पञ्चमाङ्गं प्रकीर्तितम् ।
च्युतान् प्राग्वंशयोनिभ्यां सप्तायादीनथोद्धरेत् ॥६१९॥
अस्त्राय फडिति ब्रूयात् षष्ठमङ्गमिदं मतम् ।

[योगरत्नन्यासप्रकाराभिधानम्]

अतः परं योगरत्नप्रकारमवधेहि हे ॥६२०॥
आदौ प्रणवशाकिन्यौ हृन्मन्त्रं चरमेऽपि च ।
मध्ये ङेऽन्तान् वक्ष्यमाणान् शब्दान् हृदि परिन्यसेत् ॥६२१॥
महामण्डूककूर्मौ च ह्यनन्तं पृथिवीमपि ।
ततो रक्तसमुद्रं च मांसद्वीपं ततः परम् ॥६२२॥
मांसद्वीपं रक्तपदादथवा रक्तबालुकाम् ।
[1]चामुण्डामण्डलं पश्चात् प्राकारं भैरवीपदात् ॥६२३॥
महाश्मशानं तदनु वह्निज्वालामतः परम् ।
नरान्त्रतोरणं मुण्डमालामप्यथ कीर्तयेत् ॥६२४॥
कल्पवृक्षं ततो रत्नवेदिकामप्यनूच्चरेत् ।
रत्नसिंहासनं चापि षोडशैतान् हृदि न्यसेत् ॥६२५॥
दक्षिणांसे कृतयुगं वामे त्रेतायुगं तथा ।
वामोरौ द्वापरयुगं दक्षे कलियुगं तथा ॥६२६॥
ऋग्वेदं वदने न्यस्य वामपार्श्वे सुरेश्वरि ।
यजुर्वेदं तथा नाभौ सामवेदं न्यसेत् प्रिये ॥६२७॥

---

१. इयं पंक्तिः घ ङ पुस्तकयोरस्ति ।

अथर्ववेदं तदनु दक्षपार्श्वे न्यसेदपि ।
आयुर्वेदं भुजे दक्षे धनुर्वेदं च वामके ॥६२८॥
गान्धर्ववेदं दक्षेऽङ्घ्रावर्थवेदं च वामके ।
पुनरिन्द्रं दक्षिणेंऽसे वामेंऽसे यममेव च ॥६२९॥
उरौ वामेऽपि वरुणं कुबेरं दक्षिणे तथा ।
न्यसेदग्निं च वदने निर्ऋतिं वामपार्श्वके ॥६३०॥
नाभौ वायुं दक्षपार्श्वे न्यसेदीशानमेव च ।
पूर्वोक्तमन्त्रैराद्यन्तस्थितैः रावान्तसंस्थितैः ॥६३१॥
पञ्च प्रेतान् न्यसेद् बीजैः पञ्चभिर्भद्रिकादिभिः[1] ।
ब्रह्माणं दक्षिणे नेत्रे विष्णुं वामे तथैव च ॥६३२॥
रुद्रं दक्षिणकर्णे च वामे कर्णे तथेश्वरम् ।
सदाशिवं ललाटे च तृतीयं प्रोक्तमासनम् ॥६३३॥
अथ हृत्कमले यानि दलान्यष्टौ भवन्ति हि ।
तेषु क्रमेण विन्यस्याः पूर्वादिरष्टभैरवाः ॥६३४॥
तारकूर्चौ च वर्णौ द्वौ सर्वेषां पुरतः स्थितौ ।
नमोऽन्ते भैरवा ङेऽन्ता अष्टौ मध्ये व्यवस्थिताः ॥६३५॥
असिताङ्गो रुरुः क्रोध उग्र उन्मत्त एव च ।
चण्डः कपाली संहार इति ते क्रमशः स्थिताः ॥६३६॥
कश्चिदन्यो विशेषोऽत्र वर्तते स निशम्यताम् ।
कूर्चान्ते बीजमेकैकं देयं तत्क्रमशो ब्रुवे ॥६३७॥
अपरान्तकमुल्लोप्यं प्रकरीं पाणिगीतिकाम् ।
नादान्तकं च सम्भूतिं संहारिणमुपह्वरम् ॥६३८॥
कमलं षोडशदलं प्रकल्प्य हृदये पुनः ।
क्रतूपकल्पिते[2] पत्रे तं तं क्रतुमुपन्यसेत् ॥६३९॥
ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमो वाजपेयश्च षोडशी ।
चयनं पुण्डरीकश्च राजसूयोऽश्वमेधकः ॥६४०॥

---

१. भेदकादिभिः क ।　　२. यन्त्रे क ।

बार्हस्पत्यं विश्वजिच्च गोमेधो नरमेधकः ।
सौत्रामण्यर्द्धसावित्री सूर्यक्रान्तो बलम्भिदः ॥६४१॥
तारं कूटं तत्तदाख्यं तन्नाम ङेऽन्तमन्वतः ।
क्रतुं च तादृशं प्रोच्य शिरः शेषे नियोजयेत् ॥६४२॥
ततो यद्यपि शीर्षस्थं सहस्रदलमम्बुजम् ।
तथाप्यष्टदलं ध्यात्वा पूर्वादिस्तद्दले क्रमात् ॥६४३॥
अष्टौ शिवा न्यसेद् देवि मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
मन्त्रोऽप्यसौ प्रणवतः प्रासादः प्रथमो भवेत् ॥६४४॥
शेषे हृच्छिरसी ज्ञेये ङेऽन्ताष्टपदमन्तरम् ।
शिवः परशिवश्चापि प्रथमः केवलो मतः ॥६४५॥
तृतीयो देवि परमशिव इत्युच्यते बुधैः ।
परापरशिवश्चापि परमेष्ठिशिवोऽपि च ॥६४६॥
ज्ञेयस्ततोऽनु परमपरापरशिवोऽपि च ।
परापरपदस्यान्ते परमेष्ठिशिवस्तथा ॥६४७॥
अष्टमोऽसौ परिज्ञेयः सर्वशेषे सदाशिवः ।
पदानामेव सर्वेषां शिवोऽन्ते परिनिष्ठितः ॥६४८॥
पुनरष्टदलाम्भोजे हृन्मध्यपरिकल्पिते ।
क्लृप्तपूर्वादिहरिति न्यसेद् दिक्षु विदिक्षु च ॥६४९॥
तत्तद् बीजं वाग्भवाद्यं मध्ये तन्न्यास ङेऽन्तवत् ।
शेषे हृदयमन्त्रश्च मन्त्राश्चैषां प्रकीर्तिताः ॥६५०॥
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुर्दिशि ।
यशो विवेकः कामश्च मोक्षश्चेति विदिक्ष्वपि ॥६५१॥
[1]ततो हृदयपद्मस्य द्वात्रिंशच्छदनस्य हि ।
द्वात्रिंशत्केशरेष्वेव प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् ॥६५२॥
आदौ त्रपारावरुषः शेषे हार्दो मनुः प्रिये ।
मध्ये पदानि ङेऽन्तानि द्वात्रिंशत्संख्यकानि हि ॥६५३॥

---

१. इतः पञ्च पंक्तयः ङ पुस्तके न दृश्यन्ते ।

करालो विकराली च महाकाल्यपराजिता ।
चामुण्डा भ्रामरी भीमा कुरुकुल्ला कपालिनी ॥६५४॥
घोरनादा चण्डघण्टा भैरवी मुण्डमालिनी ।
उल्कामुखी फेरुवक्त्रा चर्चिका सिंहवाहिनी ॥६५५॥
वज्रकापालिनी चण्डयोगेश्वर्यप्यनन्तरम् ।
मातङ्गी कुब्जिका सिद्धिलक्ष्मीश्चण्डेश्वरी तथा ॥६५६॥
ब्रह्माणी कालिका दुर्गा महामाया महोदरी ।
कौमारी चापि वाराही जयन्ती गुह्यकालिका ॥६५७॥
द्वात्रिंशद् देव्य इति ते क्रमेण [1]प्रतिपादिताः ।
ततो हृदयपद्मस्य कर्णिकायां पुनर्न्यसेत् ॥६५८॥
प्रणवादनु फेत्कारी नृसिंहो डाकिनी तथा ।
कृतान्तकालपदतो भीषणो ङेऽन्तयुक् ततः ॥६५९॥
तद्वन्महाभैरवोऽपि कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
ततः शिरःस्थपद्मस्य कर्णिकायां पुनर्न्यसेत् ॥६६०॥
ततः प्रासादबीजं च शुद्धस्फटिकशब्दतः ।
विशदप्रभशब्दोऽपि ङेऽन्त उच्चार्य ईश्वरि ॥६६१॥
ङेऽन्तं ततोऽपि परमसदाशिवपदं भवेत् ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते कथितानि मया तव ॥६६२॥
इति पीठन्यासराजो योगरत्नसमाह्वयः ।
सप्रकारस्थानमन्त्रो विविच्य प्रतिपादितः ॥६६३॥

[योगरत्नन्यासमाहात्म्यम्]

देव्येतस्येतरे न्यासाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
अकुर्वन्नितरान् न्यासानेतेनार्थं प्रसाधयेत् ॥६६४॥
[1]अकुर्वन्नैनमितरैः कोटिन्यासैर्न साधयेत् ।
विधाय शपथं देवि कथयामि तवाग्रतः ॥६६५॥
योगरत्नसमो न्यासो न भूतो न भविष्यति ।
त्याज्यावरणपूजाऽपि त्याज्यौ ध्यानजपावपि ॥६६६॥

१: इयं पंक्तिः ख घ पुस्तकयोर्नास्ति ।

अर्घ्यस्य स्थापनं त्याज्यं न त्याज्यं योगरत्नकम् ।
योगरत्नं रत्नमिव कण्ठे बध्नीत साधकः ॥६६७॥
महिमानममुष्याहं ग्रन्थगौरवभीतितः ।
न ब्रवीमि वरारोहे वक्तुं चापि न शक्यते ॥६६८॥
कपालडामरे स्वस्य फलबाहुल्यमीरितम् ।
तथा शबरतन्त्रेऽपि ततो नात्रोदितं बहु ॥६६९॥
एतस्य सतताभ्यासात् पुरुषार्थचतुष्टयम् ।
दासवत्तस्य वशगं सत्यं सत्यं न संशयः ॥६७०॥

इति महाकालसंहितायां महाकालमहाकालीसंवादे
पञ्चशतसाहस्र्यां वस्तुशोधनमातृकान्यासोद्धारः
षष्ठः पटलः ।

सप्तमः पटलः

महाकाल उवाच ।

ततः पूर्वोक्तविहितमृष्यादिन्यासमाचरेत् ।
ततः षडङ्गन्यासं च कुर्यात् तत्तन्मनूदितान् ॥१॥

[बहुन्यासोद्देशः]

तं विधायेतरान्[1] न्यासान् यथाशक्ति समाचरेत् ।
बहवः सन्ति देवेशि[2] नानाफलविधायिनः ॥२॥
बह्वल्पक्षणसाध्याश्च देवीसन्तोषकारकाः[3] ।
तेभ्यः कतिपये सारतरा निष्काशिता मया ॥३॥
आदौ नाम्ना प्रवक्ष्यामि पश्चादुद्धारतोऽपि तान् ।

[पञ्चविंशतिमितसारतरन्यासोद्देशः]

वक्त्रन्यासो भवेदादौ ततोऽस्त्रन्यास एव च ॥४॥
दूतीन्यासस्ततो ज्ञेयो डाकिनीन्यास एव च ।
योगिनीन्यास इति च प्रथमं पञ्चकं मतम् ॥५॥
कुलतत्त्वं सिद्धिचक्रं कैवल्यममृतं तथा ।
विजयो जयपूर्वश्च द्वितीयं पञ्चकं स्मृतम्[4] ॥६॥
दिव्यं वर्षायुतं तप्त्वा पञ्चैतान् पञ्चभिर्मुखैः ।
अब्रवीत् त्रिपुरारातिर्लब्ध्वा मां युगपत् प्रिये ॥७॥
भावना समयः सृष्टिः स्थितिः संहार इत्यपि ।
तृतीयं पञ्चकमिदं तव देवि मयेरितम् ॥८॥
ऽनाख्या च तथा भासा मन्त्रः सिद्धिर्विराडपि ।
तुर्यं पञ्चकमेतद्धि सर्वसिद्धिविधायकम् ॥९॥

---

१. ० येतरन्यासान् घ ।
२. ते चेति ख घ ।
३. दायकाः क ।
४. तथा घ ।

बीजं कूटं क्रमो धातुस्तत्त्वं पञ्चमपञ्चकम् ।
पञ्चविंशतिसंख्याका न्यासा एते प्रकीर्तिताः ॥१०॥

[षोढान्यासनिर्देशः]

ततश्च लघुषोढा स्यान् महाषोढा ततः परम् ।
महानिर्वाणषोढा च सर्वशेषे प्रकीर्तिता ॥११॥
इत्येष न्यासनिवहः कर्त्तव्यः स्वस्वशक्तितः ।
अस्मिन्नेव ह्यवसरे योगरत्नादनन्तरम् ॥१२॥
अथैषामुद्धृतिं[1] वक्ष्ये क्रमेण परमेश्वरि ।

[वक्त्रन्यासाभिधानम्]

वक्त्रन्यासं च तत्रादौ सावधाना निशामय ॥१३॥
तारत्रपारावकूर्चयोगिनीप्रेतकालिकाः ।
दीपस्ततो डाकिनी च बीजानि स्युर्नवाग्रतः ॥१४॥
ततो महाचण्डयोगेश्वरीमूर्तय ईरयेत् ।
ऊर्ध्ववक्त्राय ततो विसन्ध्यथ ससन्धि वा ॥१५॥
प्रज्वलद्दीपकारिणें ततः परमुदीरयेत् ।
फेत्कारिनरसिंहौ च भैरव्यङ्कुशकालिकाः ॥१६॥
शेषे चेमानि बीजानि पञ्चैव परमेश्वरि ।
अस्त्रं हार्दं शिरांस्यन्ते ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत् ॥१७॥
वाग्भवं कमलाकामप्रासादक्षेत्रपा अपि ।
सुधासोमौ शक्तिसाम्ये नवेमानि पुरो वदेत् ॥१८॥
ततो महावज्रदंष्ट्रायुधमूर्तय ईरयेत् ।
सिंहवक्त्राय च तत उग्राय च विसन्धिमत् ॥१९॥
मृत्युमृत्यव उल्लिख्य सानुमक्षं समेखलम् ।
[2]कुण्डहारोऽस्त्रहृच्छीर्षाण्यन्तेषु [3]प्रयोजयेत्[?] ॥२०॥

---

१. पद्धतिं क ।
२. हारारत्नहृच्छी ० क ।
३. देवि प्रयोजयेत् ख ।

मुखे न्यसेत् तदाकारं हृदये प्रविभावयेत्[1] ।
पाशं भारुण्डया युक्तं प्रलयं गर्भमेव च ॥२१॥
डाकिनी तुङ्गजम्भेष्टिवेताला नव कीर्तयेत् ।
वमदुल्काघोरमुखमूर्तये कीर्तयेत् ततः[2] ॥२२॥
फेरुवक्त्राय तदनु पदात् फेरुरवात्ततः ।
भीषणायेति संभाष्य बलिभोगविधिच्छटाः[3] ॥२३॥
[4]डाकिनी फट् नमः स्वाहा न्यसेद् दक्षिणलोचने ।
कालीनीलौ नेमिविश्वौ मौञ्जीसूत्रे महाक्रमौ ॥२४॥
सृष्टिस्ततोऽनु नखरदशनायुधमूर्तये ।
कपिवक्त्रायानु महापिङ्गलानु सटाय च ॥२५॥
[5]कपालयुगलं छन्दमन्दारौ भैरवी तथा ।
अस्त्रं हृच्छिरसी शेषे न्यसेद् वामेक्षणे प्रिये ॥२६॥
धारा[धरा ?]ताटङ्कनीले च जटाक्षरमहोदयाः ।
भ्रामरी च प्रचण्डा च केकराक्षी ततः परम् ॥२७॥
ततो लावण्यपदतो निधानपदमुच्चरेत् ।
दिव्यमूर्तय उद्धृत्य नरवक्त्राय चोद्धरेत् ॥२८॥
[6]सर्वभोगवैभवाय तत एव [7]समुद्धरेत् ।
औपह्वरं नान्दिकं च कुशिकं व्ययमेव च ॥२९॥
[8]सारसं[सुरसं ?]फट् नमः शीर्षं दक्षनासापुटे न्यसेत् ।
लाङ्गूलं वर्धमानं च सम्भूतियुगलं तथा ॥३०॥
नादान्तकचतुष्कं[9] च हारिणीमप्यनन्तरम् ।
विकरालनख प्रोच्य दन्तमूर्तय उद्धरेत् ॥३१॥
ऋक्षवक्त्राय मेचकेति सटाभारिण इत्यपि ।
नक्षत्रमन्दसम्मोहविजयाकालरात्रयः ॥३२॥

---

१. प्रविभावयन् ङ । २. तथा क । ३. स्थिताः ? क ।
४. ह्राकिनी ङ छ । ५. कापाल ० ख । ६. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति ।
७. समुच्चरेत ङ । ८. वाससं ख छ, कामल घ । ९. चतुर्थं ख ।

अस्त्रं हृदयशीर्षे च वामनासापुटे न्यसेत् ।
गारुडं खेचरीनागनाराचाः शूलमेव च ॥३३॥
नालीकं च भुशुण्डी च क्षुरप्रः प्रास एव च ।
पदाद् घोरतराच्चञ्चुपक्षमूर्तय उच्चरेत् ॥३४॥
तार्क्ष्यवक्त्रायेति चोक्त्वा खरतो नखरेत्यपि ।
तुण्डायेति समाभाष्य [1]तन्त्रां सकुटिलां वदेत् ॥३५॥
[2]कौलुञ्चं च विवत्सं च पिप्पलास्त्रानु हृच्चकम् ।
न्यसेत् कपोले दक्षे च सन्धानं सिञ्जिनीमपि ॥३६॥
मातृशङ्कू ततो वीरवेतालौ रञ्जिनीं घटीम् ।
मणिमालां सर्वशेषे बीजानि नव वै वदेत् ॥३७॥
ततो दीर्घशित प्रोच्य दंष्ट्रायुध समुद्धरेत् ।
मूर्तये ग्राहवक्त्राय ततः परमुदीरयेत् ॥३८॥
महाभोगभासुराय शब्दमीदृशमुद्धरेत्[3] ।
योगतन्त्रा[4]द्वयं शिल्पं प्रतानद्वितयं तथा ॥३९॥
अस्त्रं हृदुत्तमाङ्गेऽपि कपोले दक्षिणेतरे ।
न्यसेदथ शिखाद्वन्द्वं सेतुयुग्मं शुचिद्वयम् ॥४०॥
हारिणीयुगलं रागं वज्रिक्रूरेत्यनन्तरम् ।
दन्तायुधान् ततः[5] पञ्चगजवक्त्राय तत्परम् ॥४१॥
नागराजाय शुण्डाय[6] तदन्वपि समुद्धरेत् ।
विहारं च विसृष्टिं च पाणिगीर्तिं सविस्मृतिम् ॥४२॥
विकोशपूर्वमस्त्रं च हृन्मन्त्रः सशिरो मनुः ।
दक्षिणे श्रवणे न्यस्येद् वियोगं तदनु प्रिये ॥४३॥
उत्तानं च विरागं च त्रिघटीमुपलं तथा ।
कृष्टिं वारीं बृंहतिं च ह्युत्सर्गमपि[7] संवदेत् ॥४४॥

---

१. तन्द्रां घ ।
२. इतः पंक्तिचतुष्टयं ख पुस्तके नास्ति ।
३. मुच्चरेत् ङ ।
४. ० न्त्राह्वयं क ख घ ।
५. मूर्तये च घ ङ ।
६. नागराजभुशुण्डाय ङ ।
७. ह्युत्सर्गं नव ङ ।

हेषा दन्तशफा प्रोच्यायुधमूर्तय ईरयेत् ।
हयवक्त्राय तदनु निगालपदमन्वतः ॥४५॥
केशरोर्द्ध्वाय चाभाष्य कुलनारीं सयोगिनीम् ।
कूर्चं वधूं शाकिनीं च हृत्पूर्वास्त्रं शिरोऽपि च ॥४६॥
वामे श्रवसि विन्यस्येत् सर्वंशेषे वरानने ।
अयं ते कथितो वक्त्रन्यासः परमशोभनः ॥४७॥

[वक्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथास्यर्ष्यादिकं वच्मि फलमक्षरनिर्णयम् ।
औडुलोमिर्ऋषिः प्रोक्तः शक्वरी च्छन्द उच्यते ॥४८॥
देवता[1] गुह्यकाली तु फेत्कारी बीजमुच्यते ।
डाकिनी शक्तिराख्याता प्रलयः कीलकं मतम् ॥४९॥
वक्त्रन्यासे भवेदस्य विनियोगो वरानने ।

[वक्त्रन्यासस्य फलश्रुतिः]

एतस्य प्रत्यहाभ्यासाद्[2] विप्रो वाग्मी प्रजायते ॥५०॥
आज्ञाप्रदो भूमिपेषु भूमिपालः प्रजायते ।
आर्यो गोऽश्वाजाविरत्नधनधान्यान्वितो भवेत् ॥५१॥
शूद्रो भुक्त्वा चिरं भोगानन्ते देव्यन्तिकं व्रजेत् ।

[न्यासे वर्णनिर्णयप्रकाराभिधानम्]

अथ ब्रवीमि वर्णानां प्रतिमन्त्रं विनिर्णयम् ॥५२॥
व्यत्यासं येन नो गच्छेन् मृत्युं तेनाधिगच्छति ।
नव बीजानि सर्वेषां स्थितानि प्रथमं प्रिये ॥५३॥
आकारा वायुधोल्लेखमामूर्ति ङेऽन्तयुग्वचः ।
एकादशाक्षराणि स्युः [3]मुखं प्रतिमनु प्रिये ॥५४॥
[4]विशेषणार्थमष्टौ च पञ्चान्यानि समाप्तये ।
बीजानि स्युस्तदन्वस्त्रहृच्छिरो वर्णपञ्चकम् ॥५५॥

---

१. इयं पंक्तिः ख छ पुस्तकयोर्नास्ति ।
२. प्रत्यहं न्यासाद् क ।
३. पञ्चतत्तन् मुखाय च ङ छ ।
४. इतः क पुस्तके पंक्तित्रयं नास्ति ।

त्रिचत्वारिंशदर्णाः स्युरेवं प्रतिमनु प्रिये ।
नाधिका नापि च न्यूना इत्येवं निर्णयः कृतः ॥५६॥

[एकादशमुख्यादीनां वक्त्रन्यासाभिधाने सिद्धान्तनिरूपणम्]

एकादशास्यादीनां हि वक्त्रन्यासः कथं भवेत् ।
एतस्मिन् संशये देवि सिद्धान्तं त्वं निबोध मे ॥५७॥
तारो माया योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ।
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥५८॥
इमानि नव बीजानि [1]सर्वेषां पुरतः स्मरेत् ।
तत्तद्वक्त्राय तावत्तावदक्षरमपीश्वरि ॥५९॥
एतान्येव हि बीजानि प्रतिलोम्ना पुनर्वदेत् ।
ततोऽन्वचिन्त्यमहिमशक्तये इति कीर्तयेत् ॥६०॥
पूर्ववच्चास्त्रहृच्छीर्षाण्यन्ते च समुदाहरेत् ।
परावृत्य परावृत्य न्यासस्थानं तदेव हि ॥६१॥
यत्र यत्र समाप्तं स्यात् तत एव निवर्तते ।
प्रत्येकं भिन्नबीजत्वं नात्र नाक्षरनिर्णयः ॥६२॥
न [2]भिन्नकालोऽपि च न भिन्नस्थलता तथा ।
इति देव्यधिकास्यानां नियोगः[3] कथितो मया ॥६३॥

[न्यूनवक्त्राणां वक्त्रन्यासाभिधाने निर्णयनिरूपणम्]

अधुना न्यूनवक्त्राणां निश्चयं कथयामि ते ।
यद्यदाकारवदनं तत् तदेवोल्लिखेद् बुधः ॥६४॥
तस्य तस्य स्थलं यद्यत् तेषु तेष्वेव विन्यसेत् ।
यद्धेयं तत् त्यजेद् देवि ग्राह्यं स्थानं तदास्यजम् ॥६५॥
पूर्वोक्त एव ऋष्यादिरस्यापि श्यामकुन्तले ।
अधिकास्यासमं सर्वमन्यदस्या अपि स्मृतम् ॥६६॥

---

१. पूर्वेषां ख । २. ऋष्यादिरपि० ङ ।
३. निर्णयः ख ।

[अस्त्रन्यासाभिधानम्]

इदानीमवधेहि त्वमस्त्रन्यासं महाफलम् ।
वक्त्रन्यासवदस्यापि न्यूनाधिक्ये तथोन्नयेत् ॥६७॥
दशवक्त्रास्त्रविन्यासं केवलं कथयामि ते ।

[अस्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

स्वयम्भूर्ऋषिरुद्दिष्टो जगतीच्छन्द [1]उच्यते ॥६८॥
गुह्यकाली च देवी स्याच्छूलं बीजमुदीर्यते ।
खड्गः शक्तिः परिख्याता गदा कीलकमुच्यते ॥६९॥
विनियोगस्तथा चास्यास्त्रन्यासे त्रिदशेश्वरि ।

[अस्त्रन्यासोद्धारः]

प्रथमं दक्षिणे भागे वामे भागे ततो न्यसेत् ॥७०॥
हारं रत्नं तथा मालां रत्नमालां च ङेऽन्तिनीम् ।
हृदस्त्रं बह्निजाया च दक्षशङ्खे न्यसेत् प्रिये ॥७१॥
पञ्चार्णान् शेषगान् शेषे सर्वत्र विनियोजयेत् ।
तत्तद् वस्तु च तत्पूर्वं ङेऽन्तत्वेन तथोच्चरेत् ॥७२॥
पुरतो मैधमुच्चार्य मणिमालायुगं ततः ।
रत्नमालां वामशङ्खे न्यसेद् रीत्या पुरोक्तया ॥७३॥
मायां करालीं कूर्चं च कर्त्रीं दक्षभ्रुवि न्यसेत् ।
[2]लक्ष्मीमलक्ष्यं कापालं कपोले वामके भ्रुवि ॥७४॥
कामं महोदयं खड्गं खड्गं दक्षिणलोचने ।
प्रभञ्जनां गारुडं च चर्म चर्म तथैव च ॥७५॥
विन्यसेद् वामनयने लाङ्गूलं क्षेत्रपं तथा ।
तर्जनीं तर्जनीं दक्षनासापुट इति न्यसेत् ॥७६॥
भ्रामरीं च हयग्रीवं पाशं पाशमथापि च ।
न्यसेद् नासापुटे वामे वर्द्धमानं महारुषम् ॥७७॥
अङ्कुशं चाङ्कुशमपि दक्षिणे गण्ड ईरयेत् ।
आषाढं च प्रचण्डां च शक्तिं शक्तिमथापि च ॥७८॥

---

१. इष्यते ङ छ ।
२. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके न दृश्यते ।

वामगण्डे न्यसेद् देवि कालरात्रिं सडाकिनीम् ।
दण्डं दण्डं वरारोहे कपोले दक्षिणे न्यसेत् ॥७९॥
चामुण्डामथ कूष्माण्डीं खट्वाङ्गं तदनन्तरम् ।
खट्वाङ्गं विन्यसेद् वामकपोले वरवर्णिनि ॥८०॥
[1]आनन्दं धनदां कुम्भं रत्नकुम्भं प्रविन्यसेत् ।
दक्षिणायां श्रुतौ देवि कङ्कालं त्रिपुटामपि ॥८१॥
मुण्डं मुण्डं न्यसेद् वामे श्रवणे वरवर्णिनि ।
खोटं ततश्च कोरङ्गीं शूलं शूलं ततः परम् ॥८२॥
न्यसेद्धनौ दक्षिणायां [2]वेत्रमाषाढमेव च ।
भुशुण्डीं च भुशुण्डीं च वामायां विन्यसेद्धनौ ॥८३॥
विरूपयुग्मं नाराचं नाराचमथ पार्वति ।
[3]दक्षिणेंऽसे न्यसेद् योगतन्त्रामथ दिगम्बरम् ॥८४॥
कोदण्डं चाथ कोदण्डं वामेंऽसे[4] विन्यसेत् प्रिये ।
सञ्जीवनीं विनिमयं कुन्तं कुन्तं तथैव च ॥८५॥
दक्षिणे जत्रुणि न्यस्येत् सम्प्रदायं सभाजनम् ।
चक्रं चक्रं जत्रुणि च न्यसेद् वामे वरानने ॥८६॥
पोषं [5]व्याडं पारिजातं पारिजातमतः परम् ।
दक्षिणायां तु कक्षायां न्यसेत् साधकसत्तमः ॥८७॥
कालं नृसिंहं घण्टां च घण्टां तादृशमीरयेत् ।
न्यसेत् कक्षातले वामे कङ्कालममरं तथा ॥८८॥
छुरिकां छुरिकां चापि दक्षिणे पार्श्वे ईरयेत् ।
औदुम्बरं मनः प्रेतं बालप्रेतं तथैव च ॥८९॥
वामपार्श्वे[6] न्यसेद् देवि नित्यमध्वानमेव च ।
तोमरं तोमरमथ न्यसेद् दक्षिणचूचुके ॥९०॥

---

१. इतस्तिस्रः पंक्तयः क पुस्तके न सन्ति । २. वक्त्र० क ।
३. दक्षिणेऽङ्गे ख । ४. वामेऽङ्गे ख ।
५. व्याडिं क घ ङ । ६. वामशीर्षे घ ।

मन्थानमुग्रं ग्रावाणं ग्रावाणमपि च प्रिये ।
न्यसेत् समाहितमनाश्चूचुके दक्षिणेतरे ॥९१॥
संविदं तापिनीं पुष्पं पुष्पमालामपि प्रिये ।
कफोणौ दक्षिणे न्यसेत् [1]ततो वैराजमध्वरम् ॥९२॥
कङ्कालं नरकङ्कालं कफोणौ दक्षिणेतरे ।
अरिष्टं क्रकचं चापि डिण्डिमं डिण्डिमं तथा ॥९३॥
प्रगण्डे दक्षिणे न्यस्येद् कबन्धं पिञ्जलामपि ।
नाकुलं नकुलं चापि प्रगण्डे वाम उद्धरेत् ॥९४॥
कैकरं च विरिञ्चि च विहङ्गममथैव च ।
विहङ्गमं वै गृध्राख्यं मणिबन्धे च दक्षिणे ॥९५॥
ककुदं लक्ष्मनिर्मोकं सर्पं च तदनन्तरम् ।
मणिबन्धे न्यसेद् वामे विमर्दं शेखरं तथा ॥९६॥
पुटकं कमण्डलुं प्रोच्य दक्षिणेऽङ्गुलिमूलके ।
संग्रहं स्थावरं चापि वंशमुन्मादवंशिकाम् ॥९७॥
वामेष्वङ्गुलिमूलेषु विन्यसेत् कमलानने ।
ग्लहवेतण्डकुलिकं मांसखण्डमथ क्रमात् ॥९८॥
अङ्गुल्यग्रेषु दक्षेषु न्यासार्थं समनूच्चरेत् ।
खलमक्षरमुच्चार्य मुद्गरं मुद्गरं तथा ॥९९॥
अङ्गुलीनां हि मूलेषु [अग्रेषु] वामेषु प्रतिविन्यसेत् ।
तारकं कुब्जकमथ स्रुवं स्रुवमपि[2] प्रिये ॥१००॥
न्यसनीयो[3] दक्षकुक्षौ हाकिनीं चञ्चुमेव च ।
कुण्डमप्यग्निकुण्डं च वामकुक्षौ विनिर्दिशेत् ॥१०१॥
[4]आदावुल्लोलमुन्मादं फलबीजं ततः परम् ।
बीजपूरं[5] समाभाष्य दक्षिणायां स्फिचि न्यसेत् ॥१०२॥

---

१. तनौ क घ ।
२. मथ ख ।
३. न्यसनीया घ ।
४. आदावुन्मादमु० ख घ ।
५. पूजनीयं ख घ छ ।

ततश्चूडामणिं प्रोच्य[1] डमरुं डमरुं तथा ।
वामे स्फिचि प्रविन्यस्य[2] सम्मोहः पतनं तथा ॥१०३॥
सूचीं सूचीं दक्षकटौ न्यसनीयः सुरेश्वरि ।
धेनुं मारिषमाभाष्य परिघं परिघं तथा ॥१०४॥
न्यसनीयः कटौ वामे वीरं वेतालमेव च ।
परशुं ततोऽनु परशुं दक्षिणे वंक्षणे न्यसेत् ॥१०५॥
याम्यं[3] ततो जीवनीं च भिन्दिपालं ततः परम् ।
भिन्दिपालं ततः प्रोच्य वामे वंक्षण उच्चरेत् ॥१०६॥
व्ययं ससारसं प्रोच्य, गदामनु गदामपि ।
दक्षिणे जानुनि न्यस्येत् विराधयुगलं ततः ॥१०७॥
मुसलं मुसलं प्रोच्य वामे जानुनि विन्यसेत् ।
मोदकं वासितां चैव न्यसेद्[4] यष्टिं ततः परम् ॥१०८॥
न्यस्तव्यो दक्षिणे गुल्फे मोक्षं निर्वाणमेव च ।
पट्टिशं पट्टिशमथ वामगुल्फे प्रविन्यसेत् ॥१०९॥
परन्तपं तथैवाज्ञां मुष्टिं मुष्टिमनन्तरम् ।
विन्यसेद् दक्षिणे पार्ष्णौ [5]टङ्कन्यासौ ततः परम् ॥११०॥
प्रासं प्रासमथाभाष्य वामपार्ष्णौ समादिशेत् ।
फैरवानु कुमारीं च कुणपं कुणपं तथा ॥१११॥
दक्षपादाङ्गुलीमूले विन्यस्तव्यो वरानने ।
ओजस्विनं शफमथ शतघ्नीमप्यनन्तरम् ॥११२॥
शतघ्नीं वामपादाङ्गुलिमूलेषु प्रविन्यसेत् ।
ततः कामकलारङ्कौ ललितां लालनं तथा ॥११३॥
दक्षिणे प्रपदे न्यस्येदाम्नायातीतमेव च ।
शक्तिः सर्वस्वचिच्छक्ती शिवापोतं [6]समुद्धरेत् ॥११४॥

---

१. प्रौढं ख ङ छ ।
२. प्रविन्यस्येत् ख ।
३. याम्यां ख घ ।
४ यष्टिं घ ङ ।
५. पार्ष्णावङ्क घ ।
६. समाचरेत् ख ।

विन्यस्यः प्रपदे वामे सावधानेन साधकैः ।
इत्येषोऽस्त्रन्यास एवं मया ते प्रतिपादितः ॥११५॥
न्यूनाधिक्येष्वमुष्यापि वक्त्रन्याससमा क्रिया ।
तेषामपि च ऋष्यादिरस्यर्ष्यादिर्भवेच्छुभे ॥११६॥

[अन्यप्रकारेणापि अस्त्रन्यासकथनम्]

[1]अथवान्यप्रकारेण स्यादस्त्रन्यास ईश्वरि ।
फलातिरेकतोऽप्यस्मादतस्तमपि ते ब्रुवे ॥११७॥

[अस्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्यर्षिः परमेष्ठी स्याद् बृहतीच्छन्द उच्यते ।
दिव्यास्त्राणि तथा चास्य देवता परिकीर्तिता ॥११८॥
ज्वरोन्मादोलूकबलातिबलाफैरवाणि च ।
बीजानि च षडुक्तानि क्रमशः पठितानि हि ॥११९॥
उत्पातभ्रामकस्वप्नापस्मारर्क्षाणि शक्तयः ।
सौरचाक्रैषोकगुह्यपैशाचानि च कीलकम्[2] ॥१२०॥
प्रयोगोऽस्त्रन्यास एव कथितः परमेश्वरि ।

[अन्यप्रकारेणाप्यस्य विनियोगनिर्देशः]

[3]अथ प्रकारं कथये प्रयोगस्यास्य सुन्दरि ॥१२१॥
तारररावौ पुरः स्यातां शेषे पावकवल्लभा ।
पूर्वोदितेषु स्थानेषु दक्षवामाह्वयेषु च ॥१२२॥
मध्ये भवेत् तत्तदस्त्रोपकूटं परमेश्वरि ।
ब्रह्मास्त्रं प्रथमं नारायणास्त्रं तदनन्तरम् ॥१२३॥
शाङ्करास्त्रं वैष्णवास्त्रं वायव्यास्त्रमनन्तरम् ।
प्राजापत्यास्त्रमस्यानु वारुणास्त्रं ततोऽनु च ॥१२४॥
कौबेरास्त्रं तथैन्द्रास्त्रं कम्पनास्त्रं ततोऽप्यनु ।
आग्नेयास्त्रं च याम्यास्त्रं सौपर्णास्त्रमनन्तरम् ॥१२५॥

---

१. इतः सार्द्धत्रयपंक्तयः ख घ पुस्तकयोः,
२. गुह्यकम् ख घ छ । ३, इतः पंक्तिचतुष्टयं ख घ पुस्तकयोर्न दृश्यते ।

पाषाणास्त्रं च कालास्त्रं भौतास्त्रं पार्वतास्त्रकम् ।
नागास्त्रं वैद्युतास्त्रं च त्वाष्टास्त्रं तैमिरास्त्रकम् ॥१२६॥
पार्जन्यास्त्रं तामसास्त्रं मातङ्गास्त्रं ततः स्मरेत् ।
औदुम्बरास्त्रं स्कान्दास्त्रं [1]जृम्भकास्त्रं ततः परम् ॥१२७॥
गान्धर्वास्त्रं दानवास्त्रं जृम्भणास्त्रमितोऽप्यनु ।
प्रस्वापनास्त्रं तदनु कालकूटास्त्रमेव च ॥१२८॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चापि राक्षसास्त्रं गणास्त्रकम् ।
वैनायकास्त्रं भारुण्डास्त्रं वेतालास्त्रमेव च ॥१२९॥
हैमनास्त्रं शाबरास्त्रं , शारभास्त्रमनन्तरम् ।
प्रमथास्त्रं राजसास्त्रं कूष्माण्डास्त्रमितोऽप्यनु ॥१३०॥
माकरास्त्रं मूर्च्छनास्त्रं गालनास्त्रं ततः परम् ।
मोहनास्त्रं स्तम्भनास्त्रं निमीलनास्त्रमेव च ॥१३१॥
अन्तर्द्ध्यस्त्राचेतनास्त्रं ततः परमुदीरयेत् ।
मारणास्त्रं त्रैदशास्त्रं सर्वशेषे नियोजयेत् ॥१३२॥
वक्त्रबाह्वतिरेकत्वे न्यूनत्वे नास्य विक्रिया ।
इत्यनेन प्रकारेण प्रोक्तोऽस्त्रन्यास ईश्वरि ॥१३३॥

[अस्त्रन्यासफलश्रुतिः]

पूर्वस्माल् लक्षगुणितः कर्तव्यो विजिगीषुणा ।
नैमित्तिके तथा काम्ये कार्योऽयं सर्वथा प्रिये ॥१३४॥
निरालसस्याधिकारो नैवालस्ययुतस्य हि ।

[दूतीन्यासाभिधानम्]

दूतीन्यासमथो वक्ष्ये नानासिद्धिफलप्रदम् ॥१३५॥
कर्तव्यो भूतिकामेन राज्ञा चैव विशेषतः ।
दूतीन्यासस्यास्य ऋषिः प्रजापतिरुदाहृतः ॥१३६॥
जगतीच्छन्द उदितं शिवदूती च देवता ।
भोगो बीजं समुदितं शक्तिः सृष्टिरुदाहृता ॥१३७॥

१, जम्भकास्त्रं ङ ।

कृत्याबीजं कीलकं स्याद् विनियोगोऽस्य कथ्यते ।

[दूतीन्यासप्रकाराभिधानम्]

देवि दूतीन्यास एव प्रकारमधुना शृणु ॥१३८॥
चतुर्विंशतिदूत्यस्तु **कपालाह्वयडामरे** ।
[1]**ब्रह्माख्ये यामले** चापि पृथक्त्वेन निरूपिता ॥१३९॥
भीमातन्त्रे व्यापिकाख्या पञ्चविंशतिकान्यपि ।
कालानले तु षड् दूत्यः सिद्धिलक्ष्म्युग्रचण्डयोः ॥१४०॥
पूजाविधौ गुह्यकाल्याः पञ्चविंशतिरीरिताः ।
तत्तन्मन्त्रास्ततस्तत्तच्छिवदूतीः स्वनामभिः ॥१४१॥
तत्तत्स्थानानि वक्ष्येऽहं क्रमेण परमेश्वरि ।
न्यासस्थानं मन्त्र एवेत्यनाख्येयं मया मुहुः[2] ॥१४२॥
पाशत्रयाऽनु प्रकटपदाद् विकटरूपिणि ।
मायाकामौ तथा काली तदन्वट्टाट्टहासिनि ॥१४३॥
लक्ष्मीसृणिरुषो दत्वा नरमुण्डाच्च मालिनि ।
चराचरं जगत् प्रोच्य स्तम्भय द्वितयं ततः ॥१४४॥
महाक्रोधं गारुडं च प्रासादं तदनन्तरम् ।
सम्बोधनं चण्डशिवदूतीशब्दस्य तत्परम् ॥१४५॥
श्रीपादुकां पूजयामि ललाटाय नमस्ततः ।
पाशत्रयादनु महाश्मशानाद् [3]वासिनीत्यपि ॥१४६॥
शाकिनी योगिनी कान्ता नरकङ्कालधारिणि ।
ततः करंकिणि[4] प्रोच्य फेरुमुख्यपि कीर्तयेत् ॥१४७॥
डाकिनीप्रलयावुक्त्वा फेत्कारीमपि कीर्तयेत् ।
ततः प्रलम्बोदरि च ऋक्षकर्णि त्रिसन्धिमत् ॥१४८॥
शब्दात् फेरुशिवाद् दूति वदेत् श्रीपादुकां ततः ।
पूजयामीति चिबुकाय नमस्तदनन्तरम् ॥१४९॥

---

१. उमाख्ये घ ङ छ । २. पुनः ख घ ।
३. हासिनी ० ख । ४. करंकिनि ख कलंकिनि घ ।

त्रिः पाशं पुनराभाष्य दंष्ट्राशब्दं ततः परम् ।
कराले लोलजिह्वे च नृसिंहप्रेतभैरवीः ॥१५०॥
ततो रुधिरशब्दानु वसापिशितभोजिनि ।
त्रिशिखां च त्रिशक्तिं च खेचरीमप्यनन्तरम् ॥१५१॥
घोररावे[1] महाचण्डकोपिन्यपि[2] ततः परम् ।
शक्तिबीजं भूबीजं च विद्युद्बीजमपि प्रिये ॥१५२॥
ततो रक्तशिवार्णेभ्यो दूति[3] श्रीपादुकां वदेत् ।
पूजयामीति चोल्लिख्य दक्षिणेत्यपि संस्मरेत् ॥१५३॥
कर्णाय नम इत्यन्ते दूतीपाशादि मा व्यगात् ।
चतुःकलं महापिङ्गलजटाभारभासुरे ॥१५४॥
हारेष्टिजम्भास्तदनु श्मशानाद्धावनेत्यपि ।
विमुक्तकेशि संकीर्त्य हाहाराविणि चोद्धरेत् ॥१५५॥
एकावलीं व्रतमथो षडङ्गं तदनन्तरम् ।
ततः खरमुखि प्रोच्य पिशाचिनि समुद्धरेत् ॥१५६॥
पदात् कुलमताद् भूयः प्रवर्तिनि समालिखेत् ।
गवादित्र्यन्तगं क्रोधशिवदूतिपदं[4] भवेत्[5] ॥१५७॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामकर्णाय हृन्मनुः ।
कलाचतुष्कानु महाभैरवि[6] प्रतिकीर्तयेत् ॥१५८॥
खट्वाङ्गधारिणि तथा महामांसबलिप्रिये ।
ततो मुक्तामेखले च कणिकादुष्कृते तथा ॥१५९॥
महामारीतिपदतस्त्रैलोक्यडामरीत्यपि ।
निशाचरीति संलिख्य महाकुण्डे समुद्धरेत् ॥१६०॥
शृङ्खलामथ पद्मं च दूति घोरशिवात् पदात् ।
श्रीपादुकां पूजयामि कूर्चाय नम इत्यपि ॥१६१॥

---

१. घोरघोरे घ छ ।
२. कापाल्यपि ख छ ।
३. दूती ख ।
४. ० दूती ख ।
५. वदेत् ख ।
६. भैरवी ख ।

वेदसंख्यां कलामुक्त्वा पदाद् विकटतुङ्गतः ।
कोकामुखि समुद्धृत्य जालन्धरि ततः परम् ॥१६२॥
क्रमगर्भाह्वये बीजे तत औपह्वराभिधम् ।
कुशिकं सदाशिवप्रेतारूढे तदनु भामिनि ॥१६३॥
पातालतुलितोदर्यनु स्याद् बीजं नृसिंहकम् ।
दीपं नान्दिकबीजं च व्ययबीजमतः परम् ॥१६४॥
कृतान्तशिवदूतीति तदन्ते समुदीरयेत् ।
श्रीपादुकां पूजयामि तथौष्ठाय नमोऽपि च ॥१६५॥
कलाचतुष्कमाभाष्य भुजङ्गाद् राज इत्यपि ।
कटिसूत्रिणि संकीर्त्य बह्निस्फुलिङ्ग इत्यपि ॥१६६॥
पिङ्गलाक्षि[1]पदाद् बीजं नाराचं समुदीरयेत् ।
नालीकं मन्दमपि च चर्पटं बीजमन्वतः ॥१६७॥
द्वीपिचर्मावृताङ्गीति [2]शिववाहिनि चेत्यपि ।
चण्डकापालेश्वरि च भुशुण्डीं शूलपूर्विकाम् ॥१६८॥
सम्मोहं मणिमालां[3] च कापालशिवदूत्यपि ।
श्रीपादुकां पूजयामि ततोऽनन्तरमीरयेत् ॥१६९॥
ततो दक्षिणनेत्राय नमः पदपुरस्सरम् ।
कलादिमागता देवि शिवदूती दृगन्तिमैः [?] ॥१७०॥
पञ्च शर्वानु प्रलयकालानलपदं भवेत् ।
ज्वालाजटालचितितो मध्यसंस्थे[4] ततः परम् ॥१७१॥
ततोऽनु विधिडाकिन्यौ[5] केकराक्षीमतः परम् ।
पतनं प्रोच्य कल्पान्तरङ्गनृत्यपदं वदेत् ॥१७२॥
ततो महानाटकिनि[6] पदमीदृशमुच्चरेत् ।
[7]दक्षिणं चापि कौलुञ्चं नादान्तकविरूपकौ ॥१७३॥

---

१. ० क्षीपदाद् ख । २. शववाहिनि घ ङ ।
३. मणिमाली ख । ४. मध्यसन्ध्ये घ ।
५. हाकिन्यौ घ ङ । ६. ० किनी ख ।
७. दाक्षिकं ख घ ।

चर्चरीकरशब्दानु तालिकावादिनीत्यपि ।
शिवदूतीति कथयेद् वज्रशब्दादनन्तरम् ॥१७४॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामनेत्राय हृन्मनुः ।
प्राग्वद् वदेत् पञ्चशर्वान् परापर ततः परम् ॥१७५॥
रहस्यसमयेत्युक्त्वा चारिणि[1] प्रतिकीर्तयेत् ।
ज्वालामालिन्यनु वदेद् विजयाबीजमीश्वरि ॥१७६॥
गायत्रीं संहितां चापि करालीं तदनन्तरम् ।
यथाक्षरं हि प्रलयसमयेत्यपि कीर्तयेत् ॥१७७॥
कोट्यर्कदुर्निरीक्ष्ये च . ततो मृत्युपदेत्यपि[2] ।
चञ्चुं नान्दिकमुद्धृत्य सारसं च तथा घटीम् ॥१७८॥
जय [3]ऋटङ्कारिणि प्रोच्य विसन्ध्युल्कापदं वदेत् ।
शिवदूतीति संकीर्त्य ततः श्रीपादुकां वदेत् ॥१७९॥
वदेद् दक्षिणगण्डाय पूजयामि पदादनु ।
सर्वशेषे हृन्मनुः स्यादित्येवं विध्यनुक्रमः ॥१८०॥
पूर्वोक्तरीतिवत् पञ्च शर्वान् प्रथममुद्धरेत् ।
ततोऽनु कोटिचामुण्डा मध्यचारिणि कीर्तयेत् ॥१८१॥
प्रेतकङ्कालधारिण्यनु ब्रूयाद् बीजपञ्चकम् ।
कोशं पिण्डं च वेतालं सारिघं कुटिलामपि ॥१८२॥
दिगम्बरि समाभाष्य ततः कपिलचञ्चल- ।
क्रूरतारे भ्रमयुक्त्वा भ्रामरि प्रतिकीर्तयेत् ॥१८३॥
भौरं पुटकमृष्टिं च कुन्तं चत्वारि कीर्तयेत् ।
ततो भगवति प्रोच्य श्मशानशिवदूत्यपि ॥१८४॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामगण्डाय हृन्मनुः ।
शर्वपञ्चकमाभाष्य वदेदाकर्षणीति च ॥१८५॥

---

१. चारिणी ख ।
२. मृत्युवदन्यपि घ ।
३. कङ्कालिनी घ ।

आवेशिनि ततः सन्तोषिणि सम्मोहिनीत्यपि ।
बीजे विश्वमयूक्ते द्वे संहारं कृत्यया सह ॥१८६॥
ततश्चण्डिनि चाण्डालिनि चण्डि चण्डिकेत्यपि ।
रतिपीयूषशक्तचर्णान् प्रवदेत् सह निर्मलान् ॥१८७॥
मदोन्मत्ते वदेदुग्रशिवदूतीति तत्परम् ।
श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणांसाय हृन्मनुः ॥१८८॥
पञ्चैव शर्वानाभाष्य वदेत् कालि पुनर्महात् ।
कालवञ्चनि संकीर्त्य विच्चे घोरे ततः परम् ॥१८९॥
परापरेति संकीर्त्य सम्भेदिनि समुद्धरेत् ।
[1]सन्तर्जिनि पुनः प्रोच्य बलाहकिनि कीर्तयेत् ॥१९०॥
तत उक्ता कालरात्रिः कालान्तकगृहिण्यपि ।
परापरेति संकीर्त्य सम्भेदिनि समुद्धरेत् ॥१९१॥
[2]कङ्कालादीनि पञ्चापि बीजानि समुदाहरेत् ।
नाकुलाद्यासुरान्तं च पञ्चबीजं ततः स्मरेत् ॥१९२॥
खण्डिन्युपन्यस्य पुनर्मुण्डिनि प्रत्युपन्यसेत् ।
ततो रौद्र[3]शिवेत्यर्णाद् दूति श्रीपादुकां वदेत् ॥१९३॥
पूजयाम्यनु वामांसाय नमस्तदनन्तरम् ।
शर्वादिमाः पञ्चदूत्यः समाप्तिमगमत् प्रिये ॥१९४॥
तारान् पञ्च समुल्लिख्य प्रथमं वरवर्णिनि ।
ततो ब्रह्मकपालाच्च बद्धपद्मासने वदेत् ॥१९५॥
चर्चितानु महाविष्णुकपाले तदनन्तरम् ।
धनदामथ यक्षं च कौमुदीं[4] चित्रमेव च ॥१९६॥
नन्दिनीबीजतः सार्द्रनारान्त्रकृत इत्यपि ।
योगपट्टिनि संकीर्त्य शेषयज्ञोपवीतिनि[5] ॥१९७॥

---

१. इयं पंक्तिः क ङ पुस्तकयोर्नास्ति ।
२. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति ।
३. रुद्रशिवे ख ।
४. कौमारीं घ ।
५. ० जीविनि ख ।

ललितां रौरवं विश्वं वैराजं च कुमारिकाम् ।
विकरालिनि निःसन्धि उन्मत्तशिवदूत्यपि ॥१९८॥
श्रीपादुकां पूजयामि तदनन्तरमीरयेत् ।
वामवंक्षणमाभाष्य ङेऽन्तत्वेन नमोऽन्वितम् ॥१९९॥
गर्भजन्ममृतित्राता[1] हृत्पञ्चादौ समुदीरयेत् ।
खरकर्णि प्रोच्य महापिशाचिनि समालिखेत् ॥२००॥
[2]खद्योतपिङ्गलेत्युक्त्वा ज्वलदक्षीति चोद्धरेत् ।
संविदं पुनरिच्छां च मनश्च ससमाधिकम् ॥२०१॥
प्रासादं यमजिह्वे च वडवामुखि कीर्तयेत् ।
विसन्ध्यवर्णेश्वरि च वज्रव्योमानु केश्यपि ॥२०२॥
धूमं च [3]सुरभिं छन्दः सूची फैरवमेव च ।
रहस्यरक्षिणी प्रोच्य कालार्णाच्छिवदूत्यपि ॥२०३॥
श्रीपादुकां पूजयामि ततोऽनन्तरमीरयेत् ।
ततो दक्षिणपौरस्त्यं वंक्षणं समुदाहरेत् ॥२०४॥
विभक्त्या तुर्यया युक्तं नमः शब्देन चान्तिमे ।
उच्चार्य पञ्च वेदादीन् जययुग्मं प्रकीर्तयेत् ॥२०५॥
जीवद्वन्द्वं ततः कामाङ्कुशे इति समुद्धरेत् ।
कामद्राविणि संकीर्त्य सर्वानु मदभञ्जिनि ॥२०६॥
मारण्डं च विनादं च सम्भूतिं चतुरस्रकम् ।
विरञ्च्यन्ते पुनर्ब्रूयादनाख्येयस्वरूपिणि ॥२०७॥
ततः पुनश्चर्पटिनि [4]नगदन्तपदं ततः ।
ब्रह्माण्डे इति संकीर्त्य सम्बर्तकविवर्तकौ ॥२०८॥
पारीन्द्रं च शुभंयुञ्च वैधानं तदनन्तरम् ।
ततः क्षपणिके मुण्डशिवदूतीति कीर्तयेत् ॥२०९॥

---

१. ज्ञातृन् ङ, त्रातृणां चादौ घ० ।
२. इयं पंक्तिः क. पुस्तके नास्ति ।
३. सुरभीं ख, घ,
४. गलदन्तपदं वदेत् ख घ छ

श्रीपादुकां पूजयामि गलाय नम इत्यपि ।
पञ्चागमानां मूद्ध्नोंऽग्रे सकलाद् दैत्य इत्यपि ॥२१०॥
बलमर्दिनि संस्मृत्य निपीतरुधिरेऽपि च ।
छर्दिन्यन्ते कैतवार्णं तत आतङ्कमेव च ॥२११॥
संहारिणीं च विघटीं विरागं चरमे वदेत् ।
[1]शवाङ्गुली पुञ्जकृतकाञ्चितस्या[तेत्य]प्यनूद्धरेत् ॥२१२॥
हूं हूं कारपदान्नादभीषणे तदनन्तरम् ।
विवत्समथ सम्भावं संयोगं च वियोगकम् ॥२१३॥
धम्मिलं शूलिनि प्रोच्य महाराक्षसि कीर्तयेत् ।
ततश्च शिवदूतीति प्रवदेद् वरवर्णिनि ॥२१४॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामपार्श्वाय हृन्मनुः ।
प्रणवान् पञ्च संलिख्य वातवेगजयिन्यतः ॥२१५॥
वेतण्डतुण्डि परमप्रचण्डि तदनन्तरम् ।
सुकृतं भद्रिकां चैव संहारिणमतः परम् ॥२१६॥
औपदेयं च विरसं महाशङ्खाच्च मालिनि ।
त्रिलोकीपालिनि प्रोच्य संवर्तकपदं वदेत् ॥२१७॥
कालानलज्वालिनि च भुजभीमे च कर्कशात् ।
उड्डियानं च यमलं ऋंकारं गुल्व[गुल ?]मेव च ॥२१८॥
[2]भानं च घोरतासीमे बलाच्च शिवदूत्यपि ।
श्रीपादुकां पूजयामि वस्तये नम इत्यपि ॥२१९॥
प्रिये समुद्धृत्य पुरो गायत्रीमुखपञ्चकम् ।
अणिमादिप्रभावानु प्रकाशिनि समीरयेत् ॥२२०॥
चण्डातिचण्डतरतश्चण्डयोगेश्वरीत्यपि ।
रयिमुद्भिदमाभाष्य द्रापं[?] छिप्पि[?] सतीर्थकम् ॥२२१॥

१. सर्वाङ्गुलीपुञ्जकृतकां घ, । २. भारं ख, घ, ।

सकलानु जनान्ते च मनोरञ्जनि कीर्तयेत् ।
[1]ततश्च दुष्टदुरभिप्रायभञ्जिनि चेत्यपि ॥२२२॥
अस्यान्तिमे च प्रणतवाञ्छितप्रद ईरयेत् ।
पथ्यं शफमुरङ्कं च आम्नायातीतमेत्र च ॥२२३॥
तत्त्वार्णवं सर्वशेषे सौम्यमूर्ते ततः परम् ।
भगवत्यन्तिमे सिद्धिशिवदूति प्रकीर्तयेत् ॥२२४॥
श्रीपादुकां पूजयामि ततोऽनु समुदीरयेत् ।
ङेऽन्तं दक्षिणपार्श्वं च नमः पदजघन्यकम् ॥२२५॥
ताराद्याः षडिमाः[2] प्रोक्ताः शिवदूत्यो वरानने ।
वाग्भवाद्याः सप्त मत्तो निबोधातः परं मताः[3] ॥२२६॥
पञ्च मैधान् समुद्धृत्य कालिकालि ततो वदेत् ।
ततो महाकालि चोक्त्वा मांसशोणितभोजिनि ॥२२७॥
दण्डं त्रपां गामुच्चार्य रक्तकृष्णमुखीत्यपि ।
देवीत्युक्त्वा ततो गा[4] मां ततो नश्यन्तु शत्रवः ॥२२८॥
हृदयाच्छिवदूतीति ततः श्रीपादुकामपि ।
पूजयाम्यनु दण्डार्णं हृदयाय नमोऽन्तिमे ॥२२९॥
पञ्चसारस्वतीमादौ नमो भगवतीति च ।
दुष्टचाण्डालिनि प्रोच्य रुधिरान्मांसभक्षिणि[5] ॥२३०॥
कपालखट्वाङ्गपदाद् धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
हनद्वन्द्वं दहयुगं पचयुग्मं ततोऽप्यनु ॥२३१॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य ग्रस ग्रस समादिशेत् ।
मारयद्वन्द्वमाभाष्य कूर्चत्रितयमालपेत् ॥२३२॥
फट्शिरःशब्दमस्यानु शिवदूत्यस्य पश्चिमे ।
श्रीपादुकां पूजयामि लज्जाबीजं ततो वदेत् ॥२३३॥

---

१. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति ।
२. फडिति ताः क ।
३. परम्परा घ ।
४. मांसान् ख घ छ ।
५. भोजिनि क ।

[१]शिरःशब्दं चतुर्थ्यन्तं ततः स्वाहायुतं ततः ।
प्रथमं पञ्चचैतन्यं वदेत् कमललोचने ॥२३४॥
विजयं मन्दसंमोहावतः परमुदीरयेत् ।
महापिङ्गलशब्दानु जटाभारे तथैव च ॥२३५॥
विकटार्णानु रसनाकराले तदनन्तरम् ।
सर्वसिद्धिमुदाहार्यं देहियुग्मं ततोऽप्यनु ॥२३६॥
दापयद्वितयस्यान्ते शिखार्णाच्छिवदूति[२] च ।
श्रीपादुकां पूजयामि गां शिखायै वषट् ततः ॥२३७॥
वाग्भवान् पञ्च संस्मृत्य पुरतः कमलानने ।
महाश्मशानपदतो वासिनि प्रतिभावयेत् ॥२३८॥
घोराट्टहासिनि ततः पुर्नविकटतुङ्ग च ।
कोकामुखि त्रपाकामरमाबीजान्यतः परम् ॥२३९॥
महापातालतुलितोदरि[३] तस्याप्यनूच्चरेत् ।
[४]भूतवेतालपदतः सहचारिणि कीर्तयेत् ॥२४०॥
ततः कवचशब्दानु शिवदूतीति चोद्धरेत् ।
श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय च संभ्रमम् ॥२४१॥
मैधान् विशिखसंख्याकान् पुरतः समुदाहरेत् ।
लेलिहानपदस्यान्ते रसनास्याभयानके ॥२४२॥
विस्रस्तचिकुरं प्रोच्य भारभासुर ईरयेत् ।
न बीजं किन्तु वर्णानि चामुण्डाभैरवीति हि ॥२४३॥
डाकिनीगणशब्दानु वदेत् परिवृते पदम् ।
शाकिनीडाकिनीक्रोधबीजान्युक्तान्यतः परम् ॥२४४॥
आगच्छ द्वितयं प्रोच्य सान्निध्यं पदमीरयेत् ।
कल्पयद्वन्द्वमाभाष्य ततस्त्रैलोक्यडामारे ॥२४५॥

---

१. शिवशब्दं ख घ ।
२. शिवदूत्यपि ख घ ।
३. ० तोद्वारि क तो देवि (?) ख घ ।
४. इतश्चतुर्दशपंक्तयः ख पुस्तके न सन्ति ।

महापिशाचिनि ततो नेत्रतः शिवदूति च ।
श्रीपादुकां पूजयामि ततो नेत्रत्रयाय चं ॥२४६॥
वौषट् सर्वान्त उच्चार्यमिति देवि तवोदितम् ।
पूर्ववत् पञ्च चैतन्यबीजानि प्रतिकीर्तयेत् ॥२४७॥
गुह्यातिगुह्यपदतः कुब्जिके रुट्त्रयं तथा ।
अस्त्रं ममार्णतः सर्वोपद्रवानिति कीर्तयेत् ॥२४८॥
मन्त्रतन्त्रेति चाभाष्य यन्त्रचूर्णेत्यनन्तरम् ।
प्रयोगादिकशब्दस्य द्वितीयान्तविभक्तिकम् ॥२४९॥
ततः परकृतानुक्त्वा कारितानप्युदाचरेत् ।
करिष्यन्ति समाभाष्य तान् सर्वाननु कीर्तयेत् ॥२५०॥
हनद्वन्द्वं मथयुगं मर्दयद्वितयं ततः ।
दंष्ट्राकरालि च पदं रावह्लीरोषणास्त्रयुक् ॥२५१॥
गुह्यातिगुह्यपदतः कुब्जिके प्रतिभावयेत् ।
ततोऽस्त्रशिवदूतीति संबोधनतया वदेत् ॥२५२॥
श्रीपादुकां पूजयामि ङेऽन्तास्त्रपदमन्वतः ।
अस्त्रमन्त्रः सर्वशेषे विष्ठितः परमेश्वरि ॥२५३॥
[1]वाग्भवक्रोधयोः पञ्च त्रिबीजं क्रमतः पुरः ।
हूं हूं कारपदाद् घोरनादवित्रासितेत्यपि ॥२५४॥
जगत्त्रये ततस्त्रीणि त्रपाबीजानि संलिखेत् ।
प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते ॥२५५॥
इत्य[2]र्द्धपत्य[?]माभाष्य कामबीजत्रयं स्मरेत् ।
पदविन्यासपदतस्त्रासितेति समुद्धरेत् ॥२५६॥
ततः सकलपाताले लक्ष्मीबीजत्रयं ततः ।
ततोऽनु व्यापकशिवदूतितः[3] परमेत्यपि ॥२५७॥
शिवपर्यङ्कशायिन्यनु वदेद् योगिनीत्रयम् ।
गलद्रुधिरतो मुण्डमालाधारिणि कीर्तयेत् ॥२५८॥

---

१. वाग्भवयोः पञ्च सप्त क ।
२. इत्यर्धपदमाभाष्य ख घ छ ।
३. ० दूतीतः ख ।

घोरघोरतराद् रूपिण्यनु [1]वारत्रयं पठेत् ।
ज्वालामालिपदात् पिङ्गजटाजूटे ततः परम् ॥२५९॥
अचिन्त्यमह्हिम प्रोच्य प्रभावे बलशब्दतः ।
वधूत्रयाद् दैत्यदानवनिकृन्तनि कीर्तयेत् ॥२६०॥
सकलानु सुरेत्युक्त्वा कार्यसाधिक[2] ईरयेत् ।
तारत्रयास्त्रहृच्छीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ॥२६१॥
एवं समाप्तो देवेशि दूतीन्यासोऽयमुत्तमः ।
मेधादिमाः सप्तदूत्यो मया ते प्रतिपादिताः ॥२६२॥
समन्यूनाधिकास्यानामेष साधारणो मतः ।

[वक्त्रबाहू वस्त्रभेदेऽपि नैतन्न्यासे कश्चिद् भेद इति निर्देशः]

न चास्य वक्त्रबाह्वस्त्रभेदैर्भिन्ना क्रिया भवेत् ॥२६३॥

[दूतीन्यासफलश्रुतिः]

एकाक्षरोपासकानामयुताक्षरसेविनाम् ।
साधारणो न्यासराजः कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥२६४॥
काम्यनैमित्तिकार्चासु स्यादावश्यकतास्य हि ।
नित्ये न दोषोऽकरणे करणे फलभूमता ॥२६५॥
मृत्यूल्लोलं तितीर्षूणामेष पोतो भवार्णवे ।
दिव्यौघा मानवौघाश्च सिद्धौघा ये प्रकीर्तिताः ॥२६६॥
अनेन प्राप्तवन्तस्ते सिद्धिं परमदुर्लभाम् ।
यदा स्याच्छारदी पूजा वासन्ती वा वरानने ॥२६७॥
कर्तव्य एव हि तदा दूतीन्यासः सुसंस्कृतः ।
अकुर्वन् देवि तत्रामुं विफली[3]कुरुतेऽखिलम् ॥२६८॥
अथ प्रयत्नतस्तत्र कर्तव्यः शुभमिच्छता ।
विदधन्नित्यपूजायां षण्मासान् मत्समो भवेत् ॥२६९॥
पर्वस्ववश्यं कर्तव्यो न्यासराजो वरानने ।
एतस्य नित्यता तत्राकरणे दोषदर्शनात् ॥२७०॥

---

१. रावत्रयं घ।
२. कालसाधक ख कार्यताधिक घ।
३. विफलं ० घ।

[डाकिनीन्यासाभिधानम्]

डाकिनीन्यासमधुना समाकर्णय सुन्दरि ।
यं कुर्वन् डाकिनीः सर्वाः समाकर्षति तत्क्षणात् ॥२७१॥

[डाकिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋषिः स्वयम्भूरेतस्य गायत्रीच्छन्द इष्यते ।
डाकिन्यो देवताः सर्वा एतद्बीजं तु बीजकम् ॥२७२॥
केकराक्षी शक्तिरुदिता कालरात्रिस्तु कीलकम् ।
डाकिनीन्यास एवास्य विनियोगः प्रकीर्तितः ॥२७३॥
तारमैधत्रपालक्ष्मीकामकूर्चास्त्रशाकिनीः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी कुलिकः प्रेतभैरवीः ॥२७४॥
[1]सागरो गुप्तिसन्तोषौ फैरवं कूटमन्वतः ।
कोलागिरिस्थान उक्त्वा चित्रघण्टेति कीर्तयेत् ॥२७५॥
सम्बोधनं च डाकिन्यास्ततः परमुदीरयेत् ।
मां ततो रक्षयुगलं त्वग्धातून् मम शब्दतः ॥२७६॥
रक्षद्वन्द्वं पाहियुगं प्रासादसृणिगारुडान् ।
क्षेत्रपालं योगिनीं च डाकिनीकूटमन्वतः ॥२७७॥
उदीर्य पञ्च दण्डादीन् सर्वसत्त्ववशंकरि ।
क्रोधत्रितयमस्त्रे द्वे एकैकं हृच्छिरोऽपि च ॥२७८॥
ग्रीवायाममुना न्यस्य स्थानं तस्या हि तद्विदुः ।
एकं तारं पञ्च मैधान् ततः शङ्खादिपञ्चकम् ॥२७९॥
विद्युन्नृसिंहखेचर्यः प्रलयोऽनाहतोऽपि च ।
नैगमं कूटमस्यानु स्थाने मुञ्जगिरेरनु ॥२८०॥
उल्कामुखी राकिनी च तारकं कोलखेदकौ ।
रक्षद्वन्द्वं मां पदान्ते मम रक्तपदादनु ॥२८१॥
धातून् रक्षयुगं वापि चण्डविश्वौ सकिन्नरौ ।
दस्रशक्ती ततः कूटं खेचरीनामकं स्मरेत् ॥२८२॥

१. इतः पञ्च पंक्तयः ख पुस्तके न सन्ति ।

[1]खड्गादिपञ्च बीजानि सर्वदेववशङ्करि ।
रावत्रितयमस्त्रे द्वे नमः स्वाहा हृदि न्यसेत् ॥२८३॥
प्रणवं पञ्च चैतन्यबीजं पुरत आदिशेत् ।
वधूविराजौ भारुण्डा तन्त्रेंऽशु[2]युगलं तथा ॥२८४॥
तुङ्गहारौ तथा त्रेतां प्राणकूटमतः परम् ।
ततो विन्ध्यगिरिस्थाने घोरनादापदं वदेत् ॥२८५॥
[3]डाकिनीति च सम्बोध्य लिखेत् [4]सत्त्वं तमो रतिम् ।
मां रक्षयुग्मं मम च मांसधातूनितीरयेत् ॥३८६॥
रक्षद्वन्द्वं सर्वसिद्धवशंकरि ततः परम् ।
फैरवं च कुमारीं च मौञ्जीसूत्रं सकर्णिकम् ॥२८७॥
मेरुकूटं समाभाष्य विजयादित्रयं वदेत् ।
विस्मृतिद्वितयं चानु योगिनीत्रयमन्वतः ॥२८८॥
अस्त्रं हृच्चापि मूर्धा च द्वे चैकं रूपमेव च ।
नाभौ न्यसेच्च [5]लाकिन्याः स्थानमेतदुदाहृतम् ॥२८९॥
पञ्च चैतन्यबीजानि चत्वारि कुलयोषितः ।
शाकिन्याश्चैव डाकिन्याः काकिन्यास्त्रिद्विरूपकम् ॥३९०॥
विदिशं च प्रतानं च कौलुञ्चं तदनन्तरम् ।
[6]पार्श्वकूटं नीलगिरिस्थाने पिङ्गजटा ततः ॥२९१॥
संबुद्धिमपि काकिन्याः मां रक्षयुगलं ततः ।
ममानु मेदो धातूंश्च रक्ष रक्ष ततः परम् ॥२९२॥
सर्वदैत्यवशंकर्यनु ब्रूयात् संहितां विधिम् ।
करालीं चञ्चुमस्यानु मन्त्रकूटं समादिशेत् ॥२९३॥
रम्भायुगं बलियुगं मन्दारद्वितयं तथा ।
जम्भयुग्मास्त्रयुग्मे च एकैकं हृच्छिरोऽपि च ॥२९४॥

---

१. स्वाहादि क ।
२. नेत्रे भ्रू० ख घ ।
३. लाकिनी क ख घ ।
४. तत्त्वं घ ।
५. डाकिन्याः क ।
६. पद्मकूटं घ पत्रकूटं ख ।

लिङ्गे न्यसेदिदं स्थानं काकिन्याः परिकीर्तितम् ।
पञ्चकं वाग्भवानां हि पुरतः समुदाहरेत् ॥२९५॥
रञ्जिनी रागकुशिकौपह्वरं द्वितयं वदेत् ।
लाङ्गूलं वर्द्धमानं च वेत्रमाषाढमेव च ॥२९६॥
भौमकूटं श्वेतगिरिस्थाने वेगाकुला ततः ।
वर्णमात्रं शाकिनि मां रक्ष रक्ष ततोऽप्यनु ॥२९७॥
ममास्थिधातूनस्यानु रक्षद्वन्द्वमुदीरयेत् ।
सर्वग्रहवशंकर्यथो वेदीं जरया सह ॥२९८॥
बीजत्रयं चाक्षरादि निर्गोत्रं तर्जनीमपि ।
वर्णकूटं त्र्यस्रयुगं विमर्दयुगलं तथा ॥२९९॥
विशुद्धियुग्मं वैहङ्गमबीजं तदनन्तरम् ।
द्विरस्त्रमर्द्धे हृच्छीर्षे अपाने विन्यसेत् प्रिये ॥३००॥
पञ्च मैधानि बीजानि हयग्रीवं सकालिकम् ।
अङ्कुशं गारुडं चैव ज्ञानेच्छे कुम्भकं तथा ॥३०१॥
रेचकं क्षेत्रपालं च तथैडाकूटमेव च ।
ततः सह्यगिरिस्थाने ह्येकपादापदं भवेत् ॥३०२॥
संबुद्धिमपि हाकिन्या मां ततो रक्ष युग्मकम् ।
ममानु मज्जाधातूंश्च रक्षद्वन्द्वं ततः परम् ॥३०३॥
ततः सर्वपशूच्चार्य वशंकरि विभावयेत् ।
मौञ्जीयुगं गर्भयुग्मं मधु ताण्डवमेव च ॥३०४॥
प्रेतं च भैरवीं प्रोच्य पिशाचिन्यास्त्रयं ततः ।
गह्वरं कूटमस्यानु चर्पटादिचतुष्टयम् ॥३०५॥
प्रकरीं बिन्दुकं हारं द्विवारं फडिति स्मरेत् ।
हृदेकं वक्त्रमेकं च भ्रूमध्ये विन्यसेत् प्रिये ॥३०६॥
सारस्वतानि बीजानि पञ्चैव प्रथमं वदेत् ।
कूर्चमायायोगिनीनां प्रत्येकं त्रीणि च स्मरेत् ॥३०७॥
व्यजनं विधृतिं सिद्धिफलशिल्पे सबिन्दुके ।
सुषुम्णा कूटमुच्चार्य गिरिस्थाने च दर्दुरात् ॥३०८॥

त्रिशीर्षा डाकिनीत्युक्त्वा मां रक्षयुगलं ततः ।
ततो मम वसागोर्दान्त्रधातूनि कीर्तयेत् ॥३०९॥
रक्षद्वन्द्वं सर्वनागवशंकरि समीरयेत् ।
पिप्पलादिचतुष्कं च संबलद्वितयं [1]तथा ॥३१०॥
ततो रसपुटद्वन्द्वं त्रिकूटं कूटमन्वतः ।
नालीकं च भुशुण्डीं च नाराचं शूलमेव च ॥३११॥
कृत्या बीजं च फट्युग्मं[2] कूर्चमेव समुद्धरेत् ।
गले न्यसेदिदं स्थानं डाकिन्याः परिकीर्तितम् ॥३१२॥
चैतन्याह्वयबीजानि प्रथमं पञ्च वर्तयेत् ।
स्त्रीत्रयं रावयुग्मं च कूर्चमेकं समुद्धरेत् ॥३१३॥
सेतुत्रयं वेणुम[3]क्षं कर्णिकाश्शृङ्खले ह्यपि ।
वीरकूटं समुच्चार्य महेन्द्रगिरिशब्दतः ॥३१४॥
स्थाने घटोदरी शाकिनी ब्रूयाद् वरानने ।
मां रक्षयुगलं प्रोच्य मम क्लोमयहृत्पदम् ॥३१५॥
ततः स्नायुपुरीतर्ति रक्षरक्षेति कीर्तयेत् ।
सर्वरक्षोवशंकर्यनु ब्रूयात् कालदानवौ ॥३१६॥
नृसिंहं सधृतिं नागं कूष्माण्डीयुग्ममुत्क्रमात् ।
जघन्यस्थायिनीं त्रेतां मणिकूटमतः परम् ॥३१७॥
कुन्तसारिघसंहारान् सारसं व्ययमेव च ।
फट्द्वयं हृदयं शीर्षमेकैकं तालुनि न्यसेत् ॥३१८॥
वाग्भवाख्यानि पञ्चैव बीजानि पुरतः प्रिये ।
त्रिलक्ष्मीकं द्विकामं च रूपमायमुदाहरेत् ॥३१९॥
ग्रावाणं च तुरीयां च पथ्यं वाष्पमुरंकितम् ।
कूटं कापिलमस्यानु ततो मलयगिर्यपि ॥३२०॥
स्थाने सूचीमुखी याकिनीति [?] ब्रूयात् सुरेश्वरि ।
मामुक्त्वा रक्षयुगलं शुक्रधातून् ममार्णतः ॥३२१॥

---

१. ततः ख ।
२. फट्युगं च ख ङ ।
३. चण्डवेणू घ ङ ।

रक्षयुग्मं सर्वजगद्वशंकरि ततो वदेत् ॥३२२॥
षट्चक्रं शक्तिसर्वस्वं शाम्भवं मोदकं तथा ।
चिच्छक्ति वासितां चैव सर्वागमपरापरौ ॥३२३॥
तत्त्वार्णवौजस्विशफाम्नायातीतविराधकान् ।
धातुकूटं दाक्षिकं च चामरव्यजने ततः ॥३२४॥
उत्कोचिनीव्ययघटीदीपनान्दिकसारसान् ।
संहारकालरात्री च वर्णाः स्युः पञ्चविंशतिः ॥३२५॥
जिनसंख्यकबीजानि कूटमेकं तथैव च ।
संबोधनादवरगान्येतानि कथितानि ते ॥३२६॥
अस्त्रद्वयं हृच्छिरसी तदन्ते विनियोजयेत् ।
सहस्रदलराजीवे न्यसनीयं वरानने ॥३२७॥
इति ते डाकिनीन्यासो विस्तरात् प्रतिपादितः ।

[डाकिनीन्यासे न कश्चिद् भेदः इति निर्देशः]

नामतो मन्त्रतश्चापि स्थानतो वसतेरपि ॥३२८॥
दूतीन्यासवदस्यापि न्यूनाधिक्ये न विक्रिया ।
नित्यत्वेनोदितश्चैष न्यासस्त्रिपुरघातिना ॥३२९॥

[डाकिनीन्यासस्य फलश्रुतिः]

कर्तव्यो भूतिकामेन विशेषेण तु भूभुजा ।
षड् डाकिन्यः सिद्धिलक्ष्म्यां सप्त कामकलासु च ॥३३०॥
कुब्जिकासु तथाष्टौ स्युर्गुह्यकालीषु वै नव ।
अनयैव दिशा तत्तत्डाकिनीन्यासमाचरेत् ॥३३१॥
अथातो योगिनीन्यासं व्याहरामि शुचिस्मिते ।

[योगिनीन्यासोपक्रमः]

यो नित्यो नित्यपूजासु यश्च रक्षाकरः परः ॥३३२॥
यं विना सफला नार्चा प्रत्यूहो यं विनाऽन्वहम् ।
कुर्वन् यं लभते सिद्धिमभ्यवस्कन्दते रिपून् ॥३३३॥

[1]अचलां श्रियमाधत्ते जीवेच्च शरदां शतम् ।

[योगिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋषिरेतस्य, संवर्तो जगतीच्छन्द उच्यते ॥३३४॥
योगिन्यो देवताः सर्वास्तद्बीजं बीजमीरितम् ।
शक्तिः कृत्या कीलकं तु चर्पटं परिकीर्तितम् ॥३३५॥
षड्दीर्घभाग्भिस्तद्बीजैः कुर्यात् करषडङ्गके ।

[योगिनीन्यासमन्त्रोद्धारः]

इदानीमवधेहि त्वं मन्त्रस्थानं च नाम च ॥३३६॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां बीजानि त्रीणि पूर्वतः ।
चत्वारि पश्चिमे चापि वर्णानि वरवर्णिनि ॥३३७॥
सर्वसाधारणत्वेन सप्त वर्णाः प्रकीर्तिताः ।
अतः परं भिन्नभिन्नान् मध्ये वर्णान् निशामय ॥३३८॥
तत्रापि त्रीणि बीजानि त्रिवर्णात् नरगा नि हि[2] ।
ङेऽन्ता तत्तद्योगिनी चान्त्यचतुर्वर्णपूर्वगा ॥३३९॥
क्रमेण सर्वान् वक्ष्येऽथो तत्र चेतो निवेशय ।
वेदादिरावयोगिन्यः प्रथमं परिनिष्ठिताः ॥३४०॥
कूर्चास्त्रशीर्षण्यन्ते च चत्वारीमानि पार्वति ।
कामूमायरमाक्षेत्रपालगारुडकालिकाः ॥३४१॥
चामुण्डाखेचरीपाशा नृसिंहप्रेतशक्तयः ।
कापालकाकिनीविश्वाः संविज्ज्ञानरथन्तराः ॥३४२॥
ततस्त्रीणि ग्रीवादीनि[3] तावान् मुक्तादिकं ततः ।
कुण्डादीनि च तावन्ति कार्णिकाहारश्रृङ्खलाः ॥३४३॥
फेत्कारीडाकिनीकृत्याः कर्णिकापद्मश्रृङ्खलाः[4] ।
तन्त्रासमरहारिण्यो विरतित्र्यस्रशेखराः ॥३४४॥
°विदिक्संहारभारुण्डाः[5] कौलुञ्चं व्यजनान्तकाः ।
चर्चिका डामरी चैव सूर्यकर्णी च तापिनी[6] ॥३४५॥

---

१. अतुलां ख घ ।
२. ० नि हि क ।
३. गवादीनि ख घ ङ ।
४. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति ।
५. मारण्डाः ख घ ।
६. नायिनी ङ ।

कुम्भोदरी फेरुमुखी मर्दिनी जातहारिणी ।
विडालाक्षी दीर्घनखा सूचीतुण्डी च शोषिणी ॥३४६॥
कपालिनी चण्डघण्टा कुरुकुल्ला वलाकिनी ।
एताः षोडश [1]डाकिन्यो देयाः पूर्वोक्तसन्धया ॥३४७॥

[न्यसनीयमन्त्रस्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्य मन्त्रस्य शृणु स्थानान्यतः परम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं ललाटं च कूर्चं दक्षिणलोचनम् ॥३४८॥
वामनेत्रं दक्षगण्डो वामगण्डस्तथैव च ।
दक्षकर्णो वामकर्णस्तालुकश्च ततः परम् ॥३४९॥
हृदयं जठरं नाभि लिङ्गं गुदमनन्तरम् ।
स्थानानि षोडशैवैवं कथितानि सुरेश्वरि ॥३५०॥
सर्वं क्रमेण कर्तव्यं महान् दोषो व्यतिक्रमात् ।
इति ते कथितो देवि योगिनीन्यास उत्तमः ॥३५१॥
प्रथमं पञ्चकमितमितः सर्वाघनाशनम् ।
रावणाराधितं दिव्यं मनोवाञ्छितदायकम् ॥३५२॥

[द्वितीयन्यासपञ्चकावतारः]

अतोऽवधारय शिवे द्वितीयं पञ्चकं महत् ।

[तत्र कुलतत्त्वन्यासाभिधानम्]

तत्रापि कुलतत्त्वाख्यः प्रथमो न्यास उच्यते ॥३५३॥
कौलिकानां तु सर्वेषामावश्यकतया स्थितः ।
अन्येषां काम्यरूपस्तु त्रिपुरघ्नेन वर्णितः ॥३५४॥
अनुकल्पप्रदातॄणामप्यावश्यक उच्यते ।
उद्धारः कथितो ह्यस्य तस्माद् यत्नान्निशामय ॥३५५॥

[कुलतत्त्वन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्य कुलतत्त्वस्य परमेष्ठी ऋषिर्मतः ।
छन्दोऽतिजगती प्रोक्ता पञ्चविंशतिशब्दतः ॥३५६॥

---

१. योगिन्यो ख घ ।

कुलदेव्यो देवताश्च त्रेताबीजं तु बीजकम् ।
घटीबीजं शक्तिरुक्ता कीलकं हारिणी मता ॥३५७॥
कुलतत्त्वन्यासजपे विनियोगः प्रकीर्तितः ।
एतस्य न्यासराजस्य मन्त्रोद्धारं निशामय ॥३५८॥
भिन्नभिन्नानि वर्णानि कियन्त्यपि वरानने ।
कियन्ति चैकरूपाणि मन्वन्तरगतानि हि ॥३५९॥
क्रमतः शृणु सर्वाणि श्रुत्वा चैवावधारय ।
पञ्चविंशतिमन्त्राणामादिस्थानि सुरेश्वरि ॥३६०॥
बीजान्यष्टौ विभिन्नानि कूटं चैकं ततः परम्[1] ।
नाड्यस्तथा भिन्नभिन्नास्ततः परमुदीरिताः ॥३६१॥
ततः परं नाड्यधिष्ठात्री काली देवतेति च ।
दश वर्णानि सर्वेषां समानानि भवन्ति हि ॥३६२॥
पञ्चविंशतितत्त्वानां नामानि त्र्यक्षराणि हि ।
ततः परं विभिन्नानि ततस्तत्त्वे कुलाक्षरात् ॥३६३॥
क्रमसिद्धेत्यष्टवर्णाः सर्वेषां सदृशा मताः ।
तत्त्वनाम्नश्च तत्त्वस्य स्थितिर्ज्ञेया सविग्रहा ॥३६४॥
द्विवर्णात्मकनामाढ्यास्ततो देव्यः पृथक् पृथक् ।
ततोऽनु [2]कौलिकी शब्दाः देव्यम्बाशब्दतोऽपि च ॥३६५॥
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यपि षोडश ।
वर्णाः समानाः सर्वेषां सर्वशेष[3]स्थितानि हि ॥३६६॥
ततोऽनु भिन्नभिन्नानि न्यसनीयस्थलानि हि ।
ज्ञेयोऽचलदशार्णान्ते चलत्त्र्यर्णादिषु प्रिये ॥३६७॥
विसन्धिर्यत्र यत्र स्यात् स्वरादिपदमेलनम् ।
अतः परं तान् क्रमशः सर्वानेवावधारय ॥३६८॥
प्रणवश्च तथा लज्जा क्षेत्रपालो रुडेव च ।
राकासटाजरावेद्यस्ततो वाग्भव एव च ॥३६९॥

---

१. तथैव च ख घ ङ । २. कौशिकी (?) ख घ ।
३. सर्वशेषे स्थितानि ख ।

प्रासादकमलारावा मुण्डं पृथुविधी नदः।
पाशः काली स्मरस्ताक्ष्यस्तारकाध्यानचञ्चवः ॥३७०॥
हाकिनी च हयग्रीवः कलाऽमा[1] चण्ड एव च।
आदेशः[आवेशः?]कुब्जक श्चैव छटा चारुस्तथैव च॥३७१॥
विश्वभूतौ मेघरती ककुच्छैशुक्रमारिषाः।
धेनुः किन्नरकापालौ नासत्यौ काल एव च॥३७२॥
[2]मालाप्रेतौ भैरवी च नीलं दुष्कृतमेव च।
महानङ्ग महामारी प्रचण्डा भूतिनी तथा॥३७३॥
केकराक्षी कालरात्रिर्मन्दसम्मोह एव च।
धनदानाकुलौ चैव विद्युच्छक्ती तथैव च॥३७४॥
खेचरी बुद्धिकङ्कालनक्षत्रपतनानि हि।
ततो नान्दिकसंहारावौपह्वरक एव च॥३७५॥
मालाप्रेतौ भैरवी च लीनं दुष्कृतमेव च।
पद्मोऽव्ययश्च कुशिकस्ततः पर उदाहृतः॥३७६॥
सुरसः समरश्चैव रागः सारस एव च।
ततो नृसिंहयोगिन्यौ चामुण्डा कुलिकोऽपि च॥३७७॥
रञ्जिनी कुटिला तन्द्रा संविद् यक्षो घटी तथा।
भारुडा च विरिञ्चिश्च मणिमाला च चर्पटः॥३७८॥
उत्कोचिनी हारिणी च काकिनीनागनेमयः।
रौरवश्च त्रिवृद्वर्णौ कौलुञ्चं विजया तथा॥३७९॥
संभूतिश्चतुरस्रं च सम्पुटोऽनाहतोऽपि च।
विरसो विरतिश्चापि त्र्यस्रो दाक्षिक, एव च॥३८०॥
भोगो गौरंशुदण्डौ च सृष्टिशुल्कौ ततः परम्।
कृत्याकल्पौ सौमतं च प्रतानं विदिगेव च॥३८१॥
संहारी च ततस्त्रेता मुक्ता नादान्तकोऽपि च।
चामरव्यजने चापि विधृतिः शृङ्खला महा॥३८२॥

---

१. कमला ख।
२. इयं पंक्तिः क पुस्तके पञ्चपंक्त्यनन्तरं दृश्यते, ङ पुस्तके नास्त्येव।

अपरान्तकमौलिञ्जौ विरूपः प्रकरी तथा ।
कर्णिकाक्रमहाराश्च वेणुश्च तदनन्तरम् ॥३८३॥
औपदेयश्च मारण्डो विनादो बिन्दुकोऽपि च ।
अक्षप्रलयफेत्कारीसानवस्तदनन्तरम् ॥३८४॥
विमर्दडाकिनीसूत्रतुरीयापंक्तिशेखराः ।
मौञ्जीविराधौ तदनु ग्रावपथ्ये ततः परम् ॥३८५॥
मेखलायशिखाजम्भाः शक्तिविद्या ततोऽप्यनु ।
एकावली चेति देवि गर्भसर्वेगमौ ततः ॥३८६॥
षट्चक्रबलिकुण्डानि चूडामणिरतः परम् ।
कौलुञ्चं वक्त्रकवचं[चे ?]पारिजातेष्टिसेतवः ॥३८७॥
आम्नायातीतदीपौ च विद्यातत्त्वमतः परम् ।
जगदावृत्तिकं बीजं तथा ब्रह्मकपालकम् ॥३८८॥
तुङ्गनन्दादक्षिणाश्च नाराचस्तदनन्तरम् ।
तत्त्वार्णवस्ततः शक्तिसर्वस्वमपि सुन्दरि ॥३८९॥
परापरं शाम्भवं च जीवद्वयमतोऽनु च ।
शूलार्धचन्द्रनालीकक्षुरप्रास्तदनन्तरम् ॥३९०॥
चिच्छक्तिः शक्तिलिङ्गं च लाङ्गूलं वर्धमानकम् ।
गदा प्रासो भुशुण्डी च गायत्र्याषाढवेत्रकाः ॥३९१॥
कोशस्ततो महाकल्पस्थायी सर्वान्तिमः स्मृतः ।
पञ्चविंशतिमन्त्राणामिति बीजं शतद्वयम् ॥३९२॥
अष्टावष्टौ च गृह्णीयात् क्रमेणैव सुरेश्वरि ।
अथ क्रमेण सर्वेषां कूटान्यभिदधाम्यहम् ॥३९३॥
आदावौदयिकं कूटमचलाख्यं ततः परम् ।
खेचरीकूटमस्यानु गान्धर्वकूटमन्वतः ॥३९४॥
मणिकूटं रत्नकूटं कूटं सामयिकं ततः ।
मन्त्रकूटं वर्णकूटं मेरुकूटं ततः परम् ॥३९५॥

[1]कूटं गह्वरसंज्ञं च कैलासं कूटमन्वतः ।
त्रिकूटकूटं तस्यानु प्रासादस्वस्तिकावपि ॥३९६॥
चण्डकूटं चक्रकूटं ध्वजवृद्धी ततः परम् ।
व्यूहकूटं सेतुकूटं कुलकूटं ततोऽप्यनु ॥३९७॥
मन्थानकूटं तदनु वक्त्रकूटमनन्तरम् ।
सर्वशेषे परिज्ञेयं डाकिनीकूटमीश्वरि ॥३९८॥
क्रमेण कूटानीमानि दद्याद् बीजानु पार्वति ।
अथ नाडीः क्रमेणैव शृणु तत्तदभिख्यया ॥३९९॥
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा तदनन्तरम् ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च तत्पश्चात् स्यादलम्बुषा ॥४००॥
ततो विश्वोदरा ज्ञेया सरस्वत्यप्यनन्तरम् ।
कुहूश्च वारणा चैव रण्डा पूषाऽथ शङ्खिनी ॥४०१॥
चित्रा पयस्विनी चापि मधुमत्यथ चेतना ।
गालिनी धमनी चैव कपिला तत्परा भवेत् ॥४०२॥
विश्वदूता धारिणी च धोरिणी लम्बिका तथा ।
कैवल्या सर्वशेषे स्यात् क्रमान्नाड्य उदीरिताः ॥४०३॥
पञ्चविंशतितत्त्वानां नामानि त्र्यक्षराणि हि ।
अतो निशामय शिवे वक्ष्यमाणानि हि क्रमात् ॥४०४॥
आनन्दो नियमश्चापि प्रमाणं प्रकृतिस्तथा ।
निवृत्तिरपि वैराग्यमविद्यैश्वर्यमित्यपि ॥४०५॥
प्रतिष्ठोपाधिरद्वैतमाशयो वासना तथा ।
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च विशुद्धिस्तदनन्तरम् ॥४०६॥
निमित्तमाभासमथो चैतन्यप्रत्ययावपि ।
प्रबोधावेशनिर्माणसमयास्तदनन्तरम् ॥४०७॥
जीवात्मा सर्वशेषे स्यात् तत्त्वनामा सविग्रहः ।
अतो नु कौलिक्यम्बानां नामानि क्रमतः शृणु ॥४०८॥

---

१. इतः पञ्च पंक्तयः घ पुस्तके न सन्ति ।

माया शक्तिस्तथा सिद्धिः परा नित्या तथैव च ।
सूक्ष्मा भद्रा जया रौद्री प्रभा विद्या ततः परम् ॥४०९॥
ज्येष्ठा क्रिया च दीप्ता च शान्तिः सृष्टिः स्थितिस्तथा ।
काला मेधा तथा पुष्टिः श्रद्धा पूर्णा ततः परम् ॥४१०॥
चन्द्रानन्दा च कल्पा च कौलिक्यम्बा मयोदिताः ।
सर्वाः क्रमेण दातव्या एकैका मनुमध्यतः ॥४११॥
शृणु हाटकगौराङ्गि न्यासस्थानान्यतः परम् ।
प्रपदे च तथा गुल्फौ ततो जङ्घेऽथ जानुनी ॥४१२॥
द्वावूरू वंक्षणौ चापि कटी पार्श्वौ ततः परम् ।
कक्षौ स्कन्धौ जत्रुणी च द्वे हनू सृक्किणी अपि ॥४१३॥
कपोलौ च तथा गण्डौ कर्णौ नासापुटे तथा ।
द्वे नेत्रे च भ्रुवौ द्वे च मणि तावपि [मणिबन्धावपि?] शङ्कौ ॥४१४॥
ब्रह्मरन्ध्रं शिखा चैव कन्धरा व्यापकस्तथा ।
इति क्रमेण स्थानानि न्यासानां कथितानि ते ॥४१५॥
न्यूनाधिक्यादक्षराणां महान् दोषोऽभिजायते ।
अतो मन्त्रस्थवर्णानां संख्यां ते प्रब्रवीम्यहम् ॥४१६॥
चन्द्राङ्करुद्रमार्तण्डमनुसंख्यो मनुः प्रिये ।
पञ्चाशद्वर्णिको ज्ञेयो न न्यूनो नैव चाधिकः ॥४१७॥
पक्षाग्निवेददिग्विश्वाश्चत्वारोऽपि घनादिकाः ।
द्वाविंशाद्याश्च चत्वार एकपञ्चाशदर्णकाः ॥४१८॥
पञ्चमः षष्ठ ईशानि सप्तमोऽष्टम एव च ।
तिथिः कला मूर्च्छना च स्युर्द्विपञ्चाशदर्णकाः ॥४१९॥
इति ते मन्त्रवर्णानां निर्णयः परिकीर्तितः ।
नाड्यर्णान्न्यूनताधिक्यं नैवान्यत्र कदाचन ॥४२०॥
कुलतत्त्वन्यास एवं कथितस्ते सुरेश्वरि ।

[कुलतत्त्वन्यासमाहात्म्यकीर्तनम्]

नैवास्य महिमा शक्यः कथितुं किन्तु तत्त्वतः ॥४२१॥
गृहेऽपि लिखितश्चेत् स्यान् न्यासराजोऽयमीश्वरि ।
सिद्धिं साधयति क्षिप्रं विपद्भ्यस्तारयत्यपि ॥४२२॥

लिखितेनामुना न्यासराजेनानन्ददायिना ।
कालिका कृतसान्निध्या भवत्येव न संशयः ॥४२३॥
प्रतिष्ठितं यत्र यन्त्रं तिष्ठत्यमरवन्दिते ।
मूर्तिर्वा जगदम्बाया गृहे देवालयेऽपि वा ॥४२४॥
तत्रावश्यं न्यासमेनं लिखित्वा स्थापयेत् सुधीः ।
एतेनैव कृतावासा कालिका तत्र जायते ॥४२५॥
पूजां गृह्णाति विहितां सान्निध्यं नैव मुञ्चति ।
शरद्वसन्तयोरेनं त्रिदिनं यत्नतो न्यसेत् ॥४२६॥
काम्ये नैमित्तिके चापि कालिकोपासनापरः ।
आज्ञया त्रिपुरघ्नस्य लोकानां च हितेप्सया ॥४२७॥
कपालडामरादेनमुद्धृत्यात्र न्यवेशयम् ।
संहितायां मत्कृतायां मन्त्रन्यासावलीजुषि ॥४२८॥

[सिद्धिचक्रन्यासाभिधानम्]

अथातः सिद्धिचक्राख्यं न्यासं समवधारय ।
सिद्धिं नानाविधां येन क्षिप्रमाप्नोति साधकः ॥४२९॥

[सिद्धिचक्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्य सिद्धिचक्रस्य प्रोक्तो रैभ्य ऋषिर्मया ।
पङ्क्तिश्छन्दः समुदितं देवताः सर्वसिद्धयः ॥४३०॥
बीजं सिद्धिफलं नाम शक्तिरीश्वर उच्यते ।
दीपः कीलकमाख्यातं घटीतत्त्वमुदाहृतम् ॥४३१॥
विनियोगः सिद्धिचक्रन्यास एव वरानने ।

[सिद्धिचक्रन्यासमन्त्रोद्धारः]

अथ मन्त्रसमुद्धारं न्यासस्य शृणु यत्नतः ॥४३२॥
कुलतत्त्ववदेषोऽपि दुरूहो ह्युद्धृतिक्रमे ।
आदौ तु पञ्च बीजानि सर्वमन्त्रादिगानि हि ॥४३३॥
तत्राप्याद्यान्तिमे बीजे सर्वेषां निश्चले मते ।
मध्यगानि त्रिवर्णानि भिन्नभिन्नानि पार्वति ॥४३४॥
ततः परं चतुर्विंशभूभागाख्याः पृथक् पृथक् ।
ततोऽन्वमीषां हि पृथगुपनामानि वै पुनः ॥४३५॥

तैरेतेषां विग्रहान्ते विभक्तिः सप्तमीरिता ।
महानुभावाशब्दस्तु ङेऽन्तः साधारणस्ततः ॥४३६॥
चतुर्विंशत्यधिष्ठात्र्यो देवताः स्युस्ततः पृथक् ।
ताभिर्दैवतशब्दस्य स्त्रीचिह्नो विग्रहो मतः ॥४३७॥

चतुर्थ्यन्ता प्रकर्तव्या सा पुनर्वरवर्णिनि ।
उभयोरस्थिरा पूर्वमितरा तु स्थिरा मता ॥४३८॥

चतुर्विंशतिसंख्याकाः सिद्धयः स्युः पृथक् ततः ।
विग्रहस्तेन कर्तव्यः सिद्धिशब्दस्य सर्वगः ॥४३९॥
सा चतुर्थी विभक्त्यन्ता त्र्यक्षरा परिकीर्तिता ।
षडक्षरी सर्वशेषे सर्वसाधारणी स्मृता ॥४४०॥

सामान्योद्धृतिरेषोक्ता विशेषमवधारय ।
आद्यन्तौ पञ्च बीजानांताररावौ स्थिरौ स्थितौ ॥४४१॥
मध्यगास्तु स्मररमामायाः कालीरतिस्त्रियः ।
भूतकूर्चरुपः क्षेत्रपालसोमामृतानि च ॥४४२॥

कालमुण्डसटाः प्रेतरम्भावटचस्ततः परम् ।
ह्रादिनीसंहितानीला महेन्द्रेश्वरचञ्चवः ॥४४३॥
ततो मौञ्जीककुद्गर्भा नृसिंहप्राणशैशुकाः ।
दीपधेनू मारिपश्च भ्रामरीनागविद्युतः ॥४४४॥

भारुण्डायोगिनीच्छन्दास्तन्त्रगोनेमयस्ततः ।
कापालभैरवस्वापाः मेखलासंपुटक्रमाः ॥४४५॥
प्रचण्डान्मन्दसंमोहा डाकिनीहारकर्णिकाः ।
कालरात्रीष्टिमन्दारा युगान्तोपह्वरव्ययाः ॥४४६॥
संहारतन्त्राकुटिला हारिण्युत्कोचिनी बलिः ।
मणिमाला भोगकृत्यास्त्रेताचर्पटश्रृङ्खलाः ॥४४७॥
द्विसप्ततिरिति प्रोक्ता बीजानां परमेश्वरि ।
चतुर्विंशतिमन्त्राणां त्रित्रिबीजांशका गताः ॥४४८॥
भूभागा अथ कथ्यन्ते क्रमेण परमेश्वरि ।
कामरूपं च पूर्णश्च तथैवानर्त एव च ॥४४९॥

सौराष्ट्रं चैव काश्मीरं कोला तदनु कोशला ।
काञ्ची काशी वराहश्च जालन्धर इतः परम् ॥४५०॥
काम्पिल्लो मथुरा चैव नैमिषं तदनन्तरम् ।
लङ्का तद्वदवन्ती च कोङ्कणं तदनन्तरम् ॥३५१॥
पाञ्चाल ओड्डियानञ्च गोमन्थः पौण्ड्रकोऽपि च ।
करवीरः कलिङ्गश्च मेदिनी तदनन्तरम् ॥४५२॥
भूभागाः कथिता एते क्रमेण मनुमध्यगाः ।
अथैषामुपनामानि वक्ष्ये क्रमत ईश्वरि ॥४५३॥
गह्वरं च गिरिश्चैव विषयो देश एव च ।
मण्डलं च पुरञ्चापि पत्तनं नगरं तथा ॥४५४॥
ऊषरश्च [?] क्षेत्रतटैं प्रदेशोऽपि पुरी तथा ।
अरण्यं पर्वतश्चैव नगरी तदनन्तरम् ॥४५५॥
ततो जनपदो ग्रामः पृष्ठं शिखरमेव च ।
काननं राजधानी च भूभागस्तलमेव च ॥४५६॥
उपनामानि तेषां हि चतुर्विंशतयः क्रमात् ।
अधिष्ठात्र्योऽथ सिद्धीनां मयोच्यन्ते शृणुष्व ताः ॥४५७॥
योगिन्यप्सरसश्चैव डाकिनी कथ्यते ततः ।
चामुण्डा भैरवी चापि राक्षसी भूतिनी तथा ॥४५८॥
गुह्यकी जम्भकी पश्चाद् गन्धर्वा किन्नरी तथा[1] ।
कूष्माण्डी च तथा विद्याधरी यक्षिण्यनन्तरम् ॥४५९॥
वैष्णवी च तथा सिद्धा [2]महेश्वर्यप्युदाहृता ।
घोणकी च ततो ज्ञेया ब्रह्माणी तदनन्तरम् ॥४६०॥
कौमारी चापि वाराही नारसिंही ततः परम् ।
ऐन्द्री च गुह्यकाली च चतुर्विंशतिरीरिताः ॥४६१॥
अथ सिद्धीः समाचक्षे नाम्ना सिद्धिपदं विना ।
स्तम्भनं मोहनं चैव वशीकरणमेव च ॥४६२॥

---

१. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति । २. माहेश्वर्यप्यु० ख घ ।

मारणं तुर्यमुदितमाकर्षणमतः परम् ।
उच्चाटनं च द्वेषश्च द्रावणं शोषणं तथा ॥४६३॥
मूर्छनं क्षोभणमपि सन्त्रासोन्मादसंज्ञकौ ।
व्यञ्जनं [व्यजनं ?] च तथा खड्गः खेचरी स्यात् ततः परम् ॥४६४॥
कामरूपित्ववेतालौ पादुका यक्षिणी तथा ।
गुटिका धातुवादश्च ततोऽन्तर्धानमेव च ॥४६५॥
अणिमाद्यष्ट इति च सर्वशेषे सुरेश्वरि ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते सर्वसाधारणानि हि ॥४६६॥
मन्त्राणामिति सर्वेषां विभागस्ते मयोदितः ।
स्थानानीदानीमेतेषां शृणुष्व कमलेक्षणे ॥४६७॥
ब्रह्मरन्ध्रं च हृदयं ततोऽनु जठरं स्मृतम् ।
कफोणिद्वितयं चापि पार्श्वद्वितयमेव च ॥४६८॥
द्वावंसौ च कपोलौ द्वौ नेत्रद्वितयमेव च ।
कर्णयुग्मं तथा नासापुटद्वितयमेव च ॥४६९॥
सृक्कद्वयं भ्रूयुगलं ललाटं चिबुकं तथा ।
जानुद्वयं गुदं लिङ्गं नाभिं[१] बिन्दुरनन्तरम् ॥४७०॥
मूलाधारोऽथ वदनं तथाग्रौ करपादयोः ।
व्यापकं सर्वशारीरं चतुर्विंशतिकं [२]मतम् ॥४७१॥
इति [३]स्थलानीरितानि न्यसनीयानि वै क्रमात् ।
देशोपनामाधिष्ठात्री सिद्धीनां परमेश्वरि ॥४७२॥
बह्वल्पवर्णान् मन्त्राणां न वर्णनियमः कृतः ।
एवं ते कथितो न्यासः सिद्धिचक्राह्वयः प्रिये ॥४७३॥

[सिद्धिचक्रान्यासफलश्रुतिः]

ऐहिकव्युष्टिलिप्सूनां नित्यत्वेन व्यवस्थितः ।
[४]पारत्रिकाप्तुकामानां काम्यत्वेन प्रकीर्तितः ॥३७४॥

---

१. नाभिविन्दु० ख । २. मनुम क ।
३. स्थानानी० ख घ । ४. इयं पंक्तिः ग पुस्तके नास्ति ।

[कैवल्यन्यासाभिधानम्]

अथ कैवल्यनामानं न्यासं समवधारय।
मुमुक्षूणामयं नित्यो नैवैहिकफलार्थिनाम् ॥४७५॥
न्यासमेनं समभ्यस्यन् मोक्षाशां धारयत्वलम्।
अनभ्यस्यन्न्यासमेनं मोक्षाशां परिमुञ्चतु ॥४७६॥

[कैवल्यन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्य कैवल्याख्यस्य ऋषिः कपिल उच्यते।
त्रिष्टुप्छन्दः परिख्यातं गुह्यकाली च देवता ॥३७७॥
बीजं ताराभिधं ज्ञेयं ब्रह्मशक्तिरुदाहृता।
कला कीलकमुद्दिष्टं तत्त्वं तत्त्वमपि प्रिये ॥४७८॥

[कैवल्यन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

सर्वेषामेव मन्त्राणामादौ बीजानि वै नव।
ततोऽनु कूटमेकैकं चक्रनामानि वै ततः ॥४७९॥
चलमेतत्त्रयमपि निश्चलं साम्प्रतं शृणु।
चक्रे इति पदं सप्तम्यन्तं सर्वत्र वै स्थिरम् ॥४८०॥
योगमार्गेण कैवल्यदायिनीत्यपि च स्थिरम्।
गुह्यातिगुह्यतरतः शक्तिरूपापदं स्थिरम् ॥४८१॥
तत्तद्देवपदं लोलं वस्तुप्रत्ययतस्ततः।
ससन्ध्यम्बापदं स्थेयं तत्पश्चाच्च प्रसीदताम् ॥४८२॥
तारं ससन्धिशीर्षं च सर्वशेषे प्रतिष्ठितम्।
तारमैधस्मररमायोगिन्यङ्कुशकालिकाः ॥४८३॥
प्रासादकूर्चौ च ततः पाशक्षेत्रपगारुडाः।
वधूलज्जारावकालप्रेता भैरव्यनन्तरम् ॥४८४॥
कला विधियुगं रम्भायुग्मं बलियुगं ततः।
नासत्ययुगलं चापि चण्डः संघात एव च ॥४८५॥
विश्वश्च शैशुकश्चापि काकिनीनेमिविद्युतः।
कुलिकश्च नृसिंहश्च गवादित्रितयं ततः ॥४८६॥

[1]इष्टिव्रतें सनिर्मोकवेतण्डे जम्भसंग्रहौ ।
सशिखे पंक्तिडाकिन्यौ हार एकावली तथा ॥४८७॥
कर्णिकाशृङ्खलातुङ्गचूडामणय एव च ।
मुक्तादित्रितयं भोगसृष्टी सान्वक्षमौञ्जयः ॥४८८॥
समुद्रश्च तथा धेनुमारिषे मेखलायुगम् ।
ताटङ्कलीले फेत्कारी त्रेता कृत्या तथैव च ॥४८९॥
औपह्वरं नान्दिकश्च दुष्कृतं पद्ममेव च ।
भ्रामरी च प्रचण्डा च केकराक्षी प्रभञ्जना ॥४९०॥
संहारो मन्दसंमोहौ पतनं कुशिकव्ययौ ।
सुरसः समरश्चैव रागः सारस एव च ॥४९१॥
नादान्तकश्चामरश्च व्यजनं विधृतिस्तथा ।
मारण्डश्च विनादश्च विमर्दः शेखरोऽपि च ॥४९२॥
शाम्भवं चेति च नवनवतिबीजसंहतिः ।
एकैकस्मिन् मनौ देवि नव बीजान्यनुक्रमात् ॥४९३॥
अतः परं क्रमेणैव कूटानि व्याहरामि ते ।
आदौ कुण्डलिनीकूटं स्वाधिष्ठानं ततः परम् ॥४९४॥
मणिपूरककूटं च कूटं चानाहतं ततः ।
विशुद्धकूटमाज्ञाख्यकूटं शाङ्करकूटकम् ॥४९५॥
ईशानकूटं कूटं च परापरमतः परम् ।
शाम्भवं कूटमस्यानु कूटं पाशुपतं ततः ॥४९६॥
इत्येकादशकूटानि क्रमेणैवोदितानि ते ।
अथ नामानि चक्राणामानुपूर्व्या ब्रवीम्यहम् ॥४९७॥
आद्यानां खलु कूटानां षण्णां नाम्ना स्युरेव षट् ।
ततः परा च पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा ॥४९८॥
ब्रह्मरन्ध्रं सर्वशेषे चक्राण्युक्तानि वै मया ।
वर्णप्रत्ययपौरस्त्या देवतां वच्मि सांप्रतम् ॥४९९॥

---

१. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके न दृश्यते ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च कुमारश्चेश्वरस्तथा।
कुलं शक्तिः शिवा सिद्धिर्ज्ञानं मोक्ष इति क्रमात् ॥५००॥
स्थानानि कलयेदानीं न्यासस्य कमलेक्षणे[1]।
गुदं लिङ्गं च नाभिश्च जठरं हृदयं तथा ॥५०१॥
घण्टिका कण्ठवदने ततः कूर्चालिके प्रिये।
ब्रह्मरन्ध्रं सर्वशेषे यदध्यास्ते सदाशिवः ॥५०२॥
कैवल्यन्यास इति ते समन्त्रः प्रतिपादितः।
अधिकारिविशेषेण न्यासस्यास्य महेश्वरि ॥५०३॥
नित्यता काम्यता चापि पुरैव प्रतिपादिता।

[अमृतन्यासाभिधानम्]

इदानीममृतन्यासं निशामय समासतः ॥५०४॥
विशेषतो विधानेऽस्य बीजानां विस्तरो भवेत्।
सामान्यतो विधाने तु समासः पर्यवस्यति ॥५०५॥

[प्रसन्नाविधिकर्मणि आवश्यकतैतस्याभिधानम्]

अस्यावश्यकता प्रोक्ता प्रसन्नाविधिकर्मणि।
तत्रेदमः सुरावाची न्यसने देहवाच्यसौ ॥५०६॥

[अमृताख्यन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्यास्यामृताख्यस्य कात्यायन ऋषिर्मतः।
छन्दो विराडिति ख्यातं काली कामकला[1] सुरी ॥५०७॥
कामबीजं कीलकं स्याद् योगिनी शक्तिरुच्यते।
वधूबीजं बीजमिह विनियोगस्तु सिद्धये ॥५०८॥

[अमृताख्यन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

अस्य प्रकृतिरूपस्य मुख्यं कल्पं निशामय।
ततो विकृतिरूपस्यानुकल्पं वक्ष्य ईश्वरि ॥५०९॥
ऋषिः प्रथमकल्पस्यानुकल्पस्यापि स स्मृतः।
आदौ बीजातिरेकत्वं न्यूनत्वमितरत्र च ॥५१०॥

---

१. कालिका कमला सुरी ख ग घ।

द्वे विंशती बीजकूटे प्रथमं परिनिष्ठिते ।
पञ्चविंशतिमन्त्रेषु निश्चलत्वतया स्थिते ॥५११॥
पञ्चविंशतितत्त्वानि भिन्नानि परमेश्वरि ।
पञ्चविंशतिनामानि शिवस्यान्ते नियोजयेत् ॥५१२॥
मध्ये चात्मपदं पूर्वंपदे नामा सविग्रहम् ।
तच्च नाम शिवस्यापि ङेऽन्तं युग्ममपि प्रिये ॥५१३॥
इमे पदे चञ्चले द्वे ज्ञातव्ये साधकोत्तमैः ।
इदममृतीकृत्यपदं तदनु योजयेत् [?] ॥५१४॥
परमात्मनीति संलिख्य हुत्वा स्वयमितीरयेत् ।
जुषस्व वह्निजायान्त एकविंशतिवर्णकः ॥५१५॥
सर्वत्र निश्चलो मन्त्रो ज्ञातव्यः परमेश्वरि ।
न्यसनीया तथैकैका स्थानानां पञ्चविंशतिः ॥५१६॥
इति सामान्य उद्धारो न्यासस्य कथितो मया ।

[अमृताख्यन्यासे विशेषनिर्देशः]

विशेषमधुना वच्मि क्रमेण त्रिदशेश्वरि ॥५१७॥
तारवाग्भवह्रीकूर्चवधूलक्ष्मीमनोभुवाम् ।
पाशाङ्कुशमहाक्रोधभूतप्रासादविद्युताम् ॥५१८॥
परा चण्डाऽमृता प्रेतः फेत्कारी शाकिनी रतिः ।
कूटं तात्पुरुषं कूटं वामदेवमनन्तरम् ॥५१९॥
सद्योजातं ततः कूटमघोरं कूटमन्वतः,
ईशानकूटं तदनु चामुण्डाभैरवी बिषाः[1] ॥५२०॥
वह्निवेतालभारुण्डानीलद्रावणमानसाः ।
वज्रशाङ्करकापालरौद्रानन्दगरुत्मताम् ॥५२१॥
चत्वारिंशच्च बीजानि कथितानि मया तव ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां पुरोभाग इदं स्थितम् ॥५२२॥
पञ्चविंशतितत्त्वानां मनोर्नामानि वै शृणु ।
ज्ञानेच्छाकृतिधर्माश्च वैराग्यैश्वर्यमित्यपि ॥५२३॥

---

१. भैरवी तथा ख ग ।

शक्तिः कैवल्यमुत्साहो धैर्यं गुह्यविवेककौ ।
विकारः सुखमानन्दः संज्ञा[1] पुण्यं क्रिया तथा ॥५२४॥
विकृतिः प्रकृतिश्चैवाहङ्कारो महदादिकः ।
तन्मात्रं लिङ्गपरमात्मानौ चेति प्रकीर्तितौ ॥५२५॥
पुनस्तत्त्वान्तरं पञ्चविंशतिं त्वं निशामय ।
शिवेश्वरौ शुद्धिविद्ये लिङ्गजीवात्मसूक्ष्मकाः ॥५२६॥
अविद्या नियतिः कालः कला रागः कुलामृतम् ।
बुद्धिर्माया मनः कामो रजः सत्त्वं तमस्तथा ॥५२७॥
युक्तिः सिद्धिः सामरस्यं पञ्चविंशमिदं क्रमात् ।
अतः परं तु स्थानानि न्यासस्यास्य निशामय ॥५२८॥
शिरो ललाटास्यकण्ठाः स्कन्धौ द्वौ द्वौ कफोणिकौ ।
मणिबन्धावङ्गुलीनां मूलाग्रौ परिकीर्तितौ ॥५२९॥
वंक्षणौ जानुनी गुल्फौ पादाङ्गुल्यंध्रिकाग्रकाः ।
व्यापकं सर्वशारीरं पञ्चविंशतिमं[तमं ?]प्रिये ॥५३०॥
इति ते मुख्यरूपेणामृतन्यास उदीरितः ।

[अमृतन्यासानुकल्पाभिधानम्]

अनुकल्पं शृण्विदानीं मत्तः कथयतः शनैः ॥५३१॥
पौरस्था स्थितिरत्रापि सर्वैरान्तिमगोचराः ।
चत्वारिंशत्संख्यकानां बीजानां स्थान एव हि ॥५३२॥
नव बीजानि देवेशि परं भेद इयान् स्थितः ।
तानि प्रणवमैवह्लीयोगिनीनामकानि हि ॥५३३॥
नृसिंहडाकिनीरावकूर्चप्रासादकानि च ।
अन्यानि सर्ववर्णानि पूर्ववद् वरवर्णिनि ॥५३४॥
स्थानान्यपि च तान्येव न्यासस्य कथितानि ते ।
उक्त इत्यमृतन्यासः प्रकारद्वितयेन ते ॥५३५॥

---

१. संख्या ख ग ।

फार्म—४०

[जयविजयन्यासाभिधानम्]

इदानीं सावधाना त्वं जयाद्यं विजयं शृणु ।

[जयविजयन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्यास्य ऋषिर्दक्षश्छन्दश्च जगती तथा ॥५३६॥
गुह्यकाली देवता च डाकिनी बीजमुच्यते ।
ह्वारः शक्तिः कूर्चबीजं कीलकं परिपठ्यते ॥५३७॥
विनियोगो जये चास्य विवादस्य रणस्य च ।

[जयविजयन्यासोद्धारः]

आकर्णय समुद्धारमिदानीमस्य पार्वति ॥५३८॥
सप्तविंशतिमन्त्राः स्युरस्य न्यासेशितुः पराः ।
सामान्यतस्तु सर्वेषां मनूनामुद्धृतिं ब्रुवे ॥५३९॥
वक्ष्ये विशेषं तदनु विज्ञेयं बुद्धिशालिनाम् ।
प्रत्येकं नव बीजानि सर्वेषामादिगानि हि ॥५४०॥
तानि भिन्नानि भिन्नानि चलत्वेनोदितानि हि ।
ततो भिन्नानि नामानि देवानां वरवर्णिनि ॥५४१॥
तेषां लोकपदस्यापि विग्रहो ङिविभक्तितः ।
आद्यं तयोस्तु तरलमितरत् स्थेयमुच्यते ॥५४२॥
देवानां पुनराख्या च भिन्नभिन्ना सुरेश्वरि ।
आराधिता पदं तेन सविग्रहमुदीर्यते ॥५४३॥
अत्रापि पूर्ववत् पूर्वं चलं स्थाष्णु द्वितीयकम् ।
ततः संख्या चला ज्ञेया ततो वक्त्रापदं स्थिरम् ॥५४४॥
गुह्यकाली प्रीयतां चेत्येतदक्षरसप्तकम् ।
स्थिरं समानं सर्वेषां कूटं भिन्नं चलं ततः ॥५४५॥
तस्यै जयानु विजयप्रदायै तदनन्तरम् ।
जयायै विजयायै च हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ॥५४६॥
इत्येकविंशतिमिता वर्णाः शेषे स्थिराः प्रिये ।
इति सामान्य उद्धारो विशेषमवधारय ॥५४७॥

[जयविजयन्यासस्य विशेषाभिधानम्]

सर्वेषां नवबीजानां प्रत्येकं क्रमशो ब्रुवे ।
वेदादिमायामदनप्रासादकमलारुषः ॥५४८॥
तार्क्ष्याङ्कुशक्षेत्रपालाः सारस्वतवधूकलाः ।
रावचण्डामृतावेशकालीयोगिन्य इत्यपि ॥५४९॥
पाशो विश्वश्च भूतश्च कुम्भसोमौ सकिन्नरौ ।
राकामेषौ मेघपूर्वौ नासत्यादिद्वयं ततः ॥५५०॥
त्रिशिखा च त्रिशक्तिश्च कालादित्यौ च भैरवी ।
प्रेतो नृसिंहस्तदनु नक्षत्रं विद्युदेव च ॥५५१॥
मालानीलेऽपि चामुण्डा कुलिकं भूतिनी विधिः ।
धनदा च ततो रम्भा वटी बुद्धिक्षमे अपि ॥५५२॥
मानसं वज्रकापाले हाकिनी चञ्चुरेव च ।
भारुण्डा काकिनी चैव कङ्कालं नाकुलं तथा ॥५५३॥
तैजसं डाम्मरं चापि दानवध्यानसंहिताः ।
फैरवं च कुमारी च ज्ञानेच्छे यक्ष[त्न?] एव च ॥५५४॥
विरिञ्चितापिनीधूमललितास्तदनन्तरम् ।
उल्कादित्रितयं शान्तिरुग्रं केशर एव च ॥५५५॥
गोकर्णनेमिच्छन्दाश्च तन्त्रादित्रितयं ततः ।
सुरभी रौरवं चापि प्राणानन्तौ धृतिस्तपः ॥५५६॥
दण्डादिपञ्चकं धाराद्वयमिष्टिः सदक्षिणा ।
नाराचशूलफेत्कार्यो भल्लवेण्वादिपञ्चकम् ॥५५७॥
आयादिपञ्चकं पश्चात् कल्पो मुक्ता महाक्रमः ।
अनाहतस्तथा भोगः सृष्टिस्त्रेता च कृत्यया ॥५५८॥
कोशपिण्डौ करात्यादित्रितयं तदनन्तरम् ।
निस्तर्जनीकं रङ्कादित्रितयं तदनन्तरम् ॥५५९॥
वैकारिकस्ततः सिन्धुः कीलालादिचतुष्टयम् ।
प्रभञ्जना प्रचण्डा च वेकराक्ष्यादिकं त्रयम् ॥५६०॥

अर्द्धचन्द्रं , क्षुरप्रश्च महानङ्गादिकं[1] द्वयम् ।
बलिः पृथुर्नंदश्चापि तारकाधेनुमारिषाः ॥५६१॥
नालीकश्च भुशुण्डी च गदा च तदनन्तरम् ।
अखण्डचारुकुब्जाश्च द्रावमाये महादिमे ॥५६२॥
[2]आवेशश्च छटा प्रासः परिघस्तदनन्तरम् ।
द्वीपो जम्भः षडङ्गश्च ककुच्छैशुक एव च ॥५६३॥
ततोऽनु मन्दसंमोहौ पतनं[3] संहृतिस्तथा ।
संग्रहद्वितयं भावातीतौ[4] स्थावरजङ्गमौ ॥५६४॥
ग्लहमध्यान्तकाः शेषे कर्तृसारङ्ग एव च ।
खट्वाङ्गं च हलं तत्त्वं त्रिकुटा त्रिपुटापि च ॥५६५॥
तस्याप्यनु प्रदातव्यः सोषधीको विहङ्गमः ।
गायत्री कर्णिका चापि शृङ्खलौपह्वरे तथा ॥५६६॥
नान्दिकं चापि लाङ्गूलादिचतुष्कं ततः परम् ।
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ॥५६७॥
सन्धानं सिञ्जिनी चापि नैमेयं त्रिपुरा तथा ।
सुरसः समरश्चापि रागः सारस एव च ॥५६८॥
मातृशङ्कू तथा याम्यं जीवनी तोमरस्तथा ।
[5]भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥५६९॥
चर्पटं मणिमाला च हारिण्युत्क्रोचिनी तथा ।
संहारी च तथा नादान्तकश्चामरमेव च ॥५७०॥
व्यजनं विधृतिश्चापि षट्चक्रादिद्वयं तथा ।
सम्भूतिश्चतुरस्रं च मारण्डाद्यं विनादकम् ॥ ५७१॥
आम्नायातीतविरती ततस्तत्त्वार्णवोऽपि च ।
शक्तिसर्वस्वमस्यानु परापरमतः परम् ।५७२॥

---

१. महानन्दादिकं ख ग । २. आदेशञ्च ख ग ।
३. यजनं ख । ४. भारातीतौ क ।
५. इतः पंक्तिद्वयं ख घ पुस्तकयोर्नास्ति ।

शाम्भवं चापि चिच्छक्तिरिति सर्वान्तिमस्थिता ।[1]
इत्यग्निवेदाश्विमिता बीजपंक्तिर्निरूपिता ॥५७३॥
एकैकस्मिन् मनौ देया नवसंख्या समन्विता ।[1]
अतः परं लोकपदोपपदं पूर्वगं शृणु ॥५७४॥
शिवश्च वरुणश्चापि ह्यदितिः शच्यपि प्रिये ।
सप्तर्षिश्च वसुश्चैव यमो भूरपि च क्रमात् ॥५७५॥
रुद्रः सूर्यस्तथा विश्वेदेवा इन्द्रोऽग्निरेव च ।
सिद्धः साध्यश्च यक्षश्च निर्ऋतिः किन्नरस्तथा ॥५७६॥
अप्सरो भासुरश्चापि . गन्धर्वस्तदनन्तरम् ।
विद्याधरोऽपि च प्रजापतिस्तुषित एव च ॥५७७॥
वायुश्च दानवः शेषे प्रलयः परिकीर्तितः ।
एतस्य लोकस्थाने तु काल इत्यभिधीयते ॥५७८॥
इयान् परं विशेषो हि सर्वान्तिमपदस्य च ।
सप्तविंशतिनामानि क्रमेणैवोदितानि ते ॥५७९॥
अत आराधिता शब्दादादिस्थं शृणु वै पदम् ।
सदाशिवश्च वरुणोऽदितिः शच्यपि च प्रिये ॥५८०॥
सप्तर्षिश्च वसुश्चैव मृत्युकालौ ततः परम् ।
[1]मुनिभूपौ च तदनु रुद्रः संकीर्त्यतेऽनघे ॥५८१॥[1]
तदनु द्वादशादित्या विश्वेदेवास्ततः परम् ।
इन्द्रोऽग्निः सिद्ध उदितः साध्योऽपि तदनन्तरम् ॥५८२॥
कुबेरो राक्षसश्चापि किन्नरोऽपि ततः परम् ।
अप्सरोनिवहस्तद्वद् भासुरोऽप्यनु तस्य हि ॥५८३॥
गन्धर्वश्च ततो विद्याधरः संकीर्त्यते प्रिये ।
प्रजापतिश्च तुषितो वायुर्दानव एव च ॥५८४॥
शेषे महाभैरवश्च सप्तविंशतिरीरिता ।
संख्याचक्रपदात् पूर्वांस्त्वं निशामय साम्प्रतम् ॥५८५॥

---

१. इतः पंक्तिद्वयं ख पुस्तके नास्ति ।

एकं त्रिपञ्चषट्सप्त तथाष्ट नव पार्वति ।
दशैकादश तस्यानु द्वादशापि त्रयोदश ॥५८६॥
चतुर्दश ततः पञ्चदश तस्यानु षोडश ।
ततः सप्तदश ग्राह्यं पुनरष्टादशापि च ॥५८७॥
ऊनविंशतिरस्यानु विंशतिस्तदनन्तरम् ।
एकविंशतिरस्यानु द्वाविंशतिरतः परम् ॥५८८॥
चतुर्विंशतिरस्यान्ते न त्रयोविंशतिः क्वचित् ।
त्रिंशत् षट्त्रिंशदिति च षष्टिश्चाशीतिरेव च ॥५८९॥
शतं सहस्रमिति च सप्तविंशतिरीरिता ।
देवि संख्याभिरेताभिर्वक्त्रशब्दस्य विग्रहः॥५९०॥
क्रमेण कृत्वा दातव्यो विशेषणतया स्थितः ।
अतः परं क्रमेणैव कूटान्यप्यवधारय ॥५९१॥
शाम्भवं कूटमादौ स्याद् वारुणं कूटमन्वतः ।
आदित्यकूटं तदनु कूटं वैहायसं ततः ॥५९२॥
योगकूटं ततः प्रोक्तं कूटं वासवमन्वतः ।
तत्पश्चात् याम्यकूटं च कूटं नाभसमेव च ॥५९३॥
रौद्रकूटं च तस्यानु मार्तण्डकूटमन्वतः ।
तार्तीयकूटं तदनु कूटमैन्द्रमथापि च ॥५९४॥
आग्नेयकूटं तदनु सिद्धकूटं ततः परम् ।
कूटं वैकारिकं पश्चात् कूटं चैन्तामणेयकम् ॥५९५॥
पैशाचकूटं तदनु नादकूटं ततः परम् ।
प्रपञ्चकूटं तत्पश्चात् धराकूटमतः परम् ॥५९६॥
गान्धर्वकूटं तदनु मणिकूटमतः परम् ।
[1]प्राजापत्यं ततः कूटमनन्तं कूटमन्वतः ॥५९७॥
वायवीयं ततः कूटं नैर्ऋतं कूटमप्यतः ।
सर्वशेषे परिज्ञेयं भैरवीकूटमीश्वरि ॥५९८॥

---

१. धारा ख ग ।

क्रमेण खलु कूटानां सप्तविंशतिरीरिता ।
उक्तो विशेषोद्धारस्ते न्यासस्यास्य महाफलः ॥५९९॥
विजिगीषू रिपून् राजाऽन्वहमेनं समाचरेत् ।
तेनास्य रिपवः सर्वे क्षयं यान्ति न संशयः ॥६००॥
वैतण्डिकाः जल्पिकाश्च ये बुभूषन्ति वै द्विजाः ।
तैरवश्यं प्रकर्तव्यो विवादे जयमीप्सुभिः ॥६०१॥
जयश्च विजयश्चापि यस्मादेतेन जायते ।
अतस्तेनैव नाम्नाऽयं प्रसिद्धिं समुपागतः ॥६०२॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि स्थानान्यस्य वरानने ।
न्यासस्य न्यसनीयानि तत्र चेतो निवेशय ॥६०३॥
ललाटं मुखवृत्तं च कूर्चं चिबुकमेव च ।
ग्रीवा कण्ठश्च हृदयं जठरं नाभिरेव च ॥६०४॥
गुदं कटी वंक्षणं च ऊरू जङ्घे तथैव च ।
पार्ष्णी च प्रपदावंसौ पार्श्वे पृष्ठं तथैव च ॥६०५॥
ब्रह्मरन्ध्रं व्यापकं च स्थानान्येतानि पार्वति ।
एतेषु तत्तन्मन्त्रैस्तु न्यासो न्यस्यः प्रयत्नतः ॥६०६॥
न्यासोऽयं कवचप्रायो महोन्नतिकरोऽपि च ।
चिरजीवित्वकारी च कर्तव्यः सुसमाहितैः ॥६०७॥
शरद्वसन्तयोरस्य देव्यावश्यकतेरिता ।
अन्यत्र काम्यता चैव स्यान्नैमित्तिकतापि च ॥६०८॥
दिव्यौघा अथ सिद्धौघा उपासांचक्रिरे त्विमम् ।
तां तां सिद्धिं प्राप्नुवन्त एतेनैव वरानने ॥६०९॥
गुह्या यावद्यावदास्या यैर्यैश्च समुपासिता ।
तत्सर्वमस्मिन्न्यासे तु वर्तते त्रिदशेश्वरि ॥६१०॥
अत एव हि सर्वेभ्यो न्यासेभ्यः श्रेष्ठ उच्यते ।
कर्तव्यः सर्वयत्नेन देवानामपि दुर्लभः ॥६११॥

इति श्री महाकालसंहितायां न्यासोद्धारप्रकरणे

सप्तमः पटलः ।

अष्टमः पटलः

महाकाल उवाच

[1]अन्यानपि महान्यासान् कथ्यमानान् शृणु प्रिये ।
येषां चिकीर्षयापि स्यात् सिद्धिः सार्वत्रिकी नृणाम् ॥१॥

[भावनान्यासोद्देशः]

तत्रादौ भावनान्यासं समाकर्णय भामिनि[2] ।
तृतीयपञ्चके श्रेष्ठः सर्वेभ्यः कथितस्त्वयम् ॥२॥
याः काल्यः पञ्चपञ्चाशदुक्ता देव्ययुताक्षरे ।
तासां वै भावनाऽमुष्मिन्नतः श्रेष्ठतया मतः ॥३॥

[भावनान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अतः शृणूद्धारमस्य न्यासस्य कमलानने ।
सदाशिव ऋषिश्चास्य बृहतीच्छन्द ईरितम् ॥४॥
देवता गुह्यकाली च शाम्भवं बीजमुच्यते ।
रावः शक्तिः कीलकं तु भासाकूटमुदीर्यते ॥५॥
एतस्य विनियोगस्तु कैवल्यपदसिद्धये ।

[भावनान्यासोद्धारः]

उद्धारमस्याकलय दुरूहं धीमतामपि ॥६॥
सामान्यं प्रथमं देवि विशेषं तदनन्तरम् ।
मन्त्रास्तु पञ्चपञ्चाशत्स्युरस्मिन्न्यास उत्तमे ॥७॥
सर्वाणि पञ्चपञ्चाशत् तेषां तदनुसारतः ।
बीजान्यष्टौ तु पुरतः प्रतिमन्त्रस्थितानि हि ॥८॥
तानि वै भिन्नभिन्नानि ज्ञातव्यानि समन्ततः ।
कूटमेकं च तदनु भिन्नं भिन्नं तदप्युत ॥९॥

---

१. अथ न्यासान् कथ्यमानान् शृणु त्वं गदतः प्रिये ग ।
२. भाविनि [?] ख ग घ ।

तदन्वेका भवेत् काली भिन्नभिन्ना पुमन्तिका ।
पुनः कूटं भिन्नभिन्नमेकैकं सुरवन्दिते ॥१०॥
स्वाङ्गं स्थलानि न्यासस्य विभिन्नानि ततः परम् ।
भावयामीति वर्णानि तेनाहमपि च प्रिये ॥११॥
प्रतिमन्त्रं ततः सप्ताक्षराण्येतानि पार्वति ।
ज्ञेयानि निश्चलत्वेन देवानां तदनन्तरम् ॥१२॥
नामानि लोकशब्देन तेषां वै विग्रहस्ततः ।
स ङचन्तः पदयोर्मध्ये चलं पूर्वं स्थिरं परम् ॥१३॥
ततोऽनु प्रणवं बीजं सर्वत्रैव स्थिरं समम् ।
[1]विरजस्तमाभामि चेति ब्रह्मभूयाय यामि च ॥१४॥
प्रतिमन्त्रं स्थिरा ज्ञेया अमो वर्णाश्चतुर्दश ।
ततोऽनु बीजमेकैकं विभिन्नं प्रतिमन्त्रकम् ॥१५॥
ततोऽस्त्रहृच्छिरांस्यन्ते सर्वेषां सदृशानि तु ।
स्थानानि मन्त्रमध्ये तु यान्युक्तानि सुरेश्वरि ॥१६॥
ज्ञेयानि तानि वैतस्य न्यासस्यापि स्थलानि हि ।
मन्त्रानुदीर्य क्रमशस्तत्तत्स्थानानि संस्पृशेत् ॥१७॥
न्यासस्य भावनाख्यस्य इत्युद्धारो मयोदितः ।
सामान्यतो विशेषेण त्वमिदानीं निशामय ॥१८॥

[भावनान्यासस्य विशेषोद्धारः]

तारमायारमाकामप्रासादक्षेत्रपाः क्रमात् ।
ततः क्रोधमहाक्रोधौ सिद्धः काली तथैव च ॥१९॥
हयग्रीवश्च साध्यश्च धर्मश्च सृणिताक्ष्यंकौ ।
गौरी तथोल्का वेदी च जरा चण्डी [2]खलस्तथा ॥२०॥
पातालकुक्कुटावेते मैधाद्याः परिकीर्तिताः ।
पाशकेशरकाकिन्यो नेमी रावः सच्छन्दकः ॥२१॥

---

१. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति ।
२. नखस्तथा ख ग घ ।

फार्म—४१

चण्डविश्वौ कला चैव प्रियभूजम्बुकास्तथा[1] ।
ज्योतिर्नाको नारदश्च पुष्कलस्तदनन्तरम् ॥२२॥
शर्वः शङ्खस्तथा कुम्भोऽमृतमावेश एव च ।
सोमभूतौ किन्नरश्च तथाश्वत्थः सकल्ककः ॥२३॥
ज्वालाप्रौढौ च सव्यश्च क्रूरसान्निध्यमत्सराः ।
नासत्यशक्तिरतयः प्राणमेघौ ततः परम् ॥२४॥
त्वष्टा तारा तडिच्चैव ततोऽर्चिर्नाभसो लघुः ।
बलार्चानायकाश्चैव ततोऽद्वयसमुद्रगे ॥२५॥
कालादित्यौ त्रपावध्वादिमौ प्रेतश्च भैरवी ।
तत्त्वं च कुलिकं चैव दानवश्च ततः परम् ॥२६॥
वैकारिकश्च मन्दारः सिन्धुः[2] कीलालमेव च ।
महेन्द्रकरुणेशानाः खड्गबुद्धिक्षमास्ततः ॥२७॥
मालानीले च धनदा तपो धृतिरिति क्रमात् ।
सारधारालक्ष्यभव्याक्षरगोत्रा महोदयाः ॥२८॥
विषं च पूरकश्चापि कुम्भको रेचकस्तथा ।
मन्त्रावली च भारुण्डा तन्त्रो वर्णश्च संपुटः ॥२९॥
नन्दीबलिपृथुह्रस्वनादसात्वततारकाः ।
औदुम्बरश्च कङ्कालमानसे शान्तिरेव च ॥३०॥
उग्रडामरकानन्दकूर्माधारास्ततः परम् ।
तुलानुदात्तस्वरितरत्नो[न्तो?]दात्ताजश्शृङ्खलाः ॥३१॥
रौद्रश्च मोक्षसन्ताननिर्वाणत्रिवृतस्ततः ।
कापालमथ गोकर्णः सुरभीरौरवोऽपि च ॥३२॥
सूक्ष्मा प्रभा सुप्रभा च विशुद्धिर्नन्दिनी तथा ।
बृहन्मङ्गलगन्धर्वा वृत्ततुङ्गावनन्तरम् ॥३३॥
अखण्डपुण्ये चारुश्च सन्तानः कुब्जपूतने ।
श्रेष्ठं पुष्पं निर्मलं च कुलं चित्रं च मण्डलम् ॥३४॥

---

१. जन्मकास्तथा ख । २. सिद्धः ख ।

विरिञ्चित्रिपुटे चैव यक्षमित्रौ च तापिनी ।
पुरुचूडामणी पिच्छा खाता देशतलच्छटाः ॥३५॥
मणिर्नित्या वृषः पुष्टिः कौमुदी च सुदर्शनम् ।
बला विहङ्गमश्चापि परेष्टिव्रतपूर्तयः ॥३६॥
निर्मोकोत्तंसवेतण्डाः करम्भिस्तदनन्तरम् ।
प्रभा विराट् च सावित्री फेरवः स्वाप एव च ॥३७॥
कुमार्योजस्ततो देयः सर्वशेषेऽपराजितः ।
वेणुः सानुस्तथा चाक्षो मस्करो मौञ्ज्यवप्लुतः ॥३८॥
विघसः सूत्रमनसी ईर्षश्च ससमाधिकः ।
रम्भावती [टी ?] मठी चापि कुल्यौषध्यौ पिशाचिनी ॥३९॥
पराको रङ्कताटङ्कलीलार्घा धेनुरेव च ।
क्षोभणो मारिषश्चापि जगती नन्दया सह ॥४०॥
जटा च हैमं विमलं प्रतापः कोरकादिमः ।
शौण्डोऽन्ते केशशिक्षे च सती मधु च डिण्डिमम् ॥४१॥
उद्धारादित्रयं चैव ततः परमुदीरयेत् ।
आयश्च मेखला कुण्डं गर्भो दीपस्तथैव च ॥४२॥
कुठारकर्तृखट्वाङ्गाः कोदण्डो मूर्वला तथा ।
[1]तूणव्यामौ [सौ ?] सैन्धवश्च वैधसस्तदनन्तरम् ॥४३॥
सर्वार्थश्च ललाटं च विचित्रं धन्यमेव च ।
उल्लाप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिः शङ्खो महापदात् ॥४४॥
ऋतंकमर्गलं चापि वेगः सन्धानसिञ्जिनी ।
लिङ्गनैमेयपुन्नागत्रिपुराः शेषदुर्घटाः ॥४५॥
महाङ्कुशमहानङ्गमहामारीमहाविषाः ।
महाद्रावमहामोहमहामायापतङ्गकाः ॥४६॥
रौद्रः सवित्री शङ्कुश्च मज्जनं याम्यमेव च ।
ऐन्द्रं च जीवनी चापि प्रवहस्तमनु प्रिये ॥४७॥

---

१. भ्रूणव्यानौ ग ।

प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा डाकिनी तथा ।
केकराक्षी महारात्रिः [1]कालरात्रिः सहान्तका ॥४८॥
गायत्री कर्णिके द्वे च शृङ्खलौपह्वरे तथा ।
वाडवं वीरवेतालौ भौवं तदनु भामिनि ॥४९॥
विजयो जयसंमोहौ प्रलयः पतनं तथा ।
ततो युगान्तसंहारौ ततः सिद्धिफलं मतम् ॥५०॥
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ।
शिल्पोग्रपुटकाश्चैव ततोऽनाहत एव च ॥५१॥
भोगः सृष्टिश्च फेत्कारी त्रेता चैव करालिनी ।
कृत्या तदनु सम्पूर्णा सुरसः समरस्तथा ॥५२॥
रागसारससंकल्पास्तर्जनी च कटंकटा ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥५३॥
अङ्कुरादित्रयं चापि चर्पटं मणिमालया ।
हारिण्युत्कोचिनी चैव विक्रमः संक्रमः पणः ॥५४॥
संविधानं च कलहस्त्रिदैवं कुलमुद्रिका ।
चक्रतुम्बी च विजया संभूतिश्चतुरस्रकम् ॥५५॥
त्र्यस्रश्च विवृतिश्चैव वासोऽनयककुम्बिके [?] ।
कण्ठीरवोऽपि संहारी नादान्तककचामरौ ॥५६॥
श्रीकण्ठोऽथापि व्यजनं विधृतिर्विटपं तथा ।
विवासो दाक्षिकश्चापि सामुद्रश्च प्रतापकः ॥५७॥
विदिक् तथौपदेयं च मारण्डं सविनादकम् ।
विमर्दशेखरौ चापि कुडुक्कादित्रयं ततः ॥५८॥
मौलिञ्जश्च विरूपश्च तथा चैवापरान्तकः ।
प्रकरीबिन्दुकौ चापि मेधीमुखरकृष्टयः ॥५९॥
सन्तानश्च वितानश्च विवरो बृंहतिस्तथा ।
[1]वशवाहौ सम्प्रदायभाजने तदनन्तरम् ॥६०॥

---

१. वसेदाहौ ख ग घ ।

अपायश्च निकारश्च वृद्धचुड्डीशौ प्रवाहकः ।
निर्वेशोऽर्घादियुगलं सङ्गतिर्बर्हं एव च ॥६१॥
उद्भिदुद्रायौ तीर्थवाटचौ मूलं वारुण्यनन्तरम् ।
खण्डकेतू श्रुतिर्मन्दा सन्ध्या वर्ष्म ततः परम् ॥६२॥
निष्ठा मौलिश्च तदनु विराधश्च तुरीयया ।
ग्रावापथ्यं च परतो मोदकं वासिता तथा ॥६३॥
ओजस्विशफमस्यानु षट्चक्रादिद्वयं ततः ।
आम्नायातीतमुल्लिख्य तत्त्वार्णव इतोऽप्यनु ॥६४॥
शक्तिसर्वस्वमथ च. परापर उदीर्यते ।
शाम्भवोऽप्यथ चिच्छक्तिः सर्वान्ते परिनिष्ठिता ॥६५॥
खवेदयुगबीजानि भवन्त्येवं वरानने ।
क्रमादिदानीं कूटानि गदतो मे निशामय ॥६६॥
शाम्भवं प्रथमं कूटं सद्योजातं द्वितीयकम् ।
कूटं तात्पुरुषं पश्चादघोरं कूटमन्वतः ॥६७॥
शाङ्करं वामदेवं च कूटद्वयमतः परम् ।
ततः पाशुपतं कूटमैशानं तदनन्तरम् ॥६८॥
माहेश्वरं त्रैपुरं च कूटयुग्मं ततो भवेत् ।
श्रीकण्ठकूटमस्यानु कूटं मृत्युञ्जयं तथा ॥६९॥
रौद्रानन्दौ ततः कूटौ परापरमतः परम् ।
लिङ्गकूटं ततश्चिन्तामणिकूटमुदीर्यते ॥७०॥
कलाकूटं चन्द्रकूटं हंसकूटमितोऽप्यनु ।
सृष्टिस्थिती च संहारानाख्याभासाभिधा ततः ॥७१॥
पञ्च कूटाः परिज्ञेयास्ततोऽनन्तरमीश्वरि ।
मणिकूटं हेमकूटं रत्नकूटं ततः परम् ॥७२॥
उदयास्तौ ततः कूटौ खेचरीकूटमन्वतः ।
मन्थानकूटं त्रिजटाकूटं किञ्जल्ककूटकम् ॥७३॥
कुलकूटं च समयकूटं मालाह्वयं ततः ।
मेरुकूटं च कैलासकूटं तदनु भामिनि ॥७४॥

त्रिकूटकूटं कूटौ तु मन्त्रवर्णाह्वयौ ततः ।
गन्धर्वकूटं प्रासादकूटं मन्दारकूटकम् ॥७५॥
ततोऽपराजितं कूटं डाकिनीकूटमेव च ।
नीलकूटं सेतुकूटं कूटौ गह्वरकेशवौ [रौ ?] ॥७६॥
चैतन्यकूटं परमार्थकूटं च परमेश्वरि ।
सदसत्कूटमस्यानु नित्यकूटमतः परम् ॥७७॥
पञ्चपञ्चाशतं कूटा एवं क्रमत ईरिताः ।
अतः परं निबोध त्वं कालीर्भिन्नतया स्थिताः ॥७८॥
धूमकाली भवेदादौ जयकाली ततः परम् ।
उग्रकाली ततो ज्वालाकाली देवि प्रकीर्त्यते ॥७९॥
धनकाली घोरनादकाली षष्ठी प्रकाश्यते ।
कल्पान्तकाली वेतालकाली तदनु भामिनि ॥८०॥
कङ्कालकाली च ततो नग्नकाली प्रकीर्त्यते ।
घोरघोरतरा काली काली दुर्जयपूर्विका ॥८१॥
मन्थानकाली संहारकाल्याज्ञाकाल्यनन्तरम् ।
रौद्रकाली तिग्मकाली भवेत् सप्तदशी हि साः ॥८२॥
कृतान्तकाली च महारात्रिकाली ततः परम् ।
संग्रामकाली तदनु भीमकाली ततः परम् ॥८३॥
शवकाली चण्डकाली काली रुधिरपूर्विका ।
घोरकाली ततः काली भयङ्करपदादिमा ॥८४॥
सन्त्रासकाली च प्रेतकाली तदनु कीर्त्यते ।
करालकाली विकरालकाली तदनन्तरम् ॥८५॥
ततः प्रलयकाल्यन्या विभूतिपदतोऽपि च ।
भोगकाली कालकाली वज्रकाली तथैव च ॥८६॥
काली विकटपूर्वा च विद्याकाली ततः परम् ।
शक्तिकाली कामकलाकाली दक्षिणकाल्यपि ॥८७॥
मायाकाली भद्रकाली महाकाली ततः परम् ।
श्मशानकाली च कुलकाली तदनु पठ्यते ॥८८॥

नादकाली मुण्डकाली सिद्धिकाली तथैव च।
उदारकाली चोन्मत्तकाली तस्यानुगद्यते ॥८९॥
सन्तापकाली कापालकाली तदनु कीर्त्यते।
आनन्दकाल्यनुभवेत् काली भैरवपूर्विका ॥९०॥
निर्वाणकाली सर्वासां शेषेषु परिनिष्ठिताः।
पञ्चपञ्चाशतं[1] कालीनामान्युक्तान्यतः परम् ॥९१॥
पुनः कूटानि कलय क्रमेणैव सुरेश्वरि।
आदौ विसर्गा नाडी स्याद् हिता नाडी ततः परम् ॥९२॥
सङ्कोचिनी ततो नाडी तस्यानु क्षेपणी शिरा।
आवेशिनी ततो नाडी घर्घरा धमनी तथा ॥९३॥
स्निग्धा नाडी कुहूर्नाडी नाडी चैव सरस्वती।
पयस्विनी वारणा च गान्धारी च यशस्विनी ॥९४॥
पूषा शिरा शङ्खिनी च हस्तिजिह्वाऽप्यलम्बुषा।
विश्वोदरा तथाऽव्यक्ता चित्रा तेजस्विनी तथा ॥९५॥
ततो [2]मधुमती नाडी नाडी रसवहाऽपि च[3]।
द्राविणी गालिनी मन्दा मुदिता भ्रामिणी सती ॥९६॥
सौवीरी रञ्जनी रण्डा रेवती कपिला तथा।
आप्यायनी विश्वदूता नाडी चापि कपर्दिनी ॥९७॥
चन्द्रा चन्द्रावती हेमा मैत्री नन्दा धमन्यपि।
लोहिनी पूतना कल्पा नाडी वेगवती तथा ॥९८॥
धारिणी धोरिणी धीरा विवर्णा क्रन्तिनी शिरा।
अग्निज्वालारुची नाड्यौ तुरीया चापुनर्भवा ॥९९॥
धमन्यः पञ्चपञ्चाशत् क्रमेणैताः प्रकीर्तिताः।

[भावनान्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अतः परं तु स्थानानि शरीरस्य निबोध मे ॥१००॥

---

१. शतं घ ङ। २. धूमावती ख ग घ।
३. तस्यानु क्षेपणी शिवा ख ग घ।

अङ्गुल्यग्रं तु दक्षांघ्रेर्वामांघ्रेस्तद्द्वितीयकम् ।
दक्षपादाङ्गुलीमूलं वामपादाङ्गुलेरपि ॥१०१॥
दक्षगुल्फो वामगुल्फो दक्षजंघा तथेतरा ।
दक्षजानुस्तथा वामजानुर्दक्षोरुरित्यपि ॥१०२॥
वामोरुः वंक्षणो दक्षो वामवंक्षण एव च ।
दक्षकटो वामकटो दक्षिणं च ककुन्दरम् ॥१०३॥
वामं ककुन्दरं चापि दक्षिणस्फिक् तथेतरा ।
गुदं लिङ्गं तथा वस्तिर्नाभिर्जठरमेव च ॥१०४॥
हृदयं दक्षिणं पार्श्वं वामपार्श्वं तथैव च ।
दक्षिणं चूचुकं वामचूचुकं तदनन्तरम् ॥१०५॥
कक्षस्कन्धस्तथा वामो दक्षजत्रु तथेतरत् ।
दक्षकक्षो वामकक्षो दक्षा हनुरथेतरा ॥१०६॥
दक्षं सृक्कं तथा वामं दक्षो गण्डस्तथेतरः ।
दक्षकर्णो वामकर्णो दक्षनासापुटं तथा ॥१०७॥
वामनासापुटं दक्षं लोचनं वाममेव च ।
दक्षः कपोलो वामश्च दक्षा भ्रूरप्यथेतरा ॥१०८॥
दक्षशंखो वामशंखो ब्रह्मरन्ध्रमतः परम् ।
इति स्थानानि सर्वाणि क्रमेण कथितानि ते ॥१०९॥
मन्त्रान्तर्न्यसनीयानि स्थानान्यपि सुरेश्वरि ।
यद्यल्लोकः क्रमेणैव स स लोकोऽवधार्यताम् ॥११०॥
नागलोकोऽथ भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परम् ।
स्वर्लोकः सूर्यलोकश्च चन्द्रलोकस्ततः परम् ॥१११॥
भूतलोकः प्रेतलोकः पैशाचो लोक एव च ।
पितृलोकोऽप्सरोलोको गान्धर्वः कैन्नरोऽपि च ॥११२॥
लोको वैद्याधरो यक्षलोको वासव एव च ।
वैश्वदेवः सिद्धलोकः साध्यलोकस्ततः परम् ॥११३॥
वुध्नलोकः शुक्रलोको भौमलोको बृहस्पतेः ।
लोको लोकः शनेश्चापि तमो लोकस्ततः परम् ॥११४॥

सप्तर्षिलोकस्तदनु ततो वैराजलोकक: ।
ध्रुवलोकश्चन्द्रलोकोऽग्निलोको यमलोकक: ॥११५॥
तथा निर्ऋतिलोकश्च वारुणो लोक एव च ।
वायुलोकश्च कौबेरो लोकश्चैशानलोकक: ॥११६॥
ततो तु डाकिनीलोको योगिनीलोक एव च ।
तस्यानु भैरवीलोकश्चामुण्डालोक एव च ॥११७॥
लक्ष्मीलोकश्च वैकुण्ठलोको वैशाखलोकक: ।
ब्रह्मलोकस्ततो लोक: प्रमथानां प्रकीर्तित: ॥११८॥
मातृलोक उमालोक: शिवलोकस्तत: परम् ।
महर्लोको जनोलोकस्तपोलोकस्ततोऽपि च ॥११९॥
मर्त्यलोको रुद्रलोको गोलोकस्तदनन्तरम् ।
लोक: सदाशिवस्यापि सर्वशेषे प्रकीर्तित: ॥१२०॥
पञ्चपञ्चाशदेवं स्युर्लोकास्तेषु क्रमात् प्रिये ।
तास्ता: काल्योऽवतिष्ठन्ते तदधिष्ठात्र्य ईरिता: ॥१२१॥
अत: परं पुनर्बीजं क्रमेणैव निशामय ।
एकैकं मन्त्रमध्यस्थं संवर्तकविवर्तकौ ॥१२२॥
पारीन्द्रश्च शुभंयुश्च जैमनादिद्वयं तत: ।
धमिल्ल: संबलाद्यश्च विवत्सादिद्वयं तथा ॥१२३॥
संयोगश्च वियोगश्च पिप्पलो विकलोऽपि च ।
विजम्भोत्तानसंज्ञौ च संजीवन्यादिपूर्विका ॥१२४॥
विपक्षश्च विरागश्च कैतवातङ्कनामकौ ।
संहारिणी च विघटी चोत्क्रमादिद्वयं तत: ॥१२५॥
विघ्न: स्वातिश्च यमलादिद्वयं तदनन्तरम् ।
मालोत्सर्गविषणादिद्वितयं चान्त एव च ॥१२६॥
ज्योत्स्नाग्राहग्रहाश्चापि तपनो वर्द्धनी तथा ।
समाधानादिसर्वस्वादिचतुष्टयमेव च ॥१२७॥
शुद्धनिद्रादिचत्वारि गुणमूले च वारुणी ।
इति ते भावनान्यास: समासादुपवर्णित: ॥१२८॥

[भावनान्यासमहिम्नः वर्णनम्]

विस्तरेण पुनर्वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ।
न्यासास्तु बहवः सन्ति न पुनर्भावनासमाः ॥१२९॥
देवत्वदात्री देवानां सिद्धानां सिद्धिदायिनी ।
ऋषीणां ध्यानशीलानामेषैव हि परायणम् ॥१३०॥
ज्ञात्वेत्थमस्या माहात्म्यं यत्नमस्यां समाचरेत् ।
अनया साधकः सिद्धिभागी भवति निश्चितम् ॥१३१॥
नित्यत्वेनोदिता चैषा विरक्तानां सुरेश्वरि ।
गृहिणां च तथा काम्या द्वयोर्नैमित्तिका सदा ॥१३२॥
अयने चन्द्रसूर्योपरागे चैव युगादिषु ।
शारदीयासु पूजासु वासन्तीष्वपि पार्वति ॥१३३॥
मन्वन्तरासु सर्वासु संक्रान्तिद्वादशस्वपि ।
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पुण्याहेष्वितरेषु च ॥१३४॥
तथा सर्वेषु पीठेषु तीर्थेष्वपि विशेषतः ।
कर्तव्यो भावनान्यासः कालीसन्तोषकारिभिः ॥१३५॥
विनैनां मानसी पूजा न कदापि फलावहा ।
भावना च समाधिश्च ध्यानमध्यात्मचिन्तनम् ॥१३६॥
पर्यायवाचकाः शब्दाश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।
चतुर्भिरुच्यते योगस्तं कुर्वन् योग्युदीर्यते ॥१३७॥
योगी वा कल्पसंस्थायी शिवे वापि विलीयते ।
शिव एव भवेत् साक्षात् भावनान्यासभावनात् ॥१३८॥
कठिनत्वाद् दुरूहत्वात् नैनां कुर्वन्ति पामराः ।
विज्ञा एव हि कुर्वन्ति ज्ञात्वास्याः फलमुत्तमम् ॥१३९॥
किमस्याः फलबाहुल्यकथनेन सुरेश्वरि ।

[समयन्यासोद्देशः]

प्रकृतं समयन्यासं निबोधातः परं वरम् ॥१४०॥
एषोऽपि भावनान्याससमानः परिकीर्तितः ।

[समयन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋषिरर्वावसुस्त्वस्य छन्दो गायत्र्युदीरिता ॥१४१॥

गुह्यकाली देवता च कर्णिकाबीजमुच्यते ।
फेत्कारी शक्तिराख्याता कालरात्रिस्तु कीलकम् ॥१४२॥
विनियोगोऽस्य समयपालने परिकीर्तितः ।

[समयन्यासस्य महत्त्वनिर्देशः]

एष कौलाचारवतां नित्यत्वेनोदितः प्रिये ॥१४३॥
अनुकल्पवतां नैमित्तिकत्वेन प्रकाशितः ।
काम्यत्वेनोदितोऽन्येषां न्यासोऽयं समयाभिधः ॥१४४॥

[समयन्यासोद्धारः]

अत उद्धारमेतस्य समाकलय भामिनि ।
आदौ तु पञ्चबीजानि चलानि प्रतिमन्त्वपि ॥१४५॥
ततस्तन्नामवचनं प्रतिमन्त्रं शुचिस्मिते ।
मूर्त्येति द्व्यक्षरपदं सर्वत्रैव स्थिरं मतम् ॥१४६॥
प्रतिमन्त्रं पुनस्तत्तन्नाम तस्यानु चञ्चलम् ।
षडक्षरमिति स्थाष्णु ततः समयपालिनी ॥१४७॥
पुनस्तत्तत्पदं देवि चरिष्णु प्रतिमन्त्रकम् ।
ततोऽम्बेति पदं स्थाष्णु तैरस्याः सन्धिरीरितः ॥१४८॥
प्रसीदतां वह्निजाया षड्वर्णानि स्थिराणि हि ।
इति साधारणोद्धारः समयस्य प्रकाशितः ॥१४९॥

[समयन्यसस्य विशेषेणोद्धारः]

इदानीं तु विशेषेण कथयाम्यवधारय ।
प्रणवो वाग्भवः पाशः कला शर्वश्च सुन्दरि ॥१५०॥
माया लक्ष्मीः कामवधूयोगिन्यस्तदनन्तरम् ।
काली क्रोधश्च रावश्च प्रासादो गारुडोऽपि च ॥१५१॥
नृसिंहो भैरवी प्रेतदस्रशक्तय एव च ।
केशरः काकिनी नेमिश्छन्दो विश्वस्तथैव च ॥१५२॥
भ्रामरी च प्रचण्डा च डाकिनी तदनन्तरम् ।
केकराक्षी कालरात्रिः सप्तमस्तु[पञ्चमस्तु?]ततः परम् ॥१५३॥
मोगः सृष्टिश्च फेत्कारी त्रेता कृत्या ततोऽपि च ।
विजयो मन्दसंमोहौ संहारः पतनादिमः ॥१५४॥

ततश्च वेणुसान्वक्षमौञ्जीसूत्राणि पार्वति ।
गायत्री कर्णिका चापि शृङ्खलौपह्वरे तथा ॥१५५॥
नान्दिकश्च पुरुश्चूडामणिः पिच्छा तथैव च ।
आदेशश्च छटा चैव तत आयः समेखलः ॥१५६॥
कुण्डं गर्भश्च दीपश्च द्वीपजम्भौ ततः परम् ।
ककुत् षडङ्गपूर्वा च शैशुकः सर्वपश्चिमः ॥१५७॥
ततो डमरुनाराचशूलानि परमेश्वरि ।
अर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च सुकृतं दुष्कृतं ततः ॥१५८॥
पद्मस्ततश्च कुशिको व्ययः शेषे प्रतिष्ठितः ।
संदंशकश्च नालीको भुशुण्डी च गदा तथा ॥१५९॥
प्रासस्ततो नु वृत्तं च तुङ्गखण्डे सवारुणी ।
कुञ्जो वैकारिकश्चापि मन्दरः सिन्धुरेव च ॥१६०॥
महेन्द्रश्चेश्वरश्चाथ सुरसः समरोऽपि च ।
रागसारसभारुण्डाः संहारी तदनन्तरम् ॥१६१॥
नादान्तकश्चामरं च व्यजनं विधृतिस्तथा ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥१६२॥
संभूतिश्चतुरस्रं च त्र्यस्रं विरतिरेव च ।
श्रीकण्ठश्च परेष्टी च व्रतं निर्मोक एव च ॥१६३॥
वेतण्डोऽपि ह्यौपदेयो मारण्डः सविनादकः ।
विमर्दः शेखरश्चापि विरसो दाक्षिकोऽपि च ॥१६४॥
सौमतं च प्रतानं च विदिक् सर्वस्य पश्चिमा ।
मौलिञ्जश्च विरूपश्च तथा चैवापरान्तकः ॥१६५॥
प्रकरी बिन्दुकौ चापि विजया तदनन्तरम् ।
ततो वैटपकौलुञ्चौ पट्चक्रादिद्वयं तथा ॥१६६॥
सप्तविंशतिमन्त्राणामिति बीजान्यनुक्रमात् ।
उक्तानि ते वरारोहे मूर्तेः पूर्वपदं शृणु ॥१६७॥
ऋग्वेदश्च यजुर्वेदः सामवेदस्ततः परम् ।
अथर्ववेदस्तदनु ततः सत्ययुगं प्रिये ॥१६८॥

त्रेतायुगं ततो द्वापरयुगं परिकीर्तितम् ।
ततः कलियुगं तस्यानु गायत्री प्रकीर्तिता ॥१६९॥
त्रय्यध्ययनमस्यानु षट्कर्मं तदनन्तरम् ।
वैखानसश्च वैराग्यं परमात्मा च कौलिकी ॥१७०॥
चण्डेश्वरी कुब्जिका च काली बाभ्रव्यपि प्रिये ।
त्रिपुरा सुन्दरी राजराजेश्वर्यप्यनन्तरम् ॥१७१॥
सदाशिवोऽथ हिरण्यगर्भो मन्त्रस्तथैव च ।
धर्मः पापमदृष्टं च सप्तविंशतिरीरिता ॥१७२॥
एभिः पदैर्मूर्तिपदं विगृह्य वरवर्णिनि ।
[1]टाबन्तप्रत्ययेनापि ततः संभावयेदिमाम् ॥१७३॥
एतत्पदानु ये शब्दाः भवन्ति क्रमशः पुनः ।
ते वै समयपालिन्याः पूर्वोपपदताजुषः ॥१७४॥
तत्तद्धर्माभिधेयत्वकार्यत्वप्रतिपादकाः ।
क्रमेण तान् प्रवक्ष्यामि तत्र चेतो निवेशय ॥१७५॥
सप्तविंशतिसंख्याका धर्मिधर्माश्रयाः पृथक् ।
[एतदग्रिमैकापंक्ति स्त्रुटिता]
हौत्रमाध्वर्यवं चापि तत औद्गात्रमेव च ॥१७६॥
कृत्या शान्तिरिति ह्येका तपो ज्ञानं ततः परम् ।
यज्ञो दानं च ब्राह्मण्यं ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥१७७॥
गार्हस्थ्यं तदनु ज्ञेयं वानप्रस्थत्वमेव च ।
सन्न्यासश्च ततश्चैवोपनिषत् कुलमेव च ॥१७८॥
पूर्वाम्नायश्च तदनु पश्चिमाम्नाय एव च ।
उत्तराम्नाय इत्येवं दक्षिणाम्नाय एव च ॥१७९॥
ऊर्ध्वाम्नायस्तथैवाध आम्नायः परिकीर्तितः ।
षडाम्नायश्चतुर्वेदः सिद्धिः स्वर्गस्तथैव च ॥१८०॥

---

१. तावन्ति ख ।

नरकः कर्म चेत्येव सप्तविंशतिरीरिताः ।
एते समयपालिन्याः पूर्वशब्दाः सुरेश्वरि ॥१८१॥
अधुनाम्बापदस्यापि पूर्वशब्दान्निशामय ।
ज्वालिनी विमला चैव प्रचण्डा विकटा तथा ॥१८२॥
पिङ्गला मोक्षदा चैव स्वाहा श्रद्धा च मोदिनी ।
विजया च ततः कपालिनी तदनु चण्डिका ॥१८३॥
सुभगा भ्रामरी चापि मोहिनी तदनन्तरम् ।
महाकाली कालरात्रिश्चण्डघण्टा तथैव च ॥१८४॥
कुरुकुल्ला भीषणा च तेजोवत्यपि च प्रिये ।
[1]भगमालिन्यपि ततश्चर्चिका परिकीर्तिता ।१८५॥
महोदरी ततः संहारिणी चापि दिगम्बरा ।
महामारी चेति सप्तविंशतिः परिकीर्तिता ॥१८६॥
सर्वैरेभिः पदैरम्बापदस्यापि च विग्रहः ।

[समयन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्थलान्येवमतः परमितः शृणु ॥१८७॥
ब्रह्मरन्ध्रं मुखं कर्णौ कपोलौ नयने तथा ।
भ्रुवौ नासापुटे चैव चिबुकं च हनू अपि ॥१८८॥
गलः स्कन्धौ करौ वक्षः पार्श्वौ द्वौ चरणद्वयम् ।
लिङ्गं व्यापकमित्येतत् स्थानं सर्वं मयोदितम् ॥१८९॥
ईदृशः समयन्यासस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ।
कर्तव्यो भक्तिभावेन फलाधिक्यमभीप्सता ॥१९०॥
नित्यनैमित्तिकत्वादिविचारः पूर्वमीरितः ।

[सृष्टिन्यासोद्देशः]

सृष्टिन्यासमथो वक्ष्ये मुख्याङ्गं न्यासकर्मणि ॥१९१॥
यद् यद् रूपेण सा देवी यां यां सृष्टिं चकार ह ।
सर्वं तदस्मिन् न्यासे तु वर्तते परमेश्वरि ॥१९२॥

---

१. भोगमालिन्यपि ग घ ।

देव्यास्तु पञ्चाकारायाः आद्य आकार उच्यते ।
तस्य प्रधानमङ्गं हि विदुरेनं विपश्चितः ॥१९३॥
सृष्टिन्यासः कौलिकानां काम्यत्वेन व्यवस्थितः ।
श्रुत्यध्वचारिणां नित्यत्वेन वै परिकीर्तितः ॥१९४॥
उभयोरपि नैमित्तिकत्वेन परिकीर्तितः ।

[सृष्टिन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

सृष्टिन्यासस्य देवेशि जमदग्निऋर्षिर्मतः ॥१९५॥
अत्यष्टिश्छन्द आख्यातं गुह्यकाली च देवता ।
मणिमाला तु बीजं स्यात् कर्णिका शक्तिरुच्यते ॥१९६॥
फेत्कारी कीलकं प्रोक्तं विनियोगस्तु सिद्धये ।

[सृष्टिन्यासस्य सामान्योद्धारः]

अत उद्धारमेतस्य समाकलय भामिनि ॥१९७॥
द्वात्रिंशत् संख्यका मन्त्रा एतस्मिन् न्यास ईरिताः ।
तत्रादौ सप्त बीजानि भिन्नभिन्नानि पार्वति ॥१९८॥
पुनर्विभिन्ननामानि व्यस्तानां तदनन्तरम् ।
एतैर्हि रूपशब्दस्य विग्रहः परिकथ्यते ॥२९९॥
टाबन्तप्रत्ययेनासौ कथितः परमेश्वरि ।
पदार्थानां विभिन्नानां नामानि तदनन्तरम् ॥२००॥
सृष्टिकर्त्रीतिशब्दस्य तैः समासः प्रकल्प्यते ।
प्रतिमन्त्रं स्थिरा ज्ञेया पाश्चात्त्या चतुरक्षरी ॥२०१॥
पदानि भिन्नभिन्नानि पुनरप्येवमीश्वरि ।
देवीशब्दस्य तैः शब्दैः सामान्यमिलनं तथा ॥२०२॥
सिद्धिं प्रयच्छतु पदात् प्रणवश्च शिरस्तथा ।
एतानि नव वर्णानि प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ॥२०३॥
इति सामान्यतः प्रोक्त उद्धारः कमलानने ।

[सृष्टिन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषोद्धारमधुना समाकलय सादरा ॥२०४॥
पाशं कामं रमां मायां कालिकाङ्कुशगारुडान् ।
प्रणवं शाकिनीं विश्वं रुड्वधूचण्डयोगिनीः ॥२०५॥

वेदीं जरां खलं चैव कुक्कुटं हाकिनीमपि ।
संहितां विधिमस्यानु नाभसं लघुमेव च ॥२०६॥
अर्चामद्वयमालिख्य ध्यानचञ्चू च कौणपी ।
सारस्वतं च प्रासादं क्षेत्रपालं सकिन्नरम् ॥२०७॥
अमृतावेशसोमाश्च ततः परमुदीरयेत् ।
दस्रं शक्तिं च नक्षत्रं विद्युतं तदनन्तरम् ॥२०८॥
ततः समुच्चरेद् देवि कुलिकप्रेतभैरवीः ।
भारुण्डां काकिनीं नेमिं छन्दः कालविषे क्षमाम् ॥२०९॥
कापालमथ गोकर्णं सुरभीं रौरवं तथा ।
मन्त्रवर्णौ सम्पुटं च वैकारिकमतः परम् ॥२१०॥
मन्दारसिन्धू तदनु महेन्द्रं चेश्वरं तथा ।
रम्भावटचौ च देवेशि दण्डं गामंशुमेव च ॥२११॥
शुल्कं राकां मुण्डमेषौ शिखां प्राग्भवमेव च ।
कल्याणसाधकौ चापि मठीं व्रध्नं रयादिमम् ॥२१२॥
कल्पमुक्ता महामुक्त्वा क्रमं नृहरिमेव च
फैरवं च कुमारीं च द्वीपजम्भषडङ्गकान् ॥२१३॥
दक्षिणाककुदौ संघातं शैशुकमतः परम् ।
वेणुं सानुं तथैवाक्षं मौञ्जीं सूत्रं ततः परम् ॥२१४॥
सन्धानं सिञ्जिनीं चापि नान्दीबलिपृथूनपि ।
ह्रस्वं नदं सात्वतं च तारकां सर्वशेषगाम् ॥२१५॥
आयं समेखलं कुण्डं गर्भदीपौ चिताध्वजौ ।
वृत्ततुङ्गाखण्डपुण्यचारुसन्तानकुब्जकान् ॥२१६॥
पुरुचूडामणी पिच्छा खातादेशौ तलच्छटे ।
प्रभञ्जनाद्यानि कालरात्र्यन्तानि ततः परम् ॥२१७॥
प्रहारिणं कुडुक्कं च करोटी वात्यया सह ।
वारीं सिद्धिफलं शिल्पं विजयं मन्दमेव च ॥२१८॥
संमोहप्रलयौ चापि पतनं सयुगान्तकम् ।
ससंहारं च देवेशि ततोऽनाहतमेव च ॥२१९॥

भोगं सृष्टिं च फेत्कारीं त्रेतां तदनु कीर्तयेत् ।
करालीमथ [1]कृत्यां च परेष्टिव्रतपूर्त्तकान् ॥२२०॥
निर्मोकोत्तंसवेतण्डान् गायत्रीकर्णिके ततः ।
शृङ्खलौपह्वरे नान्दिकं तर्जनिकटंकटे ॥२२१॥
वैरसं दाक्षिकं सौमतं प्रतानं विदिग्युतम् ।
वैटपं चापि कौलुञ्चं भद्रिकां तन्द्रया युताम् ॥२२२॥
कुटिलां रञ्जिनीमुक्त्वा घटीं संकुलमातृकाम् ।
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिकं व्ययमेव च ॥२२३॥
विजयां याम्यमपि च संहारिणमतः परम् ।
नादान्तकं चामरं च व्यजनं विधृतिस्तथा ॥२२४॥
ततो नु वीरवेतालौ सुरसः समरस्तथा ।
रागसारसभौवोग्रपुटकानि ततः परम् ॥२२५॥
मौलिञ्जं च विरूपं च अपरान्तमतः परम् ।
[2]प्रक्रीबिन्दुकौ चापि चर्पटं मणिमालया ॥२२६॥
संभूतिं चतुरस्रं च त्र्यस्रं विरतिमेव च ।
श्रीकण्ठं हारिणीमुत्कोचिनीमपि ततः परम् ॥२२७॥
औपदेयं च भारुण्डं विनादं सविमर्दकम् ।
शेखरं त्रिपुरां चापि जीवनीं सर्वशेषगाम् ॥२२८॥
इत्यब्धिकरनासत्यसंख्याकानि भवन्ति हि ।
बीजानि परमेशानि सर्वाणि मिलितानि हि ॥२२९॥
प्रत्येकं सप्तसप्तैव देयानि प्रतिमन्त्रकम् ।
अतः परं तु नामानि शृण्वेतस्मादनन्तरम् ॥२३०॥
प्रजापतिस्तथा वेदः प्रकृतिस्तदनन्तरम् ।
मायाविवेकौ तदनु वासनासत्त्व[तत्त्व ?]मेव च ॥१३१॥
रजस्तमस्तथा धर्मो गन्धश्च रसना तथा ।
रूपं स्पर्शश्च शब्दश्च मृत्युः कुण्डलिनी तथा ॥२३२॥

---

१. कृष्णां च ग। २. इतः पंक्तित्रयं ख ग घ पुस्तकेषु नास्ति ।

आत्मा पुण्यं च पापं च शरीरं तदनन्तरम् ।
आदिसर्गः स्वेदजश्च जरायुज इतः परम् ॥२३३॥
अण्डजोद्भिज्जमयनं त्रुटयादिकाल एव च ।
नानादर्शनमस्यानु ततश्चोपनिषन्मता ॥२३४॥
ब्रह्मविद्या गुह्यकाली द्वात्रिंशत् परिकीर्तिताः ।
इदानीं सृष्टिकर्त्रीतो देवि पूर्वपदं शृणु ॥२३५॥
प्रजा यागश्च पुरुषो भोगो मोक्षश्च जन्म च ।
विष्णुर्ब्रह्मा तथा रुद्रः सदाचारस्तथैव च ॥२३६॥
पृथिवी च जलं तेजो वायुराकाशमेव च ।
मारी च नादबिन्दुश्च ज्ञानं स्वर्गस्तथैव च ॥२३७॥
नरकः सुखदुःखं च मानसं तदनन्तरम् ।
ततश्च दंशमशकादिः स्यान् नरपशुस्तथा ॥२३८॥
खगोऽङ्कुरश्च षड्ऋतुः कल्पो नानामतं तथा ।
आत्मप्रकाशः कैवल्यं कोटिब्रह्माण्डमेव च ॥२३९॥
द्वात्रिंशदिति नामानि ससमासानि कारयेत् ।
अतः परं तु कलय शब्दान् देवीपदादिमान् ॥२४०॥
शब्दादीन्यथ कथ्यन्ते ततो वेदवती प्रिये ।
चैतन्यभैरवी चापि भोगवत्यथ कथ्यते ॥२४१॥
पूर्णेश्वरी महामोहिन्यन्विता विष्णुमायया ।
ततो दुर्गा पुनश्चण्डवारुणी परिकथ्यते ॥२४२॥
नित्यक्लिन्ना च महिषमर्दिनी त्वरिता तथा ।
वाग्वादिन्युग्रचण्डा च कुब्जिका तदनन्तरम् ॥२४३॥
राजराजेश्वरी कात्यायनी तदनु कथ्यते ।
चण्डयोगेश्वरी चान्नपूर्णा फेत्कार्यपि प्रिये ॥२४४॥
सरस्वती सिद्धिलक्ष्मीस्तथा वै तुम्बुरेश्वरी ।
जयलक्ष्मीश्च धनदा चण्डेश्वर्यप्यनन्तरम् ॥२४५॥
छिन्नमस्ताऽपि तदनु दिगम्बर्यप्यथोदिता ।
मातङ्गी डामरी चापि धूमावत्यनु कीर्त्यते ॥२४६॥

विश्वरूपा सर्वशेषे द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।

[सृष्टिन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अतः परं तु न्यासस्य स्थानानि ह्यवधारय ॥२४७॥
पादौ जङ्घे तथा जानुनी ऊरू वंक्षणौ ततः ।
गुदं लिङ्गं च नाभिश्च जठरं तदनन्तरम् ॥२४८॥
करौ च मणिबन्धौ च कफोणी स्कन्धयुग्मकम् ।
ग्रीवा कण्ठोऽथ चिबुकं मुखं नासा सकूर्चका ॥२४९॥
ललाटं च शिरो ब्रह्मरन्ध्रं व्यापकमेव च ।
स्थानानि सृष्टिन्यासस्य कथितानि मया तव ॥२५०॥
इत्युद्धारो विशेषाख्यः समन्त्रः प्रतिपादितः ।

[सृष्टिन्यासमहिमकीर्तनम्]

नित्यनैमित्तिकत्वं च पुरैव प्रतिपादितम् ॥२५१॥
महाफलोऽयं विज्ञेयः सृष्टिन्यासो वरानने ।
एतस्यैव प्रसादेन प्रजापतय ईश्वराः ॥२५२॥
[1]विचित्रां चक्रिरे सृष्टिं स्वमहत्त्वप्रकाशिनीम् ।
अत एनं भक्तिभावाद् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥२५३॥
ते स्वबुद्ध्या कल्पयन्ति शास्त्रे नानाविधं मतम् ।
शक्तिसामर्थ्यभाजः स्युः सर्वत्र शुभकर्मणि ॥२५४॥
न्यासेनानेन सा देवी सृष्टिनाम्ना निगद्यते ।
किं बहूक्तेन देवेशि न्यासमेनं समाचरेत् ॥२५५॥
वाक्सिद्धिं लभते मर्त्यः षण्मासान्नात्र संशयः ।

[स्थितिन्यासोद्देशः]

ब्रवीमि ते स्थितिन्यासमधुना शृणु सादरा ॥२५६॥
यमेनं विदधन्नित्यं विष्णुर्विष्णुत्वमाप्तवान् ।
मुख्यत्वेनैव सर्वेषां न्यासानामेष कीर्तितः ॥२५७॥
विधेयो गाढयत्नेन नित्यं कल्याणमीप्सता ।

[स्थितिन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथ ऋष्यादिमेतस्य समाकलय भामिनि ॥२५८॥

---

१. विविधां ग ।

ऋषिः कालकवृक्षीय एतस्य परिकीर्तितः ।
छन्दस्तु शक्वरी ज्ञेया गुह्यकाली च देवता ॥२५९॥
व्यूयबीजं बीजमुक्तं शक्तिरुत्कोचिनी तथा ।
घटीबीजं कीलकं स्यात् विनियोगस्तु पार्वति ॥२६०॥
सर्वदा सर्वकार्याणां सिद्धये परिकीर्तितः ।

[स्थितिन्यासोद्धारः]

आदौ सामान्यमुद्धारमेतस्य त्वं निशामय ॥२६१॥
ततो नु श्रोष्यसि पुनर्विशेषं वरवर्णिनि ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां प्रणवः पुरतः स्थितः ॥२६२॥
स निश्चलः पुनश्चैकं कूटं तच्चञ्चलं स्मृतम् ।
ततोऽनु पञ्च बीजानि विभिन्नानि चलानि च ॥२६३॥
ततोऽनु च पुनः कूटमेकं तदपि चञ्चलम् ।
ततोऽनु पूर्ववत्तार एकः स च सनातनः ॥२६४॥
ततो नामानि भिन्नानि तरलानि पृथक् पृथक् ।
तैः कल्पशब्दस्य शिवे विग्रहः परिनिष्ठितः ॥२६५॥
स ङन्तत्वेन विहितस्तस्मान्नामानि वै पृथक् ।
तैश्चासुरवधेत्यस्य पदस्य खलु विग्रहः ॥२६६॥
स ङन्तस्तदनु स्थाणु वेक्ष्यमाणं षडक्षरम् ।
तज्जगत्स्थितिकर्त्रीति नामानि च पुनस्ततः ॥२६७॥
विभिन्नानि ततः सप्तवर्णानि स्थैर्यभाञ्जि हि ।
तानि देवेशि नरसिंहसहितेति भवन्ति हि ॥२६८॥
सविग्रहाणि तान्येवमावन्तानि वरानने ।
ततः पुनर्विभिन्नानि नामानि तरलानि वै ॥२६९॥
तैः कालीति पदस्यापि विग्रहो विनिगद्यते ।
पूर्वा विशेषणीभूता विशेष्यत्वेन चापरा ॥२७०॥
ततः पुनर्विभिन्नं हि बीजत्रयमुदीर्यते ।
तत्पारिप्लवमाख्यातं प्रतिमन्त्रं वरानने ॥२७१॥
अष्टौ वर्णास्ततो देवि सर्वमन्त्रान्तगाः स्थिराः ।
चिरं मामवतु स्वाहेत्येवंरूपा पृथक् तया ॥२७२॥

इति सामान्य उद्धारः स्थितिन्यासस्य वर्णितः ।

[स्थितिन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषमधुना वच्मि तत्र चेतो निवेशय ॥२७३॥
तत्रादौ क्रमतो वक्ष्ये कूटानि फलदानि हि ।
उदयं कूटमादौ स्यादस्तकूटं ततः परम् ॥२७४॥
ततश्च खेचरीकूटं ततो मन्दारकूटकम् ।
प्रासादकूटं तदनु कूटं चाचलसंज्ञकम् ॥२७५॥
मणिकूटं चण्डकूटं कूटं चैवापराजितम् ।
चक्रकूटं च गन्धर्वकूटं कूटं च गारुडम्[1] ॥२७६॥
मेरुकूटं च कैलासकूटं कूटं त्रिकूटकम् ।
मालाकूटं च मन्थानकूटं कैञ्जल्कमेव च ॥२७७॥
ज्ञानकूटं च समयकूटं केशरकूटकम् ।
इच्छाकूटं धर्मकूटं कूटं मैनाकमेव च ॥२७८॥
वासनाद्वैतवैराग्यकूटानि तदनन्तरम् ।
प्रतिबिम्बाभाससत्ताकूटानीत्थं वरानने ॥२७९॥
चैतन्यकूटं च ततः प्रबोधं कूटमेव च ।
द्वात्रिंशदिति कूटानि वर्णितानि मया तव ॥२८०॥
प्रतिमन्त्रं प्रदेयानि पुरतश्चैकमेककम् ।
अतः शृणु त्वं बीजानि पञ्च पञ्च क्रमेण हि ॥२८१॥
वाग्भवः पाशमाये च लक्ष्मीकामौ ततः परम् ।
तारश्च योगिनीक्रोधौ रावः प्रासाद एव च ॥२८२॥
सिद्धः काली हयग्रीवो धर्मो गरुड एव च ।
क्षेत्रपालमहाक्रोधौ चण्डविश्वौ सकिन्नरौ ॥२८३॥
नदी कामरती प्राणमेघौ तदनु पार्वति ।
खड्गो बुद्धिः क्षमा माला नीलं चेति ततः परम् ॥२८४॥
त्रिवृत्कापालगोकर्णसुरभीरौरवाणि च ।
डामरश्चैव नाराचः शूलं तदनु पार्वति ॥२८५॥

---

१. गाह्वरं ङ ।

अर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च पञ्चबीजान्यतः परम् ।
संहिताहाकिनीध्यानविधयश्चञ्चुरेव च ॥२८६॥
जम्भः षडङ्गात्रिककुचछैशुकास्तदनन्तरम् ।
खेचर्यनन्तौ प्रेतश्च कुलिकं भैरवी तथा ॥२८७॥
तत आयादिदीपान्तं बीजपञ्चकमिष्यते ।
भोगसृष्टी च फेत्कारी त्रेता कृत्या तथैव च ॥२८८॥
वेणुसानू चाक्षमौञ्जीसूत्राणि तदनन्तरम् ।
भूतिनी च प्रचण्डा च डाकिनी तदनन्तरम् ॥२८९॥
केकराक्षी कालरात्रिः पञ्चबीजान्यनुक्रमात् ।
कल्पो मुक्ता महा चैव क्रमो. नृहरिरेव च ॥२९०॥
रङ्कताटङ्कनीलाश्च धेनुर्मारिष एव च ।
गायत्र्याद्याः नान्दिकान्ताः पञ्चवर्णास्ततः परम् ॥२९१॥
विजयो मन्दसंमोहौ संहारः पतनादिमः ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥२९२॥
विटपं चैव कौलुञ्चशिल्पिसिद्धिफलादिमम् ।
श्रीकण्ठश्चाथ संहारी ततो नादान्तकोऽपि च ॥२९३॥
चामरव्यजने चापि विधृतिस्तदनन्तरम् ।
वनस्पतिस्त्वङ्कुराद्यो विधानं संविधानकम् ॥२९४॥
कलहोऽपि ततश्चौपदेयं मारण्डमेव च ।
विनादश्च विमर्दश्च शेखरोऽपि ततो मतः ॥२९५॥
ततो गुह्यकपाटं च संसृष्टिः सविकोशका ।
सम्पूर्णाऽप्यथ मौनी च मौलिञ्जः सविरूपकः ॥२९६॥
अपरान्तकश्च प्रकरी बिन्दुकस्तदनन्तरम् ।
विटङ्को योगतन्त्रा च दिगम्बर इतः परम् ॥२९७॥
ततो रसपुटो ज्ञेयः संन्यासस्तदनन्तरम् ।
विरसो दाक्षिकश्चापि सौमतं सप्रतानकम् ॥२९८॥
विदिक् च विकराली च मौनं चूलिकया सह ।
विखलश्च विसारश्च विद्याबलमतः परम् ॥२९९॥

चाक्रिकं विक्रियं चापि विपृथुस्तदनन्तरम्।
शालङ्कश्च वियुक्तिश्च संव्यानं जैमनादिमम् ॥३००॥
ततः सबलधम्मिल्लौ.............................।
पाटवं पिप्पलं चाथ विजम्भो विकलादिकः ॥३०१॥
उत्तानं चेति कथितं द्वात्रिंशद्वीजमण्डलम्।
प्रतिमन्त्रमथैकैकं कूटं ते क्रमशो ब्रुवे ॥३०२॥
गङ्गा च यमुना चैव सरस्वत्यथ कथ्यते।
गोदावरी कृष्णवेल्ला नर्मदा गण्डकी तथा ॥३०३॥
कावेरी वाहुदा सिप्रा तुङ्गभद्रा च कौशिकी।
विपाशा चन्द्रभागा च वितस्ता देविका तथा ॥३०४॥
चर्मण्वती धूतपापा मुरला वेत्रवत्यपि।
सुवर्णरेखा तमसा वाग्मती च महानदी ॥३०५॥
करतोया पयोष्णी च पारावत्यथ गोमती।
ज्योतीरसा च सरयूः पर्णाशा ताम्रपर्ण्यपि ॥३०६॥
द्वात्रिंशत् सरितां कूटं क्रमेणैव प्रकीर्तितम्।
अथ नामानि कल्पानां क्रमेण प्रब्रवीमि ते ॥३०७॥
भूकल्पश्च भुवः कल्पस्तपः क्रतुरथापि च।
वह्निः षड्क्रमतो दर्शः कृष्णश्चित्रस्तथैव च ॥३०८॥
रक्तोदो हरिकेशश्च लोहितः शिपिविष्टयुक्।
बृहद्रथश्चौपलश्च खार्जूरीयश्च संभ्रमः ॥३०९॥
नैयग्रोधश्च सिंहश्च स्थूलाचित्यौ ततः परम्।
औलूकमथ वैयानं कीलालं तपनं तथा ॥३१०॥
संघातवटरूद्राश्च मन्दाराजिरकौ श्रुतिः।
द्वात्रिंशत्संख्यकैरेतैः कल्पशब्दस्य विग्रहः ॥३११॥
सप्तम्यन्तः स कर्तव्योऽसुराणां नाम वै शृणु।
आदौ बलाको गगनमूर्द्धा वेहण्ड एव च ॥३१२॥
उल्मुको मेघनादश्च धूम्रश्च त्रिशिरा अपि।
अरुणो दाण्डिको वायुध्वजो जम्भल एव च ॥३१३॥

किरीटो रक्ततुण्डश्च किर्मीरो वाष्कलोऽपि च ।
खर्जूररोमा च ततो नागान्तक इतः परम् ॥३१४॥
काकवर्णोऽन्धकश्चापि सरभः शंकुकर्णयुक् ।
[1]प्रतर्दनो वज्रवर्मा जालन्धरशकुन्तकौ ॥३१५॥
पूतिकञ्जो विराधश्च विश्वमर्दन इत्यपि ।
कोलतुण्डो जम्बुजालश्चञ्चूमुख इतः परम् ॥३१६॥
पिटकः सर्वशेषं च द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।
एतैरसुरशब्दस्य विग्रहस्तदनन्तरम् ॥३१७॥
वधशब्दस्य देवेशि स टान्तत्वेन संस्थितः ।
इदानीं नरसिंहानां नामान्याकर्णय क्रमात् ॥३१८॥
कपिलः पुष्करस्तीव्रनखः पाण्डर एव च ।
ततो जम्बालसंमोहौ भूतादिर्हेतुकोऽपि च ॥३१९॥
लोहिताक्षश्च दुर्द्धर्षो बभ्रुः सर्वेश्वरोऽपि च ।
विश्वबाहुरनन्तश्च जटालस्तपनस्ततः ॥३२०॥
सिन्धुनादो मृत्युमुखो हेमाम्भो रौरवोऽपि च ।
हव्यवाहः पूर्णभद्रो मणितारस्तथैव च ॥३२१॥
दैत्यान्तकस्तथोद्योतो विभूतिः शबलोऽपि च ।
धनञ्जयश्च शोणाक्षश्चित्राङ्गोत्साहनामकौ ॥३२२॥
रक्तरेखः सर्वशेषे ज्ञातव्यः परमेश्वरि ।
एतच्छब्दोपशब्दत्वे नरसिंहो व्यवस्थितः ॥३२३॥
अथ नामानि कालीनां व्याहरामि वरानने ।
आनन्दः समयो भद्रो नियमस्त्रिदशस्तथा ॥३२४॥
हिरण्यो विकृतः क्रोध उल्का फेरुस्तथैव च ।
जीमूतो विग्रहो गुप्तश्चैतन्यस्तदनन्तरम् ॥३२५॥
विश्वः कुलं प्रतप्तश्च ज्योतीरूपं ततः परम् ।
मेधा तथोत्तरं व्याल आवर्तः स्यात् ततः परम् ॥३२६॥

१. प्रदर्शनो ख ।

सिंहनादश्च मन्त्रश्च कल्प उत्पात इत्यपि।
सम्मोहश्चक्र आधारः समरस्तदनु स्मृतः ॥३२७॥
विनाशोऽप्यथ रक्षा च द्वात्रिंशत्संख्यका इमे।
कालीशब्देन चैतेषां विग्रहः परिनिष्ठितः ॥३२८॥
अथैतस्मात् पदाद् देवि त्रित्रिबीजं निशामय।
कुम्भस्तथैवामृतं च आवेशस्तदनन्तरम् ॥३२९॥
त्रिशिखा च त्रिशक्तिश्च चामुण्डा तदनु स्मृता।
बुद्धिः क्षमा च माया[1] च पूर्णा च ललिताऽरुणा ॥३३०॥
धनदा च नृसिंहश्च तपस्तदनु कीर्तितम्।
रासोऽनघः कुञ्चिका च प्राकारः कुहिका तथा ॥३३१॥
बीजानि कूटनाड्यौ[2] च छन्दस्तदनु कथ्यते।
सम्प्रदायो भाजनं च स्यादपायस्ततः परम् ॥३३२॥
मौनं तथा चूलिका च तत् पश्चाद् विखलो मतः।
सर्वस्वं विप्रियं सन्तारस्ततः परमेश्वरि ॥३३३॥
पारीन्द्रशेषौ विज्ञेयौ सम्वर्तकविवर्तकौ।
तथा जैमनसंव्यानौ संबलान्तौ प्रकीर्तितौ ॥३३४॥
तथा संभावसंयोगौ विवत्साद्यौ सुरेश्वरि।
विक्रमश्चापि संक्रान्तिः कुलमुद्रा तथैव च ॥३३५॥
वीरवेतालभौवाश्च ततः परमुदीरिताः।
सन्धानं सिञ्जिनी चापि नैमयोऽस्यानु कथ्यते ॥३३६॥
चर्पटं मणिमाला च हारिणी तदनु प्रिये।
विराधश्च तुरीया च ग्रावा शेषे नियोजितः ॥३३७
मोदकं वासितौजस्विनस्ततः परिकीर्तिताः।
पूत्यण्डं कुञ्चिका कामकला तदनु पठ्यते ॥३३८॥

---

१. माला ङ। २. शापौ ङ।

फार्म—४४

षट्चक्रसर्वाङ्गमौ च आम्नायातीत इत्यपि ।
शक्तिसर्वस्वमुल्लिख्य परापरमुदीर्यते ॥३३९॥
ततोऽपि वज्रकवचं चिच्छक्तिः शाम्भवादिमा ।
जगदावृत्तिरस्यानु नाराचः शूलमेव च ॥३४०॥
अर्द्धचन्द्रश्च तदनु नालीकस्तदनु स्मृतः ।
भुशुण्डी च गदा ज्ञेया भोगसृष्टी ततः परम् ॥३४१॥
त्रेता च कुन्तः सारिघ ऋष्टिस्तदनु भामिनि ।
कराली तर्जनी चापि ततोऽनु स्यात् कटंकटा ॥३४२॥
पथ्या शफमुरङ्कश्च उत्तानं विघटी तथा ।
पाषाणः स्यात् ततो ज्ञेयं बीजं तत्त्वार्णवाह्वयम् ॥३४३॥
महाकल्पस्थायि बीजं ततो ब्रह्मकपालकम् ।
त्रिबीजपंक्तिरेषा तु सुरेशि प्रतिपादिता ॥३४४॥

[स्थितिन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अथ न्यासस्य वक्ष्येऽहं स्थानान्येतस्य वै क्रमात् ।
ब्रह्मरन्ध्रं ललाटं च कूर्चं नासा तथैव च ॥३४५॥
कपोलो नयनं कर्णौ हनुश्चिबुकमेव च ।
गलो ग्रीवा च हृदयं जठरं नाभिरेव च ॥३४६॥
करो लिङ्गं गुदं चोरुर्जानु जङ्घा तथैव च ।
पादः कटश्च पृष्ठं च तथांऽसो जत्रुरेव च ॥३४७॥
शिखा च करयोः पादयोः पुनर्व्यापकं ततः ।
सर्वशेषे च सर्वाङ्गव्यापकं परिकीर्तितम् ॥३४८॥
इति न्यासस्थानमुक्तं क्रमेण त्रिदशार्चिते ।
एवंविधः प्रकर्तव्यः स्थितिन्यासस्तु साधकैः ॥३४९॥
नित्यता काम्यता नैमित्तिकत्वं चास्य यादृशी ।
सा कथ्यते गृहस्थानां नित्यत्वेन व्यवस्थितः ॥३५०॥
काम्यत्वेन च कौलानां नैमित्तिकतयापि वा ।

[संहारन्यासोद्देशः]

अधुना शृणु देवेशि न्यासं संहारनामकम् ॥३५१॥

येन सा कालिका देवी महामारीति कथ्यते ।
एष न्यासो गुह्यकाल्याः सदा सन्तोषदायकः ॥३५२॥
कर्तव्यो भक्तिभावेन धर्मार्थामृतकांक्षिभिः ।
यतीनामेष नित्यः स्याद् गृहिणां काम्य एव च ॥३५३॥
कौलानामेष वै देवि नैमित्तिकतयोच्यते ।
नित्योऽथवास्तु काम्यो वाप्यथ नैमित्तिकोऽपि वा ॥३५४॥
न्यासानामेव सर्वेषां श्रेष्ठत्वेन व्यवस्थितः ।
अस्य सामान्यमुद्धारं प्रथमं कथयामि ते ॥३५५॥
विशेषेण पुनर्वक्ष्ये येनैष स्फुटतामियात् ।

[संहारन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

संहारनाम्नो न्यासस्य सम्वर्त ऋषिरीरितः ॥३५६॥
त्रिष्टुप् छन्दः समाख्यातं देवता गुह्यकालिका ।
प्रलयो बीजमुदितं खेचरी शक्तिरुच्यते ॥३५७॥
फेत्कारी कीलकं ज्ञयं विनियोगस्तु सिद्धये ।

[संहारन्यासस्य सामान्योद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं पुरतः कथयामि ते ॥३५८॥
ततो विशेषं वक्ष्यामि स्फुटो येन भविष्यति ।
आदौ तु पञ्च बीजानि प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ॥३५९॥
ज्ञातव्यानि वरारोहे ततः शब्दाः पृथक् पृथक् ।
तैः शब्दै रूपशब्दस्य समासस्तदनन्तरम् ॥३६०॥
तच्च टाबन्तमुन्नेयं चलं पूर्वं स्थिरं परम् ।
पदानि च विभिन्नानि ततो ज्ञेयानि पार्वति ॥३६१॥
तैश्च संहारकर्त्रीति पदं खलु निगृह्यते ।
पदानि पूर्वसंस्थानि चञ्चलानि प्रचक्षते ॥३६२॥
पञ्च वर्णान्युत्तराणि सर्वत्रैव स्थिराणि च ।
स्थिराणि च पुनः सप्ताक्षराणि प्रतिमन्त्रकम् ॥३६३॥
विभावनीयानि शिवे वक्ष्यमाणानि ते मया ।
स्युर्गुह्यकाली देव्यम्बेत्यक्षराणि यथाक्रमम् ॥३६४॥

कूटद्वयं पुनर्ज्ञेयं प्रतिमन्त्रं स्थिरं ततः ।
ततो नु बीजत्रितयं भिन्नं भिन्नं वरानने ॥३६५॥
मम शत्रून् संहरतु इत्यष्टाक्षरमुज्ज्वलम् ।
ततः स्थिरतरं ज्ञेयं मन्त्रे मन्त्रे यथोदितम् ॥३६६॥
पुनश्च पञ्च बीजानि स्थेयांसि कथितानि ते ।
हृन्मन्त्रश्च शिरोमन्त्रः सर्वत्रैव स्थिरो मतः ॥३६७॥
संहारनाम्नो न्यासस्य इत्युद्धारो मयोदितः ।
सामान्यतो विशेषेण पुनर्देव्यवधारय ॥३६८॥

[संहारन्यासस्य विशेषोद्धारः]

भौवनेशी योगिनी च कूर्चो रामा च शाकिनी ।
एतानि पञ्च बीजानि स्थिराण्याद्यानि सर्वतः ॥३६९॥
अथ शब्दान् पृथग्रूपानेतस्यानु ब्रुवे तव ।
आदौ प्रकाशस्तदनु महाप्रलय उच्यते ॥३७०॥
वाडवोऽप्यथ षट्चक्रभेदश्चाथ प्रमाणतः ।
तपो विद्या च दहना गायत्रीजप एव च ॥३७१॥
[1]लक्ष्मीस्ततश्च परमात्मविचारोऽपि भेषजम् ।
तस्यानु तत्त्वजिज्ञासा शान्तिर्होमस्तथैव च ॥३७२॥
सत्यं सदाचार इति निगमः काल एव च ।
प्रणवावर्त्तनप्राणायामो जलमथापि च ॥३७३॥
जाठरः पावकश्चैव सन्तोषो वेद एव च ।
त्रिः प्रतिसञ्चरत्येवं तितिक्षा क्रूर एव च ॥३७४॥
निदाघमोहावध्यात्मचिन्तनं तदनन्तरम् ।
सर्वशेषे परिज्ञेया उग्रचण्डा सुरेश्वरि ॥३७५॥
एभिः पदैस्तु सततं रूपेणेत्यस्य विग्रहः ।
अतः संहारकर्त्रीतिपदपूर्वपदं शृणु ॥३७६॥
तमो ब्रह्माण्डसप्ताब्धिभवबन्धभ्रमाः क्रमात् ।
दुरितं च तथाऽज्ञानं तृणदारु ततः परम् ॥३७७॥

---

१. इतः पञ्च पंक्तयः ग पुस्तके न सन्ति ।

ततो नु देवि सकलपातकं दैन्यमेव च ।
मायाव्याधिरथाधिश्च त्रिविधोत्पात एव च ॥३७८॥
ग्रहदोषश्च मिथ्या च तथैवाधर्मसंशयौ ।
सर्वंश्च जन्ममृत्यू च ह्यग्निराहार एव च ॥३७९॥
लोभस्तथैवं पाषण्डभूतसर्गषड्रूमंयः ।
मृदुर्हिमं च संवित्तिर्वासना तदनन्तरम् ॥३८०॥
सर्वशेषे परिज्ञेयः सुरेशि सकलासुर ।
इत्युभावपि द्वात्रिंशत्संख्यकौ परिकीर्तितौ ॥३८१॥
अपरस्य तु संहारकर्त्र्याः सार्द्धं तु विग्रहः ।
स्थिरसप्ताक्षरादूर्ध्वं कूटयुग्मं यदीरितम् ॥३८२॥
तत् सत्त्वकूटं संहारकूटं ज्ञेयं हि साधकैः ।
त्रित्रिबीजानि भिन्नानि प्रतिमन्त्रमथो शृणु ॥३८३॥
स्युः पाशाङ्कुशभैरव्यो लक्ष्मीगारुडमन्मथाः ।
देयास्ततश्चण्डविश्वकौणप्यः परमेश्वरि ॥३८४॥
बलिः पृथुर्नदश्चापि संदर्शनमतः परम् ।
यौक्तिकं मञ्जरी चापि ततोऽप्यनु विवर्तकः ॥३८५॥
पारीन्द्रश्च शुभंयुश्च धिकलः स्यात् ततः परम् ।
विजम्भश्च तथोत्तानः कराटी वात्यया युता ॥३८६॥
वारी चेति ततो मेधी कृषिर्हाकिन्यपि प्रिये ।
कुलिकप्रेतखेचर्यो भारुण्डायक्षकाकिनीः ॥३८७॥
महाक्रमनृसिंहाश्च वज्र्यादेशच्छटा अपि ।
मन्दारसिन्धुमाहेन्द्रा अक्षा मौञ्ज्यादियुग्मकम् ॥३८८॥
जम्भः षडङ्गककुदौ भूतिन्यादित्रयं ततः ।
कुण्डो गर्भश्च दीपश्च कर्णिकाहारशृङ्खलाः ॥३८९॥
सृष्टिस्त्रेता च कृत्या च भुशुण्डी गदया युता ।
प्रासश्च मन्दसंमोहौ संहारस्तदनन्तरम् ॥३९०॥
अनयः कुञ्चिका कण्ठीरवो ज्ञेयस्ततः परम् ।
नाराचोऽप्यर्धचन्द्रश्च क्षुरप्रस्तदनन्तरम् ॥३९१॥

गायत्र्यौपह्वरश्चैव नान्दिकं स्यात् ततः परम् ।
तन्द्रा च कुटिला चैव रञ्जिन्यस्यानु पठ्यते ॥३९२॥
मणिमाला ह्लारिणी च तथैवोत्कोचिनी मता ।
कुशिकश्च व्ययश्चापि चर्पटं तदनु प्रिये ॥३९३॥
शेखरश्च विमर्दश्च पश्चादेतस्य दुष्कृतम् ।
संहारी व्यजनं चाथ विधृतिः क्रमशस्त्रयः ॥३९४॥
अपरान्तस्ततश्चैव प्रकरीबिन्दुकौ मतौ ।
सौमतं च प्रतानं च विदिक् तदनु कथ्यते ॥३९५॥
इति वै त्रित्रिबीजानां संघातः कथितो मया ।
द्वात्रिंशत्संख्यको देवि पुनर्बीजानि मे शृणु ॥३९६॥
स्थिराष्टाक्षरतः पश्चाच्छाकिनी च वधूरपि ।
कूर्चश्च योगिनी माया चेति बीजानि पञ्च वै ॥३९७॥
यान्यस्यैवादिभूतानि बीजानि कथितानि ते ।
तान्येव देवदेवेशि संहारक्रमतः खलु ॥३९८॥

[संहारन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अधुना कलय स्थानं न्यासस्यास्य प्रयत्नतः ।
प्रपदं च तथा गुल्फः पार्ष्णिजानू तथैव च ॥३९९॥
वंक्षणश्च कटिः स्फिक् च कुक्षिः पार्श्वं च चूचुकम् ।
अंसो जत्रु च कक्षश्च कफोणिर्मणिबन्धकः ॥४००॥
कराङ्गुल्यस्तदग्रं च प्रगण्डो नासयान्विता [तः?] ।
ओष्ठोऽधरश्च दन्तश्च कपोलो गण्ड एव च ॥४०१॥
हनुः सृक्कं च कर्णश्च भ्रूः शङ्खः शिर एव च ।
ब्रह्मरन्ध्रं व्यापकं च सर्वं तदिति वर्णितम् ॥४०२॥
न्यासस्यैतस्य सर्वोऽपि विस्तरः प्रतिपादितः ।
एतेनैव तु न्यासेन तृतीयं पञ्चकं गतम् ॥४०३॥

[संहारन्यासस्य फलश्रुतिः]

नैमित्तिकत्वे कौलानां काम्यत्वे गृहधर्मिणाम् ।
नित्यत्वे यतिधर्माणां न्यास एष व्यवस्थितः ॥४०४॥

नित्यो भवतु काम्यो वाऽप्यथ नैमित्तिकोऽपि वा ।
फलातिरेककामैस्तु कर्तव्यः प्रत्यहं प्रिये ॥४०५॥
विद्यार्थिभिर्न्यास एष कर्तव्यः किन्तु यत्नतः ।
पाठशून्यापि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत् ॥४०६॥
चतुर्थं पञ्चकमतः शृणु देवि समीहिता ।

[अनाख्यान्यासोद्देशः]

यस्यादिभूतः कथितोऽनाख्यान्यासः शुभावहः ॥४०७॥

[अनाख्यान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अनाख्याख्यस्य चैतस्य ऋषिः कपिल इष्यते ।
छन्दोऽतिशक्वरी ज्ञेया देवता गुह्यकालिका ॥४०८॥
बीजं शाम्भवकूटं हि शक्तिर्महेश्वराह्वयम् ।
कीलकं चास्य कथितं कूटमीशाननामकम् ॥४०९॥
विनियोगस्तु कैवल्यपदप्राप्त्यै वरानने ।

[अनाख्यान्यासस्य सामान्योद्धारः]

आदौ सामान्यमुद्धारं वक्ष्ये पश्चाद् विशेषतः ॥४१०॥
सर्वेषामेव मन्त्राणामादौ बीजानि पञ्च वै ।
भिन्नभिन्नानि तानीह कथितानि मनुं प्रति ॥४११॥
ततो नु नामानि पृथक् पृथक् सर्वमनौ शिवे ।
ङेऽन्तानि तानि सर्वाणि प्रोक्तानि प्रतिमन्त्रकम् ॥४१२॥
ततोऽप्यनाख्यारूपेति स्थिरमक्षरपञ्चकम् ।
सर्वेष्वपि हि मन्त्रेषु विज्ञातव्यं विचक्षणैः ॥४१३॥
पुनर्बीजत्रयं भिन्नं भिन्नं प्रतिमनु प्रिये ।
वर्णास्त्रयोदश ततः सर्वमन्त्रे स्थिरा मताः ॥४१४॥
तानि तु प्रेयसि चराचरे जगति चेत्यपि ।
स्वशक्तिसहिता चेति स्थैर्यभाञ्ज्युदितानि ते ॥४१५॥
पुनः कूटत्रयं सर्वमन्त्रेषु च पृथक् पृथक् ।
अष्टौ वर्णास्ततो देवि सर्वत्रैव स्थिरा मताः ॥४१६॥

परमात्मन्नि चेत्यस्माद्विलीयेऽष्टाक्षराद्यदः ।
ततस्तारः स्थिरः सोऽपि ततो हृन्मनुरुच्यते ॥४१७॥
तस्यान्तेऽपि शिरो मन्त्रः स चायं च स्थिरो मतः ।
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमधुना शृणु ॥४१८॥

[अनाख्यान्यासस्य विशेषोद्धारः]

सारस्वतत्रपालक्ष्मीकामवध्वः क्रमादिमाः ।
पाशकूर्चक्षेत्रपालहयग्रीवमहारुषः ॥४१९॥
संहिता [1]हाकिनी ध्यानचञ्चूविधय एव च ।
गौरंशुशुक्लौ राका च मेषर्स्तदनु कथ्यते ॥४२०॥
साक्षी पंक्तिर्योगकलौ मुकुलोऽपि ततः स्मृतः ।
विलासः संग्रहो घाटी भावातीतौ ततोऽपि च ॥४२१॥
कुम्भामृतावेशसोमकिन्नरास्तदनन्तरम् ।
मालानीले च कुलिकं प्रेतो भैरव्यथापि च ॥४२२॥
रौद्रानन्दौ च नागश्च भारुण्डां काकिनी तथा ।
त्वष्टा दस्रश्च शक्तिश्च नक्षत्रं विद्युदेव च ॥४२३॥
कर्ता सारङ्गखट्वाङ्गौ हलस्तदनु च क्रिया[2] ।
इष्विव्रते च निर्मोकवेतण्डधनदा अपि ॥४२४॥
कङ्कालं मानसं शान्तिरुग्रं डामरमेव च ।
नेमिश्चण्डश्च विश्वं च कुमारी फैरवादिमा ॥४२५॥
भोगः सृष्टिश्च फेत्कारी त्रेता कृत्या तथैव च ।
सान्वक्षमौञ्जीसूत्राणि रेचकः स्यात् ततः परम् ॥४२६॥
रङ्कताटङ्कलीलाश्च धेनुर्मारिषमेव च ।
ततः सन्धानसिञ्जिन्यौ लिङ्गनैमयसिन्धुराः ॥४२७॥
भ्रामरी च प्रचण्डा च डाकिन्यपि ततः परम् ।
केकराक्षी कालरात्रिरूनविंशति [त ?]मा मता ॥४२८॥

---

१. डाकिनी क. काकिनी ग ।
२. विक्रिया ग ।

सुरसः समरश्चैव रागः सारस एव च ।
त्रिपुरा च ततो ज्ञेया ततः कौलशिलं मतम् ॥४२९॥
मधुपर्कस्ततश्चापि त्रिदैवतमनूद्यते ।
त्रयीमयं त्रिदेवं च गायत्रीकर्णिके ततः ॥४३०॥
शृङ्खलौपह्वरे चापि नान्दिकं तदनु स्मृतम् ।
ततश्च भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥४३१॥
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ।
संहारिबीजं तदनु नादान्तक इतः परम् ॥४३२॥
चामरव्यजने उक्त्वा विधृतिः परिपठ्यते ।
औपदेयं च मारण्डविनादौ तदनन्तरम् ॥४३३॥
विमर्दशेखरौ चापि मौलिञ्जः सविरूपकः ।
अपरान्तश्च प्रकरीबिन्दुकौ तदनन्तरम् ॥४३४॥
विरसं दाक्षिकं चापि सौमतं सप्रतानकम् ।
विदिक् [च ?] चर्पटं चापि मणिमाला च हारिणी ॥४३५॥
उत्कोचिनी च कौलुञ्चं निस्तनः सविराधकः ।
तुरीयाग्रावपथ्ये च ततश्चापि मनोजवा ॥४३६॥
मोदकं वासितौजस्विशफानि तदनन्तरम् ।
शक्तिसर्वस्वमुल्लिख्य परापरमुदीरयेत् ॥४३७॥
शाम्भवं चापि चिच्छक्तिस्ततः सायुज्यमित्यपि ।
इति द्वात्रिंशदुदिता बीजपंक्तिर्वरानने ॥४३८॥
ङेऽन्तया तु विभक्त्या वै शब्दा ये संवृताः खलु ।
व्याहराम्यधुना तांस्तु यैस्तु व्यक्तिर्भविष्यति ॥४३९॥
परमाणुरथाग्निश्च चक्षुः स्यात् तदनन्तरम् ।
ततो लिङ्गशरीरं च परमात्मा तथैव च ॥४४०॥
[1]विश्वप्रपञ्चश्चाज्ञानमिन्द्रजालमतः परम् ।
[2]निराकारमथाभ्यासः समीरो व्यक्तिरेव च ॥४४१॥

---

१. विष्वक् प्रपञ्चश्चाज्ञानं ङ ।

२. इतश्चतस्रः पंक्तयः क पुस्तके न सन्ति ।

आम्नायंश्चाध्वरो बीजाङ्कुरो[1] कलिलमेव च ।
क्षीराहारौ च तेजश्च द्रवद्रव्यं तथैव च ॥४४२॥
होमः प्रपञ्चो मेधादिर्मादकादिस्ततः परम् ।
मयूखश्च क्रियादिश्च ततः सत्त्वगुणो मतः ॥४४३॥
रजोगुणस्ततो ज्ञेयस्तमोगुण इतः परम् ।
ततो जन्यपदार्थश्च पुनराकाशमुच्यते ॥४४४॥
सर्वत्रेति पदं सर्वं शेषे तु विनियोजयेत् ।
इति द्वात्रिंशसंख्याकाः शब्दास्तव मयोदिताः ॥४४५॥
अनाख्येति च शब्दस्य शब्दान् पूर्वस्थितान् शृणु ।
अनाख्यारूपशब्दस्य यैः समासः सुरेश्वरि ॥४४६॥
आदौ ह्यवयवं शैत्यं दर्शनं भोग एव च ।
चैतन्यं च ततो ज्ञेयमतीन्द्रियमपीश्वरि ॥४४७॥
अध्यासश्च[2] प्रतीतिश्च ततोऽसंभावनापि च ।
आनन्दमय इत्येवं धारणा जातिरेव च ॥४४८॥
प्रामाण्यमप्यपूर्वं च रसादिस्तदनन्तरम् ।
विश्वोत्पत्तिर्हरिश्चैव द्वयं तदनु कथ्यते ॥४४९॥
बलादिपरिपाकश्च ह्युष्णता क्लिन्नता तथा ।
विश्वोत्पत्तिस्तथाविर्भावतिरोभाव एव च ॥४५०॥
तथावरकविक्षेपौ तत उन्नमनं मतम् ।
विभागः पालनं सृष्टिः संहारो ध्वंस एव च ॥४५१॥
शून्यता सर्वशेषे तु तत्तद्रूपं सुरेश्वरि ।
अनाख्याशब्दपूर्वस्थपदानि कथितानि ते ॥४५२॥
अथ वीजत्रयं देवि क्रमतो ह्यवधारय ।
उल्लोप्यं विस्मृतिः[3] पाणिगीतिश्चेत्यङ्कुरत्रयम् ॥४५३॥
ततो गुह्यकपाटश्च संसृष्टिः सविकोशकः ।
सम्पूर्णा भस्मसंकल्पा विधानं संविधानकम् ॥४५४॥

---

१. वीजाङ्कुरं घ ।
२. अध्यात्मं च क ।
३. निघृणिः ख ।

कलहश्च ततः संदर्शनं यौक्तिकमञ्जरी ।
विवर्तकश्च पारीन्द्रः शुभंयुस्तदनन्तरम् ॥४५५॥
विक्रमश्चापि संक्रान्तिः कुलमुद्रा तथैव च ।
संव्यानं[1] संबलं चापि धम्मिल्लस्तदनु स्मृतः ॥४५६॥
ततो विनिमयः सञ्जीवनी च सविपक्षका ।
अथ संभावसंयोगौ वियोगश्चापि कथ्यते ॥४५७॥
चाक्रिको विक्रियश्चापि सालङ्कस्तदनन्तरम् ।
विवृत्तमथ संगूढं वैधानं स्यात् ततः परम् ॥४५८॥
आतङ्कादित्रयं पश्चात् पारावारौ सहेतुकौ ।
जूटं शापश्च शपथ एषणा चञ्चलान्तका ॥४५९॥
[2]पृश्निक्षुद्रौ ततो ज्ञेयौ सर्वनाडी[3] सुरार्चिते ।
अरज्ञोदारपिनाकाश्च क्षुधासन्तानमोक्षकाः ॥४६०॥
नन्दाजटावैमलाश्च पिञ्जला च चिता ध्वजः ।
अलक्ष्यमक्षरं चापि महोदय इतः परम् ॥४६१॥
चरमो गूढकीलौ च भावशौण्डिककौलिकाः ।
पंक्तियोगोत्तमाः पश्चात् स्थावरो [4]जङ्गलग्लहौ ॥४६२॥
प्रादेशविघ्नस्वात्यश्च गुणमूले च वारुणी ।
[5]अघं दिष्टस्तथा व्याडो महिमा यत्नजालयुक् ॥४६३॥
वीथीपणौषराश्चापि भवेदेकावली ततः ।
ततो नु वज्रकवचं तथा ब्रह्मकपालकम् ॥४६४॥
सर्वशेषे सान्तपनं जगदावृत्तिरेव च ।
महाकल्पस्थायिबीजं ततोऽपि परमेश्वरि ॥४६५॥
इत्थं सर्वेषु मन्त्रेषु त्रित्रिबीजं क्रमेण हि ।
सावधानतया देयं कूटानि शृण्वतः परम् ॥४६६॥

---

१. सन्धानं ख ग घ । २. पृश्नि छिद्रौ क ।
३. सवनादी ङ । ४. सगल ग्रहौ ख ग ।
५. अघंदृष्ट क ।

बीजवत्त्रित्रिकूटानि प्रदातव्यान्यनुक्रमात् ।
शाम्भवेशानलिङ्गानि कूटानि प्रथमानि हि ॥४६७॥
वैहायसं वायवीयं हंसकूटं ततः परम् ।
प्रासादाचलमन्दारकूटानि तदनन्तरम् ॥४६८॥
स्वस्तिकोदयगन्धर्वकूटानि स्युरतः परम् ।
ततः पाशुपतं कूटं कूटं माहेश्वरं तथा ॥४६९॥
ततः कूटं तत्पुरुषसंज्ञकं समुदीरितम् ।
त्रैपुरं शाङ्करं वापि रोदसीकूटमेव च ॥४७०॥
वामदेवाघोरसद्योजातकूटान्यतः परम् ।
आग्नेयं नारसिंहं च वाराहं कूटमन्वतः ॥४७१॥
धराकूटं याम्यकूटं गौह्यकं कूटमेव च ।
रौद्रं मृत्युञ्जयं कूटं कूटं श्रीकण्ठसंज्ञकम् ॥४७२॥
पदक्रमजटाकूटान्यतः परमुदीरयेत् ।
मालाकूटं दृष्टिकूटं डाकिनीकूटमेव च ॥४७३॥
मन्दरेखापौर्णकामकूटानि तदनन्तरम् ।
सिद्धिकूटं शक्तिकूटं कूटं पैशाचनामकम् ॥४७४॥
सृष्टिः स्थितिश्च संहारकूटानीमान्यतः परम् ।
अनाख्या भासया सार्द्धं कूटं वासवमेव च ॥४७५॥
सत्त्वं रजस्तम इति कूटान्यस्यानु पार्वति ।
मन्थानमालात्रिजटाकूटान्येतस्य निश्चितम् ॥४७६॥
किञ्जल्ककुलनीलानि कूटान्येतस्य पश्चिमे ।
त्रिकूटमेरुकैलासाः कूटाः स्युस्तदनन्तरम् ॥४७७॥
सेतुकूटं मन्त्रकूटं कूटं सामयिकं तथा ।
मूलाधारः पुष्करं च कूटं हैरण्यगर्भकम् ॥४७८॥
विशुद्धानाहताज्ञाख्याः कूटाः स्युर्देव्यतः परम् ।
स्वाधिष्ठानं कुण्डलिनी मणिपूरकमेव च ॥४७९॥
प्राजापत्योग्रबृहतः पुनः कूटाः भवन्ति हि ।
ऋग्यजुःसामकूटानि तदनन्तरमीश्वरि ॥४८०॥

ज्ञानमैश्वर्यकूटं च वैराग्यं कूटमेव च ।
ततः कूटाः पुनर्ज्ञेयाः शुद्धाविद्यामहोदयाः ॥४८१॥
बुद्ध्यहङ्कारचित्तानि कूटानीतः परं प्रिये ।
वासिष्ठं कापिलं कूटं गुह्याकूटं ततः परम् ॥४८२॥
धौमावत्यं तथा ज्योतिर्मयं चाङ्गिरसं तथा ।
प्रबोधाशयचैतन्यकूटानि तदनन्तरम् ॥४८३॥
द्वात्रिंशत् संख्यका पंक्तिरित्थं भवति भामिनि ।
एवं विशेषः कथितो ह्यनाख्यान्यास ईश्वरि ॥४८४॥

[अनाख्यान्यासस्य फलश्रुतिः]

कर्तव्यता पूर्वमुक्ता काम्यत्वे नित्यतासु च ।
नैमित्तिकत्वेऽपि तथा रीतिः प्रोक्ता पुरैव हि ॥४८५॥
अनाख्यासदृशो न्यासो न भूतो न भविष्यति ।
ज्ञात्वेत्थं चेतसि शिवे यथेच्छसि तथा कुरु ॥४८६॥
किमन्यैर्न्यासविस्तारैरनाख्यां कुर्वतोऽन्वहम् ।
अकुर्वतो न्यासमेनं किमन्यैर्न्यासविस्तरैः ॥४८७॥

[भासान्यासोद्देशः]

भासान्यासमिदानीं त्वं मत्तः कलय सादरा ।
अनाख्यान्यासतोऽप्येष गूढः सर्वागमेष्वपि ॥४८८॥
स्थितिसंहारकौ न्यासौ जाग्रत्स्वप्नसमौ मतौ ।
सुषुप्तितुल्योऽनाख्याख्यः समा भासा तुरीयया ॥४८९॥
यथा तुरीयया नैव संसारे पुनरागमः ।
भासामभ्यस्यतस्तद्वन्न भवेद् भवबन्धनम् ॥४९०॥
कदाचित् पुनरावृत्तिः संसारे स्यादनाख्यया ।
भासया न परार्द्धानां कोटिभिः संसृतौ जनुः ॥४९१॥
इति सामान्यतो ह्यस्य फलं समुपवर्णितम् ।
विशेषतः पुनर्वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ॥४९२॥
मुमुक्षूणामियं नित्याऽन्येषां काम्या निगद्यते ।
नैमित्तिकतया नैषा कदाप्युक्ता विचक्षणैः ॥४९३॥

[भासान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

एतस्य भासान्यासस्य सदाशिव ऋषिर्मतः ।
छन्दो बृहत्यप्युदिता देवता गुह्यकालिका ॥४९४॥
प्रणवो बीजमुदितं वाग्भवः शक्तिरुच्यते ।
शाकिनी कीलकं चापि डाकिनी तत्त्वमेव च ॥४९५॥
विनियोगस्तु कैवल्यलब्धये परिकीर्तितः ।

[भासान्यासस्य सामान्योद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं पुरतः कथयामि ते ॥४९६॥
विशेषं तु पुनर्वक्ष्ये येन व्यक्तिर्भविष्यति ।
नव बीजानि पुरतः प्रतिमन्त्रं स्थिराणि च ॥४९७॥
ततो नामानि भिन्नानि भिन्नानि कथितानि हि ।
तैः शक्तिशब्दस्य शिवे कर्तव्यो विग्रहः सदा ॥४९८॥
स पुनर्ङिविभक्त्यन्तः कर्तव्यः सर्वदैव हि ।
पूर्वशब्दोऽस्थिरो ज्ञेयः स्थेयानप्युत्तरस्तथा ॥४९९॥
भासाकारेति वर्णानि चत्वारि प्रतिमन्त्रकम् ।
स्थिराण्युक्तानि देवेशि ततः शब्दाः पृथक् पृथक् ॥५००॥
सर्वेषु मनुषु ज्ञेया सप्तम्यन्ता सुरेश्वरि ।
निराभासेति तत् पश्चात् सुस्थिरा चतुरक्षरी ॥५०१॥
ततो नु पञ्चबीजानि सर्वत्रागन्तुकानि हि ।
ज्ञानविज्ञानरूपेति ततोऽनन्तरमीश्वरि ॥५०२॥
सप्तवर्णाः स्थिराः प्रोक्ता निखिलेषु मनुष्वपि ।
पुनः सर्वत्र बीजानि ततस्त्रीणि चलानि हि ॥५०३॥
ततो भगवती गुह्यकालीत्यष्टाक्षरं स्थिरम् ।
सर्वमन्त्रेषु विज्ञेयं कूटमेकं ततश्चलम् ॥५०४॥
सर्वत्रैव परिज्ञेयं विशेषेण चलं स्थिरम् ।
वर्णाः सप्तैव मयि लीयतां स्वाहेति पार्वति ॥५०५॥
प्रतिमन्त्रं सर्वशेषे स्थिरा ज्ञेया तु साधकैः ।
इति सामान्य उद्धारो भासान्यासस्य कीर्तितः ॥५०६॥

[भासान्यासस्य विशेषोद्धारः]

अथ वक्ष्ये विशेषेण स्फुटस्तेन भविष्यति ।
प्रणवः शाकिनी माया डाकिनी योगिनी तथा ॥५०७॥
प्रलयश्च वधूश्चैव फेत्कारी तार एव च ।
एतानि नव बीजानि स्थिराण्युक्तानि ते मया ॥५०८॥
शृण्वतः शक्तिशब्दस्य पूर्वस्थानि पदानि हि ।
ज्ञानमिच्छाक्रियाश्रद्धाधृतिर्मेधाऽणिमा तथा ॥५०९॥
माया प्रभा विशुद्धिश्च ऋद्धिर्नित्या स्मृतिस्ततः ।
प्रज्ञा प्रीतिश्च नीतिश्च कूटस्थं चेतनाऽपि च ॥५१०॥
सत्यं शान्तिस्तथोत्साहः स्नेहः परिमितिस्तथा ।
ततः संयोगसंस्कारौ विवेकः प्रमितिः पुनः ॥५११॥
योगश्च सुखदुःखं च प्रलयः साक्ष्यथोदितः ।
उपाधिः सर्वशेषे स्यात् शक्तेः पूर्वस्थिता इमे ॥५१२॥
शब्दान् भिन्नानथो वच्मि भासाकारा पदादनु ।
भ्रमश्च संयमश्चैव वितर्कस्तदनन्तरम् ॥५१३॥
जुगुप्सा पतनं जाड्यं महद्बन्धनमेव च ।
तिमिरं ह्यध्वरं चापि स्यादकिञ्चनमन्वतः ॥५१४॥
नश्वरं तदनु ज्ञेयं ततो विस्मरणं पुनः ।
अबोधश्च तथा द्वेषो हर्षो[1] जन्यं ततः परम् ॥५१५॥
मोहोऽलीकं च लोभश्च तदनन्तरमुच्यते ।
ततोऽनध्यवसायोऽपि [2]कक्ष्योऽमूर्तो वियोगयुक् ॥५१६॥
तथैवानुपलब्धिश्च ततोऽहङ्कारमेव च ।
आशयश्च च्युतिश्चैव धर्माधर्मस्ततोऽप्यनु ॥५१७॥
असंभावित इत्येवं तदनन्तरमुच्यते ।
अदृष्टमथ कैवल्यं सर्वशेषे प्रकीर्तितम् ॥५१८॥

---

१. हठो ङ। २. रूक्ष्यं ङ.।

द्वात्रिंशदिति शब्दाः स्युः भासाकूटात् पदात् पुरा ।
पञ्च पञ्चाथ बीजानि भिन्नान्याकर्णय प्रिये ॥५१९॥
प्रणवो वाग्भवः पाशः कला [1]सर्वस्ततः परम् ।
लक्ष्मीमायाकामसृणिगारुडास्तदनन्तरम् ॥५२०॥
रावश्छन्दश्चण्डविश्वौ कौणपी तदनन्तरम् ।
रम्भावती च भूतश्च किन्नरक्षेत्रपालकौ ॥५२१॥
कालीहयग्रीवधर्मजयागौर्यस्ततः परम् ।
विचित्रं धन्यमुल्लोप्यं विस्मृतिः पाणिगीतियुक् ॥५२२॥
लक्ष्मबीजं विक्रमश्च संक्रमस्तदनन्तरम् ।
कुलमुद्रा चक्रतुम्बी तदनु प्रतिकथ्यते ॥५२३॥
[2]मोचिनी चापि लाङ्गूलं वर्द्धमानं तथैव च ।
वेत्रमाषाढमस्यानु खड्गः बुद्धिः क्षमा प्रिये ॥५२४॥
माला नीलं च धूमश्च जयन्ती ललितं तथा ।
ततोऽरुणा निवृत्तिश्च कबन्धक्रकचौ ततः ॥५२५॥
अरिष्टं च श्मशानं च शवः पश्चान्निगद्यते ।
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिः फेत्कार्यपि प्रिये ॥५२६॥
त्रेता कोशश्च कृत्या च कराली तर्जनी तथा ।
कटंकटा ततो मुक्ता द्रावणानन्दखेचरी ॥५२७॥
धृतिः कल्पो महा चैव क्रमश्च धनदा तपः ।
वेणुसान्वक्षमोञ्जीकसूत्राणि तदनन्तरम् ॥५२८॥
कोटिघण्टा पिञ्जला च चिता ध्वज इति क्रमात् ।
मन्त्रावली च भारुण्डा तन्त्रवर्णौ च सम्पुटः ॥५२९॥
ईहा क्षुधा च सन्तानो मोक्षो निर्वाण एव च ।
डमरुश्चैव नाराचः शूलं तदनु कीर्त्यते ॥५३०॥
अर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च ध्यानं चञ्चुविधी अपि ।
संहिता हाकिनी चापि तदनन्तरमीर्यते ॥५३१॥

---

१. शर्वः ङ २. मोदिनी ख घ ।

ततोऽनुदात्तस्वरिते रत्नोदात्ते सनिष्कले ।
नाभसं लघुरर्चा च नायकोऽप्यद्वयं ततः ॥५३२॥
कलावती च सर्वस्वं विप्रियं तदनन्तरम् ।
सन्तानमथ वैकक्षं तथेशः [1]पारमेव च ॥५३३॥
अवारयूपौ हेतुश्च सम्प्रदायश्च भाजनम् ।
प्रश्नापायनिकाराश्च कृत्तिग्राहग्रहा अपि ॥५३४॥
तपनो वर्द्धनी चापि रजा च करका तथा ।
उलूकं लम्बिका चापि गुरुः शेपे सुरेश्वरि ॥५३५॥
रयिरुद्धिस्तथा [2]प्रायस्तीर्थं वाटी तथैव च ।
सन्ध्या वर्ष्म वितानं च किञ्जल्कं तिथिरेव च ॥५३६॥
वीथी पणश्च करणं चतुष्पथमथोषरः ।
पूत्यण्डकुञ्चिकाबालरण्डाकामकलाः क्रमात् ॥५३७॥
उरंकः सर्वशेषे च द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।
सप्ताक्षरादनु प्रोक्ता या तु बीजत्रयी पुनः ॥५३८॥
साऽधुना कथ्यते देवि श्रूयतां सावधानया ।
मेखलाकुण्डगर्भाश्च मन्दसम्मोहसंहृतीः ॥५३९॥
सावित्रीशङ्कुयाम्याश्च मूर्वलातूणसैन्धुराः ।
वीरवेतालभौवाः स्युस्तन्द्रा कुटिलरञ्जिनी ॥५४०॥
सुरसः समरो रागस्ताटङ्कं लीलया सह ।
धेनुश्च शृङ्खला कर्णिकया ह्यौपह्वरं तथा ॥५४१॥
ततश्च [3]पद्मकुशिकौ दुष्कृताद्यौ सुरेश्वरि ।
संभूतिश्चतुरस्रं च त्र्यस्रं पश्चान्निगद्यते ॥५४२॥
चर्पटं मणिमाला च हारिण्यपि ततः परम् ।
नादान्तकश्चामरं च व्यजनं तदनूद्यते ॥५४३॥
कौलुञ्चं विजया चैव श्रीकण्ठस्तदनन्तरम् ।
मारण्डश्च विनादश्च विमर्दं इति कथ्यते ॥५४४॥

---

१. पाल ङ । २. द्वाप: ङ ।
३. कुशिकौ क घ ङ ।

विरूपोऽप्यपरान्तश्च प्रकरी तदनन्तरम् ।
दाक्षिकं सौमतं चापि प्रतानमथ कथ्यते ॥५४५॥

त्रित्यो वृषश्च पुष्टिश्च शिक्षा सत्यपि वै मधु ।
पौष्पं निर्मलमुल्लिख्य कुलं तदनु कथ्यते ॥५४६॥

प्रभा च सुप्रभा चैव विशुद्धिः स्यात्ततः परम् ।
ऋद्धिर्विभूतिर्दीप्ता च नन्दा चाथ जटा हिमम् ॥५४७॥

काकिन्यथो नेमिच्छन्दौ भारुण्डातन्त्रवर्णकाः ।
ततः कापालगोकर्णसुरभ्यः परमेश्वरि ॥५४८॥

कुम्भकश्च महाक्रोधो रेचकः परिकीर्तितः ।
टङ्कन्यासर्पभाः कुन्तसारिधौ ऋष्टिरित्यपि ॥५४९॥

कर्त्रिसारङ्गखट्वाङ्गशिखाः प्राग्भव एव च ।
कल्याणं भूर्जम्बुकश्च नाकोऽपि तदनन्तरम् ॥५५०॥

तर्जनं साकलं स्यातामुल्लोलश्च निगद्यते ।
इति त्रिबीजनिश्रेणी क्रमेण कथिता मया ॥५५१॥

अथैककूटविस्तारं वर्णयामि सुरेश्वरि ।
वैराग्यकूटं प्रथमं ततोऽविद्याभिधेयकम् ॥५५२॥

उपाधिकूटमद्वैतकूटं तन्मात्रकूटकम् ।
तन्मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि च सुरेश्वरि ॥५५३॥

योगभूम्याह्वयं कूटं कूटमिन्द्रियनामकम् ।
वासनाक्षरकूटे च पारमार्थिकमन्वतः ॥५५४॥

ततः कूटानि प्रमाणप्रत्ययप्रकृतीनि च ।
प्रतिबिम्बं तथा सत्ता निमित्ताभासमेव च ॥५५५॥

जीवात्मबन्धनामानौ ततः कूटावुदाहृतौ ।
नित्यः साक्षी चिद्घनश्च परमात्मा ततः स्मृतः ॥५५६॥

चैतन्यापुनरावृत्ती तथैकात्म्यमपि प्रिये ।
विज्ञानमयमानन्दमयमस्यानु गद्यते ॥५५७॥

द्वात्रिंशदिति कूटानि क्रमेण कथितानि ते ।

[भासान्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अतः परं स्थानमस्य न्यासस्य विनिबोध मे ॥५५२॥
शिरस्तालु च कण्ठश्च शङ्खः कूर्चश्च नासिका ।
गण्डो जत्रु हनुश्चापि स्कन्धः कक्षो हृदेव च ॥५५६
जठरं नाभिवस्ती च गुदं मेहनमेव च ।
वंक्षणश्चाप्यथोरुश्च जानु जङ्घा तथैव च ॥५६०॥
प्रपदं पार्ष्णिगुल्फौ च पादाङ्गुल्यग्रमेव च ।
पृष्ठं ग्रीवा हस्तयोश्च पादयोर्व्यापकं ततः ॥५६१॥
शेषे सर्वशरीरस्य व्यापकं परिकथ्यते ।
इति स्थानानि भासाख्यन्यासस्य तव वर्णितः ॥५६२॥

[अनाख्यान्यासस्यापि स्थानानीमान्येवेति निर्देशः]

एकत्वादुभयोः पूर्वं नोक्तमस्मान्निगद्यते ।
अनाख्याख्यस्य च शिवे स्थानान्येतानि निश्चितम् ॥५६३॥
इति प्रपञ्चो भासाया यथाज्ञानं मयोदितः ।
पञ्च न्यासानिमान्देवि जानेऽहं नैव चेतरः ॥५६४॥

[मन्त्रन्यासोद्देशः]

मन्त्रन्यासमिदानीं त्वं निशामय समाहिता ।
सर्वे मन्त्रा गुह्यकाल्याः प्रतितिष्ठन्ति यत्र हि ॥५६५॥

[मन्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

महारुद्र ऋषिः प्रोक्तो मन्त्रन्यासस्य पार्वति ।
मध्या छन्दः समाख्यातं गुह्यकाली च देवता ॥५६६॥
बीजं कूटमनाख्याख्यं भासाशक्तिर्निगद्यते ।
हिरण्यगर्भकूटं हि कीलकं परिकीर्तितम् ॥५६७॥
विनियोगो गुह्यकालीप्रीतये समुदाहृतः ।

[मन्त्रन्यासोद्धारः]

एकाक्षरी तु या प्रोक्ता विधात्राराधिता शुभा ॥५६८॥
तया न्यसेच्चरणयोरङ्गुलीमूल ईश्वरि ।
या कामोपासिता ह्युक्ता त्र्यक्षरी बीजबृंहिता ॥५६९॥

तया द्वयोः प्रपदयोर्विन्यसेत् सुसमाहितः ।
त्र्यक्षर्यन्या याऽभिहिता वरुणाराधिता सदा ॥५७०॥
बीजमय्या तया गुल्फयुगले परिविन्यसेत् ।
पावकोपासिता या तु देवी पञ्चाक्षरीरिता ॥५७१॥
पार्ष्णिद्वयेऽपि च तया विन्यसेत् साधकोत्तमः ।
पञ्चबीजमयी या तु कथितादित्युपासिता ॥५७२॥
प्रविन्यसेत् तया जानुयुगले त्रिदशेश्वरि ।
या बीजैः पञ्चभिर्युक्ता षञ्चार्णा शच्युपासिता ॥५७३॥
तया द्वयोर्वंक्षणयोर्विन्यसेत् देशिकाग्रणीः ।
दानवाराधिता या तु महोग्रोग्रा नवाक्षरी ॥५७४॥
तयोर्द्वयोरेव शिवे विन्यसेच्छ्रोणिपिण्डयोः ।
पूजिता मृत्युकालाभ्यामन्या या तु नवाक्षरी ॥५७५॥
तया स्फिग्युगले देवि सिद्धिकामः प्रविन्यसेत् ।
भरताराधिता मूलभूता या षोडशाक्षरी ॥५७६॥
कुक्षिद्वयेऽपि च तया विन्यस्यः सुरवन्दिते ।
वर्णव्यत्ययतो भिन्ना च्यवनोपासिता तु या ॥५७७॥
तयैव पार्ष्णियुगले साधकः परिविन्यसेत् ।
या वर्णपरिवर्त्तेन हारीतोपासितेरिता ॥५७८॥
एतया साधकश्रेष्ठो विन्यसेच्चूचुकद्वये ।
अग्रपश्चाद्भावभिन्ना बीजानां या मयेरिता ॥५७९॥
जाबालोपासिता श्रेष्ठा न्यसेदंसद्वये तया ।
प्रातिलोम्येन बीजानां या दक्षोपासिता मता ॥५८०॥
तयैव त्रिदशेशानि जत्रुणोरुभयोर्न्यसेत् ।
या रामोपासिता सप्तदशी सर्वमनूत्तमा ॥५८१॥
कक्षयोरुभयोरेव तयैव प्रतिविन्यसेत् ।
हिरण्यकशिपूपास्या या ख्याता षोडशाक्षरी ॥५८२॥
तया सर्वमनुज्ञाता कफोणियुगले न्यसेत् ।
ब्रह्मणाराधिता या तु महासप्तदशीरिता ॥५८३॥

साधकस्तु तया न्यस्येदुभयोर्मणिबन्धयोः ।
ततः सप्तदशी या सा वसिष्ठाराधिता मता ॥५८४॥
तया कराङ्गुलीमूलयुगले प्रतिविन्यसेत् ।
विष्णुतत्त्वमिति ख्याता या हि पञ्चाक्षरी शुभा ॥५८५॥
तथैव विन्यसेद् विज्ञः कराङ्गुल्यग्रयोर्द्वयोः ।
अम्बाहृदयमित्येवं प्रसिद्धाष्टाक्षरी हि या ॥५८६॥
तया प्रगण्डयुगले साधकः परिविन्यसेत् ।
या महाषोडशी प्रोक्ता रुद्रेणाराधिता स्वयम् ॥५८७॥
तया नासापुटयुगे देशिकः परिविन्यसेत् ।
विश्वेदेवोपासिता या षोडशार्णा प्रकीर्तिता ॥५८८॥
तथैव मन्त्रविद्देवि विन्यसेदधरोष्ठयोः ।
रावणाराधिता या तु प्रोक्ता सप्तदशी प्रिये ॥५८९॥
ऊर्ध्वाधःस्थितयोर्दन्तयुगयोः परिविन्यसेत् ।
पुनरन्या रावणेज्या [या ?] तु या षट्त्रिंशदक्षरी ॥५९०॥
तया गण्डयुगे न्यस्येदेवमाह पुरद्विषः ।
आराधिताग्निसिद्धाभ्यां याऽष्टपञ्चाशदक्षरी ॥५९१॥
सुधीस्तया न्यसेन्नित्यं कपोलद्वन्द्वमीश्वरि ।
देवैश्च दानवैश्चैव महाराजिकभूमिपैः ॥५९२॥
सप्तर्षिभिस्तथा भोगेच्छुभिरन्यैर्नरामरैः ।
द्विशताधिकसप्ताशीत्यक्षरी या प्रकाशिता ॥५९३॥
भोगविद्येति या ख्याता भुवनेषु च त्रिष्वपि ।
हनुद्वयेऽनया न्यस्येदित्येतस्या विनिश्चयः ॥५९४॥
किन्नरोपासिता या च सुरेश्वरि शताक्षरी ।
तया कर्णयुगे न्यस्येत् सिद्ध्यर्थं साधकोत्तमः ॥५९५॥
षण्णां हि गुह्यमन्त्राणामुपदेशो भवेद् यदि ।
तदाग्रेऽपि प्रकर्तव्यो नो चेदेतदवृध्यपि ॥५९६॥
उपदेशः शाम्भवे वा महान् शाम्भव एव वा ।
तुरीयायामथ महातुरीयायां सुरेश्वरि ॥५९७॥

निर्वाणे वाप्यथ महानिर्वाणेऽपि भवेद् यदि ।
तदा कर्तव्यतां वच्मि सावधानावधारय ॥५९८॥
शाम्भवेन नवार्णेन लोचने विन्यसेत् सुधीः ।
उद्धृतो यो मया पूर्वं महाशाम्भवनामकः ॥५९९॥
तेन मन्त्रेण देवेशि कूर्चस्थानं प्रविन्यसेत् ।
तृतीया या तु निःश्रेणी तुरीयाख्या पुरोदिता ॥६००॥
साधको मोक्षकामस्तु ललाटं विन्यसेत् तया ।
महातुरीयामन्त्रेण कैवल्यपददायिना ॥६०१॥
शिरो न्यसेत् सुरेशानि संन्यासी वाथ भूपतिः ।
मन्त्रेण निर्वाणाख्येन महागुप्ततरेण हि ॥६०२॥
ब्रह्मरन्ध्रं न्यसेद्देवि केवलं मोक्षवाञ्छया ।
सर्वशेषे यदुक्तं ते महानिर्वाणनामकम् ॥६०३॥
तेन सर्वस्य देहस्य व्यापकं विन्यसेत् सुधीः ।
इति मन्त्रन्यास उक्तः समस्तश्च त्रिपादिकः ॥६०४॥

[मन्त्रन्यासफलश्रुतिः]

गृहीतशाम्भवादीनां समस्तो न्यास इष्यते ।
तथा चानुपदिष्टानां षड्विंशत्यवधि प्रिये ॥६०५॥
मन्त्रन्यासस्तु तेनैव सम्पूर्णो भवति प्रिये ।
आमृतं पदमिच्छूनां परं पारमिव ध्रुवम् ॥६०६॥
अम्बुधाविव संसारे न्यासोऽयं पोतवन्मतः ।
कर्तव्यो यतिना नित्यं गृहस्थेनापि वा पुनः ॥६०७॥
कदाचित् कौलिकेनापि कार्यः शूद्रादिना तथा ।
पतितेन तु विप्रेण नैव कार्यः कदाचन ॥६०८॥
कुर्वन् स आशु म्रियते सत्यं सत्यं वचो मम ।
पतितानामिव स्त्रीणां नाधिकारोऽत्र वर्तते ॥६०९॥
किं बहूक्तेन देवेशि समासेन निगद्यते ।
यो वेदापर्युदस्तः संस्तस्य स्यादधिकारिता ॥६१०॥
शूद्रादीनामपि भवेन्नैव निन्दितकर्मणाम् ।
उपदिष्टा अमी मन्त्रा येषां स्युः सुरवन्दिते ॥६११॥

तैरेवायं प्रकर्तव्यो न्यासो नान्यैः कदाचन ।
पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा यो हठेन चिकीर्षति ॥६१२॥
स सान्वयो भवेद् भक्ष्यो योगिनीनां न संशयः ।

[सिद्धिन्यासोद्देशः]

अतोऽवधारय शिवे सिद्धिन्यासमनुत्तमम् ॥६१३॥
अवापुर्येन संसिद्धिं देवदैत्यर्षिमानवाः ।

[सिद्धिन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

काङ्कायन ऋषिः प्रोक्तः सिद्धिन्यासस्य सिद्धिदः ॥६१४॥
वृहती छन्द उदितं देवता, गुह्यकालिका ।
बीजं ब्रह्मकपालाख्यबीजं कथितमस्य तु ॥६१५॥
शक्तिरप्युदिता चास्य जगदावृत्तिनामकम् ।
महाकल्पस्थायि बीजं कीलकं परिकीर्तितम् ॥६१६॥
विनियोगः सर्वकार्यसिद्धये परिनिष्ठितः ।

[सिद्धिन्यासस्य सामान्योद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं पुरतो व्याहरामि ते ॥६१७॥
ततो विशेषं वक्ष्येऽहं ततो व्यक्तीभविष्यति ।
सर्वेषामेव मन्त्राणामादिभूतानि वै नव ॥६१८॥
बीजानि देवदेवेशि ज्ञातव्यानि स्थिराणि हि ।
ततः संख्या भिन्नभिन्ना विज्ञातव्या विपश्चिता ॥६१९॥
संख्यया च तया वक्त्रस्यापि विग्रह इष्यते ।
स टावन्तो चलं पूर्वं स्थिरं परमिति क्रमात् ॥६२०॥
गुह्यकाली देवतेति स्थिरं सप्ताक्षरं ततः ।
ततः शब्दा भिन्नभिन्नास्ते ङेऽन्ताः परिकल्पिताः ॥६२१॥
एकत्वं च बहुत्वं च वक्ष्यमाणक्रमेण हि ।
ज्ञेया ङेऽन्ता भ्यसन्ताश्च समुद्दिष्टवचोबलात् ॥६२२॥
चलाः सर्वे परिज्ञेया भिन्नं भिन्नं ततः परम् ।
तैः कर्तृत्वपदस्यापि विग्रहः सार्वकालिकः ॥६२३॥
चलं पूर्वं स्थिरं शेषे ताभ्यामपि सुरेश्वरि ।
समासः स्याद् रूपसिद्धिदायिनीति पदस्य हि ॥६२४॥

एवं दशापि वर्णानि स्थिराणि प्रतिमन्त्रकम् ।
ततोऽस्त्रबीजं बीजानां त्रितयं चास्त्रमेककम् ॥६२५॥
पञ्चापि भिन्नभिन्नानि प्रतिमन्त्रं सुरेश्वरि ।
पुनश्च नव बीजानि ज्ञातव्यानि स्थिराणि च ॥६२६॥
मम सिद्धिमिति प्रोच्य प्रयच्छतु ततः परम् ।
वह्निजाया सर्वशेषे ज्ञातव्या सुरवन्दिते ॥६२७॥
दशापीमान्यक्षराणि स्थेयांसि प्रतिमन्वपि ।
इति सामान्य उद्धारो मया ते परिकीर्तितः ॥६२८॥

[सिद्धिन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषमधुना तस्य कथयाम्यवधार्यताम् ।
तारमायारमाकामरावकूर्चस्त्रियः क्रमात् ॥६२९॥
योगिनी वाग्भवश्चेति स्थिराणीमानि वै नव ।
अथ संख्यां क्रमाद् वच्मि तत्र धेहि मनः शिवे ॥७३०॥
एकं त्रीणि तथा त्रीणि पञ्च पञ्च षडेव हि ।
अष्टाथ नव संकीर्त्य षड्वारं दश कीर्तयेत् ॥६३१॥
पुनः शतं ततो रावयुगलं दश कीर्तयेत् ।
ततोऽनु द्वादश दश तथैकादश चोल्लिखेत् ॥६३२॥
त्रयोदशानु च दश दश षोडश चेत्यपि ।
एकाद्यशीत्यन्तपदं ततः परमुदीरयेत् ॥६३३॥
ततोऽनु विंशतिरिति तथैवायुतमित्यपि ।
आभिः संख्याभिरारब्धो वक्त्रशब्दस्य विग्रहः ॥६३४॥
अथ ङेऽन्तान् भ्यसन्तांश्च भ्यामन्तांश्चावधारय ।
शब्दोद्देशक्रमेणैव प्रयोज्या मन्त्रकीर्तने ॥६३५॥
विधाता च ततोऽनङ्गो वरुणः पावकोऽपि च ।
अदितिश्च शची चापि दानवास्तदनन्तरम् ॥६३६॥
मृत्युकालौ च भरतश्च्यवनस्तदनूच्यते ।
हारीतोऽप्यथ जाबालो दक्षो रामस्तथैव च ॥६३७॥
हिरण्यकशिपुर्ब्रह्मा वसिष्ठो विष्णुरेव च ।
स्वं ततो रुद्र इत्येवं विश्वेदेवास्ततः परम् ॥६३८॥

रावणो [1]रावणश्चापि सिद्धाः सप्तर्षयस्तथा ।
किन्नराश्च ततः कालाग्निरुद्राः परिकीर्तिताः ॥६३९॥
सप्तविंशतिसंख्याका इमे शब्दा मयोदिताः ।
अथ कर्तृत्वशब्दस्य शृणु पूर्वपदं प्रिये ॥६४०॥
सृष्टिस्ततोऽनु त्रैलोक्यमोहनं परिकीर्तितम् ।
जगत्स्निग्धश्च दाहश्चाखिलदेहोद्भवस्ततः ॥६४१॥
इन्द्रसाम्राज्यानु देवपराभव इतीरयेत् ।
अष्टमं परिविज्ञेयं भूतान्तःकरणं प्रिये ॥६४२॥
ततसप्तद्वीपसाम्राज्यमभिचारस्ततः परम् ।
योगवश्यं ब्रह्मविद्याप्रकाशस्तदनन्तरम् ॥६४३॥
प्रजासर्गो रावणवधस्त्रैलोक्यैश्वर्यमित्यपि ।
ब्रह्माण्डोत्पत्तिरित्येवं देवि षोडशिको मतः ॥६४४॥
ततः कामक्रोधवशीकरणं परिकीर्तितम् ।
पुनश्चतुर्दशभुवनपालनमपीरितम् ॥६४५॥
शिवमोहनमित्येवं संहारस्तदनन्तरम् ।
श्राद्धाधिष्ठानमपि च शिवदास्यमतः परम् ॥६४६॥
जगज्जयस्तथाकाशगतिः कल्पावधिस्थितिः ।
सङ्गीतं तदनु ज्ञेयं महाप्रलय इत्यपि ॥६४७॥
सप्तविंशतिरित्येते शब्दाः कर्तृत्वपूर्वगाः ।
अथात उपकूटानां नामान्याकर्णय प्रिये ॥६४८॥
प्राजापत्यास्त्रमादौ स्यान्मोहनास्त्रं ततः परम् ।
वारुणास्त्रं ततः पश्चादाग्नेयास्त्रमुदाहृतम् ॥६४९॥
गालनास्त्रं स्तम्भनास्त्रं कम्पनास्त्रं तथैव च ।
मारणास्त्रं चातिबलास्त्रं ततः परिकीर्तितम् ॥६५०॥
उत्पातास्त्रं ततो ज्ञेयं ततोऽन्तर्द्धाननामकम् ।
अस्त्रे वैष्णवपार्जन्ये ततः परमुदीरिते ॥६५१॥

---

१. वारणश्चापि ख ग घ ।

तामसास्त्रं ततो गान्धर्वास्त्रं ज्ञेयं ततोऽपि च ।
ततः षोडशिकं ब्रह्मास्त्रं देवि परिकीर्तितम् ॥६५२॥
निमीलनास्त्रं च नारायणास्त्रं मूर्च्छनास्त्रकम् ।
शाङ्करास्त्रं त्रैदशास्त्रं तैमिरास्त्रमतः परम् ॥६५३॥
गुह्यास्त्रं चैव चाक्रास्त्रं कालकूटं च माकरम् ।
जृम्भणास्त्रं सर्वशेषे प्रयोक्तव्यं तु साधकैः ॥६५४॥
अन्वेतस्य सुरेशानि त्रिबीजानि निशामय ।
ज्ञानेच्छासंविदः कामलक्ष्मीमायास्ततः परम् ॥६५५॥
शाकिनीच्छन्दविश्वाश्च ततोऽनन्तरमीरिताः ।
अमृतावेशसोमाश्च शक्तिर्नक्षत्रविद्युतौ ॥६५६॥
ततश्च कुलिकं प्रेतबीजं भैरव्यपि प्रिये ।
क्षमामाले च नीलं च महाक्रोधः सरेचकः ॥६५७॥
क्षेत्रपालश्च तदनु गोंऽशुशुक्लाः क्रमान्मताः ।
फेत्कारी च तथा त्रेता कृत्या च तदनन्तरम् ॥६५८॥
अक्षमौञ्ज्यौ च सूत्रं च कुण्डगर्भौ सदीपकौ ।
बलितुङ्गौ तथा चूडामणिः शूलमतः परम् ॥६५९॥
अर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च पिञ्जलः सचिताध्वजः ।
भुशुण्डी च गदाप्रासौ कार्णिकाहारशृङ्खलाः ॥६६०॥
हाकिनी विधिचञ्चू च भूतिनी ध्यानसंहिते ।
रम्भावध्वौ कौणपी च पृथुश्च नदतारके ॥६६१॥
अखण्डचारुकुञ्जाश्च व्रज्यादेशच्छटा अपि ।
सिन्धुर्महेन्द्रेश्वरौ च षडङ्गः ककुदेव ॥६६२॥
शैशुकश्च तथा लीला धेनुर्मारिष एव च ।
प्रचण्डा केकराक्षी च कालरात्रिस्ततः परम् ॥६६३॥
त्रित्रिबीजमिति प्रोक्तं सर्वस्मिन् मन्त्र ईश्वरि ।
इदानीमुपकूटानि एतस्यानन्तरं शृणु ॥६६४॥
कौवेरास्त्रमथैन्द्रास्त्रं वायव्यास्त्रं सयाम्यकम् ।
ततः कालास्त्रभूतास्त्रे मातङ्गैषीकमप्युत ॥६६५॥

औदुम्बरं च पैशाचं राक्षसं हैमनं ततः ।
सौरं गुह्यं शाबरं च ब्रह्महस्तशिरस्तथा ॥६६६॥
शारभं राजसं स्कान्दं आर्क्षं वैनायकं ततः ।
प्रामथं च ज्वरास्त्रं च कूष्माण्डं स्वप्न एव च ॥६६७॥
भ्रामकं फैरवं चापि सर्वशेषे प्रकीर्तितम् ।
स्थिराणि नव बीजानि त्वमिदानीं निशामय ॥६६८॥
वाग्भवो योगिनी रामा कूर्चो रावश्च मन्मथः ।
लक्ष्मी माया च तारश्च नवबीजान्यमूनि हि ॥६६९॥
पूर्वोदितानां बीजानां संहारक्रम एव वा ।
इत्युद्धारो विशेषेण मया समुपबृंहितः ॥६७०॥

[सिद्धिन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्थानमतः शृणु यत्नेन पार्वति ।
ब्रह्मरन्ध्रं भ्रूरपि च कपोलो नेत्रमेव च ॥६७१॥
नासापुटं च कर्णश्च गण्डः सृक्कं हनुस्तथा ।
कक्षो जत्रुश्च स्कन्धश्च चूचुकं पार्श्वं एव च ॥६७२॥
हृदयं जठरं नाभिर्वस्तिर्लिङ्गं गुदं तथा ।
कटो वंक्षण ऊरुश्च जानुजंघापदं तथा ॥६७३॥
व्यापकं सर्वशेषे च सप्तविंशतिरित्यमी ।
इति सिद्धिन्यासकस्य स्थानमुक्तं मया तव ॥६७४॥

[सिद्धिन्यासस्य फलश्रुतिः]

एतस्य सतताभ्यासात् ध्रुवं सिद्धिं लभेत वै ।
न्यासेनैवामुना पूर्वे राजानः ऋषयस्तथा ॥६७५॥
लेभिरे विविधां सिद्धिं देवाः सब्रह्मविष्णवः ।
इदानीमपि ये केचित् करिष्यन्त्येनमादृताः ॥६७६॥
करामलकवत्तेषां वशे तिष्ठन्ति सिद्धयः ।
गृहिणामथ कौलानामयं नित्यतयोदितः ॥६७७॥
यतोनामफलेहानां काम्यत्वेन व्यवस्थितः ।
न्यासानामेष सर्वेषां मुख्यत्वेनोदितः पुरा ॥६७८॥

अतोऽभून्मतिरेकीह[?] कुर्यादत्राग्रहं प्रिये ।
आग्रहात् सिद्धयः सर्वा भवन्ति वशवर्तगाः ॥६७९॥

[विराट्न्यासोद्देशः]

विराट्संज्ञं न्यासमतः श्रृणु यत्नेन पार्वति ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं यस्मिन् देवि प्रतिष्ठितम् ॥६८०॥
पुरा प्रोक्तं यथा ध्यानं विराडाख्यं मया तव ।
तथैवायं न्यासराजस्तन्नाम्ना ख्यातिमागतः ॥६८१॥
यत्र त्रिभुवनं सर्वं देव्यङ्गत्वेन कल्पितम् ।
स्वाङ्गे विन्यसनीयं हि कोऽस्मान्न्यासोऽधिको मतः ॥६८२॥
प्रत्यहं तु तदाकारभावनातः सुरेश्वरि ।
प्राप्य तन्मयतां सद्यः कैवल्यमधिगच्छति ॥६८३॥
किन्त्वेतस्योद्धृतिर्देवि सर्वन्यासेभ्य एव हि ।
कठिना च दुरूहा च तस्मादर्पय मानसम् ॥६८४॥

[विराट्न्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्य हि विराट्नाम्नो लाट्यायन ऋषिर्मतः ।
जगती छन्द उदितं ब्रह्माण्डं देवता तथा ॥६८५॥
बीजं तु पौष्करं कूटं शक्तिर्हैरण्यगर्भकम् ।
कीलकं सत्त्वकूटं च तत्त्वं शक्त्याख्यकूटकम् ॥६८६॥
विनियोगस्तु कैवल्यपदलाभाय कीर्तितः ।

[विराट्न्यासोद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं समाकलय सादरा ॥६८७॥
षट्पञ्चाशत्संख्यकानि देव्यङ्गानि प्रचक्षते ।
सर्वं षट्पञ्चाशदेवं ज्ञातव्यं देववन्दिते ॥६८८॥
भिन्नं भिन्नं बीजमेकमादौ सर्वस्य वै मनोः ।
पृथक् पृथक् ततः कूटं पुनर्बीजं पृथक् पृथक् ॥६८९॥
उपकूटं पुनश्चैकं भिन्नं भिन्नं च तं वदेत् ।
पुनर्बीजं च नाड्येका भिन्ना भिन्ना च तच्च सा ॥६९०॥
पुनर्बीजं पुनः सूक्तं पृथक् पृथगुदीरितम् ।
पुनर्बीजं पुनर्वर्णः पुनर्बीजं पुनर्नदी ॥६९१॥

इत्येकान्तररीत्यैव बीजं कूटं च षट् च षट् ।
विराट्रूपापदं गुह्यकालीति च पदं प्रिये ॥६६२॥
ङसन्तमुभयं कार्यं स्थिराण्येतानि वै नव ।
भिन्नभिन्नास्ततः शब्दाः षट्पञ्चाशदुदीरिताः ॥६६३॥
ङेऽन्ताश्च ते प्रकर्तव्यास्तत्तल्लिङ्गानुसारतः ।
तेषामनु ततो भिन्नाः शब्दास्तावन्त एव हि ॥६६४॥
तेऽपि ङेऽन्ताः प्रकर्तव्यास्तदाकारतयेरिताः ।
ततोऽनु पञ्च कूटानि प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ॥६६५॥
बीजत्रयमयी पंक्तिस्ततः परमुदीर्यते ।
भिन्नभिन्ना प्रतिमनुः ज्ञेया सा च विचक्षणैः ॥६६६॥
फट्त्रयं हृदयं चैव शिरोऽपि तदनन्तरम् ।
सप्ताक्षराणि चैतानि स्थिराणि प्रतिमन्त्रकम् ॥६६७॥
इति सामान्यतः प्रोक्त उद्धारस्त्रिदशेश्वरि ।

[विराण्न्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषमधुना वच्मि सावधानाऽवधारय ॥६६८॥
सामान्यस्तु यया रीत्या मया ते परिकीर्तितः ।
विशेषं तु तया रीत्या कथयिष्यामि बुध्यताम् ॥६६९॥
प्रणवो वाग्भवः पाशः कला माया रमा स्मरः ।
कालीहयग्रीवसृणिगारुडाः कामिनी तथा ॥७००॥
शाकिनीचण्डविश्वाश्च प्रासादः कूर्च एव च ।
भूतश्च किन्नरः क्षेत्रपालः कुम्भामृते अपि ॥७०१॥
रतिः सोमावेशमेघप्राणास्तदनु कीर्तिताः ।
नासत्यशक्ती नक्षत्रविद्युतौ त्रिशिखा ततः ॥७०२॥
त्रिशक्तिरथ चामुण्डा कूष्माण्डी खेचरी तथा ।
कोलो बुद्धिः क्षमा माला नीलं योगिन्यनन्तरम् ॥७०३॥
प्रेतः परा च धनदा भारुण्डा काकिनी तथा ।
नागश्चक्रोदुम्बरश्च रौद्रानन्दौ सयक्षकौ ॥७०४॥
विरिञ्चिस्तापिनी चेति त्रिपुटा सर्वशेषगा ।
प्रथमा बीजपंक्तिस्ते क्रमेण कथिता मया ॥७०५॥

इदानीं क्रमतः कूटनामानि त्वं निशामय ।
मेरुकूटं च कैलासकूटं मन्दारकूटकम् ॥७०६॥
उदयास्तमयौ कूटौ त्रिकूटाचलकूटकौ ।
चण्डकूटं रत्नकूटं मणिकूटं तथैव च ॥७०७॥
प्रासादं स्वस्तिकं चापि कूटद्वयमितः परम् ।
ध्वजकूटं ततो मालारेखाकूटे सुरेश्वरि ॥७०८॥
मन्थानकूटं समयकूटं किञ्जल्ककूटकम् ।
वैराग्यैश्वर्यकूटे च केशवं[रं ?]शुद्धमेव च ॥७०९॥
उपाध्यद्वैतकूटौ च वासनायोगभूमिके ।
इच्छाकूटं कल्पकूटं धर्मकूटं ततः परम् ॥७१०॥
निवृत्त्यविद्यामोहाख्यकूटानि तदनन्तरम् ।
विपाकद्वेषतामिस्ररागयोन्यभिधानि च ॥७११॥
कूटं निरञ्जनं पिण्डकूटमक्षरकूटकम् ।
ततो मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्यानि च पार्वति ॥७१२॥
प्रमाणप्रकृतिप्रज्ञाप्रत्ययाख्यान्यतः परम् ।
जीवात्मपरमात्मानावाभासप्रतिबिम्बकौ ॥७१३॥
चैतन्यसदसन्नित्यकूटानि तदनन्तरम् ।
सर्वशेषे तु विज्ञेयं कूटमैकात्म्यनामकम् ॥७१४॥
इति क्रमेण कूटानि मन्त्राणां कथितानि ते ।
क्रमशोऽन्यानि बीजानि पुनर्देवि निशामय ॥७१५॥
प्रभा ततः सुप्रभा च विशुद्धिर्नन्दिनी तथा ।
रथन्तरं नित्यवृषपुष्टिकौमुद्य एव च ॥७१६॥
विहङ्गमः पूतना च पूर्णाधूमौ ततः परम् ।
ललिता च विराट् चैव फैरवं सकुमारिकम् ॥७१७॥
तृवृत्कापालगोकर्णसुरभीरौरवाणि च ।
नन्दा जटाऽथ हैमं च वैमलं दण्डगोंऽशवः ॥७१८॥
शुक्लो घण्टा पिञ्जला च चिता च ध्वज एव च ।
कल्पो मुक्ता महा चैव क्रमो नृहरिरेव च ॥७१९॥

क्रकचश्च तथारिष्टं श्मशानं शव एव च।
सान्वक्षमौञ्जीसूत्राणि टङ्कन्यासौ ततः परम् ॥७२०॥
ऋषभश्च अथाद्वैतं मेखला कुण्डमेव च।
तन्त्रो वर्णः सम्पुटं च बीजान्येतान्यनुक्रमात् ॥७२१॥
आनुपूर्व्युपकूटानि निबोधातः परं प्रिये।
ब्रह्मास्त्रं वैष्णवास्त्रं हि शाङ्करास्त्रं तथैव च ॥७२२॥
कौवेरास्त्रमथो ज्ञेयं वायव्यं वारुणं तथा।
कम्पनास्त्रमथैन्द्रास्त्रं कालं भूतास्त्रमेव च ॥७२३॥
पार्जन्यं वैद्युतं नागमस्त्रत्रयमतः परम्।
मातङ्गदानवाख्ये च राक्षसं शाबरं तथा ॥७२४॥
कालकूटं ब्रह्मशिरः पैशाचं जम्भनं तथा।
वैनायकमथोत्पातः[तं]स्तम्भनं मारणं तथा ॥७२५॥
याम्यं नारायणास्त्रं च प्राजापत्यास्त्रमेव च।
तामसं तैमिरं त्वाष्ट्रं सौपर्णं राजसं तथा ॥७२६॥
पाषाणं पार्वतं चापि जम्भकैषीकमित्यपि।
औदुम्बरास्त्रं चाक्रास्त्रं गान्धर्वं हैमनं तथा ॥७२७॥
प्रस्वापनं सौरगुह्ये वेतालं शारभं तथा।
वारणास्त्रं प्रामथास्त्रं[?]स्कान्दमाक्ष्र्यं तथैव च ॥७२८॥
कूष्माण्डास्त्रं मूर्च्छनास्त्रं भ्रामकास्त्रं तथैव च।
गालनास्त्रं त्रैदशास्त्रं सर्वशेषे प्रतिष्ठितम् ॥७२९॥
षट्पञ्चाशदिमे कूटाः क्रमेण परिकीर्तिताः।
अतः परं पुनर्बीजं निःश्रेणीमवधारय ॥७३०॥
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिः फेत्कार्यपि प्रिये।
त्रेता कराली कृत्या च तर्जनी च कटंकटा ॥७३१॥
कोशः पिण्डः क्षुधा चैव सन्तानो मोक्ष एव च।
निर्वाणोऽप्यथ नाराचः शूलं भल्लार्धचन्द्रकौ ॥७३२॥
वत्सदन्तः क्षुरप्रश्च द्वाविंशो गोस्तनो मतः।
सन्दंशकश्च नालीको भुशुण्डी परिघस्तथा ॥७३३॥

गदा च तोमरः प्रासः पट्टिशस्तदनन्तरम् ।
संहिता कौंणपी ध्यानहाकिनीविधिचञ्चवः ॥७३४॥
रम्भावती च कुलिकं करम्भिश्चौषधी तथा ।
कङ्कालं मानसं शान्तिरुग्रं डामरमेव च ॥७३५॥
नाकुलं तैजसं वज्रमासुरं तदनन्तरम् ।
कूर्माधारौ द्रावणं च मङ्गलं च सुदर्शनम् ॥७३६॥
अध्वरः सर्वशेषे स्यात्तृतीया बीजसंहृतिः ।
अतः परं क्रमेणैव नाडीः कलय पार्वति ॥७३७॥
भासुरादौ भवेन्नाडी विसर्गा तदनन्तरम् ।
बन्धनी कम्पिनी [?] निम्ना प्रबुद्धा च प्रकाशिनी ॥७३८॥
विलम्बिता तथाऽलस्या घर्घराऽवेशिनी तथा ।
गान्धारी शङ्खिनी हस्तिजिह्वा पूषा सरस्वती ॥७३९॥
यशस्विनी वारणा च कूहूरपि पयस्विनी ।
विश्वोदराऽलम्बुषा च हिता चण्डा च गालिनी ॥७४०॥
सती मन्दा मधुमती द्राविणी चेतना तथा ।
सौवीरी कपिला रण्डा रञ्जनी रेवती ततः ॥७४१॥
उत्तराऽप्यायनी विश्वदूता चन्द्रा कपर्दिनी ।
नन्दा चन्द्रावती मैत्री[1] विकल्पा लम्बिकाऽचला ॥७४२॥
सम्मोहा कोटरा मूला तन्द्रावत्यपि घण्टिका ।
धारिणी धोरिणी धीरा सुरभी कृन्तनी तथा ॥७४३॥
इति क्रमेण वै नाड्यस्तव देवि मयेरिताः ।
बीजश्रेणीं पुनरपि निशामय ततोऽनु या ॥७४४॥
उल्का वेदी जरा चण्डी खलपातालकुक्कुटाः ।
सारं धारालक्ष्यभव्याक्षरगोत्रा महोदयाः ॥७४५॥
तुलानुदात्तस्वरितरत्नोदात्ताजनिष्कलाः ।
प्रियभू [भ्रू ?] जम्बुकंज्योतिर्नाकनारदपुष्कलाः ॥७४६॥

---

१. नन्दी ख ग घ ।

नान्दी बलिः पृथुह्रस्वनंदसात्वततारकाः ।
वृत्ततुङ्गाखण्डपुण्यचारुसन्तानकुब्जकाः ॥७४७॥
पुरुचूडामणिव्रज्याखातादेशतलच्छटाः ।
आत्मा शिखा प्रागभवस्त्रिस्थानकल्याणवासनाः ॥७४८॥
साधकः सर्वशेषे स्यात् तुर्या बीजानि ईरिताः ।
अथ क्रमेण सूक्तानि व्याहरामि वरानने ॥७४९॥
पौरुषं सूक्तमादौ स्यात् माहित्रं शुद्धवत्यपि ।
शिवसंकल्पसूक्तं च सूक्तमानन्दमेव च ॥७५०॥
ततस्तु गृत्समन्दीयं तौषितं सूक्तमेव च ।
सोमारौद्रं सिद्धसूक्तं नाराशंसी ततः परम् ॥७५१॥
पावमानीयसूक्तं च भौमसूक्तं ततः परम् ।
हविष्यान्तं ततः सूक्तं नतमंहस्ततः परम् ॥७५२॥
वैश्वदेवं ततः सूक्तमस्यवामीयमित्यपि ।
शारीरसूक्तमैन्द्राग्नमग्निषोमीयमित्यपि ॥७५३॥
नक्षत्रसूक्तं तदनु मैत्रावरुणमेव च ।
भारुण्डानामकं सूक्तं कल्पसूक्तमतः परम् ॥७५४॥
पितृसूक्तं भार्गवं च सूक्तं वैनायकं तथा ।
वायव्यं यक्षसूक्तं च नैर्ऋतं तत्त्वमेव च ॥७५५॥
सूक्ते आर्यम्णवैभ्राजे गर्भसूक्तमतः परम् ।
कैवल्यामृतसूक्ते च लक्ष्मीसूक्तं ततोऽप्यनु ॥७५६॥
मानस्तोकं ततः सूक्तं सूक्तं गारुडमेव च ।
श्रीसूक्तं रौद्रसूक्तं च सूक्तं वै नादबैन्दवम् ॥७५७॥
देवीसूक्तं च माध्वीकमाथर्वणमतः परम् ।
महाप्रस्थानसूक्तं च त्वाष्ट्रहंसे ततः स्मृते ॥७५८॥
हैरण्यकेशसूक्तं च लयसूक्तमतः परम् ।
पर्यायाख्यं च ततः सूक्तमैन्द्रवारुणमेव च ॥७५९॥
बार्हस्पत्यं ततः सूक्तं तत औशनसं स्मृतम् ।
नाचिकेतसमेधे च ततः सूक्ते उभे मते ॥७६०॥

सर्वशेषे परिज्ञेयं सूक्तं वै नीललोहितम् ।
सूक्तानन्तरबीजानि पुनरन्यानि वै शृणु ॥७६१॥
सरक्षी पंक्तिस्तथा योग उत्तमः काल एव च ।
काकीमुखश्च मुकुलो वैकारिकमतः परम् ॥७६२॥
मन्दारसिन्धुकीलालमहेन्द्रकरुणेश्वराः ।
द्वीपजम्भषडङ्गात्रिककुत्संघातशैशुकाः ॥७६३॥
विलासः संग्रहो घाटी कार्पटो भार एव च ।
संयमातीतसन्धानस्थावराः जङ्गमः शुचिः ॥७६४॥
ग्लहः खर्वस्तथा मध्यः कुठारः कर्तृसंयुतः ।
सारङ्गो वागुरा चेति खट्वाङ्गं बेधिनी हलः ॥७६५॥
परेष्टिव्रतपूर्त्तानि निर्मोकोत्तंसनामकौ ।
वेतण्डरङ्कताटङ्कलीलार्च्चा धेनुरेव च ॥७६६॥
क्षोभणो मारिषश्चेति सर्वशेषे प्रतिष्ठितः ।
एषा तु पञ्चमी बीजपंक्तिर्देवि तवोदिता ॥७६७॥
अतः परं क्रमेणैव वर्णान् समवधारय ।
शुक्लवर्णो भवेदादौ ततः शुभ्रोऽरुणस्तथा ॥७६८॥
वलक्षशुचिचित्राश्च त्रयो वर्णाः क्रमेण हि ।
संपृक्तरोहितौ वर्णौ कृष्णः श्वेतोऽसितस्तथा ॥७६९॥
धवलो मेचको गौरस्त्रयो वर्णा इमे ततः ।
रक्तपालाशशबलास्त्रयो वर्णास्ततः परम् ॥७७०॥
श्यावकल्माषपिङ्गाश्च पाण्डरः शौक एव च ।
नीलकिर्म्मीरहरितलोहिताः सितकर्बुरः ॥७७१॥
रक्तनीलस्तथा पाण्डुः श्यामः कालस्तथैव च ।
रक्तपीतश्च कपिलो धूसरो धूम एव च ॥७७२॥
कर्बुरः पिङ्गलः कृष्णपाटलस्तदनन्तरम् ।
कौसुम्भश्चापि हारिद्रो मायूरः पाटलस्तथा ॥७७३॥
पाण्डुचित्रः शोणपीतौ कपिशो बभ्रुरेव च ।
ऐन्द्रगोपश्च हरितो हरिर्हरिण एव च ॥७७४॥

राजसः काद्रवश्चैव तैत्तिरोज्ज्वलसंकराः ।
इति वर्णा मताः सर्वे क्रमेणैव मयोदिताः ॥७७५॥
बीजान्येतदनुक्तानि यानि तानि निबोध मे ।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा डाकिनी तथा ॥७७६॥
केकराक्षी महारात्रिः कालरात्रिस्तथैव च ।
विजयो मन्दसम्मोहौ प्रलयः पतनं तथा ॥७७७॥
ततो युगान्तसंहारौ वेगः सन्धानसिञ्जिनी ।
लिङ्गनैमयपुन्नागास्त्रिपुरा रौद्र एव च ॥७७८॥
मातृशङ्कू मज्जनं च याम्यमैन्द्रं च जीवनी ।
यक्षो वीरश्च वेतालो वाडवो भौव एव च ॥७७९॥
उग्रश्च पुटकश्चेति चर्पटं मणिमालया ।
हारिण्युत्कोचिनी चैव गायत्री कर्णिका तथा ॥७८०॥
शृङ्खलौपह्वरे चापि नान्दिकं तदनन्तरम् ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥७८१॥
सुरसः समरो रागः सारसः सुकृतं तथा ।
पद्मोऽथ सर्वशेषे वै कुशिकः परिकीर्तितः ॥७८२॥
सरितामथ नामानि क्रमेण शृणु पार्वति ।
सरस्वती विपाशा च चन्द्रभागा च देविका ॥७८३॥
यमुनैरावती । चापि गोमती देविका तथा ।
वितस्ता सरयूः सिप्रा नर्मदा बाहुदा तथा ॥७८४॥
कावेरी गण्डकी कृष्णवेल्ला गोदावरी तथा ।
तुङ्गभद्रा भीमरथी करतोया च ताप्यपि ॥७८५॥
पयोघ्नी कौशिकी चैव सभङ्गोत्पलिनी तथा ।
शरावतीरावती च पर्णाशा ताम्रपर्ण्यपि ॥७८६॥
कृतमाला मालिनी च तमसा वेत्रवत्यपि ।
चर्मण्वती धूतपापा विरजा मुरला तथा ॥७८७॥
सुवर्णरेखा निर्विन्ध्या वाग्मती च महानदी ।
ज्योतीरसा च वरुणा शोणः पारावती तथा ॥७८८॥

मन्दाकिनी शतद्रुश्च हिरण्याक्षोऽथ घर्घरः ।
लौहित्यालकनन्दे च वंक्षुः शीता दृषद्वती ॥७८९॥
ततो भोगवती सर्वशेषे गङ्गा प्रकीर्तिता ।
बीजानां पङ्क्तयः षट् च षट् च कूटोपकूटयोः ॥७९०॥
इमे क्रमेण देवेशि मया ते परिकीर्तिता ।
बीजं कूटं पुनर्बीजमुपकूटं ततः परम् ॥७९१॥
पुनर्बीजं पुनर्नाडी पुनर्बीजं तथैव च ।
पुनः सूक्तं पुनर्बीजं पुनर्वर्णः सुरेश्वरि ॥७९२॥
पुनर्बीजं ततः शेषे नदी देवि प्रतिष्ठिता ।
अनयैव दिशा सर्वं कार्यमेकान्तरं प्रिये ॥७९३॥
षष्ठ्यन्तायाः नवाक्षर्याः स्थिरायाः परगानि हि ।
पदानि यानि ङेऽन्तानि शृणु तानि क्रमेण हि ॥७९४॥
जटाजूटं मस्तकं च ललाटं तदनन्तरम् ।
सीमन्तदण्डस्तदनु दक्षिणभ्रूरपि प्रिये ॥७९५॥
वामभ्रूर्दक्षिणः कर्णो वामकर्णस्ततः परम् ।
तिलकं नासिका चैव दक्षिणं चक्षुरप्यनु ॥७९६॥
वामञ्चक्षुस्ततो ज्ञेयं पक्ष्माणि तदनन्तरम् ।
ततो दक्षिणगण्डश्च वामगण्डस्ततः परम् ॥७९७॥
दक्षिणश्च तथा वामः कपोलस्तदनन्तरम् ।
दक्षिणं कुण्डलं वामकुण्डलं तदनु प्रिये ॥७९८॥
ओष्ठस्तथाधरश्चाधोदन्तपङ्क्तिरितोऽप्यनु ।
ततोर्ध्वदन्तपंक्तिश्च मुखमण्डलमेव च ॥७९९॥
चिबुकं च गलो वक्षःस्थलं हारस्ततः परम् ।
बाहवोऽस्त्राणि पृष्ठं च तत्पश्चादुदरं मतम् ॥८००॥
अन्त्राणि जठरं प्राणा रोमाणि स्युरितः परम् ।
दृष्टिस्तथा निमेषोन्मेषस्ततो हृदयं भवेत् ॥८०१॥
चरणौ तदनु ज्ञेयौ पादोऽङ्गुल्यस्ततः परम् ।
वाङ्नाडी च कफोणी च मणिबन्धौ तथैव च ॥८०२॥

जंघे ऊरू कटिश्चापि वंक्षणे प्रपदे तथा ।
स्फिचौ सर्वाङ्गमस्यानु जिह्वात्रयमुदीर्यते ॥८०३॥
[1]अन्नं ततो भोजनस्य समयः परिपठ्यते ।
सर्वशेषे ततः पार्श्वपरिवर्त उदाहृतः ॥८०४॥
षट्पञ्चाशदिमे ख्याता देव्याः शारीरजाः क्रमात् ।
उद्देशक्रमतो देवि वचनानि प्रयोजयेत् ॥८०५॥
चतुर्थ्यन्तानि सर्वाणि स्युर्वाचां भेद एव च ।
एतेषामग्रतो यानि पदानि सुरवन्दिते ॥८०६॥
तान्याकलय सर्वाणि पूर्वोक्तक्रमगानि हि ।
यथायोग्यं प्रकृत्यादिः सर्वादौ परिनिष्ठितः ॥८०७॥
ब्रह्माण्डोर्ध्वकपालं च देवीलोकस्ततः परम् ।
मेरुशैलोऽजवीथी च नागवीथी ततोऽप्यनु ॥८०८॥
शिवलोकश्च वैकुण्ठलोको लोहितमेव च ।
मन्दाकिनी च सूर्यश्चन्द्रश्च किरणा अपि ॥८०९॥
तपोलोकः सत्यलोको जनलोकस्ततः परम् ।
महर्लोको हिमाद्रिश्च कैलासस्तदनूद्यते ॥८१०॥
स्वर्लोकोऽथ भुवर्लोकस्तत एतौ प्रकीर्तितौ ।
दिक्पालग्रहलोकश्च सप्तर्षिध्रुवलोकयुक् ॥८११॥
रोदसी तदनुज्ञेयं द्यौर्लोको ब्रह्मलोकयुक् ।
नभो नक्षत्रमाला च दिग्विदिक्चय एव च ॥८१२॥
तत्तल्लोकफलानि स्युः स्वर्गस्तदनु कथ्यते ।
आन्तरिक्षं पर्वताश्च सिन्धवो वायवस्तथा ॥८१३॥
ततो वनस्पत्योषधयस्तत्पश्चाद् विद्युदेव च ।
अहोरात्रं चतुर्दशभुवनं पृथिवी तथा ॥८१४॥
सप्तपातालमस्यानु वेदा नद्यः कलास्तथा ।
काष्ठा मुहूर्तो ऋतवः पक्षौ वायनपूर्वगौ ॥८१५॥

---

१. अन्वन्ततो क ङ ।

मासा अब्दस्ततः पश्चात् चतुर्युगमुदाहृतम् ।
ततो वैश्वानरकालमृत्यवः परिकीर्तिताः ॥८१६॥
आब्रह्मस्तम्ब इत्येवं प्रलयस्तदनन्तरम् ।
महाकल्पः सर्वशेषे विज्ञेयस्त्रिदशेश्वरि ॥८१७॥
पूर्वोदितानां शब्दानामनन्तरतया स्थिताः ।
एते शब्दास्तद्विभक्तितत्तद्वचनयोगिनः ॥८१८॥
करणीयास्तत्सदृशा इत्येतस्य विनिश्चयः ।
अतः परममीषां ये पश्चाद्वर्तिन ईरिताः ॥८१९॥
पञ्च कूटास्तान् ब्रवीमि क्रमेण तव पार्वति ।
सृष्टिकूटं स्थितिकूटं संहारं कूटमेव च ॥८२०॥
अनाख्याकूटमस्यानु भासाकूटं ततः परम् ।
पञ्च कूटा इमे देवि मन्त्रेषु निखिलेष्वपि ॥८२१॥
विज्ञातव्याः स्थिरतराः साधकेन विपश्चिता ।
अथो कूटानु या बीजत्रयी प्रोक्ता पृथक् पृथक् ॥८२२॥
प्रतिमन्त्रं तान् ब्रवीमि बीजसंघान् वरानने ।
तथैव पूर्णो भविता विराण्न्यासो वरानने ॥८२३॥
धन्योल्लोप्ये विस्मृतिश्च संपूर्णा मौनिभस्मनी ।
वनस्पतिर्विधानं च संविधानं तथैव च ॥८२४॥
ततो विक्रमसंक्रान्ती कुलमुद्रा ततोऽप्यनु ।
कुशतन्तू विहारश्च संसृष्टिस्तदनन्तरम् ॥८२५॥
ततः सिद्धिफलं शिल्पं योगतन्त्रा दिगम्बरा ।
शेषे रसपुटं चापि मौनं चूलिकयान्वितम् ॥८२६॥
विखलस्तस्य शेषे च सर्वस्वं विप्रियं ततः ।
सान्तारश्चापि तदनु समाधानमतः परम् ॥८२७॥
सन्दर्शनं यौक्तिकं च शुद्धनिद्रा ततोऽप्यनु ।
माया हारो विस्वरितं चाक्रिकं विक्रियं ततः ॥८२८॥
विपृथुस्तदनु ज्ञेयौ विवृत्तं सन्तलं ततः ।
संगूढश्चापि तदनु सम्वर्तकविवर्तकौ ॥८२९॥

पारीन्द्रो जैमनं चापि संव्यानं सम्बलं ततः ।
ततो विवत्ससंभावौ संयोगस्तदनु स्मृतः ॥८३०॥
पाटलं पिप्पलं चापि विकलस्तदनन्तरम् ।
ततो विनिमयः सञ्जीवनी चापि बिपक्षयुक् ॥८३१॥
कैतवान्तकबीजे च संहारिण्यप्यतः परम् ।
अनुवृत्तिस्ततो गुप्ताचारादिद्वितयं प्रिये ॥८३२॥
चण्डिलश्च विपाशश्च संमोही तदनूद्यते ।
सक्षतं चापि विभ्रान्तिः संभ्रान्तिस्तदनन्तरम् ॥८३३॥
कुडुक्कश्च कराटी च वात्या तदनु कथ्यते ।
सन्तानं च वितानं च विवरं स्यात्ततः परम् ॥८३४॥
प्राकारः कुहिका चापि बीजानि तदनु प्रिये ।
तर्पणं भेदवरटौ जठराद्यौ ततः परम् ॥८३५॥
शपथस्तदनु ज्ञेयो याच्ञा च तदनु स्मृता ।
आक्रोशश्चापि संवृत्तिः संप्रदायश्च भाजनम् ॥८३६॥
अनपायस्तस्य शेषे स्यादुत्क्रामोऽन्वस्य कथ्यते ।
प्रदेशनीराजने च संहारो यमलादिमः ॥८३७॥
उदीर्णं भानुमस्यानु ग्राहश्च ग्रह एव च ।
देवेशि तपनं पश्चादुद्भिद्द्वापौ ततः परम् ॥८३८॥
तीर्थं च तदनु ज्ञेयं पौषश्च सवनं तथा ।
क्षुद्रः सन्धान वर्ष्मणी च वितानं तदनन्तरम् ॥८३९॥
संभूतिश्चतुरस्रं च त्र्यस्रं तदनु कथ्यते ।
दाक्षिकं सौमतं चापि प्रतानं स्यात्ततः परम् ॥८४०॥
नादान्तकश्चामरं च व्यजनं तदनूद्यते ।
विरूपश्चापरान्तश्च प्रकर्यपि वरानने ॥८४१॥
मारण्डश्च विनादश्च विमर्दस्तदनन्तरम् ।
ततः सन्ततिबर्हे च सामबीजं ततोऽप्यनु ॥८४२॥
वीथी पर्णो च करणं वेहण्डस्तेजनं तथा ।
मेहनी तदनु ज्ञेया वासश्चानय एव च ॥८४३॥

कुञ्चिका तदनु ज्ञेया विराधश्च तुरीयया ।
ग्रावा तदनु देवेशि मोदकं वासिता तथा ॥८४४॥
ओजस्विनी बीजमस्यानु पूत्यण्डं कुञ्चिका ततः ।
ततः कामकला ज्ञेया षट्चक्रं तदनन्तरम् ॥८४५॥
सर्वागमो भवेत् तस्मादाम्नायातीत इत्यपि ।
शक्तिसर्वस्वमस्यानु परापर इतः परम् ॥८४६॥
ततोऽनु वज्रकवचं शाम्भवं तदनन्तरम् ।
चिच्छक्तिर्जगदावृत्तिबीजं तदनु कथ्यते ॥८४७॥
लाङ्गूलं वर्द्धमानं च वेत्रमित्यस्य शेषगम् ।
बाला बाहुश्च खोटश्च विजया तदनन्तरम् ॥७४८॥
श्रीकण्ठोऽप्यथ कौलुञ्चः पाणिगीतिरितः परम् ।
संकल्पः कलहश्चापि चक्रतुम्बी ततो मता ॥८४९॥
संन्यासश्च विचारश्च शुभंयुस्तदनन्तरम् ।
वियोगस्तदनु ज्ञेयमुत्तानं सर्वशेषगम् ॥८५०॥
इति त्रिबीजनिःश्रेणी क्रमेण कथिता मया ।
दातव्या फट्त्रयादूर्ध्वं हृच्छीर्षे तदनु स्मृते ॥८५१॥
इति देवि मया तुभ्यं विराण्न्यास उदाहृतः ।

[विराण्न्यासस्य फलश्रुतिः]

समासव्यासयोगेन दुरूहो धीमतामपि ॥८५२॥
न्यासस्यास्य स्थलान्येव मन्त्र एवोदितानि हि ।
तेनैव क्रमयोगेन स्वाङ्गे न्यस्यानि पार्वति ॥८५३॥
विराण्न्यासस्य उद्धार इति ते प्रतिपादितः ।
रीत्याऽनया प्रकर्तव्यो न्यास एष महाफलः ॥८५४॥
विराण्न्यासं विराट्ध्यानं तुरीयाजपमेव च ।
कुर्वन् किमर्थमात्मानं शोचते भवसागरे ॥८५५॥
विराण्न्याससमो न्यासो न भूतो न भविष्यति ।
इति बुध्वा समासेन यत्कर्तव्यं तदाचर ॥८५६॥
न्यासमेनं वेद काली त्रिपुरघ्नस्तथेश्वरः ।
तयोः प्रसादाज्जानेऽहं नान्यस्त्रिजगतीतले ॥८५७॥

कपालडामरे नायं नाऽप्यसौ यामलादिषु ।
न च शाबरतन्त्रेऽपि तन्त्रेष्वन्येषु का कथा ॥८५८॥
सर्वेभ्यो मन्त्रकल्पेभ्यो मदुक्ता संहिता वरा ।
अत एवामुमत्राहं समुद्धृत्य न्यवेशयम् ॥८५९॥
काम्यत्वेन न चैवायं कर्तव्यः कर्हिचित् प्रिये ।
योगिनीनां डाकिनीनां कुर्वन् व्रजति भक्ष्यताम् ॥८६०॥
नित्यत्वेनैव निर्दिष्टः सर्वेषां मन्त्रशालिनाम् ।
विशेषतस्तु यतीनां सन्त्यक्तैहिककर्मणाम् ॥८६१॥
मुमुक्षूणां च गृहिणां कौलाचारवतामपि ।
अशक्नुवानः सततं कर्तुं न्यासममुं प्रिये ॥८६२॥
नैमित्तिकतया कार्यः सदा पर्वणि पर्वणि ।
अल्पेनैव प्रयोगेण यदि सिद्धिं त्वमिच्छसि ॥८६३॥
भावनादीन् विराडन्तान् न्यासान् दश समाचरेत् ।
सुहृदः स्वानुपदिश्यात् यांस्तारयितुमिच्छसि ॥८६४॥
अमुनैव व्यतिक्रान्तं चतुर्थं पञ्चकं प्रिये ।
अतः परं निबोधान्यान् न्यासान् परमशोभनान् ॥८६५॥

इति श्रीमहाकालसंहितायां न्यासोद्धारप्रस्तावे
भावनादिदशन्यासोद्धारो नाम
अष्टमः पटलः ।

नवमः पटलः ।

श्री महाकाल उवाच

पञ्चमं पञ्चकं मत्तो निबोधातः परं प्रिये ।

[बीजन्यासोद्देशः]

यस्याद्य[1]भूतः कथितो बीजन्यासो महोदयः ॥१॥
बीजन्यासस्तु सर्वेषां नित्यत्वेन व्यवस्थितः ।
यतिनामथ कौलानां गृहस्थानां तथेश्वरि ॥२॥
पदार्थानां हि सर्वेषां ब्रह्माण्डोदरवर्तिनाम् ।
बीजन्यासस्तु बीजस्वेनोक्तस्त्रिपुरवैरिणा ॥३॥
अतः श्रेष्ठतमो ज्ञेयः कारणत्वेन शम्भुवत् ।
निशामयाधुनैतस्य समुद्धारं [2]वदामि ते ॥४॥

[बीजन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

प्रजापतिर्ऋषिः प्रोक्तो बृहतीछन्दसा युतः ।
सर्वे भावा देवता च मैधं बीजमुदाहृतम् ॥५॥
कला शक्तिः सर्वबीजं कीलकं समुदाहृतम् ।
चराचरस्य जगतः सर्गेऽस्य विनियोगता ॥६॥

[बीजन्यासस्य सामान्योद्धारः]

पुरतः शृणु सामान्यमुद्धारं सुरवन्दिते ।
वक्ष्ये विशेषं तदनु येन न्यासः स्फुटो भवेत् ॥७॥
बीजत्रयमयी पङ्क्तिरादौ प्रत्येकमीरिता ।
भिन्नभिन्नाभिधानेन[3] ततः शब्दाः प्रकीर्तिताः ॥८॥
तैर्बीजशब्दस्य पुनर्विग्रहः परिपठ्यते ।
भिन्नभिन्नास्ततः शब्दाः ज्ञेयाः ङेऽन्तावुभावपि ॥९॥
विशेष्यभूताः परगा विशेषणतया परे ।
ते लिङ्गग्राहिणः [4]सर्वे परगानां वरानने ॥१०॥

---

१. यस्याङ्ग ० क ।
२. वरानने ख ग घ ङ ।
३. भिन्नभिन्ना विधानेन ग घ ।
४. पूर्वे ख ग घ ।

भिन्नभिन्ना ततः पङ्क्तिर्बीजत्रयमयी पुनः ।
ततो ङेऽन्ता गुह्यकाली ङेऽन्तं च परमग्निमम् ॥११॥
अनन्तशक्तिमूर्त्याख्यं शेषे कूर्चास्त्रमस्तकाः ।
इमानि शेषभूतानि षोडशार्णानि पार्वति ॥१२॥
प्रतिमन्त्रं सुस्थिराणि ज्ञातव्यानि विपश्चिता ।
इति सामान्यमुदितो विशेषमधुना शृणु ॥१३॥

[बीजन्यासस्य विशेषोद्धारः]

तारमायारमामैधलक्ष्मीकामास्ततः परम् ।
पाशाङ्कुशौ गारुडश्च क्रोधः काली वधूरपि ॥१४॥
प्रासादः क्षेत्रपालस्तु महाक्रोधात् परः स्थितः ।
अमृतादित्रयं [1]रत्यादित्रयं तदनन्तरम् ॥१५॥
नासत्यशक्तिचपला विश्वभूतौ मयुस्तथा ।
कुलिकप्रेतभैरव्यो योगिनीरावतारकाः ॥१६॥
ततः क्षमादित्रितयं नाकुलादित्रयं तथा ।
[2]त्रिशक्तिरथ चामुण्डा कूष्माण्डी तदनन्तरम् ॥१७॥
भारुण्डातन्त्रवर्णाश्च ज्ञानादित्रितयं ततः ।
कालीहयग्रीवधर्माः कालादित्यौ धनप्रदा ॥१८॥
नागो विरिञ्चिरमलं तापिन्योदुम्बरौ ततः ।
रथन्तरं च पूर्णा च धूमश्च ललिता तथा ॥१९॥
कैकरः सूचिवैराजौ जटादित्रितयं ततः ।
विराट्फैरवकौमार्यो गोकर्णादित्रयं ततः ॥२०॥
वृषपुष्टी कौमुदी च निर्मलं कुलचित्रके ।
इत्येकाशीतिबीजानि क्रमेण कथितानि ते ॥२१॥
एकैकस्मिन् मनौ देया पङ्क्तिर्बीजत्रयात्मिका ।
चिदादौ तदनु ह्यात्मा आवापोद्वाप एव ॥२२॥
ज्योतिः पातालमुदधिः षष्ठो हि परिकीर्त्यते ।
सप्तमश्चापि सङ्कल्पविकल्पः परमेश्वरि ॥२३॥

१. रम्भादि ख ।
२. इयं पंक्तिः ग पुस्तके न दृश्यते ।

कालो रूपं च शब्दश्च ततो गन्धो रसस्तथा ।
ततो [स्पर्शो ?] मैथुनमन्नं च ततोऽग्निः पापमेव च ॥२४॥
पुण्यमस्यानु चाज्ञानं ज्ञानं तदनु कथ्यते ।
वासना कर्म च ध्यानं सत्त्वं चापि रजस्तमः ॥२५॥
सर्वशेषे गुह्यकाली देवता[1] परिकीर्तिता ।
एते शब्दाः परिज्ञेया बीजशब्दस्य पूर्वगाः ॥२६॥
बीजानन्तरगान् देवि सांप्रतं त्वं निशामय ।
आदौ ब्रह्माण्डमाकाशो वायुस्तेजो जलं तथा ॥२७॥
पृथिवीमनऔषध्यश्चक्षुःश्रोत्रमतः परम् ।
घ्राणं च रसनं त्वक् च विज्ञेयांऽत्र त्रयोदशी[2] ॥२८॥
प्रजासर्गस्तथा प्राणाः सुवर्णं नरकस्तथा ।
स्वर्गो माया मोक्षजन्ममरणानि यथाक्रमम् ॥२९॥
लयो विष्णुस्तथा ब्रह्मा रुद्रोऽपि च चराचरम् ।
विशेष्यभूताः परगा इमे शब्दाः प्रकीर्तिताः ॥३०॥
विज्ञेये लिङ्गवचने एभिरेव वरानने ।
पुनः पंक्ति त्रिबीजानां शिवे समवधारय ॥३१॥
पृथुर्नदस्तारका चारवण्डचारू च कुब्जकः ।
व्रज्यस्देशौ छटा प्रागभवं कल्याणं च साधकः ॥३२॥
सिन्धुर्महेन्द्रेश्वरौ च षडङ्गं ककुदेव च ।
शैशुकं व्रतनिर्मोकवेतण्डा अक्षमौञ्जिके ॥३३॥
सूत्रं कुण्डं च गर्भश्च दीपो लीला ततः परम् ।
धेनुश्च मारिषश्चापि प्रचण्डा तदनन्तरम् ॥३४॥
केकराक्षी कालरात्रिः सम्मोहः पतनं तथा ।
संहारश्च ततो ज्ञेया शृङ्खलौपह्वरान्विता ॥३५॥
नान्दिकं पङ्कुशिकौ[3] व्ययोऽथ समरः स्मृतः ।
रागश्च सारसश्चाथ कुटिला रञ्जिनी घटी ॥३६॥

---

१. देवि ते क ङ । २. स्पर्शस्तेजस्तथैव च (?) ग । ३. कुलिकौ ग घ ।

मणिमाला हारिणी च तदनूत्कोचिनी प्रिये ।
चतुरस्रादित्रयं च चामरादित्रयं ततः ॥३७॥
विनादादित्रयं चापि अपरान्तादि च त्रयम् ।
सौमतादित्रयं चाथ उल्लोप्यादित्रयं पुनः ॥३८॥
तुरीयाग्रावपथ्यानि ततः सर्वागमः प्रिये ।
आम्नायातीततत्त्वार्णवौ विज्ञेयौ ततः परम् ॥३९॥
परापरं वक्त्र[चर्म ?]वर्मं ततो ब्रह्मकपालकम् ।
चिच्छक्तिर्जगदावृत्तिः सर्वं शेषे परिस्थितम्[1] ॥४०॥
महाकल्पस्थायिबीजं न्यासः पूर्णोऽमुनाऽभवत् ।
बीजसंज्ञोऽधुना स्थानान्याकर्णय सुरेश्वरि ॥४१॥

[बीजन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः]

ललाटं मुखवृत्तं च ग्रीवा गल उरस्तथा ।
जठरं नाभिवस्ती च मेढ्रं वंक्षणयोर्द्वयम् ॥४२॥
उरू जानुद्वयं जंघे गुल्फौ पार्ष्णी ततः परम् ।
प्रपदे पार्श्वयुगलं बाहुमूले तथांसयुक् ॥४३॥
हनू सृक्कद्वयं गण्डौ चक्षुषी श्रवणे तथा ।
कूर्चं च ब्रह्मरन्ध्रं च व्यापकं तदनन्तरम् ॥४४॥
इति स्थानानि सर्वाणि क्रमेण कथितानि ते ।
नित्यनैमित्तिकत्वं च पुरैव प्रतिपादितम् ॥४५॥

[कूटन्यासोद्देशः]

कूटन्यासमिदानीं त्वं विस्तराद् गदतः शृणु ।
बीजानां मध्यगा यत्रासते कूटास्त्रयस्त्रयः ॥४६॥

[कूटन्यासस्य मूलनिर्देशः]

अयं हि शम्भुना प्रोक्तो न्यासो वै वज्रडामरे ।
मया समानीय ततः संहितायां निवेशितः ॥४७॥
सिद्धिप्रदः सद्य एव सद्य एव क्षयप्रदः ।
शुद्धाशुद्धप्रकारेण कूटबाहुल्ययोगतः ॥४८॥

---

१. परिष्ठितम् क ङ ।

अत एव यथा शुद्धो भवेद् यत्नं तथा चरेत् ।

[अधिकारिभेदेनास्य नित्यत्वकाम्यत्वाद्यभिधानम्]

नित्यत्वेनोदितो ह्येष वेदोक्तायनचारिणाम् ॥४९॥
काम्यत्वेन च कौलानां नैमित्तिकतयाऽपि च ।
कर्तव्यो भक्तिभावेन सावधानतयाऽपि च ॥५०॥

[कूटन्यासस्य ऋष्याविनिर्देशः]

इदानीमस्य कलय ऋष्याद्यमरवन्दिते ।
ऋषिर्भुज्युः समाख्यातो मध्या छन्द उदीर्यते ॥५१॥
देवता गुह्यकाली च षट्चक्रं बीजमुच्यते ।
शक्तिश्च शक्तिसर्वस्वं शाम्भवं कीलकं मतम् ॥५२॥
कैवल्यपदलाभाय विनियोगः प्रकीर्त्यते ।

[कूटन्यासस्य सामान्योद्धारः]

आदौ सामान्यमुद्धारं शृण्वेतस्य समाहिता ॥५३॥
ततो विशेषं वक्ष्यामि येन भक्तिर्भ[व्यक्तीभ० ?]विष्यति ।
पञ्चबीजी तु पुरतः सर्वेषु मनुषु स्थिरा ॥५४॥
भिन्ना त्रिकूटी विज्ञेया देवि प्रतिमनु क्रमात् ।
स्थिरा त्रिबीजी तदनु प्रतिमन्त्रं वरानने ॥५५॥
शेषेऽस्त्रहृच्छिरांस्येवं कूटन्यासो व्यवस्थितः ।

[कूटन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषं कलयेदानीमेतस्य परमेश्वरि ॥५६॥
तारो रावश्च माया च योगिनी वनिता तथा ।
पञ्चबीजात्मिका रेखा स्थिरा सर्वत्र कीर्तिता ॥५७॥
अतश्चलां वै कूटालीं कीर्त्यमानां मया शृणु ।
शाम्भवं वामदेव्यं च माहेश्वरमतः परम् ॥५८॥
सद्योजातं तत्पुरुषं ततोऽघोरं वरानने ।
श्रीकण्ठमृत्युञ्जयौ च रौद्रमस्यानु पठ्यते ॥५९॥
खेचरीकूटमन्दारकूटं कूटं चे चाक्रिकम् ।
आदित्यं नाभसं चापि भानवं तदनु स्मृतम् ॥६०॥

उदयास्तमयौ कूटौ चण्ड[1]कूटमतः परम् ।
सृष्टिस्थित्याख्यसंहारकूटानि तदनन्तरम् ॥६१॥
हेमकूटं रत्नकूटं मणिकूटमतः परम् ।
अनाख्याख्यं महाकूटं भासा पुष्करमेव च ॥६२॥
पदक्रमजटाकूटान्येतस्यानन्तरं प्रिये[2] ।
सत्त्वकूटं रजःकूटं तमःकूटमतः परम् ॥६३॥
प्रासादध्वजमालाख्यकूटान्यस्यानु भामिनि ।
कूटं यत् कुण्डलिन्याख्यं स्वाधिष्ठानाख्ययुग्मकम् ॥६४॥
तस्यानु कूटोपपदा डाकिनी[3]वक्त्रदृष्टयः ।
ऋग्यजुःसामकूटानि कथितानि ततः परम् ॥६५॥
मेरुगह्वरकैलासकूटानीतः परं प्रिये ।
कूटं रथन्तरं ज्येष्ठकूटमाथर्वणं तथा ॥६६॥
वर्णकूटं मन्त्रकूटं तथा समयकूटकम् ।
कूटं धौमावत्यसंज्ञं प्रभा ज्योतिर्मयं तथा ॥६७॥
वैराग्यैश्वर्यधर्माख्यास्त्रयः कूटास्ततः परम् ।
रागद्वेषविपाकाख्याः[4] कूटा एषामनुस्मृताः ॥६८॥
वाजपेयः षोडशी च पुण्डरीकस्ततः परम् ।
अहङ्कारो मनो बुद्धिः कूटत्रयमितः परम् ॥६९॥
राजसूयोऽश्वमेधश्च विश्वजित्तदनन्तरम् ।
अद्वैतवासनायोगभूमिकूटान्यतः परम् ॥७०॥
जीवात्मपरमात्मानावद्वैतं कूटमेव च ।
ऐकात्म्यमथ निर्वाणं महानिर्वाणमेव च ॥७१॥
सप्तविंशतिसंख्याका रेखेत्थं त्रित्रिकूटिका ।
अथ त्रिबीजां पाश्चात्त्यां स्थिरां समवधारय ॥७२॥

---

१. चन्द्र ख । २. इतः परं नव पंक्तयः ख पुस्तके न दृश्यन्ते ।
३. वज्र घ । ४. विपाशाख्याः क ।

शाकिनी डाकिनी क्रोधा इति न्यासः स्फुटोऽभवत् ।
न्यसनीयस्थानमितः परं कलय भामिनि ॥७३॥

[कूटन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः]

पादौ जंघायुगं चापि जानुनी ऊरुयुग्मकम् ।
लिङ्गं च जठरं चापि वक्षोंऽसयुगलं तथा ॥७४॥
हनू कपोलौ दन्ताश्च नेत्रे कर्णौ तथैव च ।
नासापुटे भ्रुवौ शङ्खौ शिरश्चापि शिखा तथा ॥७५॥
मणि[व ?]न्धकक्षपृष्ठानि कटिर्दक्षकरादयः ।
तथा वामकरादिश्च दक्षपादादिरेव च ॥७६॥
वामपादादिरस्यानु कथितः परमेश्वरि ।
व्यापकं सर्वशारीरं प्रोक्ता स्थानस्थितिः स्थिरा ॥७७॥

[कूटन्यासस्य माहात्म्यकीर्तनम्]

निर्वाणं प्रविविक्षूणामयमेकः परायणम् ।
सिद्धिदाता भोगदाता मोक्षदाता तथैव च ॥७८॥
यतीनां च गृहस्थानां सर्वथैवामृतप्रदा ।
कूटन्यासो हि कौलानामपि काम्यानुवर्तिनाम् ॥७९॥

[क्रमन्यासोद्देशः]

अथ शृणु क्रमन्यासं क्रमो येन हि बुद्ध्यते ।
स क्रमः कीदृगिति चेत्तदुत्तरपदं शृणु ॥८०॥
आम्नायास्तु सुरेशानि षडेव प्रतिपादिताः ।
तेष्वाम्नायेषु सर्वेषु मन्त्रा उक्ताः पृथक् पृथक् ॥८१॥
देव्यश्च तत्तन्मन्त्राणां सौम्योग्रास्तेषु चेरिताः ।
तासां तत्तद्ध्यानपूजास्तेष्वेव प्रतिपादिताः ॥८२॥
येन क्रमेण कथितः स क्रमः क्रम उच्यते ।
सोऽत्र तिष्ठति वै न्यासे तेन न्यासः क्रमाह्वयः ॥८३॥
यावान् क्रमः क्रमन्यासे वर्तते त्रिदशेश्वरि ।
तावान् क्रमो मया वाच्यो न न्यूनो नाधिकोऽपि च ॥८४॥
विस्तरेण तदुल्लेखे भवेदप्रस्तुताभिधा ।
या या देवी यदाम्नायसमयप्रतिपादिता ॥८५॥

आविर्भूता यथा चापि यस्या यस्याः शरीरतः ।
क्रमेऽमुष्मिन् प्रब्रवीमि तमेव त्रिदशेश्वरि ॥८६॥
एतस्य चानुसन्धेयो विस्तरो डामरादिषु ।

[क्रमन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

क्रमन्यासस्य देवेशि संवर्त ऋषिरीरितः ॥८७॥
प्रतिष्ठा छन्द आख्यातं षडाम्नायस्थशब्दतः ।
वदेद्देव्यो देवताश्च फेत्कारी बीजमुच्यते ॥८८॥
कुटिला शक्तिरुदिता हारिणी[1] कीलकं मतम् ।
विनियोगस्तु वै मन्त्रः क्रमन्यासे प्रकीर्तितः ॥८९॥
नास्य सामान्यमुद्धारो न विशेषो वरानने ।
षडेव मन्त्राः षट्स्थानान्येवमाह पुरद्विषः ॥९०॥

[क्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

तांश्च तानि क्रमाद् वक्ष्ये सावधाना निशामय ।

[पूर्वाम्नायस्थषोडशदेवीनां मन्त्राः]

तारो मैधो[2] रमा कामो वधूर्लज्जाङ्कुशः कला ॥९१॥
किन्नरश्चेति बीजानि नवैव प्रथमं प्रिये ।
चण्डेश्वर्याश्च संबुद्धिरतः परमुदीरिता ॥९२॥
योगिनी शाकिनी क्रोधा [धश्चा ?] अस्त्रशीर्षे ततः परम् ।
वेदादिभौवनेशी च लक्ष्मीरोषाङ्कुशास्तथा ॥९३॥
काली वधूश्च कामश्च कूटं तदनु शाम्भवम् ।
भैरवीकूटमस्यानु माहेश्वरमतः परम् ॥९४॥
परापरं ततः कूटं तदनु व्योमकूटकम् ।
चण्डेश्वरीति तदनु खेचरी योगिनी तथा ॥९५॥
शाकिनीगारुडौ द्वे द्वे रोषास्त्रे शिर एव च ।
तारचैतन्यमायाश्रीकामाः काली तथैव च ॥९६॥
पाशाङ्कुशौ चण्डरोषमहारोषास्ततः परम् ।
फेत्कारी शाकिनी चेति बीजान्यादौ त्रयोदश ॥९७॥

---

१. हाकिनी ख ग । २. मैधं ङ ।

हरसिद्धे सर्वसिद्धिं ततः कुरुयुगं प्रिये ।
देहि द्वयं दापय च द्वितयं तदनन्तरम् ॥९८॥
कूर्चद्वयं फट्त्रयं[1] च स्वाहैकं परिपठ्यते ।
मैधत्रपारमाकामफेत्कारीरोषसंज्ञकाः ॥९९॥
संबुद्धिः कुक्कुटीत्येवं कालीपाशाङ्कुशास्ततः ।
रावचण्डावस्त्रयुग्मं स्वाहा तदनु भामिनि ॥१००॥
वेदादिरङ्कुशस्तार्क्ष्यः फेत्कारी रुट् च योगिनी ।
फेत्कारीति ततो देयं संबोधनपदं प्रिये ॥१०१॥
ददद्वयं देहि चैकं दापयैकं शिरोऽपि च ।
चैतन्यप्रेतडाकिन्यो युगान्तस्तदनन्तरम् ॥१०२॥
वाडवं कूटमस्यानु एह्येहि भगवत्यपि ।
वाभ्रवीति पदं पश्चान्महाप्रलयशब्दतः ॥१०३॥
तथा ताण्डवशब्दाच्च कारिणीति प्रविन्यसेत् ।
गगनग्रासिनि पदं ततः परमुदीरयेत् ॥१०४॥
मायाकूर्चौ योगिनी च वधूः शाकिन्यनन्तरम् ।
शत्रून् हन युगं चापि सर्वैश्वर्यं दद द्वयम् ॥१०५॥
महोत्पातानिति प्रोच्य विध्वंसययुगं वदेत् ।
सर्वरोगानिति प्रोच्य नाशयद्वितयं तथा ॥१०६॥
वेदादिलक्ष्मीकामप्रासादपाशास्ततः परम् ।
महाकृत्याभिचारानु ग्रहदोषानितीरयेत् ॥१०७॥
निवारय[2]युगं प्रोच्य मथद्वन्द्वमुदीरयेत् ।
सृणिकालामृतं प्रोच्य प्रलयं तदनूद्धरेत् ॥१०८॥
फेत्कारी वह्निजाया च तारलक्ष्मीत्रपास्मराः ।
वधूरावरुडस्त्राणि ब्रह्मवेतालराक्षसि ॥१०९॥
कालीमहाक्रोधचण्डास्ततः परमुदीरयेत् ।
ततो वदेद् विष्णुशरावतंसिक इति प्रिये ॥११०॥

---

१. कूर्चत्रयं फट्द्वयं च घ ङ । २. निरोधय ग घ ।

ततो योगिनि प्रेतामा महारुद्रपदं ततः ।
कुणपारूढ इति च वाग्भवः पाश एव च ॥१११॥
[1]प्रासादः फट्त्रयं चापि नमः स्वाहा ततः परम्[1]।
तारमाये कूर्चमैधे लक्ष्मीकामौ तथैव च ॥११२॥
पाशाङ्कुशौ च प्रासादस्ततो भगवतीति च ।
महाघोरकरालिन्यनु तामसि समुद्धरेत् ॥११३॥
महाप्रलयशब्दाच्च ताण्डविन्यपि कीर्तयेत् ।
ततो दद्यात् सुरेशानि चर्चरीकरतालिके ॥११४॥
जयद्वयं जननि च जृम्भयुग्ममतः परम् ।
महाकालीति संलिख्य प्रवदेत् कालनाशिनि ॥११५॥
भ्रमरि भ्रामरि प्रोच्य डमरुभ्रामिणीति च ।
चैतन्यानङ्गभूतानि योगिनी स्त्री च शाकिनी ॥११६॥
डाकिनी प्रलयश्चापि [2]फेत्कार्यस्त्रे नमः शिरः ।
कालीवेदादिरुड्रावबधूचण्डाः क्रमादिमे ॥११७॥
चण्डखेचरि संलिख्य ज्वलयुग्ममुदीरयेत् ।
प्रज्वलद्वितयं चापि ततो निर्मांसशब्दतः ॥११८॥
देहे हृच्छिरसी चापि प्रणवः कुलकामिनी ।
कामकूर्चौ भगवति महाडामरि चोद्धरेत् ॥११९॥
ततो डमरुहस्ते च नीलपीतमुखीत्यपि ।
जीवब्रह्मगलेत्युक्त्वा निष्पेषिणि समुद्धरेत् ॥१२०॥
योगिनीवनितारावडाकिन्यस्तदनन्तरम् ।
महाश्मशानरङ्गानु चर्चरीगायिके वदेत् ॥१२१॥
तुरुद्वन्द्वं मर्दयुगं मर्दयद्वितयं तथा ।
फेत्कारीबीजतः स्वाहा तारह्रीपाशबीजतः ॥१२२॥
त्रिलोकीवन्दिते ङेऽन्ता कर्तव्या शबरेश्वरी ।
[3]शेषे नमः कुलवधूः पद्मावति शिरस्तथा ॥१२३॥

---

१. इतः सप्त पंक्तयः ख ग पुस्तकयोर्न सन्ति । २. फेत्कार्यै नमः शिरः ख ग ।
३. इतः नव पङ्क्तयः ग घ पुस्तकयोः न सन्ति ।

तारो रमा त्रपा लक्ष्मीः कमले कमलालये ।
प्रसीद द्वितयं चापि रमयोरन्तरे त्रपा ॥१२४॥
महालक्ष्मीस्ततो ङेऽन्ता शेषे हृन्मन्त्रसंयुता ।
प्रणवानु प्रभाबीजं बगलामुखि चेत्यपि ॥१२५॥
ततश्च सर्वदुष्टानां मुखं वाचं समुद्धरेत् ।
स्तम्भय प्रोच्य जिह्वां च कीलय द्वितयं वदेत् ॥१२६॥
[1]बुद्धिं नाशय संकीर्त्य प्रभां तारं शिरोऽपि च ।
तारं हृदयमन्त्रश्च [2]श्वेतशब्दानु कीर्तयेत् ॥१२७॥
[3]पुण्डरीकासनायै च ततः प्रतिपदादनु ।
तथा समरशब्दानु विजयानु च सुन्दरि ॥१२८॥
प्रदायै भगवत्यै च ङेऽन्ता चैवापराजिता ।
लज्जालक्ष्मीस्मराश्चास्त्रं शिरः प्रणव एव च ॥१२९॥
तारमैधौ पाशकाल्यौ लक्ष्मीकामरुषस्ततः ।
शाकिनी डाकिनी चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥१३०॥
पिङ्गलायाश्च संबुद्धिर्वारिद्वयमतः परम् ।
ततो महापिङ्गले च अस्थिभेदि त्रयम्बिकम्(?) ॥१३१॥
कूर्चद्वयं चास्त्रयुगं शीर्षं शेषे विनिःक्षिपेत् ।
तारमायाक्षेत्रपालाङ्कुशाश्चापि गुडत्रयम् ॥१३२॥
हयग्रीवेश्वरि ततश्चतुर्वेदमयीत्यपि ।
शाकिनीयोगिनीकान्ताकूर्च्चास्तदनु भामिनि ॥१३३॥
ततश्च सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानमीश्वरि ।
कुरुद्वन्द्वं शिरस्तारस्ततः संपुटकृन्मनुः ॥१३४॥
मैधत्रपारमाकामवधूरोषाश्च योगिनी ।
प्रेतो भैरव्यपि शिवे शाकिनी[4] डाकिनी तथा ॥१३५॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी क्रोधास्त्रे शिर एव च ।
मनूनेतावतः स्मृत्वा दक्षपार्श्वे प्रविन्यसेत् ॥१३६॥

---

१. बृद्धि ङ ।
२. शिरः प्रणव एव च क ।
३. इतश्चतस्रः पंक्तयः क पुस्तके न सन्ति ।
४. डाकिनी शाकिनी तथा क ।

पूर्वाम्नायस्थिता देव्य एताः षोडश कीर्तिताः ।
क्रमेण तत्तद्देवीभ्यस्तास्ताः देव्यो विनिर्गताः ॥१३७॥
[1]तत्तद्देवीमनुभ्यस्तु तत्तन्मन्त्रा अपि प्रिये ।
एताः षोडश विज्ञेयाः पूर्वाम्नायस्य पालिकाः ॥१३८॥
तत्तत्क्रमस्य योगेन क्रमन्यासोऽभिधीयते ।

[दक्षिणाम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

अतस्त्वं दक्षिणाम्नायदेवीमन्त्रान् निबोध मे ॥१३९॥
यस्याद्यभूता मातङ्गी सद्यो विश्ववशंकरी ।
अत्रापि पूर्ववज्ज्ञेयो मन्त्राणां संपुटः शिवे ॥१४०॥
तारो रमा स्मरो माया योगिनी शाकिनी रुषः ।
द्विः स्फुर प्रस्फुरयुगं सान्निध्यं कुरु युग्मकम् ॥१४१॥
कूर्चास्त्रशीर्षाण्यन्ते च तत्तन्मन्त्रास्ततोऽनु च ।
मैधमायारमातारा नमो भगवतीति च ॥१४२॥
मातङ्गेश्वरि संकीर्त्य ततः सर्वजनाक्षरात् ।
मनोहरि ततः सर्वमुखरञ्जनि चेत्यपि ॥१४३॥
सर्वराजवशङ्कर्यनु सर्वस्त्रीपदं स्मरेत् ।
पुनः पुरुषशब्दानु वशङ्करि समुद्धरेत् ॥१४४॥
सर्वदुष्टमृगेत्युक्त्वा वशङ्करि ततोऽप्यनु ।
सर्वग्रहपदाद्देवि सर्वसत्त्वपदादपि ॥१४५॥
वशंकरीति प्रत्येकं ततः परमुदीरयेत् ।
सर्वलोकममुं मे च वशमानय चेत्यपि ॥१४६॥
शिरः शेषे ततो माया नमो भगवतीति च ।
माहेश्वरि विसन्ध्युक्त्वा अन्नपूर्णे शिरस्तथा ॥१४७॥
पाशमायाङ्कुशास्तारत्रपालक्ष्मीरुषः स्मरः[2] ।
पाशो ङेऽन्ता ततोऽप्यश्वारूढास्त्रद्वितयं[3] शिरः ॥१४८॥

---

१. इयं पंक्तिः ग घ पुस्तकयोर्नास्ति । २. स्मृतः ख ।
३. त्रितयं क ।

ज्वलयुग्मं शूलिनि च ततो दुष्टग्रहं वदेत् ।
[1]ग्रस संकीर्त्य शीर्षं च रमालज्जास्मरास्ततः ॥१४९॥
तारो माया मैधमाये तारो ङेऽन्ता सरस्वती ।
हृन्मन्त्रश्च ततस्तारो माया च कमला स्मरः ॥१५०॥
प्रासादश्च सृणिश्चापि [2]वज्रप्रस्तारिणीति च ।
स्वाहा तारो भौवनेशी कूर्चः पाशोऽङ्कुशस्तथा ॥१५१॥
वधूः क्रोधः क्षेत्रपालः कुलनारी फडन्तिमा ।
तारमैधत्रपा नित्यक्लिन्नेऽनु च मदद्रवे ॥१५२॥
वाग्भवो भौवनेशी च स्वाहा च तदनन्तरम् ।
कूर्चो द्रोहश्च विशिरा [?] ब्रध्नो मैधस्य पञ्चकम् ॥१५३॥
ततो दद्यान्मुण्डमधुमत्यै[3] इति पदं प्रिये ।
तस्यानु शक्तिभूतिन्यै त्रपात्रितयमस्त्रयुक् ॥१५४॥
तारमैधे च समरपदाद् विजयदायिनि ।
मत्तमातङ्गयायिन्यनु श्रीपाशकुलाङ्गनाः ॥१५५॥
ततो भगवतीत्युक्त्वा जयन्ति समरे जयम् ।
देहि द्वयं समाभाष्य मम शत्रूनितीरयेत् ॥१५६॥
विध्वंसय युगं विद्रावय द्वन्द्वं ततः परम् ।
भञ्जयुग्मं ततो ज्ञेयं मर्दय द्वितयं तथा ॥१५७॥
तुरुद्वयं रमा कामवध्वौ हृच्छिर एव च ।
प्रणवो वाग्भवश्चापि ततो रक्ताम्बरे पदम् ॥१५८॥
अस्यानु कथयेद्देवि रक्त[4]स्रगनुलेपने ।
महामांसपदाद्रक्तप्रिये तदनु च प्रिये ॥१५९॥
महाकान्तारतो ङ्यन्तान् मां त्राहि द्वितयं ततः ।
कमलाकाममायारुद्रा[5]वास्त्राणि शिरस्ततः ॥१६०॥
मायाश्रमस्ततश्चार्थं ऋतम्भर इतः परम् ।
सङ्कटा देवि चोल्लिख्य संकटेभ्यो वदेत्ततः ॥१६१॥

---

१. ग्रह (?) ग घ । २. रत्न प्र० फ । ३. मेरुमत्यै (?) ख ग घ ।
४. चतुः क । ५. रुद्रनाराचास्त्राणि ।

मामुक्त्वा तारय युगं कमला काम एव च ।
प्रासादकूर्चपाशाश्च शेषे फट् वह्निवल्लभा ॥१६२॥
वदद्वयं समाभाष्य वाग्वादिनि समुद्धरेत् ।
कुलिकं बीजमुच्चार्य क्लिन्नक्लेदिनि कीर्तयेत् ॥१६३॥
महाक्षोभं कुरु ततो कल्पबीजं च तारयुक् ।
मोक्षं कुरु ततः शेषे कुलिकं बीजमुच्यते ॥१६४॥
तारो मैधं तथा काली कूर्चं माया स्मरस्ततः ।
मेखलामौञ्जिकुण्डानि रागसारसभद्रिकाः ॥१६५॥
दृष्टिं निवेशय द्वन्द्वं कूर्चास्त्रे वह्निवल्लभा ।
ऊर्ध्वं संपुटमुन्नेयं षड्विंशतिभिरक्षरैः ॥१६६॥
एताः षोडश वै देव्यो दक्षिणाम्नायगोचराः ।
क्रमेण निर्गतास्तत्तद्देवीतः कमलानने ॥१६७॥
आसां मन्त्रास्तथैवैते तत्तन्मन्त्रेभ्य उद्गताः ।
पार्श्वे तु दक्षिणे न्यस्येन्मन्त्रान् षोडश साधकः ॥१६८॥

[प्रतीच्याम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

प्रतीच्याम्नायगाः सर्वाः क्रमन्यासे निशामय ।
तत्राधः संपुटं वक्ष्ये बीजवर्णपुरस्कृतम् ॥१६९॥
तारो मैधञ्च पाशश्च त्रपा योगिन्यमाक्रुधः ।
हारिण्युत्कोचिनीनादान्तकचामरसौमताः ॥१७०॥
द्वादशैतानि बीजानि पुरतः प्रतिविन्यसेत् ।
ततो भगवति प्रोच्य आगच्छ द्वितयं ततः ॥१७१॥
ततो वदेत् सन्निहिता भवयुग्ममतः परम् ।
शाकिनी डाकिनी कृत्या कौलुञ्चः प्रकरी तथा ॥१७२॥
कूर्चमस्त्रं शिरश्चापि.............................. ।
सप्तविंशतिवर्णानि कथितानि मया तव ॥१७३॥
ऊनचत्वारिंशवर्णाः सर्वं एते प्रकीर्तिताः ।
सम्पुटस्थानथो मन्त्रवर्णान् मध्ये स्थितान् शृणु ॥१७४॥

प्रणवो वाग्भवो माया कामो लक्ष्मीश्च शाकिनी ।
प्रलयश्चापि फेत्कारीं सत्त्वकूटं ततः परम् ॥१७५॥
उक्त्वा भगवतीत्येवं विच्चे घोरे ततः परम् ।
श्री कुब्जिके च त्रेतार्णान् सान्वक्षौ कुलिकं तथा ॥१७६॥
पञ्चानामपि वर्गाणां यथोक्तान् पञ्च वर्णकान् ।
शेषगान् समनूद्धृत्य विसन्धि तदनन्तरम् ॥१७७॥
अघोरामुखि संलिख्य उषस्तृष्णापराधकान् ।
किणिद्वन्द्वं ततो विच्चे वधू रुट् प्रेत एव च ॥१७८॥
ततोऽनु पादुकामुक्त्वा पूजयामि नमः शिरः ।
अपारमाश्मृण्यनङ्गवधूवाग्भवगारुडाः ॥१७९॥
योगिनी शाकिनी काली फेत्कारी रुष एव च ।
अघोरे सिद्धिमुच्चार्य मे पदाद् देहि दापय ॥१८०॥
स्वाहा शेषे ततस्तारलक्ष्मीपाशाङ्कुशस्मराः ।
कूर्चस्ततोऽनु धनदा समाधिस्तदनन्तरम् ॥१८१॥
एकानंशे समुल्लिख्य डमरु डामरि स्मरेत् ।
नीलाम्बरे नीलपदाद् विभूषण इतीरयेत् ॥१८२॥
नीलनागासने प्रोच्य सकलानु सुरासुरान् ।
[1]वशे ततः कुरु युगं जल्पिके कल्पिके[2] तथा ॥१८३॥
सिद्धिदे वृद्धिदे चापि योगिनीस्त्रीरुषः स्मरः ।
रावप्रासादास्त्रशीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ॥१८४॥
तारो हृन्मन्त्रसंयुक्तश्चामुण्डे सन्धिनान्वितः ।
करङ्किणि समाभाष्य करङ्कपदमीरयेत् ॥१८५॥
मालाधारिणितः किं किं विलम्बस इतीरयेत् ।
ततो भगवतीत्युक्त्वा शुष्काननि समुच्चरेत् ॥१८६॥
कौरजद्वितयं बिन्दुरहितं तदनन्तरम् ।
ततो निःसन्ध्यन्त्रकरावदनद्धे [वनद्धे ?] भो युगं तथा ॥१८७॥

---

१. वशं ग घ ।   २. जल्पिके ख ग ।

वला द्वन्द्वं ततः कृष्णभुजङ्गपदमुद्धरेत् ।
तस्यानु वेष्टिततनुसंबुद्धिस्तदनन्तरम् ॥१८८॥
ज्ञेयो लम्बकपालाया हुड्‌डयुग्ममतः परम्[१] ।
हट्टद्वन्द्वं पटयुगं पताकाहस्त इत्यपि ॥१८९॥
ज्वल ज्वल समाभाष्य ज्वालामुखि ततो वदेत् ।
विसन्ध्यवर्णतो निष्कं तर्जनीत्रितयं प्रिये ॥१९०॥
खट्‌वाङ्गधारिण्युक्त्वा च हाहा चट्टयुगं ततः ।
हूं हूं केवलवर्णं हि न तु बीजं वरानने ॥१९१॥
अट्टाट्टहासिनि ततः उड्ड उड्ड ततः परम् ।
सन्धानरहितावेतौ पूर्वत्र च परत्र च ॥१९२॥
ततो वेतालमुखि च सिकिद्वन्द्वमितोऽप्यनु ।
स्फुलिङ्गपिङ्गलाक्षीति ततश्चल चलेत्यपि ॥१९३॥
चालय द्वितयस्यानु करङ्कपदमीश्वरि ।
नमोऽस्तु ते मालिनितः स्वाहा शेषे निगद्यते ॥१९४॥
मैधमायारमापाशा अमृतं कलया सह ।
पाशश्च पद्मकूटं च नमो भगवतीति च ॥१९५॥
वार्तालि द्वितयं चापि वाराहि युगलं तथा ।
वराहमुख्यपि द्विश्च ततो मैंधामृते प्रिये ॥१९६॥
अन्धे अन्धिनि हृन्मन्त्रो रुन्धे रुन्धिनि हृन्मनुः ।
जम्भे जम्भिन्यनु नमो मोहे मोहिन्यतो नमः ॥१९७॥
एतद् विसन्धि त्रितयं स्तम्भे स्तम्भिनि वै नमः ।
सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्वशब्दतः ॥१९८॥
वाक्चित्तचक्षुःश्रोत्रमुखगतिजिह्वापदं ततः ।
स्तम्भं कुरु युगं शीघ्रं वशं कुरु युगं ततः ॥१९९॥
चैतन्यकालीकमलाश्छिन्नसर्गा पिशाचिनी ।
पञ्चाकृतिधरा तारामाक्रोधास्त्रशिरांसि च ॥२००॥

---

१. इतः नव पंक्तयः क पुस्तके न सन्ति ।

भौवनेशी शाकिनी च डाकिनी काम एव च ।
पूर्णेश्वरीति संकीर्त्यं सर्वान् कामांश्च पूरय ॥२०१॥
तारास्त्रशीर्षाण्यन्ते च वासिष्ठं कूटमन्वतः ।
उग्रस्वप्नावतीकूटौ कूटं वै कालिकं तथा ॥२०२॥
वेदादिमायाशाकिन्यः क्रोधबीजं ततः परम् ।
महादिगम्बरीत्युक्त्वा मैधश्रीकामपाशकाः ॥२०३॥
मुक्तकेशी [शि] ततश्चण्डाट्टहासिनि समुद्धरेत् ।
योगिनीकामिनीकालीपीयूषानि यथाक्रमम् ॥२०४॥
मुण्डमालिन्यतस्तारः स्वाहा च तदनन्तरम् ।
मायारमाङ्कुशानङ्गवधूवाग्भवगारुडाः ॥२०५॥
योगिनी शाकिनी काली फेत्कारी रुष एव च ।
अघोरेऽनु च सिद्धिं मे देहि दापय मस्तकाः ॥२०६॥
कालीद्वयं चतूरोषी सृणित्रितयमेव च ।
रमायुगं त्रपायुग्मं योगिनी शाकिनी वधूः ॥२०७॥
चण्डघण्टे ततः शत्रून् जम्भय द्वितयं ततः ।
मारयद्वितयं चापि कूर्चास्त्रे शिर एव च ॥२०८॥
वेदादिमैधपाशश्रीकूर्चाङ्कुशमहारुषः ।
कालीतार्क्ष्यौ शाकिनी चानङ्गमाले स्त्रियं ततः ॥२०९॥
विसन्ध्याकर्षय युगं त्रुट च्छेदय पूर्ववत् ।
द्वे रुषौ द्वे तथास्त्रे च शिर एकमतः परम् ॥२१०॥
तारमैधे पाशकलासर्वा एह्येहि तत्परम् ।
ततो नु स्याद् भगवति किरातेश्वरि चेत्यपि ॥२११॥
ततो विपिनशब्दानु कुसुमानु तथैव च ।
वतंसितानुकर्णे च पादाद् भुजगतस्ततः ॥२१२॥
निर्मोककञ्चुकिन्येव त्रपा राका युगं युगम् ।
कह ज्वल प्रज्वल च द्वितयं द्वितयं द्वयम् ॥२१३॥
सर्वसिद्धिं दद युगं तद्वद्देहि च दापय ।
सर्वशत्रून् दहद्वन्द्वं बन्धयुग्मं पचद्वयम् ॥२१४॥

मथ विध्वंसय तथा युगं युगमुदीरयेत् ।
त्रिकूर्चास्त्रं नमः शीर्षं वेदादिः कुलकामिनी ॥२१५॥
गुडाध्वानौ महाविद्ये विश्वं मोहय पूर्वगम् ।
चैतन्यकमलानङ्गास्त्रैलोक्यं तदनन्तरम् ॥२१६॥
ससन्ध्यावेशय ततो रोषोऽन्वस्त्रयुगं शिरः ।
[1]पाशः कला सर्वमैधाश्वत्थाश्च तदनन्तरम् ॥२१७॥
ङेऽन्ता क्षेमङ्करी चापि स्वाहा शेषे भवेत् प्रिये ।
प्रणवो भौवनेशी च लक्ष्मीः कामश्च योगिनी ॥२१८॥
वधूः सिद्धा रक्तपा च कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
करालिनि समाभाष्य ततो मायूरि कीर्तयेत् ॥२१९॥
शिखिपिच्छिकाहस्त इति खेचरीमेघविद्युतः ।
ऋक्षकर्णीति संलिख्य जालन्धरि ततः परम् ॥२२०॥
मा मां द्विषन्तु तदनु शत्रवो न तुदन्तु च ।
ततो भूपतयः प्रोच्य भयं मोचय सन्धियुक् ॥२२१॥
हूं फट् स्वाहा सर्वशेषे तारः काली च शाकिनी ।
उक्त्वा वेतालमुखि च चर्चिके तदनन्तरम् ॥२२२॥
क्रोधबीजं योगिनी च बधूबीजमतः परम् ।
ज्वालामालिनि पदाद् विस्फुलिङ्गानु वमनीत्यपि ॥२२३॥
महाकापालिनि ततः कात्यायनि तथैव च ।
कमलानङ्गडाकिन्यः कह युग्मं धमद्वयम् ॥२२४॥
ग्रसद्वन्द्वं पाशश्रृणिप्रासादास्तदनन्तरम् ।
नरमांसाच्च रुधिरपरिपूरितशब्दतः ॥२२५॥
कपालेऽमा मेघशक्ती कूर्चानि त्रीणि फड्युगम् ।
स्वाहैकं संपुटमथो शृणु त्वमधरं प्रिये ॥२२६॥
मायानङ्गौ मैधतारौ भोगनेत्रे तथैव च ।
दुष्कृतं पद्मसुरससमरास्तदनन्तरम् ॥२२७॥

---

१. इतः षट् पङ्क्तयः ख ग पुस्तकयोर्न दृश्यन्ते ।

तन्त्रा च कुटिला चैव चर्पटं मणिमालया ।
नादान्तकश्चामरं च बीजानीमानि षोडश ॥२२८॥
ततो वदेद् भगवति महाबलपराक्रमे ।
एह्येहि सान्निध्यमिति कुरुयुग्ममतः परम् ॥२२९॥
कूर्चे अस्त्रे समुच्चार्य मम सर्वमनोरथान् ।
पूरय द्वितयं प्रोच्य पालय द्वितयं वदेत् ॥२३०॥
मां रक्ष युगलं सर्वोपद्रवेभ्यस्ततः परम् ।
शिरः शेषे समाभाष्य पिचिण्डां प्रतिविन्यसेत् ॥२३१॥
एता वै पश्चिमाम्नायदेव्यो मन्त्राश्च तादृशाः ।

[उत्तराम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

इदानीमुत्तराम्नायदेवीराकलय प्रिये ॥२३२॥
यासामाद्या भगवती गुह्यकाली भयानका ।
तत्रादौ संपुटं वच्मि विस्तरादधरेतरम्[1] ॥२३३॥
मैधं रावं तारलज्जे ततो दण्डादिपञ्चकम् ।
रावःामेपौ शिलपरागौ विव्रत्सादिद्वयं ततः[2] ॥२३४॥
ततः सामयिकं कूटं वार्णिकं भैरवं तथा ।
गह्वरं मन्त्रकूटं च पञ्चमे[?]क्रमशः प्रिये ॥१३५॥
महाकल्पस्थायिबीजं शाम्भवं वज्रवर्म च ।
जगदावृत्तिकं ब्रह्मकपालं तदनन्तरम् ॥२३६॥
जययुग्मं जीवयुगं ज्वल प्रज्वल तत्समम् ।
महाभैरवशब्दानु शिवासनपदादनु ॥२३७॥
संविष्टे विकरालानु रूपधारिणि कीर्तयेत् ।
मेखलादिचतुष्कं च कूर्चमस्त्र[3]द्वयं तथा ॥२३८॥
स्वाहा च चरमे चोर्द्ध्वं संपुटं परिकीर्तितम् ।
रमा माया च सानुश्च भोगः कूटोऽप्यनाहतः ॥२३९॥
ततोऽनु डाकिनीहारौ संहिता मेखलाऽपि च ।
ततश्च योषिद्योगिन्यौ पुनः सिद्धिकरालि च ॥२४०॥

---

१. ० दवधार्यताम् क । २. तपः ख । ३. मन्त्र ख ।

शेषेऽस्त्रं ह्रीकूर्चरावयोगिन्यः प्रेत एव च।
काली ततोऽङ्कुशं चापि शाकिनी वनिता तथा ॥२४१॥
रमा चण्डश्च कालश्च विद्युन्नागस्तथैव च।
स्वाहान्ते डाकिनी चापि फेत्कारी हार एव च ॥२४२॥
तारो माया च संविच्च चण्डयोगेश्वरीत्यपि।
ततः काली च रावश्च नमः शेषे नियोजयेत् ॥२४३॥
कमला भौवनेशी च चैतन्यं शक्तिरेव च।
आदित्यनादक्षेत्राणि पाशादनु कला तथा ॥२४४॥
सुबन्ता राजदेवी च राजलक्ष्मीरपि प्रिये।
भैरवी चापि मारीचमैधमायारमास्तथा ॥२४५॥
वेदादिमायाकमलाः प्रलयः प्रेत एव च।
तारलज्जाकूर्चरावास्ततो राज्यप्रदे इति ॥२४६॥
डाकिनी चापि फेत्कारी उग्रचण्डे ततो वदेत्।
रणमर्दिनि संकीर्त्य रुद्रावौ योगिनी वधूः ॥२४७॥
सदा रक्ष द्वयं त्वं मां कालादित्यौ ततः परम्।
ततो मृत्युहरे प्रोच्य नमः स्वाहा नियोजयेत् ॥२४८॥
वेदादिमायाहृन्मन्त्रास्ततः परमभीषणे[1]।
कूर्चयुग्मं करङ्काणीद् वदेत् कङ्कालमालिनि ॥२४९॥
शाकिनीद्वयतः कात्यायनिशब्दं विनिर्दिशेत्।
व्याघ्रचर्मावृतकटि कालीयुग्मं ततो वदेत् ॥२५०॥
श्मशानचारिणि प्रोच्य नृत्य नृत्य ततः परम्।
गाय युग्मं हस युगं हूं हूं कारानु नादिनि ॥२५१॥
उक्त्वाऽङ्कुशयुगं देवि शववाहिनि कीर्तयेत्।
मां रक्ष युगलं चापि फट्युगं क्रोधयोर्द्वयम् ॥२५२॥
हृच्छीर्षे तदनु ज्ञेये वाग्भवाः पञ्च तत्परे।
कामकूर्चरमामु[2]क्तास्ततो महिषमर्दिनि ॥२५३॥

---

१. परमुदीरयेत् ख। २. व्युक्त ० क।

एको नित्यः पञ्च मैधास्तारः कुम्भक एव च ।
प्रकृतिश्च तथा घ्राणस्ततो भगवतीति च ॥२५४॥
मर्यादादिश्च संहारकूटस्तदनु भामिनि ।
हिरण्यगर्भकूटं च चण्डहुङ्कारशब्दतः ॥२५५॥
कापालिनीति प्रवदेज्जय रङ्केश्वरीति च ।
ततोऽनु हृच्छिरो मन्त्रो मैधमायारमास्तथा ॥२५६॥
प्रलयः कुलिकं चापि तथेर्ष्या धारणाऽपि च ।
घ्राणो दण्डादित्रयं च संहारानाख्यकूटकौ ॥२५७॥
शिवशक्तिपदस्यान्ते दद्यात् समरसेति च ।
चण्डकापालेश्वरि च कूर्चो हृन्मन्त्रसंयुतः ॥२५८॥
बीजानि त्रीणि पुरतः एतस्यैवादिमानि हि ।
आदित्यकूटं तदनु ऋवर्णे [?] युगलं ततः ॥२५९॥
महासुवर्णपदतः कूटेश्वरि समालिखेत् ।
आदित्यकूटादारभ्य चत्वारि सुरवन्दिते ॥२६०॥
आद्यानि विपरीतानि हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ।
तारमैधरमामायाशाकिनीप्रेतकालिकाः ॥२६१॥
रण्डा नाडी हंससूक्तं कपिलो वर्ण एव च ।
दशैतान् पुरतः प्रोच्य जय वागीश्वरीरयेत् ॥२६२॥
ज्ञानं प्रकटय द्वन्द्वं बुद्धि मे देहि युग्मकम् ।
देविका तदिनी चापि हेमकूटमतः परम् ॥२६३॥
ज्ञानकूटं वाग्भवश्च योगिनीरावमन्मथाः ।
कूर्चोऽस्त्रयुगलं शीर्षं प्रणवः सृणिकालिके ॥२६४॥
रावचण्डौ योगिनी च खेचरी कूर्चं एव च ।
फेत्कारीचपलाकालरात्रिमायाभुजङ्गमाः ॥२६५॥
[1]महारोषखगाधीशौ बीजानीमानि षोडश ।
चामुण्डे ज्वलयुग्मं च हिलियुग्मं किलिद्वयम् ॥२६६॥

१. इतश्चतस्रः पङ्क्तयः क पुस्तके न सन्ति ।

मम शत्रूनिति प्रोच्यं त्रासय द्वितयं वदेत् ।
मारय द्वितयं चापि हनद्वन्द्वं पचद्वयम् ॥२६७॥
भक्षय द्वितयं प्रोच्य कालीयुग्मं त्रपायुगम् ।
क्रोधद्वितयमस्त्रस्य द्वितयं शिर एव च ॥२६८॥
मायानाकुलकूर्चास्त्राण्यतः परमुदीरयेत् ।
तारश्च कमला माया सारस्वतमतः परम् ॥२६९॥
वज्रवैरोचनीये च कूर्चद्वन्द्वास्त्रमस्तकाः ।
पञ्च सारस्वतानुक्त्वा त्रीणि कूर्चानि तत्परम् ॥२७०॥
हूं हूं कारपदाद् घोरनादवित्रासित प्रिये ।
जगत्त्रये समाभाष्य त्रपात्रितयमुद्धरेत् ॥२७१॥
प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते ।
त्रिकाम्याः पदविन्यासत्रासितेति प्रकीर्तयेत् ॥२७२॥
ततः सकलपाताले कमलात्रितयं ततः ।
ततो व्यापकशब्दानु शिवदूति समुद्धरेत् ॥२७३॥
पुनः परमशब्दानु शिवपर्यङ्कशायिनि ।
योगिनी त्रितयस्यान्ते गलद्रुधिरशब्दतः ॥२७४॥
मुण्डमालाधारिणि च घोरघोरतरेत्यपि ।
रूपिणि प्रोच्य रावाणां त्रितयं समुदीरयेत् ॥२७५॥
ज्वालामालि पदात् पिङ्गजटाजूटे समालिखेत् ।
विसन्ध्यचिन्त्यमहिमबलशब्दादनु प्रिये ॥२७६॥
प्रभावे त्रीणि वध्वाश्च दैत्यदानवशब्दतः ।
निकृन्तनीति सकलसुरकार्यानु साधिके ॥२७७॥
प्रणवत्रितयं चास्त्रं हृदा शीर्षेण चान्वितम् ।
वेदादिमायाकमलाकाममेधाङ्कुशाः क्रमात् ॥२७८॥
कालीपाशक्रोधमहाक्रोधप्रासादनामकाः ।
अमाताक्ष्यौं च फेत्कारी धनदाचण्डयोगिनी [?] ॥२७९॥
शाकिनी मेघचपले रतिप्रेतौ सभूतकौ ।
खेचरीकालनागाश्च बीजानां षट् च विंशतिः ॥२८०॥

कालसंकर्षिणि ततो रोषयुग्मं शिरोऽपि च ।
षट्[1]त्रिंशदक्षरो मन्त्रः सिद्धिलक्ष्मीभिदाभिधः ॥२८१॥
एताः षोड़श वै देव्य उत्तराम्नायगोचराः ।
अथोपरितनं वच्मि संपुटं कमलानने ॥२८२॥
मैधमायारमाकामयोगिन्यः शाकिनी तथा ।
दक्षिणाजम्भमन्दारचूडामणय एव च ॥२८३॥
स[2]न्तार[न]मौनवैकक्षसंवर्तकविवर्तकाः ।
पारीन्द्रश्च शुभंयुश्च जैमनादिचतुष्टयम् ॥२८४॥
विराधश्च तुरीया च मोदको वासिता तथा ।
पञ्चविंशतिबीजेभ्यः आगच्छद्वितयं लिखेत् ॥२८५॥
हस द्वयं वलायुगं महाकुणपभोजिनि ।
दृष्टि निवेशययुगं मायाप्रासादगारुडाः ॥२८६॥
नृसिंहप्रेतभैरव्यः कमलाशाकिनीरुषः ।
फट्त्रयं शिरसा युक्तं सर्वशेषे नियोजयेत् ॥२८७॥
हृदये विन्यसेद्देवि मनूनेतान् समुच्चरन् ।

[ऊर्ध्वाम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

अतः परं ब्रवीम्यन्या ऊर्ध्वाम्नायगताः शिवाः ॥२८८॥
देवी यत्सामादिभूता महात्रिपुरसुन्दरी ।
मोक्षलक्ष्मीः सर्वशेषे शेषेऽन्यास्तु चतुर्दश ॥२८९॥
आदावाकर्णय शिवे उपरिस्थितसंपुटम् ।
प्रणवत्रितयं मैधत्रितयं कमलास्मरौ ॥२९०॥
नक्षत्रविद्युतौ माया गर्भदीपौ च योगिनी ।
जयद्वन्द्वं जीवयुगं मम सर्वमनोरथान् ॥२९१॥
पूरय द्वितयं प्रोच्य वर्द्धय द्वितयं तथा ।
अधिष्ठानं कुरु युगं चर्पटादिचतुष्टयम् ॥२९२॥
कामवध्वौ पृथुनदौ हृदस्त्रे शिर एव च ।
पराकूटं च चित्कूटं ज्येष्ठकूटं तथैव च ॥२९३॥

---

१. षड्विंश ? क । २. संहार ० ख ।

मैंधानङ्गौ तथा प्रेतस्तारमैंधत्रपारमाः ।
कामो भगवति प्रोच्य महामोहिनि कीर्तयेत् ॥२६४॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीति सकलानु सुरासुर ।
मोहिन्यनु च वै दद्यात् सकलं जनमित्यपि ॥२६५॥
मोहय द्वितयं चापि वशीकुरु युगं तथा ।
कामाङ्गद्राविणि पदात् कामाङ्कुश इतीरयेत् ॥२६६॥
वधूत्रयात् कामरमे ह्रीमैंधप्रणवा अपि ।
चैतन्यकालीप्राणाश्च डाकिनीप्राणशाकिनीः ॥२६७॥
मैंधमायारमाश्चेति नव बीजानि पार्वति ।
[1]त्रैलोक्यविजयायै च नमः स्वाहा नियोजयेत् ॥२६८॥
शक्तिचूड़ाह्वयौ कूटौ फेत्कारी बीजमेव च ।
शाङ्करास्त्रं व्योमकूटं नादान्तकचतुष्टयम् ॥२६६॥
दाक्षिकं सौमतं चापि नित्येऽनित्यपदादनु ।
भोगप्रिये समाभाष्य नित्योदितपदादनु ॥३००॥
वैभवे पाशमायाश्रीकामप्रेताश्च भैरवी ।
कूर्चो नमश्च स्वाहा च तारो हृन्मन्त्र एव च ॥३०१॥
कामेश्वरि पदात् कामाङ्कुशे कामप्रदायिके ।
भगवत्यनु वै नीलपताके च भगान्तिके ॥३०२॥
रतिहृन्मन्त्रोऽस्तु ते च परमान्ते तथैव च ।
गुह्ये कूर्चत्रयं चापि मदने मदनान्तक ॥३०३॥
देहे त्रैलोक्यमिति च विसन्ध्यावेशये[2]रयेत् ।
रोषास्त्रशीर्षण्यन्ते च वेदादिर्मैंध एव च ॥३०४॥
पाशो माया ब्रह्म चापि ततः परमशब्दतः ।
हंसेश्वरि समालिख्य कैवल्यं साधयापि च ॥३०५॥
स्वाहा तोरश्च हृन्मन्त्रः प्रचण्डपदमन्वतः ।
घोरदावानलेत्युक्त्वा वासिन्यै तदनन्तरम् ॥३०६॥

---

१. इयं पङ्क्तिः ग घ पुस्तकयोर्नास्ति । २. °श एव च ख, ग ।

त्रपारोषौ च समयविद्याकुलपदं ततः ।
[1]पुनश्च तत्त्वधारिण्यै महामांसेत्यपि प्रिये ॥३०७॥
रुधिरेत्यपि संलिख्य प्रियायै बलिशब्दतः ।
योगिनी कामिनी कामो धूमावत्यै ततः परम् ॥३०८॥
सर्वज्ञतासिद्धिदायै रावास्त्रानलवल्लभा ।
तारपाशौ मैधमाये कमला तदनन्तरम् ॥३०९॥
शक्तिसौपर्णिकमलासने वर्णाभिधानतः ।
उच्चाटय द्वयं प्रोच्य विद्वेषय युगं वदेत् ॥३१०॥
हूं फट् स्वाहा सर्वशेषे तारकामामृतान्यपि ।
त्रपावधूकूर्चरावयोगिनीचण्डसंज्ञकाः ॥३११॥
ततो ङेऽन्ता च कामाख्या फट् स्वाहा तदनन्तरम् ।
चैतन्यपाशप्रासादाः प्रेतश्च सृणिरेव च ॥३१२॥
कालश्चतुरशीत्युक्त्वा कोटिमूर्तय ईरयेत् ।
ततो ङेऽन्ता विश्वरूपा ब्रह्माण्डजठरा तथा ॥३१३॥
तारः स्वाहा च चैतन्यमायाप्राणाश्च डाकिनी ।
प्राणरावौ मैधमायाकमलास्तदनन्तरम् ॥३१४॥
त्रैलोक्यविजया ङेऽन्ता नमः स्वाहा तथैव च ।
वेदादिर्मायाहृन्मन्त्राश्चित्राम्बर इतीति च ॥३१५॥
चिन्तामणिं प्रकटय परमर्द्धिं दद द्वयम् ।
गुह्याकूटं रत्नकूटं हेमकूटं तथैव च ॥३१६॥
योगिनी कामवनिता डाकिनी रुष एव च ।
फट् स्वाहा तदनु ज्ञेया प्रणवः काम एव च ॥३१७॥
दण्डः कामो ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसनशब्दतः ।
शीले महाविद्य इति मायाकूर्चौ प्रभा तथा ॥३१८॥
विष्णुमाये समाभाष्य क्षोभय द्वितयं लिखेत् ।
स्मराङ्कुशौ पाशप्रभे सर्वास्त्राणि ग्रसद्वयम् ॥३१९॥

---

१. इतः पंक्तित्रयम् क पुस्तके नास्ति ।

कूर्चास्त्रप्रणवानुक्त्वा प्रभा च बगलामुखि ।
सर्वशत्रून् समाभाष्य स्तम्भय द्वितयं ततः ॥३२०॥
ततश्च ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय ततः परम् ।
रोषानङ्गप्रभातारा हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ॥३२१॥
वेदादिभौ वनेशी च कमलात्रितयं ततः ।
द्वौ कामौ निर्विकारस्थचिदानन्दपदं ततः ॥३२२॥
धनरूपा ततो ङेऽन्ता [1]मोक्षलक्ष्मीस्तथैव च ।
ततोऽमितानन्तशक्तितत्त्वायै सन्धिवर्जितम् ॥३२३॥
द्वौ कामौ कमलास्तिस्रो माया प्रणव एव च ।
एवमूर्ध्वाम्नायसंस्थाः देव्यः षोडश कीर्तिताः ॥३२४॥
अधःसंपुटमीशानि शृण्वतः परमुत्तमम् ।
चैतन्यकमलाम्गायाप्रेता भैरव्यपि प्रिये ॥३२५॥
कौ[सौ ?]मतं दाक्षिको रागो भद्रिका कुशिकोऽव्ययः ।
मेरुत्रिकूटकैलासकूटानि तदनन्तरम् ॥३२६॥
ततश्च खेचरीमुद्रां पुनः प्रकटय द्वयम् ।
सान्निध्यमावेशय च योगिनीडाकिनी[2]रुषः ॥३२७॥
अस्त्रत्रितयसंयुक्तस्ततो हृच्छीर्षयोर्मनुः ।
एवं षोडशदेवीनां मनुभिः संपुटीकृतैः ॥३२८॥
ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेद्देवि सदोर्ध्वाम्नायगोचरैः ।

[अधआम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

निशामयाध आम्नायगोचरान् देवतामनून् ॥३२९॥
यस्याद्यभूता विख्याता भीमादेवी भयानका ।
आदौ संपुटमाख्यास्ये ऊर्ध्वस्थं सुरवन्दिते ॥३३०॥
चैतन्यपञ्चकं तारपञ्चकं पाशपञ्चकम् ।
मायालक्ष्मीकामवधूयोगिन्यः क्रोधरावकौ ॥३३१॥
डाकिनीप्रलयौ चापि फेत्कारी कृत्यया सह ।
स्फुर प्रस्फुर युग्मं च जय जीव तथैव च ॥३३२॥

---

१. कामो ख ग घ । २. शाकिनी ग ।

विसन्ध्येह्यहि तदनु भगवत्यपि कीर्तयेत् ।
कापालिनि समुल्लिख्य करालि तदनन्तरम् ॥३३३॥
विरूपमपरान्तं च त्र्यस्रः विरतिरेव[1] च ।
विमर्दशेखरौ चापि सर्वस्वं विप्रियं ततः ॥३३४॥
कुलमालावर्णमेरुकूटानि तदनन्तरम् ।
खण्डकेतू ततो बीजे सङ्गतिर्बर्हं एव च ॥३३५॥
कूर्चत्रयं फट्त्रयं च चरमे शिर एव च ।
मैधह्रीकमलाक्रोधकामरावाश्च योगिनी ॥३३६॥
वनिता चापि फेत्कारी भीमादेवि ततः परम् ।
भीमनादे समाभाष्य ततो भीमकरालि च ॥३३७॥
महाप्रलयचण्डानु लक्ष्मीः सिद्धेश्वरीरयेत् ।
बृहद्रथन्तरौ कूटौ ज्येष्ठकूटादनुस्मृतौ ॥३३८॥
महाघोरपदाद् घोरतरे भगवतीति च ।
भयहारिणि संकीर्त्य द्विषतस्तदनन्तरम् ॥३३९॥
निर्मूलय द्वयं सन्धियुतं विद्रावय द्वयम् ।
उत्सादय युगं चापि महाराज्यपदादनु ॥३४०॥
लक्ष्मीं वितर युग्मं च देहि द्वितयमेव च ।
दापय द्वयमस्यानु डाकिनीप्रलयावपि ॥३४१॥
अमाप्रेतौ पाशसृणी क्षेत्रपालस्ततोऽप्यनु ।
शक्तिप्रासादसंज्ञौ च जययुग्ममितोऽप्यनु ॥३४२॥
राक्षसक्षयकारिण्यनु तारह्रीरुषः क्रमात् ।
पिशाचिनीत्रयं[2] सर्गरहितं फट्त्रयं तथा ॥३४३॥
नमः स्वाहा च तदनु मैधमाये ततः परम् ।
पाशाङ्कुशौ भैरवी च कामबीजं ततः परम् ॥३४४॥
महाभोगिपदाद् राजभूषणे परिकीर्तयेत् ।
सृष्टिस्थितिप्रलयतः कारिण्यपि समुद्धरेत् ॥३४५॥

---

१. ० तिमेव ङ।   २. द्वयं ग।

हूं हूं कारपदान्नादभूरिदारिणि चेत्यपि ।
भगवत्यपि संलिख्य हाटकेश्वरि कीर्तयेत् ॥३४६॥
अमृतं शक्तिरानन्दो रौद्रो लक्ष्मीरपि क्रमात् ।
चैतन्यचण्डशाकिन्यो डाकिनीबीजमन्वतः ॥३४७॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य मारय द्वितयं लिखेत् ।
बन्धय द्वितयं चापि मर्दयद्वितयं तथा ॥३४८॥
ततः पातय युग्मं च चत्वार्येव क्रियापदम् ।
धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं देहि युगं ततः ३४९॥
दापय द्वितयं चापि मानसं वज्रमेव च ।
कापालमथ भारुण्डा प्रासादः पाश एव च ॥३५०॥
अङ्कुशो मैधतारौ च हृदयं शिर एव च ।
तारमैधरमामायारोषरावाश्च डाकिनी ॥३५१॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी संविच्चेति दश क्रमात् ।
ततः प्रविश संसारं महामाये च कीर्तयेत् ॥३५२॥
संविदस्त्रं ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि समुद्धरेत् ।
पुनश्च विष्णुतनुतो निर्दलिन्यपि पार्वति ॥३५३॥
श्रद्धा च जम्भिके पेटी स्तम्भिके तदनन्तरम् ।
छिन्धि युग्मं भिन्धियुगं दहद्वन्द्वं मथ द्वयम् ॥३५४॥
युगलं पञ्च वै पञ्चशवारूढे ततः परम् ।
पञ्चागमप्रिये मन्त्रे न तु संबोधनं तव ॥३५५॥
पीयूषशक्तिखेचर्यः कमलाकामसंविदः ।
पञ्च [1]पाशुपतास्त्रानु धारिण्यपि समुद्धरेत् ॥३५६॥
कूर्चत्रयं फट्युगं च शेषें चानलवल्लभा ।
चैतन्यपाशवेदादिहृन्मन्त्राः प्रथमं स्मृताः ॥३५७॥
परमाणञ्च शिवविपरीताचारकारिणि ।
भौवनेशीरमाकामयोगिनीवनिता अपि ॥३५८॥

---

१. पाण्डवतोऽस्त्रा ० ग ।

महाघोरपदं प्रोच्य विकरालिनि कीर्तयेत् ।
तस्यानु खण्डार्द्धशिरोधारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥३५९॥
भगवत्युग्र इति च शाकिनी डाकिनी ततः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी कूटः संहारनामकः ॥३६०॥
हैरण्यगर्भकूटश्च कूर्चास्त्रे शिर एव च ।
मायाकूर्चौ सर्वशेषे पाशलज्जारुषः स्मरः ॥३६१॥
कमलामेधताराश्च कालादित्यौ च शाकिनी ।
डाकिनीयोगतन्त्रादिचतुष्टयमतः परम् ॥३६२॥
त्र्यस्रस्य व्यञ्ज[ज ?]नस्यापि विमर्दस्यापि विस्मृतेः ।
सान्तस्य[?]त्रिदशेशानि युग्मं युग्मं युगं युगम् ॥३६३॥
ततश्च वज्रचण्डीति संबोधनमुदीर्यते ।
महाकापालिनि प्रोच्य मालिन्यपि कपालतः ॥३६४॥
कापालिकाचारपदात् प्रवर्तिनि पदं स्मृतम् ।
तुरुद्वन्द्वं धमयुगं गगनग्रासिनीत्यपि ॥३६५॥
महामाये महामायाप्रवर्तिन्यप्यतः परम् ।
सर्वैश्वर्यं देहि युगं दापय द्वितयं ततः ॥३६६॥
सर्वापदं समाभाष्य निर्मूलय युगं लिखेत् ।
ततोऽङ्कुशो गारुडश्च कालादित्यौ तथैव च ॥३६७॥
प्रेतश्च कुलिकश्चापि हूं फट् स्वाहा तथैव च ।
सारस्वतश्च वेदादित्रपाकामरमारुषः ॥३६८॥
समाधानादि चत्वारि गुप्ताचारादि च त्रयम् ।
संप्रदायादिद्वयं च ततोऽपायो निकारयुक् ॥३६९॥
ज्वालेश्वरि समालिख्य ज्वलज्ज्वलनवासिनि ।
चिताङ्गारपदस्यान्ते हारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥३७०॥
मृतचेलावृताणञ्च शरीरे समुदीरयेत् ।
ब्रह्मास्त्रं तदनु प्रोच्य वदेत् प्रकटयेति च ॥३७१॥
शत्रून् स्तम्भय युग्मं च मारय द्वितयं ततः ।
सर्वान् कामान् पूरय च द्वितयं प्रविभावयेत् ॥३७२॥

रोषत्रपास्त्रत्रितयं स्वाहा शेषे नियोजयेत् ।
पाशमायाङ्कुशप्रेतचण्डामृततडिद्रुषः ॥३७३॥
कुलेश्वरि समाभाष्य कौलिकानामितीरयेत् ।
[1]ततश्च सर्वसमयलाभं कुरु विभावयेत् ॥३७४॥
द्विषदो जहि युग्मं च हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ।
प्रणवो मैधमाये च मन्मथः कमलापि च ॥३७५॥
कालेश्वरि समाभाष्य ततः सर्वमुखाक्षरात् ।
स्तम्भिन्युक्त्वा सर्वजनमनोहरि समालिखेत् ॥३७६॥
पुनः सर्वजनं प्रोच्य वशङ्करि समादिशेत् ।
सर्वदुष्टार्णतो ब्रूयाद्देवि निर्दलिनीत्यपि ॥३७७॥
सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिण्युक्त्वा वै वन्दिशृङ्खलाम् ।
त्रोटय द्वितयं सर्वशत्रून् जम्भय युग्मकम् ॥३७८॥
द्विषानुच्चार्य तदनु द्वयं निर्दलयेरयेत् ।
सर्वान् स्तम्भय युग्मं च मोहनास्त्रेण कीर्तयेत् ॥३७९॥
द्वेषिणोऽनु युगं ब्रूयादुच्चाटयपदं प्रिये ।
सर्ववश्यं कुरुयुगं शीर्षं देहि द्वयं ततः ॥३८०॥
सर्वा ङेऽन्ता कालरात्री कामिनी च गणेश्वरी ।
हृन्मन्त्रः सर्वशेषे च कालरात्रिमनुस्त्वयम् ॥३८१॥
वेदादींस्त्रीन् पुरः प्रोच्य मैधांस्तावत ईरयेत् ।
मायारमाकामवधूयोगिनीरुष एव च ॥३८२॥
ततश्च रावडाकिन्यौ फेत्कारी प्रलयादिमा ।
षोडशैतानि बीजानि पुरतः समुदीरयेत् ॥३८३॥
ततो भ्रामरि संकीर्त्य भ्रमराकारधारिणि ।
जयद्वयं जीवयुगं स्फुरप्रस्फुरमुक्तवत् ॥३८४॥
ज्वल प्रज्वल नाम्न्योश्च क्रिययोर्युगलं वदेत् ।
भीषणाकारधारिण्यनु ब्रूयाद् भगवतीत्यपि ॥३८५॥

---

१. इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्त्येव । चतुर्थपंक्तिरप्येवं विपरिणता—
'ततश्च रिपुमाभाष्य ततः सर्वमुखाक्षरात्' ।

प्रचण्डतरशब्दानु तथा दावानलादनु ।
वदेज्ज्वलितवक्त्रें च हूंहूंकारार्णतो वदेत् ॥३८६॥
नादिन्यनु च देवेशि खेचरीचक्रवासिनि ।
भूतिन्यादिद्वयं प्रोच्य मन्दादिद्वितयं वदेत् ॥३८७॥
संसृष्टि च विकोशं च कैतवातङ्कमेव च ।
शुद्धनिद्रादियुगलं विवृत्तं संतलं तथा ॥३८८॥
आम्नायातीततत्त्वार्णवौ ततः परमीरयेत् ।
मम शत्रून् ग्रस द्वन्द्वं भक्षय द्वितयं तथा ॥३८९॥
साम्राज्यं देहि युगलं दापय द्वितयं तथा ।
एका रुडस्त्रत्रितयं हृच्छिरो मन्त्र एव ॥३९०॥
मैधतारौं त्रपारोषौ स्मरवध्वौं सुधारमे ।
ततः शाकिनिडाकिन्यौ योगिनी खेचरी तथा ॥३९१॥
ततः श्मशानशब्दानु कापालिनि विभावयेत् ।
पश्चात् संबोधनतया खेचरीसिद्धिदायिनी ॥३९२॥
परापरकुलार्णाच्च पूर्ववच्चक्रनायिका ।
अङ्कुशो गारुडः क्षेत्रपालश्चण्डश्च किन्नरः ॥३९३॥
त्रिशूलझङ्कारिणि च ततो डामरमुख्यपि ।
ततो वज्रशरीरे च ततोऽत्रिककुदौ प्रिये ॥३९४॥
नमः स्वाहा तदन्ते च तारसारस्वतौ ततः ।
योगिनी च वधूर्माया रावो लक्ष्मीश्च मन्मथः ॥३९५॥
डाकिनीरोषसंवर्तफेत्कार्यो विधृतिस्तथा ।
शेखरो विरतिश्चापि षोडशी विदिगिष्यते ॥३९६॥
[1]भगवत्यनु वै रक्तदन्तिके परिकीर्तयेत् ।
लेलिहानार्णतो ब्रूयाद् रसनानु भयानके ॥३९७॥
ततो घोरतर प्रोच्य तथा दशनर्चिते ।
ब्रह्माण्डे चण्डयोगेश्वरीशक्तिपदमन्वतः ॥३९८॥

---

१. इतः द्वाचत्वारिंशत् पंक्तयः क पुस्तके न दृश्यते ।

ततश्च तत्त्वमहिते कुशिकोऽव्यय एव च ।
औपह्वरं नान्दिकं च घटी चैतानि पञ्च वै ॥३९९॥
प्रचण्डचण्डिनि ततो महामारीसहायिनि ।
चामुण्डायोगिनीशब्दा ड्डाकिनी शाकिनीति च ॥४००॥
भैरवीमातृगणतो मध्यगे तदनन्तरम् ।
जय युग्मं कह द्वन्द्वं हस प्रहस पूर्ववत् ॥४०१॥
युगलं युगलं जृम्भ तुरु धाव तथैव च ।
श्मशानवासिनि प्रोच्य शववाहिनि कीर्तयेत् ॥४०२॥
नरमांसेति संलिख्य प्रवदेद् भोजिनीति च ।
कङ्कालमालिनि ततो भद्रा च कुटिला तथा ॥४०३॥
चर्पटं मणिमाला च विजया चेति पञ्च ताः ।
ससन्धि हृद्द्वयं प्रोच्य शिरः प्रणव एव च ॥४०४॥
कूर्चत्रयं फट्त्रयं च सर्वशेषे शिरोऽपि च ।
वेदादी रौद्रकूटश्च ससन्धिहृन्मनुस्ततः ॥४०५॥
चण्डातिचण्डे तदनु शाम्बरीति ततः परम् ।
कालवञ्चनि चोद्धृत्य महाङ्कुश इतीरयेत् ॥४०६॥
आग्नेयकूटं पातालनागवाहिनि कीर्तयेत् ।
गगनग्रासिनि प्रोच्य ब्रह्माण्डपदमन्वतः ॥४०७॥
निष्पेषिणि शिरोयुक्तमाकाशत्रितयं ततः ।
मनोरुषश्च तदनु त्रितयं त्रितयं प्रिये ॥४०८॥
तावन्त्यस्त्राणि तदनु हृदयं शिर एव च ।
आगमानां शिरो मैधत्रपे च कमला स्मरः ॥४०९॥
रोषयोगिन्यङ्गनाश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी मेखलाहारसानवः ॥४१०॥
भगवत्यपि संबोध्य महामारि ततः परम् ।
जगदुन्मूलिनि ततः पुनः कल्पान्तकारिणि ॥४११॥
शिरोनिविष्टानु वामचरणे तदनन्तरम् ।
दिगम्बरीति समयकुलचक्रपदादनु ॥४१२॥

चूडालये. . .मां तदनु रक्ष त्राहि युगं युगम् ।
पालय द्वितयं चापि ततः परमुदीरयेत् ॥४१३॥
ततो नु प्रज्वलद्दावानलज्वालाजटाल च ।
जटिले त्रिगुणं चाथ चरमे च नमः शिरः ॥४१४॥
तारं मैधं च माया च कमला मन्मथो वधूः ।
योगिनीरावसंवर्तफेत्कार्यः कूर्चं एव च ॥४१५॥
प्रसादक्षेत्रपालौ च विश्वं चामृतमेव च ।
विद्युन्नृसिंहौ प्रेतश्च कुलिको भैरवी तथा ॥४१६॥
काकिनीमेखलातुङ्गपतनानि च संहृतिः ।
कैतवं च विवत्सं च तुरीयामोदकौ ततः ॥४१७॥
षट्चक्रं शक्तिसर्वस्वं शाम्भवं च परापरम् ।
ततो नु वज्रकवचं ततो ब्रह्मकपालकम् ॥४१८॥
महाकल्पस्थायिबीजं सर्वशेषे सुरेश्वरि ।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रो महोग्रतरनामकः ॥४१९॥
मध्ये नाम्नो मितो रक्तमुण्डेश्वर्या वरानने ।
तारश्च शाकिनी बीजं ततः सर्वाभयप्रदे ॥४२०॥
सर्वसंपत्प्रदे चापि सर्वसिद्धिं ददद्वयम् ।
मृत्युं हरयुगं चापि मृत्युञ्जयपदादनु ॥४२१॥
गृहिण्युक्त्वा नमः स्वाहा मैधानां पञ्चकं ततः ।
पाशाङ्कुशौ प्रेतपरे खेचरीविद्युदंशवः ॥४२२॥
ततो महाडाकिनितो ङेऽन्ता सैव निगद्यते ।
निपीतबालनरतो रुधिरायै ततः परम् ॥४२३॥
त्वगस्थिचर्माक्षरतो वशिष्टाग्र्यै तथैव च ।
महाश्मशानशब्दानु तथा धावनशब्दतः ॥४२४॥
पुनः प्रचलिताद् पिङ्गजटाभारा सङेऽन्तिका ।
नृसिंहरौरवौ प्रोच्य वैमलं विश्वमेव च ॥४२५॥
खेचर्यन्तानि वै पञ्च बीजानीमानि पार्वति ।
ममाभीष्टप्रदात् सिद्धिं देहि युग्मं ततः परम् ॥४२६॥

वितरद्वितयं चापि रोषरावौ तथैव च ।
डाकिनी काकिनी चैव शाकिनी राकिनी तथा ॥४२७॥

लाकिनी हाकिनी चेति क्रमेणैताः षडीरिताः ।
किन्तु संबुद्धिरेतासां न तु बीजानि पार्वति ॥४२८॥

नरेति प्रोच्य रुधिरं पिब युग्मं ततः परम् ।
महामांसं खादयुगं बीजान्यष्टौ ततः परम् ॥४२९॥

तारलक्ष्मीत्रपाकामरुड्रावा योगिनी वधूः ।
अस्त्रद्वयं शिरोयुक्तं सर्वशेषे सुरार्चिते ॥४३०॥

अथाधराख्यं कलय संपुटं पूर्णताकरम् ।
प्रणवः पाशमैधौ च माया लक्ष्मीः स्मरो वधूः ॥४३१॥

योगिनीरावडाकिन्यस्त्रेताभोगायमेखलाः ।
इन्द्रसंख्यानि चैतानि बीजानि पुरतः प्रिये ॥४३२॥

ततो भगवति प्रोच्य महाभोगाच्च भासुरे ।
भीमशब्दानु विकरालिनि कालि तथैव च ॥४३३॥

उक्त्वा कापालिनि पुनः गुह्यकालि प्रकीर्तयेत् ।
घोररावे समाभाष्य विकटदंष्ट्रे तथैव च ॥४३४॥

सम्मोहिनी शोषिणी च संबोधनतया ततः ।
करालवदने चेति मदनोन्मादिनीति च ॥४३५॥

ज्वालामालिनि संलिख्य शिवासन इतीरयेत् ।
इमं बलिमिति स्थाप्य प्रयच्छामि सकृद्वदेत् ॥४३६॥

गृह्ण द्वन्द्वं खादयुगं मम सिद्धिमतः परम् ।
कुरु युग्मं समुद्धृत्य मम शत्रूनथोच्चरेत् ॥४३७॥

नाशय क्लेदय तथा मारय ग्लापयेत्यपि ।
स्तम्भयोच्चाटय हन विध्वंसय मथापि च ॥४३८॥

विद्रावय पच छिन्धि शोषय त्रासय त्रुट ।
मोहयोन्मूलय तथा भस्मीकुरु ततः परम् ॥४३९॥

[1]जृम्भय स्फोटय तथा भक्ष विभ्रामयेति च ।
हर विक्षोभय तुरु दम मर्दय पातय ॥४४०॥
अष्टाविंशतिकस्यास्य युगं युगमितीरयेत् ।
तत उच्चारयेदेतत् सर्वभूतवशङ्करि ॥४४१॥
ततः सर्वजनेत्युक्त्वा मनोहारिणि चोद्धरेत् ।
सर्वशत्रुक्षयं प्रोच्य करिशब्दं विनिर्दिशेत् ॥४४२॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं ब्रह्मरूपिणि चेत्यपि ।
कालि कापालि संकीर्त्य महाकापालि कीर्तयेत् ॥४४३॥
चामरादि द्वयं संभूतिद्वयं हारिणीं तथा ।
राज्यं मे समनूद्धृत्य देहि युग्ममथो वदेत् ॥४४४॥
किलियुग्माच्च चामुण्डा यमघण्टे हिलेर्युगात् ।
मम सर्वाभीष्टपदं ततो वै साधय द्वयम् ॥४४५॥
संहारिणि पदं दत्वा सम्मोहिनि पदं वदेत् ।
कुरुकुल्लेति संबोध्य ततः किरि युगं पठेत् ॥४४६॥
कूर्चयुग्मास्त्रयुग्मं च शिरोऽन्तो मनुरीरितः ।
अधस्तात् संपुटमिदं मतेनावेष्टच तान् मनून् ॥४४७॥
पादयोर्विन्यसेद्देवि अधआम्नायगोचरान् ।
इत्ययं कथितो देवि क्रमन्यासो महाफलः ॥४४८॥

[क्रमन्यासस्य गोपनीयतमता]

षडाम्नायस्थदेवीनामेकत्रैव व्यवस्थितिः ।
तासां मनूनामपि च सहावस्थानमेकतः ॥४४९॥
अत एवायमधिको न्यासेभ्योऽन्येभ्य उत्तमः ।
कपालडामरमृते संहितां चान्तरा मम ॥४५०॥
नान्यत्रैष प्रसिद्धोऽभूत् सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ।

[क्रमन्यासप्रसंगपतितषडाम्नायस्थदेवीनां यथाक्रमं प्राधान्यनिर्देशः]

पूर्वाम्नाये महागोप्ये सर्वाद्या त्रिपुरारिणा ॥४५१॥
उक्ता चण्डेश्वरी शेषे हयग्रीवेश्वरी तथा ।
एवं च दक्षिणाम्नाये मातङ्गयाद्या प्रकीर्तिता ॥४५२॥

---

१. जम्भय क ।

वाग्वादिनी च चरमे मध्ये चान्याश्चतुर्दश ।
तथैव पश्चिमाम्नाये कुब्जिका प्रथमा स्मृता ॥४५३॥
चर्चिका सर्वशेषे तु महाघोरतराकृतिः ।
उत्तराभिध आम्नाये गुह्यकाली मतादिमा ॥४५४॥
कालसङ्कर्षिणी सर्वशेषस्था परिकीर्तिता ।
ऊर्ध्वाम्नायादिभूता वै ज्ञेया त्रिपुरसुन्दरी ॥४५५॥
मोक्षलक्ष्मीः सर्वशेषे इत्येतस्य विनिर्णयः ।
अध आम्नायादिभूता भीमादेवी भयङ्करा ॥४५६॥
शेषे महाडाकिनी च कथिता तव सुन्दरि ।
आम्नायानां च षण्णां वै समासादादिपश्चिमा ॥४५७॥
देव्यावुक्तेऽथ सर्वेषां मध्ये ज्ञेयाश्चतुर्दश ।

[क्रमन्यासमाहात्म्यकीर्तनम्]

तासामाविर्भावमध्ये यः क्रमः परिकीर्तितः ॥४५८॥
स हि क्रमः क्रमन्यासरूपत्वेन स्थितः प्रिये ।
मन्त्रे कामकलाकाल्या अयुताक्षरनामनि ॥४५९॥
मृत्युञ्जयप्राणनाम्ना विख्यातित्वमुपेयुषि ।
गुह्यकाल्यास्तथा बीजमालामय्यभिधावति ॥४६०॥
प्रायशोऽमी अमूश्चापि मन्त्रा देव्यो व्यवस्थिताः ।
कपालडामरे त्वस्य विशेषास्त्रिपुरारिणा ॥४६१॥
विविच्य[1] कथिता देवि साधकानां हितेप्सया ।
ग्रन्थबाहुल्यभयतो न विशिष्य मयेरिता ॥४६२॥
उक्तः सूक्ष्मतया किन्तु क्रमन्यासप्रसङ्गतः ।
विराट्ध्यान[2]क्रमन्यासावुभौ तुल्यौ मतौ मम ॥४६३॥
गुह्यायाः विश्वरूपत्वं तत्र तु प्रतिपादितम् ।
अत्र सर्वाम्नायसंस्थाः समन्त्रा देव्य ईरिताः ॥४६४॥
नैमित्तिकत्वं काम्यत्वमथ नित्यत्वमेव च ।
पुरैवैतस्य कथितं तव त्रिदशवन्दिते ॥४६५॥

१. विभज्य ख ग । २. न्यास (?) क ।

किं बहूक्तेन देवेशि सत्यपूर्वं वदाम्यहम् ।
क्रमन्यासससमो न्यासो न भूतो न भविष्यति ॥४६६॥
यदीच्छसि परां सिद्धिं सर्वैश्वर्यं च पार्वति ।
भक्तिं भुक्तिं तथा मुक्तिं क्रमन्यासं तदा कुरु ॥४६७॥

[धातुन्यासोद्देशः]

धातुन्यासमिदानीं त्वं समाकलय तत्त्वतः ।

[धातुपदस्य नानार्थवाचकत्वाभिधानम्]

नानाभिधायी शब्दोऽयं कथ्यते शास्त्रवेदिभिः ॥४६८॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।
धातुशब्देन कथ्यन्ते वातपित्तकफास्त्रयः ॥४६९॥
धातवः पञ्च भूतानि तन्मात्राः धातवस्तथा ।
धातवः गैरिकादीनि धातवश्चेन्द्रियाणि हि ॥४७०॥
शब्दानामादिभूतानि कथ्यन्ते धातवस्तथा ।
स्वभावो धातुरुदितः शरीराङ्गानि धातवः ॥४७१॥
धातवः स्वर्णरूप्यादि मलमूत्राणि धातवः ।
एवं स्थिते हि शब्दार्थे नानावस्त्वभिधायिनि ॥४७२॥
तन्वङ्गान्यत्र गृह्यन्ते नेतराणि वरानने ।
कर्ममीमांसकश्रेष्ठाः जैमिन्याद्याः महर्षयः ॥४७३॥
देवतां विग्रहवतीं नैवाङ्गीकुर्वते हि ते ।
किन्तु तां तां मन्त्रमयीं मन्यन्ते ज्ञानशालिनः ॥४७४॥
ये च श्रुतिपुराणादौ श्रूयन्तेऽस्त्रांशुबाहवः ।
प्रपञ्चत्वेन तत्प्रोक्तं न तु सत्यतया तथा ॥४७५॥
देव्यास्तु मन्त्ररूपाया नान्यान्यङ्गानि वर्ष्म वा ।
एवंबुद्धिः शास्त्रज्ञैरेष न्यासोऽभिधीयते ॥४७६॥
बीजात्मकस्य मन्त्रस्य बीजान्येव हि केवलम् ।
अङ्गत्वेनोदितानीत्थं तानीदानीं शृणु प्रिये ॥४७७॥

[धातुन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

धातुन्यासस्य हि ऋषिर्दृप्तबालाकिरुच्यते ।
सुप्रतिष्ठा तथा च्छन्दो देवता गुह्यकालिका ॥४७८॥

बीजं सारस्वतं बीजं पाशः शक्तिर्निगद्यते ।
कला कीलकमुद्दिष्टं तत्त्वं तारमुदीर्यते ॥४७९॥
निस्त्रैगुण्येन कैवल्यपदलाभे नियोगता ।

[धातुन्यासस्य सामान्योद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं बोधयामि भवादृशीम् ॥४८०॥
ततो विशेषं वक्ष्यामि येन व्यक्तो भविष्यति ।
बीजैरवयवाकारचेष्टावेशादिकल्पना ॥४८१॥
नान्या तनुर्मन्त्रमयी मर्त्यवद्गात्रसंस्थितिः ।
आदौ तु सप्त बीजानि कूटस्थानि वरानने ॥४८२॥
ततोऽनु संख्यास्तासूहो विधेयः सूक्ष्मया धिया ।
सभूपक्षगुणाब्धीषुरसनन्दावधिः सदा ॥४८३॥
स नित्यविग्रही ज्ञेयोऽक्षराक्षरचयैरिमाः ।
एत [1]एवान्तरस्थायि वर्णनिर्णय उच्यते ॥४८४॥
सप्तवर्णात्मकः शब्दो ङसन्तस्तदनन्तरम् ।
पूर्ववच्च परिज्ञेया चतुर्वर्णी पुनः प्रिये ॥४८५॥
अन्वेतस्याङ्गसंस्थानं तच्च ङेऽन्तमुदीरितम् ।
ततो नु तत्तद्बीजानि समुच्चारणवन्ति हि ॥४८६॥
एतत् पूर्वं चलं ज्ञेयं तत्पूर्वौ निश्चलौ तथा ।
उच्चारितस्य बीजस्य नाम बीजपदस्य च ॥४८७॥
विग्रहो ङेऽन्तयुक् पूर्वं चलं शेषं स्थिरं मतम् ।
सप्त बीजानि हृच्छीर्षे मनुश्चैकदश प्रिये ॥४८८॥
वर्णाः कालव्यापिनस्ते समासोऽयमुदीरितः ।

[धातुन्यासस्य विशेषेणोद्धारः]

अथ विस्तरमाख्यास्ये तत्रैवावहिता भव ॥४८९॥
आद्यस्तारः समुद्दिष्टो जन्ममृत्युभयापहः ।
रावयोरन्तरस्थानि चतुर्वर्गानि तत्परे ॥४९०॥

---

१. एवाम्बरस्यापि ? ग घ ।

मन्दाक्षयोगिनीकूर्चनारीसंज्ञानि तानि च ।
ततो मन्त्रमयार्णानु विग्रहा[1]पदमुच्यते ॥४९१॥
गुह्यकाली ततो ज्ञेया विभक्तिः पूर्वमीरिता ।

[धातुन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः]

अथाङ्गान्यवधेहि त्वं क्रमेण त्रिदशार्चिते ॥४९२॥
आदौ दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रं संप्रतिपादितम् ।
ततो वामपदङ्गुल्यग्रं दक्षप्रपदस्ततः ॥४९३॥
एतस्यानु परिज्ञेयौ वामप्रपद एव हि ।
दक्षपादाङ्गुलीमूलं वामपादाङ्गुलेरपि ॥४९४॥
दक्षगुल्फो वामगुल्फो दक्षपार्ष्णिस्तथेतरः ।
दक्षपादौ वामपादौ दक्षजंघा तथेतरा ॥४९५॥
दक्षजानु तथा वामजानु दक्षोरुरेव च ।
अष्टादशतमो ज्ञेयो वामोरुर्दक्षवंक्षणः ॥४९६॥
वामवंक्षणवस्ती च नाभिर्दक्षकटस्तथा ।
ततो वामकटः श्रोणी गुह्यं नितम्बमेव च ॥४९७॥
जघनं तत्परं दक्षककुन्दरमुदीर्यते ।
वामं ककुन्दरं दक्षस्फिग् वामस्फिगतः परम् ॥४९८॥
सौभगं जठरं चापि हृदयं तदनन्तरम् ।
दक्षपार्श्वं वामपार्श्वं पर्शुका तत्परा मता ॥४९९॥
दक्षस्तनो वामकुचो दक्षचूचुकमेव च ।
वामं चूचुकमस्यानु क्रोडं वक्षोऽपि तत्परम् ॥५००॥
दक्षांसमथ वामांसं दक्षकक्षस्तथेतरः ।
दक्षवामौ कूर्प्परौ द्वौ प्रगण्डौ तादृशौ ततः ॥५०१॥
प्रकोष्ठौ पुनरीदृक्षौ मणिबन्धौ तथेदृशौ ।
दक्षहस्ताङ्गुलीमूलं वामहस्ताङ्गुलेरपि ॥५०२॥
अङ्गुल्यग्रं दक्षवामकरयोस्तदनन्तरम् ।
दक्षहस्तो वामहस्तो दक्षबाहुस्तथेतरः ॥५०३॥

---

१. विग्रहात् पर ० ग ।

दक्षं जत्रु तथा वामं कण्ठो ग्रीवा ततः परम् ।
घाटा पृष्ठं कशेरुश्च दक्षा हनुरथेतरा ॥५०४॥
चिबुकं चौष्ठमधरमूर्ध्वदन्तास्ततः परम् ।
अधोदन्ता दक्षसृक्कं वामसृक्कं तथैव च ॥५०५॥
दक्षगण्डो वामगण्डः कपोलो दक्षिणस्ततः ।
वामः कपोलस्तालुः स्याज्जिह्वा च तदनन्तरम् ॥५०६॥
दक्षनेत्रं वामनेत्रं दक्षपक्ष्म तथेतरत् ।
दक्षवामावथापाङ्गौ नासिका दक्षतारका ॥५०७॥
तारका च तथा वामा दृष्टिश्च तदनन्तरम् ।
दक्षकर्णो वामकर्णो दक्षभ्रूरप्यथेतरा ॥५०८॥
कूर्चो ललाटं तदनु ततो भ्रमरकं मतम् ।
केशपाशो मुखनखं रोमाणि तदनन्तरम् ॥५०९॥
कूर्परश्चापि कङ्कालः करोटिस्तदनन्तरम् ।
त्वग्रक्तं मांसमेदोऽस्थीनि मज्जाशुक्रमेव च ॥५१०॥
वपा मन्या शिरा चैव मस्तिष्कं चान्त्रमेव च ।
गुल्मः स्नायुर्यकृच्चापि वाक् स्वभावस्तथैव च ॥५११॥
शरीरगतिचेष्टाश्च मुष्टिरञ्जलिरेव च ।
चपेटवेशौ मुकुटं चूडामणिरतः परम् ॥५१२॥
दक्षकुण्डलमस्यानु वामकुण्डलमेव च ।
हारश्च वलयश्चापि केयूरं कङ्कणं तथा ॥५१३॥
मुद्रिका मेखला हंसो नूपुरं तदनन्तरम् ।
क्षौमं च तिलकं चापि सिन्दूरं कज्जलं तथा ॥५१४॥
हास्यं तन्द्रा च शयनं निद्रा जागरणं ततः ।
क्षुधालस्ये तथा क्रोधः प्रसादोऽपि ततः परम् ॥५१५॥
सर्वशेषे परिज्ञेयः सर्वविग्रह एव च ।
इत्येषा तनुमर्यादा षष्टिरेकशताधिका ॥५१६॥
शास्त्रविद्भिः परिज्ञेया भगवत्या मनुष्यवत् ।

[धातुन्यासे व्यवह्रियमाणबीजनिर्देशः]

अथ क्रमेण बीजानि व्याहरामि वरानने ॥५१७॥

डाकिनी केकराक्षी च भ्रामरी तदनन्तरम् ।
प्रचण्डाचण्डविश्वाश्च ततोऽङ्कुश उदीर्यते ॥५१८॥
पुनर्गारुडताटङ्कौ लीलामन्दौ ततः परम् ।
सम्मोहः कमला कामः समाधिरपि तत्परः ॥५१९॥
प्रासादः पतनं चापि संहारः प्रेत एव च ।
कुलिको दस्रशक्ती च वेदी चापि जरा ततः ॥५२०॥
बलिः पृथुरनन्तश्च खेचरी च क्रमस्ततः ।
नृसिंह आदेश इतश्छटा फैरवमेव च ॥५२१॥
कुमारी तदनु ज्ञेया मुक्ता चापि महा प्रिये ।
मन्दारसिन्धुककुदः शैशुकः काकिनी तथा ॥५२२॥
नेमिरंशुश्च शुक्लश्च तथेष्टिव्रतसानवः ।
अक्षो जम्भः षडङ्गं च मेखला कुण्डमेव च ॥५२३॥
कापालमथ गोकर्णो गर्भो दीप इतः परम् ।
भोगसृष्टी ततो ज्ञेये औपह्वर इतः परम् ॥५२४॥
नान्दिकं चापि फेत्कारी त्रेता दुष्कृतमेव च ।
पद्मं धन्यमथोल्लोप्यं कराली कृत्ययान्विता ॥५२५॥
कुशिकश्च व्ययश्चापि नक्षत्रं विद्युदेव च ।
नाराचशूलसुरसाः समरस्तदनन्तरम् ॥५२६॥
महाक्रोधक्षेत्रपालावर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रयुक् ।
रागः सारसधेनू च मारिषस्तदनु स्मृतः ॥५२७॥
नालीकश्च भुशुण्डी च नन्दा चापि जटा तथा ।
तन्द्रा च कुटिला चापि गदा प्रासश्च रञ्जिनी ॥५२८॥
घटीकालीहयग्रीवप्राणमेघाश्च चर्पटः ।
मणिमालावेशसोमचामुण्डा अपि तत्परे ॥५२९॥
कूष्माण्डी हारिणी चापि तथैवोत्क्रोचिनी ततः ।
बुद्धिः क्षमा च विजया सम्भूतिस्तदनु स्मृता ॥५३०॥
प्रतानं च विदिक् त्र्यस्रं विरतिर्मालया सह ।
नीलनागसमूहाश्च दाक्षिकः सौमतोऽपि च ॥५३१॥

नादान्तकश्चामरं च भारुण्डा तन्त्रमेव च ।
व्यजनं विधृतिश्चापि संसृष्टिश्च विकोशयुक् ॥५३२॥
ततो रसपुटो ज्ञेयो भवेत् सन्न्यास इत्यपि ।
मारण्डश्च विनादश्च मौनं चूलिकयान्वितम् ॥५३३॥
विमर्दशेखरौ चापि ततो विस्वरितं मतम् ।
व्युत्तरं च विरूपं स्यादपरान्तं च जैमनम् ॥५३४॥
संव्यानं च विवत्सश्च संभारः प्रकरी तथा ।
बिन्दुकश्चापि संयोगो वियोगश्च विजम्भयुक् ॥५३५॥
उत्तानषट्चक्रबीजे सर्वागम इतः परम् ।
आम्नायातीतमस्यानु ततस्तत्त्वार्णवो मतः ॥५३६॥
शक्तिसर्वस्वमथ च परापर इतोऽप्यनु ।
अस्यानु शाम्भवं ज्ञेयं चिच्छक्तिस्तदनन्तरम् ॥५३७॥
ततो ब्रह्मकपालाख्यं महाबीजं वरानने ।
महाकल्पस्थायिबीजं सर्वशेषे प्रकीर्तितम् ॥५३८॥
यावन्ति हि प्रतीकानि तावन्त्येतान्यपि प्रिये ।
ज्ञातव्यं सर्वमन्त्रस्य तत्तदङ्गमिति ध्रुवम् ॥५३९॥
ताररावत्रपा उक्त्वा योगिनीकूर्चकामिनीः ।
शाकिनी हार्दमन्त्रश्च शिरो मन्त्रस्ततः परम् ॥५४०॥
इति न्या[व्या ?]सेन कथितो धातुन्यासो मया तव ।

[धातुन्यासस्याधिकारिमहात्म्ययोर्निर्देशः

गृहस्थानां यतीनां च कौलाचारवतामपि ॥५४१॥
त्रयाणामेष वै नित्यस्त्रिपुरघ्नेन वर्णितः ।
यतः शरीरं सर्वेषामावश्यकतया मतम् ॥५४२॥
तदयं विग्रहाकारो न्यासेऽस्मिन्नभिधीयते ।
एनं न्यासमकृत्वा तु पूजा वै निष्फला भवेत् ॥५४३॥
मन्त्र एव विजानीयादस्य न्यासस्य भूमिकाः ।
सृष्टयादयो ये भासान्ता न्यासाः पञ्च पुरोदिताः ॥५४४॥
तैः पञ्चभिः समो ज्ञेयो धातुन्यासो वरानने ।

[तत्त्वन्यासोद्देशः]

तत्त्वन्यासमिदानीं त्वं समाकलय सादरा ॥५४५॥

अपरिग्रहिणामेष नित्यत्वेन प्रकाश्यते ।
काम्यत्वेन गृहस्थानां कौलानामप्युदीर्यते ॥५४६॥
नैमित्तिकत्वेन वापि कदाचिद् गृहिकौलयोः ।

[तत्त्वन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य गर्ग ऋषिः प्रोक्तो गायत्रीच्छन्द इष्यते ॥५४७॥
वदेद्व्यष्टिसमष्ट्यर्णाद्रूपिणीति सुरेश्वरि ।
गुह्यकाली देवता च प्रणवो बीजमुच्यते ॥५४८॥
रॉवः शक्तिः कीलकं तु सारस्वतमुदीर्यते ।
विनियोगः समुद्दिष्टस्तत्त्वज्ञाने जपे तथा ॥५४९॥

[तत्त्वन्यासस्य सामान्योद्धारः]

अथ प्राकृतमुद्धारं प्रथमं शृणु पार्वति ।
विशेषं श्रोष्यसि ततो भविष्यति ततः स्फुटः ॥५५०॥
सप्त बीजानि पुरतः समस्तानामपि प्रिये ।
मन्त्राणां तानि च शिवे कूटस्थान्यखिलेष्वपि ॥५५१॥
ततो नामानि भिन्नानि षट्त्रिंशत्संख्यकानि हि ।
तैस्तत्त्वशब्दस्य सदा विग्रहो ङिविभक्तिकः ॥५५२॥
अस्थिराणि तु पूर्वाणि स्थिरं शेषगतं पदम् ।
सन्धिहीना स्थिराऽशेषकर्माणीति षडक्षरी ॥५५३॥
पुनः संशमयामीति तथैवापनयामि च ।
[1]पूर्ववत् सुस्थिरा ज्ञेया सन्धियुक्ता नवाक्षरी ॥५५४॥
भवबन्धं चेति ततः स्थिरोह्या चतुरक्षरी ।
हित्वा तत्त्वार्णमेवं स्युरूनविंशतिसंमिताः ॥५५५॥
ततो नु पञ्च बीजानि भिन्नानि प्रतिमन्वपि ।
गुह्यकालि प्रसीदेति स्थिरा सप्ताक्षरी ततः ॥५५६॥
एकं कूटं ततो भिन्नं भिन्नं ज्ञेयं मनौ मनौ ।
अस्त्रमन्त्रः शिरो मन्त्रः सर्वशेषे तथोदितः ॥५५७॥

---

१. पंक्तिद्वयमितः ग पुस्तके नास्ति ।

इति सामान्य उद्धार उदितस्तव पार्वति ।

[तत्त्वन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषमधुना वच्मि तत्त्वन्यासससमाश्रयम् ॥५५८॥
प्रणवो मैधमाये च योगिनी शाकिनी वधूः ।
रुड् चेतीमानि बीजानि सप्ताशेषे स्थिराणि हि ॥५५९॥
अथाकलय नाम त्वं भिन्नं तत्त्वपदादिगम् ।
पृथिव्यापस्ततस्तेजो वायुराकाशमेव च ॥५६०॥
गन्धो रसश्च चक्षु[रूप]श्च स्पर्शः शब्दस्तथैव च ।
आत्मा ततो नु जीवात्मा परमात्मा ततः परम् ॥५६१॥
सत्ताऽविद्यानिवृत्तिश्च . प्रकृतिर्महदेव च ।
अहङ्कारस्ततः पञ्चतन्मात्रं समुदाहृतम् ॥५६२॥
भावाभावप्रपञ्चौ द्वावद्वैतं वासना तथा ।
प्रज्ञा प्रमाणमिति च परमार्थं इतः परम् ॥५६३॥
आभासप्रतिविम्बौ च सूक्ष्मं कैवल्यमेव च ।
चैतन्यं च प्रबोधश्च तथैवाशय एव च ॥५६४॥
आनन्दश्च ततो ब्रह्ममयः सर्वान्तिमो मतः ।
एवं शब्दाः परिज्ञेयाः षट्त्रिंशत्संख्यका इमे ॥५६५॥
विभिन्नरूपामधुना पञ्च बीजावलीं शृणु ।
स्मरो रमा च प्रासादो डाकिनी प्रलयोऽपि च ॥५६६॥
पाशश्चण्डश्च विश्वश्च सुधासोमौ तथैव च ।
कला दस्रश्च शक्तिश्च नक्षत्रं विद्युदेव च ॥५६७॥
खेचरीप्रेतभैरव्यः कालादित्यौ ततः परम् ।
भारुण्डादिद्वयं काकिन्यादियुग्मं महारुषा ॥५६८॥
कुलिकः संहिता चञ्चुहाकिनीविधयस्ततः ।
भ्रामरी च प्रचण्डा च केकराक्षी ततः परम् ॥५६९॥
महारात्रिः कालरात्रिरास्ययुग् बीजवर्जिता ।
तृवृत्कापालगोकर्णसुरभीरौरवाणि च ॥५७०॥
त्रेताद्यनाहतान्तं च विपरीतक्रमेण हि ।
मन्दसम्मोहपतनयुगान्ताः संहृतिस्ततः ॥५७१॥

मन्दारसिन्धू च ततो महेन्द्रकरुणेश्वराः ।
कल्पो मुक्तां महा चैव क्रमश्च नरसिंहयुक् ॥५७२॥
जम्भः षडङ्गककुदौ संघातः सह शैशुकः ।
वेणुः सानुरथाक्षश्च मौञ्जीसूत्रे तथैव च ॥५७३॥
ताटङ्कलीले धेनुश्च क्षोभणो मारिषस्तथा ।
[1]आयश्च मेखला कुण्डं गर्भो दीपस्ततः परम् ॥५७४॥
वीरवेतालभौवानि [2]व्युग्रः पुटकमेव च ।
गायत्री कर्णिका शृङ्खलोपह्वरकनान्दिकम् ॥५७५॥
विजया चापि संभूतिश्चतुरस्रादि च त्रयम् ।
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ॥५७६॥
संहार्यादिद्वयं प्रोच्य चामरादित्रयं पठेत् ।
कला मानी च सुरसः समरो रागसारसौ ॥५७७॥
औपदेयश्च मारण्डो विनादादित्रयं ततः ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥५७८॥
मौलिञ्जश्च विरूपश्चापरान्तादित्रयं ततः ।
सौरङ्गश्चर्पटादीनि चत्वारि तदनन्तरम् ॥५७९॥
विरसो दाक्षिकः सौमतप्रताने विदिक् तथा ।
विचित्रं धन्यमुल्लोप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिका ॥५८०॥
विटङ्को योगतन्त्रादिचतुष्टयमतः परम् ।
विकराली च मौनं च चूलिकादित्रयं ततः ॥५८१॥
विज्ञेयं तदनु प्राज्ञैः कलावत्यादिपञ्चकम् ।
ध्वानो विवत्ससंभावौ संयोगश्च वियोगयुक् ॥५८२॥
विराधश्च तुरीया च ग्रावादित्रितयं ततः ।
कौलविद्या तत्त्वहीनं शक्तिविद्यादिसप्तकम् ॥५८३॥
भगमालिन्यतः शक्तिसर्वस्वं च परापरम् ।
ततो नु वज्रकवचं कपालं ब्रह्मशब्दतः ॥५८४॥

---

१. आद्यश्च ग । २. ग्रहः ख ग घ ।

शाम्भवं वेदवत्याद्यं चिच्छक्तिर्जगदावृत्तिः ।
महाकल्पस्थायिबीजं सर्वशेषे निगद्यते ॥५८५॥
अथ क्रमेण कूटानि सावधाना निशामय ।
भासासंहारावनाख्यं कूटं तदनु पार्वति ॥५८६॥
सत्त्वं रजस्तमः कूटं पुष्करादिद्वयं ततः ।
गुह्यकं चन्द्रकूटं च कूटद्वन्द्वं परा कला ॥५८७॥
उदयास्ताभिधौ कूटौ चण्डचक्रौ ततः परम् ।
मणिरत्ने तथा कूटे मन्थानः सेतुरेव च ॥५८८॥
समयो वर्णमन्त्रौ च कैलासो मेरुरेव च ।
वैराग्यैश्वर्यनिर्वाणमहानिर्वाणमेव च ॥५८९॥
अविद्या च विपाकश्च वासनाद्वैतमेव च ।
जीवात्मपरमात्मानावानन्दमय एव च ॥५९०॥
इति षट्त्रिंशसंख्यानि कूटानि कथितानि ते ।

[तत्त्वन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्थानमतो निशामय सुरेश्वरि ॥५९१॥
गुल्फौ जङ्घे तथा जानू तत उरू च वंक्षणौ ।
गुह्यं वस्तिश्च नाभिश्च जठरं पार्श्वयोर्युगम् ॥५९२॥
हृदयं च तथा स्कन्धौ जत्रुणी च शिरा तथा ।
हनू कपोलौ सृक्कणी च तत ओष्ठोऽधरोऽपि च ॥५९३॥
ऊर्ध्वदन्ता अधोदन्ता गण्डौ नासापुटे तथा ।
नेत्रे कर्णौ भ्रुवौ चापि मणिबन्धौ सकूर्चकौ ॥५९४॥
भालः शिरः शिखा चैव दोःपदोर्व्यापकानि च ।
सर्वशारीरगं शेषे व्यापकं परिकीर्तितम् ॥५९५॥
उक्तस्तत्त्वन्यास इत्थं प्रपञ्चत्वेन बृंहितः ।
पञ्चमं पञ्चकं चापि गतमेतेन पार्वति ॥५९६॥
नैमित्तिकत्वं काम्यत्वमथ नित्यत्वमेव च ।
विविच्य तु विशेषेण पुरैव प्रतिपादितम् ॥५९७॥

[लघुषोढान्यासोद्देशः]

इदानीं लघुषोढाख्यं महान्यासं निशामय ।
कठिनोद्धारमतुलं सर्वाघौघविनाशनम् ॥५९८॥
अङ्गी मुख्यो न्यास एकः षडङ्गान्यस्य पार्वति ।
अतो हि षोढाभिधया ख्यातो न्यासो महोदयः ॥५९९॥
नासाविष्टो मुमुक्षूणां भोगैहिकफलप्रदः ।
कर्तव्या गृहिणा नित्यं कौलाचारवतापि च ॥६००॥
एनां कुर्वन् स्ववामोरौ शक्तिं संस्थाप्य यत्नतः ।
कुर्वीत षोढां तेनैव सिद्धिः स्यान्नान्यथा भवेत् ॥६०१॥
स्वकीया परकीया वा शक्तिरावश्यकी प्रिये ।
स्त्रिया अप्येवमेव स्यादित्याचारो व्यवस्थितः ॥६०२॥
[1]अत एव हि भिक्षूणां नाधिकारोऽत्र वर्तते ।
ते ईहमाना अपि वै पतन्ति वनितां शिवे ॥६०३॥
पूजाकाले येऽन्वहं तु कुर्वतेऽमुं फलार्थिनः ।
तेऽपि शक्तिं पुरःकृत्वा करिष्यन्ति न संशयः ॥६०४॥
ततस्तेषां फलं भावि नान्यथा वै कदाचन ।

[लघुषोढान्यासोद्धारः]

उद्धारं कलयेदानीमेतस्य सुरवन्दिते ॥६०५॥
प्राणायामं विधायादौ ध्यानं पूर्वोदितं ततः ।
षोढान्यासं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये ॥६०६॥
आद्ये न्यासद्वये देवि सर्वत्रैव नवाङ्कुरी ।
विज्ञातव्या प्रतिमनु कालव्यापितया प्रिये ॥६०७॥
रक्तचर्माम्बरे स्थित्वा वामाङ्कन्यस्तशक्तिकः ।
द्वीपिचर्मनृमुण्डे वा षोढान्यासं समाचरेत् ॥६०८॥
साधकः सिद्धिमाप्नोति द्वितीय इव भैरवः ।
कालीकुलक्रमे षोढान्यासात् साक्षाच्छिवो भवेत् ॥६०९॥

---

१. इतः पञ्च पंक्तयः ख ग पुस्तकयोर्न सन्ति ।

सा नास्ति सिद्धिर्या न स्यात् त्रैलोक्ये सचराचरे[1] ।

[लघुषोढान्यासपरिचयः]

उग्रमातृक्रमः कालीकुलं पीठश्च योगिनी ॥६१०॥
दैवतं मन्त्ररूपं च षोढान्यासो लघुस्त्वयम् ।
पञ्चक्रमाख्यो न्यासोऽयं सर्वागमसुगोपितः ॥६११॥
षण्णाममीषां न्यासानामृष्यादिस्तु पृथक् पृथक् ।
स्वमत्या न्यसनीयोऽयं कठिनामाकृतिं वहन् ॥६१२॥

[पञ्चक्रमषोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

गुह्यकालीपञ्चक्रमषोढान्यासस्य पार्वति ।
सदाशिव ऋषिः प्रोक्तो बृहतीच्छन्द इष्यते ॥६१३॥
शिवशक्तिसमरसपदान्निर्वाणकारिका ।
श्रीगुह्यकाली देवता कौरजं बीजमुच्यते ॥६१४॥
मायाशक्तिर्डाकिनी च कीलकं परिपठ्यते ।
फेत्कारीतत्त्वमुदितं सर्वसिद्धिपदादनु ॥६१५॥
वदेत् साधनसिद्ध्यर्थे जपे च विनियोगता ।

[उग्रमातृक्रमन्यासोद्धारः]

उग्रमातृक्रमोद्धारं तत्रादौ शृणु पार्वति ॥६१६॥
कराङ्गानां च हृदयाङ्गानामपि च युक्तितः ।
प्रकारः केवलो ह्यास्ते किमपि ह्यधिकं नहि ॥६१७॥
वक्ष्ये तत्रापि पुरतः कराङ्गन्यासमुत्तमम् ।
ततोऽपरं षडङ्गाख्यं न्यासं वक्ष्यामि शोभनम् ॥६१८॥
आदौ सर्वत्र योज्यानि नवबीजान्यनुक्रमात् ।
वेदादिशाकिनीमायायोगिनीकूर्चकामिनीः ॥६१९॥
रमास्मरौ डाकिनी च सर्वत्रैवादिसंस्थिताः ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सवर्णाभ्यां स्वराभ्यां पुटितात्मकम् [?] ॥६२०॥
योगेश्वरी सुबन्ता हि पूर्वोपपदसंयुता ।
अङ्गुष्ठादिक्रमेणैव न्यस्या मन्त्रैस्तदीयकैः ॥६२१॥

१. अत्रैव ख ग घ पुस्तकेषु नवमपटलसमाप्तिः ।

पूर्वोपपदमाख्यास्ये तत्र धेहि मनः प्रिये ।
महाचण्डश्च परमप्रचण्डस्तदनन्तरम् ॥६२२॥
नरमुण्डमहामारी महामाया ततः परम् ।
उन्मत्तचण्डोग्रसंज्ञौ कालरात्रिस्तथैव च ॥६२३॥
सर्वशेषे विश्वगे...... नादनिःश्रेणिसंयुता ।
करयोर्व्यापकत्वेन न्यसनीया वरानने ॥६२४॥

कराङ्गन्यास ईदृक्षः कथितस्तव यत्नतः ।
भिन्नं भिन्नं षडङ्गाख्यं हार्दादीनां ब्रुवेऽधुना ॥६२५॥
आस्तेऽनुवर्तमाना सा नवबीजी वरानने ।
शुद्धाः स्वराः षोडश च बिन्दुसर्गविवर्जिताः ॥६२६॥
तारो नमश्च परमपदाच्छिवतमेरयेत् ।
विपरीताचारमहाभैरवेति ततः परम् ॥६२७॥
कालशब्दादनु वदेन्निसूदनपदं प्रिये ।
पुनः कालमुखेत्युक्त्वा खाहि भुङ्क्ष्व युगं युगम् ॥६२८॥
कालियुग्मं महाकालियुगलं चाध्वनां त्रयम् ।
हासिन्यनु च सानुः स्याद् गुडम...? कुलाङ्गना ॥६२९॥
हृदयाय नमश्चेति प्रथमाङ्गमुदाहृतम् ।
नवबीजानु कुणपादिपञ्चकमुदीरयेत् ॥६३०॥
ततो वेदादिहृन्मन्त्रौ ङेऽन्तोऽस्यान्ते सदाशिवः ।
भगवानप्यथाध्वा च तत एह्येहि कीर्तयेत् ॥६३१॥
परमात्मने सर्वशत्रुपदादन्तो [न्ते ?] निसूदनः ।
तद्वद्ब्रह्मशिरश्चापि शैखो मनुरतः परम् ॥६३२॥
परमव्योमवासिन्यनु कौरजत्रयं भवेत् ।
व्योमरूपे ततः सत्ये ध्रुवे गुह्ये त्रिपूरकम् ॥६३३॥
वाविधानी[?]क्षेत्रपालधनदाकुलयोषितः ।
ङेऽन्तं ब्रह्मशिरः स्वाहा द्वितीयं समुदाहृतम् ॥६३४॥

प्रवदेन्नवबीजीतः शीर्षकादीनि पञ्च वै ।
चण्डकापालिनी देवि त्रिकूर्चं च ज्वलत्रयम् ॥६३५॥
प्रज्वलद्वितयं चापि हिंत्ति छिंत्ति युगं युगम् ।
भिंत्ति योजय च द्वे द्वे ग्रन्थाग्रं गृह्ण च द्वयम् ॥६३६॥
हृज्जम्भिते स्तम्भिते च मोहिते चर्चिते तथा ।
जम्भय द्विश्च परमचण्डेतः शीघ्रमानय ॥६३७॥
तारत्रपे महत्सूक्ष्मे लागुडं बीजमेव च ।
ङेऽन्ता च भगवच्छक्तिः गौः शिखायै वषट् तथा ॥६३८॥
नव बीजानु कीलादिपञ्चकं प्रणवत्रयम् ।
भीमरावे भगवति विसन्ध्येह्येहि तत्परम् ॥६३९॥
मातर्देवि तरद्वन्द्वं द्विस्तुरु प्रस्फुरद्वयम् ।
व्योषो[?]माया मेघमाले महामारीश्वरीति च ॥६४०॥
त्रिद्युत्कटाक्षे क्षपितदुरिते तदनन्तरम् ।
अरूपे बहुरूपे च विरूपे ज्वलितमुख्यपि ॥६४१॥
चण्डेश्वर्यनु हट्टद्विः स्याद्वज्रायुधधारिणि ।
हनयुग्मं ततः कूर्चं ततो डामरमुख्यपि ॥६४२॥
बीजे विजयमन्दाख्ये भवतस्तदनन्तरम् ।
कीर्तयेद् वज्रशब्दानु शरीरे कवचाय हूम् ॥६४३॥
नवबीजादनून्माथादिपञ्चकमुदीरयेत् ।
वज्रमध्ये फट्त्रयं च तारसंभ्रमरोषणाः ॥६४४॥
अस्त्रं महाकिरातानु चाण्डाल सन्धिवर्जितम् ।
ततोऽवतरयुग्मं च सन्धा[न्धि]नोनं पुनर्वदेत् ॥६४५॥
आवाहनमुखीत्येवं बीजं मौञ्जबलं ततः ।
शक्तिः सन्तानमपि च वज्रसारमुखेत्यपि ॥६४६॥
ह्रीं जहि द्विः कालियुगं कालविध्वसिनीत्यपि ।
रोषस्तोकौ गह्वरं च दक्षिणास्त्रे ततः परम् ॥६४७॥
नेत्रत्रयाय वौषट् च पञ्चमं समुदाहृतम् ।
नवभ्यो देवि बीजेभ्यः छुरिकादीनि पञ्च वै ॥६४८॥

आगच्छ द्वी रुट्त्रितयं चक्रराजेश्वरीत्यपि ।
महाशब्दे तरद्वन्द्वं निर्बिन्दुः सामिधेन्यपि ॥६४९॥
व्योममाला ज्वलयुगं महारौद्रे ततः परम् ।
रौषिकानलमाभाष्य द्विः पत[तप ?]द्विश्च तापय ॥६५०॥
कट्टद्वयं हट्टयुगं घोराचारपदादनु ।
महाघोरपदाच्चापि वाडवाग्नि ग्रस द्वयम् ॥६५१॥
ज्वालय द्विर्दक्षिणा च द्वे बीजे भैमतान्त्रिके ।
नाम्ना कुलधरं चैकं प्रमीतं तदनन्तरम् ॥६५२॥
अस्त्राय फट् सर्वशेषे पूर्वमेतत् षडङ्गकम् ।
व्यापकद्वयमन्यद्धि वर्तते सुरवन्दिते ॥६५३॥
गलाधोनाभिपर्यन्तमेकमुक्तं पुरारिणा ।
आब्रह्मरन्ध्रपादान्तं द्वितीयं समुदाहृतम् ॥६५४॥
नवबीजादनु भवेत् कुण्यादिदशबीजकम् ।
किन्तु संतर्जनीयुक्तं गुडादनु वरानने ॥६५५॥
तारान् महाबलो ङेऽन्तो नमो रुद्राय चेत्यपि ।
फेत्कारीसानुहूीरोषबीजान्यस्त्रं तथैव च ॥६५६॥
ततो महाचण्डयोगेश्वरी श्रीपादुकामपि ।
सर्वशेषे पूजयामि प्रथमं व्यापकं त्वदः ॥६५७॥
द्वितीयं नवबीजीतः स्वराः षोडश सेन्दुकाः ।
क्रुणपादि द्रुमान्तं च ससन्तर्जनितत्परम् ॥६५८॥
षष्टिरेवं समुच्चार्य महाव्यापकमाचरेत् ।
उग्रमातृक्रमन्यासः प्रथमोऽयमुदाहृतः ॥६५९॥

[कालीकुलक्रमन्यासस्योद्देशः ऋष्यादिनिर्देशश्च]

कालीकुलक्रमन्यासमधुना कलय प्रिये ।
श्रीक्रोधभैरव ऋषिः प्रतिष्ठाच्छन्द एव च ॥६६०॥
कोटियोगिन्यनु परिवृता दक्षिणशब्दतः ।
काल्यादिनवकाली च देवता परिकीर्तिता ॥६६१॥

अश्रु कान्तानृहरयोर्बीजशक्तिककीलकाः ।
रुद्रतत्त्वं मम गुह्यानु काली प्रीत्यर्थं एव च ॥६६२॥
जपे नियोग उच्चार्यं न्यासं कालीकुलं चरेत् ।

[कालीकुलक्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

उद्धारमधुनैतस्य प्रवदामि समासतः ॥६६३॥
तान्येवादौ तु बीजानि यान्युक्तानि पुरा नव ।
प्रणवो डाकिनी लज्जा पुनर्बीजत्रयं स्थिरम् ॥६६४॥
एभ्यो द्वादशबीजेभ्यः स्वराः सर्वे हलान्विताः ।
सबिन्दवोऽमी एकैकं क्रमान् मन्त्रेषु योजिताः ॥६६५॥
कर्तव्यास्तत्परं बीजे ज्ञानेच्छे समहाक्षरे ।
एवं वर्णाः सप्तदश विज्ञातव्या वरानने ॥६६६॥
एषु त्रयोदशतमश्चलो वर्णो न चेतरे ।
काली श्रीपादुकायै हृन्नववर्णाश्च पश्चिमे ॥६६७॥
अचलामातृकास्थानमेषां स्थानं वरानने ।
सर्वशेषे विशेषोऽस्ति तमाकर्णय पार्वति ॥६६८॥
ज्ञानेच्छयोरनु महावर्णतः पूर्वमीश्वरि ।
वेदादिरावडाकिन्यस्तत्राधिकतया मताः ॥६६९॥
एतस्यानन्तरो यश्च सर्वाङ्गव्यापको मनुः ।
तस्योद्धारं तु चरमे कथयिष्यामि सुन्दरि ॥६७०॥
सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्या भासा तथैव च ।
ज्ञानं सूर्यश्च सोमश्च ज्ञानानन्दस्तथैव च ॥६७१॥
ज्ञानंप्रभा नभः क्षीरं महार्चिः केतुरित्यपि ।
कुलिशं च पाशुपतं च तापिनी च नराशनी ॥६७२॥
ऋक्षश्च सिद्धिदा चैव ऋद्धिदा दंष्ट्रिणी तथा ।
मन्त्रदा ज्वालिनी मन्त्रसिद्धिस्तदनु कथ्यते ॥६७३॥
गणेश्वरी तथा माया नित्या शान्ता ततः परम् ।
विद्या तथा नन्दिनी च सन्धिहीना ततोऽम्बुमा ॥६७४॥

पुनः ससन्धिरानन्दो बलस्तदनु वन्दिताः ।
सुभगा स्याज्जय[1]लक्ष्मीः सिद्धिलक्ष्मीश्च कुब्जिकाः ॥६७५॥
विश्वलक्ष्मीरथ जयावहा काल्यम्बया सह ।
सुन्दरी त्रिपुरा चैव डामरी तदनन्तरम् ॥६७६॥
पूर्णेश्वरी नैःश्रेयसी राजेश्वर्यप्यनन्तरम् ।
दुर्गा भैरव्यथ मलापकर्षिण्यपि कथ्यते ॥६७७॥
एकपञ्चाशदुदिताः सर्वाङ्गव्यापकं शृणु ।
नववीज्यास्ताररावडाकिन्यो ज्ञानमिच्छया ॥६७८॥
ततो नादादि निःश्रेणिचरमं षोडशोच्चरेत् ।
कुणपादि द्रुमान्तं च पञ्चत्रिंशद्बलोऽपि च ॥६७९॥
ततो महागुह्यकाली माता च तदनन्तरम् ।
प्रपञ्चरूपा च तथा त्रितयं ङेऽन्तमुच्चरेत् ॥६८०॥
महायोगिन्यनु ततो डाकिनी शबरीत्यपि ।
सप्ताक्षरी ततः सर्वचरमीयाणि योजयेत् ॥६८१॥
एतेन वारत्रितयं सर्वाङ्गव्यापकं न्यसेत् ।
विस्तरेणैव कथितो न्यासः कालीकुलक्रमः ॥६८२॥

[पीठन्यासोद्देशः ऋष्यादिविनिर्देशश्च]

पीठन्यासमिदानीं त्वं सावधाना निशामय ।
ऋषिः पीठक्रमन्यासस्य कौषीतक ईरितः ॥६८३॥
अत्यष्टिश्छन्द आख्यातं सकलानु कुलाकुल ।
परमाधिदैवतश्रीराजराजेश्वरीत्यपि ॥६८४॥
देवता योगिनी बीजं डाकिनी शक्तिरेव च ।
बधूः कीलकमुद्दिष्टं रावस्तत्त्वमुदाहृतम् ॥६८५॥
श्रीगुह्यकाली प्रीत्यर्थे विनियोग उदाहृतः ।
अष्टौ बीजानि देव्यत्र सुस्थिराण्युदितानि हि ॥६८६॥
तानि प्रणवडाकिन्यौ त्रपारावौ रमारुषौ ।
योगिनीवनिते चापि सर्वत्रामूनि योजयेत् ॥६८७॥

---

१. तथा ल० ङ ।

शक्तिश्रीपादुकायै हृदन्ते स्थास्नुर्नवाक्षरी ।
अथ मध्यगतान् वक्ष्ये संस्थानान् जगदीश्वरि ॥६८८॥
नादः पाशस्तथा क्षेत्रं सिद्धियोनिपदादनु ।
महाराविणीपीठसिद्धिकालीति तदनन्तरम् ॥६८९॥
महार्चिक आभाष्य परातिपरशब्दतः ।
ब्रूयाद् गुह्यमङ्गलेति भ्रूमध्ये परिविन्यसेत् ॥६९०॥
अष्टौ बीजानि तान्येव कलां स्थाणुं सशर्वकम् ।
ओड्डियानमहापीठे महाचण्डपदादनु ॥६९१॥
योगेश्वरी कालकाली छिप्पिणी शङ्खिनी तथा ।
मोहिनी च ततो गुह्यातिगुह्यपदमीरयेत् ॥६९२॥
परापर समाभाष्य वक्त्रमध्ये प्रविन्यसेत् ।
बीजाष्टकं ततः सेन्दु सप्तमादिस्वरत्रयम् ॥६९३॥
जालन्धरमहापीठे महाचण्डपदादनु ।
कापालिनी ततः कालान्तककाली च धीवरी ॥६९४॥
गुह्यान्तरान्तरा चेति ललाटे विन्यसेत् प्रिये ।
दशमाजन्वितं सेन्दुं बीजाष्टकमुपन्यसेत् ॥६९५॥
दुर्द्धर्षमथ चैतन्यं कामरूपपदादनु ।
महापीठे महाचण्डराविणी तदनन्तरम् ॥६९६॥
यमान्तकपदात् काली फेत्कारिण्यप्यनन्तरम् ।
असन्धानातिगुह्याचिन्त्येति न्यासस्थलं मुखम् ॥६९७॥
अष्टभ्यः प्रणवाश्वत्थौ ततः पूर्णागिरीति च ।
महापीठे पुलिन्दनी महाचण्डाच्च रोषिणी ॥६९८॥
कालीशब्दात् तथा कालवञ्चनी च परापरम् ।
गुह्यातिगुह्य संकीर्त्य विशुद्धावेव विन्यसेत् ॥६९९॥
अष्टबीजी तथा नादो निःश्रेणी तदनन्तरम् ।
स्यात् प्रयागमहापीठे वेश्या ब्रह्मवती तथा ॥७००॥
महाचण्डपदाद्दण्डिन्यपि सन्धिविवर्जिता ।
अतिगुह्यरहस्येति न्यासस्थानमनाहतम् ॥७०१॥

अष्टभ्यः कुणपादीनि पञ्चबीजानि सुन्दरि ।
वाराणसीमहापीठे रुद्रवत्यथ कीर्तयेत् ॥७०२॥
महाचण्डपदस्यान्ते शूलिनी शौण्डिनी तथा ।
गुह्यातिगुह्ययोगिन्युक्त्वा न्यसेन्मणिपूरके ॥७०३॥
अष्टानां चरमे पञ्च शीर्षकादीनि कीर्तयेत् ।
कोलापुरमहापीठे कैवर्ती तदनन्तरम् ॥७०४॥
गुहेशीतो महाचण्डातिवेगिन्यपि कीर्तयेत् ।
स्वाधिष्ठाने न्यसेदेतत् ततो बीजाष्टकं प्रिये ॥७०५॥
कीलादिरज्जुपर्यन्तं पञ्चबीजान्यतः परम् ।
अट्टहासमहापीठे खड्गकी तदनन्तरम् ॥७०६॥
नारायणी चक्रिणी च गुह्यकाली च पश्चिमे ।
मूलाधारे प्रविन्यस्य बीजान्यष्टौ समुच्चरेत् ॥७०७॥
उन्माथादीनि पञ्चापि जयन्तीति पदं ततः ।
महापीठे बन्धकी च घोणवत्यपि कीर्तयेत् ॥७०८॥
महाचण्डाङ्कुशवती ततो गुह्यातिगुह्य च ।
पातालचारिणी पश्चात् कुण्डलिन्यां प्रविन्यसेत् ॥७०९॥
छुरिकादीनि पञ्चापि बीजाष्टकत ईरयेत् ।
हस्तिनापुरमहापीठे रजकी शक्रवत्यपि ॥७१०॥
महाचण्डवज्रिणी च विसन्धानातिगुह्यया ।
एतेनोरसि विन्यस्य बीजाष्टकमुदीरयेत् ॥७११॥
कुण्यादिधूमलान्तानि चत्वारि तदनन्तरम् ।
एकाम्रनाथमहापीठे चामुण्डाशिवदूत्यपि ॥७१२॥
महाचण्डकर्तरी च स्यात् कुलार्णवचारिणी ।
विन्यस्य जानुद्वितये पुनरष्टौ समुल्लिखेत् ॥७१३॥
वेध्यादीनि द्रुमान्तानि पञ्च बीजानि संस्मरेत् ।
देवीकोटमहापीठे कोटवी चण्डिकापि च ॥७१४॥
महाचण्डात् खड्गनी च सन्धिहीनातिगुह्यतः ।
योगेश्वरीति संकीर्त्य जङ्घयोर्न्यासमाचरेत् ॥७१५॥

पूर्वंरीतिर्निवृत्ताथ पुनरन्या निगद्यते ।
चैतन्यडाकिनीलज्जाः शाकिनी कमला तथा ॥७१६॥
पञ्चेमानि समुद्धृत्य स्वरान् षोडश सेन्दुकान् ।
करवीरमहापीठे चण्डचण्डेश्वरी ततः ॥७१७॥
महागुह्ये न्यसेल्लिङ्गे सर्वमन्यत् पुरोक्तवत् ।
इमानि पञ्च बीजानि पञ्चत्रिंशद्बलस्तथा ॥७१८॥
राजगृहमहापीठे सृष्टिस्थितिपदादनु ।
संहारानाख्यया सार्द्धं भासा कालीकुलेति च ॥७१९॥
महाचण्डपदाद् योगेश्वरी चापि परापर ।
परमरहस्यकालीक्रम सर्वं पुरोक्तवत् ॥७२०॥
व्यापकं विन्यसेत् सर्वं पीठन्यासोऽयमीरितः ।

[योगिनीन्यासोद्देशः]

निबोधातः परं देवि योगिनीन्यासमुत्तमम् ॥७२१॥

[योगिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य श्रीयोगिनीन्यासस्य जम्भक ऋषिर्मतः ।
मध्याच्छन्दः समाख्यातं परापरपदादनु ॥७२२॥
चामुण्डासहित प्रोच्य योगिनी देवता ततः ।
योगिनीबीजमाख्यातं त्रपाशक्तिरुदाहृता ॥७२३॥
कूर्चः कीलकमाख्यातं डाकिनी तत्त्वमुच्यते ।
परमाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोग उदाहृतः ॥७२४॥

[योगिनीन्यासस्य सामान्यतोमन्त्रोद्धारनिर्देशः]

उद्धारमधुनैतस्य सावधाना निशामय ।
आदौ बीजत्रयं तारडाकिनीकुलयोषितः ॥७२५॥
शक्त्यै नमः सर्वशेषे स्थिरमेतद्द्वयं मतम् ।
किञ्चिदेकप्रकारं च विभिन्नं किञ्चिदेव हि ॥७२६॥
तन्निर्णेतुमशक्यत्वात् भिन्नं भिन्नमहं ब्रुवे ।
सागरो गुप्तिसन्तोपौ कौबेरास्त्रमतः परम् ॥७२७॥
ततो महाचण्डकालीं डाकिनि योगिनि स्मरेत् ।
मम संकीर्त्य त्वग्धातून् रक्षयुग्मं त्रपारुषौ ॥७२८॥

कापालिनी महाकाली वैपरीत्येन कीर्तयेत् ।
विशुद्धिपीठे षोडश च सर्वमन्यत् पुरोदितम् ॥७२९॥
मन्त्रेणानेन देवेशि विशुद्धौ विन्यसेत् सुधीः ।
त्रिबीजी तारकं कोलः खेद आग्नेयकूटकम् ॥७३०॥
ततो महाचण्डकालि षड्वर्णानुद्धरेत् प्रिये ।
पुनर्ममासृग्धातूंश्च रक्षद्वन्द्वं त्रपारुषौ ॥७३१॥
महाकालि कापालिनि सन्धिहीनमनाहत ।
पीठे द्वादश संकीर्त्यं पुरावत्स्यादनाहते ॥७३२॥
बीजत्रयं सत्त्वतमोरतयश्चैन्द्रमस्त[स्त्र?]कम् ।
संबोधनं महाचण्डकाल्यालाकिनि तत्परम् ॥७३३॥
मम मांसपदाद् धातून् रक्षयुग्मं त्रपारुषौ ।
महाकालि समाभाष्य कापालिनि समुद्धरेत् ॥७३४॥
मणिपूरकपीठे च दश सर्वं पुरोक्तवत् ।
नाभौ प्रविन्यसेद् बीजत्रयं पुनरपीरयेत् ॥७३५॥
रूपं रसस्तथा गन्धो वारुणास्त्रं ततः परम् ।
महाचण्डपदात् कालि काकिन्यपि समुद्धरेत् ॥७३६॥
ममानु मेदो धातूंश्च रक्षयुग्मं त्रपारुषौ ।
नाभिस्थानवदस्यानु समानाष्टाक्षरी मता ॥७३७॥
स्वाधिष्ठानानु पीठे षट् स्वाधिष्ठाने प्रविन्यसेत् ।
श्रमार्थर्तम्भरा वायव्यास्त्रं वाच्यं त्रिबीजतः ॥७३८॥
महाक्षराच्चण्डकालि शाकिन्यपि नवाङ्कुरम् ।
ममास्थि तदनु ग्राह्या प्राक्तनी षोडशाक्षरी ॥७३९॥
मूलाधारानु पीठे च चतुस्तत्रैव विन्यसेत् ।
त्रयम्रध्वमनः क्रोधाः याम्यास्त्रं तदनन्तरम् ॥७४०॥
चण्डकाली हाकिनि च महाक्षरयुगात् पठेत् ।
मम मज्जापदस्यान्ते सैव स्यात् षोडशाक्षरी ॥७४१॥
आज्ञापीठे द्वीतिवाच्यं सन्धिहीनं वरानने ।
आज्ञाचक्रे न्यसेदेनं पुनर्बीजत्रयं स्मरेत् ॥७४२॥

जीवदिक्क्षतकालास्त्रं महाचण्डपदादनु ।
काली याकिनि[?] चोद्धृत्य मम शुक्रं समुद्धरेत् ॥७४३॥
वर्णाः षोडश तेऽत्रापि व्योमपीठेऽनु सर्व च ।
प्रविन्यसेद् ब्रह्मरन्ध्रे मन्त्रोऽन्यो व्यापको ह्यतः ॥७४४॥
तान्येव त्रीणि बीजानि मैधं काली च योगिनी ।
वधूः कूर्चः स्वराः सर्वे ततो वै निखिला हलः ॥७४५॥
अनन्तकोटिपदतः कालिकाशब्दमुच्चरेत् ।
ततो महासिद्धिचक्र योगिनी शक्ति चोद्धरेत् ॥७४६॥
युक्तायै गुह्यकाल्यै हृत् सर्वाङ्गव्यापको मनुः ।

[दैवतन्यासोद्देशः]

इत्युक्त्वा योगिनीन्यासो[सं ?]दैवतो न्यास उच्यते ॥७४७॥

[दैवतन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य दैवतन्यासस्य प्रजापतिऋषिर्मतः ।
पंक्तिश्छन्दः स्यात् समस्तदेवता देवता तथा ॥७४८॥
तारमैधो बीजकीलौ पाशः शक्तिरुदाहृतः ।
त्रपा तत्त्वं ततः सर्वसिद्ध्यर्थे विनियोगता ॥७४९॥

[दैवतन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

भिन्नं भिन्नं समुद्धारं मन्त्राणां त्वं निशामय ।
प्रणवो डाकिनी लज्जा ततो भगवते पदम् ॥७५०॥
रुद्राय कालादित्यौ च हृत्पूर्वं परमात्मने ।
आद्यो मनुरयं प्रोक्तो ह्यन्येषामुद्धृतिं शृणु ॥७५१॥
वेदादिडाकिनीलज्जास्तारो नृहरिरेव च ।
गौः षष्ठी च पदद्वन्द्वं ततो ङेऽन्तमुदीरयेत् ॥७५२॥
आदौ क्षपिततमा ...... ? नरसिंहस्ततः परम् ।
कालादित्यौ ततो ङेऽन्तो ज्ञानात्मा हृदयं तथा ॥७५३॥
तृतीये तु द्वितीयाद्याश्चत्वारोऽर्णाः सशुक्लिनः ।
वीर्यनिर्जितदिक्चक्रपदं ङेऽन्तमतः परम् ॥७५४॥
कालादित्यौ च धर्माय नम इत्यन्तिमाक्षरम् ।
आद्यस्याद्यास्त्रयो वर्णा मानसं नृहरिस्तथा ॥७५५॥

ङेऽन्तं तेजश्चण्डपदं कालादित्यावतः परम् ।
वैराग्याय नमश्चान्ते पञ्चमे तत आदिमा ॥७५६॥
बीजत्रयी च धनदाऽद्वैतादित्यास्तदन्वथ ।
ङेऽन्तोऽमृतात्मा तत्पश्चात् कालादित्यावतः परम् ॥७५७॥
ऐश्वर्याय नमोऽन्ते च षष्ठ आदौ त्रिबीज्यथ ।
ततस्तारकफोणौ च ज्वलयुगं प्रज्वलद्वयम् ॥७५८॥
ङेऽन्तं गीर्वाणमुखं च कालादित्यावनन्तरम् ।
अधर्माय नमश्चान्ते सप्तमं कथयामि ते ॥७५९॥
त्रिबीजी दण्डग्रावौ च ज्वालामाली ततः परम् ।
कालादित्यप्रथमतो ङेऽन्तो वज्रमहाबलः ॥७५६०॥
अज्ञानाय नमः शेषे मनूनन्यानथो शृणु ।
आदौ सर्वत्र वेदादिः कालादित्यौ च पश्चिमे ॥७६१॥
सत्त्वं च ब्रह्मणे चाद्य आधानं नाद एव च ।
विष्णवेऽयं द्वितीयः स्यात् तृतीये चाध्वतारकौ ॥७६२॥
रुद्राय तुर्ये जीवार्णमीश्वरायाथ पञ्चमे ।
इच्छा सदाशिवाय स्यात् षष्ठे तु ग्लानिबीजतः ॥७६३॥
आत्मज्ञानाय तदनु परज्ञानाय पूरकात् ।
दण्डादघोराय ततस्त्वचोघोराय तत्परम् ॥७६४॥
प्रासादात् घोररूपाय भैरवाय तथा रुषः ।
शुक्लाच्च वीरभद्राय प्रेतात् ङेऽन्तमतः परम् ॥७६५॥
शरभवनमित्येवं पदं देवि नियोजयेत् ।
बलप्रमथनः पश्चात् प्रचण्डदण्ड इत्यपि ॥७६६॥
परमात्मा वाक्पतिश्च ङेऽन्तांश्चतुर ईरयेत् ।
ततो भूतलपातालवासिशब्दो भ्यसन्तिमः ॥७६७॥
प्रचण्डभैरवायाथ वदेत् सर्वात्मने प्रिये ।
नमो रुद्राय चेत्यन्ते स्थानान्याकलयाधुना ॥७६८॥
आदौ ललाटेऽनु दृशोर्गण्डयोः कर्णयोरपि ।
स्कन्धयोरथ बाह्वोश्च कराङ्गुलिषु वक्षसि ॥७६९॥

जङ्घायां पादयोः पादाङ्गुलीष्वथ अनाहते ।
पुनस्तालुनि बिन्दौ चार्धचन्द्रे नाद एव च ॥७७०॥
निरोधिकायां व्यापिन्यां रसनायां ततः परम् ।
कुलकूले मनोन्मन्यामुन्मन्यां शाम्भवान्तिमे ॥७७१॥
षोडशान्ते च सूक्ष्मान्ते परान्ते कूल एव च ।
सप्तविंशतिरेतानि व्यापकं शृण्वतः परम् ॥७७२॥
चैतन्यडाकिनीलज्जातारेभ्यः परिकीर्तयेत् ।
ङेऽन्तः प्रचण्डचण्डानु महाघोरानु भैरवः ॥७७३॥
क्रमाद्द्विः द्विरनूच्चार्य मर्दय ज्वल प्रज्वल ।
डाकिनी भासाकूटं च कौमुदी रोषसंविदौ ॥७७४॥
कालनाशक मां रक्षद्वितयं तदनन्तरम् ।
ङेऽन्तो महाप्रचण्डानु भैरवः प्राग् द्विबीज्यपि ॥७७५॥
एतेन व्यापकं न्यस्येद् देवतान्यास ईदृशः ।

[मन्त्रक्रमन्यासोद्देशः]

अथ मन्त्रक्रमन्यासं षष्ठमाकलयाबले ॥७७६॥

[मन्त्रक्रमन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

भरद्वाज ऋषिस्तस्य छन्द उष्णिक् तथैव च ।
समस्तमन्त्राश्चैतस्य देवताः परिकीर्तिताः ॥७७७॥
तारो बीजं त्रपा शक्तिर्ह्राकिनी कीलकं तथा ।
कूर्चस्तत्त्वं ततः सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं एव च ॥७७८॥
विनियोगः समुद्दिष्टो न्यासोद्धारमथो शृणु ।

[मन्त्रक्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

दशानामपि वक्त्राणां दश मन्त्राः पृथक् पृथक् ॥७७९॥
तांस्ते विविच्य वक्ष्यामि ततोऽन्यानपरान् क्रमात् ।
अखिलानां पुरस्तारो डाकिनी भुवनेश्वरी ॥७८०॥
तत्तद्वक्त्राय हृच्चान्ते विशेषं मध्यगं शृणु ।
वधूबीजान्महाचण्डयोगेश्वरि समुद्धरेत् ॥७८१॥
मानसं वज्रकापाले प्रथमोऽयं मनुर्मतः ।
वेदादियोगिनीरोषवधूमर्म्मरिसंविदः ॥७८२॥

तार्तीये सानुरस्त्राणां त्रितयं समुदाहृतम् ।
तुर्ये तु निगमादीरुड्बान्धवः सानुचुल्लिकौ ॥७८३॥
रुट्संविदस्त्राणि ततः पञ्चमं कलयाधुना ।
वधूबान्धवमाण्डिल्यकुम्भाङ्गाः क्रोध एव च ॥७८४॥
दिव्यभालः संविदस्त्रे कूर्चत्रितयमेव च ।
अस्त्रत्रितयमस्यानु षष्ठं वच्म्यधुना प्रिये ॥७८५॥
पुष्पमालैकावली च कौमुदीचामरक्रमाः ।
संविद् रुडस्त्रे त्रिस्त्रिश्च सप्तमं कथयामि ते ॥७८६॥
योगिनीविद्युदमृतमेखलाहारकिन्नराः ।
संविद्रोषत्रयं चास्त्रत्रितयं तदनन्तरम् ॥७८७॥
अष्टमः शाकिनीभोगश्रृङ्खलाप्रलयांशवः ।
भ्रामरीसंविदस्त्राणि त्रिस्त्रिः कूर्चास्त्रयोरपि ॥७८८॥
नवमे तु पुरः प्रेतो हैमनास्त्रं च दण्डयुक् ।
काली नित्यश्च शङ्खश्च दशमं कलयाधुना ॥७८९॥
नित्यकामप्रभारत्नकुम्भाः फलकमेव च ।
दिव्यभालः पुष्पमाला संविद् रोषास्त्रयोस्त्रयम् ॥७९०॥
प्राक्पदानि तु वक्त्रस्य प्रवदाम्यधुना तव ।
द्वीपी सिंहश्च फेरुश्च कपि ऋक्षो नरस्तथा ॥७९१॥
गरुडो मकरश्चैव गजो हय इतः परम् ।
अथैषां स्थानमाख्यास्ये दशानामपि पार्वति ॥७९२॥
ततोऽपरान् मनून् वक्ष्ये स्थानं तस्य ततः परम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं ललाटं च नेत्रे दक्षिणवामके ॥७९३॥
कर्णौ तथा कपोलौ च हृदयं शिर एव च ।
षडन्यानपरान् मन्त्रानुद्धराम्यवधारय ॥७९४॥
प्राक्तन्येव त्रिबीज्यादौ हृन्मन्त्रान् सन्धिसंयुतान् ।
चामुण्डे समनूद्धृत्य मालिन्यपि करङ्कतः ॥७९५॥
पुनः करङ्कमालानु धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
ततो भगवति प्रोच्य इच्छानिर्वेदसंविदान् ॥७९६॥

चण्डकापालिनी शब्दो महातः कालिका तथा ।
उभयं ङेऽन्तमुल्लिख्य शेषे हृन्मन्त्रमुद्धरेत् ॥७९७॥
मूलाधारे न्यसेदेनं द्वितीयमवधारय ।
पूर्वोदितत्रिबीज्यन्ते गामस्त्रं परिकीर्तयेत् ॥७९८॥
महाचण्डाद् भैरवि च भ्रामरीमथ दक्षिणाम् ।
अस्त्रं प्रस्वापनास्त्रं च चूडामणिमतः परम् ॥७९९॥
द्वीपार्णादप्यन...दं कीलं तदनु मेखला ।
स्कान्दास्त्रात् तत्पुनर्वाच्यं मेखला प्राग्वदीरितम् ॥८००॥
स्वाधिष्ठाने न्यसेदेनं तृतीयमधुना शृणु ।
तारो माया मौल्यनलविहीना मेखला ततः ॥८०१॥
दिगधः सानला ऋद्धिः काकिनीकालिकारुषः ।
अस्त्रमन्ते न्यसेदेनं मणिपूरे वरानने ॥८०२॥
पैशाचास्त्रं कालिका च त्रपा च त्रिशिखा तथा ।
मानसं काकिनी चैव कापालं वज्रमस्त्रयुक् ॥८०३॥
अनाहते न्यसेदेनं विशुद्धेरधुना शृणु ।
पुरतो रतिनागौ चौदुम्बरं हारमेखले ॥८०४॥
चत्वार्यधो नलीनि स्युस्तदनन्तरमीश्वरि ।
अध्वश्रमाधानजीवसंख्यकं प्रतिलोमतः ॥८०५॥
कालिकायै नमश्चान्ते आज्ञायाः कलयाधुना ।
हारं यममुखि प्रोच्य यमहस्ते ततः परम् ॥८०६॥
सानुं जम्भं तथा चूडामणिमस्त्रत्रयं ततः ।
षट्चक्रमन्त्रानेतान् वै विन्यस्य तदनन्तरम् ॥८०७॥
भारत्या एव सर्वत्र षडङ्गं चाचरेत् पुनः ।
पुनस्तस्यैव मन्त्रस्य सप्तार्णान् परिकीर्त्य वै ॥८०८॥
वदेद्दक्षिणवक्त्राय हृदन्ते दक्षिणे न्यसेत् ।
तदनु त्र्यर्णमाभाष्य वामवक्त्राय हृत्तथा ॥८०९॥
वामे प्रविन्यसेद्देवि ततोऽनु च षडक्षरम् ।
प्रोच्य मध्यमवक्त्राय नमोऽन्ते मध्यतो न्यसेत् ॥८१०॥

पुनर्मूलमनोर्देवि एकैकं वर्णमुच्चरन् ।
रावाभ्यां पुटितं कृत्वा मध्यगं तं यथास्थितम् ॥८११॥
स्थलेषु वक्ष्यमाणेषु विन्यसेत् षोडशस्वपि ।
तत्तत्स्थानपदं मुक्त्वा नवार्णाच्छेषतो वदेत् ॥८१२॥
तच्च देवेश्वरि स्थानपादुकां पूजयामि हि ।
अधुना तु स्थानतत्त…? ते कथयाम्यहम् ॥८१३॥
आदौ शिरोऽनु हृदयं नाभिश्च तदनन्तरम् ।
ततो दक्षिणनेत्रं च वामनेत्रमतः परम् ॥८१४॥
वामनासापुटं नासापुटं दक्षिणतस्तथा ।
वामकर्णो दक्षिणतः कर्णौ लिङ्गं तथैव च ॥८१५॥
गुह्यं भ्रूमध्यमस्यानु ब्रह्मरन्ध्रं शिरस्तथा ।
ततो मस्तकात्पादान्तं पादान्मस्तकान्तं तथा ॥८१६॥
इति षोडश देवेशि स्थानानि कथितानि [ते ?] ।
अस्यानु मन्त्रद्वितयं वर्तते साङ्गताकरम् ॥८१७॥
तदाकलय तारश्रीसंविदो गुह्यकालिकम् ।
अस्त्रमत्रिः क्रोधहृदी शिरसि प्रतिविन्यसेत् ॥८१८॥
मनुं द्वितीयं सर्वाङ्गव्यापकं कलयाधुना ।
प्रणवो डाकिनी लज्जा चैतन्यं डाकिनी त्रपा ॥८१९॥
कामलं डाकिनी चापि मेषो नादो नर्दचियुक् ।
अस्त्रं च कूर्चयोर्मध्ये डाकिनी तदनन्तरम् ॥८२०॥
ततः सिद्धिकराल्युक्त्वा तारराबौ प्रकीर्तयेत् ।
नादोनदर्व्वी शिरसं राकां तदनु चोद्धरेत् ॥८२१॥
ततो महाचण्डयोगेश्वरीपदमुदीरयेत् ।
श्रीपादुकायै हृच्चान्तेऽमुना हि व्यापकं चरेत् ॥८२२॥
इत्येष कथितो देवि मन्त्रन्यासो महाफलः ।
एनं विधाय सर्वान्ते लघुषोढा समाप्यते ॥८२३॥

[लघुषोढान्यासस्य माहात्म्यकीर्तनम्]

नानया सदृशी विद्या त्रिषु लकेषु विद्यते ।
कालीकुलक्रमायाता सिद्धिदा परमेश्वरी ॥८२४॥

लघुषोढेति विख्याता नाम्नेयं निखिलागमे ।
कर्तव्या भक्तिभावेन गुह्या सन्तोषहेतवे ॥८२५॥
न्यासानामिह सर्वेषामियं मुख्यतमा मता ।
विन्यस्तव्या प्रयत्नेन बहुमङ्गलमिच्छता ॥८२६॥

[लघुषोढान्याससमाप्त्यवसरे बलिद्वयदानविधिः]

लघुषोढां समाप्येत्थं दद्याद्देवि बलिद्वयम् ।
एकेन रुद्रमन्त्रेण भैरवस्यापरेण च ॥८२७॥
तयोरुद्धारमधुना समाकलय पार्वति ।
त्रपालक्ष्म्यौ सर्वपीठे...... ततः परम् ? ॥८२८॥
चक्रयोगेश्वरी प्रोच्य चन्द्रपीठे ततो वदेत् ।
व्योमकाली समाभाष्य सिद्धिपीठे ततो वदेत् ॥८२९॥
मातङ्गिनी समुद्धृत्य योगपीठे ततः परम् ।
भीमकाली कामरूपपीठे तदनु कीर्तयेत् ॥८३०॥
सिद्धिकाली पूर्णगिरिपीठे तस्यानु संवदेत् ।
चण्डकाली ओड्डियानपीठे तस्याप्यनूच्चरेत् ॥८३१॥
रक्तकाली समाभाष्य रावान्ता चतुरक्षरी ।
प्रेतश्च भैरवी सर्वसमयाल्लाभमीरयेत् ॥८३२॥
कुरुद्वयं सुसिद्धिं च प्रसरेति द्विरुच्चरेत् ।
प्रसारय द्वयं चैव समाधिद्वितयं ततः ॥८३३॥
आदित्यद्वितयं चाथ सर्गिद्विः कौरजार्णकम् ।
खाहि द्विः कालिकाबीजद्वितयं ह्रीयुगं तथा ॥८३४॥
गोद्वयं वाहियुगलं काहि खाहि द्वयं द्वयम् ।
द्रोहः क्रोधस्तथा सत्त्वमिरे सत्त्वमुषस्तथा ॥८३५॥
क्रोधाध्वाध्यानमायाश्च लक्ष्मीः क्रोधश्च भैरवी ।
राका गुडः क्रोधयुगमंशुः क्रोधोऽस्त्रहृच्छिरः ॥८३६॥
इत्येष कथितो रुद्रमन्त्रः परमशोभनः ।
न्यासं समाप्य मनुनामुना बलिमथाहरेत् ॥८३७॥
अथापरेण मन्त्रेण भैरवाख्येन पार्वति ।
कालिकायै बलिं दद्याद् द्वितीयं भक्तिभावितः ॥८३८॥

द्रव्यं बालेयमीशानि प्रोक्तं स्वं स्वं यथोदितम् ।
प्रणवो वाग्भवं माया कमला काम एव च ॥८३९॥
योगिनी रोषवध्वश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
फेत्कार्यनाहतं कूटं खेदो मुक्ता तथैव च ॥८४०॥
हारसानुप्रेतशक्तिश्शृणिकङ्कालवज्रकाः ।
कापालं फट्त्रयस्यान्ते विसन्ध्येह्योहि कीर्तयेत् ॥८४१॥
ततो भगवति प्रोच्य गुह्यकालि समुद्धरेत् ।
पुनः सकलशब्दानु परापरकुलोच्चरेत् ॥८४२॥
चक्रमन्त्रपदाद् यन्त्रमयदेहे समीरयेत् ।
समांसरक्तानु बलिं ततः षण्णां युगं वदेत् ॥८४३॥
गृह्ण गृह्णापय तथा भक्ष भक्षय चेत्यपि ।
खाद खादयनु प्रत्यक्षपरोक्षं द्वेषिणो मम ॥८४४॥
शत्रूनिति समाभाष्य षण्णां युग्मं हि पूर्ववत् ।
प्रवदेदीश्वरि दह तथा मर्द्दय पातय ॥८४५॥
मूर्च्छय त्रासय तथा ततोऽन्वपि च शोषय ।
स्वखर्परे स्थापय द्विस्ततो वै दीर्घदंष्ट्रया ॥८४६॥
भिन्धि छिन्धि युगं युग्ममस्त्रत्रितयमेत्र च ।
पाशः कला च सर्वश्च वाग्भवोऽश्वत्थ एव च ॥८४७॥
मम राज्यं देहि युगं दापय द्वितयं तथा ।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायुः स्त्रीवाजिगजेत्यपि ॥८४८॥
रत्नसौभाग्यपदतः ससन्ध्यारोग्य कीर्तयेत् ।
समृद्धया मां पूरय द्विर्वर्षं वर्षापय द्वयम् ॥८४९॥
तारो माया योगिनी च रुड्वधूबीजमेव च ।
अस्त्रत्रयं हृद्युगलं सन्ध्याढ्यं शिर एव च ॥८५०॥
एतावता समाप्येत मन्त्रो भैरवनामकः ।
प्रदद्याद् बलिमेतेन तेन न्यासः समाप्यते ॥८५१॥
प्रोढान्यासमिमं कृत्वा गुह्यकाल्यास्तु साधकः ।
सर्वत्र जयमाप्नोति सिद्धिं चापि पदे पदे ॥८५२॥

पूजावसर एवामुं कुर्यान्नान्यक्षणे प्रिये ।
नास्त्येवं नियमः कोऽपि स्वेच्छैवात्र नियामिका ॥८५३॥
दिवसे वा तथा रात्रौ सन्ध्यायां प्रातरेव वा ।
यदा तदा प्रकर्तव्यो न कालनियमः कृतः ॥८५४॥
स्मार्तानामथ कौलानां रीतिरेकैव कीर्तिता ।
प्रयोगकरणे देवि उत्तरां तु क्रियां पुनः ॥८५५॥
कौलिकाः कुर्वते देवि पृथगेव निबोध ताम् ।

[तान्त्रिकाणां प्रमुखसंप्रदायचतुष्टयस्य निर्देशः]

कापालिकाः भाण्डिकेराः मौलेयाश्च दिगम्बराः ॥८५६॥
शक्तिपूजां प्रकुर्वन्ति न्यासानन्तरमेव हि ।
तद्विधानं मया वाच्यं नैमित्तिकसमर्हणे ॥८५७॥
धूपदीपादिनैवेद्यदानमामिषसंयुतम् ।
आवश्यकतया देव्यै ददति प्रीतिकारकम् ॥८५८॥
न्यासं कृत्वा मुहूर्तेऽन्ते तिष्ठन्त्यन्तर्हिता रहः ।
तद्धेतुः सन्निधत्तेऽङ्गे क्षणमेषां हि कालिका ॥८५९॥
अतो मनुष्यैरालापं सह चैते न कुर्वते ।

[षोढान्यासकृत आत्मपूजनविधिः]

प्रत्यक्षं मानसं वापि चरन्त्यात्मप्रपूजनम् ॥८६०॥

[आत्मपूजाविसर्जनमन्त्राभिधानम्]

विसर्जनं विदधति तदनन्तरमीश्वरि ।
तन्मन्त्रस्तारचैतन्यकालीरावाश्च डाकिनी ॥८६१॥
ततो भगवति प्रोच्य गुह्यकालि समीरयेत् ।
परमात्मनि लीना च भवचैतन्यरूपिणि ॥८६२॥
कैवल्यं प्रविश प्रोच्य सायुज्यं धेहि कीर्तयेत् ।
स्वस्थानं गच्छ संभाष्य फडङ्गुष्ठौ शिरोऽपि च ॥८६३॥
एवं नानाविधा रीतीर्न्यासान्ते विदधत्यमी ।
तत्तन्मतीनतन्त्रोक्तप्रकारत्वान्न चान्यथा ॥८६४॥
नैतानि किञ्चदपि हि दक्षिणे वर्त्मनि प्रिये ।
न्यासाचरणमात्रं हि बलिदानं ततः परम् ॥८६५॥

[महाषोढान्यासोपक्रमः]

देव्युवाच

जगदाधार सर्वज्ञ सृष्टिस्थितिविधायक ।
करुणाम्भोनिधे नाथ महाकाल दयामय ॥८६६॥
एकं पृच्छामि देवेश संशयं स्वमनोगतम् ।
एकमे[ए ?]वायमीशान्याः षोढान्यासो महाफलः ॥८६७॥
आगमादौ गतः ख्यातिमुतान्यः कोऽपि विद्यते ।
इतोऽपि शोभनो दिव्यः सद्यः सिद्धिविधायकः ॥८६८॥
यद्यस्ति कोऽपि विख्यातः षोढान्यासो वृषध्वज ।
गुह्यकाल्या विशेषेण सन्तोषाधिकताकरः ॥८६९॥
तदानुगृह्य मां नाथ वद प्राणेश्वर प्रभो ।
जाने यद्यप्यहं सत्यं न किञ्चिद् गोपयिष्यसि ॥८७०॥
मयि, गुह्यं यद्यपि स्यात् तथापि जगदीश्वर ।
त [त्रैव] विनियुङ्क्ते मां शुश्रूषेयं तथापि भोः ॥८७१॥
तस्मादनुग्रहवशादन्यां षोढां वद प्रभो ।

महाकाल उवाच

त्वयैव ज्ञायते देवि हृदयं मामकं यथा ॥८७२॥
त्वयि स्निग्धं साभिलाषं त्वदाज्ञावशवर्ति च ।
अकथ्यमथ गोप्यं मे त्वयि किञ्चिन्न विद्यते ॥८७३॥
तथापि वस्तुमाहात्म्याद् गोप्यं त्वय्यप्यदः प्रिये ।
षोढान्यासादमुष्याद्धि वर्ततेऽभ्यधिकः परः ॥८७४॥
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यदि गोप्यं करिष्यसि ।
एतस्माल्लक्षगुणितस्तथा कोटिगुणोऽपि च ॥८७५॥
वर्तते देवदेवेशि षोढान्यासोऽम्बिकाप्रियः ।
कपालडामरे नासौ न चायं **यामले** तथा ॥८७६॥
संहितायां न **भैरव्यां** किमुतान्यत्र पार्वति ।
त्रिपुरघ्न इमं वेद तत्प्रसादादहं तथा ॥८७७॥
त्वं मत्तो ज्ञास्यसीमं च नान्ये ज्ञास्यन्त्यमुं पुनः ।
मदुक्तां संहितां ये वै धारयिष्यन्ति भाग्यतः ॥८७८॥

अमुं चाधिगमिष्यन्ति ते नरा नेतरे पुनः ।
तत्ते षोढान्यासमहं प्रवदामि शुचिस्मिते ॥८७९॥
सावधानतमा भूत्वा निशामय कृताञ्जलिः ।

[निर्वाणमहाषोढान्यासावतारः]

नाम्ना निर्वाणषोढेति विख्याता निगमादिषु ॥८८०॥
फलं वा महिमैतस्य देवि वक्तुं न शक्यते ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रविष्टमिह कथ्यते ॥८८१॥
अतिसूक्ष्मतया लीनं द्रुमादौ पुष्पवर्णवत् ।
उद्धारक्रमतो ह्यस्य स्वल्पता परिकीर्तिता ॥८८२॥
इतिकर्तव्यतारीत्या बाहुल्यं हि निगद्यते ।
तीर्थशैलतटिन्यस्त्रयज्ञकल्पावमानिका [ल्पोपनामिका ?] ॥८८३॥
गुह्यकाल्याः महाषोढा सद्यः सिद्धिविधायिनी ।
इयं हि लघुषोढातो ज्ञेया कोटिगुणा वुधैः ॥८८४॥
शिवलिङ्गनृसिंहर्षिभैरवोर्वीशसिद्धयुक् ।

[महाषोढान्यासस्य माहात्म्यकीर्तनं कर्तव्यतानिर्देशश्च]

महाषोढेव निर्वाणमहाषोढाभिधीयते ॥८८५॥
इयं हि साधकैर्ज्ञेया कोटिकोटिगुणा ततः ।
यथा कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्यविजयाह्वयः ॥८८६॥
तथेयं गुह्यकाल्यास्तु महानिर्वाणषोढिका ।
कुर्वन्त्वेतां प्रत्यहं तु त्रैलोक्यमपि कम्पयेत् ॥८८७॥
विदधत्यर्वलक्ष्यं तु सर्वसिद्धिं नियच्छति ।
यावन्मन्त्रोपदेशेषु विधानं परिकीर्तितम् ॥८८८॥
तावदस्योपदेशेऽपि कर्तव्यं कमलानने ।

[महानिर्वाणषोढान्यासस्य गोपनीयतमत्वम्]

न पुस्तकेषु लिखितं दृष्ट्वा कुर्याज्जिजीविषुः ॥८८९॥
विदधन्मृत्युमाप्नोति सप्ताहाभ्यन्तरे नरः ।
तस्मादादाय हि गुरोरुपदेशं यथाविधि ॥८९०॥
महानिर्वाणषोढा हि कुर्यात् प्रयतमानसः ।
नीरवे रहसि स्थित्वा निराकृत्य जनोऽन्यतः ॥८९१॥

शनैः शनैः प्रकुर्वीत मन्त्रं निखिलमुच्चरन् ।
एतस्य कलयोद्धारमथातस्त्रिदशेश्वरि ॥८९२॥
भवित्री प्रकटा तेन महानिर्वाणषोढिका ।
रहितोत्तरषट्केन महाषोढाभिजायते ॥८९३॥
महानिर्वाणषोढाख्या जायतेऽनेन संयुता ।
शेषमेवाभिधास्यामि नाद्यां नापि पृथक् पृथक् ॥८९४॥
आद्यां चिकीर्षुः शेषाणां कुर्वीत सुरवन्दिते ।
उद्धारमेकमेवाहमुभयोः प्रब्रवीमि ते ॥८९५॥
भवेदेकस्य कस्यापि मन्त्रस्योपासको यदि ।
तदाधिकारी भवति कर्तुमेनां विधानवित् ॥८९६॥

[महानिर्वाणषोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य श्रीगुह्यकालीतः पूर्वं तारमनुस्मरेत् ।
महानिर्वाणषोढेति पदान्न्यासस्य कीर्तयेत् ॥८९७॥
ऋषिः पञ्चशिखश्चेति व्यत्ययेन प्रकीर्तयेत् ।
छन्दोऽतिजगती चाति पूर्ववद्वरवर्णिनि ॥८९८॥
आदौ हैरण्यकशिपवी ब्राह्मी तदनन्तरम् ।
वासिष्ठी तत्परं वामी च्यावनी तदनन्तरम् ॥८९९॥
हारीती भारती वैष्णुतात्त्वी नारदचथापि वा ।
आम्बहार्दी च सौपर्णी दाक्षी गार्गी ततः परम् ॥९००॥
पौनही [पौलही ?] च क्रतव्याङ्गीरस्यात्रेयी ततोऽनु च ।
गौतमी चापि जाबाली भारद्वाजी च रावणी ॥९०१॥
एकवक्त्राद्यनु शतवक्त्रान्ता गुह्यकाल्यपि ।
देवता कथिता रावो बीजं शक्तिश्च डाकिनी ॥९०२॥
फेत्कारी कीलकं प्रोक्तं प्रलयस्तत्त्वमित्यपि ।
महानिर्वाणषोढान्यासे जपे विनियोगता ॥९०३॥

[षोढान्यासस्य षडङ्गन्यासः]

इति विन्यस्य कुर्वीत षडङ्गं चास्य पार्वति ।
मायाकामवधूप्रेतभैरव्योऽङ्गुष्ठयोर्हृदि ॥९०४॥

पाशक्रोधामृतप्राणान् नृसिंहास्तर्जनीकयोः ।
शिखामध्यमयोर्मेधकालीशक्तीष्टिनैमयः ॥६०५॥
वर्मानामिकयोरंशुहारात्रिबलिसेतवः ।
कनिष्ठात्रिदृशोः सानुकाञ्चीजम्भर्क्षशृङ्खलाः ॥६०६॥
करपृष्ठास्त्रयोस्तुङ्गमन्दपङ्कोग्रचामराः ।
षोढान्यासस्य सर्वस्य ऋष्यादिरयमीरितः ॥६०७॥

[षोढान्यासान्तर्गततीर्थशिवलिङ्गन्यासस्योद्देशः ऋष्यादिनिर्देशश्च]

प्रत्येकमथ षण्णां वै भिन्नभिन्नतयोदितः ।
तारात्परं चास्य तीर्थशिवलिङ्गपदादनु ॥६०८॥
न्यासस्य गौतम ऋषिरनुष्टुप् छन्द एव च ।
ततः परं महातीर्थशिवलिङ्गे च देवते ॥६०९॥
तारो बीजं त्रपा शक्तिर्वाग्भवं कीलकं तथा ।
पाशस्तत्त्वं समुद्दिष्टं तीर्थन्यासे जपे तथा ॥६१०॥
विनियोगः समुद्दिष्टः ऋष्यादि पूर्ववत्स्मरेत् ।
अथ न्यासगणस्यास्य द्विविधोद्धृतिरुच्यते ॥६११॥
सामान्या च विशेषा च कठिना द्व्यपि प्रिये ।

[तीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य सामान्योद्धारः]

आद्यामादौ तत्र वच्मि ततो वक्ष्येऽपरामपि ॥६१२॥
आदौ द्वादश बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ।
ततो नामानि भिन्नान्येकपञ्चाशत्संख्यकानि हि ॥६१३॥
ततस्तीर्थे इति पदं सर्वत्रैवाचलं मतम् ।
अस्य पूर्वपदस्यापि विग्रहो सहजोऽपि वा ॥६१४॥
ततोऽपराणि नामानि तावत्संख्यानि सुन्दरि ।
पृथक् पृथक्तयोक्तानि समासं प्रापितानि हि ॥६१५॥
अग्रिमस्वरसंख्याकवर्णैः सार्द्धं स्थिरात्मकैः ।
पुनस्तावन्ति नामानि चलानि प्रतिमन्वपि ॥६१६॥
ततः सप्तार्णघटितमेकं पदमिदं पुनः ।
ङेऽन्तं स्थिरं चैतदपि पुनश्च द्वादशाक्षरैः ॥६१७॥

निर्मितं पदमेकं हि ङेऽन्तं तदपि च स्थिरम् ।
ततोऽपरं तावदेव वर्णनिर्मितमीश्वरि ॥६१८॥
तादृगाकारमपि च कालव्यापि तथैव च ।
चतुरर्णात्मकं चैकं ततो नाम वरानने ॥६१९॥
पूर्ववत् सार्विकगुणसंपन्नं परिकीर्तितम् ।
एको मन्त्रस्ततस्तस्याः निश्चलत्वेन चोदितः ॥६२०॥
ततश्च पञ्च बीजानि कालव्यापीनि पार्वति ।
ततो नु बीजमेकैकं भिन्नभिन्नतया स्मृतम् ॥६२१॥
सप्ताक्षरी सर्वशेषे कूटत्वेन व्यवस्थिता ।
इति सामान्य उद्धारो मया ते प्रतिपादितः ॥६२२॥

[महानिर्वाणषोढान्यासान्तर्गततीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः]

क्रमेणैवापरं देवि विशेषमवधारय ।
सारस्वतो भौवनेशी कमला काम एव च ॥६२३॥
काली च योगिनी चापि क्रोधोऽपि वनिता तथा ।
शाकिनो डाकिनी चापि प्रलयस्तदनन्तरम् ॥६२४॥
फेत्कारी सर्वशेषे च बीजानि द्वादशैव हि ।
प्रथमं विनियोज्यानि स्थिरत्वेनैव पार्वति ॥६२५॥
मन्त्राणामपि सर्वेषां पञ्चाशत्संख्यताजुषाम् ।
इदानीं कलयामीषां तीर्थान्यनु वरानने ॥६२६॥

[एकपञ्चाशत् तीर्थनामपरिगणनम्]

प्रयागो नैमिषारण्यं शूकरक्षेत्रमेव च ।
एकाम्बरं वदरिकाश्रमश्च तदनन्तरम् ॥६२७॥
कुरुक्षेत्रं प्रभासश्च तथैवामरकण्टकम् ।
पुष्करं च गया वाराणस्ययोध्या तथैव च ॥६२८॥
मथुरा तदनु ज्ञेया मायापुरमतः परम् ।
शिवकाञ्ची पञ्चदशी तत उज्जयिनी मता ॥६२९॥
तस्या अनु द्वारका च पुरुषोत्तम एव च ।
मरुत्कोटिस्तथा चाट्टहासः कमललोचने ॥६३०॥

शङ्कुकर्णो रुद्रकोटिश्छगलाण्डमतः परम् ।
आम्रातकं चारुणाचलश्च वृन्दावनं तथा ॥६३१॥
भद्रकर्णह्रदश्चापि हरिश्चन्द्रस्तथैव च ।
मध्यमेश्वर इत्येवं वस्त्रापथमतः परम् ॥६३२॥
ततः कनखलं चापि देवदारुवनं तथा ।
नेपालः कर्णिकारश्च त्रिसन्ध्या तदनन्तरम्[1] ॥६३३॥
त्रिचत्वारिंशसंख्याकः कुलूतश्च शिवालयः ।
पृथूदकं ततः कायावतारः परमेश्वरि ॥६३४॥
करवीरस्ततश्चापि मण्डलेश्वर ईरितः ।
ततो हर्षपथं ज्ञेयमलकापुरमेव च ॥६३५॥
सर्वशेषे परिज्ञेयं वडवामुखनामकम् ।
एकपञ्चाशदिति हि तीर्थानि कथितानि ते ॥६३६॥
अथास्याग्रिमनामानि क्रमेण कलयेश्वरि ।

[एकपञ्चाशच्छंभुनामानि]

महेश्वरो देवदेवो भारभूतेश्वरस्तथा ॥६३७॥
कृत्तिवासेश्वरश्चापि त्रिलोचन इति स्मृतः ।
स्थाणुश्च सोमनाथश्च ओंकारेश्वर एव च ॥६३८॥
अयोगन्धेश्वरश्चापि पितामह इतीरितः ।
महादेवश्च तदनु चन्द्रशेखर एव च ॥६३९॥
भूतेश्वरो महालिङ्गेश्वरश्च परिकीर्तितः ।
व्योमकेशो महाकालः पिनाकीश्वर एव च ॥६४०॥
बिल्वकेश्वर इत्येवं कमलेश्वर इत्यपि च ।
नीललोहित एकाम्रनाथश्च सुरवन्दिते ॥६४१॥
जम्बुकेश्वरसंज्ञश्च द्वाविंशतितमो मतः ।
जटीश्वरोऽमरेश्वरश्च महोत्कट इतः परम् ॥६४२॥
अट्टहासो महातेजा महायोगस्तथैव च ।
कपर्दीश्वरनामा च सूक्ष्मेश्वर इतः परम् ॥६४३॥

---

१. अतः परं श्लोकस्यैकस्य त्रुटिः प्रतीयते ।

सर्वज्ञेश्वरसंज्ञश्च गोपीश्वर इति स्मृतः ।
शिवो हरस्तथा शर्वो भव उग्रेश्वरस्तथा ॥६४४॥
दण्डीश्वरः पशुपतिर्गणाध्यक्षस्तथैव च ।
ताम्रकेश्वर इत्येवं मणिमहेश इत्यपि ॥६४५॥
घुसृणेश्वरो वामदेवो लगुडीश्वर इत्यपि ।
कपिलेश्वरश्च श्रीकण्ठो हर्षितेश्वर एव च ॥६४६॥
प्रहासेश्वरनामा च तथा चैवानलेश्वरः ।
एकपञ्चाशदित्येवं शम्भुनाम मयोदितम् ॥६४७॥
शिवलिङ्गपदस्यान्ते सहितेत्यक्षरत्रयम् ।
सप्तवर्णा इमे प्रोक्ता एषां पूर्वपदैः सह ॥६४८॥
समासश्चाथ पौरस्त्यपदान्याकलयाधुना ।

[यथायथमुक्ततीर्थाधिष्ठात्रीणां शक्तिदेवीनां परिगणनम्]

आद्या तु ललिता ज्ञेया ततो वै लिङ्गधारिणी ॥६४९॥
पुनर्वेगवती ज्ञेया मातङ्गी तदनन्तरम् ।
पञ्चमी वेदवत्युक्ता भवानी षष्ठ्युदीर्यते ॥६५०॥
राजराजेश्वरी चापि ततो निगमबोधिनी ।
पुरुहूता च कथिता तथा चैव हरप्रिया ॥६५१॥
विशालाक्षी मोहिनी च पार्वती तदनन्तरम् ।
रक्ताम्बरा तथा झङ्कारिणी भोगवती तथा ॥६५२॥
अश्वारूढा तथा बिल्वपत्रिका कमलापि च ।
ततश्च कुन्ददा कीर्तिमती द्वाविंशतिर्मता ॥६५३॥
वज्रप्रस्तारिणी भद्रकर्णिका च हसन्त्यपि ।
सरस्वती तथा भद्रावती प्राणप्रदापि च ॥६५४॥
सिद्धिदायिन्यथो ज्ञेया रुद्राण्योजस्विनी तथा ।
विद्येश्वरी तथा भीमा राधा शान्ता तथैव च ॥६५५॥
पञ्चत्रिंशत्तमा ज्ञेया ततो वै जयमङ्गला ।
शर्वाणी च शिवा चण्डवती सावित्र्यपि प्रिये ॥६५६॥
गुह्येश्वरी च कल्याणी पद्मावत्यपि कथ्यते ।
शाकम्भरी तथा सिद्धेश्वरी तेजोवतीत्यपि ॥६५७॥

ततोऽनु विजया ज्ञेया प्रभावत्युच्यते ततः।
नारायणी ततः प्रोक्ता प्रमोदिन्यप्युदीर्यते ॥६५८॥
मायामयी ततः शेषे मेधानाम्नी निगद्यते।
इत्येवं शक्तयस्तत्तत्तीर्थेषु परिनिष्ठिताः ॥६५९॥
एकपञ्चाशदुदिताः क्रमेण न्यासकर्मणि।
ततश्चैकं पदं देवि शक्तिरूपिण्युदीर्यते ॥६६०॥
सप्ताक्षरेण घटिता संज्ञैषा परिकीर्तिता।
अथ द्वादशभिर्वर्णैर्यान्याख्या विद्यते प्रिये ॥६६१॥
तां ते वदामि न्यासस्य परिज्ञानाय तत्त्वतः।
नवकोटिपदस्यान्ते कुलाकुल समुद्धरेत् ॥६६२॥
चक्रेश्वरी ततश्चापि नामेदं द्वादशाक्षरम्।
पुनर्द्वादशवर्णाढ्यं नामान्यत् प्रवदामि ते ॥६६३॥
सकलगुह्यानन्तपदात्तत्त्वधारिण्यनूद्यते ।
चतुर्वर्णात्मकं नाम गुह्यकालीति कथ्यते ॥६६४॥
मन्त्रस्तु प्रकृतिर्मुख्या भारती षोडशाक्षरी।
ततोऽनु पञ्चबीजानि सुधाशक्तिस्ततः परम् ॥६६५॥
धनदा निर्मलं प्रेता मातृकाक्षरमेव च।
भिन्नं भिन्नमुपान्त्ये तुलमन्यं परिनिर्दिशेत् ॥६६६॥
अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी सर्वशेषे उदाहृते।
स्थानं तु मातृकान्यासवदुक्तं त्रिपुरारिणा ॥६६७॥
इति ते कथितस्तीर्थशिवलिङ्गाभिधो महान्।

[तीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य महात्म्यकीर्तनतया सिद्धपीठकथावतरणम्]

न्यासश्रेष्ठो महेशानि महापातकनाशनः ॥६६८॥
यदा सती जहौ देहं पितुर्यज्ञेऽभिमानतः।
तदा तद्देहमाश्लिष्य निधायाङ्के स्वके प्रभुः ॥६६९॥
निमीलिताक्षो दुःखेन शोकबाष्पभराकुलः।
उड्डीयमानः पक्षीव गगने प्ररुरोद ह ॥६७०॥
तदश्रुबिन्दुपातेन जगदेतच्चराचरम्।
व्याकुलं सर्वमभवदादीपितमिवाग्निना ॥६७१॥

वीक्ष्य देवा जगत्क्षोभं महाप्रलयसन्निभम् ।
नारायणमुखाः सर्वे गृहीतेषुशरासनाः ॥९७२॥
चुकर्तुस्तत्सतीदेहं खण्डखण्डतयेषुभिः ।
वायव्यास्त्रस्य वेगेन यत्र यत्रापतत् क्षितौ ॥९७३॥
अङ्गं देव्यास्तत्र तत्र लिङ्गरूपधरो हरः ।
सान्निध्यमकरोत्तस्य रक्षणार्थं वरानने ॥९७४॥
हरस्य प्रेम संवीक्ष्य देव्यपि प्रेमलालसा ।
तां तां मूर्तिं तथा तत्तन्नाम धृत्वाघनाशनम् ॥९७५॥
तस्मिंस्तस्मिन् स्थले देवी स्थिता भर्तुर्मुदे सती ।
तानि स्थानानि जातानि तीर्थरूपाणि कानिचित् ॥९७६॥
अन्यानि पीठरूपाणि क्षेत्ररूपाणि चैव हि ।
तेषु तेषु च देशेषु ख्यातानि स्वस्वनामतः ॥९७७॥
नामानि तत्तत्स्थानानां देव्याश्चापि शिवस्य च ।
कीर्तितानि वरारोहे साधयन्ति मनोरथान् ॥९७८॥
सिद्धीर्ददति पापौघान् क्षपयन्त्यद्रिसन्निभान् ।
आरोग्यमाशु यच्छन्ति मङ्गलं विदधत्यपि ॥९७९॥
वितरन्ति जयं युद्धे योगसिद्धिं च कुर्वते ।
अत एव त्रिदिवैषां महिमानमनुत्तमम् ॥९८०॥
न्यासानन्यान् पञ्च हित्वा मुनयः शंसितव्रताः ।
कुर्वन्ति भक्तिभावैस्तैरमुं केवलमेव हि ॥९८१॥
जमदग्निर्भरद्वाजो वामदेव ऋतस्रवाः ।
कठोऽगस्त्यो दधीचिश्च वीतहव्यः पराशरः ॥९८२॥
कात्यायनो नाचिकेता हारीतोऽद्रिश्च कश्यपः ।
जैगीषव्यो भृगुर्वत्सो वसिष्ठः पिप्पलायनः ॥९८३॥
शिवशक्त्यात्मके रुद्र एते भक्तिपरायणाः ।
कुर्वतेऽमुं महान्यासं विहायान्यान् वरानने ॥९८४॥
नामभिः शिवलिङ्गानां मूलेन प्रतिमन्वपि ।
केवलेनामुना किन्तु महाषोढाभिजायते ॥९८५॥

[महाषोढान्यासान्तर्गतपर्वतन्यासोद्देशः]

अथावधेहि देवेशि पर्वतन्यासमुत्तमम् ।
नरसिंहयुतं चापि महानिर्वाणनामकम् ॥९८६॥

[पर्वतन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ओमस्य पर्वतनरसिंहन्यासस्य कथ्यते ।
ऋषिः शैलूषि पदतो ज्ञेयः कुल्मलर्वाहिषः ॥९८७॥
उष्णिक् छन्दः समाख्यातं विशेषात्तदनूच्चरेत् ।
हैरण्यकशिपवपदान् मन्त्राधिष्ठात्र्युदीरयेत् ॥९८८॥
गुह्यकाली देवता च सानुर्बीजमुदाहृतम् ।
प्रलयः शक्तिरुदिता डाकिनी कीलकं तथा ॥९८९॥
कर्णिका तत्त्वमपि च पूर्वोक्तन्यास एव हि ।
जपे च विनियोगः स्यादृष्यादि पूर्ववत्स्मरेत् ॥९९०॥

[पर्वतन्यासस्य षडङ्गन्यासः]

षडङ्गमधुना वच्मि उभयं ते सुरेश्वरि ।
अनाहतो भोगमृष्टी त्रेता कृत्या तथैव च ॥९९१॥
अनेन प्रथमं कुर्याद् गायत्री कर्णिका तथा ।
शृङ्खलौपह्वरं चापि नान्दिकं च द्वितीयके ॥९९२॥
संहारिप्रमुखैर्देवि पञ्चभिश्च तृतीयकम् ।
एवमेव हि तुर्ये स्यात् पञ्चभिर्विरसादिभिः ॥९९३॥
पञ्चमे पञ्चभिर्ज्ञेयं भद्रिकादिभिरेव च ।
पञ्चभिः षष्ठ उदितः सौरङ्गादिभिरेव हि ॥९९४॥
अथो पूर्ववदुद्धारमुभयं कथयामि ते ।
सामान्यं च विशेषं च प्रथमं प्रथमं शृणु ॥९९५॥

[पर्वतन्यासस्य सामान्योद्धारः]

बीजान्यादौ पञ्चदश कूटं चैकं ततः परम् ।
स्थिराणि षोडशैतानि प्रतिमन्त्रं सुरेश्वरि ॥९९६॥
पञ्चाशत्संख्यका एकाधिकाः शब्दास्ततः परम् ।
ते चलत्वेन कथितौ [तास्त ?] ततश्च त्र्यक्षरं पदम् ॥९९७॥

एकं तङ्ङन्तमुदितं पूर्वोक्तैः सह विग्रहे ।
ततोऽपराणि नामानि तावत्संख्यानि पार्वति ॥९९८॥
प्रतिमन्त्रं विभिन्नानि ततो वर्णानि सप्त हि ।
स्थिरत्वेनोदितान्यत्र पदानि तदनन्तरम् ॥९९९॥
एकपञ्चाशसंख्यानि विभिन्नानि सुरेश्वरि ।
मध्यस्थितेन सप्तार्णघटितेन पदेन हि ॥१०००॥
आगन्तुकैर्वामदक्षस्थितैः शब्दैश्च विग्रहः ।
अथोत्तरपदैः सार्द्धं पृथक्त्वेन व्यवस्थितैः ॥१००१॥
द्व्यर्णात्मि[त्म]कस्य शब्दस्य स्त्रीलिङ्गाकारधारिणः ।
ङेऽन्तस्य विग्रहोऽप्युक्तः सर्वत्र स्थिरताजुषः ॥१००२॥
ततोऽनु पञ्चदशभिर्वर्णैरेकं विनिर्मितम् ।
पदं ततोऽन्यन्नवभिर्घटितं तदनन्तरम् ॥१००३॥
एतावद्भिर्विहीनैस्तु किन्त्वेकेन सुरेश्वरि ।
ततः षडक्षरमिदं पदमेकं ततोऽप्यनु ॥१००४॥
पदद्वयं परिज्ञेयं चतुरर्णात्मकं तथा ।
षडप्येतानि ङेऽन्तानि कर्तव्यानि पदानि हि ॥१००५॥
कालव्यापितया चैव ज्ञातव्यानि मनौ मनौ ।
ततश्चैको महामन्त्रः षोडशार्णविनिर्मितः ॥१००६॥
सोऽपि कूटस्थरूपेण कथितं त्रिपुरारिणा ।
बीजानि पञ्च तदनु मुख्यानि स्थैर्यभाञ्जि च ॥१००७॥
उपबीजानि दश च मन्त्राङ्गत्वेन यानि हि ।
कथितान्यागमे देवि तानि स्युस्तदनन्तरम् ॥१००८॥
अमून्यपि स्थिराकाराण्यपि ज्ञेयानि पण्डितैः ।
इति सामान्य उद्धारो विशेषमधुना शृणु ॥१००९॥

[पर्वतन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः]

तारः कल्पश्च मुक्ता च महाक्रमनृसिंहकाः ।
मानसं चर्मकापालं भारुण्डा सानुरेव च ॥१०१०॥
हारश्च मेखला चैव संग्रहो जम्भ एव च ।
एतानि पञ्चदश वै बीजानि कथितानि ते ॥१०११॥

भासाख्यः षोडशतमः कूटश्च तदनन्तरम् ।

[अथैकपञ्चाशत् पर्वतनामानि]

शैला अथैकपञ्चाशत् क्रमेणैव निबोध मे ॥१०१२॥
आदौ हिमालयः प्रोक्तः गन्धमादन इत्यपि ।
भद्राश्वः केतुमालश्च सुमेरुर्विन्ध्य एव च ॥१०१३॥
निषधो हेमकूटश्च पारिपात्रस्तथा परम् ।
कैलास उदयश्चापि अस्त इत्येव तत्परम् ॥१०१४
माल्यवन्तश्च सह्यश्च मलयो दर्दुरस्तथा ।
ऋष्यमूकः शुक्तिमन्तो महेन्द्रोऽर्बुद एव च ॥१०१५॥
द्रोणश्च रैवतश्चाथ क्रौञ्चस्तदनु कीर्त्यते ।
चित्रकूटश्च काश्मीरः कालञ्जर इतः परम् ॥१०१६॥
श्रीशैलश्चाथ मैनाकस्ततो मुञ्जगिरिर्मतः ।
गोमन्थश्च त्रिकूटश्च सुबलः सैन्धवस्तथा ॥१०१७॥
कलिन्दो रविभा लोकालोको मन्दर एव च ।
केदारोऽष्टत्रिंशसंख्या नीलाचल इतः परम् ॥१०१८॥
अञ्जनश्च वराहश्च तथा चैत्ररथो मतः ।
कर्णिकारश्च मन्दारः कोकामुख इतः परम् ॥१०,१९॥
कोलागिरिस्तुषारश्च वाटधानस्ततोऽपि च ।
तस्यानु स्यान्नीचगिरिर्गोवर्द्धन इतः परम् ॥१०२०॥
हरिश्चन्द्रः सर्वशेषे एकपञ्चाशदीरिताः ।
इदं पर्वत इत्येवं त्र्यक्षरं ङ्यन्तमीश्वरि ॥१०२१॥

[एकपञ्चाशन्नरसिंहनामानि]

अथापरांस्तावतो हि शब्दानाकलय क्रमात् ।
ज्वालामाली करालश्च भीमश्चैवापराजितः ॥१०२२॥
क्षोभणश्च तथा सृष्टिः स्थितिः कल्पान्त इत्यपि ।
अनन्तश्च विरूपश्च ततो वज्रायुधो मतः ॥१०२३॥
परापरो द्वादशाख्यस्ततः प्रध्वंसनो मतः ।
विश्वमर्दन इत्येवमुग्रो भद्रस्ततोऽप्यनु ॥१०२४॥

मृत्युः सप्तदश ज्ञेयः सहस्रभुज एव च ।
विद्युज्जिह्वो घोरदंष्ट्रो महाकालाग्निरेव च ॥१०२५॥
मेघनादश्च विकटस्तथा पिङ्गसटोऽपि च ।
प्रदीप्तो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ॥१०२६॥
विदारो विक्रमश्चापि प्रचण्डः सर्वतो मुखः ।
वज्रो दिव्यश्च भोगश्च मोक्षो लक्ष्मी रिति क्रमात् ॥१०२७॥
विद्रावणः कालचक्रः कृतान्तस्तप्तहाटकः ।
भ्रामको रौद्र इति च विश्वान्तक इतः परम् ॥१०२८॥
भयङ्करः प्रतप्तश्च विजयस्तदनन्तरम् ।
तेजोमयस्तथा ज्वालाजटालः परिकीर्तितः ॥१०२९॥
ततः सुरेश्वरि खरनखरो नाददारुणः ।
निर्वाणनरसिंहश्च सर्वशेष उदीरितः ॥१०३०॥
एकपञ्चाशदित्येते शब्दाः क्रमसमुत्थिताः ।
पदं यत् सप्तवर्णाढ्यं तदाकलय भामिनि ॥१०३१॥
नरसिंहपदस्यान्ते सहितेत्यक्षरत्रयम् ।
पूर्वैः पदैरुत्तरैश्च वक्ष्यमाणैः सहेश्वरि ॥१०३२॥
द्वन्द्वाख्यविग्रहयुतं सर्वत्रैव प्रकीर्तितम् ।

[एकपञ्चाशन्नरसिंहशक्तिनामानि]

अथ ब्रवीमि क्रमशस्तदुत्तरपदानि हि ॥१०३३॥
विद्युत्केशी कालरात्रिरुल्कामुख्यथ कथ्यते ।
ततः पिङ्गजटा कुण्डोदरी प्रेतासनापि च ॥१०३४॥
कपालकुण्डला चण्डचामुण्डा तदनन्तरम् ।
धूमावती ततः शुष्कोदरी ज्वालाकुला ततः ॥१०३५॥
ततोऽञ्जनप्रभा वज्रवाराही कालमर्दिनी ।
नागहारिण्यथो घोरनादा चैव करालिनी ॥१०३६॥
अष्टादशतमा मुण्डचर्चिका विनिगद्यते ।
श्मशानचारिणी चापि शववाहिन्यनन्तरम् ॥१०३७॥
रक्तपायिन्यथो चण्डघण्टा चाट्टाट्टहासिनी ।
कङ्कालिनी तथा भूतोन्मादिनी च पिशाचिनी ॥१०३८॥

ततो विकटदंष्ट्रा च मेघमाला तथैव च ।
पूतितुण्डा च भारुण्डरुण्डा फेत्कारिणी ततः ॥१०३९॥
पिचिण्डनासा च हूं हूंकारनादिन्यनन्तरम् ।
कोलानना च पञ्चत्रिंशत्तमा च निरञ्जनी ॥१०४०॥
ज्ञेया ततोऽनु भ्रमराम्बिका त्रिदशवन्दिते ।
मूलताटङ्किनी शूलचण्डिकाऽपि कटंकटा ॥१०४१॥
कुक्कुटी पुक्कशी विश्वभञ्जिका शङ्खिनीत्यपि ।
नीलाम्बरा ततः कालसङ्कर्षिण्यपि कथ्यते ॥१०४२॥
ततोऽपराणि कुणपभोजिनी परिकीर्तिता ।
सप्तचत्वारिंशसंख्या दैत्यविध्वंसिनी मता ॥१०४३॥
विदारिसृक्किणी क्षेत्रपालिनी कुलकुट्टनी ।
आनन्ददायिनी सर्वशेषे देवेशि पठ्यते ॥१०४४॥
इत्येकपञ्चाशमिता नरसिंहस्य शक्तयः ।
क्रमेण कथनीया हि सहितेत्यक्षरत्रयात् ॥१०४५॥
यत्राजाद्याभिधा देवि सन्धानं तत्र निर्दिशेत् ।
द्व्यर्णात्मको हि यः शब्दः स्त्रीलिङ्गाकारधार्यपि ॥१०४६॥
स[स्व ?]रूपा इति विज्ञेयो वर्णपञ्चदशात्मकम् ।
पदमाकलयेदानीं सावधाना सुरेश्वरि ॥१०४७॥
आदौ चतुरशीत्युक्त्वा कोटिब्रह्माण्ड तत्परम् ।
सृष्टिकारिण्यपि ततः शब्दः पञ्चदशाक्षरः ॥१०४८॥
एकीकृतो विग्रहेण ङीबन्तः सुरवन्दिते ।
विभक्तिः पूर्वमुदिता नवार्णाढ्यं पदं शृणु ॥१०४९॥
प्रज्वलज्ज्वलनस्यान्ते लोचना इति कीर्तयेत् ।
अदोऽपि विग्रहि ज्ञेयं विभक्तिः पूर्विकैव हि ॥१०५०॥
अष्टाक्षरं पदं वज्रनखदंष्ट्रायुधा इति ।
षडक्षरं दुर्निरीक्ष्याकारा इति पदं प्रिये ॥१०५१॥
चतुर्वर्णात्मकं यच्च पदद्वन्द्वमुदाहृतम् ।
तत्राद्यं भगवत्येवं गुह्यकाली द्वितीयकम् ॥१०५२॥

महामन्त्रस्तु देवेशि षोडशार्णविनिर्मितः ।
हिरण्यकशिपूपास्यस्ततः परमुदीरितः ॥१०५३॥
पञ्च बीजानि यान्यस्य चरमे कथितानि हि ।
तानि रौद्रश्च कालश्च नित्यो यातनया सह ॥१०५४॥
सन्दीपनी चेति दशोपबीजानि शृणुष्व मे ।
कौरजत्रितयं चास्त्रत्रितयं हृदयं शिरः ॥१०५५॥
इति ते कथितो देवि नरसिंहसमन्वितः ।
उत्तमः पर्वतन्यासः कालीप्रीतिप्रदायकः ॥१०५६॥
यस्मिन् यस्मिन् गिरौ यां यां मूर्ति संज्ञां तथैव च ।
धृत्वा स्थिता महाकाली त्रिजगत्पालनाय हि ॥१०५७॥
तस्य तस्य गिरेर्नाम तत्तन्मूर्त्तेस्तथैव च ।
न्यासेऽस्मिन् कथितं देवि ततोऽयमधिको मतः ॥१०५८॥

[नृसिंहेन सह काल्याः सहवासस्याख्यायिका शिवस्य नृसिंहाकारत्वाख्यानकं च]

सहवासो नृसिंहेन कथमित्यत्र संशये ।
समाकलय सिद्धान्तं कथ्यमानं मया प्रिये ॥१०५९॥
उक्तेषु शैलश्रेष्ठेषु मुनयस्तपसि स्थिताः ।
ऋषयश्च महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे ॥१०६०॥
विज्ञाय घोरं गहनं रहो रूपं तपोहितम् ।
स्वेच्छाविषयभूतानि चक्रुः कर्माणि तेऽखिलाः ॥१०६१॥
तपांसि तेपिरे केचिन् मन्त्रान् जेपुरथापरे ।
योगांश्च साधयामासुः केचित्तत्रोर्ध्वरेतसः ॥१०६२॥
जगुः सामान्यथ परे ब्रह्म दध्युरथापरे ।
तेषामेवं विदधतां स्वस्वकर्माणि पार्वति ॥१०६३॥
राक्षसा दानवाश्चापि दैतेया असुरास्तथा ।
वरदानमदोन्मत्तास्तपोविघ्नं प्रचक्रिरे ॥१०६४॥
जेपुश्चापि मुनीन् कांश्चिद् ध्यानमौनपरायणान् ।
अथ ते शरणं जग्मुर्जगदम्बां परापराम् ॥१०६५॥
तेषामृषीणां त्राणाय तपोविघ्नापनुत्तये ।
महोग्रं वपुरास्थाय दुर्न्निरीक्ष्यं सुरासुरैः ॥१०६६॥

जघान दानवान् दैत्यान् राक्षसानसुरांस्तथा ।
अर्थर्षिभिः प्रार्थिता सा तादृशाकारधारिणी ॥१०६७॥
तं तं शैलं न तत्याज तास्ताः घोरास्तनूरपि ।
विहरन्ती तत्र तत्र शैले शैले महेश्वरी ॥१०६८॥
स्वतत्तद्विग्रहाध्यासात् स्वमायापरिकल्पितात् ।
निजं पतिं विसस्मार रूपं च स्वं निरञ्जनम् ॥१०६९॥
अथापश्यन् महारुद्रो निजां छायामिव प्रियाम् ।
अन्वियेष शुचोद्विग्नस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१०७०॥
ददर्श नानारूपाणि महाघोराणि बिभ्रतीम् ।
अद्रावद्रौ महामाया तिष्ठन्ती विकरालिनी ॥१०७१॥
दृष्ट्वोपसर्पितुं शम्भुर्नाशकत् सौम्यविग्रही ।
भीतश्च तादृशाकारं वीक्ष्य देव्या भयङ्करम् ॥१०७२॥
बह्वीर्मूर्तीस्तथालोक्य स्वयं चैको वृषध्वजः ।
मानसे चिन्तयामास किं विधेयं मयेति हि ॥१०७३॥
इयं सम्बर्तगृहिणी मम प्राणेश्वरी प्रिये ।
आयाता मुनिरक्षार्थमसुराणां वधाय च ॥१०७४॥
कार्यं कृत्वापि देवानां न जहाति तनूरिमाः ।
स्वमायया कल्पितेन मनसेव विडम्बिता ॥१०७५॥
न चैवैनां विहायाहं क्षणं स्थातुं समुत्सहे ।
न चोपसर्पितुं देवीं शक्नोम्येतेन वर्ष्मणा ॥१०७६॥
कमुपायं विधास्यामि कां मतिं चोपसर्पितुम् ।
इत्थं विचिन्तयन् रुद्रो निश्चयं नाध्यगच्छत ॥१०७७॥
सर्वज्ञत्वाद् भगवती ज्ञात्वाभिप्रायमैश्वरम् ।
उच्चैरुवाच गिरिशं मेघगम्भीरया गिरा ॥१३७८॥
न भेतव्यं प्राणनाथ त्वया मामुपसर्पितुम् ।
किन्त्वेकं वचनं कुर्या मम प्रीतिकरं प्रभो ॥१०७९॥
नाहमेतादृशीर्घोरांस्तनूंस्त्यक्ष्यामि सर्वथा ।
नाहमेकाकिनी चापि वस्तुमिच्छामि पर्वते ॥१०८०॥

मनोऽभिलषितान् भोगान् भोक्तुमींहे[1] त्वया सह ।
त्वं चार्सुनाऽतिसौम्येन शरीरेणोपसर्पितुम् ॥१०८१॥
न शक्नोषि ततो वक्ष्ये प्रकारं हितमावयोः ।
अहं यथा महाघोरामाकृति धृतवत्यसुम् ॥१०८२॥
तथा त्वमपि देवेश धृयस्वोग्रतमां तनुम् ।
तदावां विहरिष्यावस्तत्र तत्र गिरौ गिरौ ॥१०८३॥
एवमुक्ते महाकाल्या वचसि प्रेमगर्भिते ।
पिनाकी प्राह वचनं किञ्चिद्विगतसाध्वसः ॥१०८४॥
त्वमेव मे देवदेवि समाज्ञापय तादृशीम् ।
तनुं यया त्वया सार्द्धं तिष्ठामि गतभीः सदा ॥१०८५॥
यया च त्वं मया साकं भोगान् भोक्ष्यस ईप्सितान् ।
निशम्येदृग्वचस्तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥१०८६॥
स्मितं विधाय रुद्राणी पुनरूचे वचः पतिम् ।
एवं चेन्मन्यसे नाथ शरीरं हितमावयोः ॥१०८७॥
नरसिंहाकृतिं धृत्वा तदा मामुपसर्प भोः ।
नरसिंहाकृतेर्नान्या तनुर्घोरा जगत्त्रये ॥१०८८॥
विद्यते मामकस्यास्य तुल्याकारस्य वर्ष्मणः ।
मन्नामानि यथा चक्रुर्मुनयो भक्तिभाविताः ॥१०८९॥
त्वन्नामानि तथाहं वै विधास्यामि मुदान्विता ।
त्वं प्रेयान् प्रेयसी चाहमहं शक्तिर्भवांच्छिवः ॥१०९०॥
पुरुषस्त्वं प्रकृतिरहं वाच्याहं वाचको भवान् ।
इत्युक्तमात्रे रुद्राण्या तथेत्युक्त्वा सदाशिवः ॥१०९१॥
नरसिंहाकृतिं घोरां धृतवान् प्रमथाधिपः ।
विदारिसृक्कयुगलां दीर्घदंष्ट्राचतुष्टयाम् ॥१०९२॥
चामराभसटाजालां वज्राधिकनखाङ्कुराम् ।
बहुवाह्वस्त्रकलितां महोग्रतरतामयीम् ॥१०९३॥

---

१ मीशे ङ ।

वमदुल्काजालमुखां ज्वलत्पावकलोचनाम् ।
रौद्ररौद्रं वपुर्दृष्ट्वा स्वसहावस्थितिक्षमम् ॥१०९४॥
देवी तुतोष तेके ? च पूर्णत्वाद् वाञ्छितस्य हि ।
ज्वालामाल्यादीनि तथा निर्वाणान्तानि चैव हि ॥१०९५॥
नामानि चक्रे रुद्रस्य नृसिंहाकारधारिणः ।
छाया तनोरिवाभिन्नौ प्रीतियुक्तौ परस्परम् ॥१०९६॥
चेरतुस्तत्र तत्रादौ द्वन्द्वभूतौ तु दम्पती ।
देव्या यथैव पञ्चाशन्मूर्तयः परिनिष्ठिताः ॥१०९७॥
नरसिंहाकृतेः शम्भोर्जातास्तावत्य एव हि ।
ज्ञात्वेदं मुनयः सर्वे समाधिमयचक्षुषा ॥१०९८॥
देव्या देवस्याभिलाषं दृष्ट्वा च वपुषी तयोः ।
विदित्वा नाम च तयोः संयोज्य च परस्परम् ॥१०९९॥
शिवशक्त्यात्मिकां संज्ञामुपासांचक्रिरे तदा ।
तत्तद्गिरौ तदाकाराभिधानधरया तदा ॥११००॥
युतया देवदेवेन नृसिंहाकारधारिणा ।
महीभृन्नृहरिस्वाख्या एकीकृत्य दधानया ॥११०१॥
न्यासेऽस्मिन् निखिलं न्यस्तं मुनिभ्यः कथितं तदा ।
तदाप्रभृति ते सर्वे महाकाल्या अनुज्ञया ॥११०२॥
कुर्वन्त्येनं महान्यासं शिवशक्त्योर्मुदावहम् ।
एतन्न्यासप्रसङ्गेन कथा पौरातनी मया ॥११०३॥
कथिता सर्वपापघ्नी सर्वसिद्धेश्च दायिनी ।
रुद्रा एतेनैव चान्ये नरसिंहाभिधाधराः ॥११०४॥
कोऽहि रुद्रमृते काल्याः सन्निधिं गन्तुमीश्वरः ।
रुद्रो यत्र विभेति स्म सन्निधातुं सुरेश्वरि ॥११०५॥
तदीयामन्त ० शिंष्टि [?] तत्रान्येषां हि का कथा ।

[पर्वतन्याससमाहात्म्यकीर्तनम्]

अतो वदामि ते सत्यं न्यासस्यास्य समानताम् ॥११०६॥
नाप्नुवन्त्यपरे कोटिप्रकारैरपि सर्वशः ।
पावना यत्र ते शैला यत्र चैव सदाशिवाः ॥११०७॥

नरसिंहाकारधरा यत्राम्नायाश्च मूर्तयः ।
महोग्रास्तत्तदाख्याभिरन्विता शिवशक्तिभिः ॥११०८॥
महिमानममुष्यातो विज्ञाय परमर्षयः ।
चक्रुरेनं महान्यासं हित्वाऽन्यान् पञ्च पार्वति ॥११०९॥
राथीतरा[राथन्तरा ?]औडुलोमा वामकक्षायना तथा ।
कौषीतकेया वासिष्ठा आश्मरथ्याश्च केवलाः ॥१११०॥
जपन्ति देवजननीमिवामुं न्यासमुत्तमम् ।
सिद्धिं च परमां प्राप्ता न्यासस्यास्य प्रसादतः ॥११११॥
तथा त्वमपि देवेशि कुर्वमुं प्रतिवासरम् ।
नानाविधानां सिद्धीनां भविष्यसि च भाजनम् ॥१११२॥
अतो जानीहि सिद्धान्तं न नृसिंहाकृतिर्हरिः ।
सन्निधानं गतो देव्या भिन्नभावेन सुन्दरि ॥१११३॥
रुद्र एव तमाकारं विधायातिभयङ्करम् ।
शिवशक्तिसमायोगसिद्धयेऽगात्तदाज्ञया ॥१११४॥

[नद्यृषिन्यासोद्देशस्तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च]

अथ निर्वाणषोढायां तृतीयं न्यासमादरात् ।
नद्यृषिन्यासनामानं सावधाना निशामय ॥१११५॥
अस्य नद्यृषिन्यासस्य पारस्कर ऋषिर्मतः ।
छन्द आकृतिराख्याता ततः प्रकृतिशब्दतः ॥१११६॥
तथा मूर्त्यन्तरपदाद् धारिणीति समुद्धरेत् ।
गुह्यकाली देवता च मेघो बीजमुदाहृतम् ॥१११७॥
धनदा शक्तिरुदिता खेचरी कीलकं तथा ।
दानवस्तत्त्वमित्याहुः मौलेया न श्रुतीश्वराः ॥१११८॥
महानिर्वाणषोढाङ्गन्यासभूतपदादनु ।
नद्यृषिन्यास इत्येवं जपे च विनियोगता ॥१११९॥
एवमृष्यादिकं स्मृत्वा षडङ्गं विदधीत वै ।

[नद्यृषिन्यासाङ्गभूतषडङ्गन्यासः]

किञ्चित् क्रूरं षडङ्गं च तदाकलय सादरा ॥११२०॥

प्रणवो वाग्भवः पाशः प्रासादः कमलापि च ।
कात्यायनी चराचरजगद्व्यापिनीति पदद्वयम् [?] ॥११२१॥
ङेऽन्तं कृत्वा त्रपाकामवधूकूर्चास्ततः परम् ।
समुच्चरेत् सर्वसिद्धिदायिन्यै तदनन्तरम् ॥११२२॥
अङ्गुष्ठयोश्च हृदये न्यसेत्तन्मनुना प्रिये ।
अथ काली सुधाताक्ष्यक्षेत्रपालाश्च योगिनी ॥११२३॥
भद्रकाली महाघोरतराकारा तथैव च ।
द्वयं ङेऽन्तं समुच्चार्य शाकिनी डाकिनी तथा ॥११२४॥
प्रेतः परा परापररूपायै इत्युदीर्य हि ।
तर्जन्योश्चापि शिरसि विन्यसेत् परमेश्वरि ॥११२५॥
मानसं वज्रकापाले काकिनी नृहरिस्तथा ।
महामाया जन्ममृत्युपापनाशिन्यदो द्वयम् ॥११२६॥
चतुर्थ्येकवचःकृत्वा गौः शक्तिर्भूतकिन्नरौ ।
प्रवदेन्नरमुण्डानु मालायै तदनन्तरम् ॥११२७॥
मध्यमाशिखयोर्न्यस्येदंशुः सानुश्च दक्षिणा ।
चूडामणिश्च जम्भश्च ततो भगवती पदम् ॥११२८॥
महाप्रलय शब्दानु विलासिन्यपि कथ्यते ।
एतत् पदद्वयं ङेऽन्तं विधाय तदनन्तरम् ॥११२९॥
फेत्कारिणी द्वीपबलिप्रलयास्ततपरं मताः ।
स्यात् श्मशानविहारिण्यै पदमेतत्ततः परम् ॥११३०॥
अनामिकायां कवचे तन्मन्त्रेणैव विन्यसेत् ।
वेदी च पारिजातश्च कर्णिकाहारशृङ्खलाः ॥११३१॥
चण्डिका च महोग्रा नु चण्डकापालिनी तथा ।
विभक्तेरपि तुर्याया आद्येन वचनेन हि ॥११३२॥
योजयेत् प्राक्पदद्वन्द्वं हाकिनीविधिचञ्चवः ।
कृत्या कुलाचारपदाद् भवेत् समयपालिनी ॥११३३॥
ङेऽन्तेयमपि देवेशि कनिष्ठायां दृशीरयेत् ।
सारसः पद्मकुशिकौ प्रकरी रञ्जिनी तथा ॥११३४॥

ततः सिद्धिकराली च पुनर्घोरातिघोर च ।
पदान्महाडामरी च द्वयं ङेऽन्तं समुद्धरेत् ॥११३५॥
मन्दप्रचण्डाव्यञ्जनविनादास्तदनन्तरम् ।
महाचण्डपदाद् योगेश्वर्यै इत्यभिनिर्दिशेत् ॥११३६॥
वदेत् करतलपृष्ठाभ्यां तथास्त्रायापि पार्वति ।
इत्येवं नद्यृषिन्यासषडङ्गं समुदाहृतम् ॥११३७॥

[नद्यृषिन्यासमन्त्रोद्धारसंकल्पः]

न्यासोद्धारमिदानीं ते कथयामि विशेषतः ।
सामान्यश्च विशेषश्च स्यादसावुभयात्मकः ॥११३८॥

[नद्यृषिन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारनिर्देशः]

आदौ दशैव वीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ।
उपबीजानि षट् चापि कालव्यापीन्यतः परम् ॥११३९॥
भिन्नभिन्नानि नामानि चलानि तदनन्तरम् ।
एकाधिकानि पञ्चाशत्संख्याकानि सुरेश्वरि ॥११४०॥
द्व्यक्षरद्विपदेनैव षष्ठी विग्रहधारिणी ।
ङयन्तेन च स्थिरेणापि सर्वत्रैव मनौ मनौ ॥११४१॥
ततोऽपराणि नामानि भिन्नभिन्नानि सर्वशः ।
तैरजादिपदैकेन ग्र्याकारान्तर्गतेन च ॥११४२॥
ङेऽन्तेन पूर्वशब्देन साकं सन्धानशालिना ।
ततो देव्या विभिन्नानि नामानि कथितानि हि ॥११४३॥
तैः पदद्वितयारब्धनाम्नाऽमैकेन विग्रहः ।
चतुर्वर्णात्मकं शब्दद्वन्द्वं तदनु वै पृथक् ॥११४४॥
नामैकं घटितं पश्चात् पुनरेकादशाक्षरैः ।
तस्याप्यनु सुरेशानि तद्वत् पुनरथाष्टभिः ॥११४५॥
पूर्ववत् पञ्चदशभिरक्षरैर्निर्मितं तथा ।
नामैकं षडिमानि स्युर्ङेऽन्तानि वरवर्णिनि ॥११४६॥
योगात्तुर्यविभागस्य वर्णाधिक्यं प्रजायते ।
ततो महामनुश्चैको वर्णसप्तदशात्मकः ॥११४७॥

सर्वत्रैवाचलः प्रोक्तः सह षड्भिः पदैर्हि तैः।
अष्टौ बीजानि तदनु तान्यपि स्थैर्यभाञ्जि हि ॥११४८॥
उपबीजाक्षरश्रेण्यश्चतस्रस्तदनु स्मृताः।
सामान्योद्धृतिरित्येषा तव देवि मयोदिता ॥११४९॥

[नद्य विन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारनिर्देशः]

विशेषभूतामधुना प्रवदामि निशामय।
पाशः कला च शर्वश्च वाग्भवोऽश्वत्थ एव च ॥११५०॥
कामः प्रेतश्च चण्डश्च सृणिः कालस्तथैव च।
बीजानीमानि दश वै पुरतः कथितानि हि ॥११५१॥
मन्थानीत्रितयं चास्त्रत्रितयं तदनन्तरम्।

[एकपञ्चाशन्नदीनामानि]

नामानि भिन्नभिन्नानि समाकलय साम्प्रतम् ॥११५२॥
सर्वाद्या यमुना प्रोक्ता सरस्वत्यथ कथ्यते।
विपाशैरावती चापि चन्द्रभागा च पञ्चमी ॥११५३॥
वितस्ता देविका चैव गोमती नर्मदा तथा।
सिप्रा च कृष्णवेल्ला च तुङ्गभद्रा ततोऽप्यनु ॥११५४॥
कावेरी तदनु ज्ञेया ततो गोदावरीति च।
तापी पयोष्णी कथिता पश्चाद् भीमरथी मता ॥११५५॥
बाहुदा करतोया च गण्डकी सरयूस्तथा।
द्वाविंशतितमा ज्ञेया कौशिकी च शरावती ॥११५६॥
इरावती चोत्पलिनी सभङ्गा वेत्रवत्यपि।
अष्टाविंशतिसंख्याका तमसा परिकीर्तिता ॥११५७॥
चर्मण्वती धूतपापा ततश्चापि वरानने।
सुवर्णरेखा गदिता विरजा तदनन्तरम् ॥११५८॥
त्रयस्त्रिंशत्तमा प्रोक्ता निर्विन्ध्या च महानदी।
मुरला तत्परं ज्योतीरसा, पारावती तथा ॥११५९॥
वाग्मती स्यादनु मलप्रहारिण्यपि कथ्यते।
वरुणा च ततो मन्दाकिनी भोगवतीति च ॥११६०॥

शोणः शतद्रुरपि च हिरण्याक्ष इतः परम् ।
सिन्धुश्च घर्घरः कोकनदी लौहित्य एव च ॥११६१॥
ततोऽन्वलकनन्दा च गङ्गा सर्वस्य शेषगा ।
नामानीत्येकपञ्चाशदुदितानि यथाक्रमम् ॥११६२॥
एतेषामनु ये प्रोक्ते पदे ते वै निशामय ।
आद्यं नदीति कथितं द्वितीयं तीरमित्यपि ॥११६३॥
अतः परं भिन्नभिन्नान्येतयोरनु यानि हि ।
उदीरितानि नामानि तदाकलय सुन्दरि ॥११६४॥

[एकपञ्चाशदृषिनामानि]

आदौ मरीचिरत्रिश्च ततश्चैवाङ्गिरा मतः ।
पुलस्त्यः पुलहश्चापि क्रतुः षष्ठ उदाहृतः ॥११६५॥
वसिष्ठः सप्तमो ज्ञेयो भृगुरष्टम एव च ।
भरद्वाजः कर्दमश्च कपिलस्तत्परेण हि ॥११६६॥
दुर्वासा द्वादशतमो दत्तात्रेयस्ततः परम् ।
अगस्त्योऽथ परिज्ञेयः पराशर इतः परम् ॥११६७॥
व्यासो विश्वामित्र इति गर्गो गौतम एव च ।
शाण्डिल्यश्चासितः प्रोक्तो देवलस्तदनन्तरम् ॥११६८॥
ज्ञेयः शातातपः पश्चात् कात्यायन इतोऽप्यनु ।
आपस्तम्बस्तथा शङ्खलिखितो ह्येकतां गतः ॥११६९॥
हारीतो जमदग्निश्च ऋचीकश्च्यवनोऽपि च ।
एकत्रिंशत्तमो ज्ञेयः पैठीनसिरितीश्वरि ॥११७०॥
उद्दालकः श्वेतकेतुर्दधीचिर्जैमिनिस्तथा ।
वैशम्पायन इत्येवं वामदेवश्च गालवः ॥११७१॥
संवर्तः पर्शुरामश्च जाबालः कथितस्ततः ।
शरभङ्गश्च वाल्मीकिर्नारदः कश्यपोऽपि च ॥११७२॥
अथर्वा तदनु ज्ञेयो मार्कण्डेयोऽथ लोमशः ।
और्वस्ततोऽप्यनूत्तङ्को याज्ञवल्क्यश्च शेषगः ॥११७३॥
ऋषयस्त्वेकपञ्चाशदित्येते परिकीर्तिताः ।
एतेषामग्रतो देवि नाम्नामेकं पदं मतम् ॥११७४॥

चतुर्वर्णात्मकं तच्चोपासितेत्यङ्गनाकृतिः ।
पुनर्भिन्नानि नामानि सामान्ये यदुदीरितम् ॥११७५॥
तानीदानीं प्रवक्ष्यामि तत्तत्क्रमगतानि हि ।

[एकपञ्चाशद् देवीनामानि]

कामदा च महाविद्या गौरी तार्तीयकी मता ॥११७६॥
चतुर्थी चापि कामाख्या ततो माहेश्वरी मता ।
तत्पश्चाद् विश्वरूपा च तपस्विन्यथ कथ्यते ॥११७७॥
पुण्यप्रदा ततो विन्ध्यवासिनी परिकीर्तिता ।
महामाया च दशमी शिवशक्तिरतः परम् ॥११७८॥
क्षेमङ्करी चाथ भवहारिणी च त्रयोदशी ।
सूक्ष्मा पद्मावती चापि षोडश्युक्ता कुलेश्वरी ॥११७९॥
ततः सप्तदशी देवि कौशिकी च महोदया ।
विमला च तथा पद्मासना चापि प्रियङ्करी ॥११८०॥
सर्वाश्रया गुणानन्दा कलातीता तथैव च ।
नादस्वरूपिणी चापि ततो नारायणी मता ॥११८१॥
तापसी वेदमाता च ज्ञानवेद्या ततः परम् ।
भवतारिण्यथो ज्ञेया मुदिता नन्दिनी तथा ॥११८२॥
हरप्रिया कुण्डलिनी दयावत्यपि शाङ्करी ।
अद्वैता नैगमी चापि तथैव श्रुतिबोधिता ॥११८३॥
शाम्भवी चैकचत्वारिंशत्तमा च परापरा ।
ततो भोगवती नित्यानन्दा चैव सुरेश्वरि ॥११८४॥
तुरीया तत्परं वागगोचरा मोक्षदा तथा ।
योगविद्या च निर्लेपा तथा चैव निरिन्धनी ॥११८५॥
मानसी सर्वशेषे तु सर्वज्ञा परिकीर्तिता ।
द्विपदारब्धनामैकं पञ्चवर्णात्मकं हि यत् ॥११८६॥
तत्राद्यो नामशब्दश्च द्वितीयो धारिणीत्यपि ।
चतुर्वर्णात्मकं यच्च पदद्वन्द्वमुदाहृतम् ॥११८७॥
तत्राद्यं भगवत्येकं द्वितीयं गुह्यकाल्यपि ।
एकादशार्णघटितं यत्पदं समुदाहृतम् ॥११८८॥

अधुना तदहं वच्मि समाकलय भामिनि ।
लेलिहानपदस्यान्ते रसनाशब्दमुद्धरेत् ॥११८९॥
भयानका तत्परं च एवमेकादशाक्षरम् ।
विभागविनियोगेन भवेद् द्वादशतास्य हि ॥११९०॥
एतस्यानु पदं देवि यत्तदष्टाक्षरात्मकम् ।
तद्वै विकटदंष्ट्रानु कराला इति कीर्तितम् ॥११९१॥
अदोऽपि हि विभक्त्यामा नववर्णात्मकं भवेत् ।
यदुक्तं पञ्चदशभिर्वर्णैरेकं पदं प्रिये ॥११९२॥
तद्वै महाचण्डयोगेश्वरी शक्तिपदादनु ।
वदेच्च तत्त्वसहितः इत्येवं परमेश्वरि ॥११९३॥
इयं विभक्त्या भवति सहिता षोडशाक्षरी ।
षण्णां पदानामेतेषां विभक्तिः पूर्वमीरिता ॥११९४॥
एषां पदानामन्ते हि महामन्त्रोऽयमीश्वरि ।
स वसिष्ठोपासितो हि ज्ञेयः सप्तदशाक्षरः ॥११९५॥
एतस्य पश्चाद् बीजानि यान्यष्टौ कथितानि ते ।
तानीदानीं प्रवक्ष्यामि ह्युपबीजान्यतः परम् ॥११९६॥
जीवः कालोऽवनिश्चापि विकारोऽर्घा दुरी तथा ।
आदित्यज्ये इतीमानि हृच्छीर्षे चोपबीजके ॥११९७॥
इत्याख्यातो विशेषोयोद्धारस्ते वरवर्णिनि ।
अनेन नद्यृषिन्यासः स्फुटतामाप सर्वतः ॥११९८॥

[नदीकृतकालिकोपासनाख्यानकम्]

पुरा नद्यस्तपस्तेपुः कल्पे कुशिकनामनि ।
कालिकायाः प्रसादार्थं जेपुस्ताः षोडशीमनुम् ॥११९९॥
नानविधवरावाप्त्यै सहस्रं परिवत्सरान् ।
तासां तुष्टा ततः कालो प्रत्यक्षं समभाषत ॥१२००॥
वरं वृणीध्वं सरितो मनसा यदभीप्सितम् ।
ततः पञ्च वरान् वव्रुः सर्वाः संभूय सुन्दरि ॥१२०१॥
एकं पावनपानीया भवामः क्षितिमण्डले ।
द्वितीयं नाममूर्ती स्वं धृत्वा स्वेच्छाप्रकल्पिते ॥१२०२॥

अस्माकं रोधसोस्तिष्ठ यावत् स्थास्यति नो जलम् ।
तृतीयमृषयो ब्राह्मास्तीरेऽस्माकं निजोटजम् ॥१२०३॥
कृत्वा तपस्यन्तु तपः पूताः स्याम तथा वयम् ।
चतुर्थं द्वे तनू कालि भूयास्तां त्वत्प्रसादतः ॥१२०४॥
अस्माकमेका हि जलात्मिकाऽन्या दैविकी तथा ।
तन्वां जलात्मिकायां तु प्राणिनो हि चतुर्विधाः ॥१२०५॥
आप्यायन्तां च तृप्यन्तां द्रुमौषधिलता अपि ।
अन्यया पतिमम्भोधिं प्राप्नुमस्त्वत्प्रसादतः ॥१२०६॥
कूलानि हव्यकव्यादिफलाधिक्याय सन्तु नः ।
तनुत्यजस्तेषु यान्तु निरयं मा कदाचन ॥१२०७॥
इति तासां वचः श्रुत्वा हसन्ती जगदम्बिका ।
सर्वं तथाऽस्त्विवति प्रोच्य क्षणादन्तर्हिताऽभवत् ॥१२०८॥
नानाशिखरिपादेभ्यो निर्गताः सरितांवराः ।
पावयन्त्यो जनपदान् नगरग्रामखर्वटान् ॥१२०९॥
विविशुः पतिमम्भोधिमनावर्तिन्य ईश्वरि ।
प्रतिश्रुताकरणतो लज्जये वापि कालिका ॥१२१०॥
स्वयमेव स्वस्य धृत्वा नाममूर्ती समीहिते ।
रोधस्सु तत्तत्सरितां तस्थौ भूत्वा सदा स्थिरा ॥१२११॥
विदित्वा देव्यधिष्ठानमृषयश्च तदाज्ञया ।
निजां निजां पर्णशालां कृत्वा ते न्यवसन् प्रिये ॥१२१२॥
यस्य यस्य रुचिर्यस्यां यस्यां [नद्यां ?] बभूव ह ।
स तत्तदापगातीरे चकार स्वं स्वमाश्रमम् ॥१२१३॥
तत्तन्नामधरां देवीं तत्तन्मूर्तिधरामपि ।
आराधयन्त ऋषय उपासांचक्रिरेऽम्बिकाम् ॥१२१४॥
श्रौतोक्तेन च विधिना विदधुश्च तपो महत् ।
सिद्धिं च परमां प्राप्ता योगं कैवल्यमेव च ॥१२१५॥
श्रुत्वेममखिलोदन्तं निम्नगानां तपः क्रियाम् ।
वरदानं तथा देव्या ऋषीणामपि च स्थितिम् ॥१२१६॥

अधिष्ठानं तथा देव्यास्तत्तन्मूर्त्यभिधाजुषः ।
राजानः स्वपुरं हित्वा तत्र तत्र सरित्तटे ॥१२१७॥
कृत्वा तांस्तान् मुनीन् देवि याजकान् वेदपारगान् ।
ईजिरे विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥१२१८॥
सेवमाना जगद्धात्रीं रहस्यै नामभिः सदा ।
ऋषिवत् प्राप्तवन्तश्च स्वेष्टं राजर्षयोऽपि च ॥१२१९॥
पूजासम्भारमालोक्य मुनिभी राजभिस्तथा ।
क्रियमाणं स्वस्य वीक्ष्य मुमुदेऽतीव कालिका ॥१२२०॥
अथोवाच प्रियतमं त्रिपुरघ्नं रहोगता ।
कच्छोऽयं सरितां स्वच्छः पावनोऽतीवनिर्मलः ॥१२२१॥
अत्र मां नामभिस्तैस्तैर्मुनयः समुपासते ।
मम तेनातिसन्तोषो जायते परमेश्वर ॥१२२२॥

[नद्यृषिन्यासस्यान्वर्थकत्वप्रतिपादनम्]

नदीनां च मुनीनां च मम चैवाख्यया विभो ।
विनिर्मितं न्यासमेकं विधेहि मम, तुष्टये ॥१२२३॥
निशम्य कालिकाशिष्टिमित्थं स त्रिपुरद्विषः ।
न्यासं नद्यृषिनामानं कृत्वा देव्यै न्यवेदयत् ॥१२२४॥
महान्यासमिमं श्रुत्वा तुतोष परमेश्वरी ।

[नद्यृषिन्यासस्य फलश्रुतिः]

उवाच चेमं ये न्यासं करिष्यन्ति सुरा नराः ॥१२२५॥
तेषामहं भविष्यामि सन्तुष्टा फलदात्र्यपि ।
तदा प्रभृत्ययं न्यासो विख्यातिं परमां गतः ॥१२२६॥
षोढान्यासे निबद्धश्च शम्भुना कालिकाऽऽज्ञया ।
इत्येष कथितो देवि न्यासराजसमुद्भवः ॥१२२७॥
महिमा नास्य संख्यातुं शक्यो वर्षशतैरपि ।
पृथक्त्वेनापि विहितः सर्वाः सिद्धीः प्रयच्छति ॥१२२८॥

[अस्त्रभैरवन्यासोद्देशस्तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च]

अथ तुर्यतमं चास्त्रभैरवाद्यभिधानकम् ।
अस्यास्त्रभैरवादिन्यासस्य प्रोक्तः प्रजापतिः ॥१२२९॥

ऋषिश्छन्दोऽप्युत्कृतिश्च शतकोटिपदादनु ।
गुह्यानन्त तथा शक्ति परापरकुलेति च ॥१२३०॥
चक्राद् वदेत्सामरस्यकारिणीत्येककं पदम् ।
ततो नु नररुधिरमांसभोजिन्यपीरयेत् ॥१२३१॥
पुनश्च दशवदनधारिणीति पदं भवेत् ।
तस्यानु परमशिवनिवासिन्यपि कीर्तिता ॥१२३२॥
पुनर्भगवती गुह्यकाली वै देवता मता ।
डाकिनी बीजमाख्यातं कर्णिका शक्तिरुच्यते ॥१२३३॥
कीलकं प्रेत इत्येवं हारस्तत्त्वमपीष्यते ।
महापातकोपपातातिपातकादिपदादनु ॥१२३४॥
त्रिविधपापक्षयार्थे पुनः सकलशत्रु च ।
क्षयपूर्वक राज्यानु प्राप्तये परिकीर्तयेत् ॥१२३५॥
महानिर्वाणषोढाङ्गभूतास्त्रपदतोऽप्यनु ।
वदेद् भैरवभैरव्यादिन्यास इति पार्वति ॥१२३६॥
सिद्धयर्थे च जपे चैव विनियोग उदाहृतः ।
एवमाभाष्य ऋष्यादिमस्य देवि स्मरेद् बुधः ॥१२३७॥

[अस्त्रभैरवन्यासस्य षडङ्गनिर्देशः]

षडङ्गमधुना वक्ष्ये नातिबाहुल्यकल्पितम् ।
सौरङ्गप्रमुखैः पञ्चबीजैराद्यन्ततारिभिः ॥१२३८॥
सुक्रतादिभिरप्येवं मैधाद्यन्तिमशालिभिः ।
तथा पुनर्भद्रिकादिपञ्चभिः परमेश्वरि ॥१२३९॥
मुखपाश्चात्यसंस्थायि त्रपाबीजिभिरीदृशैः ।
संहार्यादिभिरप्येवं पुरःशेषे सकामनैः ॥१२४०॥
औपादेयादिभिस्तद्वत्पञ्चभिर्मुखशेषगैः ।
प्रासादैः पञ्चमं कुर्यात् षष्ठं मौलिञ्जकादिभिः ॥१२४१॥
प्रेतैराद्यन्तगैर्देवि षडङ्गमुभयं स्मृतम् ।

[अस्त्रभैरवन्यासस्य मन्त्रोद्धारसङ्कल्पः]

अथोद्धारं ब्रवीम्यस्य द्विविधं त्रिदशार्चिते ॥१२४२॥

सामान्यं च विशेषं च न्यासाभिव्यक्तये स्फुटम् ।

[अस्त्रखैरवन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारः]

द्वाविंशतिमितैर्बीजैर्घटितोऽयं मनूत्तमः ॥१२४३॥
स आदौ सर्वमन्त्रादौ कालव्यापितयेरितः ।
ततो नामानि भिन्नानि सर्वेषु मनुषु प्रिये ॥१२४४॥
अजादिद्वचर्णशब्देन ढान्तेन प्रथमेरितैः ।
सन्धानं विग्रहश्चामा [?] सर्वत्र स्थैर्यशालिना ॥१२४५॥
पुनस्ततोऽनु नामानि भिन्नभिन्नानि पूर्ववत् ।
एतेषामग्रिमपदद्वन्द्वेन सह विग्रहः ॥१२४६॥
तत्राद्यं तु पदं ज्ञेयमजादि त्र्यक्षरं तथा ।
द्वितीयमपि च त्र्यर्णं ङीबन्तं स्त्रीत्वङेऽन्तवत् ॥१२४७॥
परस्परं त्रिभिः शब्दैः समासः परिकीर्तितः ।
पूर्वश्चलः परौ द्वौ तु कूटत्वेन व्यवस्थितौ ॥१२४८॥
पदानामनु चैतेषां पुनः शब्दाः पृथक् पृथक् ।
एषामग्रे चतुर्भिस्तु पदैर्विग्रहतां गतैः ॥१२४९॥
स्त्रीलिङ्गं च तथाकारान्तं पदं चैकमिष्यते ।
ङेऽन्तं चैतेन पुरत ईरितैरस्थिरैः पदैः ॥१२५०॥
समासः किन्तु शेषस्था चतुष्पद्यपि सुस्थिरा ।
एषां पदानां पञ्चानामाद्ये ये तु चलाचले ॥१२५१॥
ते समस्य तु ङीबन्ते कार्ये वै पञ्चवर्णिके ।
आभ्यां त्वक्षरशब्दस्य स्त्र्याकारङेऽन्तशालिनः ॥१२५२॥
समासः स्थिरताऽस्थैर्ये विज्ञेये पूर्वशब्दवत् ।
ततो ङेऽन्तं पदं चैकं चतुरर्णविनिर्मितम् ॥१२५३॥
अस्य शेषे महामन्त्रश्चैकः षोडशवर्णिकः ।
स स्थिरत्वेन निर्दिष्टस्ततो वै षड्भिरक्षरैः ॥१२५४॥
घटितं ङेऽन्तङीबन्तं तथाप्यचलमुच्यते ।
ततश्च पञ्चबीजानां युगलं युगलं क्रमात् ॥१२५५॥
चैलेतरतया ज्ञेयं तच्च सर्वं वरानने ।
पञ्चाक्षरोपबीजानां त्रितयं त्रितयं ततः ॥१२५६॥

इति सामान्य उद्धारो विशेषस्त्वधुनोच्यते ।

[अस्त्रभैरवन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः]

मन्त्रो य उक्तः प्रथमं द्वाविंशतिभिरक्षरैः ॥१२५७॥
आदौ शृणु तदुद्धारं बीजकूटमयं प्रिये ।
भासाकूटं हारबीजं भोगकूटं च कर्णिका ॥१२५८॥
कलाकूटं शाकिनी च कूटं स्वायम्भुवं ततः ।
डाकिनी याम्यकूटं च प्रलयो ब्राह्मकूटकम् ॥१२५९॥
फेत्कारी चापि सौपर्णकूटं तदनु शृङ्खला ।
गौह्यकं कूटमस्यानु बीजं चाकोरमेव च ॥१२६०॥
नैर्ऋतं कूटमस्यानु बीजमाघोषणाभिधम् ।
प्रपञ्चकूटं च खटी[?]कूटमैन्द्रं ससृष्टि च ॥१२६१॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्र इत्येष परिकीर्तितः ।
गुह्या महाभैरवीति नाम्ना ख्यातागमादिषु ॥१२६२॥
एतेन मनुनोपास्य भैरवाः कालिकां पुरा ।
सिद्धिं प्राप्ता निजाकाराः शक्तीश्च कमलानने ॥१२६३॥

[प्रसङ्गपतितैकावलीहारमनुनिर्देशः]

एकावली हार इति नाम्ना ख्यातो मनुस्त्वयम् ।

[एकपञ्चाशदस्त्रनामानि]

एकपञ्चाशदित्येवं नामान्याकर्णयाधुना ॥१२६४॥
ब्रह्मा [ब्राह्म] नारायणः प्राजापत्य ऐन्द्रश्च वैष्णवः ।
कंम्पनश्चाथ वायव्यो वरुणो याम्य एव च १२६५॥
काल आग्नेयभूतौ च कौवेरस्तदनन्तरम् ।
पार्जन्यो वैद्युतश्चाथ पार्वतः परमेश्वरि ॥१२६६॥
पाषाणनागत्वाष्ट्राश्च सौपर्णास्तामसोऽपि च ।
तैमिरश्चाथ गान्धर्वः प्रस्वापन इतः परम् ॥१२६७॥
पैशाचो जृम्भणश्चापि मातङ्गैषीकसंज्ञकौ ।
औदुम्बरो राक्षसश्च भारुण्डोऽप्यपरो मतः ॥११६८॥
ततो ब्रह्मशिरो देवि गुह्यकः कालकूट [?] च ।
वेतालवैनायकौ च स्कदः प्रमथ एव च ॥१२६९॥

उत्पातश्चाथ कूष्माण्डो भ्रामको गालनोऽपि च ।
सम्मोहनो बला चातिबला चाथ निमीलनः ॥१२७०॥
अचेतनस्तथोन्मादोऽपस्मारो मारणोऽपि च ।
सर्वशेषे पाशुपत इत्येवं शब्दसंहतिः ॥१२७१॥
अजादिवर्णशब्दस्तु अस्त्रमित्यभिधीयते ।
पुनः शब्दानाकलय परतोऽप्यस्य ये स्थिताः ॥१२७२॥

[एकपञ्चाशदसुरनामानि]

विद्युज्जिह्वश्च मुण्डश्च रुरुः खट्वाङ्ग एव च ।
अञ्जनो दुर्ग इत्येवं विप्रचिति[त्त]श्च सप्तमः ॥१२७३॥
महिषः कपोतरोमा मतङ्गो दशमोऽपि च ।
हयग्रीवो वैरन्धमश्चण्डमुण्डस्तथैव च ॥१२७४॥
पातालोदरनामा च तथा गगनशिरा इति ।
पतङ्गवेगस्तदनु मकरास्यस्ततः परम् ॥१२७५॥
रक्तबीजो निकुम्भश्च पुञ्जमाली महाहनुः ।
दर्दुरो दुर्जयहिरण्यकेशौ च प्रमाथ्यपि ॥१२७६॥
मेघमाली निशुम्भश्च ततश्चापि प्रकम्पनः ।
वातवेगो वज्रदंष्ट्रः क्राथो वज्राङ्ग एव च ॥१२७७॥
चन्द्रारि नील इत्येवं शैलजङ्घस्तथैव च ।
वज्रमुष्टिस्तथा यज्ञद्रुड् युगंपच एव च ॥१२७८॥
जम्बुकश्च तथा तालध्वजो वै कुम्भमाल्यपि ।
तथा सर्पशिराः पातालकेतुश्चर्चिकोऽपि च ॥१२७९॥
कुण्डकश्चासिलोमाऽपि तपनस्तुण्डरीक [?] च ।
ततोऽन्वशनिपर्वा च यज्ञकोपस्तत परम् ॥१२८०॥
शेषे प्रलयरम्भश्च एकपञ्चाशदीरिताः ।
अजादित्र्यक्षरद्वन्द्वकृतमेकं पदं हि यत् ॥१२८१॥
द्विविग्रहि ङेबन्तं भवेदसुरघातिनी ।

[एकपञ्चाशद्भैरवनामानि]

क्रोधः श्मशानकापाली कालकालान्तको रुरुः ॥१२८२॥

महाघोरो घोरतरः मन्दार[संहार ?]श्चण्ड एव च ।
हुङ्कारो नादिरुन्मत्तः आनन्दस्तदनन्तरम् ॥१२८३॥
भूताधिपः कृतान्तः स्यादसिताङ्गस्ततः परम् ।
कालाग्निरुग्रायुधयुग् वज्राङ्गश्च करालयुक् ॥१२८४॥
विकरालो महाकालः कल्पान्तस्तदनु प्रिये ।
विश्वान्तकः प्रचण्डः स्याद् भगमाल्युग्र एव च ॥१२८५॥
भूतनाथः [1]सुभद्रश्च ततः सम्पत्प्रदो मतः ।
मृत्युर्यमान्तकश्चोल्कामुखः स्यादेकपाद च ॥१२८६॥
प्रेतश्च मुण्डमाली च वटुकः क्षेत्रपालयुक् ।
दिगम्बरो वज्रमुष्टिर्घोरनादस्तथैव च ॥१२८७॥
चण्डोग्रसन्तापनौ च क्षोभणः स्यादतः परम् ।
ज्वाला ततोऽनु संवर्तवीरभद्राविति स्मृतौ ॥११८८॥
त्रिकालाग्निश्च[2] त्रिपुरान्तक इत्येवमीश्वरि ।
एतेषामग्रतस्त्वादौ शब्दो भैरव इत्यपि ॥१२८९॥
द्वितीयः सुरतेत्येवं तार्तीयो रस इत्यपि ।
लोलुपेति तथा तुर्यः पञ्चापि हि समासिनः ॥१२९०॥
पञ्चानामादिमेभ्यस्तु शब्देभ्यस्तदनन्तरम् ।
भैरवीति पदं त्र्यर्णं रूपा च द्व्यर्णमेव हि ॥१२९१॥
सविग्रहाणि सर्वाणि विभक्तिः पूर्वमीरिता ।
गुह्यकालीत्यपि पदं तदनन्तरमिष्यते ॥१२९२॥
या महाषोडशीत्येवं महाविद्या पुरेरिता ।
सा तत्पश्चात् स्थिरत्वेन कथनीया मनौ मनौ ॥१२९३॥
श्मशानवासिनीत्येवं तस्या अनु निगद्यते ।
त्रपायोगिनिरुन्नारीरावाणां द्वितयं द्वयम् ॥१२९४॥
अस्त्रं हृच्छिरसी चापि त्रिवारं समुदाहरेत् ।
विशेषोद्धार इत्येवं मया ते परिकीर्तितः ॥१२९५॥

---

१. श्च भद्रश्च क ।   २. इहैकस्य भैरवस्य नाम न वर्तते स च शोपणाभिधः ।

[काल्याः भैरवीरूपत्वासादनकथा]

काल्याः कथं भैरवीत्वमित्यस्मिन् संशये शृणु ।
आख्यायिकां कथ्यमानां पौराणीं मत्त ईश्वरि ॥१२९६॥
हिरण्याक्षस्तपस्तप्त्वा दिव्यानां शरदां शतम् ।
हरतार्तीयनयनात्मकं लेभे सुतं शिवात् ॥१२९७॥
कल्पकोटिसहस्राणि त्रीणि मृत्युविवर्जितम् ।
अजय्यं त्रिदशैः सर्वैः ब्रह्मविष्णुपुरःसरैः ॥१२९८॥
आगःसहस्रकर्तारमप्येनं [1]वरदर्पितम् ।
नाशयिष्याम्यहं ना[मुं ?]नान्ये शक्ष्यन्ति चानराः ॥१२९९॥
किन्त्वेकमस्यापराधं क्षमिष्ये न कदाचन ।
कामभोगाभिलाषेण पार्वतीहरणोद्यमम् ॥१३००॥
प्राणैर्वियोजयिष्यामि नैव तत्राप्यमुं पशुम् ।
दर्पं संशमयिष्यामि विनेष्यामि शुभे पथि ॥१३०१॥
स हि धूमाकुलाक्षित्वादन्धको नाम दैत्यपः ।
सर्वान् विजित्य त्रिदशान् हन्तुकामो गिरीन्द्रजाम् ॥१३०२॥
मन्दरस्थां समत्या[भ्या]गाद्दैत्यानां पद्मकोटिभिः ।
तत्र युद्धं महद्घोरमभवदल्लोमहर्षणम् ॥१३०३॥
नन्दिना प्रमथैश्चापि सहान्धकवलस्य च ।
प्रमथास्तत्र दैत्येन्द्रैर्जिता युद्धे सनन्दिनः ॥१३०४॥
अथ शूलं समादाय योद्धुकामो महेश्वरः ।
आजगाम तथा देवी मन्दरात् प्रपलायिता ॥१३०५॥
तत्रेश्वरेण दितिजाः प्रायशो विमुखीकृताः ।
रणो महान् बभूवाथ शङ्करस्यान्धकस्य च ॥१३०६॥
यामद्वयं मन्दरस्य शिखरे समभूमये ।
ततः शूलेन निर्भिद्य पृष्ठनिर्गतकोटिना ॥१३०७॥
हरः स्वमूर्ध्नि तं दध्रे हसँश्छत्रमिवासितम् ।
शूलप्रोतोऽपि दैत्येन्द्रो गदया भीमपातया ॥१३०८॥

---

१. बलदर्पितम् क ।

पातयामास शिरसि गिरिशं वज्रकल्पया ।
मस्तके ताडितस्याथ गिरीशस्य वरानने ॥१३०९॥
शीर्षाच्छुश्राव रुधिरमुत्सादिव गिरेर्जलम् ।
यथा हि रक्तबीजस्य दैत्येन्द्रस्य हि देहतः ॥१३१०॥
यावन्तो रक्तपृषताः पतन्ति धरणीतले ।
तावन्तो हि तदाकारा उत्तिष्ठन्ते स्म दैत्यपाः ॥१३११॥
एवं हरस्य यावन्त्यो विप्रुषः पतितास्तनोः ।
तावन्तो भैरवा जातास्तदाकारास्तदाशयाः ॥१३१२॥
उत्तमाङ्गस्याष्टदिक्षु पूर्वादिषु वरानने ।
क्रमेण जातास्ते सर्वे भैरवाः शिवविग्रहाः ॥१३१३॥
एकैकस्यां दिशि पुनरष्टावष्टौ प्रजज्ञिरे ।
क्षणेन ते दैत्यसैन्यं भस्मसाच्चक्रुरञ्जसा ॥१३१४॥
हरो हि यादृशतनुर्भूत्वा युद्धं चकार ह ।
तादृशा एव ते जाता बलरूपाशयक्रमैः ॥१३१५॥
अथ तं पोषयामास सहस्रं परिवत्सरान् ।
अन्धकं शूलभिन्नाङ्गं छत्रीकृतमिव स्वकम् ॥१३१६॥
वर्षवातार्ककिरणशोषणोत्प्लावनादिभिः ।
याऽसृग्धारा पपातास्य वक्षसः परमेश्वरि ॥१३१७॥
गणाः करालवदनाः जज्ञिरे कोटिशस्तथा ।
अस्थित्वगवशिष्टोऽपि ततः प्राहान्धकः शिवम् ॥१३१८॥
जितं महादेव मया द्राक् तवोपरिवर्तिना ।
अधःस्थितेन भवता लब्धो मत्तः पराजयः ॥१३१९॥
इत्युक्तवति दैत्येन्द्रे जहास प्रीतिमान् हरः ।
वरं वृण्विति तं प्राह यदिष्टं गिरिजामृते ॥१३२०॥
पुनः प्राहान्धको रुद्रं यदि तुष्टोऽसि मे विभो ।
शिवाजिहीर्षाजनितं वृजिनं नाशमेतु मे ॥१३२१॥
त्वं पिता सा च जननी तनयो युवयोरहम् ।
यथा नन्दी गणाध्यक्षः प्रियस्तव गुहादपि ॥१३२२॥

तथाप्यहमपि स्वास्त्रजातैः कोटिगणैर्वृतः ।
गणेश्वराग्रणीर्भूत्वा भवामि तव सेवकः ॥१३२३॥
इत्युक्तवति दैत्येन्द्रे स्मितं कृत्वा महेश्वरः ।
अवतार्य शनैः शूलं विचकर्षासुरोरसः ॥१३२४॥
ददद् व्रणेऽस्य फूत्कारं मृतसञ्जीवनीं पठन् ।
संशोषितव्रणं चक्रे वरान् दत्वाऽखिलानपि ॥१३२५॥
भृङ्गीति नाम विदधे सदृशं नन्दिनस्तथा ।
तत्रागताया देव्यास्तु पादौ जग्राह भृङ्ग्यपि ॥१३२६॥
मातर्मया त्वद्विषये यत् पापं विहितं हृदि ।
भवती क्षमतां तन्मे तव पुत्रोऽस्मि धर्मतः ॥१३२७॥
भृङ्गी भूत्वाऽन्धको दैत्यो गौरीशङ्करयोः सुतः ।
बभूव वरदानेन तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥१३२८॥
अथ रुद्रासृगुद्भूता भैरवास्ते महेश्वरम् ।
अब्रुवन् किं करिष्यामो वयं देव तदादिश ॥१३२९॥
तानाह भैरवान् रुद्रो देव्याः पुरत एव हि ।
यूयं मदस्त्रसंभूता मच्छरीराच्च मत्समाः ॥१३३०॥
मत्तुल्यबलवीर्याश्च यूयमेवाहमीश्वराः ।
ये यूयं सोऽस्म्यहं रुद्रो यूयं ते योऽस्म्यहं पुनः ॥१३३१॥
नान्तरं मम युष्माकं वाच्यवाचकयोरिव ।
यथाहं मन्दरगिरौ वसामि शिवया सह ॥१३३२॥
यूयं तथा स्वरुचिते गिरौ तिष्ठध्वमीश्वराः ।
व्याचक्षाणाः शिवामन्त्रध्यानार्चनविधिक्रमान् ॥१३३३॥
नानातन्त्रागमग्रन्थान् कुर्वन्तः प्रकटान्नृषु ।
इत्युक्त्वा तान् पुनः प्राह देवीं तत्रैव तस्थुषीम् ॥१३३४॥
एते हि भैरवाः सर्वे यादृशाकारधारिणः ।
तादृशाकारमास्थाय एषामनुचरी भव ॥१३३५॥
न ते भ्रमोऽस्तु गिरिजे भिन्ना हि पुरुषा इमे ।
भैरवो वाऽहमेवैते सत्यं सत्यं न संशय ॥१३३६॥

एकं तान् कारयिष्यामि भैरवान् प्राणवल्लभे ।
तत्र त्रिलोकीरूपायाः सदा महिमवृद्धये ॥१३३७॥
इत्युक्त्वा पुनरप्याह भैरवान् पुरतः स्थितान् ।
इयं हि जन्मना काली वर्णतश्च गिरीन्द्रजा ॥१३३८॥
[इयं हि वर्णतः काली जन्मना च गिरीन्द्रजा ?] ।
मया हि गोपिता यस्मात् तस्माद् गुह्या बभूव ह ॥१३३९॥
विहायेमामाकृतिं हि कृत्वाऽन्यां भैरवाकृतिम् ।
युष्माकं शक्तयो ह्येषा भविष्यति गिरा मम ॥१३४०॥
यूयमस्या महाविद्यां त्रैलोक्येऽप्यतिदुर्लभाम् ।
गुह्या महाभैरवीति द्वाविंशत्यक्षरात्मिकाम् ॥१३४१॥
एनामाराधयन्तो हि जयध्वं षष्टिहायनान् ।
तत एषा सुसन्तुष्टा कृत्वा युष्मत्समाकृतिम् ॥१३४२॥
भवतां प्रीतये सत्यं सन्निधानं गमिष्यति ।
सौम्योग्रमूर्तेरेतस्या मन्त्रा गुप्ततरा हि ये ॥१३४३॥
स्तवध्यानार्चनाचारा गुप्ता नानाविधा हि ये ।
भैरवीसंहितां...[सत्यं ?] लोकानां हितकाम्यया ॥१३४४॥
प्रकाशयध्वमेतद्वै युष्माकं कार्यमीरितम् ।
इत्युक्ता भैरवाः सर्वे देवदेवेन शम्भुना ॥१३४५॥
क्रोधादीनि स्वनामानि धृत्वा तेऽन्योन्यमीश्वरि ।
जपन्तस्तां महाविद्यां तपस्तेपुः सुदारुणम् ॥१३४६॥
अथ रुद्राज्ञया देवी सन्तुष्टा च जपार्चनैः ।
यस्य यस्य य आकारो मुखवर्णास्त्रबाहुभिः ॥१३४७॥
तं तं विधृत्य पुरतस्तेषामुपजगाम ह ।
भाग्योदयं मन्यमानास्ते सर्वे भैरवाः प्रिये ॥१३४८॥
स्वया स्वया युयुजिरे शक्त्यानङ्गरसाकुलाः ।
देवी च तत्तत्स्थानेषु स्थिता ये ये सुरद्रुहः ॥१३४९॥
असुरा दानवा दैत्या राक्षसा वरगर्विताः ।
विधृत्य भैरवीरूपमेकैकेन ... वरानने ॥१३५०॥

दिव्यास्त्रेण जघानाशु तान् सर्वान् देवकण्टकान् ।
बुभुजे मान्मथान् भोगान् पत्या सह हृदीप्सितान् ॥१३५१॥
इत्युक्तं ते सुरेशानि गुप्तं तन्त्रागमादिषु ।
गुह्यकाल्या भैरवीत्वं भैरवाणां च सम्भवः ॥१३५२॥
प्रसङ्गतोऽन्धकवधो भृङ्गित्वं चास्य भाग्यतः ।

[यज्ञमहाराजन्यासोद्देशः]

अतः परं शृणु परं पञ्चमं न्यासमीश्वरि ॥१३५३॥
नाम्ना यज्ञमहाराजं महदैश्वर्यकारकम् ।

[यज्ञमहाराजन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य यज्ञमहाराजन्यासस्य सुरवन्दिते ॥१३५४॥
शैलूष ऋषिरुद्दिष्टो विकृतिच्छन्द उच्यते ।
परापरेश्वरी नाम्नी गुह्यकाली च देवता ॥१३५५॥
कामो बीजं त्रपा शक्तिः शाकिनी कीलकं मतम् ।
स्त्रीतत्त्वमायुरारोग्यसुखैश्वर्यार्थिपूर्वकम् ॥१३५६॥
निःसपत्नपदाद् राज्यप्राप्तये तदनन्तरम् ।
भवेद् यज्ञमहाराजन्यासे च विनियोगता ॥१३५७॥
ऋष्यादिमस्य संस्मृत्य षडङ्गमपि चाचरेत् ।
कुणपादीन् पञ्च जपेदन्तरे नादपाशयोः ॥१३५८॥
तथैव क्षेत्रकलयोः शीर्षकादीनि पञ्च च ।
उद्धरेत् स्थाणुस[श ?]र्वान्तस्ततः कोलादि पञ्चकम् ॥१३५९॥
दुर्द्धर्षमैधयोर्मध्ये उन्माथादीनि पञ्च च ।
प्रणवाश्वत्थपुटितं छुरिकादिकपञ्चकम् ॥१३६०॥
अन्तरा नादनिःश्रेण्योः कुणपादि द्रुमपश्चिमम् ।
अङ्गुष्ठादौ हृदादौ च उभयत्रापि विन्यसेत् ॥१३६१॥
विधायेत्थं षडङ्गे द्वे ततो न्यासं समाचरेत् ।
तस्योद्धारद्वयं वक्ष्ये सामान्यं च विशेषकम् ॥१३६२॥

[यज्ञमहाराजन्यसस्य सामान्योद्धारः]

पुरोऽष्टादश बीजानि ततो नामानि वै पृथक् ।
आद्यानि तत्र स्थेयांसि पराण्यागन्तुकानि हि ॥१३६३॥

ततो द्विवर्णघटितं ङ्यन्तमेकं पदं स्थिरम् ।
विभिन्नान्यनु नामानि तस्यानु च चलानि हि ॥१३६४॥
द्विपदीघटितं चैकं पदं ङेऽन्तं तदिष्यते ।
पूर्वैरितैः समासोऽस्य स्थैर्यमालम्ब्य तस्थुषः ॥१३६५॥
नामान्यस्यापि चरमे भिन्नभिन्नानि सुन्दरि ।
ततस्त्रिभिः पदैरेकं निर्मितं पदमुच्यते ॥१३६६॥
ङीबन्तं ङेऽन्तमपि च पूर्वशब्दैः सविग्रहि ।
शाश्वतं च वरारोहे न तु पूर्वं कथञ्चन ॥१३६७॥
[1]ततोऽप्यनियतैः शब्दैः नानारूपतया स्थितैः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषडादिरचितक्रमैः ॥१३६८॥
जातं समसितं चापि पदमेकं चलं सदा ।
कीर्तनादेव तद्गम्यं त्रिपद्या रचितं पदम् ॥१३६९॥
एकं सप्तार्णिकं चापि शुभं पूर्वोदितैः पदैः ।
सर्वत्राचलमेतद्धि विज्ञेयं सूक्ष्मया तया ॥१३७०॥
आकारान्तं द्वादशान्तं रचितं पञ्चभिः पदैः ।
एकं पदं विग्रहि च एतदुच्चान्यमेव हि ॥१३७१॥
सर्वरूपं किन्तु वर्णैश्चतुर्दशभिराचितम् ।
चतुर्भिरक्षरैर्जातं पदद्वन्द्वं पृथक् पृथक् ॥१३७२॥
पदपञ्चकमेवापि ङेऽन्तं विज्ञेयमीश्वरि ।
ततो महामनुश्चैको जप्यः सप्तदशाक्षरः ॥१३७३॥
ततोऽनु पञ्च बीजानि सप्तार्णाश्चोपराजिकाः ।
विहायानियतान् कांश्चित् सर्वं एवाचलाः प्रिये ॥१३७४॥
द्विसप्ततिमिता वर्णा रूपाद्याः शीर्षपश्चिमाः ।

[यन्त्रमहाराजन्यासस्य विशेषोद्धारः]

अथो अहं विशेषेण वदामि पुनरप्यमुम् ॥१३७५॥
तारो माया योगिनी च प्रणवः कमला वधूः ।
वेदादिः कामकूर्चौ च गायत्रीमुख[2] एव च ॥१३७६॥

---

१. इतश्चतस्रः पंक्तयः केवलं ङ पुस्तके सन्ति । २. मनुरेव क ।

शाकिनी डाकिनी चैव तथैवागममस्तकः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी ततस्त्रैवर्णिकाङ्कुशौ ॥१३७७॥
कालीबीजं सर्वशेषे बीजान्यष्टादशैव हि ।
अस्मिन्न्यासे तु सर्वत्र विसन्धिः परिकीर्तितः ॥१३७८॥
असमासविभागे तु हित्वा द्वित्रिपदीकृतम् ।
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमो वाजपेयश्च षोडशी ॥१३७९॥
पुण्डरीकोऽश्वमेधश्च राजसूयस्ततः परम् ।
तथा बहुसुवर्णश्च गोसवश्च महाव्रतः ॥१३८०॥
विश्वजित्तदनु प्राजापत्याश्वक्रान्तसंज्ञितौ ।
रथक्रान्तो विश्व[विष्णु ?]क्रान्तः सूर्यक्रान्त इतः परम् ॥१३८१॥
गजक्रान्तश्च बलभिन्नागयज्ञ इतः परम् ।
सावित्री चार्धसावित्री सर्वतोभद्र एव च ॥१३८२॥
आदित्यामय इत्येवं गवामय इतः परम् ।
सर्पामयः कौण्डपामयाग्निचिद् द्वादशाहयुक् ॥१३८३॥
उपांशुरूर्नात्रिशाख्यस्ततश्चाश्वप्रतिग्रहः ।
बर्हिरथोऽभ्युदयश्च तथा सर्वस्वदक्षिणः ॥१३८४॥
दीक्षा सोमस्तथा स्वाहाकारश्चापि तनूनपात् ।
गोदोहनो नरमेधो ज्योतिष्टोमस्तथैव च ॥१३८५॥
ततो भवेद्दर्शपौर्णमासश्चाप्यतिरात्रयुक् ।
सौभरः सौभाग्यकृच्च शान्तिकृत्तदनन्तरम् ॥१३८६॥
सौपर्णश्चापि त्रैलोक्यमोहनः परिकीर्तितः ।
शङ्खचूडस्तथा पूर्वे कन्दर्पबलशातनः ॥१३८७॥
गजच्छायस्ततो विष्णुविक्रमो विनिगद्यते ।
महारौद्रः सर्वशेषे नामान्येतानि सुन्दरि ॥१३८८॥
द्व्यर्णात्मको यज्ञशब्द उक्त एषामनन्तरम् ।
अस्याप्यनु च ये शब्दास्तान् ब्रवीमि प्रिये तव ॥१३८९॥
प्रियव्रतश्च नहुषोऽम्बरीषश्च दिलीपयुक् ।
कार्त्तवीर्यार्जुनश्चाथ मरुत्तः षष्ठ ईरितः ॥१३९०॥

हरिश्चन्द्रो नलश्चापि दिवोदासस्ततः परम् ।
भरतो भद्रश्रेण्यश्च सुहोत्रः शशबिन्दुयुक् ॥१३९१॥
[1]बृहदश्वः पौरवः स्यादिक्ष्वाकुश्च ययातियुक् ।
इन्द्रद्युम्नश्च स[श ?]र्यातिः शिविः शत्रुञ्जयस्तथा ॥१३९२॥
ऋतपर्णो रामचन्द्रो विदूरथ इतः परम् ।
मान्धाता तदनु ज्ञेयो भगीरथ इति प्रिये ॥१३९३॥
युवनाश्वो रन्तिदेव आग्नीध्रश्च पुरूरवाः ।
गयोऽलर्कः पृथुरघू प्रतर्दन इतः परम् ॥१३९४॥
ततः सगरहर्यक्षाजमीढपुरुकुत्सवत् ।
कट्वङ्गोरजिरित्येवं [?] बलाकाश्वस्तथैव च ॥१३९५॥
अयुतायुर्मतिनावस्तथा जीमूतवाहनः ।
रम्भो नृगो वीरबाहुस्ततो वसुमना अपि ॥१३९६॥
चित्रायुधः सप्तसप्ततिः[प्तिः ?]जनकः सर्वपश्चिमे ।
एतेषामनु राजाराधितेति पदं स्मृतम् ॥१३९७॥
पुनर्नामानि भिन्नानि क्रमेणाकलय प्रिये ।
जय ऐश्वर्यसत्त्वे च ज्ञानं धर्मः क्रिया तथा ॥१३९८॥
बुद्धिर्मोक्षश्च योगश्च सिद्धिर्वृद्धिस्तथैव च ।
विद्यासन्तानजीवाश्च भोगो धर्मार्थमित्यपि ॥१३९९॥
उदयश्च विभूतिश्च दया क्रोध इतः परम् ।
राज्यं नयस्तथैवाज्ञा धनं चाभयमेव च ॥१४००॥
[1]वरः प्रतापः शक्तिश्च निर्वाणश्च परापरः ।
अद्वैतमिच्छा चावेश उत्साहोऽमृतमेव च ॥१४०१॥
तत्त्वं मोहो महाकाल उद्धारः कीर्तिरेव च ।
वीर आनन्दसौभाग्ये वश्यं तप इतः परम् ॥१४०२॥
खड्गश्चोदारकान्ती च कैवल्यं सर्वशेषगम् ।
त्रिभिः पदैर्विरचितमेतदग्रपदं हि यत् ॥१४०३॥

---

१. क पुस्तके 'बृहदश्वः पौरवः—भगीरथ इति प्रिये' एवं पाठ उपलभ्यते । एतन्मध्यस्थाः पंक्तयश्च तत्र लुप्ताः सन्ति ।

एभिः समसितं ज्ञेयं तल्लक्ष्मीनामधारिणी ।
अतो निघतशब्दार्थैर्यद्वाक्यं घटितं प्रिये ॥१४०४॥
तदुच्यते दुरूहं हि बोद्धव्यं सूक्ष्मया धिया ।
सप्तद्वीपवती पृथ्वी पदाद् दिग्विजयः पुरः ॥१४०५॥
ततः सुरपतित्वं च पुनः परमनिर्वृतिः ।
नागलोकविजयश्च चतुर्थः परिकीर्तितः ॥१४०६॥
पञ्चाशीतिसहस्रानु वर्षजीवनमेव च ।
दशदिक्पालपदतो वशीकरणमेव च ॥१४०७॥
ततः सकलदेवताक्रियमाणस्तुतिर्भवेत् ।
पुनः परमसौन्दर्यं निःसपत्नानुराज्य च ॥१४०८॥
स्यात् सम्राट् चक्रवर्ति दशमं सुरवन्दिते ।
सप्तपातालविजयस्तदनन्तरमुच्यते ॥१४०९॥
सरस्वत्यनु दासीत्वं भवेद् द्वादशसंख्यकम् ।
शतसहस्रपत्नी नियुतकन्या कोटिसुतेति च ॥१४१०॥
लक्षाधिकाशीतिपदात् सहस्रवर्षजीवनम् ।
प्रवदेदुर्वशी रम्भा मेनकानु तिलोत्तमा ॥१४११॥
द्विषष्टयप्सरःसंभोगसिद्धसप्ततिपदादनु ।
शाखावेदधारणं च ततोऽष्टादशलक्षतः ॥१४१२॥
महर्षिप्रत्यहार्थानु भोजनं परिकीर्तितम् ।
स्यान्महर्लोकपर्यन्तरथगमनमेव च ॥१४१३॥
ततः समरविजयपूर्वकात् कालकेय च ।
दितिजानु तथा कन्याहरणं परिकीर्तितम् ॥१४१४॥
स्वमांसोत्कर्त्तनाद् धर्मो भवेत् गोमुखदैत्य च ।
षट्त्रिंशदक्षौहिणीतो भस्मीकरणमेव च ॥१४१५॥
तथाप्रतिहताज्ञत्वं राजत्वत्वमतः परम् ।
वासुकितो दण्डग्रहणं चतुर्विंशतिसंख्यके ॥१४१६॥
वासवोपकारकरणं सेवकादिपदादनु ।
भवेत् खेचरसिद्धित्वं लक्षमत्तपदादनु ॥१४१७॥

वाच्यं हस्तिबलं चैव सप्तविंशतिसंख्यके ।
चतुर्विधार्थसामग्री स्वेच्छाचारित्वमेव च ॥१४१८॥
अनायासपदस्यान्ते त्रिलोकीरक्षणं तथा ।
स्वेच्छारूपित्वमस्यानु महायोगाच्च सिद्धि च ॥१४१९॥
च्चिरजीवितेति कथिता चतुर्विधपदात्ततः ।
भूतसंघवृत्ति तथा कल्पनेति प्रियम्वदे ॥१४२०॥
कुबेरजय इत्येवं स्यात् पुरन्दरसख्य च ।
रिपुविरूपकरणं स्वेच्छानु बलसृष्टि च ॥१४२१॥
प्रसभवासुकिकन्यापदात् परिणयोऽपि च ।
वरुणनिरुद्धजयो वासवासाध्यशब्दतः ॥१४२२॥
भवेद्दैत्यजय इति स्याद् दिक्पालपदात्ततः ।
निरोधसंकट प्रोच्य तरणेति ततः परम् ॥१४२३॥
शच्युद्धारो निकुम्भानु दैत्यगर्वानुभञ्जन ।
अजातशत्रुता चापि त्रिलोकी प्रार्थ्यमान च ॥१४२४॥
भवेद् वस्तुवितरणं जगद्वशीकरणं च ।
महावदान्यं तदनु ततोऽतिरथताऽपि च ॥१४२५॥
स्यात् पूर्वपुरुषोद्धारः सौन्दर्यैकनिधान च ।
सायुज्यमुक्तिः शेषे स्यात् पदान्यनियतेरिता ॥१४२६॥
त्रिपद्या रचितं यत्तत् स्याद्रूपफलदायिनी ।
द्वादशार्णं हि नक्षत्रनरमुण्डपदादनु ॥१४२७॥
भवेन् मालालङ्कृतेति मन्वर्णाङ्कं पदं शृणु ।
आदौ चतुर्दश वदेत्ततो भुवनसेवित ॥१४२८॥
पादपद्मा तत्परं च ततो भगवती पदम् ।
[1]गुह्यकालीति तस्यान्तं ब्रह्मोपास्यस्ततो मनुः ॥१४२९॥
वर्णसप्तदशाढ्योऽयं पञ्च बीजानि मे शृणु ।
रावो वधूरुड्योगिन्यस्त्रपा च तदनन्तरम् ॥१४३०॥

१. इतश्चतस्रः पंक्तयः क पुस्तके न दृश्यन्ते ।

अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी शेषा वै प्रकटोद्धृतिः ।
द्विसप्ततिमिता वर्णा विभक्त्या सहिता इमे ॥१४३१॥
नानासन्देहापनुत्त्यै कथ्यमानां पुरातनीम् ।

[यज्ञमहाराजन्यासोद्भवकथा यस्यां देव्या यज्ञाधिष्ठात्रीत्वम्]

आख्यायिकां वरारोहे कीर्त्यमानां निबोध मे ॥१४३२॥
कल्पादौ भगवान् ब्रह्मा जगत् सृष्ट्वा चराचरम् ।
सारभूतानि सर्वाणि ब्राह्मणेभ्यः स्वयं ददौ ॥१४३३॥
साङ्गान् वेदानध्वरांश्च तपः सत्यं क्षमां धृतिम् ।
योगं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं वैराग्यं ब्रह्मभावनाम् ॥१४३४॥
विवेकं धैर्यमाचारं दयां निष्ठां सहिष्णुताम् ।
अमीषां पात्रतां ज्ञात्वा रत्नपूर्णां वसुन्धराम् ॥१४३५॥
ससमुद्रद्वीपशैलां तेभ्य एवाददत् प्रभुः ।
गृहीत्वा चाथ ते विप्राः विभक्त्याऽन्योन्यमीश्वरि ॥१४३६॥
तपोधना भोगहीनास्तपस्येव मनो दधुः ।
कुर्वाणेषु तपोघोरं विप्रेषु ध्यानशालिषु ॥१४३७॥
अपालनकृताद् दोषाद् विपर्यस्ताऽभवत् क्षितिः ।
दस्युतस्करसंवा[ध]हिंस्रजन्तुसमाकुला: ॥१४३८॥
निर्मर्यादा निराधारा कान्दिशीकजनाचिता [?] ।
न कोऽपि मन्यते किञ्चिदपराधभयात् प्रिये ॥१४३९॥
ब्राह्मणांच्छरणं जग्मुः प्रजाभीताश्च विद्रुताः ।
ते न शेकुः द्विजास्त्रातुं प्रजाः श्वापददस्युतः ॥१४४०॥
अथ ब्रह्माणमभ्येत्य प्रोचुः प्राञ्जलयो द्विजाः ।
वीतरागा वयं ब्रह्मन् ध्याननिष्ठास्तपोधनाः ॥१४४१॥
न शक्ताः स्मो वयं सर्वे रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ।
त्रातुं प्रजाश्च दस्युभ्यस्त्रस्यामो युद्धदर्शनात् ॥१४४२॥
न शक्नुमो वयमिमां रक्षितुं मेदिनी विभो ।
अस्मत्तोऽवरजो वर्णः क्षत्र इत्यभिविश्रुतः ॥१४४३॥

[1]जातो बाह्वोर्हरेः साक्षादिमां तस्मै समर्पय ।
इत्युक्तो भगवान् ब्रह्मा सह संमन्त्र्य वाडवैः ॥१४४४॥
क्षत्रेभ्यः प्रददौ पृथ्वीं ब्राह्मणानुमतो प्रिये ।
शस्त्रास्त्राणि बलं बाह्वोर्दण्डनीतिं च शूरताम् ॥१४४५॥
उत्साहभोगकोषांश्च चतुरङ्गं बलं तथा ।
प्रतापं च प्रभावं च शस्त्रक्षतसहिष्णुताम् ॥१४४६॥
इज्यां बलिं प्रजाभ्यश्च यच्च सारतरं भुवः ।
ते प्राप्य निखिलामुर्वीं क्षत्रिया धर्मतत्पराः ॥१४४७॥
पालयामासुरवनिं श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना ।
पुरीं निवेशयामासुः खेटावसथखर्वटान् ॥१४४८॥
जघ्नुर्दस्यूंच्छ्वापदांश्च कान्तारस्थानपि प्रिये ।
बलीनाहारयामासुर्भोगान् बुभुजिरे तथा ॥१४४९॥
युयुधू राजहेतोश्च परस्परममी तथा ।
आगः कृत्स्नं तथा दण्डं प्रनिन्युर्वधमेव च ॥१४५०॥
एवं कृते मुमुदिरे प्रजाः सर्वा निराकुलाः ।
निर्भयाश्चाप्यवर्द्धन्त सुस्थमासीज्जगत्त्रयम् ॥१४५१॥
बलीन् प्रजाभ्यः संगृह्य कृत्वाऽथो कोषसञ्चयम् ।
यियक्षवोऽभवन् सर्वे वेददृष्टेन वर्त्मना ॥१४५२॥
ऋषीनानाय्य वेदज्ञान् यज्ञवाटं विधाय च ।
विधाय मखसंभारानभूवन् दीक्षिताः क्रतौ ॥१४५३॥
यक्षसंबन्धिकर्माणि चक्रुरेषां महर्षयः ।
सदस्याः केऽपि तत्रास…[?] तारस्तथापरे ॥१४५४॥
अध्वर्यवोऽथ होतारोऽभूवन् वेत्तार एव च ।
प्रवृत्तेष्वध[ध्व ?]रेष्वेवं दीक्षितेषु नृपेष्वथ ॥१४५५॥
दीयमानेषु दानेषु हूयमानेषु वह्निषु ।
देवानावाहयामासुस्तत्तन्मन्त्रैर्महर्षयः ॥१४५६॥

१. तुलनीयं पुरुषसूक्तम्—बाहू राजन्यः कृतः ।

इन्द्रमग्निं यमं वायुं नैर्ऋतं च प्रचेतसम् ।
सोमं वरुणमीशानं ब्रह्माणं विष्णुमेव च ॥१४५७॥
जीयमानेषु यज्ञेषु स्थाने स्थानेऽवनीश्वरैः ।
त्रेतासु हूयमानासु हविर्धाराभिरीश्वरि ॥१४५८॥
देवाः कुत्रापि नाजग्मुः साक्षाद् विग्रहधारिणः ।
अथ द्वित्रिचतुर्वारान् जेपुर्मन्त्रान् महर्षयः ॥१४५९॥
तथाऽपि नागता देवा यज्ञभागजिघृक्षया ।
पुनर्मूर्तिधरान् देवानाह्वयामासुरञ्जसा ॥१४६०॥
नागतास्तेऽपि देवेशि यत्नेनाकारिता अपि ।
तथैव विद्या आहूताः सर्वास्ता अपि नागताः ॥१४६१॥
ब्रह्मापि तत्र नायातः साक्षी सर्वाध्वरस्य च ।
अथ विस्मयमापन्ना राजानः क्रोधमेव च ॥१४६२॥
मन्दाक्षभयनिर्वेदचिन्तामोहावमाननाः ।
महर्षीन् विविशुस्तत्र मृतकल्पास्त्रपाभरैः ॥१४६३॥
अथ ते लज्जिता ध्यानादनागमनकारणम् ।
विज्ञाय प्रेषयामासुर्महादेवीं सुरान्तिकम् ॥१४६४॥
सा गत्वा त्रिदशानाह यूयं किमिति वै मखे ।
विहितावाहनामन्त्रैर्नागच्छध्वं किमित्यहो ॥१४६५॥
सन्निधानं न कुर्वन्ति वेदा ब्रह्महरी अपि ।
त ऊचुरमराः संज्ञां सम्मन्त्र्य मिलिता मिथः ॥१४६६॥
वयं नात्मवशाः सर्वे पराधीनाः स्म सर्वदा ।
परस्य वाहनीभूतास्तथैव परिचारकाः ॥१४६७॥
काल्याः सिंहासनधरास्तदाज्ञावशवर्तिनः ।
कथं सिंहासनं त्यक्त्वा यामस्तस्मिन् मखे मखे ॥१४६८॥
वयं यद्वाहनवहाः सा तत्राकारिता न चेत् ।
वयं कथं गमिष्यामस्तत्र संज्ञे [यज्ञे ?] सुरेश्वरि ॥१४६९॥
इत्युक्ता सा ययौ तत्र यज्ञवाटं महीभृताम् ।
देववेदोदितं सर्वं महर्षिभ्यो न्यवेदयन् ॥१४७०॥

भूपान् विज्ञापयामासुस्तेऽनागमनकारणम् ।
एतस्मिन्नेव समये यज्ञा मन्त्रैः सहाखिलाः ॥१४७१॥
अन्तर्हिता अभूवंस्ते स्वाहाकारा वषट् तथा ।
अन्तर्हितेषु तेष्वेवं भृशं दुःखान्विताः नृपाः ॥१४७२॥
भूत्वा विषण्णाः पप्रच्छुरितिकर्तव्यतां मुनीन् ।
त ऊचुस्तथ्यममरा अब्रुवन्नात्र संशयः ॥१४७३॥
ते सेवकाः महाकाल्याः सिंहासनवहास्तथा ।
सर्वे यज्ञा अपि पुनः सप्तमासनतां गताः ॥१४७४॥
देवी नावाहिता चेत्त आगमिष्यन्ति वै कथम् ।
सेश्वरी किंकराश्चान्ये देववेदाध्वरादयः ॥१४७५॥
अयोग्या न वयं भूपा न विद्मो न मनुं तथा ।
यज्ञकर्मानभिज्ञा नो नानूचाना नवा तथा ॥१४७६॥
वयं नैवाभियोक्तव्या सुराऽनागमने नृपाः ।
इत्युक्तास्ते नृपाः प्रोचुर्महर्षीन् सम्भ्रमाकुलाः ॥१४७७॥
यस्या इमे दासभूता यज्ञा वेदाः सुरास्तथा ।
सैव देवी महामाया किमित्याकार्यते नहि ॥१४७८॥
आराध्या सैव सर्वेषामस्माभिर्ज्ञातमित्यपि ।
सन्निधापन एतस्याः प्रयत्नः संविधीयताम् ॥१४७९॥
भूपोक्तं वचनं श्रुत्वा पुनरूचुर्महर्षयः ।
धन्याः स्थ यूयं भूपालाः देव्यधिष्ठापने यतः ॥१४८०॥
भाग्याद् व्यवसितं चित्तं तस्या आराधनेऽपि च ।
आराधितायां तस्यां वै सर्वे वेदा मखाः सुराः ॥१४८१॥
स्वयमेवागमिष्यन्ति तया देव्या सहैव हि ।
युष्माकं च धने धान्ये प्रतापे बलकोषयोः ॥१४८२॥
आयुरारोग्यसौभाग्यविजयात्मजशर्मसु ।
बाहुल्यं कोटिगुणितं भविष्यति न संशयः ॥१४८३॥
संप्राप्तेऽभ्युदये देवी लक्ष्मीरूपा गृहे भवेत् ।
अलक्ष्मीरूपिणी सैव विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥१४८४॥

यद् यदिष्टतमं भूपा युष्माकं मनसि स्थितम् ।
तत्तल्लक्ष्मीस्वरूपेण सैवात्र प्रकटिष्यति ॥१४८५॥
इत्युक्तास्ते महर्षिभ्यो गृहीत्वा मन्त्रमुत्तमम् ।
तस्मिन्नेव क्रतौ देवीमारराधुस्त्रिवत्सरम् ॥१४८६॥
अथ तत्रागता देवी शुक्लवस्त्रवपुर्धरा ।
कालीरूपं परित्यज्य लक्ष्मीरूपेण पार्वति ॥१४८७॥
विधीशविष्णुप्रमुखा दिक्पाला निगमाध्वरैः ।
सह तत्रागता देव्या वहन्तः शिरसासनम् ॥१४८८॥
प्रावर्तन्त पुनस्तस्यामागतायां महामखाः ।
चक्रे काली सन्निधानं तत्र तत्र क्रतौ स्वयम् ॥१४८९॥
यज्ञभागं च बुभुजे सर्वो देवगणैः सह ।
भूपालेभ्यश्च सर्वेभ्यः स्वस्वाभीष्टं वरं ददौ ॥१४९०॥
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च दीपैर्नैवेद्यसञ्चयैः ।
स्तोत्रैर्दण्डप्रणामैश्च परितुष्टा महेश्वरी ॥१४९१॥
राजभ्यो भक्तिनम्रेभ्यः प्रायच्छदखिलान् वरान् ।
यो यस्य हृद्यासससाद पुरुषार्थतया प्रिये ॥१४९२॥
तं तं स लेभे रुद्राण्याः सान्निध्याच्च प्रसादतः ।
अथ तुष्टा जगद्धात्री महर्षीन् प्राह संसदि ॥१४९३॥
भृगुं वसिष्ठं कपिलमत्रिं दुर्वाससं तथा ।
हारीतं गोतमं कण्वं जैगीषव्यं च नारदम् ॥१४९४॥
भो भो महर्षयः सर्वे योगवन्तस्तपोधनाः ।
शृणुध्वमेकामाज्ञां मे कुरुध्वं चापि तत्क्षणात् ॥१४९५॥
येन येनावनीपेन यस्मिन् यस्मिन् क्रतावहम् ।
येन येनाभिधानेन लक्ष्मीपदवताऽस्तिमे ॥१४९६॥
यं यं वरं प्रार्थयताऽराधिता भक्तिशालिना ।
फलं यद्यददात्तेभ्यस्तत् सर्वमखिलेन हि ॥१४९७॥
मन्त्ररूपेण संदिश्य न्यासः कार्यो भवादृशैः ।
तेनाहं तोषमेष्यामि न्यासेन ब्रह्मसूनवः ॥१४९८॥

ये करिष्यन्ति तं न्यासं भवद्भिः परिगु[म्फि ?]तम् ।
एतेभ्य इव तेभ्योऽपि दास्यामि प्रार्थितान् वरान् ॥१४९९॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी तेऽपि सर्वे मुनीश्वराः ।
चक्रुर्न्यासं हरस्याग्रे भद्रकाल्या यथोदितम् ॥१५००॥
कथितं यज्ञनामादौ तत्तद्भूपाभिधा ततः ।
तत्तन्नामाङ्कलक्ष्म्यन्ता देव्याख्या तदनन्तरम् ॥१५०१॥
तत्तद्वरस्य संज्ञानु फलरूपतयोदिता ।
इति ते कथितो देवि न्यासस्यास्य समुद्भवः ॥१५०२॥

[कल्पसिद्ध न्यासोद्देशः]

कल्पसिद्धन्यासमथो प्रवदाम्यवधारय ।

[कल्पसिद्धन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य श्रीकल्पसिद्धाख्यन्यासस्य परमेश्वरि ॥१५०३॥
ऋषिः शिवेन कथितो हरिद्रुमतगोतमः ।
उष्णिक्छन्दः समाख्यातमेकपञ्चाशदुत्तरम् ॥१५०४॥
वदेच्च कालीसहिता गुह्यकाली च देवता ।
संहारो बीजममृतं शक्तिः स्यात् कौरजत्रयम् ॥१५०५॥
कीलकं चाथ फेत्कारी तत्त्वमभ्युदितं प्रिये ।
महानिर्वाणषोढाङ्गभूतकल्पपदादनु ॥१५०६॥
सिद्धन्यासानु सिद्ध्यर्थे जपे च विनियोगता ।
ऋष्यादिमस्य कृत्वाऽग्रे विदधीत षडङ्गकम् ॥१५०७॥

[कल्पसिद्धन्यासस्य षडङ्गनिर्देशः]

ब्रह्मोपास्या सप्तदशी वासिष्ठी तावदक्षरा ।
ततो महाषोडशी च षोडशार्णा ततः परम् ॥१५०८॥
हरिण्यकशिपूपास्या रामोपास्या ततः परम् ।
मन्त्रैरमीभिरुभयषडङ्गं विदधीत वै ॥१५०९॥

[कल्पसिद्धन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारः]

अथ वक्ष्ये समुद्धारं द्विधाभूतं वरानने ।
आदावष्टादशेशानि बीजान्यखिलान्नि हि ॥१५१०॥

ततो नामानि भिन्नानि ब्रह्मवासवसंज्ञया ।
द्व्यर्णात्मकं पदं चैकं ङचन्तं तदनु पठ्यते ॥१५११॥
पूर्वैः समास एतस्य चलैरविचलस्य हि ।
पुर्नामानि भिन्नानि द्विपद्या रचितेन हि ।
पदेनैकेन ङेऽन्तेन स्त्र्याकारपरिधारिणा ॥१५१२॥
सविग्रहीणि देवेशि पूर्ववच्च चलाचलम् ।
पुनरूप्यथ भिन्नानि नामान्यस्यानु सर्वशः ॥१५१३॥
शब्दैः पञ्चभिरारब्धं ङीबन्तं पदमेककम् ।
समासः पूर्ववत् पूर्वैः स्थितिश्चापि चलाचला ॥१५१४॥
पुनर्विभिन्ननामानि द्व्यर्णङीबन्तकेन हि ।
पदेनैकेन प्रोतानि स्थितिः पूर्वा चलाचले ॥१५१५॥
पुनश्चैकं पदं ज्ञेयमाबद्धं पञ्चभिः पदैः ।
बोध्यं तदचलं देवि द्विपद्या रचितं ततः ॥१५१६॥
पदं चैकं पुनस्तद्वदन्यदस्यानु कीर्तितम् ।
भिन्नभिन्नं ततो ज्ञेयं पदयुग्मं पृथक् पृथक् ॥१५१७॥
सर्वं विशेषणीभूतं पदषट्कं तथान्तिमम् ।
विशेष्यभूतं सप्तापि ङेऽन्तं गम्यं सुरेश्वरि ॥१५१८॥
महामन्त्रः पुनश्चैको चलः सप्तदशाक्षरः ।
बीजान्येकादश तत उपबीजानि पञ्च च ॥१५१९॥
स्थिराणि सप्त ङेऽन्तानि पदान्यपि वरानने ।

[कल्पिसिद्धन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः]

विशेषभूतामधुना वक्ष्याम्युद्धृतिमस्य हि ॥१५२०॥
तारादेकान्तराः सर्वे मैथह्लीयोगिनीस्त्रियः ।
चतुद्रा[तूरा ?] वान्तिमीकूर्चान्नामान्याकलयाधुना ॥१५२१॥
तपोभव्यश्च रन्त[त्न ?]श्च हव्यवाहक्रतोः परः ।
सावित्रस्तु वकुशिका गान्धार ऋषभस्तथा ॥१५२२॥
मार्जलीयो मध्यमश्च वैराजश्च निषादयुक् ।
मेघवाहन इत्येवं पञ्चमश्चिन्तकोऽपि च ॥१५२३॥

तथैवाकृतिविज्ञानौ[1] बृहच्चापि रथन्तरम् ।
रक्तश्च पीतवासाश्च विश्वरूपस्ततः परम् ॥१५२४॥
ऋष्यन्तरः श्वेतनीललोहितौ वामदेवयुक् ।
रौरवप्राणसद्योजाततत्पुरुषसंज्ञकाः ॥१५२५॥
अघोरेशानज्ञानानि सारस्वतमुदानयुक् ।
तथा गारुडकूर्मौ च नारसिंहश्च वामनः ॥१५२६॥
आग्नेयसोमौ मानवो लक्ष्म्यभिख्यया ।
वैकुण्ठो गौर्यपि ततो माहेश्वर इति स्मृतः १५२७॥
पितृपद्मौ तथा श्वेतवाराहः सर्वशेषगः ।
द्व्यर्णात्मकं परं[2] कल्पः पुनर्नामानि वै शृणु ॥१५२८॥
ज्वालादौ घोरनादोग्रौ वेतालस्तदनन्तरम् ।
संहाररौद्रौ तदनु कृतान्तो भीम एव च ॥१५२९॥
चण्डो धनं च भद्रश्च श्मशानं कामकलापि च ।
सिद्धिदक्षिणघोराश्च सन्त्रासः प्रेत एव च ॥१५३०॥
प्रलयश्च विभूतिश्च [3]जयो भोगस्ततः परम् ।
कल्पान्तमन्थानसंज्ञौ दुर्जयः कालवज्रयुक् ॥१५३१॥
विद्याशक्तिर्विश्वरूपो माया चैव महाकुलम् ।
नादो मुण्डं तथा धूमानन्दतिग्मास्ततः परम् ॥१५३२॥
महारात्रिश्च संग्रामशवनग्ना इतोऽप्यनु ।
रुधिरं चापि कङ्कालं फेरोः पूर्वं भयङ्करः ॥१५३३॥
विकटश्च करालश्च विकराळस्ततो मतः ।
घोरघोरतरः शेषो गुह्य इत्यभिधीयते ॥१५३४॥
द्विपद्या रचितः शब्दः कालीमूर्तिरिति स्मृतः ।
यानि भिन्नान्यदः शेषे नामानि शृणु तानि हि ॥१५३५॥
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यममृतं तथा ।
विवेकपूर्णौ च क्रिया प्रचण्डो भैरवोऽपि च ॥१५३६॥

---

१. विज्ञातो ङ । २. पदं ङ ।
३. जगो क ।

क्रोधः परमतत्त्वं च कैवल्यं विजयादिमम् ।
खेचरश्चापि निर्वाणं मोक्षः सिद्धिश्च भूकरोऽपि[?] च ॥१५३७॥
भूचरश्चापि पातालं सुन्दरो मोहनोऽपि च ।
निरञ्जनारुणौ चापि भास्करः पञ्चविंशकः ॥१५३८॥
जगन्मित्रप्रतापौ च पौरुषः कमलापि च ।
प्रमोदविक्रमौ हर्ष उग्रश्चापि विचित्रयुक् ॥१५३९॥
उदयोत्साहकरुणाभीमभावास्ततः परम् ।
परमाव्ययोगाश्च ततः शब्दो प्रमेययुक् ॥१५४०॥
मङ्गलेश्वर कपिल माधवरौद्रौ दयापि च ।
सर्वशेषे प्रसन्नश्च पदं पञ्चपदीयुतम् ॥१५४१॥
आनन्दो नाथ इत्येवं सिद्धः सिद्धिविधायिनी ।
एभिः समसितैरेकं पदं पूर्वैरमापि च ॥१५४२॥
अथ नामानि भिन्नानि कथयाम्यस्य पश्चिमे ।
महारात्रिः कालरात्रिर्विरूपा च कपालिनी ॥१५४३॥
महोत्सवा गुह्यनिद्रा ततो दोर्दण्डखण्डिनी ।
वज्रिणी शूलिनी चैव विमला च महोदरी ॥१५४४॥
कुरुकुल्ला कौमुदी च कौलिनी कालसुन्दरी ।
बलाकिनी फैरवी च डमरुका घटोदरी ॥१५४५॥
भीमदंष्ट्रा चापि भगमालिनी मेनया सह ।
तारावती भानुमती एकानङ्गा तथैव च ॥१५४६॥
केकराक्षी संहारिणी ऐन्द्राक्षी च प्रभञ्जना ।
भ्रामरी च प्रचण्डाक्षी तथा चैवापराजिता ॥१५४७॥
विद्युत्केशी महामारी शोषिणी वज्रनख्यपि ।
शूची तुण्डी जृम्भका च तीव्रा प्रस्वापनी तथा ॥१५४८॥
ज्वालिनी चण्डघण्टा च लम्बोदर्यग्निमर्दिनी ।
एकदन्तोल्कामुखी च सूर्पजिह्वा च घोणकी ॥१५४९॥
पूतना वेगमाला च गुह्यकाली च शेषगा ।
द्व्यर्णपदं हि ङीबन्तं नाम्नीति परिपठ्यते ॥१५५०॥

पदं पञ्च पदारब्धं यत्तत् संप्रति कथ्यते ।
भैरवीति भवेदाद्यं चामुण्डेति द्वितीयकम् ॥१५५१॥
शतं तृतीयकोटिश्च तुर्यं परिवृता ततः ।
श्मशाननिलयास्यानु महाशब्दाद् दिगम्बरा ॥१५५२॥
ततो भगवतीत्येवं गुह्यकाली ततः परम् ।
रामोपास्यस्ततः सप्तदशवर्णात्मको मनुः ॥१५५३॥
अमाशक्ती च धनदा कुलस्त्रीयोगिनीरुषः ।
बधूश्च शाकिनीस्तिस्रो मन्थन्यः फट्त्रयं ततः ॥१५५४॥
नमः स्वाहा सर्वशेषे विशेषोद्धृतिरीदृशी ।

[कल्पसिद्धन्यासमाहात्म्यकथा तदुद्भवकथा वा]

कल्पाह्वया निगदिता ब्रह्मणो दिवसा इमे ॥१५५५॥
श्वेतवाराहकल्पेऽस्मिन् प्रवृत्ते ब्रह्मणो दिने ।
गुह्यकाली यथा मुख्या कालीषु निखिलासु हि ॥१५५६॥
तेषु तेषु तु कल्पेषु सा सा काली वरानने ।
प्रसिद्धिमगमद्देवि[1] मन्त्रध्यानार्चनक्रमैः ॥१५५७॥
य इमे कथिता देवि सिद्धा न्यासान्तरे तथा ।
आसन् मनुष्या एवैते प्राकृता इव सांप्रतम् ॥१५५८॥
जन्ममृत्युसधर्माणो रोगशोकसमाकुलाः ।
केचिद् विप्राः केऽपि भूपाः वैश्याः केचन पार्वति ॥१५५९॥
केचिच्चावरजा वर्णाश्चातुराश्रम्यशालिनः ।
कालीमाराधयामासुस्तां तां तत्तन्मनूच्चरैः ॥१५६०॥
मानवौघास्तु सञ्जाता दिव्यौघास्तत्प्रसादतः ।
काली तेषां प्रसन्नाऽभूदाराधनजपार्चनैः ॥१५६१॥
अभिधानं तत्तदेषां निराकृत्य महेश्वरी ।
युयोज स्वेच्छया नामाथ द्वित्रिचतुरक्षरैः ॥१५६२॥
आनन्दनाथ इत्यन्ते प्रासिद्ध्यमुपपादितम् ।
सिद्धा भूत्वा तेऽपि देवि स्वस्वोत्कर्षविवृद्धये ॥१५६३॥

---

१. स्वैः स्वैः ।

संगोप्य तत्तन्नामांसां चक्रुरन्यं निजेच्छया ।
मन्त्रान् प्रकटयामासुर्ये तन्त्रे भैरवे स्थिताः ॥१५६४॥
श्वेतवाराहकल्पादौ गुह्यकाली यदा स्वकम् ।
रूपं प्रकटयामास महाभीषणमुल्वणम् ॥१५६५॥
तदा लुप्ततरा जातास्ताः काल्यो मन्त्रविग्रहैः ।
मूर्तीरन्तर्हिता दृष्ट्वा ताः स्वीया जगदम्बिका ॥१५६६॥
दुःखितेवाब्रवीत् किञ्चित् त्रिपुरघ्नमिदं वचः ।
प्राणनाथ पुराराते प्राक्तन्यो मम मूर्तयः ॥१५६७॥
ज्वालाकालीप्रभृतयः पूर्वमाराधिता हि याः ।
धर्मानन्दप्रभृतिभिरमीषां वरदाश्च याः ॥१५६८॥
अनुपासकतादोषादन्तर्धानमुपागताः ।
स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्विग्रहैश्च सहिता नामभिस्तथा ॥१५६९॥
स्वमूर्तिलोपदुःखेन दुःखितां मां समुद्धर ।
तेषां तेषां हि कल्पानां नामभिः परिबृंहितः ॥१५७०॥
तासां तासां च कालीनां सिद्धानामपि हे विभो ।
अभिधानैस्तथा सिद्धविहितैरन्वितस्तथा ॥१५७१॥
न्यासः करेऽपि निबद्धव्यो येन नासां विलोपनम् ।
कल्पसिद्धन्यास इति प्रसिद्धिं च करिष्यसि ॥१५७२॥
इत्थं विज्ञापितः काल्या देवदेवो महेश्वरः ।
सर्वं बबन्ध न्यासेऽस्मिन् देवी तेन तुतोष च ॥१५७३॥
ये करिष्यन्त्यमुं न्यासं देवीदुःखापहारकम् ।
तेषां दुःखापहरणं गुह्यकाली करिष्यति ॥१५७४॥
अर्चां विसन्धिताऽस्मिन्निति मृत्युञ्जयोऽब्रवीत् ।
न्यासस्थानं च सर्वत्र मातृकावदुदीरितम् ॥१५७५॥
अत एव हि कालीनां तासां मन्त्रान् महेश्वरः ।
मृत्युञ्जयप्राणमध्ये बीजमालामयेऽपि च ॥१५७६॥
बबन्ध भगवान् रुद्रः कालीनां विविधान् मनून् ।
संहितायां च भैरव्यां बबन्धुर्भैरवास्तथा ॥१५७७॥

यैः ख्यातिमगमत् काली नामभिः सिद्धकल्पितैः ।
तैस्तैर्नामभिरन्ये च विख्यातिं मनवोऽगमन् ॥१५७८॥
कपालडामरे प्रोक्ताः मन्त्रास्ते त्रिपुरारिणा ।
कल्पसिद्धन्यास इति तेनायं प्रथितः प्रिये ॥१५७९॥
महासिद्धिविधातेदृङ् नान्यो न्यासो भविष्यति ।
एतस्य महिमानं द्वौ जानतः कालिकाशिवौ ॥१५८०॥
जानाम्यहं त्वत्प्रसादान्नान्ये विज्ञातुमीशते ।
इत्येष कथितो न्यासो महाषोढाह्वयस्तव ॥१५८१॥
तत्तल्लिङ्गादियुक् चायमन्यत्रान्यैश्च संयुतः ।
महोपपदतामेति द्वैविध्यं तेन वर्णितम् ॥१५८२॥
अकामतः कृतश्चायं निर्वाणाख्यां प्रपद्यते ।
समाप्य सकलं न्यासं बलिं देव्यै निवेदयेत् ॥१५८३॥
नैवेद्यं शक्तये चापि सिद्ध्याकांक्ष्युभयं चरेत् ।
पारत्रिकं चेहमानः पूर्वमाचरते प्रिये ॥१५८४॥
बलिदानमनुं वक्ष्ये संप्रत्युद्धृतिपूर्वकम् ।
उच्चार्यं यं बलिं दद्यान् न्यासानन्तरमीश्वरि ॥१५८५॥
प्रणवो वाग्भवपाशाङ्कुशान्येतानि वै पुनः ।
एकपञ्चाशदित्येवं मन्त्रेऽमुष्मिन् पदं प्रिये ॥१५८६॥
दारान् द्वादश संकीर्त्य स्वस्वोपपदबृंहितम् ।
तसन्ततया वाच्यमादौ तीर्थमुपन्यसेत् ॥१५८७॥
कमला भौवनेशी च रोषः प्रासाद एव च ।
पौरस्त्यं पदमुच्चार्य शिवलिङ्गं च पूर्ववत् ॥१५८८॥
प्रेतः काली खेचरी दिक् शैलश्च प्राक्तनात् पदात् ।
शूची च वैश्वदेवश्च तापिनी मन एव च ॥१५८९॥
प्रागुक्तपदतश्चापि नरसिंहोऽपि सन्धियुक् ।
कल्पो मुक्ता महा चैव नृसिंहस्तदनन्तरम् ॥१५९०॥

प्राचीनात् पदतः सन्धियुतो नद्यपि कीर्तयेत्[1] ।
कामो मुञ्जवलार्णं हि द्वादश्या मात्रयान्वितम् ॥१५९१॥
आसुरं चापि निर्वाणं पूर्वस्मात् पदतस्तथा ।
सन्धियुक्त ऋषिश्चापि वधूर्वाजिगलोऽपि च ॥१५९२॥
दानवः स्थपतिश्चापि प्रागुक्तात् पदतोऽपि च ।
अस्त्रं च योगिनी पश्चात् समाधिश्चाध्वना सह ॥१५९३॥
प्राक्तनादेव पदतो भैरवः समुदाहृतः ।
रावः सानुः केतुनित्ये पूर्वशब्दादपि प्रिये ॥१५९४॥
यज्ञश्च मानसं वज्रं मेखला च विभूतियुक् ।
प्रायु[गु?]क्त पदतो राजा भारुण्डा योगिनी तथा ॥१५९५॥
लज्जारती पूर्वपदात् कल्पः परिनिगद्यते ।
डाकिन्यनु स्यात् प्रासादोऽमृतं शक्तिस्तथैव च ॥१५९६॥
पूर्वस्मादेव पदतः सिद्ध इत्यपि कीर्तितः ।
ततस्तारो भौवनेशी योगिनीरोषयोषितः ॥१५९७॥
शाकिनी डाकिनी चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ।
भासाकूटात् तथैह्येहि भगवत्यनु कीर्त्यते ॥१५९८॥
गुह्यकालि समाभाष्य ततोऽर्णं नाङ्कुरं वदेत् ।
योगिनी डाकिनी चैव शाकिनी भैरवी तथा ॥१५९९॥
चामुण्डादिस्वशक्त्युक्त्वा ततः परिवृते वदेत् ।
कामलं मान्मथं मैधं प्रासादं कालिकाह्वयम् ॥१६००॥
बीजं सदाशिवप्रेताधिरूढे परमेत्यपि ।
ततः शिवे सामरस्यरसप्रमुदिते स्मरेत् ॥१६०१॥
श्मशाननिलये प्रोच्य नरमुण्डपदादथ ।
मालारचितहारेव विसन्धीमं बलिं ततः ॥१६०२॥
गृह्ण गृह्णापय द्विर्द्विस्तथा भक्ष च भक्षय ।
मम शत्रूनथोत्कीर्त्य हनयुग्मं मथ द्वयम् ॥१६०३॥

१ कीर्त्यते ङ ।

खाद द्वयं त्रपाकूर्चौं वधू रावश्च योगिनी ।
सत्वेरे युगलं चापि व्युत्क्रमाद् विरिमे पुनः[?] ।।१६०४।।
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनूदिता ।
अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी सर्वशेषे प्रकीर्तिते ।।१६०५।।
न्यासान्ते बलिदानाय कथितोऽयं महामनुः ।
बलिं दददनेनैव शिवायै मनुना प्रिये ।।१६०६।।
सफलं कुरुते न्यासमसम्पूर्णं तथाऽददत् ।
आद्यं न्यासं मातृकाढ्यं ब्रवीति त्रिपुरद्विषः ।।१६०७।।
कापालिकास्तु पञ्चान्यांस्तदाढ्यान् ब्रुवते तथा ।
तत्स्थानं शेषहृच्छीर्षचरमं वर्णयन्ति ते ।।१६०८।।
सर्वादावपि मौलेया न कुत्रापीति निःपठाः ।
भाण्डिकेरास्तथा सर्वे मन्मतस्यानुसारिणः ।।१६०९।।
स्थानानि षण्णां न्यासानां मातृकान्यासवत् प्रिये ।
मतमेतद्धि सर्वेषां मम च त्रिपुरद्विषः ।।१६१०।।
सन्ध्यसन्धी तु विज्ञेयौ वचनादुपदेशतः ।
परम्परायातरीत्या न चतुर्थात् प्रकारतः ।।१६११।।
शक्तिप्रधानपूजाकृत् कुलमार्गरतोऽखिलः ।
देवीबलिप्रदानान्ते शक्तये बलिमृच्छति ।।१६१२।।
कोऽपि नैवेद्यमपि वा मनुरेको द्वयोरपि ।
तारो मैधं त्रपा कामः शाकिनी डाकिनी तथा ।।१६१३।।
भासापुष्करसत्त्वाख्यकूटानि तदनन्तरम् ।
इमं वलिं गृह्ण युगं गृह्णापय युगं तथा ।।१६१४।।
भक्ष भक्षय च द्वन्द्वं खाद खादय चेत्यपि ।
एह्येहि शक्तिरूपे च भगवत्यस्य पश्चिमे ।।१६१५।।
गुह्यकालि ततः प्रोच्य स्वपदं दर्शय द्वयम् ।
निजरूपं प्रकटय द्विवारं समुदीरयेत् ।।१६१६।।
प्रविश द्विः सामरस्यभावमादौ निगद्य हि ।
शृङ्खलाकर्णिकाहारकुटिलारञ्जिनीघटीः ।।१६१७।।

सपद्मव्ययमारण्डाबीजानि परिकीर्तयेत् ।
चित्कलाभोगकूटानि तदनन्तरमीरयेत् ॥१६१८॥
सप्रासादपरा प्रेतं फट्त्रयं हृच्छिरोऽन्तिमे ।
नैवेद्यं वा बलिं वापि दद्युरेतेन शक्तये ॥१६१९॥
कौलिकाः कुर्वते चापि तदनन्तरमर्हणम् ।
रतिं च वाममार्गीया न तु श्रुत्यध्वनि स्थिताः ॥१६२०॥
षोढान्यासोऽयमुक्तस्ते समुद्धरणपूर्वकः ।
महोपपदविख्यातो निर्वाणोपपदेन च ॥१६२१॥
किं कृतैर्बहुभिन्र्यासैरयं न्यासः कृतो न चेत् ।
कृतेऽपि न्यासराजे तु किमन्यैर्न्यासविस्तरैः ॥१६२२॥
यस्य स्यान्महती भक्तिर्गुह्यकालीमुपासितुम् ।
तेनायं संग्रहीतव्यः कर्तव्यश्च विशेषतः ॥१६२३॥
सप्तकोटिमहामन्त्रास्तव डामरयामलात् ।
उद्धृत्य चैकतः कृत्वेदं चापि तुलया धृतम् ॥१६२४॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमिदं तेभ्योऽत्यरिच्यत ।
ततःप्रभृति देवेशि मया भक्तिपरेण हि ॥१६२५॥
न्यासं रुद्राक्षमालायां विलिख्य परमादरात् ।
कण्ठे संस्थाप्य सा देवी ध्यायते निश्चितात्मना ॥१६२६॥
धारयिष्यन्ति येऽन्येऽपि गुह्या तेषां वरप्रदा ।
नातः परतरः कोऽपि न्यासो [भुवि ?] शुचिप्रदः[1] ॥१६२७॥
जगत्त्रयेऽपि न्यासोऽन्यो नास्ति सोऽत्र सुरेश्वरि ।
यो गच्छेदस्य समतां फलाधिक्यप्रदानतः ॥१६२८॥
शुभेऽहनि गुरोर्वक्त्रादुपदेशं प्रगृह्य हि ।
यत्नात् सन्तोष्य च गुरुं हेमरत्नाम्बरादिभिः ॥१६२९॥
चतुर्दश्यामथाष्टम्यामारभेतास्य धारणम् ।
विनोपदेशं यो धत्ते तस्य गुह्या पराङ्मुखी ॥१६३०॥

---

१. भुवि प्रिये ङ ।

विधानाद् ध्रियमाणस्तु सर्वसिद्धिं प्रयच्छति ।
अविधानाद् धृतो देवि तमेवात्ति न संशयः ॥१६३१॥

यदि कर्तुं न शक्नोति न्यासमेनं दिने दिने ।
पर्व लक्ष्यीकृत्य कुर्याच्चतुर्दश्यष्टमीमुखम् ॥१६३२॥

तत्राप्यशक्तः कुर्वीत शारदीयार्हणादिने ।
कर्तुमेतदशक्तोऽपि भूर्जपत्रे विलिख्य हि ॥१६३३॥

भुजे बध्नीत वा यन्त्रपीठवत् परिपूजयेत् ।
यत्रैष लिखितस्तिष्ठेन्न्यासोऽयं परमेश्वरि ॥१६३४॥

न तत्र मारी दुर्भिक्षं रोगशोकौ तथा न च ।
न चापि ग्रहजा पीडा काश्चिदप्यापदो न च ॥१६३५॥

भूतप्रेतावेशजन्या नैवोपद्रवराशयः ।
त्रिविधोत्पातशान्तिश्च वह्न्यवग्रहनाशनम् ॥१६३६॥

आधिक्यं मङ्गलानां हि तस्य गेहे प्रजायते ।
नित्यमैश्वर्यवृद्धिः स्यात् पुत्राणामायुषस्तथा ॥१६३७॥

भूपतिर्वश्यतामेति जायन्ते सुखसंपदः ।
किं किं न साधयत्येष लिखितः स्थापितो गृहे ॥१६३८॥

तस्माद् देवि प्रयत्नेन कर्तव्योऽयं दिने दिने ।
महानिर्वाणषोढाख्यो न्यासः परमशोभनः ॥१६३९॥

न्यासानामेष सर्वेषां चूडामणिरिति स्मृतः ।
कुर्वन्नमुं सुरेशानि सर्वचूडामणिर्भवेत् ॥१६४०॥

त्रिसत्यपूर्वं ते वच्मि न्यासोऽन्योऽस्य समो नहि ।
इति षोढात्रयं प्रोक्तं विविच्य तव पार्वति ॥१६४१॥

उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठं शम्भुना स्वयमीरितम् ।
महानिर्वाणषोढाख्या सर्वशेषे त्वयेरिता ॥१६४२॥

न तत्तुल्ये स्मृते आख्यास्यातो यद्यप्यनुत्तमे ॥१६४३॥

पापतृणारणिरियं सिद्धिरत्नमहाखनिः ।
भोगेच्छाकल्पलतिका दुःखशोकौघकर्तनी ॥१६४४॥
यदीच्छसे [सि ?] गुह्यकालीं सम्मुखीकर्तुमञ्जसा ।
तदा निर्वाणषोढां त्वं कुर्वीथा भक्तिभाविता ॥१६४५॥

इति महाकालसंहितायां षोढान्यासोद्धारो नाम
नवमः पटलः

परिशिष्टानि

परिशिष्टम् (१)

महाकालसंहितायां गुह्यकालीखण्डस्य प्रथमभागे समागताः मूलमन्त्राः ।

१—भरतोपास्यगुह्यकाल्याः षोडशाक्षरः कीलितमन्त्रः (१।११-१४)
'ओं फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा' ।

२ - तस्या एवाकीलितः षोडशाक्षरमन्त्रः (१।१५)
'ओं फ्रें सिद्धि करालि ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा' ।

३—रामोपास्यायाः सप्तदशाक्षरः कीलितमन्त्रः (१।१६-२०)
'ओं फ्रें सिद्धि हस्ख्फ्रें हस्फ्रें ख्फ्रें करालि ख्फ्रें ह्स्ख् फ्रें ख्फ्रें फ्रें ओं स्वाहा' । अयमेव हारीतोपास्यामनुः ।

४ – एतस्या एवाकीलितः सप्तदशाक्षरमन्त्रः (१।२०-२१)
'ओं फ्रें सिद्धि हसखफ्रें खफ्रें करालि ख्फ्रें हसखफ्रें खफ्रें फ्रें ओं स्वाहा । अयमेव च्यवनोपास्यामनुः ।

५—हिरण्यकशिपूपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (१।१०५-१०६)
'ख्फ्रें हसखफ्रीं ओं फ्रें ह्री छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं ह्रीं रहक्षमलवरयईऊं श्रीं ओं ह्रीं हसखफ्रें ख्फ्रें' ।

६—ब्रह्मोपास्याया एकाक्षरमन्त्रः (३।१)
'फ्रें' ।

७—अनङ्गोपास्यायास्त्र्यक्षरमन्त्रः (३।४)
'ओं ह्रीं फ्रें' ।

८—वरुणोपास्यायास्त्र्यक्षरमन्त्रः (३।९)
'छ्रीं फ्रें स्त्रीं' ।

९—पावकोपास्यायाः पञ्चाक्षरमन्त्रः (३।१३)
'ओं फ्रें हूं स्वाहा' ।

१० —आदित्युपास्यायाः पञ्चाक्षरमन्त्रः (३।१७)
'ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें' ।

११—शच्युपास्यायाः पञ्चाक्षरमन्त्रः (३।२१)
'ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें' ।

१२—दानवोपास्यायाः नवाक्षरमन्त्रोद्धारः (३।१७-२८)
'फ्रें ख्फ्रें सिद्धिकरालि स्वाहा' ।

१३ —मृत्युकालोपास्याया नवाक्षरमन्त्रः (३।३४)
'ख्फ्रें महाचण्डयोगेश्वरि' ।

१४—भरतोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (३।४१-४२)
'ह्लीं फ्रें सिद्धि करालि ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा'।

१५- च्यवनोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (३।४२)
'छ्रीं फ्रें सिद्धि करालि ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नम. स्वाहा'।

१६—हारीतोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (३।४३)
'हूं फ्रें सिद्धि करालि ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा'।

१७—जाबालोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (३।४३)
'स्त्रीं फ्रें सिद्धि करालि ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा'।

१८—दक्षोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (३।४४)
'फ्रें फ्रें सिद्धि करालि ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा'।

१९—हिरण्यकशिपूपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः ऊर्ध्वनिर्दिष्टः पञ्चममन्त्र एवात्राप्युद्धृतः (३।५१-५३)

२०—ब्रह्मोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रः (३।५६-५७)
'रह्लीं हसखफ्रें खफ्रें ओं ह्लीं श्रीं फ्रें सिद्धि करालि छ्रीं क्लीं फ्रें नमः'।

२१—वसिष्ठोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रः (३।६०-६१)
श्रीं ह्लीं रह्लीं हसखफ्रीं क्षरह्म्लव्य्रईऊं खफ्रें जरक्री झमरयूं रक्ष्रीं स्त्री छ्रीं छ्री गुह्यकालि फट्'।

२२—विष्णुतत्त्वनामकपञ्चाक्षरमन्त्रः (३।६४-६५)
'ओं ख्फ्रें हसखफ्रौं खफ्रें ओं'।

२३—अम्बाहृदयनामकाष्टाक्षरमन्त्रः (३।६९-७०)
'ओं ह्लीं ख्फ्रें हसखफ्रीं ख्फ्रें क्लीं नमः'।

२४—उत्तराम्नायगोपितायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (३।७४-७६)
'ह्लीं श्रीं ओं खफ्रें हसखफ्रें रह्क्षमलवरयूं रक्ष्री जरक्रीं स्त्रीं छ्री हूं ख्फ्रें ठ्रीं ध्रीं नमः'।

२५—त्रयोदशास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः (३।७९-८०)
'ओं ह्लीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्रीं ख्फ्रें ठ्रीं ध्रीं फ्रों रह्लीं स्वाहा'।

२६—रावणोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रः (३।८३-८४)
'ह्लीं क्लीं फ्रें हूं क्रों गुह्यकालि क्रीं छ्री हसखफ्रें फ्रों छ्रीं स्त्री स्वाहा'।

२७—रावणोपास्यायाः षट्त्रिंशदक्षरमन्त्रः (३।८७-८९)
'ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें छ्रीं हूं स्त्री ख्फ्रें ह्री गुह्यकालि ह्ली ख्फ्रें स्त्री हूं छ्री फ्रें क्लीं ध्रीं ह्लीं ऐं ओं ह्लीं छ्रीं स्त्री फट् फट् फट् नमः स्वाहा'।

२८—महाविद्याया अष्टपञ्चाशदक्षरमन्त्रः (३।९३-९६)
'ओं ओं ख्फ्रें महाचण्डयोगेश्वरि ह्लीं स्त्रीं जय महामङ्गले सिद्धि करालिनि ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें कालि महानिर्वाणसिद्धिप्रदे महाभैरवि विच्चे घोरे जरक्री हूं फट् फट् फट् स्वाहा'

२९—भोगविद्यायाः द्विशताधिकसप्ताशीत्यक्षरमन्त्रः (३।९९-११४)

'ओं नमो महामाये हूं फ्रें त्रैलोक्यत्राणकारिणि छ्री छ्रीं सिद्धि सिद्धि ह्ली ह्लीं धारय धारय पुत्रधनधान्यसुवर्णरत्नहिरण्यदारकुटुम्बमहानिधिसिद्धीर्देहि देहि महागौरि स्मृतिमहामेधायशोऽस्त्रराज्यसौभाग्यसर्वंदीपसमस्तकर्मकरि सिद्धिचामुण्डे पूरय पूरय ह्लीं सर्वमनोरथान् सर्वसंपदं वर्ष वर्ष वर्षापय वर्षापय पातय पातय निधिं दद दद अष्टैश्वर्यं दद दद गृहधनायुः सुखं दद दद निधानधान्यहिरण्यं दद दद सर्वत्र सर्ववृद्धि कुरु कुरु धर धर ह्लीं ह्लीं स्त्रीं स्त्री फ्रें रत्नमयवर्षं दद दद सर्वयक्षानादेशाय आदेशय आज्ञापय आज्ञापय श्रियं राज्यं दद दद अविघ्नं कुरु कुरु नमो महायक्षराजाराधितायै ह्लीं ह्लीं ह्लीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं महाधनानि दद दद मम सर्वधनं प्रयच्छ प्रयच्छ सिद्धिगौरि हूं हूं नमः ठः ठः ठः स्वाहा'।

३०—गुह्यकाल्याः शताक्षरमन्त्रः (३।१२४-१३०)

'ख्फ्रें ख्फ्रीं चण्डे चण्डचामुण्डे ह्लीं हूं स्त्रीं छ्री विच्चे घोरे महामदोन्मनि क्लीं ब्लूं गुह्येश्वरि ओं परानिर्वाणे ब्रह्मरूपिणि ओ फ्रें फ्रें सिद्धि करालि आप्यायिनि नवपञ्चचक्रनिलये घोराट्टराविणि कलासहस्रनिवासिनि खं खं खं ह्सौं फ्रें अवर्णेश्वरि प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणदे ख्फ्रें स्वाहा'।

३१—गुह्यकाल्याः सहस्राक्षरमन्त्रः (३।१३४-२०१)

(नवनवार्णमन्त्रपदेनाप्यस्य व्यपदेशः)

ओं ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें जय जय भगवति गुह्यकालि सिद्धिकरालि कालि कापालि ऐं क्रों ग्लूं ब्लूं क्ष्रौं ग्लौं ब्लौं श्रौं स्हौः नररुधिरमांसपरिपूर्णकपाले नरद्वीपिसिंहफेरुकपिक्रमेलकभल्लूकगरुडगजमकरहयवदने आं श्रीं क्लीं ठ्रीं ध्रीं थ्रीं फ्रीं क्ष्रीं व्रीं नररक्तार्णवद्वीपमध्य प्रज्वलद्‌धुतवहज्वालाजटाले महाश्मशानवासिनि फ्रों फ्रौं स्फ्रों स्फ्रौं क्लौं ग्लौं ब्लौं ज्रौं क्लौं चामुण्डाशतकोटिपरिवृते गुह्यातिगुह्यपरमरहस्यकुलाकुलसमयचक्रप्राग्वर्तिनि र्ह्लीं र्श्रीं र्ज्रीं र्क्ष्रीं र्प्रीं र्ठ्रीं र्क्रीं र्छ्रीं र्फ्रीं नवकोटिगुह्यानन्ततत्त्वधारिणि परमशिवसामरस्यचारिणि सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि ख्फ्छ्रें ख्फ्छ्रैं ख्फ्छ्रों ख्फ्छ्रौं क्ष्र्स्त्रां क्ष्र्स्त्रीं क्ष्र्स्त्रूं क्ष्र्स्त्रैं क्ष्र्स्त्रौं वह्नि स्फुलिङ्गपिङ्गलितजटाभारभासुरे महादैत्यदानवपिशाचराक्षसभूतप्रेतकूष्माण्डभयविनाशिनि ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रों ह्स्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रं ह्स्ख्फ्रः कटकटायमानविकटदीर्घदंष्ट्राचर्वितनृकपाले लेलिहानमहाभीमरसनाविकराले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले र्क्षखरऊं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं रक्षक्रीं ऊं रक्षखऊं कमह्लचह्लक्षर्ज्रीं खलह्रव्न्ग्क्षर्छ्रीं ओं थ्रें क्लीं क्षलफलओं सक्षलक्षें ह्रक्ष्मलीं ह्लफकह्लीं डम्लव्रीं रम्लव्रीं वम्लव्रीं लम्लव्रीं कम्लव्रीं सम्लव्रीं हम्लव्रीं यम्लव्रीं र्लह्क्षफ्रूं स्लह्क्ष्ह्रूं क्ष्लह्क्ष्म्रूं ह्रक्षम्लफ्र्यूं ह्रक्षम्लस्र्यूं र्क्षफह्रक्षम्लह्र्यूं ह्रक्षम्लव्र्यूं ह्रक्षम्लम्र्यूं ह्रक्षम्लक्र्यूं ह्रक्षम्लय्र्यूं र्क्षफ-

भ्र ध्रम्लऊं र्क्षस्रभ्रध्रम्लऊं र्क्षह्रभ्रध्रम्लऊं र्क्षव्रभ्रध्रम्लऊं र्क्षभ्रभ्र-ध्रम्लऊं र्क्षकभ्रध्रम्लऊं र्क्षभ्रध्रम्लऊं र्क्षभ्रम्लऊं र्लूक्षध्रम्लऊं र्स्ख्य्रमूं कोटिमहादिव्यास्त्रसन्धानविधायिनि सकलसुरासुरसिद्धविद्याधरकिन्नरो-रगसेवितचरणकमलयुगले बद्धनारान्त्रयोगपट्टभूषिते विभूतिरूषिते असंख्यमहिम-विभवे द्रीं य्लैं स्रीं ध्रीं ह्भ्रीं त्रीं मों ? श्रीं क्रीं चतुःपञ्चाशदोर्मण्डलविराजिते हरिहरविरिञ्चिसभाजिते शोणितार्णवमज्जनोन्मज्जनप्रिये जगज्जननि जग-दाश्रये शिवविष्णुपदरूपमिहासनाधिरूढे स्हक्ष्म्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्ल म्लव्य्रईं स्हकह्ललह्रीं सक्लह्लकह्रीं सक्लह्रीं ष्लक्ष्थ्लह्क्षह्रीं ठ्लत्रख्फ्छ्रीं ज्लूह्क्षछ्रय्रह्स्ख्फ्रीं जय जय जीव जीव ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल अचिन्त्यप्रभावे अमितबलपराक्रमे अगणेयगुणगणे अजिते अमिते अपराजिते अलक्षिते अद्वैते श्लीं ह्लीं प्लीं ज्लीं थ्रीं क्लीं ग्लीं ब्लीं फ्लीं महामाये महाविद्ये महाविद्ये भगमालिनि भगप्रिये भगाङ्किते भगरूपिणि भगवति महाकामातुरे महाकालप्रिये प्रचण्डकलेवरे विकटोत्कटदंष्ट्रारौद्ररूपिणि स्हक्षम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्ष-म्लव्य्रईं ऊं क्षस्हम्लव्य्रईं ऊं क्षर्हम्लव्य्रईं ऊं फ्लक्षह्लस्हव्य्रऊं द्लड्क्षवल्र ह्स्ख्फ्रीं प्लूह्क्ष्मभ्रह्रच्रूं व्योमकेशि लोलजिह्वे सहस्रद्वयकरचरणे सहस्रत्रयनेत्रे महामांसरुधिरप्रिये महाघूर्णितलोचने महामारि खर्परहस्ते महाशङ्खसमाकुले सदार्द्रनारचर्मावृतशरीरे लक्ष्ूं ह्लक्षूं फ्लक्षूं स्फ्लूक्ष्ूं र्फ्लां र्फ्लीं र्फ्लूं र्फ्लैं र्फ्लौं विश्वकर्त्रि विश्वव्यापिके विश्वजननि विश्वेश्वरि विश्वाधारे विश्व-संहारिणि कुलाकुलसमुद्धृतपरमानन्दरससामरस्यप्रतिष्ठिते संहारिणि विहारिणि प्रहारिणि दैत्यमारिणि नरनारीविमोहिनि खड्गाञ्जनपादुकाधातु-वादगुटिकायक्षिणीसिद्धिप्रदे स्हक्ष्मह्लक्षग्ली ग्लरक्षफ्रथर्क्ली म्क्षक्रस्हख्फ्छ्रूं क्षक्ष्क्लफ्रच्क्षक्षौं मलूह्क्षग्लव्रीं सकह्ललम्क्षखव्रूं मह्लूक्षग्लक्लीं क्ष्लूह्क्ष्म्लक्लीं र्लूह्क्ष्क्लस्ह्फ्रईं रक्तसमुद्रवासिनि प्रज्वलितपावक-ज्वालजालजटालाष्टमुण्डत्रिशूलाङ्किते श्मशानकृतवासे षोडशद्वादशाष्टदल-सरसीरुहवद्धपद्मासने रोगदारिद्र्यबन्धुवियोगनरकार्तिनाशिनि द्वादश-कोटिब्रह्माण्डवर्तिभूतशिरःकिरीटनिघृष्टचरणयुगले ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं फ्रों फ्रौं स्फ्रों रफ्रौं क्षूं क्षौं ग्लूं ग्लौं ब्लूं ब्लौं ध्रौं क्रैं क्रूं क्षम्लव्रसहस्हक्षवल स्त्रीं, मह्व्रऐं, स्हक्ष्लमह्लच्रूं, चरक्ष्लह्मह्लूं, भ्रसखग्रमऊं, क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्म्लव्य्रऊं, क्षह्म्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं, क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्लक्षव्य्रईं, क्षह्म्लव्य्रईं क्षम्हम्लव्य्रईं, क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षह्म्लव्य्रईऊं, क्षर्हम्लव्य्रई ऊं क्षस्हम्लव्य्रई ऊं, महामन्त्रमयशरीरे सर्वागमतत्त्वरूपे हं हं हं हां हुं हुं हुं हूं ब्लीं ब्लीं ब्लीं क्लं क्लं स्त्रीं स्त्रीं फट् फट् नमः स्वाहा ।

३२—विष्णूपास्यायुताक्षर मन्त्रः (३।२२६-३८८)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें स्हौं क्री क्षौं क्षह्लम्ल-व्य्रऊं जय जय जय भगवति गुह्यकालि कात्यायनि सिद्धि करालि कापालि शव

वाहिनि सकलसुरतमनोरञ्जनि दैत्यदानवदर्पभञ्जनि दशवदनधारिणि नृमुण्डमालाधारिणि सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि नररुधिरवसामांसमस्तिष्कान्त्रपरिपूरितकपाले विकटरावे घोररूपे कटकटायमानदशनपङ्क्तिप्रकटदंष्ट्राभयङ्करि वद्धनारान्त्रयोगपट्टभूषिते योगिनीभैरवीडाकिनीशाकिनीचामुण्डाशक्तिभूतवेतालप्रेतपिशाचविनायकस्कन्दजृम्भकदैत्यदानवयक्षराक्षसगन्धर्वगुह्यकघोणकक्षेत्रपालभैरवकूष्माण्डबटुकसिद्धखेचरादिनवतिमहापद्मसमाजभासुरे त्रिशूलखड्गखेटकखट्वाङ्गपरिघगदाचक्रभुशुण्डीतोमरप्रासपट्टिशभिन्दिपालपरशुशक्तिवज्रपाशाङ्कुशशङ्खनागशिवापोताक्षमालामुण्डगृद्धशैलनकुलायितकुण्डवराभयव्यापृतकर्कशभुजदण्डे ब्रह्मविष्णुमहादेवेन्द्रचन्द्रवायुवरुणकुवेरपावकेशाननिर्ऋतिसिद्धविद्याधरगन्धर्वकिन्नरोरगविभावनीयचरणकमलयुगले नियुतकरचरणे सर्वेश्वरि सर्वदुष्टक्षयङ्करि सर्वदेवमहेश्वरि पञ्चकोटिनियुतप्रहरणायुधे अचिन्त्यप्रभावे अमितबलपराक्रमे अगणेयगुणगणे असङ्ख्यमहिमविभवे अजिते अमिते अपराजिते अलक्षिते अद्वैते अनन्ते अव्यक्ते अदृश्ये अग्राह्ये अतीन्द्रिये अपारे उग्रचण्डे प्रचण्डोग्रतरे श्मशानचारिणि ब्रह्माणि नारायणि शाङ्करि ऐन्द्रि कौमारि वाराहि नारसिंहि चामुण्डे भैरवि आग्नेयि ऐशानि वारुणि कौवेरि वायव्ये शोणितार्णवमज्जनोन्मज्जनप्रिये जगज्जननि जगदाश्रये जगत्कारिणि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल जय जय जीव जीव क्षह्म्लव्य्रऊं क्ष्रौं क्रीं स्हौं ह्स्ख्फ्रें ह्स्फ्रें ख्फ्रें फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ओं शिवविष्णुरूपसिंहासनाधिरूढे ग्रहनक्षत्रोत्पातभूतोन्मादावेशभयविनाशिनि त्रैकालिकानि मम पातकोपपातकानि पातकमहापातकानि शमय शमय प्रशमय प्रशमय नाशय नाशय विनाशय विनाशय पच पच हन हन विद्रावय विद्रावय विध्वंसय विध्वंसय भस्मीकुरु भस्मीकुरु निखिलदुरितविमोचिनि देवि देवि महादेवि महाघोरे महावामे महाजटाजूटभारे ज्ञानबुद्धिमानलक्ष्मीकविरवराज्यप्रदे क्रों ह्रौं हूं स्फ्रों ग्लूं क्लूं जूं ख्रौं ठ्रीं प्रीं थ्रीं ह्भ्रीं ज्रौं सफलक्षूं ध्रीं क्रैं ब्लूं ध्रीं द्रैं हूं छ्रीं ह्लीं स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि मम शत्रून् बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय भक्ष भक्ष भक्षय भक्षय नाशय नाशय उच्चाटय उच्चाटय हन हन त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि पच पच मथ मथ विद्रावय विद्रावय मारय मारय दम दम निवारय निवारय स्तम्भय स्तम्भय मर्दय मर्दय शोषय शोषय पातय पातय खादय खादय हर हर धम धम उद्वासय उद्वासय मोहय मोहय क्षोभय क्षोभय छिन्धि छिन्धि त्रासय त्रासय मुट मुट उन्मूलयोन्मूलय जृम्भय जृम्भय स्फोटय स्फोटय विक्षोभय विक्षोभय तुरु तुरु हिलि हिलि किलि किलि चल चल चालय चालय चिन्तय चिन्तय स्मर स्मर उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ पश्य पश्य दक्षिणकालि भद्रकालि श्मशानकालि कालकालि गुह्यकालि कामकलाकालि धनकालि सिद्धिकालि चण्डकालि महालक्ष्मि मातङ्गि राजमातङ्गि भुवनेश्वरि वागीश्वरि उच्छिष्टचाण्डालि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे भैरवि चाण्डालिनि अश्वारूढे भोगवति त्रिपुटे त्वरिते

शूलिनि वनदुर्गे जयदुर्गे वज्रप्रस्तारिणि सिद्धिलक्ष्मि राज्यलक्ष्मि जयलक्ष्मि पद्मावति कालसङ्कर्षिणि कुब्जिके अन्नपूर्णे कुक्कुटि धनदे शबरेश्वरि किराते बाले त्रिपुरभैरवि त्रिपुरसुन्दरि नीलसरस्वति सरस्वति छिन्नमस्ते छिन्ननासे नीलपताके चण्डघण्टे चण्डेश्वरि चामुण्डे बगले हरसिद्धे फेत्कारिणि मृत्युहारिणि नाकुलि लवणेश्वरि नित्याषोडशि जये विजये अघोरे अरुन्धति सावित्रि गायत्रि विश्वरूपे बहुरूपे विकटरूपे अरूपे महामायारूपे महाविद्ये महाऽविद्ये भगमालिनि भगप्रिये भगाङ्किते भगरूपिणि भगवति महाकामातुरे महाकालप्रिये प्रचण्डकलेवरे विकटोत्कटदंष्ट्रारौद्ररूपिणि व्योमकेशि लोलजिह्वे सहस्रद्वयकरचरणे सहस्रत्रयनेत्रे महामांसरुधिरप्रिये मदविघूर्णितलोचने महामारिखर्परहस्ते शोणिताशनि महाशङ्खसमाकुले सदार्द्रनारचर्मावृतशरीरे ओं ओं ओं ओं ओं फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्री स्त्री स्त्रीं स्त्री स्त्रीं फ्रें फ्रे खफ्रें पुनरेतेषाम् ओङ्कारपर्यन्तानां बीजानाम् प्रतिलोम्ना पाठो विधेयोऽत्र। ततश्चाग्रे—
हसखफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें ह्लक्षम्लव्रयूं ह्लक्षम्लव्रयूं ह्लक्षम्लव्रयूं ह्क्लक्षम्लश्रूं ह्क्लक्षम्लश्रूं रक्षरजक्ष्मक्ष्मरह्म्ल्व्य्रछ्रीं विश्वकर्त्रि विश्वव्यापिके विश्वजननि विश्वेश्वरि विश्वाधारे विश्वसंहारिणि कुलाकुलसमुद्भूतपरमानन्दरससामरस्यप्रतिष्ठिते सर्वदुष्टान् चूर्णय चूर्णय चूर्णापय चूर्णापय हस हस कह कह कर कर मार मार भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि दह दह चालय चालय मुखे प्रवेशय प्रवेशय किरि किरि किलि किलि कुरु कुरु तुरु तुरु किचि किचि कट कट ग्रस ग्रस घातय घातय मोटय मोटय भञ्जय भञ्जय घूर्णापय घूर्णापय स्तोभय स्तोभय धर धर उद्गिर उद्गिर वम वम भिलि भिलि विचि विचि भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय मूर्च्छापय मूर्च्छापय आं ईं ऊं ऐं औं अं फट् फट् फट् फट् फट् वषट् वषट् वषट् वषट् वषट् ठः ठः ठः ठः ठः फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रैं फ्रौं फ्रः मम सर्वाभीष्टसिद्धिं दद दद देहि देहि दापय दापय निष्पादय निष्पादय पूरय पूरय दीपय दीपय चेतय चेतय आनन्दय आनन्दय धेहि धेहि निधेहि निधेहि विभावय विभावय योजय योजय संहारिणि विहारिणि प्रहारिणि दितिजमारिणि ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं कामवेगाकुले स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं स्त्रैं स्त्रौं सुरतातुरे श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं मदनोन्मादिनि क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं नरनारी विमोहिनि खड्गाञ्जनपादुकाधातुवादगुटिकायक्षिण्याद्यष्टमहासिद्धी रचय

रचय विरचय विरचय पूरय पूरय प्रपूरय प्रपूरय अनुकम्पां वितर वितर कृपाकटाक्षं मयि मुञ्च मुञ्च दिश दिश विदिश विदिश प्रेरय प्रेरय पोषय पोषय तुष्य तुष्य रक्तसमुद्रवासिनि प्रज्वलितपावकज्वालजालजटालाष्टमुण्डाष्टत्रिशूलाङ्किते श्मशानकृतवासे षोडशद्वादशाष्टदलसरसिरुहवद्धपद्मासने ब्रह्मविष्णुशिवादित्रयस्त्रिंशत्कोटिविबुधाष्टचत्वारिंशत्कोटिदैत्यदानवाविज्ञातागणितामितप्रभावे दारिद्र्यबन्धुवियोगत्रिविधोत्पातकालग्रहोपसर्गराजचौररिपुदावाग्निशस्त्रास्त्रपातकेशरिशार्दूलशरभमहिषवराहफेरवरासभमातङ्गवृकविपिनजन्तुभुजङ्गमसागरावर्तदस्युचतुरशीतिज्वरशोथशूलाद्यसाध्यरोगमहामारिदुःस्वप्नग्रहपीड़ाविषापरिषाभिचारविश्वासघातकदुष्टवञ्चकप्रवंस्वहारकमायाविन्यासापहारिवृषलनष्टभूपालकलहकारकागरदान् दोर्दण्डायुतेन उद्वासय उद्वासय महाङ्कुशेन विघट्टय विघट्टय भयङ्करशङ्ख रवेण उत्फालय उत्फालय क्रोधावेशेन धूनय धूनय विधूनय विधूनय वज्राधिककठोरतरचपेटघातेन लोठय लोठय विलोठय विलोठय मुष्टिप्रहारेण तुद तुद करतालिकया नुद नुद खड्गेन भञ्ज भञ्ज त्रिशूलेन कृन्त कृन्त चक्रेण विश्लेषय विश्लेषय दण्डेन शमय शमय प्रशमय प्रशमय वज्रेण किचि किचि कुन्तेन फेरु फेरु गदया पोथय पोथय विपोथय विपोथय तोमरेण प्राणान् परिघातय परिघातय भिन्दिपालेन किचि किचि शक्त्या खण्डय खण्डय विखण्डय विखण्डय कटकटायमानरसनया चर्वय चर्वय मुसलेन पिष पिष नागपाशेन वेष्टय वेष्टय परशुना क्षिप क्षिप प्रक्षिप प्रक्षिप प्रासेन लम्भ लम्भ प्रलम्भय प्रलम्भय कुन्तेन मर्माणि पाटय पाटय विपाटय विपाटय पट्टिशेन तिलशो व्यधम व्यधम अयोगुडेन उड्डापय उड्डापय हुलया स्फोटय स्फोटय प्रस्फोटय प्रस्फोटय वध वध बन्ध बन्ध मोहय मोहय विमोहय विमोहय मूर्च्छय मूर्छय मूर्च्छापय मूर्च्छापय द्वादशकोटिब्रह्माण्डोदरवर्तिभूतशिरःकिरीटकोटिमणिमयशेखरनिघृष्टचरणकमलयुगले खेचरभूचरवारिचरपातालचररोदसीचरानन्तशक्तिनिवहानन्दिते त्रिलोकीवन्दिते सपुत्रकलत्रपरिवारं मां रक्ष रक्ष पाहि पाहि पालय पालय पावय पावय वर्धय वर्धय आनन्दय आनन्दय आह्लादय आह्लादय साधय साधय प्रसाधय प्रसाधय पूरय पूरय प्रपूरय प्रपूरय भूषय भूषय विभूषय विभूषय हर्षय हर्षय प्रहर्षय प्रहर्षय मोदय मोदय प्रमोदय प्रमोदय एकं कां द्वे चां त्रीणि टां चत्वारि तां पञ्च पां षट् खीं सप्त छीं अष्टौ ठीं नव थीं दश फीं एकादश गूं द्वादश जूं त्रयोदश डूं चतुर्दश दूं पञ्चदश बूं षोडश घैं सप्तदश झैं अष्टादश ढैं एकोनविंशति धैं विंशति भैं एकविंशति ङौं द्वाविंशति ञौं त्रयोविंशति णौं चतुर्विंशति नौं पञ्चविंशति मौं षड्विंशति यं सप्तविंशति रं अष्टाविंशति लं एकोनत्रिंशत् वं त्रिंशत् शं एकत्रिंशत् षं द्वात्रिंशत् सं त्रयस्त्रिंशत् हं चतुस्त्रिंशत् लः पञ्चत्रिंशत् क्षः इति बीजानि देयानि (६३० बीजानि भवन्ति)

मूर्तिभेदे विभिन्नपञ्चाशल्लिपिक्रमसङ्कलिते वर्णमयदेवतास्वरूपिणि ओं ग्लूं

फ्रें ब्लैं भ्यौं म्रूं ✕ (पिच्छा) क्वीं ब्जौं द्रूं श्लौं ज्लूं फ्यूं स्हौः ✕ (द्रोहः) ब्लूं स्कीं हूं भ्री क्ष्रूं ✕ (मीनम्) स्हें सौः डों (ठौं) व्रूं ज्वैं श्रीं क्रों स्फ्रों फ्रों डों म्लीं घ्रीं ख्रैं ल्यूं णूं क्ष्लौं फ्लीं हैं पुनरेतेषामष्टत्रिंशद्बीजानां प्रतिलोमेन पाठोऽत्र विधेयः, पुनरिहायुग्मबीजानामुच्चारणं कार्यम्

ह्रौं आं सौः क्ष्रौं नमः जूं म्रैं ग्लनीं फ्रौं छ्रूं ग्लीं ज्वां ह्लक्षम्लव्यूं हसखफ्रें हसफ्रें खफ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं क्लीं श्री क्रीं ग्लूं क्रों ब्लूं हौं ठ्रीं प्रीं थ्रीं ध्री क्लौं ✕ ✕ (कन्धरी) ग्लूं ब्लौं ऐं फ्रें ओं पुनरेतेषां प्रतिलोमेन पाठो विधेयः पश्चात् युग्मबीजं विहायायुग्मबीजानां पाठोऽपि विधेयः पुनः ब्रध्नवीजं क्षः इत्यारभ्य कां बीजं यावत् षट्सप्ततिबीजेषूर्ध्वनिर्दिष्टेषु युग्मबीजानां परिग्रहं कृत्वा पठनीयम् युग्मानां च त्यागो विधेय इति

मेरुगह्वरविनिष्क्रान्तपञ्चसप्ततिवीजवर्णावलीसंकलिते व्यपकलितपञ्चाशल्लिपिबीजव्यपकलितसृष्टिसंहारमन्त्रक्रमरूपधारिणि सर्वमन्त्रात्मिके सर्वयन्त्रात्मिके सर्वतन्त्रात्मिके स्वेच्छाकारिणि स्वेच्छाचारिणि स्वेच्छारूपधारिणि ब्रह्मप्राजापत्यद्रौहिणहिरण्यगर्भनारायणवैष्णवसौदर्शनत्रैविक्रमाग्नेयज्वालप्राकम्पनैन्द्रानलयाम्यनैर्ऋतवारुणवायव्यकौवेरैशानपारमेष्ठ्यानन्तकालभौतपार्जन्यवैद्युतवारिवाहेयपार्वतपाषाणनागसौपर्णकालक वैश्वदेवत्वाष्ट्रतामसतैमिरप्रस्वापनमातङ्गजम्भकैपीकदानवजृम्भणगान्धर्वपैशाचोदुम्बरराक्षससौरचान्द्रचाक्रहैमनशावरभारुण्डब्रह्मब्रह्मशिरःगुह्यकङ्कालकूटवेतालसारभार्क्षवेतालराजस - वैनायकस्कान्दप्रामथगाणोत्पातज्वरमोच्छनकूष्माण्डभ्रामरमाकरांङ्गाननास्तम्भनसम्मोहनबलातिबलनैमिलनस्वाप्नचेतनोन्माद [शापापस्मारान्] सापास्मारान् मारणोच्चाटनभैरवचामुण्डाडाकिनीयोगिनीनारसिंहवाराहशार्दूलमाहिषफैरवपाशुपताद्यूनत्रिंशत्कोटिमहास्त्रसन्धानकारिणि फट् फट् फट् पूर्वमुद्धृतस्यैकवारं भोगविद्यामन्त्रस्य, नववारं शताक्षरमन्त्रस्य, नववारं हिरण्यकशिपूपास्यषोडशाक्षरमन्त्रस्य, नववारं ब्रह्मवसिष्ठरामोपास्यानां सप्तदशाक्षरमन्त्राणां, नववारं विष्णुतत्त्वस्य, अम्बाहृदयस्य महाषोडश्याः पुनर्वारद्वयं जयमङ्गलामन्त्रस्य रावणोपास्यषड्त्रिंशदर्णमन्त्रस्य द्व्यक्षरमन्त्रस्य चोच्चारणं कृत्वा दक्षोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रस्य भरतोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रस्य च षडावृत्तिः कार्या पुनरग्रे—ओं सकलमन्त्रस्वरूपिणि मनोवागगोचरे गुह्यकालि फ्रें फ्रें फ्रें छ्रीं छ्रीं छ्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं फट् फट् फट् नमः स्वाहा । इति

२३—शिवोपास्यायुताक्षरमन्त्रः (३।४९२-११९४ श्लो०)

ऐं ऐं ऐं जय जय गुह्यकालि सिद्धि करालि ओं ओं ओं कालि कपालि विकरालि ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें मुण्डमालिनि त्रिशूलिनि महाबलिनि श्रीं क्लीं क्रों क्रीं आं कात्यायनि शववाहिनि सृष्टिस्थितिकारिणि क्रौं क्ष्रूं ह्रौं क्ष्रौं ईं भगवति चामुण्डे नरकङ्कलधारिणि क्रां फ्रों क्रूं क्रैं फ्रौं स्फ्रों क्रं नवपञ्चचक्रवासिनि महाट्टहासिनि व्रध्रों श्रं जूं क्ष्रूं क्रः स्हौं सः स्हौः क्लों श्मशानवासिनि महाघोरे फ्रें

ग्लूं क्ष्रौं क्रैं ज्र्यूं ब्लूं ब्लीं ग्लां ग्लीं क्लां ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवपञ्च-प्रेताधिरूढे प्रीं ठ्रीं त्रीं क्ष्रौः क्रौं श्रौं ग्लौं वलूं ब्लां जगज्जननि जगदाश्रये जगत्-संहारिणि फ्रौं श्रीं श्रीं ध्रीं ख्रैं क्लैं क्रीं ठौं त्रीं द्रीं वूं डाकिनीभूतवेतालप्रेत-भैरवीमध्यचारिणि श्रीं ग्लैं ब्लैं फ्लीं क्रीं ज्रां क्ष्रूः ज्रीं ड्रीं, ज्रं ज्रीं दुर्गे दैत्यान् [दैत्यानां] मर्दिनि भद्रे क्षेमङ्करि ढ्रीं लीं ज्रैं ज्रौं ढें र्क्रीं क्रूं गं गां गूं गौं कुलाकुलसमयचक्रप्रवर्तिनि महामारीनिवर्तिनि क्लौं ख्लैं घ्रीं म्रां म्रें म्रूं ब्जें ब्जूं ब्जीं प्लूं स्हें द्रैं हूं भ्रीं सर्वागमतत्त्वस्वरूपिणि लेलिहानरसनाकरालिनि द्रूं ह्लौं ल्यूं ब्नैं क्वीं फ्रैं क्षां क्षीं फ्रां फ्रूं घ्रूं ह्लौं स्कीं चतुर्वेदावेद्यानुभाव-विमोहितास्त्रैगुणितत्रिदेवे स्ह्क्लह्रीं र्क्रां र्फ्रां र्च्रां र्ज्रां·····, (येष्ठी ?) र्क्रीं र्फ्रीं र्छ्रीं र्ज्रीं र्क्ष्रीं र्प्रीं रक्तार्णवद्वीपप्रज्वलत्पावकशिखान्तश्चारिणि महादुःखपाषौघहारिणि [रश्रीं ···· ?] [शिखामहा ?] च्रां च्रीं च्रूं च्रैं च्रौं ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं स्रां स्रीं स्रूं स्रैं स्रौं बृहल्लम्बमानोदरि महाचण्ड-योगेश्वरि अपमृत्युहरि विश्वेश्वरि ब्लौं सौः त्रीं ट्रीं हूः स्हीं श्लां स्कीः फीं फूं फैं द्रौं ल्रां श्लीं नवकोटिकुलाकुलचक्रेश्वरि सकलगुह्यानन्ततत्त्वधारिणि महामारीप्रवर्तिनि ह्लूः ल्रूं ल्रूं श्लूं रां रीं रूं रैं रौं ह्लैं श्लैं ह्लूं श्लौं हां चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि प्रज्वलज्ज्वललोचने वज्रनखदंष्ट्रायुधे दुर्निरीक्ष्याकारे यलां क्लां ज्लां ज्लां ज्लां ज्लां ज्लां ज्लां ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रूं प्रूं प्रूं प्रूं श्रीं श्रीं श्रां श्रां श्रां श्रां श्रां परापरसामरस्यरसमोहिनि परमशिव-निवासिनि विकरालवेशधारिणि ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें फ्यूं ज्क्रीं ब्लूं स्त्रैं स्त्रौं फ्लीं श्रैं श्रौं छ्रैं छ्रौं क्ष्र्ह्रीं क्ष्र्ह्लूं म्लीं म्लूं ब्लैं नरमुण्डमालालङ्कृते चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मे सप्तविंशतिनयने ग्लूनीं स्हैः ल्यूं छ्रां श्रां स्त्रां क्रां प्रां ह्लां र्फ्लां र्फ्लीं ह्ल्क्षूं म्लां म्लीं म्लूं भ्रां ग्रीं दिगम्बरि सकलमन्त्र-तन्त्राधिदैवते गुह्यातिगुह्यपरापरशक्तितत्त्वावतारे छ्रूं स्फ्ल्क्षूं र्क्षछ्रीं र्फ्लूं र्फ्लैं र्फ्लौं ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रैं ह्स्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रं ह्स्ख्फ्रः ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं कहलश्रौं कहलश्रूं फ्ल्क्षूं महाभोगि-राजभूषितभुजदण्डे मनोवागगोचरे प्रपञ्चातीते निष्कले तुरीयाकारे छ्रें क्षैं हैं ह्लें र्क्ष्श्रीं औं ख्फछ्रें कहलश्रां ह्लीः [ह्लं ?] ह्लः प्लीं प्लैं स्त्रीं स्त्रीं खफछ्रैं ख्फ्छ्रैं स्त्रीं श्रों क्ष्मरयूं ह्स्ख्फ्रिं ह्स्ख्फ्रुं महाखेचरीसिद्धिविधा-यिनि गगनग्रासिनि प्रबलजटाभारभासुरे वेदोपवेदमयसिंहासनाधिरूढे श्रौं श्रूं स्त्रें स्त्रों ख्फ्छ्रौं क्षरस्त्रौं कहलश्रें कहलश्रें लक्षूं म्लैं म्लैं क्षरस्त्रों चां पां पां भ्रैं भ्रैं छ्रं छ्रं क्षरस्त्रैं क्षरस्त्रां क्षरस्त्रीं कहलश्रं कहलश्रः घोराट्टहाससन्त्रासित-त्रिभुवने नवकोटिमालामन्त्रमयकलेवरे अतिविकरालातुरे ङूं श्रें ह्लूं श्रं र्ढ्रूं स्त्रं स्त्रं [क्ष्लप्रूं] क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं × [शिक्षा ?] रह्लें रह्लें रह्लें रह्लें रह्लें ह्लैं हीं हीं कल्पान्तकालप्रकाशिततमोगुणे महारुद्रशरीर-सङ्क्रामितनिजवैभवे समुन्मूलितप्रणतनानाभवे अभवे च्रीं रक्ष्रां ह्लैं च्रूं च्रैं च्रां क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रूं सफहलक्षां [क्लौं] र्प्रौं च्रौं म्लां रक्ष्रीं कहलश्रीं क्ष्लफ्लओं

सफह्लक्षीं सफहलक्षौं रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लरक्षह्लूं ह्लफ्रकह्लीं हसफ्रूं रक्षफछ्रीं रक्षफछ्रूं वीरघण्टाकिङ्किणि डमरुनिनादितेऽपरिमितकायवलपराक्रमे चण्डातिचण्डकाण्डखण्डितदानवराक्षसदितिजसमूहे विगतमोहे डां डीं डूं डैं डौं वः रस्फ्रौं ह्सफ्रां ह्सफ्रीं ख्फ्रैं रम्लव्रीं ह्लक्षम्लक्र्यूं स्हजहलक्षम्लवनऊं ओंश्रेंक्लीं यम्लव्रीं ठः क्लं क्षः डौं फ्रों सग्लक्षमहरह्लूं ब्लक्षमकह्लव्यईं रजभ्र्ग्श्रीं रजभ्ररक्ष्रूं लक्षमह्ल जरक्र्व्यऊं शुद्धविद्यासंप्रदायसिद्धशुद्धचैतन्यस्वरूपे प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणसाक्षिणि त्रिलोकीरक्षिणि ब्रह्मरन्ध्रविनिविष्टसदाशिवैकरसतासिन्धुमज्जनोन्मज्जनप्रिये सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासादिवहुविधभेदप्रकाशिनि कां कीं कूं कैं कौं रक्रां रक्रीं रक्रूं रक्रैं रक्रौं ह्लक्षम्लीं ह्लक्षम्लव्रयूं क्वलह्लभ्रकह्लनसक्लईं डम्लव्रीं क्म्लव्रीं रच्रां रच्रीं रच्रूं रच्रैं रच्रौं खफसहलक्षूं हस्लक्षकमह्लव्रूं ह्लक्षम्लफ्रयूं क्षमब्लहकयह्लीं क्लक्षसहमव्यऊं रक्रें रक्रों भगमालिनि भगप्रिये भगातुरे भगाङ्किते भगरूपिणि भगलिङ्गद्राविणि कालचक्रनरसिंहसुरतरसलोलुपे व्योमकेशि पिङ्गकेशि नियुतवक्त्रकरचरणे त्रिलोकीशरणे रभ्र्रां रभ्र्गीं रभ्र्रूं रभ्र्रैं रभ्र्गौं हं लः अं चां छां जां भ्रां ञां रह्लैं रह्लौं ह्लक्षकमह्लसव्यऊं रजहलक्षमऊं क्षम्ल ब्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं ह्क्लह्लवडकखऐं यंरक्षह्लभ्रध्रम्लऊं वम्लव्री रक्षभ्रम्लऊं सम्लव्रीं लम्लवीं इं उं दीर्घदंष्ट्राचूर्णितमृतब्रह्मकपाले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले देहप्रभाजितमेघजाले त्रयस्त्रिंशत्कोटिमहादिव्यास्त्रमन्धानकारिणि महाशङ्खसमाकुले खर्परविस्रस्तहस्ते रक्तद्वीपप्रिये मदनोन्मादिनि महोन्मादवंशीवादिनि टां टीं टूं टैं टौं रख्रां रख्रीं रख्रूं रख्रैं रख्रौं रक्लां रक्लीं रक्लूं रक्लैं रक्लौं कसवहलक्षमऔं सहटलक्षह्लमक्रीं सकह्ललमक्षखव्रूं व्रकम्लव्लक्लऊं लक्षमह्लजरक्र्व्यईं ह्लसहकमक्षव्रऐं क्ष्लह्लमव्यऊं सलहक्षह्लूं हम्लव्रीं ग्लहक्षफ्रूं ह्लक्षम्लभ्र्ग्यूं ह्लक्षग्लयूं ह्लक्षम्लह्ल्यूं ह्लक्षम्लस्रयूं खड्गखेटकखर्परखट्वाङ्गचक्रचापशूलपरिघमुद्गरभुशुण्डीपरशुगदाशक्तितोमरप्रासभिन्दिपालकर्त्रिकुणपहुलाकुन्तपट्टिशादियावदस्त्रशस्त्रधारिणि तां तीं तूं तैं तौं रग्रां रग्रीं रग्रूं रग्रैं [रग्रौं ?] रक्षफ्र रक्षफ्रभ्रध्रम्लऊं रक्षस्रभ्रध्रम्लऊं रक्षक्रभ्रध्रम्लऊं रक्षभ्र्रभ्रध्रम्लऊं रक्षब्रभ्रध्रम्लऊं ह्ललक्षमहम्लूं लक्षह्लमकसहव्यऊं महव्यऐं फ्रम्रग्लऊं रक्षम्लह्लकसछव्यऊं रट्रां रट्रीं रट्रूं रट्रैं रट्रौं क्षमक्लह्लहसव्यऊं क्षब्लीं स्हलकह्लक्ष्रूं क्षग्लीं लह्लकक्षमस्हव्यऐं रक्षम्रध्रयम्लऊं शुष्कनरकपालमालाभरणे विद्युत्कोटिसमप्रभे ऊर्ध्वकेशि विद्युत्केशि शवमांसखण्डकवलिनि महानादाट्टाट्टहासिनि वमदग्निमुखि फेरुकोटिपरिवृते चर्चरीकरतालिकात्रासितोद्यन्त्रिभुवने नृत्यनिहितपादाघातपरिवर्तितभूवलयधारिणि भुग्नीकृतकमठशेषभोगे पां पीं पूं पैं पौं रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं रलक्षध्रम्लऊं स्हक्षनमह्लज्रूं सक्ष्लहमयव्रूं रमखय्रमूं कहफ्लमह्लव्यऊं ह्क्लक्षम्लश्रूं [?] सहक्लरक्षमजह्लखफरयूं क्षक्लीं ह्लहलव्यकऊं मह्लक्ष्लव्यऊं क्षम्लीं म्लक्षक्रसहह्लूं रक्षरजक्ष्मक्ष्मरह्लम्लव्यछ्रीं क्षहलीं खफछ्रेव्रह्लक्षमक्र्ग्यीं रजक्षमब्लह्लूं क्षक्लूं हसफ्रैं हसफ्रौं रभ्रैं रख्रैं रग्रैं वसामेदोमांसशोणितभोजिनि

कुरुकुल्ले कृष्णतुण्डि रक्तमुण्डि चण्डे शवरि पीवरे रक्षिके भक्षिके यमघण्टे चर्चिके दैत्यासुरयक्षराक्षसदानवकूष्माण्डप्रेतभूतडाकिनीविनायकस्कन्दघोणक- क्षेत्रपालपिशाचब्रह्मराक्षसवेतालगुह्यकसर्पनागग्रहनक्षत्रोत्पातचौराग्निश्वापदयुद्ध - वज्रोपलाशनिवर्षविद्युन्मेघविषोपविषकपटकृत्याभिचारविद्वेषणवशीकरणोच्चाट- नोन्मादापस्मारभूतप्रेतपिशाचावेशनदनदीसमुद्रावर्तकान्तारघोरान्धकारमहामारी- बालग्रहहिंसकसर्वस्वापहारिमायाविद्युत्दस्युवञ्चकदिवाचररात्रिञ्चरसन्ध्याचरशृङ्- गिनखिदंष्ट्रि.वैद्युदुल्कारण्यदवप्रान्तरादिनानाविधमहोपद्रवप्रभञ्जनि सर्व- मन्त्रतन्त्रयन्त्रकुप्रयोगप्रमर्दिनि सर्वबन्धदुःखप्रमोचिनि सर्वाहितनिकृन्तनि षडाम्नायसमयप्रकाशिनि परमशिवपर्यङ्कनिवासिनि प्रज्वलत्पावक- ज्वालाजालातिभीषणश्मशानविहारिणि अचिन्त्यामितागणेयप्रभावबल- पराक्रमगुणवशीकृतकोटिब्रह्माण्डवर्तिभूतसङ्घे विराड्रूपिणि सर्वदेवमहेश्वरि सर्वजनमनोरञ्जनि सर्वपापप्रणाशिनि आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकादि विविधहृदयाधिनिर्दलिनि नियुतप्रचण्डदोर्वलिनि कैवल्यनिर्माणनलिनि गौरि अरूपे विरूपे विश्वरूपे अं औं एं ऊं सिद्धिविद्ये महाविद्ये खां छां ठां थां फां अजिते अलक्षिते अमिते अद्वैते अपराजिते अप्रतिहते अगोचरे अव्यक्ते गां जां डां दां बां भद्रे सुभद्रे किराति मातङ्गि चाण्डालि घां झां ढां धां भां द्राविणि द्रविणि भ्रामरि भ्रमरि ङां ञां णां नां मां उल्कापुञ्जिनि वेतण्डभण्डिनि कं खं [गं ?] घं ङं अनङ्गमालिनि अनङ्गवेगाकुले अनङ्गप्रिये किं खिं गिं घिं ङिं इन्द्रोपेन्द्रजननि मृत्युञ्जयगृहिणि खीं गीं घीं ङीं सावित्रि गायत्रि महित्रि सवित्रि कुं खुं गुं घुं ङुं सरस्वति मेधे लक्ष्मि विभूतिप्रदे खूं घूं कामप्रदे कामाङ्कुशे कामदुग्धे कामस्रवे कें खें गें घें ङें कुमारि युवति वृद्धे खैं गैं घैं ङैं कात्यायनि ईश्वरि महारात्रिसन्ध्ये, महानिशि कों खों गों घों अध्वर्युकरङ्किणि करङ्कधारिणि कलङ्किनि खौं गौं घौं ङौं मायूरि कुक्कुटि नारसिंहि शान्तिस्वस्तिपुष्टिवर्धनि यां लां वां शां षां सां गङ्गे यमुने सरस्वति गोदावरि नर्मदे कावेरि कौशिकि चिं टिं तिं पिं छिं ठिं थिं तें क्षें भें फैं बैं भैं मैं सन्तानप्रदे सन्तानमालाभागिणि जिं ढीं कैं बिं सां छैं फिं क्षिं भिं कौलाचारव्रतिनि कौलाचारकुट्टिनि कुलधर्मरक्षिके जें बें ढें भें तें रें णिं सिं ढिं विश्वम्भरेऽचले प्रचण्डदयिते पशुपतिमहिते शचि शबरि सन्ध्ये सों यिं मिं निं रिं छीं लिं विं शिं षिं सिं हिं जगत्कारणकारिणि ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्र- भगिनि ढीं जीं चुं त्रें धूं णीं छुं टें भीं ठें नें महारौद्रि रुद्रावतारे रुद्राविणि द्रविणि द्राविणि जीं, ठिं थीं दीं यें णें जैं ठीं फीं थें भैं ञीं नीं दें सङ्कल्पिनि विकल्पिनि प्रपञ्चप्रकल्पिनि बीं शूं जुं षूं भों मीं लें भीं सूं षीं पें में थें णें ढें अबीजे नानावीजे जगद्वीजे बीजार्णवे सर्वबीजमयि चं छं जं झं ञं तों थों दों धों नों यीं रीं लीं वीं शीं अमूर्ते विमूर्ते नानामूर्ते मूर्त्यतीते सकलमूर्तिधरे डुं ढं षें शें दें सूं टं नां खिं डं ढं णं फों पों बों भों यों रों लों वों शों षों सों फैं. क्षौं महामाये मायातीते मायिनि मायामोहिनि भुं ठुं णुं तुं टुं तं तं तं तं तं षें षें षें

धैं नैं दुं थुं लं लं लं लं लं लं लं योगेश्वरि योगैकगम्ये योगातीते चण्डातिचण्ड-महाचण्डयोगेश्वरि चण्डिके धुं धुं भुं भुं शूं शूं शूं शूं शूं पं पं पं पं पं भ्रूं भ्रूं फौं फौं बूं बूं रूं रूं चौं चौं चौं चौं चौं कालेश्वरि कालवञ्चनि कालातीते काला-तिकालमहाकालीश्वरि टौं पुं ढूं थूं णूं दुं ठूं फूं ठों ठों ठों ठों छौं छौं छौं छौं ब्रह्माण्डेश्वरि ब्रह्माण्डकलेवरे कोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि फुं बुं थौं थौं थौं थौं ठौं ढौं णौं युं रूं लुं वुं मूं यूं ञ्नों पें नूं सर्वेश्वये सर्वेश्वरैकगम्ये सर्वैश्वर्यदायिनि सर्वसर्वेश्वरि ठीं षौं सौं भौं शौं लौं रौं यौं वौं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं रश्रीं रह्रीं रक्लीं रश्रीं रह्रूं रस्त्रौं रघ्रों रघ्रौं क्ष्लह्क्षभ्रूं धूमकालि ओंह्क्षम्लछ्व्य्रऊं रघ्रीं रघ्रौं रच्रें रठ्रें रघ्रूं रभ्ररों रठ्रों रथ्रां फट् नमः स्वाहा रघ्रां रर्चां रछ्रें रज्रें रभ्रूं रढ्रें छ्ररक्षह्रौं ग्लफक्षफक्ष्रीं क्षप्लीं जयकालि जय जय जीव जीव छ्ररक्षह्रां ड्रौं रज्रैं रघ्रूं रछ्रों रड्रां छ्ररक्षह्रीं ह्फ्रीं ह्फ्रीं फट् फट् फट् स्वाहा कह्लक्षछलक्क्षमऐं रह्क्षम्लव्य्र अखफछरत्रह्रीं क्षम्लूं क्षरह्रूं रह्छ्र-रक्षह्रां रघ्रें उग्रकालि रठ्रीं क्षख्रीं रणीं नमः स्वाहा रड्रूं रघ्रैं नें रध्रूं रश्रूं रप्रें रुस्त्रें लक्षां × रव्रीं ज्वालाकालि रद्रौं रज्रां रग्रूं फट् स्वाहा सवलह्रीं सफ्रक्षक्लयावछ्रीं सक्लह्रीं धनकालि स्वाहा रज्रौं खीं × (सान्निध्यम्) रठ्रां रड्रैं छ्ररक्षह्रैं घोरनादकालि लक्षीं रह्रछ्ररक्षह्रैं रक्ष्रैं क्षव्लूं नमः स्वाहा रठ्रौं रड्रें रठ्रूं रड्रीं रण्रों लीं किं रत्रां ग्ह्रैं रजभ्ररक्ष्रैं रक्षफ्रछ्रें रत्रूं चरक्ष्लहमह्रूं क्ष्लह्रस क्रूं ईं कम्लव्य्रईं कल्पान्तकालि सखह्रक्ष्मक्रीं रढ्रां रढ्रूं श्रौं रकक्ष्रौं हसख फ्रम्ल क्षव्य्रऊं.......... (गह्वर कूटम् ?) रक्षफछ्रां फट् स्वाहा रश्रें रश्रैं रश्रैं रफ्रों रव्रौं रभ्रूं वेतालकालि रह्रें रश्रों रघ्रां ह्लक्षकमब्रूं क्षग्लूं रह्रां रश्रौं स्ह्रौं फट् फट् फट् नमः नमः स्वाहा रक्ष्रैं रह्रौं रफ्रूं रक्ष्रीं श्रैं रस्त्रें रस्त्रों रप्रौं क्लक्षह्लव्रमयऊं म्लव्य्रवऊं सक्लह्लकह्रीं कङ्कालकालि रक्लां रक्लें रम्रें रप्रूं रत्रों रद्रीं रद्रों रद्रां रध्रें रव्रैं स्वाहा [क्ष्रफह्रैं] रत्रें रक्ष्रों रकक्ष्रूं रस्त्रीं रफ्रां रकक्ष्रीं क्षहलूं रथ्रीं रढ्रौं श्रः नग्नकालि तम्लव्य्रईं शम्लव्य्रईं स्हकह्लह्रीं फट् स्वाहा रस्त्रां रक्ष्रें रस्त्रैं ज्रौं रण्रूं खफ्रीं रढ्रीं फ्रस्त्रूं रस्त्रां रक्लूं खफ्रां रघ्रैं रद्रें रद्रूं रश्रों रत्रों रफ्रौ घोरघोरतरकालि ब्रह्माण्डपरिवर्तिनि ह्लक्षम्लव्रयूं रक्षक्रीं खमह्रीं क्षफ्लूं रजभ्ररक्ष्रौं ह्फ्रूं रक्लों रभ्रौं रभ्रों खफ्रभ्रूं स्वाहा खफ्रूं खलह्लव्नगक्षरछ्रीं दुर्जयकालि रघ्रों रफ्रां रफ्रीं रप्रों रत्रैं रब्रैं क्षह्रीं खफ्रौं नमः रणैं ह्लक्षों लक्षें लक्षौं ह्लक्षूं मन्थानकालि सफह्लक्षों स्वाहा रश्रें खफ्रों खफ्रौं शम्लह्लव्य्रखफ्रें संहारकालि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल भीषणाकारं गोपय गोपय मां रक्ष रक्ष हसफ्रों क्ष्लौः ह्लक्षां लक्षैं फट् स्वाहा लक्षों ह्लक्षीं ह्लक्षें खफसह्क्ष्लब्रूं क्रौं सहकक्षक्षह्लमव्य्रऊं आज्ञाकालि ह्लक्षें नमः रत्रीं ह्लक्षैं सहक्ष्लक्षंहसफ्रें ह्लक्षौं रौद्रकालि रत्रैं रध्रौं फह्लक्षां रत्रां फट् फट् फट् नमः स्वाहा × (मातृ बीजं:) [पौं ?] हसखफ्रं फह्लक्षूं रत्रें ह्लमक्षब्रलखफ्रऊं तिग्म-कालि रप्रां फह्लक्षें...... [गणास्त्रं] रप्रैं रफ्रैं नमः फह्लक्षैं रत्रों सखह्लक्ष्मक्लां कृतान्तकालि करनिष्पिष्टत्रिभुवने तुरु तुरु हस हस रश्रां फह्लक्षौं खफलक्षह्ल

महक्रव्रूं फहलक्षों फट् फट् फट् स्वाहा क्षरहम्लह्लकसछव्य्रऊं खहलक्षक्वक्ष्ल-ह्क्षऊं गहलक्षक्षकटलक्षरप्रीं महारात्रिकालि सर्वविद्याप्रकाशिनि रफ्रैं फहलक्षों रव्रां नमः रश्रूं × (घाटीं ?) सफहलक्षें रश्रीं रत्रौं सङ्ग्रामकालि जयदे जयं देहि देहि टहलक्षद्रडलरफ्रीं सफहलक्षैं रव्रैं रश्रां नमो नमः स्वाहा × (हन ?) ढ्रीं रत्रौं टम्लव्य्रइं भीमकालि भयं मे नाशय नाशय हफ्रैं रश्रां नमः स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर चट चट कह कह शवकालि सखह्लक्ष्मग्लीं टहलक्षद्रड्लरफ्रीं रश्रीं स्वाहा रम्रां रम्रों हफ्रौं रक्षफछ्रौं चण्डकालि यम्लव्य्रइं रम्रीं स्वाहा रम्रूं रम्रैं म्लव्य्रमईं रुधिरकालि फट् स्वाहा म्लव्य्रवऊं सखह्लक्ष्मह्लीं घोरकालि नमोऽस्तुते स्वाहा छ्रस्ह्क्षब्लश्रीं अभयङ्करकालिके कोटिकल्पान्तज्वालासमशरीरे म्लव्य्रहऊं नमः फट् स्वाहा ह्लफ्रें सखह्लक्ष्महूं ग्लक्षकमह्लव्य्रऊं सन्त्रासकालि भयं मे शमय स्वाहा क्ष्रस्त्रौं प्रेतकालि स्ह्क्षम्लव्य्रऊं नमः स्वाहा सं सां श्रह्लां करालकालि फट् फट् फट् नमः ख्रीं क्ष्रस्त्रां म्लव्रवईं विकरालकालि चण्डचण्डे त्रिभुवनमावेशय स्वाहा क्षब्लकस्त्रीं प्रलयकालि श्रह्लीं क्ष्रस्त्रूं सखह्लक्ष्मस्त्रीं स्वाहा नमः फट् छ्रखफ्रीं क्ष्रस्त्रैं श्रह्लूं क्ष्रस्त्रीं थलहक्षकह्लमव्रयीं विभूतिकालि श्रियं मे देहि दापय स्वाहा खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रक्लूं क्रह्लौं भोगकालि पक्षलव्रझफ्रूं नमः स्वाहा श्रह्लैं श्रह्लैं खफ्रह्लैं खफ्रह्लैं सखह्लक्ष्मश्रीं खहलक्षमरब्लईं कालकालि मृत्युपाशं छिन्धि छिन्धि परविद्यामाकृष्य दर्शय स्वाहा दां दां दां क्रह्लां तफरक्षम्लह्लीं खमसहक्षवलीं सखह्लक्ष्मक्लीं वज्रकालि वज्रमयाक्षरकलेवरे खफ्रक्लैं स्वाहा खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं क्रह्लीं क्रह्लूं खफसहक्ष्लव्रूं क्रौंसहकक्षछ्रह्लमव्य्रऊं विकटकालि विकटदेहोदरे सखह्लक्ष्मक्रैं फट् फट् फट् फट् फट् स्वाहा खफ्रछ्रां खफ्रछ्रूं फ्रतक्षम्लह क्षहथल-ह्क्षह्लूं विद्याकालि विद्यां देहि दापय स्वाहा खफ्रक्लौं खफ्रह्लीं खक्षहलक्षब्रलीं सखह्लक्ष्मश्रीं बलहक्षवलऊं कामकलाकालि खफ्रह्लूं खफ्रक्लीं नमः स्वाहा क्रह्लैं क्रम्रीं (अथवा ख्फ्रछ्रौं) स्ह्क्षम्लव्य्रीं शक्तिकालि खफ्रक्लां नमः खफ्रक्लूं ह्लस्त्रौं सखह्लक्ष्मठ्रीं दक्षिणकालि क्षस्ह्म्लव्य्रीं स्वाहा खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं सखह्लक्ष्मब्लौं च्लक्रथलहक्षह्लीं मायाकालि नमः क्षफ्लह्लां भद्रकालि ख्लक्षक्षयवरखफछ्रें क्षह्लम्लव्य्रईं सखह्लक्ष्मजूं फट् नमः स्वाहा खफ्रह्लं खफ्रह्लीं क्रह्लीं कमहूल-चहलक्षरज्रीं महाकालि ह्लग्लां नमो नमः स्वाहा ख्फ्रक्ष्रां खफ्रह्लौं खफ्रह्लूं श्मशानकालि वहलक्षट्लहसख्फ्रूं ह्लग्लीं ह्लग्लैं फट् नमः क्षखफ्रैं क्षखफ्रें सखह्लक्ष्मस्फ्रौं टक्षसनरम्लैं ह्लग्लौं ह्लग्लूं कुलकालि क्षज्रूं क्षब्लीं नमः फट् स्वाहा रक्षखीं नादकालि क्षज्रौं क्षब्लूं क्षज्रां स्वाहा क्रह्लौं क्रह्लैं क्षस्ह्म्लव्य्रऊं क्षह्लम्ल-व्य्रऊं सखह्लक्ष्मक्रौं क्षह्लम्लव्य्रईं मुण्डकालि क्षब्लैं क्ष्रक्लां नमः क्षब्लौं क्षफ्रब्लीं म्लकहूक्ष्रस्त्रीं सिद्धिकालि क्रह्लीं स्वाहा क्रह्लां क्रह्लूं नदक्षट्क्षव्य्रऊंछलहक्षलक्षफ्रग्लूं उदारकालि फट् फट् स्वाहा छ्रम्लीं क्षज्रैं सखह्लक्ष्मक्रों झसखय्रमूं क्रह्लैं स्वाहा फट् नमः रह्लक्षम्लूं क्षज्रीं क्रह्लौं ह्लस्त्रां झसखय्रमूं क्षस्ह्म्लव्य्रोंक्षह्ल-म्लव्य्रईं उन्मत्तकालि क्रह्लां स्वाहा नमः क्ष्रक्लूं क्रह्लीं ह्लक्षम्लूं क्षह्लम्लव्य्रऊं-क्षस्ह्म्लव्य्रऊं सखह्लक्ष्महौं सन्तापकालि क्ष्रक्लीं क्रह्लूं फट् नमः स्वाहा ह्लक्षम्लां

क्ह्लौं क्षह्म्लव्य्रऊं कपालकालि अमृतं मयि निधेहि स्वाहा ह्लक्षम्लौं ह्लस्त्रूं
रक्षख्रूं आनन्दकालि नमः फट् ह्लक्षम्लीं ह्लक्षम्लैं रक्षक्रूं निर्वाणकालि
क्षस्ह्म्लव्य्रऊं स्वाहा क्लरह्लैं ह्लफ्रीं स्त्रीं ठ्लव्रखफछ्रीं ग्लकक्षहलैं भैं[फैं?]रव-
कालि फट् फट् फट् स्वाहा ह्लछ्रां छ्रह्लां छक्षकहलक्षप्रौं सखह्लक्षमफ्रों महिष-
मर्दिनि बलह्क्षबलूं फट् स्वाहा ह्लस्त्रैं क्लखफ्रां स्त्रख्फ्रौं रलहक्षम्लखफछ्रीं
गक्षटहलक्षचक्षफलक्षूं राजमातङ्गि सकलं मे वशं कुरु स्वाहा छ्रह्लैं ह्लक्लौं
क्ह्लूं क्लखफ्रीं ह्लस्त्रूं सफक्लमहप्रक्लीं सलहक्षचलहक्षजलहक्षजक्षज्रैं उच्छिष्ट
मातङ्गि सर्वज्ञतां मे जनय फट् स्वाहा क्लसहभव्रयूं लमकक्षह्लईं फलक्ष्मकह्लूं
नमव्ल्लह्लक्षम्रग्लूं डलहक्षच्लद्रक्ष्मऐं लक्ष्मि निधिं मयि निवेशय स्वाहा त्लठ्ल-
ह्क्षय्ल्ह्क्षदलह्क्षक्षरहम्लव्य्रईऊं सलहक्षक्रमब्लयछ्रीं ह्लछ्रीं ह्लस्त्रौं महालक्ष्मि
प्रसीद प्रसीद स्वाहा क्लखफैं नमयव्लक्षरश्रूं ब्लहतह्लसचैं सखह्लक्ष्मसौः हक्षम्ल-
व्रसहरक्लीं परमक्षलहक्षऐं छ्रींत्लठ्लह्क्षथलहक्ष द्रलहक्षक्षरहम्लव्य्रईऊं विश्व-
लक्ष्मि त्वर त्वर राज्यं मे देहि किं विलम्बसे स्वाहा ह्लीं ह्लक्षम्लैं शम्लक्लयक्षह्लूं
अन्नपूर्णे अन्नं मे गृहं पूरय स्वाहा रलहक्षम्लखफछ्रूं क्लह्लीं डपतसगमक्षब्लूं
दलडक्षक्लव्रहसखफ्रौं वाग्वादिनि ठफक्षथ्लमफस्त्रूं नमः क्षस्रौं ह्लमलक्षग्रस्त्रीं
······[सूर्यकान्तकूटम् ?] मक्षह्लसहरव्य्रऊं वनदुर्गे नमः फट् क्षब्रीं ह्लछ्रूं
चफक्लह्लमक्ष्रूं सहठलक्षह्लमक्रीं कहलक्षश्रक्षम्लव्रईं कात्यायनि सखह्लक्ष्मघ्रीं
सहम्लक्षह्लम्लीं फलंयक्षकयब्लूं स्वाहा छ्रह्लौं सह्लक्षकह्हूं फसधमश्रयव्लूं
ग्लक्ष्मह्लचहलक्षक्षरस्त्रां यरक्षम्लब्लीं चफक्षलकरयह्लीं तुम्बुरेश्वरि फट् नमः,
स्वाहा ह्लक्लीं ह्लक्षफ्लीं फसवहलक्षमश्रौं रलहक्षकहलह्लस्त्रैं स्वाहा ह्लक्लां
मव्लक्षफध्रीं म्लगक्षएफ्रीं पद्मावति थफखक्षलव्य्रईं क्लव्रसहमश्रीं नमः ×
[कंककूटम्], जयदुर्गे सरहखफम्लव्रीं नमः स्वाहा दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा ह्लछ्रौं
फक्षह्लस्हव्य्रऊं सरम्लक्षहसखफ्रीं जयलक्ष्मि संग्रामे जयं मे देहि दापय व्य्रतह्लक्षह्लीं
×[मेधासू०] व्लयनहक्षक्रह्श्रूं फट् नमः स्वाहा श्रखफ्रूं ×[सावित्री] तमहल-
ह्क्षक्लफ्रग्लूं धनलक्ष्मि धनं वर्ष वर्ष वर्षापय वर्षापय नमः छ्रह्लीं क्ष्मक्लरक्षलह-
क्षव्य्रऊं तक्षक्लव्रख्रछ्रूं छक्षकहलक्षप्रौं पूर्णेश्वरि कह्लव्लजूं मनोरथं पूरय स्वाहा
ह्लक्लैं मक्षक्रस्हखफछ्रूं म्लक्षह्लसहरव्य्रऊं बगले धग्लक्षकमह्लव्य्रऊं गपटतयजवलूं
ग्लकमलहक्षक्रीं नमः फट् क्लक्ष्रौं सेखह्लक्षमठौं ग्लरक्षफ्रथरक्लीं रक्तचामुण्डेश्वरि
कव्रम्लक्षस्हवलूं मव्लक्षफध्रीं क्लश्रमक्षह्लम्लऊं क्लसमयग्लह्लफ्रूं स्वाहा क्लह्लां
श्रखफ्रां क्लह्लूं क्षफगकह्लनमह्लूं सरस्वति क्षलहक्षक्लस्त्रूंग्लमक्षसक्लह्लों
क्ष्मसकह्लीं ज्रकस्त्रक्षश्रीं ह्लसहसेकह्लीं स्वाहा फट् नमः, क्लह्लौं फ्लमधहक्ष-
क्षव्य्रऊं कब्लयसमक्षख्रछ्रूं क्ष्लमरज्रारश्रीं महामन्त्रेश्वरि व्रहठ्म्लह्लूं म्लकह्लक्षस्त्रौं
स्वाहा क्लक्ष्रीं नमः शूलिनि प्लहक्षक्ष्मज्रह्चूं फपक्षग्लम्रीं रक्षलहव्य्रईं स्वाहा
ह्लश्रैं भ्रमलक्षव्यकरह्लीं छ्रलक्षकम्लह्लीं भुवनेश्वरि समह्लक्षरक्ष्मस्त्रूं नदक्षट-
क्षव्य्रईऊं स्वाहा क्लह्लैं क्षक्षकह्लस्हज्रयूं जपतरक्ष्मलयकनईं यन्त्रप्रमथिनि
क्षम्लक्रस्हरयब्रूं क्लह्क्षलहक्षमव्य्रईं ह्लक्लक्षम्लश्रूं त्रैलोक्यविजये विजयं कुरु

कुरु जय जय फट् स्वाहा सहकरक्षमह्लक्लूं सखक्लक्षमध्रयव्लीं रलहक्षक्लसहफ्रआं ज्लह्लक्षगमछ्रखफ्रीं गुह्यामहाभैरवि रसकमहलक्षछ्रीं हलयमकक्षह्लफ्रछ्रीं चम्लहक्ष-सकह्लूं ह्लफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ह्लसग्लक्षव्य्रऊं रफ्रों व्य्रक्लक्षह्लम्लूं राज्य-सिद्धिलक्ष्मि वरनयक्ष्मग्लह्रीं व्रतरयहक्षम्लूं राज्यश्रियं मयि निधेहि स्वाहा × [लेपबीजम्] रफ्रीं क्षब्लकस्त्रीं ठवलक्ष्मलव्य्रह्लूं सनह्लक्ष्मग्लूं क्लक्षहमह्लहसखफ्रूं राजराजेश्वरि भलनएदक्ष्रीं जसदनस्हक्षग्लूं हम्लकक्षव्य्रलछ्रीं लसरक्षकमव्य्रद्रीं-ल्श्रौं × × × × [ततः कूटौ गजाक्रान्तौ कन्दर्प बलशातनौ ३.८१५] फट् फट् नमो नमः स्वाहा क्लखफ्रूं स्हक्ष्मह्लक्षग्लूं ईक्षक्षए एक्लह्रीं अश्वारुढे नजर-मकह्लक्ष्लश्रीं गमतक्षखफ्रह्लव्य्रईं बसरक्ष्रमक्षव्रक्लीं नमः स्वाहा क्लह्रौं क्लह्लूं क्लटव्य्रक्षम्लीं रहह्लव्य्रक्लीं वज्रप्रस्तारिणि मकक्षह्लग्लब्लईं रलहक्षक्लस्हफ्रऊं जममक्षकह्लब्लजूं स्वाहा नमः लह्लक्षकमव्य्रह्रीं ह्लफ्रूं नित्यक्लिन्ने प्रसन्ना भव स्हक्ष्मह्लक्षग्लीं नमः स्वाहा हरंसकक्षम्र्लस्त्रीं टसनमहक्षमखरऊं रलहक्षक्लसहफ्रओं अघोरे घोरघोरतररूपे पाहि पाहि त्रिलोकीं क्षग्लफ्रस्हरफ्रीं स्वाहा ह्लफ्रैं छ्रम्लक्षफलह्लहम्रीं कमक्षव्य्रकछ्रूं जय भैरवि जयप्रदे जय जय विजय विजय ह्लमक्षकमह्रीं कह्लवक्षक्रीं फट् स्वाहा नमः व्य्रधरमक्षच्लीं ह्लफ्रौं जय महाचण्ड-योगेश्वरि ब्लक्षफहमछ्रव्रीं खतक्लक्ष्मव्य्रह्लूं रक्षगम्लरह्रीं बसरक्ष्रमक्षव्रक्लीं × [बहुसुवर्णकूटम्] स्वाहा नमः फट् डखछ्रक्षहममफ्रीं क्षक्षक्लफ्रचक्षक्षौं चण्डयो-गेश्वरि क्षकभ्रह्लह्लमव्य्रईं थमक्ष्लकव्रह्लस्त्रूं छडतजलूं × [शुद्धवत्यंकूटम्] स्वाहा रलहक्षक्लस्हफ्रएं क्लफ्रीं त्वरिते नमः छतक्षठ्नह्लव्लीं क्लफ्रूं संक्ष्मह्लखफ्रह्रीं त्रिपुटे सर्वं साधय स्वाहा ह्लखफ्रीं रलहक्षक्लस्हफ्रऐं स्हक्लक्ष्मह्लग्लूं महाचण्डयोगेश्वरि ब्लमक्षमफख्रछ्रीं पपक्षम्लस्हखफ्रां फट् नमः ह्लफ्रां रलहक्षह्लक्रीं क्लखफ्रां चण्ड-कापालेश्वरि छ्रमकश्रहयह्लूं स्हव्रह्लखफ्रयीं मक्षव्लह्लकमव्य्रईं ह्लक्षफ्रकम्लईं गमहलयक्ष्लम्रीं फट् फट् फट् नमः नमः स्वाहा सहलक्रीं नमः स्वर्णकूटेश्वरि नकब्लम्क्षफ्रह्रीं ठक्ष्मलख्रछ्रीं हक्षमकह्लछ्रीं ब्लकक्षग्रमवरहस्त्रूं क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्मएं स्वाहा × [रथक्रान्तकूटं] × [अनुवृत्तिकूटम्] वार्तालि × [धूतपापानदी] ब्लक्षफल-व्य्रछ्रीं फ्रक्षब्लूं फट् क्लक्लफ्ररसमक्षक्लछ्रूं स्हफ्रसक्लह्लओं खफ्रह्लूं चण्डवार्तालि व्रक्षम्लसह्लछ्रीं स्वाहा ह्लश्रूं जयवार्तालि मब्लयटनक्षईं रमरयछ्रखफ्रीं सर्वज्ञतां देहि दापय स्वाहा छ्रक्षग्लमस्त्रव्य्रऊं खफ्रह्लैं रलहक्षक्लसहफ्रओं ज्वल ज्वल चैतन्य-भैरवि लकछ्ररजरक्रीं स्वाहा कंह्लंह्लंक्षूं नमः कालभैरवि कालेश्वरगृहिणि कालं मे नाशय स्वाहा स्त्रखफ्रां रलहक्षहलव्रीं ज्रलह्लफ्रव्य्रऊं उग्रचण्डे रसमयभह्लस्त्रीं यरब्लमक्षह्लऊं कंप्रम्लक्षयक्लीं फट् नमः स्वाहा श्रम्लूं क्लक्ष्मफहसौः श्मशानोग्र-चण्डे महाघोराकारधारिणि डमतक्षह्लव्रीं फट् स्वाहा स्त्रखफ्रीं यसम्लक्षसक-ह्लव्य्रईं रुद्रचण्डे गसधमरयब्लूं गसनह्लक्षव्रईं नमः स्वाहा रहलक्षक्लसहफ्रअं प्रचण्डे क्षलहक्षभलम्लूं टरयलह्लब्लछ्रीं हंम्ब्लक्षप्रक्लीं कहलजमक्षरव्य्रऊं नमः फट् स्वाहा श्रखफ्रीं खक्षमब्लईं फट् नमः करह्लरखफछ्रत्रीं पटक्षम्लस्हखफ्रूं नमः फट् कालचण्डे × [धुनी] × [मालिनी] फट् नमः श्रव्रफ्रैं रलह्लक्षक्लसहफ्रअः कस्हक्ष-

क्षमश्रूं चण्डवति प्रसन्ना भव छ्रस्हक्षव्लश्रीं स्वाहा क्षलहक्षम्लव्रीं ह्लव्रलक्षम्लश्रूं अतिचण्डे क्लम्लक्षस्हश्रीं घोररूपमुपशमय स्वाहा श्रखफ्रौं झ्रकस्त्रक्षश्रीं चण्डिके कृपां कुरु कुरु नमः स्वाहा सह्लक्षक्लमव्य्रस्त्रीं ज्वालाकात्यायनि सलहक्षवलव्रीं रक्षरजक्षमक्ष्नरह्लम्लव्य्रछ्रीं × [वारुणवर्णम्] रगयपक्षव्रूं फट् नमः ह्लहूं छ्रस्हक्षव्लश्रीं रलहक्षडम्लव्रखफ्रीं उन्मत्तमहिषमर्दिनि टरक्षप्लमह्लूं जनथक्ष-कम्लव्रीं फट् स्वाहा ह्लम्लीं नमः ह्लौं मधुमति भोगसिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा यस्हप्लमक्षह्लूं क्षलहक्षम्लह्लक्ष्लओं त्रिपुरावागीश्वरि व्रक्षम्लसह्लछ्रूं स्वाहा स्त्रहूं चण्डवारुणि सर्वमावेशय वरकजझ्रमक्लऊं स्त्रह्लफ्रम्रीं नमः स्वाहा छ्रहूं ×[दीक्षा ?] ग्लौं कसवह्लक्ष्मओं × [सौम्य] नमहक्षव्य्रह्लूं फट् स्वाहा ह्लम्लां जलयकक्षग्लफ्रूं क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्मऊं धनदाघोरे धनं प्रयच्छ लक्षलहक्षमकह्लीं फट् नमः क्लहक्षमव्य्रफ्रीं कालरात्रि कालं मे नाशय नमः स्वाहा ह्लम्लूं खफछ्रम्लग्रक्लीं रलहक्षहलवलीं किरातेश्वरि जगद्वशमानय स्वाहा मयभन-सलक्ष्रूं क्ष्लह्क्षम्लक्लीं दिगम्बरि नमः फट् ह्लम्लैं क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्लऐं काल-सङ्कर्षिणि सनटमतक्षब्लम्रीं कालं वञ्चय छपतयक्ष्लम्रीं स्वाहा श्रब्लां टनतमक्ष-व्लयछ्रूं जयकङ्केश्वरि म्रलक्षकह्लखफ्रछ्रीं रलहक्षक्लस्हफ्रआं जररलहक्षम्लव्य्रऊं ट्लत्लक्षफ्रव्रफछ्रीं स्हऐंक्लरक्ष्रीं नमः फट् स्वाहा श्रब्लौं ड्लहक्षम्लां सिद्धि-लक्ष्मि समलक्षग्लस्त्रीं सहमक्षलखभ्रक्लीं ट्लत्लक्षफ्रखफछ्रीं ऐक्षकसखफ्रव्य्रऊं नमः जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं क्षक्षमह्लकहलश्रीं भ्रमराम्बिके जय जय ज्वल ज्वल संपत्ति दद दद स्वाहा × [विष्कम्भ] नमः महामोहिनि मोहय मोहय जगद्वशं कुरु नमः थहरखफ्रह्लमब्लूं मसफ्लभरक्षव्य्रह्लूं कं ह्लं ह्लं क्षूं शबरेश्वरि कुकृत्यं नाशय शरीरं गोपय गोपय स्वाहा श्रब्लीं कहफ्लमह्लव्य्रऊं महार्णवेश्वरि रत्नं दद दद फट् स्वाहा छ्रम्लक्षफ्लह्लहम्रीं धमसरब्लयक्ष्रूं हम्लक्षव्रसह्लीं चण्डेश्वरि तफरक्षम्लह्लौं फट् फट् फट् स्वाहा श्रब्लैं सलहक्षक्लक्लीं ह्लकझ्रक्षश्रीं बाभ्रवि नमः स्वाहा चमट्क्षव्य्रछ्रीं चमरगक्षफ्रस्त्रीं वज्रकुब्जिके ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा महलक्षग्लक्लीं नरक्ष्लहक्षकम्लव्य्रह्लीं समय-देवि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा रसमयक्षवलहीं क्षलहक्षक्षमह्लक्ष्लईं मोक्षदेवि ङ्मणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा × [उत्तरा नाड़ी ?] ख्लभक्ष्मलव्य्रईं भोगेश्वरि ङ्मणनम अघोरा-मुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा दरजभ्रम्लकक्ष्रीं झ्रक्षग्लमव्य्रईं जयेशानि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा रलहक्षक्लस्हफ्रईं ररटकरक्ष्रम्रीं सिद्धीश्वरि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा कंह्लंह्लं ह्लौं ह्लकझ्रक्षश्री आवेशदेवि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा नक्षमज्लहक्षख्फ्रव्य्रऊं रजमक्षकम्लीं शिवचिन्तामणि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा फ्रखभ्रआंक्लमझ्रयूं चरुसीलहक्षमव्य्रऊं परादेवि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा मक्षक्लक्षव्य्रछ्रूं करयनप्लक्षफ्रीं हंसमहेश्वरि ङ्ञणनम अघोरामुखि

किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा प्रहरक्षमहह्लक्लीं छत्क्षठ्नह्ल्ब्लीं रत्नेशानि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा धलसहक्रक्क्षब्रलंत्रीं ब्लयक्षमझ्रग्लश्रूं कुलदेविके ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा रगहलक्षम्लयछ्रूं ग्लमक्क्षह्लछ्रख्रीं ज्ञानशिवे ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा ह्लमक्षव्रलखफ्रऊं सलहक्षव्रठक्षइं नीलमहेश्वरि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा समरगक्षहसखफ्रीं टनतमृक्षब्लयछ्रूं कलादेवि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा रलफ्लहक्षखफछ्रौं जररलहक्षम्लव्यइं रसमयक्षक्लह्रीं निर्वाण देवि ङ्ञणनम अघोरामुखि किणि किणि विच्चे नमः स्वाहा श्ब्लौं चरफथम्लक्षमह्लूं कुक्कुटि राजनं मोहय मोहय वशीकुरु वशीकुरु नमः स्वाहा एक्लयक्षम्रट्रीं ससहलक्ष ह्लकमर……? धनदे धनं मे देहि दापय स्वाहा मंह्लंक्लझ्रब्लूं खरगवक्षमलयव्यइं कोरङ्गि जरक्षलहक्षम्लव्यइं फट् स्वाहा फ्रदमहयनह्लूं डामरि मंह्लंफ्लझ्रब्लूं नमः फट् स्वाहा समहक्षव्यऊं रक्तदन्ति भयं मोचय स्वाहा नमः फट् चर्चिके शत्रुभयमुन्मूलय नमः स्वाहा क्लक्षमग्लव्यह्लृं सङ्कटादेवि सङ्कटं नाशय नाशय फट् स्वाहा समतर्क्षखफछ्रक्लों सलहक्षव्रठ्क्षआं द्रैंजमरब्लह्र्यूं चण्डघण्टे पापं मे शमय सिद्धिमुपनय फट् स्वाहा दमनडत्क्षसहव्यइं छ्रम्लक्षव्रकह्लीं मथह्लक्षप्रह्लूं चामुण्डे नरमुण्डकङ्कालमालाधारिणि भीषणानने मक्क्षह्लग्लब्लइं फट् फट् नमः स्वाहा सक्लएईह्रीं रक्षमख्यछ्रस्त्रफ्रीं क्लक्षलहक्षक्लौं महाकरालिनि नीलपताके फट् फट् स्वाहा स्हम्लक्षह्लभ्लीं मक्लक्षकसखफ्रूं नहरक्षस्त्रम्लह्रीं हरसिद्धे दुःखं हर हर सिद्धिं दद दद फट् स्वाहा स्वाहा नमः समगक्षलयब्लूं ह्म्लक्षमप्लव्रूं अनङ्गमाले देवि स्हम्लक्षह्लम्लौं फट् स्वाहा क्लपट्क्षमव्यइं ×[नाडीं रण्डा] फेत्कारि स्हफ्रकपलह्लस्त्रीं नमः स्वाहा म्लरलहक्षहलक्लीं महलक्षलखफ्रव्यह्रीं भोगवति भोगं प्रयच्छ ×[विश्वदूतानाडी] स्वाहा ख्रहक्षमह्लव्रह्रीं लवणेश्वरि फट् स्वाहा रसमयरक्षक्षग्लीं यम्लरक्षसह्लक्लूं मृत्युहारिणि मृत्युं हर हर स्वाहा मनटत्क्षफ्लव्यऊं नमः नमः नाकुलि सर्वमुच्चाटय स्वाहा जरङ्ग्रह्लमक्षक्लव्यऊं वज्रवाराहि संपदं देहि देहि फट् नमः स्वाहा फट् फट् फट् नमः स्वाहा भूतभैरवि भैरवं चालय चालय चट चट प्रचट प्रचट कह कह प्रलयमुखानलं वम वम द्विषन्तं हन हन संपदा गृहं पूरय पूरय स्वाहा [स्वाहा स्वाहा नमो नमो ?] नमः फट् फट् फट् चखफ्लक्षकस्हखफ्र……नमः चण्डखेचरि ग्रहताराविमर्दिनि विकटोर्ध्वचरणे फट् स्वाहा नमः रम्क्षब्लस्हरह्रीं भगवत्यधर्मस्तकि मनणङ्ञङ छिप्पिनि विच्चे शङ्खिनि द्राविणि हिलि हिलि किलि किलि नमः फट् स्वाहा लगमृक्षखफ्रसह्लूं क्रम्लैं पतक्षयह्लक्लखफ्रीं कामाख्ये कामान् पूरय फट् स्वाहा क्ष्रम्लौं खफ्रमसलहक्षग्लऊं धूमावति धूमवर्णे धूमाङ्गरागे धूमलोचने वाचं स्तम्भय स्तम्भय नमो नमः फट् फट् स्वाहा नमः ओं फग्लसहमक्षब्लूं हाटकेश्वरि हाटकं प्रयच्छ स्वाहा छ्रक्रूं ग्लठ्रां ग्लब्लैं व्यक्लक्षमछ्रीं रक्षफसमहह्लव्यऊं हृदयशिवदूति दुष्टप्राण [भ्रामरि भ्रामरि] द्रविणि द्राविणि

मांसशोणितभोजिनि रक्तकृष्णमुखि मा मां पश्यन्तु शत्रवः श्री पादुकां पूजयामि हृदयाय नमः त्रक्षज्रीं क्ष्म्रूं × [भेदं] ग्रमहल्क्षखफ्रग्लैं क्लसहमह्लक्षश्रीं शिवदूति स्वाहा भगवति दुष्टचाण्डालि रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्गधारिणि यो मां द्वेष्टि तं ग्रस ग्रस मारय मारय भक्षय भक्षय हन हन पच पच छेदय छेदय दह दह श्री पादुकां पूजयामि शिरसे स्वाहा ह्लभ्रां क्ष्म्रूं क्षम्फ्ह्लैं मफ्लह-लहखफ्रूं फग्लसहमक्षब्लूं शिखा शिवदूति जटाभारमहापिङ्गले विकटरसना-कराले सर्वसिद्धिं देहि देहि दापय दापय रत्नवृष्टिं वर्षं वर्षं श्री पादुकां पूज-यामि शिखायै वषट् ब्रच्रैं ब्रच्रूं ब्रफ्रश्रौं मह्लक्ष्लव्य्रऊं मरयक्ष्क्षसह्फ्रीं कवच-शिवदूति महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि विकटतुङ्गकोकामुखि महापाताल-तुलितोदरि भूतवेतालसहचारिणि श्री पादुकां पूजयामि कवचाय हूं णम्लैं णम्लौं ? ह्स्रौं रसमस्त्रह्लव्य्रऊं फलंयक्षकयब्लूं नेत्रशिवदूति लेलिहानरसना-भयानके विस्रस्तचिकुरभारभासुरे चामुण्डाभैरवीडाकिनीगणपरिवृते आगच्छ आगच्छ सान्निध्यं कल्पय कल्पय त्रैलोक्यडामरे महापिशाचिनि श्री पादुकां पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट्‥‥ [वहं। ख्लफ्रौं झ्रहव्रक्ष्मसह्लीं [प्रस्हम्ल-क्षक्लीं ?] खफ्रध्रव्य्रऔं छ्रध्रीं अस्त्र शिवदूति परापरगुह्यातिगुह्यसमयरक्षिके फट् फट् फट् मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्रानुसम्भवान् परेण कृतान् कारितान् ये वा करिष्यन्ति तान् सर्वान् हन हन मथ मथ मर्दय मर्दय दंष्ट्राकरालि चण्डिनिकटे श्री पादुकां पूजयामि अस्त्राय फट् छ्रक्रौं ऐं ग्लठ्रूं जरव्य्रसहक्षभ्रीं ज्रम्लक्षह्लछ्रीं व्यापकशिवदूति हूंहूंकारघोरनादवित्रासितजगत्प्रिये क्ष्स्फ्रौं क्ष्फ्रां क्ष्श्रैं [क्षक्लैं ?] प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते पदविन्यासत्रासितसकलपाताले गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि महाघोररूपिणि ज्वालामालिनि पिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे दैत्यदानवनिकृन्तनि श्रीपादुकां पूजयामि नमः फट् स्वाहा‥‥(नैर्ऋत्यकूटं) क्ष्फ्रें ज्रक्रीं × [अर्गला] गुह्यातिगुह्यं ज्रं ज्रक्रां × (कुडुक्क) वश्यबगले द्रमटक्षसहवलीं जगत्त्रयं वशीकुरु स्वाहा ज्रक्रौं व्रप्लैं त्रिकण्टकि ‥‥ [धारिणी नाड़ी ?]‥‥मोहय मोहय जय जय ज्वल ज्वल नमः फट् स्वाहा व्रप्लौं ग्लब्लूं हयग्रीवेश्वरि मयि विद्यां निधेहि स्वाहा ज्रब्रां ज्रब्रौं रज्रौं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं भीमादेवि महाभीमे विकरालतराकारधारिणि भयं मे मोचय मोचय शत्रुं जहि जहि फट् स्वाहा सहलक्रूं सहलक्रौं [सुकल्पा ?] ‥‥ शक्तिसौपर्णिके शक्ति प्रदर्शय नमः स्वाहा छ्रक्रां ज्रब्रैं रज्रौं क्ष्श्रां ग्लब्लां च्लक्ष्मसहव्य्रक्षीं छ्रक्रैं क्ष्श्रौं क्ष्रज्लूं वैं फखभ्रां ख्रस्त्रौं खरसफ्रम्लक्षछ्रयूं क्ष्रस्लैं स्वाहा‥ फ्रक्लां क्ष्ख्रीं ग्लब्लौं कम्लक्षसहब्लूं संग्रामजयलक्ष्मि जयं देहि देहि तुभ्यं नमः स्वाहा × [व्यासं ?] नमो विजयप्रदायै किं विलम्बसे जयं मे समुपस्थितं साधयित्वैनमुपनय स्वाहा फ्लक्रौं क्षक्लूं ब्लफस्त्रैं ख्लफ्रैं स्ह्रक्ष्क्षक-मफ्रब्रूं क्षेमङ्करि क्षेमं कुरु कुरु मधुमतीसिद्धिं दर्शय दर्शय फट् फट् फट् स्वाहा हलक्रौं क्ष्प्रें ह्लभ्रीं मूकाम्बिके भक्लरमहसखफ्रूं मूकं वादय वादय परविद्यां द्विधा-कृत्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि फट् फट् स्वाहा नमः म्लैं छ्रहभ्रूं [करकाकरके ?]

......उग्रतारे फट् फट् स्वाहा × [अवारं ?] क्ष्ह्रौं [क्ष्क्लौं ?] × [पारं ?] नीलसरस्वति स्वाहा सहलक्रीं ज्व्रूं क्ष्रज्लां स्ह्ल्क्रें रफ्रसकम्लक्ष्रज्रीं एकजटे क्ष्रज्लैं क्रफौं क्रफैं क्ष्रज्लें ह्रफीं स्वाहा क्ष्रफ्ह्लौं फ्रखभ्रां × [वृद्धि ?] फ्रक्लूं ध्रीं × [वैरोचन] क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं नमः स्वाहा × [श्रुति] [बीजानां श्रुतिमेव च उड्डियानं ततो बीजम्] क्ष्रफ्ह्लां पिङ्गले जगदावेशिनि जगन्मोहय मोहय पिङ्गलजटाजूटे प्रसीद स्वाहा स्ह्ल्क्रीं ज्व्रक्रूं चफलक्रूं व्रप्लीं व्रह्माणि × [सेतुकूटम्] निगमं प्रकाशय प्रकाशय त्रिलोकीं सृज सृज विसृज-विसृज फट् फट् स्वाहा क्रफ्रों क्रफ्रूं ग्लठ्रूँ ब्लकक्षह्मस्त्रछ्रू माहेश्वरि चन्द्र-खण्डाङ्कितभाले भुजङ्गभोगभूषितकलेवरे जय जय जीव जीव प्रसीद प्रसीद स्वाहा ग्लक्ष्रों छ्रहभ्रीं ग्लखैं फ्रश्रें × [छिप्पि ?] ब्लक्ष्मस्हक्ष्व्रीं महाशक्ति-धारिणि भगवति कौमारि मयूरध्वजे ताम्रचूडपिच्छावतंसिते जय जय विजय विजय स्वाहा त्रक्षज्व्रूँ सहलक्रां व्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं वैष्णवि सुपर्णवाहिनि कैवल्यं प्रयच्छ स्वाहा ज्व्रीं ज्व्रें सहलक्रैं स्हछ्रक्ष्लमरव्य्रइँ वाराहि दंष्ट्रासमुद्धृत-धरणिमण्डले चक्रविनिष्कृतदितिजदानवपीवरोरुबाहुदण्डक्षोभितसागरे ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल संदर्शितविश्वरूपावतारे फट् फट् स्वाहा क्ष्रज्लों × [जौं ?] [वचनम्] घम्रब्लक्षफ्रखछ्रीं नारसिंहि खरनखरविपाटितमहादैत्यविग्रहे सटाविनिर्धूत सप्तलोके × × [नीराजन प्रादेश ?] फट् फट् फट् स्वाहा व्रफ्रश्रूं छ्रहभ्रैं ड्लहक्षम्लां तफ्लक्षकमश्व्रीं विष्णुमाये मायां नाशय नाशय ज्ञानं प्रकटय स्वाहा × × [आरंजि वशिकं] व्रप्लें इन्द्राणि मघस्त्रकक्षलक्रीं राज्यं मे देहि स्वाहा व्रफ्रश्रें क्ष्लप्रूं क्ष्लप्लें क्रध्रौं × [स्वाति ?] मसक्षग्लयह्रीं परम-हंसेश्वरि योगवति धर्मप्रवर्तिनि वैराग्येण मुक्तिं साधय स्वाहा छ्रह्भ्रां व्रफ्रश्रां क्ष्लक्ष्रूं मोक्षलक्ष्मि फ्रखरक्षक्लह्रीं कह्लक्लक्षखफ्रीं डलहक्षज्लमफ्रव्रीं अज्ञानं शमय ज्ञानं प्रकटय कैवल्यं मयि निधेहि स्वाहा ब्लछ्रीं ब्लछ्रों व्रध्रौं हलक्रों × [श्रौतपदं कूटम्] शातकर्णि भ्रामकि क्षामकि कान्तरवासिनि क्ष्लप्रें ग्लध्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा जं जं विघ्नं नम स्वाहा जातवेदसि जातवेदोमुखि ज्वालामालिनि रम्लव्रीं वम वम धम धम स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर फट् स्वाहा फ्रखभ्रैं क्रध्रां क्ष्रफ्ह्लौं महानीले शत्रुसैन्यं स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय स्वाहा नमः फट् ख्फ्रभ्रौं × [श्रौत्रक्रम ?] अपराजिते राज्यसिद्धिं जयलक्ष्मीं देहि दापय स्वाहा क्रध्रूं क्रध्रूं क्रध्रूं × [श्रौत जटाकूटम्] गुह्येश्वरि गुह्य-विद्यासमयप्रकाशिनि प्रपञ्चातीतस्वरूपे मां रक्ष रक्ष महाविघ्नेभ्यः सर्वोपद्रवेभ्यः स्वाहा श्रह्लौं ख्फ्रभ्रीं क्रध्रौं × [श्रौतवाल्लेय कूटकम्] नमोनमः फट् स्वाहा अभये भवभयं मोचय निर्वृतिं देहि फट् फट् नमः स्वाहा फ्रश्रैं फ्रश्रौं ब्रु खरस-फ्रम्लक्षछ्रयूं × [श्रौतधन ?] रलहक्षसमहफ्रछ्रीं एकवीरे महाबलपराक्रमे भगवति जगदावेशिनि त्रिलोकीं वशीकुरु स्वाहा ख्फ्रभ्रें क्रप्रौं × [पशु] × [श्रौतध्वजकूटम्] महाविद्ये सर्वं मोहय मोहय उच्चाटय उच्चाटय किरि किरि किलि किलि छिन्धि छिन्धि कह कह फट् फट् स्वाहा ह्रभ्रों ग्लध्रीं ×

[चंचला] × [पोष] × [निस्तल] × [श्रौतस्रज] धशड्लझह्लीं भगवति तामसि तमः स्वरूपे ममाज्ञानं नाशय नाशय उन्मूलय उन्मूलय हन हन त्रुट त्रुट ध्वंसय ध्वंसय मूर्च्छय मूर्च्छय टफ्रकमक्षजस्त्रीं नमः स्वाहा रक्ष्रं भ्रच्रीं क्रीं कुलकुट्टिनि × [मालाकूटम्] कुलचक्रप्रवर्तिनि गुह्यविद्याप्रकाशिनि ण्रम्लीं ण्रम्लूं ह्स्रूं फट् स्वाहा नमः समव्लकक्षव्य्रऊं तम्लव्य्रईं कुलेश्वरि गुह्यातिगुह्यसमयकुलचक्रप्रवर्तिनि ह्लखफ्रूं रच्रां व्य्रक्रीं विश्वपालिके विश्वं पालय पालय त्वामहं नमामि स्वाहा × [ऋतम्] × [अंश] ग्लख्रौं झथक्षमफ्रश्रौं विश्वरूपे चतुर्दशभुवनमात्मनि संदर्शय स्वाहा क्ष्लप्रों फ्रस्त्रीं ऋ्रौं ट्लव्य्रसमक्षहछ्रीं रक्तमुखि नीललोहितेश्वरि कल्पान्तनर्तकि नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस चर्चरीतालिके मा रक्ष रक्ष संवर्तकारिणि स्वाहा ह्स्रौं ह्स्रीं × [कर्ण] × [रयिम्] ज्लकहलक्षव्रमश्रीं जयन्ति द्विषन्तं जहि जयन्तं पाहि राज्यं भगं श्रियं देहि स्वाहा व्रमक्लयसक्षक्लीं नमोनमः एकानंशे सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि सदाशिवार्धतनुधारिणि सर्वकृत्याप्रमर्दिनि नमः स्वाहा × [सन्ध्यासूक्त] × [वष्मं] ईंसकहमरक्षक्रीं ब्रह्मवादिनि ब्रह्मज्ञानं प्रकाशय अज्ञानं शमय स्वाहा ह्स्रैं ज्रक्रां चफलक्रैं × [मोहकूटम्] × [मयु] × [जन्या] कामाङ्कुशे प्रपञ्चातीतसंविदालम्बिनि भवभयं हर हर नमः स्वाहा फ्रखस्हमव्रयूं गरमश्रब्लक्षश्रीं झक्ररहक्षमव्य्रऊं आवेशिनि फ्रस्त्रौं र्ख्र्रध्रें ख्ल्फ्रां ह्ल्क्रैं × सर्वमाविष्टं साधय साधय फट् फट् फट् स्वाहा नमः ह्भ्रूं ह्भ्रें ह्ल्क्रौं र्फ्लौं क्लमयक्ष्लहक्षव्रीं मायूरि चित्राङ्कि सर्वसिद्धिं प्रयच्छ विघ्नं नियच्छ सर्वं स्थूलाकारं दर्शय स्वाहा × [वेश] फ्रश्रीं × [अन्ध ?] झक्ररहक्षमव्य्रऊं त्रिकालवेदिनि सर्वज्ञतां साधय साधय त्रिभुवनवृत्तान्तमावेदय कर्णपिशाचिनि कर्णमुपेत्य सकलं चराचरं कथय स्वाहा ख्ल्फ्रैं × [वीथी] ब्लछ्रां क्षम्लजरस्त्रीं महामारि महामरककारिणि कङ्कालिनि कङ्कालधारिणि खट्वाङ्गभ्रामिणि खट्वाङ्गं भ्रामय भ्रामय अपमृत्युं हर हर ब्रह्मविष्णुशिववाहिनि फट् फट् फट् नमोनमः स्वाहा फ्रश्रों ग्लख्रूं इन्द्राक्षि [णि ?] स्वाराज्यं दद दद दापय दापय हरिहरमहिते त्रिलोकललिते तारिणि तारय शत्रून् मारय मारय प्रचण्डविद्ये फट् फट् स्वाहा नमः × [वस्तु] क्ष्व्रां डलखलहक्षख्रम × [मनः कूटम्] × [दिष्टं] घोणकि भूतपिशाचप्रेतयक्षराक्षसकूष्माण्डयोगिनीडाकिनीभयं नाशय नाशय श्मशानम् आनय आनय गह्वरं प्रविश हट्ट हट्ट नमः फट् स्वाहा व्रफ्रश्रैं व्रफ्रश्रौं क्ष्लप्रीं मङ्गलचण्डि मङ्गलैर्गृहं पूरय पूरय मङ्गलावतारे फट् स्वाहा ब्लछ्रीं क्ष्ख्रूं [क्षक्लूं] फ्रस्त्रां मधस्त्रक्ष्लक्रीं चण्डोग्रकापालिनि खड्गाञ्जनपादुकासिद्धिं मे देहि देहि अव्याहतगतिं प्रयच्छ प्रयच्छ चिताङ्गारभस्मधारिणि धर धर चट्ट चट्ट नमः फट् ब्लछ्रूं क्ष्व्रों सफ्रक्षक्लमखछ्रीं सम्पत्प्रदे भैरवि संपदं दद दद हिरण्यवृष्टिं वर्ष वर्ष वर्षापय वर्षापय धनधान्यरत्नानि देहि देहि दापय दापय ण्रम्लौं फट् फट् स्वाहा नमः ब्लछ्रैं क्ष्व्रौं ज्रक्रें नमोनमः फेरुचामुण्डे मालाकंकालशुष्कान्त्रधारिणि शार्दूलचर्मवासिनि नरमुण्डकुण्डले शुष्कोदरि शुष्कानने हाहा अनन्त

खट्वाङ्गधारिणि उड्डु उड्डु कह कह ब्लछ्रें फट् फट् फट् नमः स्वाहा ज्रक्रौं रख्रघ्रां ह्लस्रां श्मशानचामुण्डे × [पिण्डकूटम्] मातङ्गभोगताटङ्किनि शैलकटिसूत्रिणि प्रज्वलद्घोरचितानलनिवासिनि वमन्मुखानले भस्मीकृतदानवे हुंहुंकारनादत्रासितत्रिभुवने फट् फट् फट् नमः स्वाहा क्रह्लूं नमः कङ्कालिनि कङ्कालकरङ्क किङ्किणीनादभूषितविग्रहे महार्णवशायिनि महोरगविभूषिते × [प्रपञ्च] ब्रह्माण्डचर्वणाजातकटकटामहानादपूरिताम्बरे भीमाकारधारिणि महाप्रहारिणि श्मशानचारिणि तुरु तुरु मर्द मर्द ज्वल ज्वल फट् फट् फट् नमोनमः स्वाहा × [सामा] × [वादं] × [मौलिकं] महामायूरि महाचाण्डालिनि सर्वकृत्याप्रमर्दिनि ये मां द्विषन्ति प्रत्यक्षं परोक्षं तान् सर्वान् दम दम मर्दय मर्दय विपातय विपातय शोषय शोषय उत्सादय उत्सादय हन हन पाटय पाटय प्रणतान् पालय पालय पाहि पाहि नमः स्वाहा फट् फट् फट् स्त्रीं × [कूटबीजं] नमो रुद्रपिशाचिनि प्रेतभूषणे प्रेतालङ्कारैमण्डिते जम्भ जम्भ हस हस ब्रह्माणि माहेश्वरि वाराहि वैनायकि चामुण्डे महाविद्ये जगद्ग्रासिनि जगत्संहारिणि पीवरि शबरि नायिकानायिके हुं चक्ष हुं भक्ष फट् फट् फट् स्वाहा ख्लफ्रूं रख्रघ्रौं ख्लफ्रौं फट् फट् फट् नमोनमः कालशबरि कालं वञ्चय वञ्चय तुरु तुरु मुरु मुरु महाकालगृहिणि चन्द्रिके चन्द्रखण्डावतंसिते अट्टाट्टहासिनि मर्मरिणि चर्पटिनि तुन्दिलोदरि डामरि क्षामरि कुलसुन्दरि हुंहुंहुं खिलि खिलि भिनि भिनि स्वाहा प्रम्लां भद्रिके लाङ्गूलिनि महामार्जारिणि चट चट प्रचट प्रचट कह कह धम धम मुखानलं वम वम महाकान्तारगहनवासिनि पापं नाशय दुःस्वप्नं हर लोहिनि फट् लोहिनि फट् लोहिनि फट् नमः स्वाहा ब्रम्लूं प्रेतमातङ्गि प्रेतासनयोगपट्टिनि कुणपभोजिनि प्रेतवेतालमध्यचारिणि भूतं भव्यं भविष्यत् सर्वमावेदय फट् फट् स्वाहा नमः ब्रम्लौं × [वास] कुरुकुल्ले कापालिनि कापालवेशधारिणि कङ्कालिनि कङ्कालमालाधारिणि बन्ध बन्ध छिन्धि छिन्धि चिकि चिकि त्रिजटे सर्वमुच्चायै स्फुरतु फट् फट् नमः नमः स्वाहा फ्रम्रग्लौं घनाघनाकारधारिणि श्यामाम्बरे तरुच्छदानुपिहितजघने गुञ्जाहारिणि मयूरपिच्छे चित्रचूडे दिगम्बरि तुभ्यं नमः ख्रस्त्रें कालिङ्गि महोत्पातप्रवर्तिके भुजगरूपधारिणि नमः स्वाहा फ्रम्रग्लूं फ्रख्भ्रीं फ्रख्भ्रूं फ्रख्भ्रैं सफक्षयक्लमस्त्रश्रीं स्हव्यख्रक्ष्मक्रूं सफक्षयक्लमस्त्रश्रीं हसूख्फ्रक्ष्रीं हसखफ्रूं क्षरस्त्रखफ्रूं ख्फ्रीं मृत्युञ्जये फट् स्वाहा जनहमरक्षयह्लीं सकलमन्त्रमयशरीरकल्पितषडाम्नायदेवताप्रतिपन्ननिखिलतत्त्वसञ्चारितसमस्तभूतसङ्घे जय जय प्रज्वल प्रज्वल × [अनय] कापालव्रतधारिणि × [युक्त] समयक्रमचारिणि फ्रम्रग्लीं कौलसिद्धान्तकारिणि ज्लूह्क्षट्लङ्क्रव्रीं संसारबन्धं मोचय मोचय छेदय छेदय अविद्याक्लेशविपाकप्रपञ्चाशयमिथ्याध्यासाहङ्कारवासनापाशच्छेदिनि लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं परमार्थस्वरूपिणि निस्त्रैगुण्ये फ्रम्रग्लें ख्रस्त्रैं ख्रफ्रह्लमक्षश्रीं (?) शुद्धविद्यावलम्बिनि मायाविमोचिनि अपरशिवपर्यङ्कनिलयिनि विकारातीते फ्रम्रग्लैं क्ष्रस्रौं प्ख्रसम्क्षस्त्रक्रीं ग्लांम्लह्रयीं श्रुत्यगोचरे अवितथे सत्यविज्ञानानन्दब्रह्माकारिणि पुराणे ब्रह्मपुच्छ-

प्रतिष्ठिते निर्विकारे चरमे निरिन्धने फम्रग्लौं क्ष्रस्त्रें अस्थूले अनणो अह्रस्वे अदीर्घे अलोहिते अस्नेहे उच्छ्राये अतमोवाय्वनाकाशे असङ्गे अरसे अगन्धे अचक्षुःश्रोत्रे अपाणिपादे अवाक् अमनस्के अतैजसि अनिन्द्रिये अप्राणे अमुखे अमात्रे अलिङ्गे अनन्तरे अबाह्ये अनदृष्टे अनुपादने प्रकृते अनुद्भवे अमृत्यो अलघो अमहीयसि अशरीरे अबन्धे अपुण्यपापे ब्लीं × [निरञ्जन कूट] क्ष्लक्ष्रीं योगविद्ये तत्त्वविद्ये मोक्षविद्ये ज्योतीरूपे प्रशासितसूर्याचन्द्रे प्रपूरितद्यावापृथिवी रोदसीपाताले देविहिरण्मये विरजे निष्कले कर्त्रि ईशे साक्षिणि आत्मक्रीडे आत्मरते सत्ये अनन्ते महिते बृंहिते अजे शाश्वते हसखफ्रूं सुषुप्त्यवस्थिते तुरीयाभिधे जातवेदसि मानस्तोके शुक्लब्रह्मामृतमयि परमामृतानन्दपायिनि चिन्मात्रावयवे पृथिवीरूपे आप्रूपे तेजोरूपे वायुरूपे आकाशरूपे लिङ्गशरीररूपे जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जरूपे संसाररूपे सगुणनिर्गुणात्मिके चण्डि चण्डप्रतीके जनिते मरणभयदारिणि भक्तजनतारिणि विश्वजनमोहिनि सकलमनोरथदोहिनि ईसमक्लक्षह्रूं प्रेतवाहिनि वषट् क्ष्लक्ष्रैं वौषट् × ×[शफ श्रौषट् ?] त्रिभुवने सृष्टिप्रलयसंहारमहानाट्य प्रिये निखिलगुह्यसूत्रधारिणि कालिकासम्प्रदायपालिनि भुजगराजभोगमालिनि नवपञ्चचक्रनिलयिनि क्ष्रस्त्रां छत्रमकव्य्रऊं सर्वभावावबोधिनि रस्त्रां सकलनिष्कलाश्रयिणि क्ष्रस्त्रीं सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासापदप्रिये चण्डयोगेश्वरि भेदसहस्रयथार्थप्रवर्तयित्रि फख्भ्रें षडाम्नायसारभूते फख्भ्रों फख्भ्रौं षडाम्नायातीते रक्षलह्रमसहक्व्रूं कस्हलह्रख्क्ष्रीं रव्लकमम्क्षग्लीं फ्रक्षस्त्रमक्रूं त्रिकालाबाधिते ट्लसकम्लक्षट्व्रीं (?) थ्लव्य्रम्रछ्रखीं सफ्रकह्ररक्षमश्रीं थलहक्षकह्रमव्रयीं प्रमेयातीते तत्वमसि रत्रौंओं छ्रवलव्य्रम्क्षयूं द्लव्य्रक्षक्रभ्रीं निर्वासनेमफ्रठ्क्षव्रीं (?) ग्लृहक्षम्लजक्रूं ट्लहक्षस्त्रमव्रयीं निर्विकल्पे त्लम्क्षफलहक्षव्रीं स्ह्फ्रमव्रयक्षीं कहथ्व्य्रक्ष्रीं सत्तामात्रे सक्लह्रह्सुख्फ्रक्ष्रीं एसकहलक्षांव्य्रम्रूं सन्तताभासाशब्दानन्दमये म्लछ्लह्क्षख्फ्रक्रीं प्लड्लहक्षमव्रयीं चिदाकारिणि हस [एकारव्य] सक्लह्रीं (?) सामरस्यलयिनि साहमेवास्मि रहफ्रसमक्षक्रीं अकारोकारमकाररूपे प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपद्विपथचारिणि तत्त्वमसि ब्रह्माहमस्मि फट् फट् फट् नमोनमः ओं × [सामुज्य] स्वाहा ।

इति

३४—नवाक्षरः शाम्भवमन्त्रः (४।१४९—१५०)

'ओं ह्रीं फ्रें छ्रीं रहक्षम्लवरयरीं क्षस्हम्लवरयूं क्षह्रम्लव्य्रऊं खफ्रीं ओं' मूर्खारण्यस्वामिचरणास्तु—"ओं ह्रीं फ्रें छ्रीं रहक्षम्लवरयरीं सहक्षलवरयूं हसकहलह्रीं रक्षमतरखप्रीं ओं" इति

३५—पञ्चदशाक्षरः महाशाम्भवमन्त्रः (४।१६१—१६४)

ओं ऐं ह्रीं क्ष्रौं स्त्रीं ख्फ्रें क्रां क्लक्षहमह्रहसखफ्रूं सहक्षमलवरयूं क्षस्हम्लवरयीं ह्सगक्षमलवरयूं × [सर्वोच्चम् ?] × [आद्योच्चम् ?] ख्फ्रें क्ष्रौं ह्रौं ऐं ओं । 'इयं पञ्चदशी ख्याता महाशाम्भवनामिका' ···इत्यस्य कथं सङ्गतिरिति सुधीभिः साधकैश्च विभावनीयम् । यथा पाठमिह सप्तदशाक्षरत्वं मन्त्रस्य दृश्यते ।

मूर्खारण्यस्वामिचरणास्तु—"ओं ऐं ह्लौं क्ष्रौं ख्फ्रें रहक्षमलवरयूं हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयूं हसक्षमलवरयीं हसगक्षमलवरऊं ख्फ्रें क्ष्रौं ह्लौं ऐं ओं"—इति निर्दिशन्ति ।

३६—नवाक्षरस्तुरीयामन्त्रः (४।१७४—१७६)

'फ्ख्रह्लां रक्ष्रमछ्रूं फ्रखक्षठं फलखक्ष्रैं सतरलमक्षफ्वरयलीं जनहमलक्षयह्लीं हसलक्षकमह्लवरूं फ्रखक्ष्रीं हसखफ्रां फ्रमश्रूं'। यद्यपि 'महाविद्यातुरीयेयं मुक्तिदात्री नवाक्षरी' ४।१७६ । इत्युक्तमिह तु दशाक्षरमन्त्रः स्वामिमूर्खारण्यचरणैर्निर्दिष्टः कथमस्य सङ्गतिः ? तथापि सुधीनां साधकानां च विचाराय प्रस्तुतोऽत्र मन्त्रोद्धारः ।

३७—सप्तदशाक्षरः महातुरीयामन्त्रः (४।२००—२०३)

खफ्रक्ष्रीं फ्रखक्ष्रूं [फ्रखभ्रूं] रक्षह्लूं [छ्ररक्षह्लूं] हसफ्रौं रजह्रक्षूं छ्रीं रफलवरयमक्ष्रूं सकलह्लीं ख्फ्रां क्ष्रूं रहफ्रीं मसक्षह्रीं वलहसक्रमछ्रयीं हसवरयलक्षमह्रूं सफक्षयकलमसवश्रीं नवलहसद्रां हसखफ्रैं हसखफ्रौं रक्षह्लीं रक्षसवर खफ्रूं हंसः सोऽहम् ।'

३८—ऊनविंशाक्षरः निर्वाणमन्त्रः—(४।२२६—२३०)

'ओं फ्रव्रक्ष्रौं ह्लीं रक्ष्रमछ्रूं फ्रें फ्रखक्ष्रैं छ्रीं सतरलयक्षकवरयीं रहक्षमलवरयीं जनहसलक्षह्लीं सहक्षमलवरयूं हसलक्षकमकरव्रूं हसकहलह्लीं फ्रखक्ष्रैं छ्रीं सतरलयक्षकरवयीं रहक्षमलवरयीं जनहसलक्षह्लीं सहसमलवरयूं हसलक्षकमकरव्रूं हसकहलह्लीं फ्रखक्ष्रीं रक्षसतरखफ्रीं हसखफ्रां फशसग्लूं हसक्षमलवरयरहक्षमलवरयूं"। यद्यपि इत्यूनविंशत्यर्णोऽयं निर्वाणाख्यो महामनुः इत्युक्तम्, स्वामि श्रीमूर्खारण्यचरणंस्तु षट्विंशत्यक्षरात्मको मन्त्रो निर्दिष्टः कथमस्य सङ्गतिरिति साधकैरालोचनीयम् ।

३९—त्रयस्त्रिंशद्वर्णात्मकः महानिर्वाणमन्त्रः (४।२५१—२५७)

'ओं खफ्रक्ष्रीं ऐं फ्रखक्ष्रूं ह्रौं रक्षह्लूं क्ष्रौं हसफ्रौं खफ्रें रजह्रक्ष्रूं रहक्षमलवरयूं छ्रक्लवरयमक्षयूं हसक्षमलवरयूं सक्लह्लीं हसवलफ्रीं क्षीं सहक्षमलवरयीं रहफ्रीं मसक्षह्रीं सहक्षमलवरयीं कलजमक्षरसक्षछरयीं हसगक्षमलब्लूं हसवरयखलक्षमह्रूं खफ्रकलक्षमसभ्रीं सफक्षयकलमसतरश्रीं क्ष्रौं तद्ब्रह्माऽस्मि ह्रौं हसखफ्रें ऐं हसखफ्रौं ऊं रक्षह्लीं रक्षसतरखफ्रूं हंसोऽस्मि सोऽहं रहक्षमलवरयसहक्षमलवरयूं" इति स्वामिमूर्खारण्यचरणैः निर्दिष्टो मन्त्रः ।

———

परिशिष्टम् (२)

उपमन्त्राः

१—दन्तधावन मन्त्रः—(६।७-८)
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च तन्नो धेहि वनस्पते ।। क्लीं फट् ।

२—मुखप्रक्षालनार्थं जलादानमन्त्रः—(६।१०)
ओं जूं सः ।

३—आचमनमन्त्रः—(६।११)
ऐं अमृताय हूं फट् ।

४—शिरोमार्जनार्थं गृहीतजलाभिमन्त्रणमन्त्रः—(६।१४)
ग्लूं वरुणाय वषट् ।

५—शिरोमार्जनमन्त्रः—(६।१५)
ओं चित्कलायै नमः, ह्रीं अमृतायै नमः; फ्रें गुह्यकाल्यै नमः ।

६—गुरुध्यानम् (६।१७—१८) अनन्तरं वक्ष्यमाणस्य गुरुमनोः निर्देशः—(६।१९)
ओं परम गुरवे नमः ।

७—गुरोर्नमस्कारमन्त्रः—(५।२०)
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

८—देव्या आज्ञाग्रहणमन्त्रः—(६।२४)
देवि श्रीगुह्यकालि त्वं देह्यनुज्ञां महेश्वरि ।
प्रयतिष्ये निदेशात्ते योगक्षेमार्थसिद्धये ।।

९—मन्त्रस्नानप्रयोगः—(६।३१—३४)
(क) ओं अस्य गुह्यकाली पूजाङ्गस्नानस्य कात्यायनऋषिः प्रतिष्ठाच्छन्दः वारुणी गुह्यकाली देवता मन्त्रस्नाने विनियोगः ।
(ख) गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।
(ग) गुह्यकालीं देवीं तर्पयामि नमोऽस्तु ।

१०—तान्त्रिकतिलकधारणमन्त्रस्य (ऋष्यादिनिर्देशः) विनियोगः—(६।४८-५०)
तिलकधारणमन्त्रस्य कालाग्निरुद्रसंवर्तनाचिकेतस ऋषयः पंक्तिश्छन्दः पञ्चमहाभूतानि देवता फ्लीं बीजं हूं शक्तिः क्रों कीलकं महापातकसंभूतपापनाशे विनियोगः ।

११—**विभूत्यभिमन्त्रणमनुः**—(६।५२-५६)

ओं ऐं यं रं लं वं अग्नितत्त्वाय हूं फट् वायुतत्त्वाय हूं फट् आपृतत्त्वाय हूं फट् पृथिवीतत्त्वाय हूं फट् शं षं सं हं क्षं पञ्च महाभूतान्येकादशेन्द्रियाणि पावय पावय अशेषदुरितं शमय शमय भस्म तुभ्यं ह्लीं फट् स्वाहा ।

१२—**विभूत्या शिरोमार्जनमन्त्रः**—(६।५८-६०)

ह्रौं सदाशिवाय नमः, ह्लीं ह्लैं नन्दिन्यै नमः, श्रीं चेतनायै नमः, हूं हूं नाद, बिन्दुरूपिण्यै नमः, खफ्रें गुह्यकाल्यै नमः ।

१३—**भस्मधारणमन्त्रः**—(६।६१-६३)

क—ऐं आं ह्रौं रुद्र एवाहं भूयासम्, वज्रकवचमेवेदं भूयात् तत् सत् फट् नमः स्वाहा ।

ख—**भस्मालोड़नमन्त्रः**—(६।६५-६६)

ओं ह्लीं फ्रें प्रचण्डकरालिनि स्वाहा ।

ग—**भस्मनि जलमिश्रणमन्त्रः**—(६।६८-७१)

ओं ऐं ह्लीं श्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें खफ्रें एह्येहि भगवति गुह्यकालि सान्निध्यमत्रावेशय त्वामहं दधे तेनाहमामुक्तो वज्रतनुर्विरजाश्च भूयासं आं जूं स्हौः फट् फट् फट् स्वाहा ।

घ—**भस्मधारणमन्त्रः**—(६।७३-७९)

फ्रें गुह्यकाल्यै नमः इति ललाटे तिलकधारणम् । हूं करात्यै नमः इति वक्षसि । ह्लीं घोरनादायै नमः इति नाभौ । स्फ्रों विकटदंष्ट्रायै नमः इति बाहुमूले । क्लीं अनङ्गाकूलायै नमः इति कफोणौ । छ्रीं कपालिन्यै नमः इति मणिबन्धे । क्रों ज्वालामालिन्यै नमः इति गले । स्त्रीं चामुण्डायै नमः इति पार्श्वे । स्हौः भैरव्यै नमः इति कटौ । खफ्रें सिद्धिविकराल्यै नमः इति व्यापके ।

१४—**चन्दनस्य भूमिप्रक्षेपमन्त्रः**—(६।८४-८५)

ओं ईं ज्ञानाय नमः, ओं ईं इच्छायै नमः, ओं ईं क्रियायै नमः, ओं ईं शक्त्यै नमः, ओं ईं कामाय नमः ।

१५—**चन्दनेन तिलकधारणमन्त्रः**—(६।८७-८८)

ह्लीं क्लीं हूं सर्वजनमोहिनि सर्ववशङ्करि मां रक्ष रक्ष फट् स्वाहा ।

१६—**तान्त्रिकसन्ध्यावन्दनविधिः**—(६।८९-१३१)

(इह शूद्रस्याप्यधिकार इति वैदिकसन्ध्यावन्दनतो विशेषः) ।

(क) प्रथमं प्राणायामत्रयं तन्त्रोक्तरीत्या कर्तव्यम् ।

(ख) पुनः अष्टादश वारं मूलमन्त्रं (जप्यमन्त्रं) जपन् शिरो मार्जनं कुर्यात् ।

(ग) पुनः आचमनं समन्त्रं वारत्रयं कुर्यात्—ऐं विद्यातत्त्वाय स्वधा, ऐं शिवतत्त्वाय स्वधा, ऐं शक्तितत्त्वाय स्वधा इत्येतैः मन्त्रैः ।

(घ) पुनः नासापुटादि स्पर्शः ।

(ङ) आत्मशुद्धिमन्त्राः—ओं विजयायै नमः, ओं अपापायै नमः, ओं महालक्ष्म्यै नमः, ओं कालकर्ण्यै नमः, ओं सर्वसिद्धिदायै नमः, ओं भूतावेशिन्यै नमः, ओं आनन्ददायै नमः, ओं कालरात्र्यै नमः ।

(च) पुनः अघमर्षणमन्त्रः—क्ष्रौं चण्डघण्टायै फट् । पुनः चन्दनाक्षतपुष्पादि समन्वितं सलिलाञ्जलिमादाय मूलमन्त्रमुच्चार्यार्घो देयः ।

अर्घदानमन्त्रः—ऐं ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें श्री गुह्यकालि एष तेऽर्घः स्वाहा ।

(छ) पुनः सप्तधा मूलमन्त्रस्य जपः कार्यः ।

(ज) पुनः उपस्थापनमनेन मन्त्रेण—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं क्षह्म्लव्य्रऊं गुह्यकालीं भगवतीमुपतिष्ठे । क्रौं क्ष्रौं फ्रौं स्फ्रौं क्रों स्हौः ग्लौं क्ष्र्ह्रीं ज्र्क्रीं क्ष्र्ह्रूं स्ह्लौं क्षस्ह्म्लव्य्रऊं फट् नमः स्वाहा ।

(झ) देव्या द्वादशाञ्जलिदानमन्त्राः—ओं चण्डायै नमः, ओं करालयै नमः, ओं भ्रामर्यै नमः, ओं ललितायै नमः, ओं ज्वालिन्यै नमः, ओं अघोरायै नमः, ओं शूलिन्यै नमः, ओं जयमङ्गलायै नमः, ओं कुरुकुल्लायै नमः, ओं फेत्कारिण्यै नमः, ओं कालसङ्कर्षिण्यै नमः, ओं गुह्यकाल्यै नमः ।

(ञ) पुनः अङ्गन्यासः कार्यः । तद्यथा—ओं ऐं हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं श्रीं शिखायै वषट्, ओं हूं कवचाय हूं, ओं स्त्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं फ्रें अस्त्राय फट् ।

(ट) क्षणं देव्याः ध्यानं विधाय दशधा तत्तन्मन्त्राधिष्ठात्र्याः गायत्रिमन्त्रजपः कार्यः । एतस्य पञ्चाशद्वारं शतवारं वा जपं कर्तुमर्हति कश्चित् । जपं समर्प्य स्तुत्वा नत्वा विसर्जयेत् ।

(ठ) पुष्पाक्षतचन्दनानि आदाय सूर्यायार्घं दद्यात् । अर्घदानमन्त्रस्तु– ह्रां ह्रीं सः सूर्यभट्टारकाय एष ते अर्घः स्वाहा ।

(ड) पुनः मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकं षडङ्गकं च विधायाष्टोत्तरशतवारं मूलमन्त्रस्य जपं कुर्यात् ।

(ढ) जले यन्त्रं विलिख्य देवी ध्यात्वा आवाह्य जलमयैरुपचारैः सम्पूज्य मार्तण्डमण्डले तां विचिन्तयन् मूलमन्त्रमुच्चारयेत्, पुनः गुह्यकालीमहं तर्पयामि नमः इति मन्त्रेण पञ्चविंशतिवारं तर्पणं कुर्यात् पुनः मूलमन्त्र-मुच्चार्य सूर्यं पश्यन् पुष्पादिसमन्वितं सलिलाञ्जलिमादाय—ऐं ऐं ऐं ह्रीं फ्रें हूं स्त्रीं ख्फ्रें स्हौः ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं क्ष्र्स्त्रैं उद्यदादित्यवर्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै प्रकाशशक्तिसहितमार्तण्डभैरवाधिष्ठात्र्यै श्रीगुह्यकालीदेव्यै नमः स्वाहा इति मन्त्रेण तं प्रक्षिप्य विसर्जनं कुर्यात् इति सन्ध्याविधिः ।

सन्ध्याविधिं समाप्य पूजार्थं करणीये विधौ समागतोपमन्त्राणां निर्देशः

१७—पादप्रक्षालनजलाभिमन्त्रणमन्त्रः - (६।१३४).

ओं गन्धोदके हूं फट् ।

१८—पादप्रक्षालनमनुः—(६।१३४)

ऐं ह्रीं क्लीं स्वाहा।

१९—आचमनमन्त्रः—(६।१३८-१३९)

ओं ह्रीं फ्रें क्लीं हूं क्रों स्त्रीं त्रितत्वज्ञानरूपिणि मानसिकवाचिककायिकवृजिनोनि संशमयाशेषविकल्पान्यपनय ऐं श्रीं आं क्ष्रूं क्रों स्वाहा।

२०—शिखाबन्धनमन्त्रः—(६।१४०-१४२)

ऐं ग्लूं ब्लूं चण्डातिचण्डमहाचण्डचण्डचण्डोग्रकापालिनि मां रक्ष रक्ष सर्वप्रमादेभ्यो हूं हूं फट् फट् स्वाहा।

२१—द्वारदेवतापूजा—(६।१४३)

ओं द्वारदेवताभ्यो नमः (?)

२२—पूजासाक्ष्याय मन्त्रः—(६।१४५-४७)

ओं देवि में प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभूत्सदा।
तन्निः सारय चित्तात् त्वं पापं फट् फट् च ते नमः॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥ हूं फट्।

२३—देव्यधिष्ठानविनियोगः -(६।१५२-१५४)

ओं अस्य श्री देव्यधिष्ठानमन्त्रस्य आत्रेय ऋषिः जगतीछन्दः सर्वे देवाश्च देवताः ऐं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकं देव्यधिष्ठाने विनियोगः।

२४—देव्यधिष्ठापनमन्त्रः—(६।१५५-१५९)

ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें ह्स्फ्रें एह्येहि भगवति गुह्यकालि पूजालयं प्रविश दृष्टिमर्चोपकरणे सन्निवेशय सर्वोपद्रवेभ्यः मां रक्ष रक्ष त्वय्यधिष्ठितायामहं पूजामारभे फ्रें क्रों क्रौं फट् स्वाहा। पुनः बद्धाञ्जलिः अधोलिखितान् पञ्च श्लोकान् पठेत् (६।१६१-१६५)।

गुह्यकालि परेशानि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
अत्राधिष्ठानमाधेहि परिवारगणैः सह॥
यथाशक्ति यथालाभं त्वदर्थमुपकल्पिते।
दृष्टिं निवेशयेशानि पूजोपकरणेऽखिले॥
जलेऽनुलेपने पुष्पे धूपे दीपे बलौ तथा।
नैवेद्येऽपि च ताम्बूले पूजोपकरणेऽखिले॥
अधिष्ठितायां त्वय्यम्ब विघ्नाः नंक्ष्यन्ति सर्वशः।
भूतानि विद्रविष्यन्ति मम रक्षा भविष्यति॥
मनोरथाश्च मे सर्वे सेत्स्यन्ति त्वत्प्रसादतः।
पूजा च सफला देवि भवित्री त्वत्कृपावशात्॥

२५—गुह्यकाल्याः पूजासम्भारवस्तूनामुपचाराणां विनियोगः—(६।१८१-१८३)।

ओं अस्य श्री गुह्यकालीसंभारवस्तुनः जमदग्निऋषिः प्रतिष्ठा छन्दः उत्तानाङ्गिरा देवता रं बीजं हूं शक्तिः ह्लीं कीलकं पूजासंभारसामग्रीशोधने विनियोगः।

(२६) भूमिशुद्धिमन्त्रः (६।१८४)
ह्रीं श्रीं छ्रीं फ्रें ऐं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।
(२७) भूम्यभिन्त्रणमन्त्रः (६।१८५-१८६)
ओं क्लीं श्रीं वाराहि पवित्रा भव भूमे हूं फट् स्वाहा।
(२८) स्वासनशुद्धिमन्त्रः (६।१८७-१८८)
ओं ऐं ह्रीं फ्रें श्रीं स्त्रीं कामपीठाय कामसंभवाय कामार्हते हूं फट् नमः।
(२९) पूजायाः सर्वोपकरणानां शुद्धिमन्त्रः (६।१८९-१९०)
आं ऐं ओं क्लीं ह्रीं श्रीं हूं फ्रें ग्लूं क्ष्रों पवित्रोदकाय फट् फट् नमः।
(३०) कायवाक्चित्तशोधनमन्त्रः (६।१९२-१९४)
ओं ग्रूं आं ईं ह्रीं ग्लूं श्रीं हूं सौः क्षौं स्हौः फ्रें ख्फ्रें कायं वाचं चित्तं मे शोधयाशेषवृजिनान्यपनय स्वाहा।
३१—सकलसाधारणासनशुद्धिमन्त्रः (६।१९८)
ओं ह्रौं फ्रें ख्फ्रें फ्रों ब्लौं अशेषमासनं पावय फट् स्वाहा।
पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयानां शुद्धिः जलशुद्धिप्रयुक्ता (६।१९९)
३२—जलशुद्धिमन्त्रः (६।२००-२०१)
ओं वरुणदेवताय जलाय हूं फट्।
३३ –अर्घदानमन्त्रः (६।२०४)
एषोऽर्घः ओं गुह्यकाल्यै स्वाहा।
३४—आचमनीयदानमन्त्रः (६।२०६)
इदमाचमनीयं ओं गुह्यकाल्यै स्वधा।
३५—मधुपर्कशोधनमन्त्रः
ऐं आं ह्रीं फ्रें फ्रीं फ्रूं क्षौं स्हौः सौः ह्लूं क्रें ह्स्ख्फ्रें पावय पावय हूं फट् स्वाहा।
३६ —मधुपर्कदानमन्त्रः (६।२०९)
एष मधुपर्कः ओं गुह्यकाल्यै स्वधा।
३७—वस्त्रशुद्धिमन्त्रः ६।२२१-२२३)
ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें क्लूं ब्लूं ब्लौं र्क्ष्रीं क्ष्र्ह्लीं ज्र्क्रीं मोहिनि वशिनि वस्त्रं पवित्रय फट् नमः स्वाहा।
३८—भूषणशुद्धिमन्त्रः (६।२२६-२२७)
आं क्रों क्षौं क्रौं ग्लूं ब्लूं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल फट् स्वाहा।
३९—चन्दनशुद्धिमन्त्रः (६।२३१-२३२)
ह्रीं गन्धर्वदेवनाय चन्दनानुलेपनाय हूं फट्।
४०—पुष्पशुद्धिमन्त्रः (६।२४३-२४६)
ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं फ्रें लक्ष्मीदेवताय पुष्पाय पुष्पस्रजे पत्राय पत्रस्रजे जलजाय स्थलजाय सगन्धाय निर्गन्धाय नानारूपाय हूं फट्।
४१—धूपशुद्धिमन्त्रः (६।२५६-२५८)
ऐं क्लीं श्रीं ब्लैं ब्लौं वनस्पतिदैवताय दारुनिर्यासाय अप्सरोदेवताय सत्त्वाङ्गसंभवाय हूं फट्।

४२—दीपशुद्धिमन्त्रः (६।२६७-२६८)

ओं ऐं क्षौं रं वह्निदैवताय दीपाय घृताक्ताय (तैलाक्तायं वा) हूं फट् ।

४३—अञ्जनशुद्धिमन्त्रः (६।२७५-२७६)

ऐं ओं ह्रीं श्रीं क्लीं श्रीं स्त्रीं फ्रें क्षौं वह कह धक धक हूं फट् नमः स्वाहा ।

४४—नैवेद्यशुद्धिमन्त्रः (६।२९८-२९९)

ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं फ्रें हूं ग्लूं क्रों नैवेद्यानि शोधय शोधय हूं फट् नमः स्वाहा ।

४५—पुनराचमनीयशुद्धिस्तु (६।३००)

उक्ताचमनीयशुद्धिमन्त्रेणैव कार्या ।

'नैवेद्यानन्तरं देयमित्येतस्य विनिश्चयः' । ३०१।

४६—सिन्दूरशोधनमन्त्रः (६।३२४-२५)

ऐं क्लीं श्रीं स्त्रीं फ्रें ओं शचीदैवताय सिन्दूराय हूं फट् स्वाहा ।

४७ —अलक्तकशुद्धिमन्त्रः (६।३२६)

अं अलक्तकाय फट् ।

४८—ताम्बूलशुद्धिमन्त्रः (६३५-३३७)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं क्लीं ग्लूं ह्रौं विद्याधरदैवताय रागहेतुकाय ताम्बूलाय हूं फट् ।

४९—पादुकाशुद्धिमन्त्रः (६।३३८-३३९)

ओं ग्लौं पादुकाभ्यां सोमदैवताभ्यां हूं फट् स्वाहा ।

५०—छत्रशुद्धिमन्त्रः (६।३४२-३४४)

ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रों फ्रौं फ्रें ब्लूं ख्फ्रें स्हौं छत्राय इन्द्रदैवताय वरुणाधिदैवताय शोधय शोधय पावय पावय हूं फट् स्वाहा ।

५१—चामरशुद्धिमन्त्रः (६।३४९-३५०)

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें ख्फ्रें क्रों क्ष्म्रूं ख्फ्क्ष्रूं सुरभिदैवताय चामराय हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५२—व्यजनशुद्धिमन्त्रः (६।३५३-३५४)

ओं श्रीं क्लीं ईं क्रीं क्षूं ख्फ्क्ष्रं ह्रौं ह्रां वायुदैवताय व्यजनाय हूं फट् स्वाहा ।

५३—मालाशुद्धिमन्त्रः (६।३६९-३७०)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें क्लूं फ्रें स्हौः सौः क्ष्रों स्रजं पावय पावय हूं फट् स्वाहा ।

५४—मद्यस्य तदनुकल्पस्य च शुद्धिमन्त्रः (६।४४४-४४६)

ओं ऐं आं ह्रीं क्लीं श्रीं हूं क्रों फ्रें फ्रें छ्रीं स्हौः सौः × [अमा] ब्लूं क्ष्रौं ख्फ्रें ह्स् फ्रें × (व्यय) ह्स्ख् फ्रें क्ष्र्ह्रीं ज्र्क्रीं क्ष्र्ह्रूं क्षह्म्लव्य्रऊं डाकिनीदैवताय सुराबलये निर्ऋतिदैवताय मांसबलये शुद्धि देहि देहि दोषं नुद नुद ओं ओं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

५५—नैवेद्याङ्गसकलवस्तूनां शुद्धये मन्त्रः (६।४५४-४५६)

ओं ऐं ऐं ऐं ह्रीं क्लीं हूं स्त्रीं श्रीं फ्रें क्रों क्रौं क्रीं ग्लूं ग्लौं ×. (रुचि) भ्रां क्ष्रौं र्क्ष्री क्ह्ल्श्रीं ख्फ्रें ज्र्क्रीं क्ष्र्ह्रीं (फ्म्रग्लऊं ब्लहतह्रस चमंके ?)

अथवा ब्रक्षम्लसह्लछूं स्हक्षलमह्लक्ष्र्ूं (इति निर्णयम्) रम्लव्रीं कम्लव्रीं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

५६—(क) कामपीठासनविधि :—तत्र ऋष्यादिनिर्देशः (६।४५८-४६०।)

ओं अस्य कामपीठोपवेशनस्य नारायणऋषिः प्रतिष्ठाच्छन्दः कूर्मरूपी विष्णुः देवता पूजार्थं कामपीठोपवेशने विनियोगः ।

(ख) तत्र विघ्नापसारणविधिः (६।४६२-४६२)

ओं क्षूं दारय दारय विघ्नं हूं फट् इति मन्त्रेण सिद्धार्थाक्षतान् विकिरेत् । पार्ष्णिघातत्रयेण भौमान् विघ्नान् तालत्रयेण अन्तरिक्षगान् विघ्नान् दिव्येक्षणेक्षणैः दिव्यान् विघ्नानपसारयेत् ।

(ग) आसनशुद्धिमन्त्रस्तत्र (६।४६३-४६४)

१— पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ॥

२—(६।४६५-४७१) ओं ऐं लं मां धारय धारय आसनं पावय पावय पवित्रे वैष्णवि हूं फट् स्वाहा इति पठित्वा ।

पुनः—ओं आधारशक्तिकमलासनाय नमः ओं ऐं कामपीठाय नमः अं फट् इति मन्त्रं पठन् तत्रोदङ्मुख उपविशेत् ।

पुनः—वामभागे गुरुभ्यो नमः, दक्षभागे गणेशाय नमः, सम्मुखे गुह्यकाल्यै नमः इति पठित्वा पुष्पं गृह्णीयात् तच्च कराभ्यां मर्दयित्वा उपनासं समाघ्राय वामभागे वक्ष्यमाणं मन्त्रं पठन् तत्पुष्पं दूरेऽनवलोकयन् प्रक्षिपेत् मन्त्रस्तु 'ओं ह्लीं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।'

५७—भूतशुद्धिरत्र (६।४७२-४८८।)

हृदयकमलतः ज्वलद्दीपशिखाकृतिमात्मानं सुषुम्णा नाडीमार्गेण ठौं इत्युच्चरन् शिरःस्थिते सहस्रदलमध्यस्थे परमात्मनि संयोजयेत् । पुनः लिङ्गशरीरप्रकृतीनि पञ्चभूतानि तत्र तत्र विलीनानि तत्तद्रूपैर्विचिन्त्य देहभूमिं लिङ्गपीठभुवि वारिणि, देहजलं हृत्तेजसि, तत्तेजः मुखसंस्थे समीरणे तं वायुं भालगगने च विचिन्तयेत् । पुनः जीवात्मानं परमात्मनि संयोजयेत् । बुद्ध्यहङ्कारप्रभृतीन् सर्वान् तत्र लीनान् विभाव्य वामनासापुटेन समीरणं पूरयित्वा 'यं' इति धूम्र वर्णं विभावयेत् पुनः 'यं' बीजं पञ्चाशद्वारमुच्चरेत् तदुत्पन्नेन वायुना शुष्कं देहं विचिन्तयेत् पुनः दक्षनासापुटेन तं वायुं रेचयेत् ।

सुषुम्णानाडीमार्गेण सर्वशः वायुमुत्तोल्य 'रं' बीजं रक्तवर्णं विभाव्य पञ्चाशद्वारमुच्चरेत् देहं तेन दग्धं विचिन्तयेत् पुनः पापात्मकं शरीरं भस्मरूपं विभाव्य वामनासापुटेन वायुं रेचयेत् ।

पुनः वामनासापुटेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलमध्यगं चन्द्ररूपमर्थात् शुभ्रं निष्कलुषं परमात्मानं विचिन्त्य 'वं' इति बीजं पञ्चाशद्वारमुच्चरेत् तच्चन्द्रतश्च सुधायाः वृष्टिर्भजतीति परिकल्प्य तया देहमाप्लावयेत् । ततः 'लं' बीजमुच्चरन् शरीरशुद्धिं कुर्यात् ।

पुनः पुरा लीनीकृतानि पञ्चभूतानि यथास्थानं स्थापयित्वा ब्रह्मबीजं "ठौं" इत्युच्चरन् अहङ्कारादितत्त्वैः सह परमात्मनः जीवात्मानं समाकृष्य हृदम्बुजे स्थापयेत् । पुनः देवीरूपमात्मानं चिन्तयेत् इयं भूतशुद्धिः महापापवृन्दं नाशयति ।

(ङ) भूतापसारणमन्त्रः (६।४८६-४९३।)

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूताः विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ।
अपसर्पन्तु ते सर्वे कालीपूजां करोम्यहम् ॥
(इतिपौराणिकमन्त्रः)

ऐं ह्रीं क्षूं स्हौंः हूं ढ्रीं सौंः क्ष्रौं ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें पिशाचभूतवेतालरक्षसान् उत्सारय उत्सारय यावत् पूजां करोम्यहम् हूं फट् स्वाहा ।

इत्थं भूतशुद्धिं विधाय तत्तन्मन्त्रषडङ्गन्यासं कुर्यात् (६।४९४)

५८—पुनरत्र प्राणायामविधिः (६।४९५-४९८)

मूलमन्त्रं षोडशवारं जपित्वा वामनासापुटेन वायुं बलेन पूरयेत् पुनस्तन्मन्त्रस्य चतुष्षष्ट्यावृत्त्या वायुं विकुम्भयेत् पुनस्तन्मन्त्रस्य द्वात्रिंशदावृत्त्या दक्षनासापुटेन सकलं वायुं रेचयेत् । एवं प्राणायामः संपद्यते । अयं च प्राणायामः वारत्रयं करणीयः । ततोऽधिकं क्रियते चेत् फलाधिक्यं स्यात्— इत्यपि स्फुटमिह निर्देशः ।

५९—मातृकान्यासः (६।४९९-५०२)

एतस्य करणे सति फलाधिक्यं जायते अकरणे तु प्रत्यवायो न भवति—इति निर्देशः । यद्यप्यस्य बहवो भेदास्तथापि प्रकृतिरूपः शुद्धः मातृकान्यासः प्रथमं निर्दिश्यते पश्चात् सकलाः विकृतिरूपास्ते निर्दिष्टाः भवेयुः ।

(क) तत्रैतन्न्यासविनियोगः (६।५०२-५०५)

अस्य मातृकाख्यन्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीच्छन्दः सरस्वती मातृका देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः अमुकदेवतामन्त्राङ्गत्वेन मातृकान्यासे विनियोगः ।

(ख) मातृकान्यासस्य षडङ्गन्यासः (६।५०५-५१०)

१—ब्रह्मणे ऋषये नमः इति शिरसि
२—गायत्र्यै छन्दसे नमः इति मुखे
३—हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः इति गुह्ये
४—श्री मातृकासरस्वत्यै नमः इति हृदि
५—स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः इति पदयोः
६—ओं ब्रह्मणे ऋषये नमः, ओं गायत्र्यै छन्दसे नमः, ओं मातृका सरस्वत्यै देवतायै नमः, ओं हल्भ्यो नमः, ओं स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः इति सकलशरीरे न्यासः । मम श्री गुह्यकालीमन्त्राङ्गत्वेन वर्णन्यासे विनियोगाय नमः—इति करसम्पुटयोर्न्यसेत् ।

(ग) अस्याःषडङ्गन्यासः (६।५१०-५१७)

१ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः

२ इं चं छं जं झं ञं, ईं शिरसे स्वाहा

३ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्

४ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं

५ ओं पं फं वं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्

६ अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः आस्त्राय फट् इति करं भ्रामयित्वा सर्वाङ्गे न्यस्येत् ।

(घ) मातृकाध्यानम् ६।५१९-५२१

मातृका श्वेतदेहाभा त्रिनेत्रा शशिशेखरा ।
पञ्चाशद्वर्णरचितमुखबाहुशिरःपदा ॥
चतुर्भुजा वामदोर्भ्यां सुधाकुम्भं च पुस्तकम् ।
दधती दक्षहस्ताभ्यां मुद्रामक्षस्रजं तथा ॥
तुङ्गपीनस्तनी स्मेरमुखी श्वेताम्बुजासना ।
ध्यात्वेत्थं मानसैरेवोपचारैः परिपूज्य च ॥

एतस्याः मानसोपचारपूजा ६।५२१-५२२

(क) अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् बिन्दुसमन्वितान् ।
(ख) अङ्गेषु वक्ष्यमाणेषु विन्यसेदक्षरान् क्रमात् ॥

पुनर्न्यासोङ्गेषु निम्ननिर्दिष्टेषु निम्ननिर्दिष्टमन्त्रैः (६।५२२-५२९)

१—ललाटम्, २—मुखवृत्तम् ३—दक्षनेत्रम् ४—वामनेत्रम् ५—दक्षकर्णम् ६—वामकर्णम् ७—दक्षनासापुटम् ८—वामनासापुटम् ९—दक्षगण्डः १०—वामगण्डः ११—ओष्ठः १२—अधरम् १३—ऊर्ध्वदन्ताः १४ अधोदन्ताः १५—मूर्द्धा १६—जिह्वा १७—दक्षिणभुजमूलम् १८—कूर्परः १९—मणिबन्धः २०—अङ्गुलीमूलम् २१ - अङ्गुल्यग्रम् २२—वामभुजमूलम् २३—वामकूर्परम् २४—वाममणिबन्धः २५—वामाङ्गुलीमूलम् २६—वामाङ्गुल्यग्रम् २७ - दक्षिणपन्मूलम् २८—दक्षिणजानुमध्यम् २९—दक्षिणगुल्फकं ३०—दक्षपादाङ्गुलीमूलम् ३१—दक्षपादाङ्गुल्यग्रम् ३२—वामपन्मूलम् ३३—वामजानुमध्यम् ३४—वामगुल्फकम् ३५—वामपादाङ्गुलीमूलम् ३६—वामपादाङ्गुल्यग्रम् ३७—दक्षपार्श्वम् ३८—वामपार्श्वम् ३९—पृष्ठः ४०—नाभिः ४१—जठरः ४२—हृदयम् ४३—दक्षांसः ४४—दक्षककुत् ४५—वामांसः ४६—वामककुत् ४७—दक्षकरः ४८—(हृदादि ?) वामकरः ४९—दक्षकरमूलम् ५०—वामकरमूलम् ५१—पादयोः ५२—सर्वाङ्गव्यापकम्—एतानि निर्दिष्टाङ्गानि ।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं ज्ञं ।

एतासां मातृकाणां यथायथमुच्चारणेन यथाक्रममङ्गानां स्पर्शः कार्यं इति मातृकान्यासः ।

सामान्यतोमातृकान्यासानां द्वादश भेदाः (३।५३०-५३५)

(१) केवला प्रणवरहिता मातृका

(२) शुद्धा प्रणवयुक्ता

(३) कालातीता आद्यावन्ते च प्रणवयुक्ता

(४) बिन्दुरहिता नित्या

(५) बिन्दुरहिता प्रणवेनादौ युक्ता ज्ञानदा

(६) बिन्दुरहिता आद्यावन्ते च प्रणवयुक्ता मोक्षदा

(७) विपरीतक्रमेण क्षकारपुरस्सरा यथोर्ध्वमुक्ता भवति यदि तदा अन्या षड्यो निर्दिष्टा जायन्ते मातृकास्तासु प्रथमा स्थूला

(८) सूक्ष्मा (९) स्वप्रकाशा (१०) अविग्रहा (११) निर्गुणा (१२) अमृता चैतासामूर्ध्वंदर्शितेष्वङ्गेषु न्यासो भवति । मातृकापदं वर्णावलीं सङ्केतयत्यकारादि क्षकारान्ताम् ।

गुह्यकाल्याः षट् विशेषमातृकाः (३४०-५४३)

(१) आदौ ह्लीं मन्त्रं योजयित्वा सिद्धिदा सा जायते

(२) अन्ते ह्लीं मन्त्रं योजयित्वा कौलिकी भवति ।

(३) आदौ छ्रीं मन्त्रं योजयित्वा करालिनी भवति ।

(४) अन्ते छ्रीं मन्त्रं योजयित्वा विरजा भवति ।

(५) आदौ फ्रें मन्त्रं योजयित्वा भोगदा जायते ।

(६) अन्ते फ्रें मन्त्रं योजयित्वा विजया जायते न्यासस्तु पूर्ववत् । मातृकाऽत्रापि वर्णावली ।

विराट्न्यासः

विराट्न्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः (६।५४५-५७९)

विराट्न्यासस्य कालाग्नीरुद्रऋषिः अनुष्टुप्छन्दः निर्वाणमातृका देवता ओं बीजं फ्रें शक्तिः नमः कीलकं मुक्तये विनियोगः इति संस्मृत्य हस्ताभ्यामेतदृष्यादिमाचरेत् ।

१—ओं फ्रें अं ज्वालामालिनरसिंहधूमकालीविग्रहाभ्यां नमः इति ललाटे । एवं सर्वत्र आदौ ओं फ्रें इति बीजद्वयं मध्ये अं आं आदि यथाक्रमं निर्दिष्टं मातृकाबीजं पुनः निम्ननिर्दिष्टपञ्चाशन्नरसिंहपञ्चाशत्कालीनामाभ्यां सह नमः इति योजयित्वा तेषु तेषु अङ्गेषु न्यसेत् इति दिङ्निर्देशः ।

पञ्चाशन्नरसिंहास्तु		पञ्चाशत्काल्यस्तु	
१ ज्वालामाली	५ क्षोभण	१ धूमकाली	५ घोर
२ कराल	६ सृष्टि	२ जय	६ नाद
३ भीम	७ स्थिति	३ उग्र	७ घन.
४ अपराजित	८ कल्पान्त	४ ज्वाला	८ कल्पान्त

९ अनन्त	३१ प्रचण्ड	९ वेताल	३१ विकराल
१० विरूप	३२ सर्वतोमुख	१० कङ्काल	३२ विभूति
११ वज्रायुध	३३ वज्र	११ नग्न	३३ भोग
१२ पराक्रम	३४ दिव्य	१२ घोर	३४ काल
१३ प्रध्वंसन	३५ भोग	१३ घोरतर	३५ वज्र
१४ विश्वमर्दन	३६ मोक्ष	१४ दुर्जय	३६ विकट
१५ उग्र	३७ लक्ष्मी	१५ मन्थान	३७ विद्या
१६ भद्र	३८ विद्रावण	१६ संहार	३८ कामकला
१७ मृत्यु	३९ कालचक्र	१७ आज्ञा	३९ दक्षिण
१८ सहस्रभुज	४० कृतान्त	१८ रौद्र	४० माया
१९ विद्युज्जिह्व	४१ तप्तहाटक	१९ तिग्म	४१ भद्र
२० घोरदंष्ट्र	४२ भ्रामक	२० कृतान्त	४२ श्मशान
२१ महाकालाग्नि	४३ महारौद्र	२१ महारात्रि	४३ कुल
२२ मेघनाद	४४ विश्वान्तक	२२ संग्राम	४४ नाद
२३ मेघनाद	४५ भयङ्कर	२३ भीम	४५ मुण्ड
२४ विकट	४६ प्रतप्त	२४ शव	४६ सिद्धि
२५ पिङ्गसट	४७ विजय	२५ चण्ड	४७ उदार
२६ प्रदीप्त	४८ सर्वतेजोमय	२६ रुधिर	४८ उन्मत्त
२७ विश्वरूप	४९ ज्वालाजटाल	२७ घोर	४९ सन्ताप
२८ विद्युद्दशन	५० खरनखर	२८ भयङ्कर	५० कपाल
२९ विदार	५१ निर्वाण	२९ सन्त्रास	५१ निर्वाण
३० विक्रम		३० कराल	

६१—साधारणपीठन्यासः (६।५८४-६०६)

अस्य पीठन्यासस्य माण्डूकायन ऋषिः प्रतिष्ठाछन्दः कूर्मो देवता क्लीं बीजं ध्रीं शक्तिः पीठन्यासे विनियोगः।

पीठन्यासस्य षडङ्गन्यासः—

(क) ओं ऐं ह्रीं हृदयाय नमः। ओं ऐं श्रीं शिरसे स्वाहा।
ओं ऐं क्लीं शिखायै वषट्। ओं ऐं ह्रौं कवचाय हूं।
ओं ऐं क्रों नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं ऐं क्रौं अस्त्राय फट्॥

(ख) हृदयन्यासः, ओं आधारशक्त्यै नमः। ओं मूलप्रकृत्यै नमः। ओं कूर्माय नमः। ओं अनन्ताय नमः। ओं पृथिव्यै नमः। ओं क्षीरसमुद्राय नमः। ओं श्वेतद्वीपाय नमः। ओं कल्पवृक्षाय नमः। ओं रत्नवेदिकायै नमः। ओं रत्नसिंहासनाय नमः इति हृदि न्यसेत्।

(ग) ओं धर्माय नमः इति दक्षिणांसे ओं ज्ञानाय नमः इति वामांसे ओं वैराग्याय नमः इति वामोरौ ओं ऐश्वर्याय नमः इति दक्षसक्थिनि ओं अधर्माय नमः इति वदने ओं अज्ञानाय नमः इति वामपार्श्वे ओं अवैराग्याय नमः इति नाभौ ओं अनैश्वर्याय नमः इति दक्षिणपार्श्वे न्यासं कृत्वा पुनः।

(घ) ओं अं अनन्तायनमः । ओं उं पद्माय नमः । ओं मं शेषाय नमः । ओं सूर्यं मण्डलायानन्तसीम्ने नमः । ओं सोममण्डलाय धर्माय नमः । ओं वह्निमण्डलाय ज्ञानाय नमः । ओं सं वैराग्याय नमः । ओं रं ऐश्वर्याय नमः । ओं त्रं अधर्माय नमः । ओं लां अज्ञानाय नमः । ओं लौं अवैराग्याय नमः । ओं लीं अनैश्वर्याय नमः । ओं आं आत्मने नमः । ओं अं अन्तरात्मने नमः । ओं पं परमात्मने नमः । ओं ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, इति हृदये न्यासः कर्तव्यः ।

हृदय कमलस्याष्टकेशरेषु न्यासः

आं प्रभायै नमः इति पूर्वस्यां दिशि

ईं मायायै नमः इति पूर्वदक्षिणयोः कोणे

ऊं जयायै नमः इति दक्षिणस्यां दिशि

एं सूक्ष्मायै नमः इति दक्षिणपश्चिमकोणे

ऐं विशुद्धायै नमः इति पश्चिमायां दिशि

ओं नन्दिन्यै नमः इयि पश्चिमोत्तरकोणे

औं सुप्रभायै नमः इति उत्तरस्यां दिशि

अं विजयायै नमः इति उत्तरपूर्वकोणे

अः क्ष्रौं सर्वसिद्धिप्रदायै वज्रनखदंष्टायुधाय महासिंहाय फट् फट् इति कर्णिकासु न्यासो विधेयः ।

ह्रौं सदाशिवमहाप्रेतासनाय नमः

फ्रें श्रीं गुह्यकाल्यासनाय नमः इति

६२—गुह्यकाल्याः योगरत्नाख्यो विशेषपीठन्यासः (६।६११-६६३)

(क) अस्य योगरत्नाख्यपीठन्यासस्य विरूपाक्षऋषिरतिजगती छन्दः सदाशिवो देवता फ्रें बीजं ख्फ्रें शक्तिः हसखफ्रें कीलकं पीठन्यासे विनियोगः ।

(ख) ऋष्यादिन्यासो विधेयः । (ग) ततोऽस्य षडङ्गन्यासः ।

१—रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं हृदयाय नमः ।

२—रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं शिरसे स्वाहा ।

३—रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं शिखायै वषट् ।

४—रस्त्रां रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं कवचाय हूं ।

५—रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

६—रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं अस्त्राय फट्. इति ।

(घ) हृदयन्यासः

ओं फ्रें महामण्डूकाय नमः । ओं फ्रें कूर्माय नमः । ओं फ्रें अनन्ताय नमः । ओं फ्रें पृथिव्यै नमः । ओं फ्रें रक्तसमुद्राय नमः । ओं फ्रें मांसद्वीपाय नमः । ओं फ्रें रक्तमांसद्वीपाय नमः । ओं फ्रें रक्तबालुकायै नमः । ओं फ्रें चामुण्डामण्डलाय नमः । ओं फ्रें भैरवीप्राकाराय नमः । ओं फ्रें महाश्मशानाय नमः । ओं फ्रें वह्नि-ज्वालायै नमः । ओं फ्रें नारान्त्रतोरणाय नमः । ओं फ्रें मुण्डमालायै नमः । ओं फ्रें कल्पवृक्षाय नमः । ओं फ्रें रत्न वेदिकायै नमः । ओं फ्रें रत्नसिंहासनाय नमः इति ।

ओं फ्रें कृतयुगाय नमः इति दक्षिणांसे, ओं फ्रें त्रेतायुगाय नमः इति वामांसे, ओं फ्रें द्वापरयुगाय नमः इति वामोरौ, ओं फ्रें कलियुगाय नमः इति दक्षोरौ, ओं फ्रें ऋग्वेदाय नमः इति वदने, ओं फ्रें यजुर्वेदाय नमः इति इति वामपार्श्वे, ओं फ्रें सामवेदाय नमः इति नाभौ, ओं फ्रें अथर्ववेदाय नमः इति दक्षपार्श्वे, ओं फ्रें आयुर्वेदाय नमः इति दक्षभुजे, ओं फ्रें धनुर्वेदाय नमः इति वामभुजे, ओं फ्रें गान्धर्ववेदाय नमः इति दक्षपादे ओं फ्रें अर्थवेदाय नमः इति वामपादे न्यासः कार्यः ।

पुनः ओं फ्रें इन्द्राय नमः इति दक्षेंऽसे, ओं फ्रें यमाय नम इति वामांसे, ओं फ्रें वरुणाय नमः इति वामोरौ, ओं फ्रें कुबेराय नमः इति दक्षोरौ, ओं फ्रें अग्नये नमः इति वदने, ओं फ्रें निर्ऋतये नमः इति वामपार्श्वे, ओं फ्रें वायवे नमः इति नाभौ, ओं फ्रें ईशानाय नमः इति दक्षपार्श्वे न्यासो विधेयः ।

पुनः ओं फ्रें रक्षफछ्रां ब्रह्मणे फ्रें नमः इति दक्षनेत्रे
ओं फ्रें रक्षफछ्रीं विष्णवे फ्रें नमः इति वामनेत्रे
ओं फ्रें रक्षफछ्रूं रुद्राय फ्रें नमः इति दक्षकर्णे
ओं फ्रें रक्षफछ्रैं ईश्वराय फ्रें नमः इति वामकर्णे
ओं फ्रें रक्षफछ्रौं सदाशिवाय फ्रें नमः इति ललाटे न्यासः ।

पुनः ओं हूं असिताङ्गभैरवाय नमः । ओं हूं रुरु भैरवाय नमः । ओं हूं क्रोधभैरवाय नमः । ओं हूं उग्रभैरवाय नमः । ओं हूं उन्मत्तभैरवाय नमः । ओं हूं चण्डभैरवाय नमः । ओं हूं कपालिभैरवाय नमः । ओं हूं संहारभैरवाय नमः इति हृदयकमलाष्टदलन्यासो विधेयः ।

पुनः हृदयकमलस्थषोडशदलन्यासः

ओं गक्षटहलक्षचक्षफलक्षूं ज्योतिष्टोमाय क्रतवे स्वाहा । ओं तलठलहक्षथलहक्ष दललक्ष क्षरहम्ल्वग्रईऊं अग्निष्टोमाय क्रतवे स्वाहा । ओं दलडक्षवलूहसखों वाजपेयाय क्रतवे स्वाहा । ओं मक्षक्रस्हखफछ्रूं षोडश्यै क्रतवे स्वाहा । ओं डलहक्षम्लां चयनाय क्रतवे स्वाहा । ओं फलक्षह स्हव्य्र ऊं पुण्डरीकाय क्रतवे स्वाहा । ओं पलहक्षक्षमभ्रूहच्रूं राजसूयाय क्रतवे स्वाहा । ओं ह्रसलहसकह्लीं अश्वमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं...... (वार्हस्पत्यम्) वार्हस्पत्याय क्रतवे स्वाहा । ओं क्षक्षक्लफचक्षक्षौं विश्वजिते क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षल्कसहफ्रआं गोमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षक्लस्हफ्रइँ नरमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं ग्लरक्षफ्रथरक्लीं सौत्रामणये क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षकहलह्रस्त्रें छ्रीं अर्धसाविव्यै क्रतवे स्वाहा । ओं .... (सूर्यक्रान्त कूटम्) सूर्यक्रान्ताय क्रतवे स्वाहा । ओं स्हफ्रसल्कह्लओं वलम्भिदाय क्रतवे स्वाहा । इति

ओं ह्रौं शिवाय नमः स्वाहा । ओं ह्रौं परशिवाय नमः स्वाहा ।
ओं ह्रौं परमशिवाय नमः स्वाहा । ओं ह्रौं परापरशिवाय नमः स्वाहा ।
ओं ह्रौं परमेष्ठिशिवाय नमः स्वाहा । ओं ह्रौं परमपरापरशिवाय नमः स्वाहा ।

ओं ह्रौं परापरपरमेष्ठिशिवाय नमः स्वाहा। ओं ह्रों सदाशिवाय नमः स्वाहा। इति शिवन्यासो विधेयः।

ऐं क्रैं धर्माय नमः इति पूर्वस्यां दिशि, ऐं क्लीं ज्ञानाय नमः इति पूर्वदक्षिणकोणे, ऐं दूं वैराग्याय नमः इति दक्षिणस्यांदिशि, ऐं × (ऐश्वर्यं) ऐश्वर्याय नमः इति दक्षिणपश्चिमकोणे, ऐं लूं यशसे नमः इति पश्चिमायां दिशि ऐं कें विवेकाय नमः इति पश्चिमोत्तरकोणे, ऐं क्लीं कामाय नमः इति उत्तरस्यां दिशि, ऐं म्लैं मोक्षाय नमः इति पूर्वोत्तरकोणे न्यासः कर्त्तव्यः।

सर्वस्मादन्ते द्वात्रिंशच्छदपद्मं प्रकल्प्य द्वात्रिंशत्केशरेषु प्रादक्षिण्येनैवं न्यासो विधेयः—

ह्रीं फ्रें हूं इत्यादौ नम इत्यन्ते च योजयित्वा मध्येऽधो निर्दिष्ट देवीनां चतुर्थ्येक वचोरूपं देयम्—कराली, विकराली, महाकाली, अपराजिता, चामुण्डा, भ्रामरी, भीमा, कुरुकुल्ला कपालिनी, घोरनादा, चण्डघण्टा, भैरवी, मुण्डमालिनीं, उल्कामुखी, फेरुवक्त्रा, चर्चिका, सिंहवाहिनी, वज्रकापालिनी, चण्डयोगेश्वरी, मातङ्गी, कुब्जिका, सिद्धिलक्ष्मी, चण्डेश्वरी, ब्रह्माणी, कालिका, दुर्गा, महामाया, महोदरी, कौमारी, वाराही, जयन्ती, गुह्यकालिका।

पुनरेतस्य हृत्पद्मस्य कर्णिकायां ओं कृतान्तकालभीषणाय महाभैरवाय हूं फट् इति न्यासः कार्यः।

शिरःस्थितपद्मस्य कर्णिकायां तु– "ह्रौं शुद्धस्फटिकविशदप्रभाय परमसदाशिवाय हूं फट् नमः स्वाहा" इति न्यासः कार्यः।

इति।

परिशिष्टम् (३)

तान्त्रिकगायत्र्युद्धारः (५।१२६-१६२)

एकाक्षरमन्त्रस्य गायत्री—

(१) ह्रीं भगवत्यै विद्महे महामायायै धीमहि।
तन्न रौद्री प्रचोदयात् ॥

कामोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(२) क्लीं अनङ्गाकुलायै विद्महे भगमालिन्यै धीमहि।
तन्नश्चण्डा प्रचोदयात् ॥

वरुणोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(३) लम्बोदर्यै विद्महे वेगमालायै धीमहि।
तन्नः सृष्टिः प्रचोदयात् ॥

अनलोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(४) हूं चण्डघण्टायै विद्महे ज्वालामालिन्यै धीमहि।
तन्नः प्रभा प्रचोदयात् ॥

सूर्योपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(५) छ्रीं महाघोरायै विद्महे भद्रकाल्यै धीमहि।
तन्न विरूपा प्रचोदयात् ॥

शच्युपास्यमन्त्रस्य गायत्री

(६) कात्यायन्यै विद्महे चण्डिकायै धीमहि।
तन्न भीमा प्रचोदयात् ॥

दानवोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(७) ख्फ्रें कटकटायै विद्महे करालायै धींमहि।
तन्नश्चामुण्डा प्रचोदयात् ॥

मृत्युकालोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(८) ओं कालरात्र्यै विद्महे कालसंकर्षिण्यै धीमहि।
तन्नः काली प्रचोदयात् ॥

भारतोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(९) फ्रें कपालिन्यै विद्महे सिद्धिकराल्यै धीमहि।
तन्न गुह्या प्रचोदयात् ॥

च्यवनोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(१०) स्त्रीं करालिन्यै विद्महे मुण्डमालिन्यै धीमहि।
तन्न देवी प्रचोदयात् ॥

हारीतोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(११) ह्स्ख्फ्रें उग्रचण्डायै विद्महे विकटदंष्ट्रायै धीमहि।
तन्नश्चण्डी प्रचोदयात् ॥

जाबालोपास्यमन्त्रस्य गायत्री —

(१२) उग्रायुधायै विद्महे दिगम्बरायै धीमहि।
तन्नः श्यामा प्रचोदयात् ॥

दक्षोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(१३) त्रिशूलिन्यै विद्महे महोदर्यै धीमहि।
तन्न भीषणा प्रचोदयात् ॥

रामोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(१४) अट्टाट्टहासिन्यै विद्महे घोरदंष्ट्रायै धीमहि।
तन्न अघोरा प्रचोदयात् ॥

हरिण्यकशिपूपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(१५) उल्कामुख्यै विद्महे क़ल्पान्तकाल्यै धीमहि।
तन्नस्तामसी प्रचोदयात् ॥

ब्रह्मोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(१६) वज्राङ्गायै विद्महे कुरुकुल्लायै धीमहि।
तन्न; संहारिणी प्रचोदयात् ॥

वसिष्ठोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(१७) ज्र्क्रीं महाकौलिन्यै विद्महे भीमदंष्ट्रायै धीमहि।
तन्नः कोका प्रचोदयात् ॥

विष्णुतत्त्वमन्त्रस्य गायत्री—

(१८) कुरुकुल्लायै विद्महे केकराक्ष्यै धीमहि।
तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ॥

अम्बाहृदयमन्त्रस्य गायत्री—

(१९) अनाख्यायै विद्महे चैतन्यमय्यै धीमहि।
तन्न भासा प्रचोदयात् ॥

रुद्रोपास्यसन्त्रस्य गायत्री—

(२०) क्ष्रह्लीं जालन्धरायै विद्महे भीषणायै धीमहि।
तन्न महामारी प्रचोदयात् ॥

विश्वेदेवोपास्यमन्त्रस्य गायत्री—

(२१) अभयायै विद्महे सिद्धिदायै धीमहि।
तन्न गौरी प्रचोदयात् ॥

रावणोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रस्य गायत्री—

(२२) ह्स्ख्फ्रौं उन्मत्तायै विद्महे पिङ्गजटायै धीमहि।
तन्नः फेरुः प्रचोदयात् ॥

रावणोपास्यषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रस्य गायत्री—

(२३) फेत्कारिण्यै विद्महे महायोगिन्यै धीमहि।
तन्नः कुक्कुटी प्रचोदयात्॥

अष्टपञ्चाशदक्षरमन्त्रस्य गायत्री —

(२४) ह्स्ख्फ्रीं जयमङ्गलायै विद्महे चण्डयोगेश्वर्यै धीमहि।
तन्नः सिद्धिदा प्रचोदयात्॥

भोगविद्यामन्त्रस्य गायत्री—

(२५) महालक्ष्म्यै विद्महे भोगप्रदायै धीमहि।
तन्नः पद्मा प्रचोदयात्॥

शताक्षरमन्त्रस्य गायत्री—

(२६) आप्यायन्यै विद्महे मनोन्मन्यै धीमहि।
तन्न गुह्येश्वरी प्रचोदयात्॥

सहस्राक्षरमन्त्रस्य गायत्री—

(२७) सौः चण्डिपदिकायै विद्महे लोलजिह्वायै धीमहि।
तन्न धूम्रा प्रचोदयात्॥

विष्णूपास्यायुताक्षरमन्त्रस्य गायत्री—

(२८) महाखेचर्यै विद्महे व्योमकेश्यै धीमहि।
तन्नः पालिनी प्रचोदयात्॥

शिवोपास्यायुताक्षरमन्त्रस्य गायत्री—

(२९) अपमृत्युविनाशिन्यै विद्महे कामाङ्कुशायै धीमहि।
तन्न नीला प्रचोदयात्॥

शाम्भवमन्त्रस्य गायत्री—

(३०) आनन्दायै विद्महे कलातीतायै धीमहि।
तन्नश्चेतना प्रचोदयात्॥

महाशाम्भवमन्त्रस्य गायत्री—

(३१) ज्योतिर्मय्यै विद्महे निर्गुणायै धीमहि।
तन्नः शुद्धा प्रचोदयात्॥

तुरीयामन्त्रस्य गायत्री—

(३०) भावाभासायै विद्महे निष्प्रपञ्चायै धीमहि।
तन्न बोधरूपा प्रचोदयात्॥

महातुरीयामन्त्रस्य गायत्री—

(३३) अनिन्द्रियायै विद्महे ज्ञानरूपायै धीमहि।
तन्न निष्कैवल्या प्रचोदयात्॥

निर्वाणमन्त्रस्य गागत्री –

(३४) विरजायै विद्महे चित्कलायै धीमहि।
तन्नः सत्त्वा प्रचोदयात्॥

महानिर्वाणमन्त्रस्य गायत्री—

(३५) अद्वयायै विद्महे महानिर्वाणायै धीमहि।
तन्न अमृता (अद्वया) प्रचोदयात्॥

परिशिष्टम् (४)

सकलजप्यमन्त्राणां षडङ्गन्यासः

१—एकाक्षरमन्त्रस्य षडङ्गन्यासः (५।१७२-१७३।)

ओं क्रां अंगुष्ठाय नमः, हृदयाय नमः।

ओं क्रीं तर्जन्यै स्वाहा, शिरसे स्वाहा।

ओं क्रूं मध्यमायै वषट्, शिखायै वषट्।

ओं क्रैं अनामिकायै हूं, कवचाय हूं।

ओं क्रौं कनिष्ठायै वौषट्, नेत्रत्रयाय वौषट्।

ओं क्रः कराग्रकरपृष्ठाभ्यां फट्, अस्त्राय फट्

एवं सर्वत्र करन्यासाङ्गन्यासयोरवसरे ऊहेन कार्यं सम्पादनीयम्। अधस्तात् षण्णामङ्गानां न्यासस्य क्रमः प्रस्तूयते करन्यासस्तूह्यः।

२—कामोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१७३-१७४)

फ्रां हृदयाय नमः। फ्रीं शिरसे स्वाहा। फ्रूं शिखायै वषट्। फ्रैं कवचाय हूं। फ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं ह्रीं फ्रें अस्त्राय फट्।

३—वरुणोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१७४-१७५)

छ्रां हृदयाय नमः। छ्रीं शिरसे स्वाहा। छ्रूं शिखायै वषट्। छ्रैं कवचाय हूं। छ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। छ्रः अस्त्राय फट्।

४—अनलोपास्यमनोः षडङ्गन्यसः (५।१७५-१७६)

ओं सिद्धिकराल्यै हृदयाय नमः। फ्रें सिद्धिविकराल्यै शिरसे स्वाहा। हूं चण्डयोगेश्वर्यै शिखायै बषट्। स्वाहा कालसङ्कर्षिण्यै कवचाय हूं। ओं फ्रें हूं वज्रकापालिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं फ्रें हूं गुह्यकाल्यै अस्त्राय फट्।

५—अर्कोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१७९-१८०)

ओं हृदयाय नमः। ह्लीं शिरसे स्वाहा। हूं शिखायै वषट्। छ्रीं कवचाय हूं। फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अस्त्राय फट्।

६—शच्युपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१८०-१८३)

ह्रीं उग्रकाल्यै हृदयाय नमः। छ्रीं कालकाल्यै शिरसे स्वाहा। हूं कृतान्तकाल्यै शिखायै वषट्। स्त्रीं संहारकाल्यै कवचाय हूं। फ्रें कालान्तककाल्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें कल्पान्तकाल्यै अस्त्राय फट्।

७—दानवोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१८४-१९०)

घों ध्रौं ह्लक्षम्लक्ष्यूं रफ्लैं स्हौं ललज्जिह्वायै हृदयाय नमः।

श्रीं ढ्रीं रलहक्षफ्रूं ट्रीं न्रीं विकटदंष्ट्रायै शिरसे स्वाहा।

प्रीं द्रीं रक्षभ्रम्लऊ फ्रीं भ्रीं वज्रदन्तायै शिखायै वषट्।

फ्लीं फ्यूं क्षक्लीं रफ्लीं रफ्रीं कोटराक्ष्यै कवचाय हूं।

रग्रीं क्षरंस्थ्रीं ह्लक्षम्लव्रयूं रध्रीं रक्रीं फेरुतुण्डायै नेत्रत्रयाय वौषट्।

हसखफ्रीं हसखफ्रूं रक्षकभ्रध्रम्लऊं हसखफ्रैं हसखफ्रौं मेघनादायै अस्त्राय फट्।

८—मृत्युकालोपासितमनोः षडङ्गन्यासः (५।१९१-१९७)

ख्फ्रां ह्लां छ्रां फ्रां हृदयाय नमः। ख्फ्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रीं शिरसे स्वाहा।

ख्फ्रूं ह्लूं छ्रूं फ्रूं शिखायै वषट्। ख्फ्रैं ह्लैं छ्रैं फ्रैं कवचाय हूं।

ख्फ्रौं ह्लौं छ्रौं फ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ख्फ्रः ह्लः छ्रः फ्रः अस्त्राय फट्।

९—भरतोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१९६-१९७)

ओं फ्रें हृदयाय नमः। सिद्धिकरालि शिरसे स्वाहा। ह्लीं हूं छ्रीं शिखायै वषट्।

स्त्रीं फ्रें कवचाय हूं। नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्।

१०—च्यवनोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१९७-१९८)

ओं छ्रीं फ्रें हृदयाय नमः। ओं सिद्धिकरालि शिरसे स्वाहा। ओं ह्लीं छ्रीं हूं शिखायै वषट्। ओं स्त्रीं फ्रें कवचाय हूं। ओं नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं स्वाहा अस्त्राय फट्।

११—हारीतोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१९८-१९९)

ओं हूं फ्रें ओं हृदयाय नमः। ओं सिद्धिकरालि ओं शिरसे स्वाहा। ओं ह्लीं छ्रीं हूं ओं शिखायै वषट्। ओं स्त्रीं फ्रें ओं कवचाय हूं। ओं नमः ओं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं स्वाहा ओं अस्त्राय फट्।

१२—जाबालोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।१९९-२२००)

फ्रें स्त्रीं फ्रें फ्रें हृदयाय नमः। फ्रें सिद्धिकरालि फ्रें शिरसे स्वाहा। फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं फ्रें शिखायै वषट्। फ्रें स्त्रीं फ्रें फ्रें कवचाय हूं। फ्रें नमः फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट्। फ्रें स्वाहा फ्रें अस्त्राय फट्।

१३—दक्षोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।२००-२०१)

ओं फ्रें फ्रें फ्रें ओं फ्रें हृदयाय नमः। ओं फ्रें सिद्धिकरालि ओं फ्रें शिरसे स्वाहा। ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं ओं फ्रें शिखायै वषट्। ओं फ्रें स्त्रीं फ्रें ओं फ्रें कवचाय हूं। ओं फ्रें नमः ओं फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं फ्रें स्वाहा ओं फ्रें अस्त्राय फट्।

१४—रामोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।२०१-२०६)

ओं ह्लीं ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रां ह्स्फ्रां स्फ्ह्ल्क्ष्रां हृदयाय नमः। ओं ह्लीं ख्फ्रीं ह्स्फ्रीं ह्स्ख्फ्रीं स्फ्ह्ल्क्ष्रीं शिरसे स्वाहा। ओं ह्लीं ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रूं स्फ्ह्ल्क्ष्रूं शिखायै वषट्। ओं ह्लीं ख्फ्रैं ह्स्फ्रैं ह्स्ख् फ्रैं स्फ्ह्ल्क्ष्रैं कवचाय हूं। ओं ह्लीं ख्फ्रौं ह्स्फ्रौं ह्स्ख्फ्रौं स्फ्ह्ल्क्ष्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं ह्लीं ख्फ्रः ह्स्फ्रः ह्स्ख्फ्रः ग्लब्लौं अस्त्राय फट्।

१५—हरिण्यकशिपूपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।२०६-२१५)

ओं फ्रें ह्लीं ह्स्ख्फ्रें ख्फ्रें स्हक्षम्लव्य्रऊ कमहलचहलक्षरच्रीं हलफकह्लीं श्मशानवासिन्यै हृदयाय नमः। ओं हूं छ्रीं ह्स्फ्रें क्ष्र्ह्लीं भसखयमऊं खलहव्नरग्क्षरछ्रीं ह्लक्षम्लह्रयूं खट्वाङ्गधारिण्यै शिरसे स्वाहा। ओं क्लीं स्त्रीं क्षरह्लूं जरक्रीं

क्षसह्म्लव्य्रऊं क्षह्म्लव्य्रऊं ह्लक्षम्लफ्र्यूं उल्कामुख्यै शिखायै वषट् । ओं ऐं श्रीं क्ष्रौं स्हौं सहक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रईं र्क्षफम्रघ्रम्लऊं मुण्डमालिन्यै कवचाय हूं । ओं क्रीं ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रौं टह्लक्षद्रडलरफ्रीं क्ष्लव्य्रम्रछ्रखीं स्हक्षम्लव्य्रईऊं रक्षस्रम्रघ्रम्लऊं चण्डकापालिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट् । ग्लैं रुक्ष्रीं र्ह्लीं खफ्रक्ष्रूं ख्फ्रक्रूं क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्ष्रहम्लव्य्रईऊं र्क्षब्रम्रघ्रग्लऊं चण्डयोगेश्वर्यै अस्त्राय फट् ।

१६—ब्रह्मोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।२१५-२१६)

रह्लीं हसखफ्रें हृदयाय नमः । ख्फ्रें ओं शिरसे स्वाहा । ह्लीं श्रीं फ्रें शिखायै वषट् । सिद्धिकरालि कवचाय हूं । छ्रीं क्लीं फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट् । नमः अस्त्राय फट् ।

१७—वसिष्ठोपास्यमनोः षडङ्गन्यासः (५।२१६-२२०)

ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं हृदयाय नमः । र्ह्लां र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लैं र्ह्लौं शिरसे स्वाहा । क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं शिखायै वषट् । रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं कवचाय हूं । र्घ्रां र्घ्रीं र्घ्रूं र्घ्रैं र्घ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । र्फ्रां र्फ्रीं र्फ्रूं र्फ्रैं र्फ्रौं अस्त्राय फट् ।

१८—विष्णुतत्त्वमनोः षडङ्गन्यासः (५।२२०-२३०)

ओं त्लठ्लह्क्षथ्ल्ह्क्षद्ल्ह्क्षरहम्लव्य्रईऊं छ्रम्लक्षफलह्लहस्रीं रमयप्-क्षत्रूं शम्लक्लयक्षह्लूं छत्क्षठ्नह्लव्लीं रहक्षम्लब्य्रखफछ्रस्त्रह्लीं ओं हृदयाय नमः ।

ओं द्लड्क्षवलह्सखफ्रौं सफक्लमहप्रक्लीं रसमयक्षह्लस्त्रीं कप्रम्लक्षयक्लीं ट्लत्ल-क्षफ्रखफछ्रीं र्क्षफ्रसंमहह्लव्य्रऊं ओं शिरसे स्वाहा ।

ओं क्ष्क्षक्लफ्रच्क्षक्षौं हम्लक्षब्रसह्लीं पंट्क्षम्लस्हखफ्रूं व्रतरयह्लक्षम्लूं यस्हप्लम्-क्षह्लूं शम्लह्लव्य्रख्फ्रें ओं शिखायै वषट् ।

ओं डलहक्षम्लां ज्रलह्लफ्रव्य्रऊं तरफर्क्षम्लह्लौं म्रलक्षकह्लखफ्रछ्रीं फ्रदमहयनह्लूं हसखफ्रम्लक्षव्य्रऊं ओं कवचाय हूं ।

ओं प्ल्ह्क्षक्ष्मझ्रहच्रूं सहब्रह्लखफ्रयीं हक्षमकह्लछ्रीं क्षब्लकस्त्रीं ल्कसमयग्लह्लफ्रूं फग्लसहमक्षव्लूं ओं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

ओं ह्लस्लहसकह्लीं रक्षलहव्य्रईं समलक्षग्लस्त्रीं र्क्षरजक्ष्मक्ष्मरह्लम्लव्य्रछ्रीं धमसर-ब्लयक्ष्रूं लगम्क्षखफ्रसह्लं ओं अस्त्राय फट् ।

१९—अम्बाहृदयमनोः षडङ्गन्यासः (५।२३१-२३२)

ओं हृदयाय नमः । ह्लीं शिरसे स्वाहा । खफ्रें शिखायै वषट् । हसखफ्रीं कवचाय हूं । खफ्रें नेत्रत्रयाय वौषट् । क्लीं अस्त्राय फट् ।

२०—रुद्रोपासितषोडश्या मन्त्रस्य षडङ्गन्यासः (५।२३२-२३४)

ह्लीं श्रीं ओं हृदयाय नमः । खफ्रें ह्स्ख्फ्रें शिरसे स्वाहा । क्षह्लम्लव्य्रऊं शिखायै वषट् । र्क्ष्रीं ज्र्क्रीं स्त्रीं छ्रीं हूं कवचाय हूं । ख्फ्रें ठ्रीं ओं नेत्रत्रयाय वौषट् । नमः अस्त्राय फट् ।

२१—विश्वेदेवोपास्याया मनोः षडङ्गन्यासः (५।२३४-२३८)

ह्लीं श्रीं ओं हृदयाय नमः । क्लीं छ्रीं शिरसे स्वाहा । स्त्रीं हूं शिखायै वषट् ।

फ्रें क्रीं ख्फ्रें कवचाय हूं । ठ्रीं ध्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । फ्रों रह्लीं स्वाहा अस्त्राय फट् ।

२२—रावणोपासितायाः सप्तदशाक्षरमनोः षडङ्गन्यासः (५।२३८-२५३)

क्षरह्लीं क्षरह्लीं स्हक्ष्मह्लक्ष्ग्लूं रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लीं मुण्डमालिन्यै हृदयाय नमः ।

खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं कामाङ्कुशायै शिरसे स्वाहा । खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं रलहृक्षक्लस्हफ्रा हसखफ्रीं हसखफ्रूं कापालिन्यै शिखायै वषट् । खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं रलहक्षक्लस्हफ्रओं क्ष्रक्लीं क्ष्रक्लूं डमरुडामर्य्यै कवचाय हूं । क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं सहलक्षत्रठ्क्षीं सफहलक्षीं सफहलक्षूं संमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट् । रजह्रक्ष्रीं रजह्रक्ष्रूं जलहक्षछपग्रहसखफ्रीं ख्फ्रीं ख्फ्रीं गुह्यकाल्यै अस्त्राय फट् ।

२३—रावणोपासितायाः षट्त्रिंशदर्णमनोः षडङ्गन्यासः (५।२५४-२५७)

ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें हृदयाय नमः । छ्रीं हूं स्त्रीं ख्फ्रें ह्लीं शिरसे स्वाहा । गुह्यकालि शिखायै वषट् । ह्लीं खफ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं फ्रें क्लीं कवचाय हूं । श्रीं ह्लीं ऐं ओं ह्लीं छ्रीं स्त्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । फट् फट् फट् नमः स्वाहा अस्त्राय फट् ।

२४—भोगविद्यामनोः षडङ्गन्यासः (५।२५८-२६५)

रावणोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण सह 'हृदयाय नमः' इति नियोज्यम् । विश्वेदेवाराध्यषोडशार्णमन्त्रेण सह 'शिरसे स्वाहा' इति नियोज्यम् । वसिष्ठाराध्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण सह 'शिखायै वषट्' इति नियोज्यम् । रामोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण सह 'कवचाय हूं' इति नियोज्यम् । ब्रह्माराध्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण सह 'नेत्रत्रयाय वौषट्' इति महारुद्राराध्यमहाषोडश्या मन्त्रेण सह 'अस्त्राय फट्' इति च योजनीयम् ।

२५—शताक्षरमनोः षडङ्गन्यासः (५।२६६-२७२)

ख्फ्रें ख्फ्रीं फ्रों चामुण्डे हृदयाय नमः । ह्लीं हूं स्त्रीं छ्रीं विच्चे घोरे शिरसे स्वाहा । क्लीं ब्लूं गुह्येश्वरि शिखायै वषट् । ओं फ्रें सिद्धिकरालि कवचाय हूं । स्हौं स्फ्रें अवर्णेश्वरि नेत्रत्रयाय वौषट् । फ्रें स्वाहा प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणदे अस्त्राय फट् ।

२६—सहस्राक्षरमनोः षडङ्गन्यासः (५।२७२-२८९)

ओं खफ्रां ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रें ख्फ्रैं ख्फ्रों ख्फ्रौं ऐं चण्डकापालिनि हृदयाय नमः । ह्लीं ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रों ह्स्ख्फ्रौं फ्रें फ्रौं वज्रकापालिनि शिरसे स्वाहा । क्लीं क्षरस्त्रां क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रें क्षरस्त्रैं क्षरस्त्रों क्षरस्त्रौं हूं सिद्धकपालिनि शिखायै वषट् । ह्रीं खफछ्रां खफछ्रीं खफछ्रूं खफछ्रें खफछ्रैं खफछ्रों खफछ्रौं क्ष्रौं ब्रह्मकापालिनि कवचाय हूं । छ्रीं कहलश्रां कहलश्रीं कहलश्रूं कहलश्रें कहलश्रैं कहलश्रों कहलश्रौं स्हौं विष्णुकापालिनि नेत्रत्रयाय वौषट् । क्रों क्लक्ष्रां क्लक्ष्रीं क्लक्ष्रूं क्लक्ष्रें क्लक्ष्रैं क्लक्ष्रों क्लक्ष्रौं स्त्रीं रुद्रकापालिनि अस्त्राय फट् ।

२७—विष्णूपास्यायुताक्षरमन्नोः षडङ्गन्यासः (५।२८९-३००)

ओं ऐं आं ईं श्रीं ह्रीं क्लीं क्रीं फ्रें हूं हृदयाय नमः । ह्रीं ग्लूं छ्रीं स्हौः क्षौं क्रौं प्रीं सौः श्रीं स्त्रीं शिरसे स्वाहा । क्ष्रीं पूं [?] रह्रीं रह्रूं रक्लीं रप्रीं रघ्रीं रत्रीं रश्रीं ख्फ्रें शिखायै वषट् । क्षग्ह्लीं क्षरह्रूं जर्क्रीं क्षरस्त्रीं ह्सफ्रें क्षरस्त्रूं खफछ्रूं खफछ्रीं हलक्षीं हलक्षूं कवचाय हूं । ह्सखफ्रीं ह्सखफ्रूं हैसखफ्र ह्स-खफ्रैं ह्सखफ्रों ह्सखफ्रौं ह्सखफ्रः रह्लछ्ररक्षह्रीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रंजझ्रश्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । रकझ्रक्ष्रौं रकझ्रक्ष्रूं फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रैं फ्रखभ्रों फ्रउम्रौं ह्सखफ्रक्ष्रौं ह्सखफ्रक्ष्रूं ख्फ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं अस्त्राय फट् ।

२८—शिवोपास्यायुताक्षरमन्नोः षडङ्गन्यासः ५।३०१-३१३)

(१) स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं स्हक्षम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्लम्ल-व्य्रऊं (?) स्हक्षम्लव्य्रईऊं क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षर्हम्लव्य्रईऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षस्हम्ल-व्य्रऊं हृदयाय नमः ।

(२) क्षमक्लरक्ष्ल्हक्षव्य्रऊं सहव्रह्लखफ्रगीं च्रलह्लफ्रव्य्रऊं छ्रम्लक्षफ्लह्लहम्रीं थहर्खफ्र-ह्लमब्लूं म्ह्ल्क्षक्रमब्लयछ्रीं हम्लक्षव्रसह्लीं सफक्ष्लमहप्रक्लीं व्रहठ्म्लह्लूं र्क्षल-ह्व्य्रईं शिरसे स्वाहा ।

(३) रमयप्क्षब्रूं रसमयक्षह्लस्त्रीं हम्लक्क्षव्य्रलछ्रौं क्लश्रम्क्षह्लम्ल × ह्लक्षफ्रकम्लईं × (मैत्राग्नम् ?) समलक्षग्लस्त्रीं मब्लयटत्क्षईं ह्क्षमकह्लछ्रीं दरजभ्रम्लकक्षीं शिखायै वषट् ।

(४) र्क्षरजक्षमक्ष्मरह्लम्लव्य्रछ्रीं करह्लर्खफछ्रम्रीं झ्रकस्त्रक्षश्रीं × घूमः ? स्त्रह्ल-फ्रम्रीं वसरझ्रम्क्षव्रक्लीं ग्लकम्ल्ह्क्षक्रीं ब्लम्क्षमफब्रछ्रीं चफ्क्षलकमयह्लीं म्रलक्षकह्लख्फ्रछ्रीं कवचाय हूं ।

(५) यस्हप्लम्क्षह्लूं गमह्लयक्ष्लम्रीं गसधमरयब्लूं टर्क्षप्लमह्लूं नमयब्लक्षरश्रूं एक्लयक्षम्रट्री फ्रप्क्षग्लम्रीं × (धूतपापा ?) फसधमश्रयव्लूं ट्लत्लट्लक्षफ्रख-फ्रछ्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

(६) शम्लह्लव्य्रखफ्रैं र्हक्षम्लव्य्रअख्फ्छ्रस्त्रह्लीं र्क्षफसमहह्लव्य्रऊं चलक्ष्मस्हव्य्रखौं फग्लसहमक्षब्लूं लगम्क्षखफसह्लूं भक्लरमह्सख्फ्रूं ह्सख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं × (गह्वर ?) क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं रफसकम्ल क्षज्रीं अस्त्राय फट् ।

२९—शाम्भवमन्नोः षडङ्गन्यासः (५।३१४-३२४)

ओं ह्रौं क्ष्रौं फ्रीं फ्रां फ्रें स्हजहलक्षम्लवनऊं सग्लक्षमहरह्लूंक्वलह्लभ्रकह्लनसक्लईं व्यापिन्यै हृदयाय नमः । ऐं श्रीं ह्रीं ख्फ्रीं फ्रों फ्रौं क्षमब्लहकयह्लीं रजहलक्षमूं हक्लह्लकडकखैं चेतनायै शिरसे स्वाहा । आं ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं स्हीं कसवहलक्षमओं ब्रकम्लब्लक्लऊं लक्षमह्लजरक्रव्य्रऊं आनन्दिन्यै शिखायै वषट् । ईं स्हौं स्हौः भ्रीं क्ष्रीं क्ष्रूं क्लक्षसहमव्य्रऊं ब्लक्षमकह्लव्य्रईं सहठलक्षह्लमक्रीं विमलायै कवचाय हूं । कौं [?] ग्लीं क्षूं रक्रीं रश्रीं रफ्रीं ह्लसहकमक्षब्रऐं स्हक्लह्लक्ष्रूं महव्य्रऐं महा-सूक्ष्मायै नेत्रत्रयाय वौषट् ।'ईं फ्रें फ्रें खेफ्रें हसफ्रें हसखफ्रें स्हक्लह्लीं क्षम्लब्रसहस्हक्ष-क्लस्त्रीं ब्रक्षम्लसह्लछ्रूं महामायायै अस्त्राय फट् ।

३०--महाशाम्भवमनोः षडङ्गन्यासः (५।३२५-३३७)

ओं ऐं कां कीं कूं कैं कौं ओं ऐं अमृते हृदयाय नमः। ओं ऐं चां चीं चूं चैं चौं ओं ऐं ज्ञानदे शिरसे स्वाहा। ओं ऐं टां टी टूं टैं टौं ओं ऐं अव्यक्ते शिखायै वषट्। ओं ऐं तां तीं तूं तैं तौं ओं ऐं चित्कले कवचाय हूं। ओं ऐं पां पीं पूं पैं पौं ओं ऐं बिन्दुनादिनि नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं ऐं हां हीं हूं हैं हौं ओं ऐं अद्वैते अस्त्राय फट्।

३१—तुरीयामनोः षडङ्गन्यासः (५।३३७-३४७)

ओं छ्रीं हूं ह्लीं फ्रें अलक्षितायै फ्रें ह्लीं हूं छ्रीं ओं हृदयाय नमः। ऐं क्रों ग्लूं ह्रौं क्लीं एकांनशायै क्लीं ह्रौं ग्लूं क्रौं ऐं शिरसे स्वाहा। आं क्ष्रौं रह्लीं रह्लूं ख्फ्रें मानस्यै खफ्रें रह्लूं रह्लीं क्ष्रौ आं शिखायै वषट्। ईं हसफ्रें जरक्रीं क्षरह्लीं क्षरह्लूं असंभवायै क्षरह्लूं क्षरह्लीं जरक्री हसफ्रें ईं कवचाय हूं। रकक्ष्रीं रकक्ष्रूं श्रखफ्रौं रकक्ष्रूं रकक्ष्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। फम्रग्लऊं फखभ्रीं फखभ्रें क्षरस्त्रखफ्रूं खफ्रीं कैवल्यायै ख्फ्री क्षरस्त्रखफ्रूं फखभ्रीं फम्रग्लऊं अस्त्राय फट्।

३२—महातुरीयामन्त्रस्य षडङ्गन्यासः (५।३४८-३८०)

ओं ऐं क्लीं श्रीं क्रौं खफक्ष्रीं क्रों क्षौं स्फ्रों स्फ्रौं क्रीं फख्भ्रूं स्हौं स्हौः सौः ख्रें ख्रौं रक्षह्लूं ब्लीं ग्लीं क्रीं च्रीं फ्रीं निर्गुणे हृदयाय नमः।

ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें हसफ्रौं ग्लूं क्लूं ब्लूं क्रूं ज्रूं रजझ्रक्ष्रूं क्ष्लौं ट्रीं फ्रूं थ्रीं थ्रूं अजरामरे शिरसे स्वाहा।

क्ष्रीं च्रैं रह्लीं रह्लूं क्ष्रौं छ्रक्लव्य्रमक्षयूं रछ्रीं रज्रीं रक्रीं रश्रीं रक्लीं सक्लह्लह-सखफक्षीं रथ्रीं क्षूं रफ्रें रफ्रीं रध्रीं रहफसमक्षक्लीं हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं अनाख्ये शिखायै वषट्।

ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं कहलश्रौं जनहमरक्षयह्लीं खफ्रें फहलक्षूं रठ्रीं हसखफ्रुं हसखफ्रि स्हव्य्रख्रक्ष्मक्रूं रस्त्रीं रस्त्रूं ख्फ्रीं खफ्रूं सफहलक्षीं भासे कवचाय हूं।

क्षफ्लह्लीं खफह्लीं खफह्लूं खफछ्रीं खफछ्रूं सफक्षयक्लमस्त्रश्रीं खफक्ली खफक्लूं खफक्लैं खफक्लौं खफछ्रौं ब्रह्माहमस्मि खफह्लीं खफह्लूं खफह्लैं खफह्लों खफह्लौं हसखफ्रैं श्रखफ्रौं रक्षफछ्रीं रक्षफछ्रूं रक्षफछ्रैं रक्षफछ्रौं रह्लछ्रक्षह्लौं मोक्षदे नेत्रत्रयाय वौषट्।

फम्रग्लइं (फम्रग्लऊं ?) फम्रग्लऐं फम्रग्लऔं रकक्ष्रौं हसखफ्रौं क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्रक्ष्रैं क्ष्लक्ष्रौं रकक्ष्रैं रह्लछ्ररक्षह्लीं क्ष्रस्त्रीं क्ष्रस्त्रूं क्लीं क्ष्रां......(रक्तः) क्रह्लैं क्षरस्त्रखफ्रूं छ्ररक्षह्लैं फखभ्रआं छ्ररक्षह्लौं फखभ्रीं फखभ्रूं......(सायुज्यम्) फखभ्रैं फखभ्रौं हसखफक्ष्रीं हसखफ्रूं ख्फ्रीं महातुरीये अस्त्राय फट्।

षट्स्वपि मन्त्रेषु क्रमशः मूलमन्त्रस्य त्रीणि द्वे त्रीणि द्वे त्रीणि चत्वारि च वर्णानि पञ्चभिर्बीजैः प्रटितानि कृत्वा देयानि इति विशेषः।

३३—निर्वाणमनोः षडङ्गन्यासः (५।३८१-३८७)

(१) ह्लीं ओं फखक्ष्रौं ह्लीं परमहंस्यै ह्लीं हृदयाय नमः।

(२) छ्रीं रक्ष्रमछरूं फ्रें फ्रखक्ष्रैं चिन्मात्रायै छ्रीं शिरसे स्वाहा ।
(३) हूं छ्रीं सतरलयक्षकवरयीं रहक्षमलवरयीं निस्त्रैगुण्ये हूं शिखायै वषट् ।
(४) स्त्रीं जनहसलक्षह्लीं सहक्षमलवरयूं हसलक्षकमकरब्रूं अपुनर्भवे स्त्रीं कवचाय हूं ।
(५) फ्रें हसकहलह्रीं फ्रखक्ष्रैं-छ्रीं अविग्रहे फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट् ।
(६) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें सतरलयक्षकरवयीं रहक्षमलवरयीं जनहसलक्षह्लीं सहसमलवरयूं चैतन्यमयि ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें अस्त्राय फट् ।

३४—महानिर्वाणमन्त्रस्य षडङ्गन्यासः

ब्लहतह्लसचैं ह्लक्षम्लफ्रयूं रसकमह्लक्षछ्रीं हम्लकक्षव्य्रलछ्रीं रक्षरजक्ष्मक्ष्मरह्लम्लव्य्रछ्रीं यस्हप्लमक्षह्लूं ओं म्लक्षकसहह्लूं ह्लक्षम्लस्रयूं सहब्रह्लखफ्रयीं थमक्ष्लकव्रह्स्त्रूं लमकक्षह्लईं टलतलक्षफ्र खफछ्रीं खफ्रक्ष्रीं रजक्षमब्लह्लूं ह्लक्षम्लक्र्यूं क्लह्लक्षलहक्षमव्य्रईं क्लश्रमक्षह्लम्लऊं हलमकक्षह्लफ्रछ्रीं ट्लत्लट्लक्षफ्रखफछ्रीं ऐं क्षम्लव्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं ह्लक्षम्लय्रयूं व्रतह्लक्षह्लीं ज्लकहलक्षव्रमश्रीं (?) कप्रम्लक्षयल्कीं जसदनस्हक्षग्लूं अवासने हृदयाय नमः ।

क्षम्लव्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं ह्लक्षम्लज्ञ्रयूं कव्रम्लक्षस्हक्लूं फलक्ष्मकह्लूं म्लगक्षएफ्रीं टरक्षप्लमह्लूं फ्रखभ्रूं लह्लकक्ष्मस्हव्य्रएं ह्लक्षम्लब्रयूं छ्रमकश्रहयह्लूं डम्लक्षव्रखफस्त्रीं टरयलह्लनछ्रीं मकक्षह्लग्लब्लईं ह्रीं हलक्षकमह्लसव्य्रऊं रक्षफ्रघ्रघ्रम्लऊं छ्रममश्रहयह्लूं नजरमकह्लक्ष्लश्रीं चफक्षलकमयह्लीं हलमणकमह्लीं क्षरह्लूं क्षम्लकस्हरयव्रूं ओं श्रें क्लीं स्हक्लक्ष्मह्लग्लूं ह्लक्षफ्रकम्लईं व्रतरयह्लक्षम्लूं गपटतयजक्लूं क्ष्रौं स्हश्रैं क्ष्लफलओं ह्लसग्लक्षव्य्रऊं हक्षमकह्लछ्रीं छ्रलक्षकम्लह्रीं चमरगक्षफ्रस्त्रीं बोधातीते शिरसे स्वाहा ।

खलह्लवनगक्षरछ्रीं सहक्षलक्षें ज्वलह्लफ्रव्य्रऊं मब्लयटतक्षईं फ्लयक्षकयब्लूं भलनएदक्ष्रीं हसफ्रौं टक्षसनरम्लैं ह्लक्ष्मलीं क्ष्मवल क्षलहक्षव्य्रऊं क्षलहक्षभलम्लूं झ्रकस्त्रक्षश्री छ्रडतजलूं ख्फ्रें स्हश्रैं हलफ्रकह्लीं ज्वलह्लफ्रव्य्रऊं रसमयक्षह्लस्त्री टसमनहक्षमखरऊं छतक्षठनह्लब्लीं रजझ्रक्ष्रूं नदक्षटक्षम्व्य्रउं छलहक्षलक्षफ्रग्लऊं ड्म्लव्रीं छ्रम्लक्षपलह्लहस्री नमहक्षव्य्रह्लूं नपटजक्षफ्रऊं खतक्लक्ष्मव्य्रह्लूं छ्रक्लव्य्रमक्षयूं भ्रसखयग्रमऊं वम्लव्रीं थहरखफ्रह्लमब्लूं समलक्षग्लस्त्रीं गसनहक्षव्रईं ठक्षमलघ्रछ्रीं उपशान्ते शिखायै वषट् ।

बलहक्षबल्रऊं लम्लव्रीं रहहवलव्य्रऊं पपक्षम्लस्हखफ्रां कह्लब्लजूं गमह्लयक्ष्लस्त्रीं स्हक्षम्लव्य्रऊं फ्रतक्षमलहक्षहथलहक्षह्लूं कम्लव्रीं हम्लक्षव्रसह्लीं पंटक्षम्लस्हखफ्रूं क्षव्लकस्त्रीं ममफ्लभ्ररक्षव्य्रह्लूं सवलह्लहसखफ्रक्ष्रीं रच्रें सम्लव्रीं सफक्ष्लमहप्रवली यरक्षम्लब्लीं स्त्रह्लफ्रश्रीं करयनप्लक्षफ्रीं क्षस्हम्लव्य्रईं सलहक्षचलहक्षजक्षज्रं हम्लव्रीं व्रहठ्रम्लह्लूं क्षलहक्षवलस्त्रूं ग्लमक्षसवलह्ली ह्लवलक्षम्लश्रूं ब्लयक्ष्मझ्रहम्लव्रीं रहफ्रसमक्षत्रीं तलठलहक्ष थलहक्ष दलहक्षक्षग्ह म्लव्य्रईऊं यम्लव्रीं रक्षलग्लश्रूं रहफ्रसमक्षत्रीं तलठलहक्ष थलहक्ष दलहक्षक्षग्ह म्लव्य्रईऊं यम्लव्रीं रक्षलहव्य्रईं डम्लक्षव्रखफस्त्री वसरझ्रमक्षव्रक्लीं वलसमयग्लह्लफ्रूं सहक्षग्लव्यईं दलडक्षवल्रहसखफ्रौं रलहक्षफ्रूं सनह्लक्ष्मब्लूं डम्लक्षव्रखफस्त्रींह्लूं जलयकक्षग्लफ्रूं रगहलक्षम्लयछ्रूं हससवलह्लीं पलक्षह्लस्हव्य्रऊं ग्लक्षकह्लखछ्रीं फ्रदमहयनह्लूं

सलहक्षह्लूं कहफ्लमह्लव्य्रऊं लसर्क्षकमव्य्रद्रीं सत्त्वरूपे कवचाय हूं ।

मक्षक्रस्हंखफछ्रूं क्षलहक्षझ्रूं चमटक्षव्य्रछ्री स्हएंक्लरक्ष्रीं खफछ्रम्लग्रक्लीं समरग्क्षहसखफ्रीं स्हजहलक्षम्लवनऊं ग्लरक्षफ्रथरक्ली रक्षस्त्रभ्रध्रम्लऊं वलक्ष्म ग्लव्य्रह्लूं दरजभ्रम्लकक्ष्रीं ठक्लक्ष्मलव्य्रह्लूं रसमयक्षक्लह्लीं स्हव्य्रख्रक्ष्मक्रूं ह्लसलहसकह्लीं रक्षह्लभ्रध्रम्लऊं मथहलक्षप्रह्लूं क्लम्लक्षस्हश्रीं ग्लकमलहक्षक्रीं खरगवक्ष्मलयव्य्रईं मह्लक्ष्लव्य्रऊं पलहक्षक्ष्मझ्रहच्रूं रक्षन्नभ्रध्रम्लऊं ब्लक्षफह्-मछ्रव्रीं खक्ष्मरक्षलहक्षब्लह्लीं मकक्षह्लग्लब्लईं सफक्षयक्लमस्त्रश्रीं क्षक्षकह्लस्ह्-झ्रयूं रक्षझ्रभ्रध्रम्लऊं सरम्लक्षहसखफ्रीं हलकभ्रक्षश्रीं डखछ्रक्षहममफ्रीं संमग-क्षलयब्लूं क्ष्रौं स्हक्ष्मह्लक्षग्लूं रक्षक्रभ्रध्रम्लऊं छ्रम्लक्षव्रकह्लीं द्रैंजमरब्लह्लयूं फ्लमधहक्षक्षव्य्रऊं रसमयरक्षक्षग्लीं ब्रह्माहमस्मि स्हक्ष्मह्लक्षग्लीं रक्षभ्रध्रयम्लऊं सल्कएहह्लीं सहठलक्षह्लमक्रीं ब्लमक्षमफख्रछ्रीं क्लपटक्षमव्य्रईं हौं × (बहुसुवर्ण-कूटम्) रक्षभ्रम्लऊं तमहलहक्षक्लफ्रग्लूं खफ्रक्ष्लब्लयह्लम्रीं मक्षब्लह्लकमव्य्रईं कब्लयसमक्षख्रछ्रूं ब्रह्ममयि नेत्रत्रयाय वौषट् ।

क्षक्षक्ष्लफ्रचक्षक्षौं रलक्षध्रम्लऊं ह्म्लक्ष्मप्लब्रूं ठफक्षथलमकस्न्रूं भ्रकस्त्रक्षश्रीं... ....(घृतपापानदी ?) हसखफ्रैं मश्रां रसख्रयम्रूं मक्लक्षकसखफ्रूं धग्लक्षक-मह्लव्य्रऊं भ्रकस्त्रक्षश्रीं कहलजमक्षरव्य्रऊं ऐं ह्लश्रीं क्षम्लीं महलक्षक्षखफ्रव्य्रह्लीं ह्लक्ष्म्लभ्रयूं क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं नमब्लह्लक्षम्रग्लूं हसखफ्रौं फहलक्षीं क्षक्लीं चफक्लह्लमक्ष्रूं ब्लहतह्लसचैं क्ललफ्ररसभक्षक्लछ्रूं डपतसगमक्षब्लूं म्लह्लक्षस्त्रूं क्षहलीं रमयछ्रक्षक्लह्लीं व्य्रल्कक्षह्लम्लूं छ्रक्षग्लमस्त्रव्य्रऊं क्ष्लभर-भ्रश्रीं हह्लछ्ररक्षह्लीं रलहक्षहलक्लीं क्षफ्लीं........(अविग्रहानाड़ी) चम्लह्-क्षक्रह्लूं ऐक्षकसखफ्रव्य्रऊं छ्रडक्षसहफ्रक्लीं क्षरस्त्रखफ्रूं महलक्षग्लक्लीं क्षम्लूं ब्रक्षम्लसह्लछ्रूं क्षलहक्षक्लस्त्रूं ग्लमक्षसक्लह्लीं जनथक्षकक्लब्रईं फ्रपक्षग्लम्रीं ....(सायुज्यबीज) डलहक्षम्लां सखह्लक्ष्मक्रैं यसम्लक्षसकह्लव्य्रईं थफखक्ष-लव्य्रईं गसनहक्षब्रईं ब्लयरठह्लमक्ष्रूं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षस्हब्लव्य्रऊं रलहक्षक्लस्हफ्रईं सखह्लक्ष्मध्रीं हंसम्लक्षप्रक्लीं हरसकक्षम्लस्त्रीं शम्लक्लयक्षह्लूं नहरक्षस्त्रम्लह्लीं अपवर्गे अस्त्राय फट् ।

———

परिशिष्टम् (५)

१—वक्त्रन्यासः (७।१३—४७)

(क) ओं ह्रीं फ्रें हूं छ्रीं स्हौः क्रीं र्क्ष्रों खफ्रें महाचण्डयोगेश्वरीमूर्तये ऊर्ध्ववक्त्राय प्रज्वलद्दीपकारिणे ह्स्ख् फ्रें क्ष्रौं सौः क्रों क्लीं फट् नमः स्वाहा—इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः।

(ख) ऐं श्रीं क्लीं ह्रौं क्षौं ग्लूं ग्लौं ब्लूं रख्ध्रौं महावज्रदंष्ट्रायुधमूर्तये सिंहवक्त्राय उग्राय मृत्युमृत्यवे ह्लीं ह्लूं क्ष्रीं क्ष्रूं ज्क्रीं फट् नमः स्वाहा—इति मुखे हृदये च न्यासः।

(ग) आं प्रीं हस्फ्रें छ्प खफ्रें ज्रीं फ्रीं श्रीं स्फ्ल्क्षूं वमदुल्काघोरमुखमूर्तये फेरुवक्त्राय फेरुरवभीषणाय छ्रीं हस्ख् फ्रीं र्क्ष्छ्रीं र्ज्रौं खफ्रें फट् नमः स्वाहा—इति दक्षिणलोचने न्यासः।

(घ) क्रीं [ईं] ज्रौं फ्रूं फ्रौं ह्लूं ह्लौं क्ष्रूं क्ष्रूं हस्खफ्रूं नखरदशनायुधमूर्तये कपिवक्त्राय महापिङ्गलसटाय श्रीं श्रीं फ्रैं प्रीं सौः फट् नमः स्वाहा—इदि वामलोचने न्यासः।

(ङ) लं र्स्त्रीं ज्रौं च्रूं र्ख्रौं र्ख्रौं खफ्रीं खफ्रूं खफ्रैं लावण्यनिधानदिव्यमूर्तये नरवक्त्राय सर्वभोगवैभवाय छ्रर्क्ष्ह्लैं र्छ्रां रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं र्क्क्ष्रीं (?) फट् नमः स्वाहा—इति दक्षनासापुटे न्यासः।

(च) हफ्रीं हफ्रूं ख्फह्लीं ख्फह्लीं ख्फक्ष्रीं ख्फक्ष्रीं ख्फक्ष्रीं ख्फक्षीं रजझ्रक्ष्रौं विकरालनखदन्तमूर्तये ऋक्षवक्त्राय मेचकसटाभारिणे व्लैं हस्फ्रीं हस्फ्रूं क्ष्रपलह्लीं ख्फ्रौं फट् नमः स्वाहा—इति वामनासापुटे न्यासः।

(छ) क्रौं ख्रौं ब्रीं खफछ्रीं खफछ्रूं क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं खफछ्रौं क्षरस्त्रौं घोरतरचञ्चुपक्षमूर्तये तार्क्ष्यवक्त्राय खरनखरतुण्डाय प्रूं रक्षफछ्रीं ह्लखफ्रां स्त्रखफ्रीं फट् नमः स्वाहा—इति दक्षकपोले न्यासः।

(ज) रभ्रां ह्लक्षूं फ्रौं फह्लक्षूं सफह्लक्षीं सफह्लक्षूं रक्षफछ्रैं रक्षफछ्रौं रजझ्रक्ष्रूं दीर्घशितदंष्ट्रायुधमूर्तये ग्राहवक्त्राय महाभोगभासुराय क्षज्रीं रभ्रौं क्षखफ्रैं खफह्ल खफह्लैं फट् नमः स्वाहा—इति वामकपोले न्यासः।

(झ) रथ्रीं रथ्रीं रठ्रीं रठ्रीं श्रैं श्रैं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रूं रकक्ष्रैं वज्रिक्रूरदन्तायुधमूर्तये पञ्चगजवक्त्राय नागराजाय शुण्डाय ह्लक्षम्लैं ह्लक्षम्लौं ह्लग्लौं ह्लग्लैं क्ष्रक्लूं फट् नमः स्वाहा—इति दक्षकर्णे न्यासः।

(ञ) ह्लखफ्रैं स्त्रखफ्रीं क्लखफ्रौं क्लखफ्रैं ह्लभ्रां क्षस्फ्रौं ग्लब्लौं क्षग्रौं क्ष्रफह्रौं हेषादन्तशंफायुधमूर्तये हयवक्त्राय निगालकेशरोद्धर्वाय ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः फट् स्वाहा—इति वामकर्णे न्यासः।

इति वक्त्रन्यासः।

२—अस्त्र न्यासः (७।६७—११५)

(क) ह्लक्षम्लैं रग्रें ज्रैं रत्नमालायै नमः फट् स्वाहा इति दक्षशङ्खे न्यासः ।
(ख) ऐं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रूं रत्नमालायै नमः फट् स्वाहा इति वामशङ्खे न्यासः ।
(ग) ह्लीं ह्रूसखफ्रौं हूं रभ्रीं दक्षभ्रुवे नमः फट् स्वाहा इति दक्षभ्रुवि न्यासः ।
(घ) श्रीं रख्रूं थ्रीं थ्रीं वामभ्रुवे नमः फट् स्वाहा इति वामभ्रुवि न्यासः ।
(ङ) क्लीं रख्रौं ज्रां ज्रां दक्षिणलोचनाय फट् नमः स्वाहा इति दक्षिणलोचने न्यासः ।
(च) खफ्रां क्रौं चैं चैं वामलोचनाय नमः फट् स्वाहा इति वामलोचने न्यासः ।
(छ) ह्फ्रीं क्षौं हस्ख्फ्रें हस्ख्फ्रें दक्षनासापुटाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षनासापुटे न्यासः ।
(ज) ख्फ्रीं क्रूं श्रां श्रां वामनासापुटाय नमः फट् स्वाहा इति वामनासापुटे न्यासः ।
(झ) ह्फ्रूं क्षूं क्रों क्रों दक्षिणगण्डाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणगण्डे न्यासः ।
(ञ) ह्फ्रौं ख्फ्रूं ब्लूं ब्लूं वामगण्डाय नमः फट् स्वाहा इति वामगण्डे न्यासः ।
(ट) ख्फ्रौं ख्फ्रें ह्लां ह्लां दक्षिणकपोलाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षकपोले न्यासः ।
(ठ) क्रैं क्रौं र्म्रैं र्म्रैं वामकपोलाय नमः फट् स्वाहा इति वामकपोले न्यासः ।
(ड) क्ष्रस्रैं क्ष्रस्रौं ख्फ्छ्रूं ख्फ्छ्रूं दक्षिणहनवे नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणहनौ न्यासः ।
(ढ) श्रीं ह्फ्रौं क्ष्स्त्रूं क्ष्स्त्रूं वामहनवे नमः फट् स्वाहा इति वामहनौ न्यासः ।
(ण) ख्फ्रक्त्रीं ख्फ्रक्लीं ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रीं दक्षिणांसाय नमः फट स्वाहा—
इति दक्षिणांसे न्यासः ।
(त) र्ध्रूं प्रूं क्ष्ज्रूं ल्क्षां ल्क्षां वामांसाय नमः फट् स्वाहा इति वामांसे न्यासः ।
(थ) श्रख्फ्रूं श्रख्फ्रीं क्हल्श्रौं क्हल्श्रौं दक्षिणजत्रुणे नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिणजत्रुणि न्यासः ।
(द) सहलक्रूं स्ह्ल्क्रीं भ्रीं भ्रीं वामजत्रुणे नमः फट् स्वाहा इति वामजत्रुणि न्यासः ।
(ध) ग्लख्रीं ह्लस्रौं रप्रीं रप्रीं दक्षिणकक्षायै नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणकक्षायां न्यासः ।
(न) जूं क्ष्रौं रफ्लीं रफ्लीं वामकक्षायै नमः फट् स्वाहा इति वामकक्षायां न्यासः ।
(प) ट्रीं ग्लैं पं पं दक्षिणपार्श्वाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणपार्श्वे न्यासः ।
(फ) स्रीं हीं स्हौः [बालप्रेतम] वामपार्श्वाय नमः फट् स्वाहा इति वामपार्श्वे न्यासः
(ब) श्लीं हां क्ष्स्त्रौं क्ष्स्त्रौं दक्षिणचूचुकाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणचूचुके न्यासः ।
(भ) क्वीं ह्लीं फम्रग्लऐं फम्रग्लऐं वामचूचुकाय नमः फट् स्वाहा
इति वामचूचुके न्यासः ।
(म) फ्रें स्रां ज्लीं [पुष्पमाला] दक्षिणकफोणये नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिणकफोणौ न्यासः ।
(य) श्रौं द्रौं ट्रीं ट्रीं वामकफोणये नमः फट् स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः ।
(र) ज्रूं ज्रीं खफछ्रां खफछ्रां दक्षिणप्रगण्डाय नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिणप्रगण्डे न्यासः ।
(ल) ज्रां रफ्लूं त्रीं त्रीं वामप्रगण्डाय नमः फट् स्वाहा इति वामप्रगण्डे न्यासः ।
(व) श्रूं व्रूं फ्लीं [फ्लीं ?] दक्षिणमणिबन्धाय नमः फट् स्वाहा
इति दक्षमणिबन्धे न्यासः ।

(श) रफ्रैं क्ह्लां रश्रैं × [सर्पम्] वाममणिबन्धाय नमः फट् स्वाहा ,
इति वाम मणिबन्धे न्यासः ।

(ष) ख्फ्छ्रं क्श्रीं स्फ्ह्लक्षौं × [कमण्डलु ?] दक्षिणाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिणाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(स) रक्षीं रश्रीं × × [वंश उन्मादवंशी] वामाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा
इति वामाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(ह) ख्फभ्रूं रश्रों स्हौं × [मांसखण्डम्] दक्षाङ्गुल्यग्राय नमः फट् स्वाहा
इति दक्षाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।

(क्ष) र्क्रैं र्ख्रैं क्ह्ल्श्रः क्ह्ल्त्रः वामाङ्गुल्यग्राय नमः फट् स्वाहा
इति वामाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।

(त्र) ओं ख्रस्त्रैं सों सों दक्षकुक्षये नमः फट् स्वाहा इति दक्षकुक्षौ न्यासः ।

(ज्ञ) र्क्ष्श्रीं र्स्फ्रौं रक्ष्रूं × [अग्निकुण्डम्] वामकुक्षये नमः फट् स्वाहा
इति वामकुक्षौ न्यासः ।

(अ) र्त्रैं र्त्रौं रं × [बीजपूरं] दक्षिणस्फिचे नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिण स्फिचि न्यासः ।

(आ) रक्षौं रट्रूं ख्फ्छ्रां ख्फ्छ्रां वामस्फिचे नमः फट् स्वाहा
इति वामस्फिचि न्यासः ।

(इ) हस्फ्रूं हस्फ्रैं श्रैं श्रैं दक्षकट्यै नमः फट् स्वाहा इति दक्षकटौ न्यासः ।

(ई) रस्त्रैं रस्त्रौं क्ष्स्त्रैं क्ष्स्त्रैं वामकट्यै नमः फट् स्वाहा इति वामकटौ न्यासः ।

(उ) स्फ्ह्ल्क्षीं स्फ्ह्लक्ष्रूं क्ह्ल्श्रं क्ह्ल्श्रं दक्षिणवंक्षणाय नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिणवंक्षणे न्यासः ।

(ऊ) फ्ह्ल्क्षैं फ्ह्ल्क्षां क्ह्ल्श्रां क्ह्ल्श्रां वामवंक्षणाय नमः फट् स्वाहा
इति वामवंक्षणे न्यासः ।

(ऋ) × [व्यर्थं] रक्ष्रौं क्ष्स्त्रैं क्ष्स्त्रैं दक्षिणजानवे नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिणजानौ न्यासः ।

(ॠ) फम्रग्लईं फम्रग्लईं क्ह्ल्श्रैं क्ह्ल्श्रैं वामजानवे नमः फट् स्वाहा
इति वामजानौ न्यासः ।

(लृ) × [मोदकं] क्ष्लक्ष्रूं [यष्टि यष्टिम्] दक्षिणगुल्फाय नमः फट् स्वाहा
इति दक्षिणगुल्फे न्यासः ।

(लॄ) म्लैं म्लैं क्ष्स्त्रं क्ष्स्त्रं वामगुल्फाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणगुल्फे न्यासः ।

(ए) म्लीं म्लूं घं घं दक्षिणपार्ष्णये नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणपार्ष्णौ न्यासः ।

(ऐ) स्रीं स्रूं क्ष्स्त्रौ क्ष्स्त्रौं वामपार्ष्णये नमः फट् स्वाहा वामपार्ष्णौ न्यासः ।

(ओ) स्त्रैं स्त्रौं ज्रौं ज्रौं दक्षपादाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा
इति दक्षपादाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(औ) क्ष्लक्ष्रैं क्ष्लक्ष्रैं ङ ङ वामपादाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा
इति वामपादाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(अं) क्ष्रस्त्रैं रस्त्रां छ्रौं छ्ग्रौं दक्षिणप्रपदाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणप्रपदे न्यासः।
(अः) फख्भ्रैं हसखंफ्रक्ष्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं स्त्रैं वामप्रपदाय नमः फट् स्वाहा

इत्यस्त्रन्यासः।

३—अन्यप्रकारेण अस्त्रन्यासस्याभिधानम् (७।१२१—१३३)

ओं फ्रें क्ष्लफ्लओं रत्नमालायै स्वाहा इति दक्षशंखे न्यासः।
ओं फ्रें ओंश्रेंक्लीं रत्नमालायै स्वाहा इति वामशंखे न्यासः।
ओं फ्रें स्हक्ष्लक्षें हस्फ्रें दक्षभ्रुवे स्वाहा इति दक्षभ्रुवि न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्ष्मलीं वामभ्रुवे स्वाहा इति वामभ्रुवि न्यासः।
ओं फ्रें सम्लव्रीं दक्षिणलोचनाय स्वाहा इति दक्षिणलोचने न्यासः।
ओं फ्रें ह्ललफ्रक्ह्लीं वामलोचनाय स्वाहा इति वामलोचने न्यासः।
ओं फ्रें कम्लव्रीं दक्षनासापुटाय स्वाहा इति दक्षनासापुटे न्यासः।
ओं फ्रें ड्म्लव्रीं वामनासापुटाय स्वाहा इति वामनासापुटे न्यासः।
ओं फ्रें लम्लव्रीं दक्षिणगण्डाय स्वाहा इति दक्षिणगण्डे न्यासः।
ओं फ्रें वम्लव्रीं वामगण्डाय स्वाहा इति वामगण्डे न्यासः।
ओं फ्रें रम्लव्रीं दक्षकपोलाय स्वाहा इति दक्षकपोले न्यासः।
ओं फ्रें हम्लव्रीं वामकपोलाय स्वाहा इति वामकपोले न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लव्रयूं दक्षिणहनवे स्वाहा इति दक्षहनौ न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लह्लयूं वामहनवे स्वाहा इति वामहनौ न्यासः।
ओं फ्रें यम्लव्री दक्षिणांसाय स्वाहा इति दक्षांसे न्यासः।
ओं फ्रें रलहक्षफ्रूं वामांसाय स्वाहा इति वामांसे न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लस्त्रयूं दक्षिणजत्रुणे स्वाहा इति दक्षिणजत्रुणि न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लफ्रयूं वामजत्रुणे स्वाहा इति वामजत्रुणि न्यासः।
ओं फ्रें क्ष्लहक्षझ्रूं दक्षिणकक्षायै स्वाहा इति दक्षकक्षायां न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लझ्रयूं वामकक्षायै स्वाहा इति वामकक्षायां न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लय्रयूं [तैमिरास्त्रम् ?] गलाय स्वाहा ? इति गले न्यासः।
ओं फ्रें सलहक्षह्लूं दक्षिणपार्श्वाय स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लक्रयूं वामपार्श्वाय स्वाहा इति वामपार्श्वे न्यासः।
ओं फ्रें रक्षफ्रभ्रघ्रम्लऊं दक्षिणचूचुकाय स्वाहा इति दक्षिणचूचुके न्यासः।
ओं फ्रें रक्षझ्रभ्रघ्रम्लऊं वामचूचुकाय स्वाहा इति वामचूचुके न्यासः।
ओं फ्रें खमह्लीं दक्षिणकफोणये स्वाहा इति दक्षकफोणौ न्यासः।
ओं फ्रें रलृक्षघ्रम्लऊं वामकफोणये स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः।
ओं फ्रें रक्षभ्रघ्रग्रम्लऊं दक्षिणप्रगण्डाय स्वाहा इति दक्षिणप्रगण्डे न्यासः।
ओं फ्रें रक्षक्रभ्रध्रम्लऊं वामप्रगण्डाय स्वाहा इति वामप्रगण्डे न्यासः।
ओं फ्रें रलक्षघ्रम्लऊं दक्षिणमणिबन्धाय स्वाहा इति दक्षिणमणिबन्धे न्यास।
ओं फ्रें रसखय्रमूं वाममणिबन्धाय स्वाहा इति वाममणिबन्धे न्यासः।

ओं फ्रें क्षम्लूं दक्षिणाङ्गुलिमूलाय स्वाहा इति दक्षाङ्गुलिमूले न्यासः।
ओं फ्रें क्षक्लूं वामाङ्गुलिमूलाय स्वाहा इति वामाङ्गुलिमूले न्यासः।
ओं फ्रें क्षक्लीं दक्षाङ्गुल्यग्राय स्वाहा इति दक्षाङ्गुल्यग्रे न्यासः।
ओं फ्रें [गणास्त्रं] वामाङ्गुल्यग्राय स्वाहा इति वामाङ्गुल्यग्रे न्यासः।
ओं फ्रें क्षह्लीं दक्षकुक्षये स्वाहा इति दक्षकुक्षौ न्यासः।
ओं फ्रें क्षह्लीं वामकुक्षये स्वाहा इति वामकुक्षौ न्यासः।
ओं फ्रें क्षव्लूं दक्षिणस्फिचे स्वाहा इति दक्षिणस्फिचि न्यासः।
ओं फ्रें क्षम्लीं वामस्फिचे स्वाहा इति वामस्फिचि न्यासः।
ओं फ्रें क्षफ्लीं दक्षकट्यै स्वाहा इति दक्षकटौ न्यासः।
ओं फ्रें क्षग्लूं वामकट्यै स्वाहा इति वामकटौ न्यासः।
ओं फ्रें [प्रमथास्त्रं ?] दक्षिणवंक्षणाय स्वाहा इति दक्षिणवंक्षणे न्यासः।
ओं फ्रें क्षह्लूं वामवंक्षणाय स्वाहा इति वामवक्षणे न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमग्लीं दक्षिणजानवे स्वाहा इति दक्षिणजानौ न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमश्रीं वामजानवे स्वाहा इति वामजानौ न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमह्लीं दक्षिणगुल्फाय स्वाहा इति दक्षिणगुल्फे न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमस्त्रीं वामगुल्फाय स्वाहा इति वामगुल्फे न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमस्फ्रों दक्षिण पार्ष्णये स्वाहा इति दक्षिणपार्ष्णौ न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमजूं वामपार्ष्णये स्वाहा इति वामपार्ष्णौ न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमफों दक्षपादाङ्गुलिमूलाय स्वाहा इति दक्षपादाङ्गुलिमूले न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमध्रीं वामपादाङ्गुलिमूलाय स्वाहा
इति वामपादाङ्गुलिमूले न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमहौं दक्षिणप्रपदाय स्वाहा इति दक्षिणप्रपदे न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमश्रीं वामप्रपदाय स्वाहा इति वामप्रपदे न्यासः।
ओं फ्रें सखह्लक्षमह्लीं पादाभ्यां स्वाहा इतिं पादयोः न्यासः।

इति

३—दूतीन्यासः (७।१३८—२६३)

(१) आं आं आं प्रकटविकटरूपिणि ह्लीं क्लीं श्रीं अट्टाट्टहासिनि श्रीं क्रों हूं नरमुण्ड-मालिनि चराचरं जगत् स्तम्भय स्तम्भय क्षूं क्रौं हौं चण्डशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ललाटाय नमः।

(२) आं आं आं महाश्मशानवासिनि फ्रें छ्रीं स्त्रीं नरकङ्कालधारिणि क्रलङ्किनि फेरुमुखि ख्फ्रें हस्फ्रें हस्ख्फ्रें प्रलम्बोदरि ऋक्षकर्णि फेरुशिवदूति श्रीं पादुकां पूजयामि चिबुकाय नमः।

(३) आं आं आं दंष्ट्राकराले लोलजिह्वे क्ष्रौं स्हौः सौः रुधिरवसापिशितभोजिनि क्रीं क्रूं ख्रौं घोररावे महाचण्डकापालि ब्लूं ब्लफ्रस्त्रूं ब्लौं रक्तशिवदूतिं श्री पादुकां पूजयामि दक्षिणकर्णाय नमः।

(४) आं ईं ईं ईं ईं महापिङ्गलजटाभारभासुरे ज्क्रीं श्रीं फ्रीं श्मशानधावनविमुक्त-केशि हाहाराविणि जरक्रीं रश्रीं रफ्रूं खरमुखि पिशाचिनि कुलमतभूयःप्रवर्तिनि ह्लूं ह्लूं ह्लूं क्रोध शिवदूति श्रीं पादुकां पूजयामि वामकर्णाय नमः ।

(५) आं ईं ईं ईं ईं महाभैरवि खट्वाङ्गधारिणि महामांसवलिप्रिये क्ष्रीं रक्ष्रीं क्षरह्रीं रह्लछ्ररक्षह्रीं महामारीत्रैलोक्यद्रामरि निशाचरि कहलश्रीं कहलश्रूं क्ष्ह्रूं रह्लछ्ररक्षह्रूं घोरशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि कूर्चाय नमः ।

(६) आं ईं ईं ईं ईं विकटतुङ्गकोकामुखि जालन्धरि म्रीं रक्ष्रैं छ्ररक्ष्ह्रैं रह्लछ्ररक्षह्रैं सदाशिवप्रेतारूढे पातालतुलितोदरि क्ष्रौं रक्ष्रौं छ्ररक्षह्रौं रह्लछ्ररक्षह्रौं कृतान्त-शिवदूति ओष्ठाय नमः ।

(७) आं ईं ईं ईं ईं भुजङ्गराजकटिसूत्रिणि बह्निस्फुलिङ्गपिङ्गलाक्षि ख्फछ्रीं क्षस्त्रीं हस्फ्रीं रजझ्रक्ष्रीं द्वीपिचर्मावृताङ्गि शिववाहिनि चण्डकापालेश्वरि ख्फ्छ्रूं क्षस्त्रूं हस्फ्रूं रजझ्रक्ष्रूं कापालशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिण-नेत्राय नमः ।

(८) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं प्रलयकालानलज्वालाजटालचितिमध्यसंस्थे र्क्षछ्रीं खफ्रें ख्फ्रैं ह्स्फ्रैं कल्पान्तरङ्गनृत्यमहानाटकिनि ख्फह्रीं खफ्छ्रीं खफक्ष्रीं खफक्लीं चर्चरीकरतालिकावादिनि वज्राशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि वामनेत्राय नमः ।

(९) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं परापररहस्यसमयचारिणि ज्वालामालिनि ह्लक्षफ्लीं छ्ररक्षह्रां क्ष्मरयऊं ह्स्ख्फ्रौं प्रलयसमयकोटयर्कदुर्निरीक्ष्ये मृत्युवदनि रस्फ्रौं छ्रक्षह्रौं रकक्ष्रौं रक्षफछ्ग्रौं जयभङ्कारिणि उल्काशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणगण्डाय नमः ।

(१०) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं कोटिचामुण्डामध्यचारिणि प्रेतकङ्कालधारिणि हसखफ्रुं हसखफ्रि स्फ्ह्ल् क्षूं कहलश्रूं रक्षफछ्रूं दिगम्बरि कपिलचञ्चलंकृतारे भ्रमरि भ्रामरि फस्त्रूं स्फ्ह्ल्क्षूं ह्लक्षम्लौं क्ह्ल्श्रौं भगवति श्मशानशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वामगण्डाय नमः ।

(११) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं आकर्षिणि आवेशिनि सन्तोषिणि संमोहिनि फ्रौं ब्रचौं ह्स्फ्रौं ह्स्ख्फ्रौं चण्डिनि चाण्डालिनि चण्डि चण्डिके क्लूं ग्लूं ब्लूं ज्लैं मदोन्मत्ते उग्र शिवदूति श्री पादुकां पूजयामि दक्षिणांसाय नमः ।

(१२) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं कालि महाकालवञ्चनि विच्चे घोरे परापरसंभेदिनि संतर्जिनि बलाहकिनि ट्रीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ण्रीं श्रीं थ्रीं द्रीं ध्रीं न्रीं खण्डिनि मुण्डिनि रौद्रशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि वामांसाय नमः ।

(१३) ओं ओं ओं ओं ओं ब्रह्मकपालवद्धपद्मासने चर्चितमहाविष्णुकपाले क्ष्रूं क्ष्लौं श्लौं ज्लौं ह्लौं साद्र नारान्त्रकृतयोगपट्टिनि शेषयज्ञोपवीतिनि छ्गौं श्रौं फ्रौं श्रौं स्त्रौं विकरालिनि उन्मत्तशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि वामवंक्षणाय नमः ।

(१४) ओं ओं ओं ओं ओं खरकर्गि महापिशाचिनि खद्योतपिङ्गले ज्वलदक्षि फें फां हीं हैं हौं यमजिह्वे बडवामुखि अवर्णेश्वरि वज्रव्योमकेशि छ्रें श्रैं फ्रैं श्रैं स्त्रैं रहस्य-रक्षिणि कालशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणपौरस्त्यवंक्षणाय नमः ।

(१५) ओं ओं ओं ओं ओं जय जय जीव जीव कामाङ्कुशे कामद्राविणि सर्वमदभञ्जिनि ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं ख्फ्ह्लीं ख्फ्ह्लूं ब्रूं अनाख्येयस्वरूपिणि चर्पटिनि नगदन्त ब्रह्माण्डे क्लफ्रीं क्लफ्रूं क्लरह्लैं क्लह्लौं क्ष्रौं क्षपणिके मुण्डशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि गलाय नमः।

(१६) ओं ओं ओं ओं ओं सकलदैत्यवलमर्दिनि निपीतरुधिरछर्दिनि क्लखफ्रां क्लख्फ्रीं क्लखफ्रूं क्लखफ्रैं क्लखफ्रौं शवाङ्गुलीपुञ्जकृतकाञ्चिते हूं हूं कारनादभीषणे ह्लखफ्रां ह्क्लां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लफ्रौं शूलिनि महाराक्षसि शिवदूति [?] श्री पादुकां पूजयामि वामपार्श्वाय नमः।

(१७) ओं ओं ओं ओं ओं वातवेगजयिनि वेतण्डतुण्डि परमप्रचण्डि रह्लछ्ररक्षह्लां रक्षफ्छ्रां खफ्क्ष्रां खफ्छ्रां खफ्ह्लां महाशंखमालिनि त्रिलोकीपालिनि संवर्तक-कालानलज्वालिनि कर्कशभुजभीमे क्ष्फ्ह्लां क्ष्लौः क्ष्फ्रैं क्षफ्ह्लें क्ष्फ्ह्लैं × ×[घोरतासीमे] बलशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि वस्तये नमः।

(१८) ओं ओं ओं ओं ओं अणिमादिप्रभावप्रकाशिनि चण्डातिचण्डतरचण्डयोगेश्वरि फ्श्रां फ्श्रीं फ्श्रूं फ्श्रें फ्श्रैं सकलजनमनोरञ्जनि दुष्टदुरभिप्रायभञ्जिनि प्रणतवाञ्छितप्रदे फ्म्रग्लऔं क्ष्लक्ष्रौं ×[उरंकम् ?] फ्ख्भ्रैं फ्ख्भ्रौं सौम्यमूर्ते भगवति सिद्धिशिवदूति श्रीं पादुकां पूजयामि दक्षिणपार्श्वाय नमः।

(१९) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं कालि कालि महाकालि मांसशोणितभोजिनि ह्रीं ह्रीं ह्रूं रक्त-कृष्णमुखि देवि मा मां शत्रवः नश्यन्तु हृयदशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि ह्रां हृदयाय नमः।

(२०) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं नमो भगवति दुष्टचाण्डालिनि रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्ग धारिणि हन हन दह दह पच पच मम शत्रून् ग्रस ग्रस मारय मारय हूं हूं हूं फट् शिरः शिवदूति श्री पादुकां पूजयामि ह्रीं शिरसे स्वाहा।

(२१) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ह्स्फ्रां ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं महापिङ्गलजटाभारे विकटरसनाकराले सर्वसिद्धि देहि देहि दापय दापय शिखाशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि ह्रूं शिखायै वषट्।

(२२) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि विकटतुङ्गकोकामुखि ह्रीं क्लीं श्रीं महापातालतुलितोदरि भूतवेतालसहचारिणि कवचशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि कवचाय हूं।

(२३) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं लेलिहानरसनास्याभयानके वितस्तचिकुरभारभासुरे, चामुण्डा-भैरवीडाकिनीगणपरिवृते फ्रें ख्फ्रें हूं आगच्छ आगच्छ सान्निध्यं कल्पय कल्पय त्रैलोक्यडामरि महापिशाचिनि नेत्र शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट्।

(२४) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं गुह्यातिगुह्यकुब्जिके हूं हूं हूं फट् मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्रयन्त्र चूर्णप्रयोगादिकान् परकृतान् कारितान् करिष्यन्ति तान् सर्वान् हन हन मथ मथ मर्दय मर्दय दंष्ट्राकरालि फ्रें ह्रीं हूं फट् गुह्यातिगुह्यकुब्जिके अस्त्रशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि अस्त्राय फट्।

(२५) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं हूं हूं कार घोरनादविन्नासितजगत्त्रये ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रसारितायुतभुजे महानेगप्रधाविते क्लीं क्लीं क्लीं पदविन्यासत्रासिते सकलपाताले श्रीं श्रीं श्रीं व्यापकशिवदूति परमशिवपर्यङ्कशायिनि छ्रीं छ्रीं छ्रीं गलद्रुधिर मुण्डमालाधारिणि घोरघोरतररूपिणि फ्रें फ्रें फ्रें ज्वालामालिपिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं दैत्यदानवनिकृन्तनि सकलसुरकार्यं साधिके ओं ओं ओं फट् नमः स्वाहा ।

४—डाकिनीन्यासः (७।२७४-३२८)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं फट् फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें स्हौं स्हौः सौः डां डीं डूं टम्लव्य्रईं कोलागिरिस्थने चित्रघण्टे डाकिनि मां रक्ष रक्ष मम त्वग्धातून् रक्ष रक्ष पाहि पाहि ह्रौं क्रों क्रौं क्षौं छ्रीं मह्लक्ष्लव्य्रऊं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं सर्व सत्त्ववशंकरि हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा इति ग्रीवा न्यासः ।

ओं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं ब्लौं क्ष्रौं ख्रौं हसफ्रें हसखफ्रां तम्लव्य्रईं मुञ्जगिरिस्थाने उल्कामुखि राकिनि रां रीं रूं मां रक्ष रक्ष मम रक्तधातून् रक्ष रक्ष फ्रों फ्रौं स्फ्रौं ब्लीं ब्लूं सखबलक्ष्मध्रयब्लों ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं सर्वदेववशंकरि फ्रें फ्रें फ्रें फट् फट् नमः स्वाहा इति हृदय न्यासः ।

ओं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं स्त्रीं स्त्रूं प्रीं प्रूं ह्रैं ह्रैं रज्रीं जरक्रीं हसखफ्रैं कम्लव्य्रईं विन्ध्यगिरिस्थाने घोरनादे डाकिनि लां लीं लूं मां रक्ष रक्ष मम मांसधातून् रक्ष रक्ष सर्वसिद्धिवशंकरि स्त्रैं स्त्रौं रह्रैं रह्रौं क्षरह्रीं रहक्षम्लव्य्र अखफ् छ्रस्त्रह्रीं ह्लक्षफ्लीं ह्लक्षफ्लूं ह्लक्षफ्लैं ह्लग्लैं ह्लग्लैं छ्रीं छ्रीं छ्रीं फट् फट् नमः स्वाहा इति नाभिन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं फ्रें फ्रें फ्रें खफ्रें खफ्रें फ्रीं खफ्रह्रौं खफ्रह्रौं खफ्रछ्रीं भ्रव्य्रवऊं नीलगिरिस्थाने पिङ्गजटे काकिनि मां रक्ष रक्ष मम मेदो धातून् रक्ष रक्ष सर्वदैत्यवशंकरि भ्रमरयऊं रक्षछ्रीं हसखफ्रौं रस्फ्रौं स्हक्लरक्ष मजह्लखफरयूं क्लं क्लं रछ्रीं रछ्रीं रप्रीं रप्रीं रफ्रीं रफ्रीं फट् फट् नमः स्वाहा इति लिङ्ग न्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं रक्षफ्रछ्रैं रकक्ष्रैं रह्लछ्ररक्षह्रैं छ्ररक्षह्रैं छ्ररक्षह्रैं ह्फ्रीं ह्फ्रूं ह्फ्रैं ह्फ्रौं म्लव्य्रहऊं श्वेतगिरिस्थाने वेगाकुले शाकिनि मां रक्ष रक्ष ममास्थिधातून् रक्ष रक्ष सर्वग्रहवशंकरि रक्रीं रक्रूं रख्रैं रख्रौं रख्रां फ्रक्नां ह्मखफ्रें खफछ्रैं व्रह्लक्ष्मक्ररयीं······(त्र्यक्षरबीजयुगलम्) खफछ्रैं खफछ्रैं हलैं हलैं फ्लीं फट् फट् नमः स्वाहा इत्यग्गनन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं क्रूं क्रैं क्रों क्रौं फीं फां क्षीं क्षैं क्षौं शम्लव्य्रईं सह्यगिरिस्थाने एकपादे हाकिनि मां रक्ष रक्ष मम मज्जाधातून् रक्ष रक्ष सर्वपशुवशंकरि रह्लैं रह्लैं रक्ष्रैं रक्ष्रैं क्रैं क्रौं, स्हौः सौः ठः ठः ठः ·· ····· [गह्वर कूटम्] रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं खफ्रक्लैं खफ्र क्लौं ह्लक्षम्लैं फट् फट् नमः श्रीं [स्वाहा ?] इति भ्रूमध्यन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ह्रू ह्रू ह्रू ह्लीं ह्ली ह्लीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं खफ्क्ष्रौं खफ्क्ष्रौं क्षखफ्रें क्षखफ्रैं खफ्रक्लौं यम्लव्य्रइं दर्दुरगिरिस्थाने त्रिशीर्षे डाकिनि मां रक्ष रक्ष मम वसागोदान्त्रधातून् रक्ष रक्ष सर्वनागवशंकरि स्त्रखफ्रीं स्त्रखफ्रूं स्त्रखफ्रैं स्त्रखफ्रौं ह्लफ्रैं ह्लफ्रैं क्षच्रैं क्षच्रैं हसखफ्रम्लक्षव्य्रऊं क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं खफछ्रीं खफछ्रूं हसखफ्रौं फट् फट् ह्रूं इति गले न्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं फ्रें फ्रें ह्रूं रठ्रीं रठ्रीं रठ्रीं फ्रौं रह्लूं क्षरह्लीं क्षरह्लूं म्लव्य्रवइं महेन्द्रगिरिस्थाने घटोदरि शाकिनि मां रक्ष रक्ष मम क्लोमय हृदयास्नायुपुरीतति रक्ष रक्ष सर्वरक्षोवशंकरि जूं श्रीं क्ष्रौं क्ष्रौः व्रीं फ्लक्रूं क्रौं क्रौं ह्रमखफ्रैं क्षस्हम्लव्य्रईऊं कहलश्रौं कहलश्रूं हसफ्रौं रकक्ष्रौं रह्लछ्ररक्षह्लौं फट् फट् नमः स्वाहा इति तालु न्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं ह्लीं फम्रग्लऐं फम्रग्लऊं फम्रग्लऔं क्लक्ष्रौं × [उरङ्कितम्] क्षव्लकस्त्रीं मलयगिरिस्थाने सूचीमुखि याकिनि मां रक्ष रक्ष मम शुक्रधातून् रक्ष रक्ष सर्वजगद्वशकरि फखभ्रौं हसखफक्ष्रीं खफ्रौं × [मोदकम्] क्षरस्त्रम्रफ्रूं क्ष्लक्ष्रूं फखभ्रूं हसखफः फखभ्रौं क्ष्लश्रैं क्ष्लक्ष्रौ फखभ्रैं फम्रग्लईं घम्रव्लक्ष फखछ्री खफह्लीं खफश्रूं खफश्रैं रजक्ष्रौं रह्लछ्र रक्षह्लौ रक्षफछ्रीं रक्ष्रौं छ्ररक्षह्लौ रकक्ष्रौं हसफ्रौं खफ्रौं फट् फट् नमः स्वाहा इति सहस्रदलकमलन्यासः । .

इति डाकिनीन्यासः

५ -- योगिनीन्यासः (३३६-३५०)

(१) ओं फ्रें छ्रीं क्लीं ह्लौं श्रीं चर्चिकायै हूं फट् स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।
(२) ओं फ्रें छ्रीं क्षौं क्रौं क्रीं डामर्यै हूं फट् स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।
(३) ओं फ्रें छ्रीं क्रैं ख्रौं आं सूर्यकर्ण्यै हूं फट् स्वाहा इति कूर्चयोः न्यासः ।
(४) ओं फ्रें छ्रीं क्ष्रौं स्हौः ब्लूं तापिन्यै हूं फट् स्वाहा इति दक्षिणलोचने न्यासः ।
(५) ओं फ्रें छ्रीं श्रीं फ्रीं फ्रौं कुम्भोदर्यै हूं फट् स्वाहा इति वामलोचने न्यासः ।
(६) ओं फ्रें छ्री फें फीं भ्रूं फेरुमुख्यै हूं फट् स्वाहा इति दक्षगण्डे न्यासः ।
(७) ओं फ्रें छ्रीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं मदिन्यै हूं फट् स्वाहा इति वामगण्डे न्यासः ।
(८) ओं फ्रें छ्रीं क्ष्रो क्ष्रूं क्ष्रौं ज्ञानहारिण्यै हूं फट् स्वाहा इति दक्षकर्णे न्यासः ।
(९) ओं फ्रें छ्रीं कहलश्री कहलश्रूं कहलश्रैं विडालाक्ष्यै हूं फट् स्वाहा इति वामकर्णे न्यासः ।

(१०) ओं फ्रें छ्रीं क्षरह्लीं जरक्रीं क्षरह्लूं दीर्घनखायै हूं फट् स्वाहा इति तालुके न्यासः ।

(११) ओं फ्रें छ्रीं हसखफ्रें खफ्रें हम्खफ्रौं सूचीतुण्डयै हूं फट् स्वाहा इति हृदये न्यासः ।
(१२) ओं फ्रें छ्रीं क्षरह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं क्षरह्लूं शोषिण्यै हूं फट् स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(१३) ओं फ्रें छ्रीं रक्षफ्रछ्रीं रकक्ष्रू रजह्रक्ष्रैं कपालिन्यै हूं फट् स्वाहा
इति नाभौ न्यासः ।

(१४) ओं फ्रें छ्रीं खफ्रह्लौं खफह्लैं खफ्रछ्रीं चण्डघण्टायै हूं फट् स्वाहा
इति लिङ्गे न्यासः ।

(१५) ओं फ्रें छ्रीं खफ्रह्लौं (?) हसफ्रौं प्रीं कुरुकुल्लायै हूं फट् स्वाहा
इति गुदे न्यासः ।

(१६) ओं फ्रें छ्रीं छ्रखफ्रीं खफ्रक्ष्रैं क्ष्लौः वलाकिन्यै हूं फट् स्वाहा
इति सर्वव्यापक न्यासः [?]

इह स्थानानि पञ्चदश एव निर्दिष्टानि अत ऊहत अन्तिम न्यास स्थानं कल्पितम् ।

इति

६—कुलतत्वन्यासः (३५८-४१५)

(१) ओं ह्लीं क्षौं हूं ह्लीः ह्लें र्क्रूं र्क्ष्छ्रीं लगमक्षखफ्रसह्लूं इडानाड्यधिष्ठात्री काली देवता आनन्दकुलतत्त्वक्रमसिद्धा मायाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति प्रपदे न्यासः ।

(२) ऐं ह्रीं श्रीं फ्रें ह्लों र्छ्रूं र्क्ष्छ्रीं र्छ्रैं ग्रमह्लक्षखफ्रग्लैं or ह्लक्षम्लस्त्रयूं पिङ्गला-नाडयधिष्ठात्री काली देवता नियमकुलतत्त्वक्रमसिद्धा शक्तिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति गुल्फे न्यासः ।

(३) आं क्रीं क्लों क्रौं रछ्रीं रस्फ्रों र्स्फ्रौं रक्षश्रीं सखक्लक्ष्मध्रयव्लीं सुषुम्णानाडय-धिष्ठात्री काली देवता प्रमाणकुलतत्त्वक्रमसिद्धा सिद्धिकौलिकी देव्यम्बा श्री पादुकां पूजयामि नमः इति जङ्घायां न्यासः ।

(४) क्रूं ईं श्रीं फ्रो ग्लें र्ज्रौं र्ज्रौं ज्रैं च्लक्ष्मस्हव्य्रख्रीं गान्धारीनाडयधिष्ठात्री कालीदेवता प्रकृतिकुलतत्त्वक्रमसिद्धा पराकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति जानुन्यासः ।

(५) फ्रौं स्फ्रों क्लौं क्लूं र्फ्रें र्फ्रीं र्स्त्रौं र्स्त्रैं भक्ष्लरमह्रूं स्ख्फ्रूं हस्तिजिह्वा नाडयधिष्ठात्री काली देवता निवृत्तिकुलतत्त्वक्रमसिद्धा नित्याकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्युर्वोर्न्यासः ।

(६) ब्जैं श्रीं नौं नौं जूं ज्रैं स्हौः सौः क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं अलम्बुषानाडयधिष्ठात्री काली देवता वैराग्यकुलतत्त्वक्रमसिद्धा सूक्ष्माकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति वंक्षणे न्यासः ।

(७) ज्रौं रह्लछ्ररक्षह्लीं र्क्लीं र्व्लूं ख्फ्रूं ख्फ्रीं ख्फ्रें ख्फ्रौं ब्लक्ष्हमस्त्रछ्रूं विश्वो-दरानाडयधिष्ठात्री काली देवता अविद्याकुलतत्त्वक्रमसिद्धा भद्राकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कटौ न्यासः ।

(८) ह्स्फ्रौं ह्स्फ्रूं क्ष्रूं त्रीं ब्लों ब्लूं ब्रौं त्रीं सहक्लर्क्षमजह्लखफरयूं सरस्वती नाड्यधिष्ठात्री काली देवता ऐश्वर्यकुलतत्त्वक्रमसिद्धा जयाकौलिकीदेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति पार्श्वे न्यासः ।

(९) ट्रीं व्लैं ह्स्फ्रैं र्छ्रां ह्स्फ्रौं छ्रर्क्ष्ह्लैं त्रैं स्हौः खफछ्रैंवह्लक्ष्मऋरयईं कुहूनाड्यधिष्ठात्री काली देवता प्रतिष्ठाकुलतत्त्वक्रमसिद्धा रौद्री कौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कक्षायां न्यासः।

(१०) सौः रस्त्रूं रह्ल छ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लौं रह्लछ्र रक्षह्लैं र्क्ष्रीं रक्ष्रूं रहक्षम्लव्य्रअ खफछ्रस्त्रह्लीं वारणानाड्यधिष्ठात्रीं काली देवता उपाधि-कुलतत्त्वक्रमसिद्धा प्रभा कौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति स्कन्धे न्यासः।

(११) र्क्ष्रैं र्क्ष्रौं क्ष्रौं छ्रीं क्रैं स्हौं रक्षफछ्रैं रक्षफछ्रूं (गह्वर कूटम् ?) रण्डा-नाड्यधिष्ठात्री काली देवता अद्वैतकुलतत्त्वक्रमसिद्धा विद्याकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति जत्रुणि न्यासः।

(१२) श्ख्फ्रौं स्फ्रें क्ष्लौं रक्षफछ्रौं प्रीं व्रूं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रीं शम्लह्लव्य्र ख्फ्रें मार्तण्डा-नाड्यधिष्ठात्री काली देवता आशयकुलतत्त्वक्रमसिद्धा ज्येष्ठा कौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति हनौ न्यासः।

(१३) रजझ्रक्ष्रौं रजझ्रक्ष्रैं फ्रौं व्रीं फ्रूं श्रौं श्रां क्ष्रां ह्स्ख् फम्लक्षव्य्रऊं शङ्खिनीनाड्य-धिष्ठात्री काली देवता वासनाकुलतत्त्वक्रमसिद्धा क्रियाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति सृक्किणि न्यासः।

(१४) ख्फछ्रीं ह्लक्ष्फ्लीं खफह्लीं ख्फह्लूं प्रौं ह्स्ख्फ्रां ख्फह्लां खफह्लौं स्हछ्क्ल-म्रव्य्रईं मनुनाड्यधिष्ठात्री काली देवता संकल्पकुलतत्त्वक्रमसिद्धा दीप्ताकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कपोले न्यासः।

(१५) दां दां दां ख्फह्लीं ह्स्ख्फ्रौं ह्लूं ह्लैं ह्लां तफल्क्षक्मश्व्रीं पयस्विनीनाड्यधिष्ठात्रीं काली देवता विकल्पकुलतत्त्वक्रमसिद्धा शान्तिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति गण्डे न्यासः।

(१६) ल्रौं ह्लौं ह्स्ख्फ्रौं क्ष्रां खफह्लूं खफह्लैं खफह्लौं खफक्ष्रां मफलह्लहखफ्रूं मधुमती नाड्यधिष्ठात्री काली देवता विशुद्धिकुलतत्त्वक्रमसिद्धा सृष्टिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कर्णे न्यासः।

(१७) हसखफ्रैं क्ष्रीं खफक्ष्रौं खफक्ष्रूं खफक्ष्रैं खफक्ष्रौं क्ष्र् ह्लूं पूं सकह्ललमक्षखव्रूं चेतना-नाड्यधिष्ठात्री निमित्तकुलतत्त्वक्रमसिद्धा स्थितिकौलिकी देव्यम्बां श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति नासापुटे न्यासः।

(१८) खफक्लूं खफक्लां खफक्नीं खफक्लैं छ्ररक्ष्ह्लीं भ्रीं जरक्रीं रह्लां × [ध्वजकूटम् ?] गालिनी नाड्यधिष्ठात्री काली देवता आभास कुलतत्त्वक्रमसिद्धा काली कौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति नेत्रे न्यासः।

(१९) खफछ्रां खफछ्रीं खफछ्रूं खफक्नौं रह्लूं ह्नफ्रें ह्स्ख्फ्रें रह्लीं स्हक्लव्य्रक्ष्रीं धमनीनाड्यधिष्ठात्री कालीदेवता चैतन्यकुलतत्त्वक्रमसिद्धा मेधाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति भ्रुवौ न्यासः।

(२०) खफछ्रैं खफ्रें रह्लौं फम्रलऊं ध्रीं खफछ्रौं रह्लें फम्रलईं कम्लक्षसहह्ल्रूं कपिला नाड्यधिष्ठात्री कालीं देवता प्रत्ययकुलतत्त्वक्रमसिद्धा पुष्टिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति मणिबन्धे न्यासः।

(२१) फम्रग्लऐं फम्रग्लऔं रक्ष्री रश्रीं रफ्रीं फखभ्रां जरक्रीं रक्ष्रैं × [सेतु कूटम् ?] विश्वदूता नाड्यधिष्ठात्री काली देवता प्रबोधकुलतत्वक्रमसिद्धा श्रद्धाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति शङ्खे न्यासः।

(२२) फखभ्रूं फखभ्रीं रछ्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रीं छ्रखफ्रीं × × [वक्त्रकवचे] ज्रम्लक्षह्लछ्रीं ध्वारिणीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता आवेशकुलतत्वक्रमसिद्धा पूर्णाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः।

(२३) × × × [पारिजात इष्ट सेतु बीजानि] फख्भ्रैं रक्ष्रौं फख्भ्रों × × [जगदावृत्तिकं ब्रह्मकपालं] म्ररयक्षक्षस्हफ्रीं धोरिणी नाड्यधिष्ठावी कालीदेवता निर्वाणकुलतत्वक्रमसिद्धा चन्द्राकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति शिखा न्यासः।

(२४) रज्रीं च्रीं रफ्रें खफछ्रीं फख्भ्रौं, हसखफक्ष्रीं ह्स्ख्फ्रौं खफ्रीं छ्रस्हक्षव्लश्रीं लम्त्रिकानाड्यधिष्ठात्री समयकुलतत्वक्रमसिद्धा नन्दाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कन्धरे न्यासः।

(२५) ह्स्ख्फ्रें ख्फ्छ्रूं खफछ्रैं क्षरस्त्रीं खफ्छ्रों क्षरस्त्रखफ्रूं व्लूं ह्ल्क्षें मह्लक्षलव्यऊं कैवल्या नाड्यधिष्ठात्री जीवात्मकुलतत्वक्रमसिद्धा कल्पाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति व्यापके सर्वशारीरे न्यासः।

शतद्वयमावश्यकमपेक्षितं च बीजानां किन्तु इह ततोऽधिकानि दश बीजानि अधोलिखितानि तेषां प्रसङ्गे विचार आवश्यकः। ह्फ्रीं ह्फ्रूं क्ष्रस्त्रैं क्ष्रस्त्रं छ्ररक्षह्लां इफ्रौं हफ्रें। हमखफ्रुं × [महाकल्पस्थायी]

इति कुलतत्वन्यासः।

७—सिद्धिचक्रन्यासः

(१) ओं क्लीं श्रीं ह्लीं फ्रें कामरूपगह्वरे महानुभावायै योगिनीदेवतायै स्तम्भनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः।

(२) ओं क्रीं क्लूं स्त्रीं फ्रें पूर्णगिरौ महानुभावायै अप्सरसदेवतायै मोहनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति हृदये न्यासः।

(३) ओं स्फ्रों हूं मां आनर्तविषये महानुभावायै डाकिनीदेवतायै वशीकरणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः।

(४) ओं क्षौं ग्लौं ग्लूं फ्रें सौराष्ट्रदेशे महानुभावायै चामुण्डादेवतायै मारणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कफोणिद्वये न्यासः।

(५) ओं जूं ह्लों ह्रें फ्रें कश्मीरमण्डले महानुभावायै भैरवीदेवतायै आकर्षणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति पार्श्वद्वये न्यासः।

(६) ओं स्हौः क्लं × [वटी] फ्रें कोलापुरे महानुभावायै राक्षसीदेवतायै उच्चाटनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति अंसयोर्न्यासः।

(७) ओं रक्षश्रीं म्रमरयऊं ज्रौं फ्रें कोशलपत्तने महानुभावायै भूतिनीदेवतायै द्वेषसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कपोलयोर्न्यासः।

(८) ओं प्रं र्प्रौं रस्फौं फ्रें काञ्चीनगरे महानुभावायै गुह्यकीदेवतायै द्रावणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति नेत्रयोर्न्यासः ।

(९) ओं रह्लौं रफ्रै रक्ष्रौं फ्रें काश्यूपरे महानुभावायै जम्भकीदेवतायै शोषणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कर्णयोर्न्यासः ।

(१०) ओं क्ष्रौं क्लैं रफ्रौं फ्रें वाराहक्षेत्रे महानुभावायै गन्धर्वदेवतायै मूर्च्छनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यासः ।

(११) ओं रक्ष्रौं रस्त्रैं रस्त्रौं फ्रें जालन्धरतटे महानुभावायै किन्नरीदेवतायै क्षोभण-सिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति सृक्कद्वये न्यासः ।

(१२) ओं खफ्रीं ब्रीं ब्लौं फ्रें काम्पिल्यप्रदेशे महानुभावायै कूष्माण्डीदेवतायै सन्त्रास-सिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यासः ।

(१३) ओं प्रीं छ्रीं फ्रैं फ्रें मथुरापुर्यां महानुभावायै विद्याधरीदेवतायै उन्मादसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(१४) ओं प्रूं ह्लूं फ्रूं फ्रें नैमिषारण्ये महानुभावायै यक्षिणीदेवतायै व्यजनसिद्धये हूं फट् स्वाहा इति चिबुके न्यासः ।

(१५) ओं श्रीं सौः स्त्रों फ्रें लंकापर्वते महानुभावायै वैष्णवीदेवतायै खड्गसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति जानुद्वये न्यासः ।

(१६) ओं रक्ष्रीं प्रौं भ्रीं अवन्तीनगर्यां महानुभावायै सिद्धादेवतायै खेचरीसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(१७) ओं खफ्रूं ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं फ्रें कोङ्कणजनपदे महानुभावायै महेश्वरीदेवतायै काम-रूपत्वसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(१८) ओं खफ्रें ह्लक्षम्लैं छ्ररक्ष्ह्लीं फ्रें पाञ्चालग्रामे महानुभावायै घोणकीदेवतायै वेताल-सिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१९) ओं खफ्रौं रश्रीं रप्रीं फ्रें उड्डियानपृष्ठे महानुभावायै ब्राह्मणीदेवतायै हूं फट् नमः स्वाहा इति बिन्दौ न्यासः ।

(२०) ओं ह्स्फ्रौं छ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं फ्रें गोमन्थशिखरे महानुभावायै कौमारी देवतायै यक्षिणी सिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति मूलाधारे न्यासः ।

(२१) ओं ह्स्फ्रौं रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं फ्रें पौण्ड्रककानने महानुभावायै वाराहीदेवतायै गुटिकासिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति वदने न्यासः ।

(२२) ओं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं रछ्रीं फ्रें करवीरराजधान्यां महानुभावायै नारसिंही देवतायै धातुवादसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कराग्रयोर्न्यासः ।

(२३) ओं रजझ्रक्ष्रूं ह्स्खफ्रीं ह्स्खफ्रौं फ्रें कलिङ्गभूभागे महानुभावायै ऐन्द्री देवतायै अन्तर्धानसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति पादाग्रयोर्न्यासः ।

(२४) ओं ह्स्खफ्रैं रजझ्रक्ष्रीं क्षरह्लूं फ्रें मेदिनीतले महानुभावायै गुह्यकाली देवतायै अणिमाद्यष्टसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति सर्वशरीरव्यापके न्यासः ।

इति सिद्धिचक्रन्यासः ।

८—कैवल्यन्यासः

(१) ओं ऐं क्लीं श्रीं छ्रीं क्रों क्रीं ह्रीं हूं रक्षक्रींऊं कुण्डलिनीचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा ब्रह्मवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति गुदे न्यासः।

(२) आं क्ष्रौं क्रौं स्त्रीं ह्लीं फ्रें जूं स्हौः सौः सहेक्षम्लव्य्रईऊं स्वाधिष्ठानचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा विष्णुवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः।

(३) ईं रक्षछ्रीं रक्षछ्रीं क्लां क्लां रछ्रीं रछ्रीं नौं नौं क्षस्हम्लव्य्रईऊं मणिपूरकचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा रुद्रवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति नाभौ न्यासः।

(४) फ्रों रफ्रों फ्रौं रफ्रौं फ्रीं फ्रूं ब्लौं स्हौं क्ष्रौं क्षरहम्लव्य्रईऊं अनाहतचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा कुमारवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति जठरे न्यासः।

(५) ह्लूं ह्लैं ह्लौं रश्रीं रश्रूं रश्रें रश्रों रफ्रीं रत्रीं क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षह्लम्लव्य्रईऊ विशुद्धचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा ईश्वरवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति हृदये न्यासः।

(६) रश्रीं रघ्रीं, खफ्रें जरक्रीं × [एकावली] क्षरह्लीं क्षरह्लूं रज्रीं रज्ञीं क्षरहम्लव्य्रईऊं रक्षस्हम्लव्य्रईऊं आज्ञाचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा कुलवस्तु प्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति घण्टिकायां न्यासः।

(७) क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं हसखफ्रीं हसखफ्रूं रह्लीं रह्लूं रह्लैं डां लक्षमह्ल जरक्रंव्य्रऊं पराचक्रे योगमार्गेण, कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा शक्तिवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति कण्ठे न्यासः।

(८) रस्त्रैं रस्त्रौं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रस्त्रीं रस्त्रूं हसखफ्रें ह्सखफ्रैं ह्सखफ्रौं ब्रकम्लब्लक्लऊ पश्यन्तीचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा शिवावस्तु प्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति वदने न्यासः।

(९) छ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लौं रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं खफ्रीं खफ्रूं खफ्रैं खफ्रां ह्सफ्रौं हस्लक्षकमह्लव्रूं मध्यमाचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा सिद्धिवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति कूर्चे न्यासः।

(१०) ह्सफ्रों ह्सफ्रूं ह्सफ्रें रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं र्कक्ष्रीं र्कक्ष्रूं र्कक्ष्रैं र्कक्ष्रौं स्हजहलक्षम्लवनऊं वैखरीचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा ज्ञानवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इत्यलिके न्यासः।

(११) खफक्ष्रीं खफक्ष्रूं खफक्ष्रैं खफक्ष्रौ खफ्छ्रीं खफ्छ्रूं खफ्छ्रैं क्प्रीं खफ्रीं सगलक्षमहरह्लूं ब्रह्मरन्ध्रचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा मोक्षवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः।

इति कैवल्यन्यासः।

१—अमृतन्यासः

इह पञ्चविंशतिस्थानेषु न्यासनिर्देशः। तत्रादौ चत्वारिंशन्मिताः बीजकूटाः सर्वस्थानन्यासेषु निवेश्याः। अत एवादिन्यासमन्त्रे एव केवलं तन्निर्देशोऽत्र विधीयते। एवमन्ते "इदममृतीकृत्य परमात्मनि हुत्वा स्वयं जुषस्व स्वाहा" इत्यपि सर्वस्मिन् मन्त्रे योज्यम्। परिवर्तनीयमन्त्राः उभयोरुक्तयोर्मध्ये निवेश्यास्ते चाधो निर्दिश्यन्त स्थानानि चात्रोल्लिखितानि यथाक्रमं न्यसनीयानि।

(१) ओं ऐं ह्लीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं आं क्रों क्षूं स्फों ह्रौं ब्लौं स्हक्लह्लीं फ्रों ग्लूं स्हौः ह्स्खफ्रें फ्रें क्लूं क्षमब्लहकयह्लीं रजहलक्षमऊं हक्लह्लवडकखऐं कसवहलक्षमऔं ब्रकम्लब्लक्लऊं क्रैं सौः ज्रं रम्लव्रीं स्फ्लह्क्षूं प्रीं ज्रौं ह्स्रीं ट्रीं ध्रीं ल्क्ष्मह्ल ज्रक्रंव्य्रऊं थ्रीं द्रैं भ्रूं क्रौं ज्ञाननामात्मने शिवाय इदममृतीकृत्य परमात्मनि हुत्वा स्वयं जुषस्व स्वाहा इति शिरसि न्यासः।

(२) ······इच्छानामात्मने ईश्वराय······स्वाहा इति ललाटे न्यासः।

(३) ······कृतिनामात्मने शुद्धये······स्वाहा इत्यास्ये न्यासः।

(४) ······धर्मनामात्मने विद्यायै ···स्वाहा इति कण्ठे न्यासः।

(५) ······वैराग्यनामात्मने लिङ्गाय······स्वाहा इति दक्षस्कन्धे न्यासः।

(६) ······ऐश्वर्यनामात्मने जीवाय ···· स्वाहा इति वामस्कन्धे न्यासः।

(७) ······शक्तिनामात्मने आत्मने ·····स्वाहा इति दक्षकफोणौ न्यासः।

(८) ······कैवल्यनामात्मने सूक्ष्माय····· स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः।

(९) ······उत्साहनामात्मने अविद्यायै ·····स्वाहा इति दक्षमणिबन्धे न्यासः।

(१०) ······धैर्यनामात्मने नियत्यै······स्वाहा इति वाममणिबन्धे न्यासः।

(११) ······गुह्यनामात्मने कालाय······स्वाहा इति दक्षकराङ्गुलिमूले न्यासः।

(१२) ······विवेकनामात्मने कलायै ·····स्वाहा इति वामकराङ्गुलिमूले न्यासः।

(१३) ···· विकारनामात्मने रागाय······स्वाहा इति दक्षकराग्रे न्यासः।

(१४) ······सुखनामात्मने कुलाय····· स्वाहा इति वामकराग्रे न्यासः।

(१५) ······आनन्दनामात्मने अमृताय····· स्वाहा इति दक्षवंक्षणे न्यासः।

(१६) ······संज्ञानामात्मने बुद्धये······स्वाहा इति वामवंक्षणे न्यासः।

(१७) ······पुण्यनामात्मने मायायै······स्वाहा इति दक्षजानौ न्यासः।

(१८) ······क्रियानामात्मने मनसे······स्वाहा इति वामजानौ न्यासः।

(१९) ······विकृतिनामात्मने कामाय ···· स्वाहा इति दक्षगुल्फे न्यासः।

(२०) ······प्रकृतिनामात्मने रजसे······स्वाहा इति वामगुल्फे न्यासः।

(२१) ······अहङ्कारनामात्मने सत्त्वाय······स्वाहा इति दक्षपादे न्यासः।

(२२) ······महन्नामात्मने तमसे······स्वाहा इति वामपादे न्यासः।

(२३) ······तन्मात्रनामात्मने युक्तये······स्वाहा इति दक्षचरणाग्रे न्यासः।

(२४) ······लिङ्गनामात्मने सिद्धये······स्वाहा इति वामचरणाग्रे न्यासः।

(२५) ······परमात्मनामात्मने सामरस्याय······स्वाहा इति व्यापके न्यासः।

इत्यमृतन्यासः।

अमृतन्यासानुकल्पः

इहामृतन्यासानुकल्पे चत्वारिंशन्मन्त्रस्थाने नवैवाधो निर्दिष्टाः मन्त्राः प्रत्येकस्मिन् मन्त्रे भविष्यन्ति अन्यत्सर्वं यथापूर्वं स्यात् ।

ते चादिस्थाः मन्त्राः—"ओं ऐं ह्रीं छ्रीं क्ष्रौं ख्फ्रें फ्रें हूं ह्रौं" इति ।

१०—जयविजयन्यासः

(१) ओं ह्रीं क्लीं ह्रौं श्रीं हूं क्रौं क्रों क्षौं शिवलोके सदाशिवाराधितायै एकवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां स्हज्ह्ल्क्ष म्लवनऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(२) ऐं स्त्रीं ईं फ्रें फ्रों ग्लूं ग्लैं क्रीं छ्रीं वरुणलोके वरुणाराधितायै त्रिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ब्लक्षमकह्लभ्रव्य्रऊ तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति मुखवृत्ते न्यासः ।

(३) आं फ्रौं स्फ्रों ग्लीं ग्लौं क्ष्जौं क्ष्लौं क्ष्मौं ह्रीः अदितिलोके अदित्याराधितायै पञ्चवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां म्लकह्लक्षरस्त्रीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

(४) क्रौं ह्लः नैं नौं क्रीं क्रूं जूं सः सौः शचीलोके शच्याराधितायै षट्वक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ह्लक्षकमह्लनव्य्रऊं तस्यै जयानु विजय प्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति चिबुके न्यासः ।

(५) स्हौः क्ष्रौं ब्लैं क्लौं ज्रैं ज्रौं क्रैं स्हौं खफ्रीं सप्तर्षिलोके सप्तर्ष्याराधितायै सप्तवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां खह्लक्षक्वक्षलहक्ष तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः ।

(६) रक्ष्छ्रीं क्ष्रूं क्लं आं [फीं ?] ज्रूं ठ्रीं ध्रौं श्रीं वसुलोके वस्वाराधितायै अष्टवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां नद्क्षट्क्षव्य्रऊं छ्लह्क्ष्ल्क्ष फ्रग्लऊ तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति कण्ठे न्यासः ।

(७) र्क्ष्श्रीं रस्फ्रौं प्रीं फ्रीं ट्रीं त्रीं द्रीं प्रौं श्रीं यमलोके मृत्युकालाराधितायै नववक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ह्लक्षकमव्रूं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति हृदये न्यासः ।

(८) व्रूः भ्रमरयऊं स्त्रैं स्त्रौं फीं फ्रां क्ष्लौं व्रूं म्रां भूलोके मुनिभूताराधितायै दशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ट्क्षसन्रम्लें तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(९) छ्रैं छ्रौं रक्रां रक्रीं रक्रूं ड्रीं ढ्रीं फ्रां श्रूं रुद्रलोके रुद्राराधितायै एकादशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां सहठ्लक्षह्लभक्रीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१०) फ्रूं फ्रैं प्रूं प्रैं प्रौं ग्रैं थ्रौं क्लैं छ्रौं सूर्यलोके द्वादशादित्याराधितायै द्वादशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां लह्लकक्ष्मस्हव्य्रऐं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(११) क्ष्रौं. क्ष्रू: ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं क्लां क्लां विश्वेदेवलोके विश्वेदेवाराधितायै त्रयोदशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रजक्षमल्लह्लूं तस्यै जयानु. विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षकटौ न्यासः।

(१२) रक्ष्रीं रफ्रें ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं ह्स्ख्फ्रें ख्फ्छ्रें रह्लां रह्लीं रह्लूं इन्द्रलोके इन्द्राराधितायै चतुर्दशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रक्षलह्लमस्ह्कव्रूं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामकटौ न्यासः।

(१३) रह्लैं रह्लौं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं क्ष्रां क्ष्रीं अग्निलोके अग्न्याराधितायै पञ्चदशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रक्षम्लह्लकसछव्य्रऊं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वंक्षणे न्यासः।

(१४) क्ष्रूं ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रिं ह्स्ख्फ्रुं ह्स्ख्फ्रौं सिद्धलोके सिद्धाराधितायै षोडशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ख्ल्ह्लन्गक्षरछ्रीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षोरौ न्यासः।

(१५) ह्म्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रः रभ्रीं स्हेः ल्यूं फ्लीं रप्रां रप्रूं रप्रें साध्यलोके साध्याराधितायै सप्तदशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ख्क्षमल्लईं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामोरौ न्यासः।

(१६) रप्रैं रप्रों रप्रौं ख्फ्रां ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रों ख्फ्रौं यक्षलोके कुबेराराधितायै अष्टादशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां लक्षह्लमकस्ह्व्य्रऊं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षजंघे न्यासः।

(१७) ख्फ्छ्रौं रक्लीं रक्लूं रक्लैं रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं रस्त्रैं निर्ऋतिलोके राक्षसाराधितायै ऊनविंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां कमह्लचह्लक्ष्रच्रीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामजंघे न्यासः।

(१८) रस्त्रौं क्ष्रस्त्रीं क्ष्रस्त्रूं क्ष्रस्त्रैं रज्रूं ज्रैं ह्स्ख्फ्रौं रक्लैं रक्लौं किन्नरलोके किन्नराराधितायै विंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ट्ह्लक्षद्रड्लरफ्रीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षपार्ष्णौं न्यासः।

(१९) ब्रच्रां रभ्रौं क्ष्रस्त्रौं × [परिघः] रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं अक्षरलोके अक्षरनिवहाराधितायै एकविंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां खफ्लक्षह्लमह्कव्रूं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामपार्ष्णौं न्यासः।

(२०) ह्म्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रौं रब्रीं रव्रीं रव्रूं रव्रों रभ्रीं भासुरलोके भासुराराधितायै द्वाविंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ग्लक्षकमह्लव्य्रऊं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षप्रपदे न्यासः।

(२१) रभ्रूं ख्फ्भ्रूं रभ्रौं क्ष्लौः रम्रीं रम्रूं रम्रैं रम्रौं स्हें गन्धर्वलोके गन्धर्वाराधितायै चतुर्विंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां चलक्षमस्ह्व्य्रखीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामप्रपदे न्यासः।

(२२) ल्यूं प्लूं प्लीं फ्लीं छ्ररक्ष्ह्लां क्ष्रह्लीं क्ष्रह्लूं छ्ररक्ष्ह्लैं रछ्रां विद्याधरलोके विद्याधराराधितायै त्रिंशत्वक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां भक्लरम.ह्स्ख्फ्रूं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षांसे न्यासः।

(२३) ह्फ्रीं ह्फ्रूं ह्फ्रैं ह्फ्रौं रह्लछ्रक्षह्लां रह्लछ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लूं रह्लछ्रक्षह्लैं रह्लछ्रक्षह्लौं प्रजापतिलोके प्रजापत्याराधितायै षट्त्रिंशत्वक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां प्क्षलन्नभ्रूफ्रूं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वार्मांसे न्यासः ।

(२४) हलक्षीं ह्ल्क्षूं ह्ल्क्षैं ह्ल्क्षौं रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रम्रैं तुषितलोके तुषिताराधितायै षष्टिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रक्षस्रीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति पार्श्वे न्यासः ।

(२५) फ्हलक्षूं फ्हलक्षैं फ्हलक्षौं क्षरम्त्रौं रक्षफ्छ्रां रक्षफ्छ्रीं रक्षफ्छ्रूं रक्षफ्छ्रैं रक्षफ्छ्रौं वायुलोके वाय्वाराधितायै अशीतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां क्षम्ल-कस्हरयक्रूं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति पृष्ठे न्यासः ।

(२६) [रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं ?] ख्फ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं दानवलोके दानवाराधितायै शतवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ह्लमक्षन्नलखफ्रऊं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२७) खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं फ्रखभ्रैं खफ्रह्लौं फ्रखभ्रौं ह्स्खफ्रक्ष्रीं ह्स्खफ्रक्ष्रूं खफ्रीं क्षरस्त्र-खफ्रूं प्रलयकाले महाभैरवाराधितायै सहस्रवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां क्षमक्लह्र-ह्सव्य्रऊं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति सार्वशरीर-व्यापके न्यासः ।

इति जयविजयन्यासः ।

११—भावनान्यासः (८।६-१२८)

(१) ओं ह्लीं श्रीं क्लीं ह्रौं क्षौं ह्रूं क्षूं स्हज्ह्ल्क्षम्लवनऊं धूमकाली रलहक्षम्लखफछ्रूं दक्षपादाङ्गुल्यग्रं भावयामि तेनाहं नागलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(२) क्रां क्रीं क्रूं क्रें क्रैं क्रों क्रौं क्रः हक्लह्लवडकखऐं जयकाली क्ष्लसहमत्रयूं वाम-पादाङ्गुल्यग्रं भावयामि तेनाहं भूलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(३) ऐं रक्रां रक्रीं रक्रूं रक्रें रक्रैं रक्रों रक्रौं क्षमब्लहकयह्लीं उग्रकाली समहलक्षरक्ष-मस्त्रूं दक्षपादाङ्गुलीमूलं भावयामि तेनाहं भुवर्लोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्म भूयाय यामि क्लफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(४) आं फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रें फ्रैं फ्रों फ्रौं कसवहलक्षमऔं ज्वालाकाली क्षग्लफ्रस्हरफ्रीं वाम-पादाङ्गुलीमूलं भावयामि तेनाहं स्वर्लोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लफ्रों फट् नमः स्वाहा ।

(५) ईं रच्रां रच्रीं रच्रूं रच्रें रच्रैं रच्रों रच्रौं लक्षमह्लजरक्ध्य्रऊं धनकाली क्लह्ल क्षलहक्षमव्यईं दक्षगुल्फं भावयामि तेनाहं सूर्यलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्म-भूयाय यामि क्लफ्रीं फट नमः स्वाहा ।

(६) ॐ ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं स्फ्रों स्फ्रौं रजहलक्षमऊं घोरनादकाली ह्स्म्लव्रम्हरक्लीं वामगुल्फं भावयामि तेनाहं चन्द्रलोके ओं विरजस्तमोभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्फ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(७) ओं रट्रां रट्रीं रट्रूं रट्रैं रट्रैं रट्रों रट्रौं सग्लक्षमह्रह्रूं कल्पान्तकाली ह्सग्लक्षव्म्रऊं दक्षजङ्घां भावयामि तेनाहं भूतलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्फ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(८) नौं ब्लूं क्लूं क्लैं क्लौं ब्लां श्रह्रैं ब्लौं ब्रकेम्लव्लक्लऊं वेतालकाली सहव्रह्खफ्रयीं वामजङ्घां भावयामि तेनाहं प्रेतलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्फ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(९) रत्रां रत्रीं रत्रूं रत्रें रत्रैं रत्रों रत्रौं क्लां क्वलह्मक्षकह्नसक्लईं कङ्कालकाली क्षमक्लरक्षलहक्षव्यऊं दक्षजानु भावयामि तेनाहं पैशाचलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्खफ्रां फट् नमः स्वाहा ।

(१०) ह्रीं स्त्रीं जूं सः स्हौः सौः स्हें स्हौं ब्लक्षमकह्लव्यईं नग्नकाली छ्म्लक्षफ्लह्रहस्रीं वामजानु भावयामि तेनाहं पितृलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्खफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(११) श्रीं रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रें रप्रैं रप्रों रप्रौं क्लक्षसहमव्यऊं घोरघोरतराकाली च्लह्ल फ्रव्यऊं दक्षोरुं भावयामि तेनाहमप्सरोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्खफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(१२) ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं क्ष्रूं क्ष्रूः क्ष्रौः ह्लसहकमक्षव्रऍं दुर्जयकाली ह्म्लक्षव्रसह्रीं वामोरुं भावयामि तेनाहं गन्धर्वलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्खफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(१३) रख्रां रख्रीं रख्रूं रख्रें रख्रैं रख्रों रख्रौं ज्रं सहठ्लक्षह्लमक्रीं मन्थानकाली म्लक्षफ्लछ्रीं दक्षवंक्षणं भावयामि तेनाहं कैन्नरलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(१४) क्षां क्षीं क्षैं प्रां प्रीं प्रूं प्रें प्रौं स्हलकह्लक्ष्रूं संहारकाली थहरखव्रफह्लमब्लूं वामवंक्षणं भावयामि तेनाहं वैद्याधरलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(१५) रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रें रछ्रैं रछ्रों रछ्रौं स्रीं ह्स्लक्षकमह्लव्रूं आज्ञाकाली रहह्क्ल-व्यऊं दक्षकटिं भावयामि तेनाहं यक्षलोके ओं बिरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(१६) ट्रीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ण्रीं भ्रूं ध्रीं म्रैं मह्व्यएं रौद्रकाली सफक्ष्लमह्प्रक्लीं वामकटिं भावयामि तेनाहं वासवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(१७) रग्रां रग्रीं रग्रूं रग्रें रग्रैं रग्रों रग्रौं फ्हल्क्षां लक्षह्लमकसहव्यऊं तिग्मकाली ब्रह-ठ्म्लह्रूं दक्षककुन्दरं भावयामि तेनाहं वैश्वलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्ष्खफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(१८) म्लैं म्लूं म्लौं श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं सक्षलहमयव्रूं कृतान्तकाली रक्षलहव्य्रइँ वामककुन्दरं भावयामि तेनाहं सिद्धलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि श्रखफ्रैं फट् नमः स्वाहा।

(१९) ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ब्जीं ब्जूं ब्जैं सकह्ललम्क्षखव्रूं महारात्रिकालीं चमट्क्षव्य्रछूरीं दक्षिणस्फिचं भावयामि तेनाहं साध्यलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि श्रखफ्रौं फट् नमः स्वाहा।

(२०) र्ज्रां र्ज्रीं र्ज्रूं र्ज्रैं र्ज्रैं र्ज्रों र्ज्रौं फ्यूं सहक्ष्लमह्लप्त्रूं सङ्ग्रामकाली कह्फलमह्लव्य्रऊं वामस्फिचं भावयामि तेनाहं बुधलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लख्फ्रीं फट् नमः स्वाहा।

(२१) ज्लां ज्लीं ज्लूं ज्लैं ज्लौं ज्लः ब्रूं प्लूं रक्षखरऊं भीमकाली सनह्ललक्ष्मब्लूं गुदं भावयामि तेनाहं शुक्रलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लख्फ्रूं फट् नमः स्वाहा।

(२२) क्ष्लौं ब्लैं म्रां र्झ्रां र्झ्रीं र्झ्रूं र्झ्रें र्झ्रैं रक्षक्रूं शवकाली सरम्लक्षह्स्ख्फ्रीं लिङ्गं भावयामि तेनाहं भौमलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लख्फ्रैं फट् नमः स्वाहा।

(२३) र्झ्रों र्झ्रौं श्लां श्लीं श्लूं श्लैं श्लौं छ्रह्लूं स्हक्षम्लव्य्रऊं चण्डकाली ब्लक्षफहमछ्रव्रीं वस्ति भावयामि तेनाहं वृहस्पतिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लख्फ्रौं फट् नमः स्वाहा।

(२४) स्काः फ्लीं र्श्रां र्श्रीं रश्रूं रश्रें रश्रैं रश्रौं क्षस्हम्लव्य्रऊं रुधिरकाली छ्रम्लक्षव्रकह्लीं नाभिं भावयामि तेनाहं शनिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्लक्रूं फट् नमः स्वाहा।

(२५) र्श्रौं ह्लीं स्त्रूं स्त्रें स्त्रैं स्त्रों स्त्रौं स्त्रं क्षह्लम्लव्य्रऊं घोरकाली क्लक्ष्मग्लव्य्रह्लूं जठरं भावयामि तेनाहं तपोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्लक्रैं फट् नमः स्वाहा।

(२६) र्ह्लां र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लें र्ह्लैं र्ह्लों र्ह्लौं स्त्रः भक्ष्लरमह्स्ख्फ्रूं भयङ्करकाली मथहलक्षप्रह्लूं हृदयं भावयामि तेनाहं सप्तर्षिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्लक्रों फट् नमः स्वाहा।

(२७) ह्रीं ह्लश्रीं ह्रैं क्लौं रक्षं यं प्लीं ठः क्लक्ष्मसहव्य्रव्रीं सन्त्रासकाली ह्म्लक्ष्मप्लव्रूं दक्षपार्श्वं भावयामि तेनाहं वैराजलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्रक्लों फट् नमः स्वाहा।

(२८) .× [पराको] र्स्त्रां र्स्त्रीं र्स्त्रूं र्स्त्रें र्स्त्रैं र्स्त्रों क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं प्रेतकाली मक्लक्षक्रसखफ्रूं वामपार्श्वं भावमामि तेनाहं ध्रुवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि × [स्वातिः] फट् नमः स्वाहा।

(२९) च्रां च्रीं च्रूं च्रैं च्रौं भ्रां भ्रैं भ्रौं लगम्क्षखफ्रसह्लूं करालकाली तमह्लक्षक्लफ्रग्लूं दक्षचूचुकं भावयामि तेनाहं चन्द्रलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्म भूयाय यामि × [यम्लमू] फट् नमः स्वाहा।

(३०) क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं म्लां म्लीं म्लूं फ्लसहमक्षब्लूं विकरालकाली ब्रहक्षमह्लव्रह्लीं वामचूचुकं भावयामि तेनाहं अग्निलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि × [यमलम्] फट् नमः स्वाहा।

(३१) रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रम्रां रम्रीं रम्रैं सखक्लक्ष्म्ध्रयब्लीं प्रलयकाली, समतरक्षखफछ्रक्लीं दक्षस्कन्धं भावयामि तेनाहं यमलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि च्म्रैं फट् नमः स्वाहा।

(३२) ल्क्षां ल्क्षीं लक्ष्मूं लक्ष्में लक्ष्मैं लक्ष्मों लक्ष्मौं ज्रक्रां म्ररयक्ष्क्षसहफ्रीं विभूतिकाली चफ्रक्लह्लमक्ष्रूं वामस्कन्धं भावयामि तेनाहं निर्ऋतिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्ष्रफ्रह्लौं फट् नमः स्वाहा।

(३३) ह्लग्लां ह्लग्लीं ह्लग्लूं ह्लग्लैं ह्लग्लौं ज्रक्री ज्रक्रूं ······ [अर्गलं] म्हक्ष्क्षकमफ्रव्रूं भोगकाली दमनडत्क्षसहव्य्रईं दक्षजत्रु भावयामि तेनाहं वरुणलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्ख्रीं फट् नमः स्वाहा।

(३४) ह्ल्क्षां ह्ल्क्षीं ह्ल्क्षूं ह्ल्क्षें ह्ल्क्षैं ह्ल्क्षों हलक्षौं ज्रक्रें रसमस्त्रह्लव्य्रऊं कालकाली महलक्षलखफ्रव्य्रह्लीं वामजत्रु भावयामि तेनाहं वायुलोके ओ विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्ख्रूं फट् नमः स्वाहा।

(३५) र्क्लां र्क्लीं र्क्लूं र्क्लें र्क्लैं र्क्लौं ज्रक्रों ज्रम्लक्षहछ्रीं वज्रकाली नरक्षलहक्षमव्य्रईं दक्षकक्षं भावयामि तेनाहं कौबेरलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्ख्रैं फट् नमः स्वाहा।

(३६) फ्ह्ल्क्षां फ्ह्ल्क्षीं फ्ह्ल्क्षं फ्ह्ल्क्षें फ्ह्ल्क्षैं फ्ह्ल्क्षों फहलक्षौं ज्रक्रौं ब्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं विकटकाली ग्लक्षकमह्लस्हव्य्रऊं वामकक्षं भावयामि तेनाहं ईशानलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्ख्रौं फट् नमः स्वाहा।

(३७) खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें खफ्रैं खफ्रों ज्रहब्रक्षमसह्लीं विद्याकाली रलहक्षड्म्लव्रखफ्रीं दक्षहनु भावयामि तेनाहं डाकिनीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रभ्रीं फट् नमः स्वाहा।

(३८) छ्ररक्ष्ह्लां छ्ररक्षह्लीं छ्ररक्षह्लीं छ्ररक्षह्लूं छ्रक्षह्लैं सफहलक्षें सफहलक्षीं सफहलक्षूं रहक्षम्लव्य्रअखफछ्रस्त्रह्लीं शक्तिकाली मनटत्क्षफ्लव्य्रऊं वामहनु भावयामि तेनाहं योगिनीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रभ्रूं फट् नमः स्वाहा।

(३९) सफहलक्षैं ह्स्फ्रां ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रें ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रों हसफ्रौं शम्लह्लव्य्रखफ्रैं कामकलाकाली सनटमत्क्षब्लभ्रीं दक्षसृक्कं भावयामि तेनाहं भैरवीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रभ्रैं फट् नमः स्वाहा।

(४०) क्षखफ्रें रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लैं क्षखफ्रैं ढ्रौं हसखफ्रम्लक्षव्य्रऊं दक्षिणकाली जरंज्रह्लमक्षक्लव्य्रऊं वामसृक्कं भावयामि तेनाहं चामुण्डालोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रभ्रौं फट् नमः स्वाहा।

(४१) स्फ्रंह्लक्षौ ह्सखफ्रां ह्सखफ्रीं हसखफ्रूं ह्सखफ्रें ह्सखफ्रैं ह्सखफ्रों हसखफ्रौं स्हक्लरक्षमजह्ल खफ्रयूं मायाकाली चखफ्लक्षकस्हखफईऊं दक्षगण्डं भावयामि तेनाहं लक्ष्मीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्लीं फट् नमः स्वाहा ।

(४२) क्षब्लीं रकक्ष्रीं रकक्ष्रूं रकक्ष्रैं रकक्ष्रौं क्षब्लौ हसखफ्रं हसखफ्रः खफ्रछ्रएव्रह्लक्ष्मऋरयीं भद्रकाली सहम्क्षलखभ्रक्लीं वामगण्डं भावयामि तेनाहं ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्लूं फट् नमः स्वाहा ।

(४३) रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं क्ह्लां क्ह्लीं क्ह्लूं च्लक्ष्मस्हव्य्रक्षीं महाकाली खक्रमसलहक्षग्लऊं दक्षकर्णं भावयामि तेनाहं वैशाखलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्लैं फट् नमः स्वाहा ।

(४४) रजक्ष्रक्ष्रीं रजक्ष्रक्ष्रूं रजक्ष्रक्ष्रैं रजक्ष्रक्षौं क्ह्लीं क्ह्लैं खलफ्रूं स्हछ्ररक्षलमरव्य्रईं श्मशानकाली व्य्रक्लक्ष्मछ्रीं वामकर्णं भावयामि तेनाहं ब्रह्मलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्लौं फट् नमः स्वाहा ।

(४५) क्ह्लैं क्ह्लों क्ह्लौं क्ह्लैं क्ह्लौं ह्लक्षफ्लीं खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं रक्षफ्रसमहह्लव्य्रऊं कुलकाली खरसफ्रम्लक्षछ्रयूं दक्षनासापुटं भावयामि तेनाहं प्रमथलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(४६) ख्रस्त्रूं ख्रस्त्रैं ख्रस्त्रौं खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रह्लं खफ्रक्ष्रैं व्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं नादकाली क्ललरसहमश्रीं वामनासापुटं भावयामि तेनाहं मातृलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रूं फट नमः स्वाहा ।

(४७) खफ्रक्ष्रौं छ्रखफ्रां खफ्रछ्रां × [विवासः] खफ्रह्ली × [सामुद्रः] भ्रैं खफ्रह्लौं खफ्रक्लक्ष्मसभ्रीं मुण्डकाली पत्क्षयह्लक्लखफ्रीं दक्षलोचनं भावयामि तेनाहं उमालोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(४८) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं ग्लब्लीं ग्लब्लूं ग्लब्लैं फलंयक्षकयव्लूं सिद्धिकाली पतक्षयह्लक्लखफ्रीं वामलोचनं भावयामि तेनाहं शिवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(४९) खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं क्ष्रस्फ्रों क्ष्रम्लौं क्षस्फ्रौं .... [सेतुकूटम् ?] उदारकाली समहक्षव्य्रऊं दक्षकपोल भावयामि तेनाहं महर्लोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लीं फट् नमः स्वाहा ।

(५०) क्षक्ष्रीं क्षक्ष्रूं क्षक्ष्रैं क्षक्ष्रौं ज्रत्रैं × [वाद्दः] सहलक्ष्रीं सहलक्ष्रूं ....[गह्वर कूटम्] उन्मत्तकालीं जरक्षलहक्षम्लव्य्रईं वामकपोलं भावयामि तेनाहं जनोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लूं फट् नमः स्वाहा ।

(५१) सहलक्ष्रैं सहलक्ष्रौं क्ष्रज्लीं क्ष्रज्लूं क्ष्रज्लैं फ्रक्लां रस्त्रें रस्त्रैं ट्लव्य्रसम्क्षहछ्रीं सन्तापकाली जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं दक्षभ्रुवं भावयामि तेनाहं तपोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लैं फट् नमः स्वाहा ।

(५२) क्ह्लूं रक्ष्रघ्रूं फ्रश्रां फ्रश्रीं फ्रश्रूं फ्रश्रैं ब्लछ्रैं ब्लछ्रौं सक्लह्लहसखफ्रक्ष्रीं कापालकाली जररलहक्षमज्रव्य्रईं वामभ्रुवं भावयामि तेनाहं सत्यलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लौं फट् नमः स्वाहा ।

(५३) फ्रस्त्रीं फ्रस्त्रूं फ्रस्त्रैं फ्रस्त्रौं क्ष्म्रीं क्ष्म्रूं चफलक्रैं चफलक्रौं सफ्रकह्लरक्षमश्रीं आनन्दकाली लकछ्रजरक्रीं दक्षशङ्खं भावयामि तेनाहं रुद्रलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ब्लछ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(५४) फ्रम्रग्लीं फ्रम्रग्लूं फ्रम्रग्लैं फ्रम्रग्लौं × [मोदकं] क्ष्म्रस्लूं क्ष्लक्ष्म्रैं क्ष्लक्ष्म्रौं तलमक्षफलहक्षम्रीं भैरवकाली ब्रक्षम्ल्सह्लछ्रूं वामशङ्खं भावयामि तेनाहं गोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ब्लछ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(५५) फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रैं फ्रखभ्रौं हसखफ्रक्ष्रीं हसखफ्रक्ष्रूं खफ्रौं क्षरस्त्रखफ्रूं गलहंक्षम्लजक्रूं निर्वाणकाली यसम्लक्षसकह्लव्य्रईं ब्रह्मरन्ध्रं भावयामि तेनाहं सदाशिवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ब्लछ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

इति भावनान्यासः ।

१२—समयन्यासः [८।१४०-१६०।]

(१) ओं ऐं आं ईं ऊं ऋग्वेदमूर्त्या होतृसमयपालिनी ज्वालिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२) क्रीं हूं फ्रें ह्रौं क्रौं यजुर्वेदमूर्त्या आध्वर्यवसमयपालिनी विमलाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति मुखे न्यासः ।

(३) ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं सामवेदमूर्त्या औद्गात्रसमयपालिनी प्रचण्डाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षकर्णे न्यासः ।

(४) क्ष्रौं सौः स्हौः ब्लीं ब्लूं अथर्ववेदमूर्त्या कृत्याशान्तिसमयपालिनी विकटाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामकर्णे न्यासः ।

(५) फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रैं फ्रौं सत्ययुगमूर्त्या तपस्समयपालिनीं पिङ्गलाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षकपोले न्यासः ।

(६) ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं त्रेतामूर्त्या ज्ञानसमयपालिनी मोक्षदाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामकपोले न्यासः ।

(७) ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं द्वापरमूर्त्या यज्ञसमयपालिनी स्वाहाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षनयने न्यासः ।

(८) ह्स्फ्रां ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रौं कलियुगमूर्त्या दानसमयपालिनी श्रद्धाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामनयने न्यासः ।

(९) र्ह्लां र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लौं गायत्रीमूर्त्या ब्राह्मण्यसमयपालिनी मोदिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षभ्रुवि न्यासः ।

(१०) छ्रक्षह्लां छ्रक्षह्लीं छ्रक्षह्लूं छ्रक्षह्लैं छ्रक्षह्लौं त्र्यध्ययनमूर्त्या ब्रह्मचर्यसमयपालिनी विजयाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामभ्रुवि न्यासः ।

(११) रज्ञां रज्ञीं रज्ञूं रज्ञैं रज्ञौं षट्कर्ममूर्त्या गार्हस्थ्यसमयपालिनी कापालिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षनासीपुटे न्यासः ।

(१२) रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं वैखानसमूर्त्या वानप्रस्थसमयपालिनी चण्डिकाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामनासापुटे न्यासः ।

(१३) रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं वैराग्यमूर्त्या सन्याससमयपालिनी सुभगाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति चिबुके न्यासः ।

(१४) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं परमात्ममूर्त्या उपनिषत्समयपालिनी भ्रामर्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षहनौ न्यासः ।

(१५) रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं कौलिकीमूर्त्या कुलसमयपालिनी मोहिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामहनौ न्यासः ।

(१६) क्षरस्त्रां क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रैं क्षरस्त्रौं चण्डेश्वरीमूर्त्या पूर्वाम्नायसमयपालिनी महाकाल्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति गले न्यासः ।

(१७) रज्रां रज्रीं रज्रूं रज्रैं रज्रौं कुब्जिकामूर्त्या पश्चिमाम्नायसमयपालिनी कालरात्र्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षस्कन्धे न्यासः ।

(१८) रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रौं कालीमूर्त्या उत्तराम्नायसमयपालिनी चण्डघण्टाम्बिका प्रसीदतां स्वाहा इति वामस्कन्धे न्यासः ।

(१९) रक्ष्म्रीं रक्ष्म्रूं रक्ष्म्रैं रक्ष्म्रौं प्रीं बाभ्रवीमूर्त्या दक्षिणाम्नायसमयपालिनी कुरुकुल्लाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षकरे न्यासः ।

(२०) खफ्रक्ष्म्रां खफ्रक्ष्म्रीं खफ्रक्ष्म्रूं खफ्रक्ष्म्रैं खफ्रक्ष्म्रौं त्रिपुरसुन्दरीमूर्त्या ऊर्ध्वाम्नायसमयपालिनी भीषणाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामकरे न्यासः ।

(२१) रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं राजराजेश्वरीमूर्त्या अधआम्नायसमयपालिनी तेजोवत्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वक्षसि न्यासः ।

(२२) खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं खफ्रह्लूं सदाशिवमूर्त्या षडाम्नायसमयपालिनी भगमालिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः ।

(२३) रश्रां रश्रीं रश्रें रश्रैं रश्रौं हिरण्यगर्भमूर्त्या चतुर्वेदसमयपालिनी चर्चिकाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामपार्श्वे न्यासः ।

(२४) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं मन्त्रमूर्त्या सिद्धिसमयपालिनी महोदर्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षचरणे न्यासः ।

(२५) खफ्रह्लां खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं धर्ममूर्त्या स्वर्गसमयपालिनी संहारिण्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामचरणे न्यासः ।

(२६) खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं पापमूर्त्या नरकसमयपालिनी दिगम्बराम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(२७) ह्लक्षफ्लीं छ्ररखफ्रां छ्ररखफ्रीं फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं अदृष्टमूर्त्या कर्मसमयपालिनी महामाय्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति समयन्यासः ।

१३—सृष्टिन्यासः [८।१९१-२५५]

(१) आं क्लीं श्रीं ह्रीं क्रीं क्रों क्रौं प्रजापतिरूपा प्रजासृष्टिकर्त्री अदिति देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा—दक्षपादे न्यासः ।

(२) ओं फ्रें फ्रौं हूं स्त्रीं फ्रों छ्रीं वेदरूपा यागसृष्टिकर्त्री वेदवती देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा—वामपादे न्यासः ।

(३) रक्रीं रक्रूं रक्रैं रक्रौं रक्षश्रीं म्रमरयऊं रक्षछ्रीं प्रकृतिरूपा पुरुषसृष्टिकर्त्री चैतन्यभैरवी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षजंघे न्यासः ।

(४) रत्रीं रत्रूं रत्रैं रत्रौं रस्फ्रों रस्फ्रौं ज्रौं मायारूपा भोगसृष्टिकर्त्री भोगवती देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामजंघे न्यासः ।

(५) ऐं ह्लीं क्षौं स्फ्रौं ग्लूं ग्लैं ग्लौं विवेकरूपा मोक्षसृष्टिकर्त्री पूर्णेश्वरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षजानौ न्यासः ।

(६) ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं स्हौं स्हौः सौः वासनारूपा जन्मसृष्टिकर्त्री महामोहिनी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामजानौ न्यासः ।

(७) प्रीं फ्रीं फ्रूं फ्रैं जूं ङ्रैं ज्रूं सत्त्वरूपा विष्णुसृष्टिकर्त्री विष्णुमाया देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षोरौ न्यासः ।

(८) श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं प्रूं प्रैं प्रौं रजोरूपा ब्रह्मसृष्टिकर्त्री दुर्गा देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामोरौ न्यासः ।

(९) रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रैं स्प्रौं क्लं औं तमोरूपा रुद्रसृष्टिकर्त्री चण्डवारुणी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षवंक्षणे न्यासः ।

(१०) ह्लां ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लीः ह्लों ह्लः धर्मरूपा सदाचारसृष्टिकर्त्री नित्यक्लिन्ना देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामवंक्षणे न्यासः ।

(११) रश्रीं रश्रूं रश्रैं रश्रौं हं लः क्षः गन्धरूपा पृथिवीसृष्टिकर्त्री महिषमर्दिनी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(१२) क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं स्त्रैं स्त्रौं रसनारूपा जलसृष्टिकर्त्री त्वरिता देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(१३) रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रें रफ्रैं रफ्रों रूपरूपा तेजस्सृष्टिकर्त्री वाग्वादिनी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१४) रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं हलक्षीं हलक्षूं स्पर्शरूपा वायुसृष्टिकर्त्री उग्रचण्डा देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(१५) रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रें रछ्रैं रछ्रों रछ्रौं शब्दरूपा आकाशसृष्टिकर्त्री कुब्जिका देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षकरे न्यासः ।

(१६) रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रफ्लैं रफ्लौं मृत्युरूपा मारीसृष्टिकर्त्री राजराजेश्वरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामकरे न्यासः ।

(१७) रज्रां रज्रीं रज्रूं रज्रें रज्रैं रज्रों रज्रौं कुण्डलिनीरूपा नादबिन्दुसृष्टिकर्त्री कात्यायनी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति मणिबन्धे न्यासः ।

(१८) रझ्रां रझ्रीं रझ्रूं रझ्रें रझ्रैं रझ्रों रझ्रौं आत्मरूपा ज्ञानसृष्टिकर्त्री चण्डयोगेश्वरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वाममणिबन्धे न्यासः ।

(१९) खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें खफ्रैं खफ्रों खफ्रौं पुण्यरूपा स्वर्गसृष्टिकर्त्री चण्डयोगेश्वरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षकफोणौ न्यासः ।

(२०) ग्लब्लां ग्लब्लीं ग्लब्लूं ग्लब्लैं ग्लब्लौं क्षखफ्रें क्षखफ्रैं पापरूपा नरकसृष्टिकर्त्री फेत्कारी देवीं सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः ।

(२१) हसफ्रां हसफ्रीं हसफ्रूं हसफ्रें हसफ्रैं हसफ्रों हसफ्रौं शरीररूपा सुखःदुःख सृष्टिकर्त्री सरस्वती देवीं सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षस्कन्धे न्यासः ।

(२२) हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रों हसखफ्रौं आदिसर्गरूपा मानस-सृष्टिकर्त्री सिद्धिलक्ष्मी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामस्कंधे न्यासः ।

(२३) रश्रां रश्रीं रश्रूं रश्रें रश्रैं रश्रों रश्रौं स्वेदजरूपा दंशमशकादिसृष्टिकर्त्री तुम्बुरेश्वरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः ।

(२४) छ्ररक्षह्लां छ्ररक्षह्लीं छ्ररक्षह्लूं छ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लौं हसखफ्रं हसखफ्रः जरायुज-रूपा नरपशुसृष्टिकर्त्री जयलक्ष्मी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति कण्ठे न्यासः ।

(२५) खफ्रह्लां खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं छ्रखफ्रां छ्रखफ्रीं अण्डजरूपा खग-सृष्टिकर्त्री धनदा देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति चिबुके न्यासः ।

(२६) रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं × (संकुलम्) पौं उद्भिज्जरूपा अंकुरसृष्टिकर्त्री चण्डेश्वरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति मुखे न्यासः ।

(२७) रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं ह्लक्षफ्लीं फह्लक्षैं अयनरूपा षडर्तुसृष्टिकर्त्री छिन्नमस्ता देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति नासायां न्यासः ।

(२८) खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं सफह्लक्षीं सफह्लक्षूं त्रुट्यादिकालरूपा कल्पसृष्टिकर्त्री दिगम्बरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

(२९) रकक्ष्रीं रकक्ष्रूं रकक्ष्रैं रकक्ष्रौं सफह्लक्ष्रैं सफह्लक्षों सफह्लक्षौं नानादर्शनरूपा नानामतसृष्टिकर्त्री मातङ्गी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(३०) खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं रजभ्रक्ष्रीं रजभ्रक्ष्रूं उपनिषद् रूपा आत्मप्रकाशसृष्टिकर्त्री डामरी देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा ।

(३१) खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं खफ्रह्लं रजभ्रक्ष्रैं रजभ्रक्ष्रौं ब्रह्मविद्यारूपा कैवल्यसृष्टिकर्त्री धूमावती देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(३२) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं हलक्षौं फहलक्षौं गुह्यकालीरूपा कोटिब्रह्माण्डसृष्टिकर्त्री विश्वरूपा देवी सिद्धि प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति सृष्टिन्यासः ।

१४—स्थितिन्यासः [८।२६५-३५१]

(१) ओं लगमक्षखफ्रसह्लूं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं यम्भ्रप्लम्क्षह्लूं ओं भूकल्पे वलाका-सुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री कपिलनरसिंहसहिता आनन्दकाली ग्लीं ग्लूं ग्लैं चिरं मामवतु स्वाहा—ब्रह्मरन्ध्रे ।

(२) ओं फनसहमक्षब्लूं ओं छ्रीं हूं फें ह्रीं ट्लत्लक्षफखफ्छ्रीं ओं भुवः कल्पे गगनमूर्धासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री पुष्करनरसिंहसहिता समयकाली क्रीं क्रूं क्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—ललाटे ।

(३) ओं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं ट्लत्लट्लक्षफ्रेखफ्छ्रीं ओं कल्प, कल्पे वेहण्डासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री तीव्रनखनरसिंहसहिता भद्रकाली ज्रीं ज्रूं ज्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—कूर्चे ।

(४) ओं रक्षफमसहह्लव्यऊं क्षौं श्रूं फ्रों फ्रौं स्फ्रौं गमहलयक्ष्लश्रीं ओं तपःकल्पे उल्मुकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री पाण्डरनरसिंहसहिता नियमकाली छ्रूं छ्रीं छ्रूं चिरं मामवतु स्वाहा—नासिकायाम् ।

(५) ओं स्हछ्रक्षलमरव्यईं क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं ख्लभक्षगलव्यईं ओं ऋतुकल्पे मेघनादासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री जम्बालनरसिंहसहिता त्रिदशकाली क्ष्रूं क्ष्रीं क्ष्रूः चिरं मामवतु स्वाहा—कपोलयोः ।

(६) ओं यमहलक्षखफग्लैं ज्यां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं भलनएदर्क्षीं ओं वह्निकल्पे धूम्रासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री सम्मोहनरसिंहसहिता हिरण्यकाली घ्रस्त्रीं घ्रस्त्रूं घ्रस्त्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—नयनयोः ।

(७) ओं भक्ष्लरमह्सख फ्रूं थ्रां थ्रीं थ्रूं थ्रैं थ्रौं क्लसमयग्लह्रूं ओं षट्क्रमकल्पे त्रिशिरासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री भूतादिनरसिंहसहिता विकृतकाली क्थ्रीं क्थ्रूं क्थ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—कर्णयोः ।

(८) ओं ख्फध्रव्यऔं छ्रध्रीं ख्फ्छ्रां ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं ख्फ्छ्रैं ख्फ्छ्रौं छतक्षठनह्लजीं ओं दर्शकल्पे अरुणासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री हेतुकनरसिंहसहिता क्रोधकाली क्फ्रीं क्फ्रूं क्फ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—हनौ ।

(९) ओं व्यक्षस्हम्लस्त्रीं भमरयऊं रक्षश्रीं रस्फ्रों रक्षछ्रीं रस्फ्रौं रमहलक्षम्लयछ्रूं ओं कृष्णकल्पे दाण्डिकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री लोहिताक्षनरसिंहसहिता उल्काकाली सहलक्रीं सहलक्रूं सहलक्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—चिबुके ।

(१०) ओं मफनहनहखफ्रूं रफ्रीं रफ्रूं रफ्रें रफ्रैं गसधमरयब्लूं ओं चित्रकल्पे वायुध्वजासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री दुर्द्धर्षनरसिंहसहिता फेरुकालीं ह्लस्त्रीं ह्लस्त्रूं ह्लस्त्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—गले ।

(११) ओं चनक्षमस्हव्यखीं ख्रीं ख्रैं स्हौः स्ह्रीं सौः खतक्लक्ष्मव्यह्रूं ओं रक्तोदकल्पे जंभलासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री बभ्रुनरसिंहसहिता जीमूतकाली ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—ग्रीवायाम् ।

(१२) ओं तफरक्षम्लह्रौं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रसमयक्षक्लह्रीं ओं हरिकेशकल्पे किरीटासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री सर्वेश्वरनरसिंहसहिता विग्रहकाली क्लरह्रैं क्लफ्रीं क्लफ्रूं चिरं मामवतु स्वाहा—हृदये ।

(१३) ओं रहक्षम्लव्यअखफछ्रस्त्रह्रीं हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं टरक्षप्लमह्रूं ओं लोहितकल्पे रक्ततुण्डासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री विश्ववाहुनरसिंहसहिता गुप्तकाली ह्लफ्रीं ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—जठरे ।

(१४) ओं शम्लह्ल्व्यखफ्रें रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं जसदनस्हक्षग्लूं ओं शिपिविष्ट-कल्पे किर्मीरासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री अनन्तनरसिंहसहिता चैतन्यकाली ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं चिरं मामवतु स्वाहा—नाभौ ।

(१५) ओं हसखफ्रम्लव्यऊं खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें खफ्रैं खफ्रौं चमरग्क्षफ्रस्त्रीं ओं वृहद्रथकल्पे वाष्कलासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री जटालनरसिंहसहिता विश्वकाली क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं चिरं मामवतु स्वाहा—करे ।

(१६) ओं प्रस्हम्लक्षक्लीं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौ ह्लमक्षकमह्लीं ओं औपलकल्पे खर्जूर-रोमासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री तपननरसिंहसहिता कुलकाली सफह्लक्षीं सफह्लक्ष्रूं सफह्लक्षैं चिरं मामवतु स्वाहा—लिङ्गे ।

(१७) ओं म्रयक्ष्क्षसह्लफ्रीं रस्त्रां रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं क्लपट्क्षमव्यईं ओं खार्जूरीय-कल्पे नादान्तकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री सिन्धुनादनरसिंहसहिता प्रतप्त-काली हलक्षीं हलक्षूं हलक्षैं चिरं मामवतु स्वाहा—गुदे ।

(१८) ओं रसमस्त्रह्लव्यऊं छ्रक्षह्लां छ्रक्षह्लीं छ्रक्षह्लूं छ्रक्षह्लैं छ्रक्षह्लौं × [धूतपापा] ओं संभ्रमकल्पे काकवर्णासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री मृत्युमुखनरसिंहसहिता ज्योतीरूपकाली रजझ्रक्षीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—ऊरौ ।

(१९) ओं फ्रखरक्षक्लह्लीं हसफ्रां हसफ्रीं हसफ्रूं हसफ्रैं हसफ्रौं डपतसगम्क्षब्लूं ओं नैयग्रोध-कल्पे अन्धकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री हेमाम्भनरसिंहसहिता मेधाकाली क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—जानौ ।

(२०) ओं ग्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं रसमयरक्ष्क्षग्लीं ओं सिंहकल्पे सरभासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री रौरवनरसिंहसहिता उत्तरकाली फ्रम्रग्लईं फ्रम्रग्लऊं फ्रम्रग्लऐं चिरं मामवतु स्वाहा—जंघायाम् ।

(२१) ओं ट्लव्यसम्क्षहछ्रीं क्षखफ्रां क्षखफ्रीं क्षखफ्रूं क्षखफ्रें क्षखफ्रैं ईक्षक्षएएक्लह्लीं ओं स्थूलाकल्पे शङ्कुकर्णासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री हव्यवाहनरसिंहसहिता व्यालकाली क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—पादे ।

(२२) ओं कह्लक्लक्षखफ्रीं खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं कव्लयसमक्षब्रछ्रूं ओं चित्याकल्पे वज्रचर्मासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री पूर्णभद्रनरसिंहसहिता आवर्तकाली क्ष्रस्रीं [क्ष्रस्रूं] खस्त्रैं क्ष्रस्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—कटे ।

(२३) ओ रलहक्षसमहफ्रछ्रीं क्रह्लां क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं क्रह्लौं छ्रडक्षसहफ्रक्लीं ओं औलूक-कल्पे प्रतर्दनासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री मणितारनरसिंहसहिता सिंहनादकाली फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा - पृष्ठे ।

(२४) ओं............[मैनाककूटम्] खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं क्ष्लमरझ्ररश्रीं ओं वैमानकल्पे जालन्धरासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री दैत्यान्तक-नरसिंहसहिता मन्त्रकाली हसखफ्रक्ष्रीं हसखफ्रक्ष्रूं हसखफ्रक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—असे ।

(२५) ओं लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं क्ष्रक्लां क्ष्रक्लीं क्ष्रवलूं क्ष्ल्लीं क्ष्ल्लूं ब्लयक्ष्मझ्रग्लग्रूं ओं कीलालकल्पे शकुन्तकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री उद्योतनरसिंहसहिता कल्पकाली खफ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं × [जगदावृत्तिः] चिरं मामवतु स्वाहा—जत्रुणि।

(२६) ओं जनहेमरक्षयह्लीं खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं, खफ्रक्लौं कश्यनप्लक्षफ्रीं ओं तपनकल्पे पूतिकञ्जासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री विभूतिनरसिंहसहिता उत्पातकाली खफछ्रीं खफछ्रूं खफछ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—शिखायाम्।

(२७) ओं धशड्लझ्रह्लीं क्षज्म्रां क्षज्म्रीं क्षज्म्रूं क्षज्म्रैं क्षज्म्रौं परमक्षलहक्षएँ छ्रीं ओं संघातकल्पे विराधासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री शबलनरसिंहसहिता सम्मोहकाली क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—करव्यापके।

(२८) ओं छ्रक्लव्य्रमक्षयूं खफ्रह्लां खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं गपटतयजवलूं ओं वटकल्पे विश्वमर्दनासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री धनञ्जयनरसिंहसहिता चक्रकाली हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—पादव्यापके।

(२९) ओं दलव्य्रक्षकभ्रीं ह्रस्त्रां ह्रस्त्रीं ह्रस्त्रूं ह्रस्त्रैं ह्रस्त्रौं कहलक्षश्रक्षम्लब्रईं ओं रुद्रकल्पे कोलतुण्डासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री शोणाक्षनरसिंहसहिता आधारकाली कहलश्रीं कहलश्रूं कहलश्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—सर्वाङ्गव्यापके।

(३०) ओं शलव्य्रछ्रखौं क्लह्लीं क्लह्लूं क्लह्लैं क्लह्लों क्लह्लौं फ्रदमहयनह्लं ओं मन्दारकल्पे जम्बुजालासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री चित्राङ्गनरसिंहसहिता समरकाली हसखफ्रों हसखफ्रं हसखफ्रः चिरं मामवतु स्वाहा— ×

(३१) ओं सक्लह्ल हसखफ्रक्ष्रीं ह्लफ्रां ह्लफ्रीं ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं ह्लफ्रौं व्य्रधरमक्षच्लीं ओं अजिरकल्पे चञ्चुमुखासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री उत्साहनरसिंहसहिता विनाशकाली फ्रम्रग्लऔं क्षलक्ष्रौं × (उरङ्क) चिरं मामवतु स्वाहा— ×

(३२) ओं एसकहलक्षांव्य्रम्रूं स्त्रखफ्रां स्त्रखफ्रीं स्त्रखफ्रूं स्त्रखफ्रैं स्त्रखफ्रौं धमसरव्लयक्ष्रूं ओं श्रुतिकल्पे पिटकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री रक्तरेखनरसिंहसहिता रक्षाकाली स्त्रखफ्रौं क्लखफ्रौं ह्लश्रैं चिरं मामवतु स्वाहा— × ।●

इति स्थितिन्यासः।

१५—संहारन्यासः।

(१) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्रकाशरूपेण तमःसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्ह क्षम्लव्य्रऊं ओं क्रों सौः मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति प्रपदन्यासः।

(२) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें महाप्रलयरूपेण ब्रह्माण्डसंहारकर्त्री गुह्यकाली-देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं श्रीं क्रौं क्लीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्री ह्लीं नमः स्वाहा—इति गुल्फन्यासः।

● तत्त्वार्णवः महाकल्पस्थायी ब्रह्मकपालं चेति बीजत्रयमिहाधिकं निर्दिष्टं तत्कथं सङ्गमनीयमिति साधकैश्चिन्तनीयम्।

(३) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें वाडवरूपेण सप्ताब्धिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्ल-म्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं फ्रों फ्रौं ज्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति पार्ष्णि न्यासः ।

(४) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें षट्चक्रभेदरूपेण भवबन्धसंहारकर्त्री गुह्यकालीं देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं छ्रीं ह्लीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं नमः स्वाहा ।

(५) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्रमारूपेण भ्रमसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं छ्रह्लूं छ्रह्लैं छ्रह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति जानु न्यासः ।

(६) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें तपोरूपेण दुरितसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्लरह्लों क्लरह्लैं क्लरह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं नमः स्वाहा—इति वंक्षण न्यासः ।

(७) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें विद्यारूपेण अज्ञानसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं स्त्रखफ्रूं स्त्रखफ्रैं स्त्रखफ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कटि न्यासः ।

(८) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं दहनारूपेण तृणतरुसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं ग्लव्लूं ग्लव्लैं ग्लव्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति स्फिग् न्यासः ।

(९) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें गायत्रीजप रूपेण सकलपातकसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्फ्रों क्षस्फ्रौं रक्षश्रीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कुक्षि न्यासः ।

(१०) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें लक्ष्मीरूपेण दैन्य संहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं स्हौं स्हौः ख्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति पार्श्वन्यासः ।

(११) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें परमात्मविचाररूपेण मायासंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं प्रीं क्ष्लौं फ्रीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं ख्रीं ह्लीं नमः स्वाहा - इति चूचुक न्यासः ।

(१२) ह्लीं ख्रीं हूं स्त्रीं फ्रें भेषजरूपेणाधिव्याधिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्ल-म्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति अंसन्यासः ।

(१३) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें तत्वजिज्ञासारूपेणाधिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्ल-म्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं रज्ञ्रूं रज्ञ्रैं रज्ञ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति जत्रु न्यासः ।

(१४) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें शान्तिरूपेण त्रिविधोत्पातसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं रप्रीं रप्रूं रप्रैं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कक्ष न्यासः ।

(१५) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें होमरूपेण ग्रहदोषसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्वा क्षह्लम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रह्लूं रह्लैं रह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कफोणि न्यासः ।

(१६) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें सत्यरूपेण मिथ्यासंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा, क्षह्लम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रफीं रफूं रफैं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः ओं—इति मणिबन्धन्यासः ।

(१७) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें सदाचाररूपेणाधर्मसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्ल-म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्ली नमः स्वाहा—इति कराङ्गुली न्यासः ।

(१८) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें निगमरूपेण संशयसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रक्ष्रीं रक्ष्रें रक्ष्रों मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्री ह्लीं नमः स्वाहा —इति कराङ्गुल्यग्र न्यासः ।

(१९) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें कालरूपेण सर्वसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्ष्रह्लीं क्ष्रह्लूं क्ष्रह्लौं (हारबीजं किम्) मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति प्रगण्डन्यासः ।

(२०) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्रणवरूपेण जन्ममृत्युसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्ल-म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊ ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं मय शत्रून संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इलि नासान्यासः ।

(२१) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं छें आवर्तनरूपेण अग्न्याहारसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्ष्रस्त्रूं क्ष्रस्त्रैं क्ष्रस्त्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति ओष्ठाधरन्यासः ।

(२२) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्राणायामरूपेण आहारसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्ल-म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रे स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा —इति दन्तन्यासः ।

(२३) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें जलरूपेण अग्निसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्रत्रूं ख्रस्त्रैं (?) ख्रस्त्रौं मम शत्रुन् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कपोलन्यासः ।

(२४) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें जाठरपावकरूपेणाहारसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्फछ्रीं खफ्रछ्रूं ? खफ्छ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति गण्डन्यासः ।

(२५) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें सन्तोषरूपेण लोभसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लं-म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं छ्ररक्षह्लां छ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति हनु न्यासः ।

(२६) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें त्रिवेदरूपेण पाषण्डसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्ल-म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊ रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्री ह्लीं नमः स्वाहा—इति सृक्कन्यासः ।

(२७) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें तितिक्षारूपेण भूतसर्गसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यई स्हक्षम्लव्र्यऊं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं मम शत्रून संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कर्णन्यासः ।

(२८) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें निदाघरूपेण षडूर्मिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्र-म्लव्र्यई स्हक्षम्लव्र्यऊं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं रजझ्रक्ष्रीं मम शत्रून संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति भ्रून्यासः ।

(२९) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें क्रूररूपेण मृदु संहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रैं रह्लछ्र रक्षह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति शङ्ख न्यासः ।

(३०) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें मोहरूपेण संवित्तिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्ल-व्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्फ्रक्ष्रां ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति शिरः न्यासः ।

(३१) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें अध्यात्मचिन्तनरूपेण वासनासंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्फ्रक्लूं ख्फ्रक्खैं ख्फ्रक्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा— इति ब्रह्मरन्ध्रन्यासः ।

(३२) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें उग्रचण्डारूपेण सकलासुरसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लैं ख्फ्रह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा —इति व्यापक न्यासः ।

इति संहारन्यासः ।

१६—अनाख्यान्यासः ।

१—ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं परमाणवेऽवयबानाख्यारूपा ह्लग्लूं ह्लग्लैं ह्लग्लौं चराचरे जगति स्वशक्ति सहिता स्हज्ह्ल्क्षम्लवनऊं ब्रकम्लब्लक्लऊं मह्व्र्यऐं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति शिरसि न्यासः

२—श्रां हूं क्षौं क्रूं क्षूं अग्नये शैत्यानाख्यारूपा कह्लां कह्लीं कह्लूं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ह्लक्षक मह्लसव्र्यऊ क्षम्लकस्हरयव्रूं स्हक्ल मह्लज्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति तालौ न्यासः

३—क्षमरयऊं र्क्ष्श्रीं र्स्फ्रों र्स्फ्रौं र्क्ष्छ्रीं चक्षुषे दर्शनानाख्यारूपा क्ष्रक्लां क्ष्रक्लीं क्ष्रक्लूं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता स्हछ्रक्षलमर्व्र्यईं यम्ह्ल्क्षख्फ्रलैं र्क्षफ्रसमइ ह्लव्र्यऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा······इति कण्ठे न्यासः

४—ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लं ह्लः लिङ्गशरीराय भोगानाख्यारूपा (क्ष्ब्लीं क्ष्ब्लूं क्ष्ब्लैं ?) क्ष्ब्लीं क्ष्ब्लैं क्ष्ब्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता तफल्क्ष कमश्रव्रीं लगम्क्ष-खफ्रसह्लूं च्लक्ष्म स्हव्र्यक्ष्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति शङ्खे न्यासः

५—र्घ्रां र्घ्रीं र्घ्रूं र्घ्रैं र्घ्रौं परमात्मने चैतन्यानाख्यारूपा क्रह्लूं क्रह्लैं क्रह्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता सग्ल क्षमहर्ह्लूं क्वलह्लभकह्लनसक्लई—क्षमब्लहकयह्लीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति कूर्चे न्यासः

६—र्ब्रां र्ब्रीं × × [घाटी भावः] र्ब्रूं र्ब्रैं ? र्ब्रौं विष्वक्प्रपञ्चाय ज्ञेयानाख्यारूपा छ्रह्लूं छ्रह्लैं छ्रह्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ब्लक्षमकह्लव्यईं लक्षमह्लजर्क्रव्यऊं ह्लक्षमहम्लूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति नासिकायां न्यासः

७—ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं स्फ्रौं अज्ञानाय अतीन्द्रियानाख्यारूपा क्लर्ह्लीं क्लर्ह्लैं क्लर्ह्लौं (क्लर्ह्लूं क्लर्ह्लैं क्लर्ह्लौं ?) चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता रजहलक्षमऊं कसवह्लक्षमओं ह्क्लह्लवंडकखऐं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति गण्डे न्यासः

८—च्रैं च्रौं स्हौं स्हौः सौः इन्द्रजालाय अध्यासानाख्यारूपा क्ह्लीं क्ह्लूं क्ह्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्क्षम्लह्लकसछव्यऊं क्षम्लव्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं म्लक्षकहह्लूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जत्रुणि न्यासः

९—द्रैं भ्रूं व्रीं घीं फ्रीं निराकाराय प्रतीत्यनाख्यारूपा ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं ह्लफ्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ग्लक्षकमह्लव्यऊं ह्लक्षकमब्रूं खफसहक्लव्रूं क्रौं सहकक्ष्क्षह्लमव्यऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति हनौ न्यासः

१०—ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं अभ्यासाय असंभावनानाख्यारूपा श्रख्फ्रीं श्रख्फ्रूं श्रखफ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता सहठ्लक्षह्लमक्रीं ह्लसहकमक्षव्रऐं क्लक्षसहमव्यऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति स्कन्धे न्यासः

११—र्स्त्रीं र्स्त्रूं र्स्त्रैं × स्ह्लौं ह्लः क्रिया समीराय आनन्दमयानाख्यारूपा ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्ल्ह्क्षह्क्षक्षसक्लह्लीं मव्रटत्क्षसहह्लीं क्लप्क्षह्लमब्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति कक्षे न्यासः

१२—र्श्रों र्श्रीं र्श्रें र्श्रों र्श्रौं व्यक्तये धारणानाख्यारूपा क्लह्लीं क्लह्लूं क्लह्लौं चराचरे जगति स्वशक्ति सहिता प्रस्हम्लक्षक्लीं ग्लक्लमभ्रूंस्त्रौं ख्फ्रक्लक्ष्मसभ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वहा इति हृदि न्यासः

१३—ट्रीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ण्रीं आम्नायाय जात्यनाख्यारूपा क्लक्ष्रीं क्लक्ष्रूं क्लक्ष्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता······(मन्दकूटं ?) सम्लब्लकक्षव्यऊं फ्रत्तभ्रमां क्लमभ्रूऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः।

१४—फ्रूं फ्रों फ्रौं स्त्रौं स्त्रैं (स्त्रैं स्त्रौं ?) अध्वराय प्रामाण्यानाख्यारूपा क्लख्फ्रीं क्लख्फ्रूं क्लख्फ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ख्लह्लनग्क्षर्छ्रीं म्रसखग्रमऊ कमह्लच्ह्ल्क्षर्ज्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति नाभौ न्यासः

१५—ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं बीजाङ्कुराय अपूर्वानाख्यारूपा छ्रक्रीं छ्रक्रूं छ्रक्रैं ? छ्रक्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्क्ष्भ्रूं र्क्ष्क्रूं स्हक्षम्लव्यऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वस्तौ न्यासः

१६—र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लैं र्ह्लौं क्षैं कलिलाय रसायनाख्यारूपा क्रफ्रीं क्रफ्रूं क्रफ्रें चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं नदक्षट्क्षव्यऊं छ्लह्क्षलक्षफ्रग्लऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति गुदे न्यासः

१७—र्स्त्रां र्स्त्रों र्स्त्रूं र्स्त्रैं र्स्त्रौं क्षीराय विश्वोत्पत्तिहर्यनाख्यारूपा ऋक्ष्रीं ऋक्ष्रूं ऋक्ष्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता क्षह्लम्लव्य्रइँ क्षस्ह्म्लव्य्रइँ क्षह्लम्लव्य्रइँ क्षह्लम्लव्य्रइँ क्षस्ह्म्लव्य्रई परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति मेहने न्यासः ।

१८—ह्लूक्षीं ह्लूक्षूं ह्लूक्षें ह्लूक्षैं ह्लूक्षौं आहाराय बलादिपरिपाकानाख्यारूपा ग्लक्ष्रूं ग्लक्ष्रौं ग्लक्ष्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता म्र्रयक्ष्सह्फ्री प्रस्हम्लक्ष-क्लीं स्हक्ष्क्षकमफ्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वंक्षणे न्यासः

१९—ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रें ख्फ्रैं ख्फ्रौं तेजसे उष्णतानाख्यारूपा भ्लूं भ्लैं भ्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता रसमस्त्रह्लव्य्रऊं ज्र्म्लक्षह्लछ्रीं फलंयक्षकयव्लूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इत्यूरौ न्यासः ।

२०—र्क्क्ष्रीं र्क्क्ष्रूं र्क्क्ष्रैं र्क्क्ष्रों ह्लूक्षौं द्रवद्रव्याय विलन्नतानाख्यारूपा भ्लीं भ्लूं भ्लैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ह्सुख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं र्ह्क्षम्लव्य्रअख्फ्छ्र-स्त्रह्लीं शम्लह्लव्य्रखफ्रैं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जानौ न्यासः

२१—ऋह्लां ऋह्लीं ऋह्लूं ऋह्लैं ऋह्लौं होमाय विश्वोत्पत्यनाख्यारूपा च्रीं च्रूं च्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता (सेतुकूटम्) × स्हक्लर्क्षमजह्लखफरयूं ढलक्क्षह्मस्त्रछ्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जंघायां न्यासः ।

२२—छ्रर्क्ष्ह्लां छ्रर्क्ष्ह्लीं छ्रर्क्ष्ह्लूं छ्रर्क्ष्ह्लौं प्रपञ्चाय आविर्भावानाख्यारूपा र्फ्लूं र्फ्लैं र्फ्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्क्षखरईऊं स्ह्क्षम्लव्य्रइँ क्षस्ड्म्लव्य्रइँ परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति प्रपदे न्यासः ।

२३—रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्छ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं मेघादये तिरोभावानाख्या रूपा र्ख्रूं र्ख्रैं र्ख्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता क्षस्ह्म्लव्य्रईऊं क्षह्लम्ल-व्य्रईऊं क्षर्ह्म्लव्य्रईऊं क्षर्ह्म्लव्य्रईऊं क्षस्ह्म्लव्य्रईऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति पार्ष्णौं न्यासः ।

२४—रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं मादकादये आवरकानाख्यारूपा रह्लूं रह्लैं रह्लौं चराचरे जगति स्वशक्ति-सहिता स्हक्षम्लव्य्रईऊं र्क्षक्रींऊं क्षस्ह्म्लव्य्रईऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति गुल्फे न्यासः ।

२५—ख्फ्रक्ष्रां ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रूं ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रौं मयूखाय विक्षेपनाख्यारूपा र्द्रूं र्द्रें र्द्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता प्क्षलव्रभ्रूफ्रूं खमस्हक्षवह्लीं स्हकह्ल-लह्लीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति पादाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।

२६—ख्फ्रछ्रां ख्फ्रछ्रीं ख्फ्रछ्रूं ख्फ्रछ्रैं ख्फ्रछरौं क्रियादये उन्मनानाख्यारूपा र्ध्रीं र्ध्रूं र्ध्रें चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ख्लक्ष्क्षव्य्र ख्फ्छ्रें ग्लक्-क्षह्लैं ठ्नभ्रख्फ्छ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति पृष्ठे न्यासः ।

२७—ख्फ्रक्लां ख्फ्रक्लीं ख्फ्रक्लूं ख्फ्रक्लै ख्फ्रक्लौं सत्त्वगुणाय विभागानाख्यारूपा र्भ्रीं र्भ्रूं ? र्भ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता फ्रखर्क्षक्लह्लीं ट्फ्रकम्क्ष-ज्स्त्रीं घशड्लभ्रूह्लीं परमात्मनि विलीये ओं स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः ।

२८—ख्फ्ह्लां ख्फ्ह्लीं ख्फ्ह्लूं ख्फ्ह्लैं ख्फ्ह्लौं रजोगुणाय पालनानाख्यारूपा फक्लें फक्लों फक्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ग्लक्ह्लक्षम्रग्रीं × (विद्याकूटम्) ह्ख्फ्रूं रच्रांव्य्रक्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वामहस्तव्यापके न्यासः ।

२९—रजह्रक्ष्रीं रजह्रक्ष्रूं रजह्रक्ष्रैं रजह्रक्ष्रौं ख्फ्छ्रीं तमोगुणाय सृष्टचनाख्यारूपा ब्लछ्रूं ब्लछ्रैं ब्लछ्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता मघस्त्रक्षलक्रीं व्रमक्ल यस्क्षक्ली सफक्षक्लमखछ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति दक्षिणहस्तव्यापके न्यासः ।

३०—फम्रग्लआं फम्रग्लईं फम्रग्लऊं फम्रग्लऐं फम्रग्लऔं जन्यपदार्थाय संहारानाख्यारूपा ह्स्रूं ह्स्रैं ह्स्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता खह्लक्षमर्ब्लईं म्लव्स्हईं ज्लह्क्ष्रौं छप्यह्स्फ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वामपादव्यापके न्यासः ।

३१—क्ष्लक्ष्रां क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं क्ष्लक्ष्रौं आकाशाय ध्वंसानाख्यारूपा व्रफ्रश्रीं व्रफ्रश्रैं व्रफ्रश्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता फ्रत्क्षम्लह्क्षहय्लह्क्ष्रूं ड्लह्क्षच्लद्रक्षमऐं व्लह्क्षवलऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति दक्षिणपादव्यापके न्यासः ।

३२—ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं खफ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं × (सायुज्यम्) सर्वत्र शून्यतानाख्यारूपा ख्लफ्रीं ख्लफ्रूं ख्लफ्रूं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता एसकह्ल्क्षांव्य्रभ्रूं म्लछ्लह्ख ख्फ्रक्रीं सवलह्ल ह्स्ख्फ्रक्ष्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति सर्वशरीरव्यापके न्यासः ।●

इत्यनाख्यान्यासः ।

१७—भासान्यासः [८।४८८-५६२]

१—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं ज्ञानशक्तौ भ्रमभासाकारायां निराभासा ओं ऐं आं ईं ऊं ज्ञानविज्ञानरूपा रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं भगवती गुह्यकाली धशड्लह्रह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

२—ओं फ्रें ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं इच्छाशक्तौ संयमभासाकारायां निराभासा श्रीं ह्रीं क्लीं क्रों क्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा हसफ्रीं हसफ्रूं हसफ्रौं भगवती गुह्यकाली ई सकहमरक्षक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति तालुनि न्यासः ।

३—ओं फ्रें ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं क्रियाशक्तौ वितर्कभासाकारायां निराभासा फ्रें फ्रैं फ्रों फ्रौं फ्रं ज्ञानविज्ञानरूपा फह्लक्ष्रीं फह्लक्ष्रूं फह्लक्ष्रैं भगवती गुह्यकाली क्ष्म्लजरस्त्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति कण्ठे न्यासः ।

● त्रिबीजनिर्देश स्थले षट् बीजानि अधिकानि निर्दिष्टानि सन्ति तानि कथं सङ्गमनीयानि ? तानि चाधो लिख्यन्ते—

(क) १. एकवली, २. वज्रकवचम्, ३. ब्रह्मकपालकम् ४. सन्तापनम्, ५. जगदावृत्तिः ६. महाकल्प स्थायि चेति ।

(ख) इह चतुर्थ्यन्तवचनस्थाने सप्तम्यैकवचनान्तपाठ उचितः प्रतीयते ।

४—ओं फ्रें ह्रीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं श्रद्धाशक्तौ जुगुप्साभासाकारायां निराभासा क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं ज्ञानविज्ञानरूपा लक्षीं लक्षूं लक्षैं भगवती गुह्यकाली जनहमरक्षयह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति शङ्खे न्यासः ।

५—ओं फ्रें ह्रीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं धृतिशक्तौ पतनभासाकारायां निराभासा क्रीं क्रूं क्रैं क्रं क्रः ज्ञानविज्ञानरूपा सफह्लक्षीं सफह्लक्षूं सफह्लक्षैं भगवती गुह्यकाली ईंसमक्लक्षह्लूं मयि लीयतां स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

६—ओं फ्रें ह्रीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं मेधाशक्तौ जाड्यभासाकारायां निराभासा ह्ग्लां ह्ग्लीं ह्ग्लूं ह्ग्लैं ह्ग्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं भगवती गुह्यकाली ड्लखलहक्षखम······ मयि लीयतां स्वाहा इति नासिकायां न्यासः ।

७—ओं फ्रें ह्रीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं अणिमाशक्तौ महद्बन्धनभासाकारायां निराभासा क्ह्लां क्ह्लीं क्ह्लूं क्ह्लैं क्ह्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा रकक्ष्रीं रकक्ष्रूं रकक्ष्रैं भगवती गुह्यकाली मघस्त्रकक्षलक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति गण्डे न्यासः ।

८—ओं फ्रें ह्रीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं मायाशक्तौ तिमिरभासाकारायां निराभासा ह्फ्रां ह्फ्रीं ह्फ्रूं ह्फ्रैं ह्फ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं भगवती गुह्यकाली व्रमक्लयसखक्लीं मयि लीयतां स्वाहा ईति जत्रुणि न्यासः ।

९—ओं फ्रें ह्री ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं प्रभाशक्तौ अध्वरभासाकारायां निराभासा ज्ञां ज्ञीं ज्ञूं ज्ञैं ज्ञौं ज्ञानविज्ञानरूपा छ्रर्क्ष्ह्लूं छ्रर्क्ष्ह्लीं छ्रर्क्ष्ह्लैं भगवती गुह्यकाली सफ्रक्षक्लमखछ्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति हनौ न्यासः ।

१०—ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं विशुद्धिशक्तौ अकिञ्चनभासाकारायां निराभासा छ्रैं छ्रों छ्रौं छ्रं छ्रः ज्ञानविज्ञानरूपा रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं भगवती गुह्यकाली पञ्चसम्क्षस्त्रक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति स्कन्धे न्यासः ।

११—ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं ऋद्धिशक्तौ नश्वरभासाकारायां निराभासा ज्ञां ज्ञीं ज्ञूं ज्ञैं ज्ञौं ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रह्लीं ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लैं भगवती गुह्यकाली ज्ञमस्त्रयग्लह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति कक्षे न्यासः ।

१२—ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं नित्याशक्तौ विस्मरणभासाकारायां निराभासा ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं ज्ञानविज्ञानरूपा रजज्ञक्ष्रीं रजज्ञक्ष्रूं रजज्ञक्ष्रैं भगवती गुह्यकाली लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति हृदि न्यासः ।

१३—ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रे ओं स्मृतिशक्तौ अबोधभासाकारायां निराभासा ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रं ह्स्ख्फ्रः ज्ञानविज्ञानरूपा भगवती गुह्यकाली ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रूं ख्फ्रक्ष्रैं कसहलह्लभ्रक्ष्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

१४—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं प्रज्ञाशक्तौ द्वैपभासाकारायां निराभासा क्ष्रीं ह्भ्रीं भ्र्रूं क्ष्रौं क्ष्रौः ज्ञानविज्ञानरूपा छ्रखफ्रीं ह्लक्षपलीं ख्फ्रह्लं भगवती गुह्यकाली सफ्रकह्लर्क्षमश्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

१५—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं प्रीतिशक्तौ हर्षभासाकारायां निराभासा क्ष्रां प्रूं भ्रीं क्ष्र्रूं क्ष्र्रः ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रछ्रीं ख्फ्रछ्रूं ख्फ्रछ्रैं छज्रमक्रव्यऊं भगवती गुह्यकाली मयि लीयतां स्वाहा इति वस्तौ न्यासः ।

१६—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं नीतिशक्तौ जन्यभासाकारायां निराभासा र्ह्लां र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लें र्ह्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रक्लीं ख्फ्रक्लूं ख्फ्रक्लें ट्लसकम्लक्षट्रीं भगवती गुह्यकाली मयि लीयतां स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

१७—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं कूटस्थशक्तौ मोहभासाकारायां निराभासा रफ्लां रफ्लीं रफ्लूं रफ्लूं रफ्लैं रफ्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रह्लीं ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लैं भगवती गुह्यकाली फ्रर्क्षस्त्रमक्रूं मयि लीयतां स्वाहा इति मेहने न्यासः ।

१८—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं चेतनाशक्तौ अलीकभासाकारायां निराभासा प्रां प्रीं प्रूं प्रैं प्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा श्लीं श्लूं श्लैं भगवती गुह्यकाली छ्रक्लव्य्रमक्ष्यूं मयि लीयतां स्वाहा इति वंक्षणे न्यासः ।

१९—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं धृतिशक्तौ (?) लोभभासाकारायां निराभासा म्लां म्लीं म्लूं म्लैं ज्ञानविज्ञानरूपा क्रीं क्रूं क्रैं भगवती गुह्यकाली थ्लव्य्रम्रछ्श्रीं मयि लीयतां स्वाहा इत्यूरौ न्यासः ।

२०—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं सत्यशक्तौ अनध्यवसायभासाकारायां निराभासा खफछ्रां खफ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं ख्फ्छ्रैं ख्फ्छ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा ज्लीं ज्लूं ज्लैं भगवती गुह्यकाली ग्लां ग्लह्लम्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति जानौ न्यासः ।

२१—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं शान्तिशक्तौ रूक्षभासाकारायां निराभासा रस्फ्रों रस्फ्रौं रक्षछ्रीं भ्रमरयऊ रक्षश्रीं ज्ञानविज्ञानरूपा ह्लीं ह्लूं ह्लैं भगवती गुह्यकाली द्लव्य्रक्षक्रम्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति जंघायां न्यासः ।

२२—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं उत्साहशक्तौ अमूर्तभासाकारायां निराभासा रग्रीं रग्रूं रग्रें रग्रैं रग्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा ल्रीं ल्रूं ल्रैं भगवती गुह्यकाली थ्लहक्षकह्लमव्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति प्रपदे न्यासः ।

२३—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं स्नेहशक्तौ वियोगभासाकारायां निराभासा स्त्रीं रत्रूं रत्रैं रत्रों रत्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा च्रीं च्रूं च्रैं भगवती गुह्यकाली ज्लह्क्षट्लझ्रवीं मयि लीयतां स्वाहा इति पार्ष्णौ न्यासः ।

२४—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं परिमितशक्तौ अनुपलब्धिभासाकारायां निराभासा ह्लछ्रां ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं ह्लछ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा फ्रीं फ्रूं फ्रैं भगवती गुह्यकाली ग्लूह्क्षम्लजक्रूं मयि लीयतां स्वाहा इति गुल्फे न्यासः।

२५—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं संयोगशक्तौ अहङ्कारभासाकारायां निराभासा छ्रक्रां छ्रक्रीं छ्रक्रूं छ्रक्रैं छ्रक्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा प्रीं प्रूं प्रैं भगवती गुह्यकाली ब्ल ट्लूह्क्षस्त्रमव्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति पादाङ्गुल्यग्रे न्यासः।

२६—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं संस्कारशक्तौ आशयभासाकारायां निराभासा सह्लक्रीं सह्लक्रूं सह्लक्रें सह्लक्रैं सह्लक्रौं ज्ञानविज्ञान रूपा श्रीं श्रूं श्रैं भगवती गुह्यकाली प्लड्लह्क्षमव्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति पृष्ठे न्यासः।

२७—ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं विवेकशक्तौ च्युतिभासाकारायां निराभासा ख्फभ्रां ख्फभ्रीं ख्फभ्रूं ख्फभ्रैं ख्फभ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा क्षीं क्षूं क्षैं भगवती गुह्यकाली तत्त्वमसि रत्रौं ओं मयि लीयतां स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः।

२८—ओं फ्रें ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं प्रमितिशक्तौ धर्मभासाकारायां निराभासा ह्लक्रीं ह्लक्रूं ह्लक्रैं ह्लक्रों ह्लक्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा स्त्रीं स्त्रूं स्त्रैं भगवती गुह्यकाली सक्लह्लहसखफक्ष्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति दक्षिणहस्तव्यापके न्यासः।

२९—ओं फ्रें ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं योगशक्तौ अधर्मभासाकारायां निराभासा फश्रां फश्रीं फश्रूं फश्रैं फश्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा कहलश्रूं कहलश्रैं कहलश्रौं भगवती गुह्यकाली रहफसमक्षक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति वामहस्त व्यापके न्यासः।

३०—ओं फ्रें ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं सुखशक्तौ असंभावितभासाकारायां निराभासा क्ष्रत्रीं क्ष्रत्रूं क्ष्रत्रैं क्ष्रत्रों क्ष्रत्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा रभ्रीं रभ्रूं रभ्रैं भगवती गुह्यकाली हससक्लह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति दक्षपादव्यापके न्यासः।

३१—ओं फ्रें ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं दुःखशक्तौ अदृष्टभासाकारायां निराभासा खलफ्रीं खलफ्रूं खलफ्रैं खलफ्रों खलफ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा रश्रीं रश्रूं रश्रैं भगवती गुह्यकाली स्हव्यक्ष्रक्ष्मक्रूं मयि लीयतां स्वाहा इति वामपाद व्यापके न्यासः।

३२—ओं फ्रें ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं प्रलयशक्तौ कैवल्यभासाकारायां निराभासा क्ष्रस्त्रीं क्ष्रस्त्रूं क्ष्रस्त्रें क्ष्रस्त्रैं क्ष्रस्त्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा रन्त्रीं रन्त्रूं रन्त्रैं भगवती गुह्यकाली सफक्षयक्लमस्मश्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति सर्वशरीर व्यापके न्यासः।

इति भासान्यासः।

१८—मन्त्रन्यासः [८।५६८-६०४]

१—विघ्युपास्यैकाक्षरमन्त्रेण चरणयोरङ्गुलीमूलयोर्न्यासः ।
२—कामोपास्यत्र्यक्षरमन्त्रेण द्वयोः प्रपदयोर्न्यासः ।
३—वरुणोपास्यत्र्यक्षरमन्त्रेण गुल्फयोर्न्यासः ।
४—पावकोपास्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण पार्ष्णिद्वयोर्न्यासः ।
५—अदित्युपास्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण जान्वोर्न्यासः ।
६—शच्यूपास्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण वंक्षणयोर्न्यासः ।
७—दानवोपास्यनवाक्षरमन्त्राभ्यां श्रोणियुगलयोः पिण्डद्वयोश्च न्यासः ।
८—मृत्युकालोपास्यनवाक्षरमन्त्रेण स्फिग्युगलयोर्न्यासः ।
९—भरतोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण कुक्षियुगलयोर्न्यासः । ?
१०—च्यवनोपास्यषोडशार्णमन्त्रेण पार्ष्णियुगलयोर्न्यासः । ?
११—हारीतोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण चूचुकयोर्न्यासः ।
१२—जाबालोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण अंसयोर्न्यासः ।
१३—दक्षोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण जत्रुणोर्न्यासः ।
१४—रामोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण कक्षयोर्न्यासः ।
१५—हिरण्यकशिपूपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण कफोणिद्वयोर्न्यासः ।
१६—ब्रह्माराध्यमहासप्तदशीमन्त्रेण मणिबन्धयोर्न्यासः ।
१७—वसिष्ठाराध्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण कराङ्गुलीमूलयोर्न्यासः ।
१८—विष्णुतत्त्वाख्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण कराङ्गुल्यग्रयोर्न्यासः ।
१९—अम्बाहृदयाख्याष्टाक्षरमन्त्रेण गण्डयोर्न्यासः ।
२०—रुद्रोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण नासापुटयोर्न्यासः ।
२१—विश्वेदेवोपास्यषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रेण अधरोष्ठयोर्न्यासः ।
२२—रावणोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण दन्तपंक्तियुगलयोर्न्यासः ।
२३—रावणोपास्यषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रेण गण्डयोर्न्यासः ? ।
२४—अग्न्युपास्याष्टपञ्चाशदक्षरमन्त्रेण कपोलयोर्न्यासः ।
२५—द्विशताधिकसप्ताशीत्यक्षरमन्त्रेण हन्वोर्न्यासः ।
२६—किन्नरोपास्यशताक्षरमन्त्रेण कर्णयोर्न्यासः ।
२७—शाम्भवमन्त्रेण लोचनयोर्न्यासः ।
२८—महाशाम्भवमन्त्रेण कूर्चन्यासः ।
२९—तुरीयामन्त्रेण ललाटन्यासः ।
३०—महातुरीयामन्त्रेण शिरसि न्यासः ।
३१—निर्वाणमन्त्रेण ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।
३२—महानिर्वाणमन्त्रेण सर्वशरीरव्यापके न्यासः ।

इति मन्त्रन्यासः ।

१९—सिद्धिन्यास: [८।६१७-६७४]

१—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं एकवक्त्रा गुह्यकाली देवता विधात्रे सृष्टिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी पक्ष्ल्व्रझ्रफ्रूं फाँ फी फूं डम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यास: ।

२—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं त्रिवक्त्रा गुह्यकाली देवता अनङ्गाय त्रैलोक्यमोहनकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मरफ्रौं क्लीं श्रीं ह्रीं लम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यास: ।

३—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं त्रिवक्त्रा गुह्यकाली देवता वरुणाय जगत्स्निग्धकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी कम्लव्रीं फ्रें फ्रैं फ्रौं सम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति दक्षकपोले न्यास: ।

४—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं पञ्चवक्त्रा गुह्यकाली देवता पावकाय दाहकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रम्लव्रीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं हम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति वामकपोले न्यास: ।

५—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं पञ्चवक्त्रा गुह्यकाली देवता अदितये अखिलदेहोद्भवकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मस्त्रीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं यम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति नेत्रयोर्न्यास: ।

६—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं षट्वक्त्रा गुह्यकाली देवता शच्यै इन्द्रसाम्राज्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मजूं स्हौं स्हौ: सौ: रलह्क्षफ्रूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यास: ।

७—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं अष्टवक्त्रा गुह्यकाली देवता दानवेभ्य: देवपराभवकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी वम्लव्रां ज्रूं ज्रैं ज्रौं रक्षफ्रभ्रध्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति कर्णयोर्न्यास: ।

८—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं नववक्त्रा गुह्यकाली देवता मृत्युकालभ्यां भूनान्त:करणकर्तृत्वरूप सिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मश्रीं क्षूं क्षैं क्षौं रक्षह्लभ्रध्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति गण्डयोर्न्यास: ।

९—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता भरताय सप्तद्वीपसाम्राज्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मस्हौं ह्लूं ह्लैं ह्लौं रक्षझ्रभ्रध्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति सृक्कयोर्न्यास: ।

१०—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता च्यवनाय अभिचारकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मक्रीं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं रक्षध्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति हन्वोर्न्यास: ।

११—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता हारीताय योगवश्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मध्रीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं क्ष्व्लीं

ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति कक्षयोर्न्यासः।

१२—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता जाबालाय ब्रह्मविद्याप्रकाशकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ह्क्ष्मलीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं क्ष्म्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति जत्रुन्यासः।

१३—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता दक्षाय प्रजासर्गकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सलह्क्षह्लूं रछ्रीं रज्रीं रक्रीं क्ष्व्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति स्कन्धयोर्न्यासः।

१४—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रामाय रावणवधकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ह्क्ष्म्लक्ष्यूं खफछ्रूं खफछ्रैं खफछ्रौं क्ष्ग्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति चूचुकयोर्न्यासः।

१५—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं शतवक्त्रा गुह्यकाली देवता हिरण्यकशिपवे त्रैलोक्यैश्वर्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रक्षभ्रध्रयम्लूं स्फ्लूं रफ्लैं रफ्लौं क्ष्फ्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति पार्श्वयोर्न्यासः।

१६—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं रावक्त्रा गुह्यकाली देवता ब्रह्मणे ब्रह्माण्डोत्पत्तिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी क्ष्लफ्लऔं क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रैं क्षरस्त्रौं क्ष्क्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति हृदये न्यासः।

१७—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं रावक्त्रा गुह्यकाली देवता वसिष्ठाय कामक्रोधवशीकरणकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्क्ष्मफ्रौं क्षरह्लीं, क्षरह्लूं क्षरह्लैं क्ष्ग्लूं ऐं छ्रीं रस्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति जठरे न्यासः।

१८—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता विष्णवे चतुर्दशभुवनपालनकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ओं श्रें क्लीं रक्ष्श्रीं रक्ष्छ्रीं रस्फ्रौं क्ष्ह्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति नाभौ न्यासः।

१९—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं द्वादशवक्त्रा गुह्यकाली देवता स्वस्मै शिवमोहनकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्क्ष्मह्लीं ख्फ्रीं रस्फ्रौ क्ष्म्रयूं ख्म्ह्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओ सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति वस्तौ न्यासः।

२०—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं एकादशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रुद्राय संहारकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सहक्षलक्षख्फ्रीं क्लूं स्त्रीं फ्रं क्षफ्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धि प्रयच्छतु स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः।

२१—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं त्रयोदशवक्त्रा गुह्यकाली देवता विश्वे देवेभ्यः श्राद्धाधिष्ठानकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मठ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं क्ष्ह्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति गुदे न्यासः।

२२—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रावणाय शिवक्षास्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ह्लक्ष्म्लय्रयूं रज्रूं रज्रैं रज्रौं स्हक्ष्ल-क्षह्स्फ्रें ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति कटौ न्यासः।

२३—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रावणाय-जगज्जयकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी क्षग्लीं रझ्रूं रझ्रैं रझ्रौं सखह्लक्ष्मक्लां ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति वंक्षणयोर्न्यासः।

२४—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं षोडशवक्त्रा गुह्यकाली देवता सिद्धेभ्यः कामगतिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रक्षब्रध्रम्लूं रप्रूं रप्रैं रप्रौं सखह्लक्ष्मग्लीं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इत्यूर्वोर्न्यासः।

२५—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं एकाशीतिवक्त्रा गुह्यकाली देवता सप्त-र्षिभ्यः कल्पावधिस्थितिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी क्ष्म्लूं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं सख-ह्लक्ष्मक्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति जान्वोर्न्यासः।

२६—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं विंशतिवक्त्रा गुह्यकाली देवता किन्नरेभ्यः संगीतकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मश्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं सख-ह्लक्ष्महूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति जंघयोर्न्यासः।

२७—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं अयुतवक्त्रा गुह्यकाली देवता कालाग्नि-रुद्रेभ्यः महाप्रलयकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रलक्षध्रम्लूं खफ्रूं खफ्रैं खफ्रौं सख-ह्लक्ष्मक्रैं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छत स्वाहा इति व्यापके न्यासः।

इति सिद्धिन्यासः।

१०—विराट्न्यासः [८।६८०-८५१]

१—ओं रहक्षम्लंव्यअख्फ्छ्रस्त्रह्लीं ह्लीं क्ष्लफ्लओं ह्स्ख्फ्रां क्ष्मसकह्लीं रक्रां क्लश्रम्क्षह्म्लूं रध्रां शम्लक्लयक्षह्रूं ख्फ्रां ट्लत्लट्लक्षफख्फ्छ्रीं विराट्-रूपायाः गुह्यकाल्याः जटाजूटाय ब्रह्माण्डाय रक्ष्ब्रूं रक्ष्क्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्ह-म्लव्यऊं क्षह्म्लव्यऊं ह्रग्लीं ह्रग्लूं ह्रग्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

२—ऐं शम्लह्रव्यख्फ्रैं ह्लूं ह्लक्ष्मलीं ह्स्ख्फ्रीं रलहक्षम्लख्फछ्रूं रक्रीं फ्लक्ष्मकह्रूं रध्रीं शम्लक्लयक्षह्रूं ख्फ्रीं टरक्षप्लमह्रूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः मस्तकाय

ऊर्ध्वं कपालाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्व्लीं क्ष्व्लूं क्ष्व्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३—आं रक्षफ्रसमहह्लव्य्रऊं ह्लैं स्हक्ष्लक्षख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं रसक्षस्त्रवह्लह्रीं रक्रूं स्त्रहलक्षह्लमव्रीं रघ्रूं रक्षरजक्षमक्षमरह्लम्लव्य्रछ्रीं ख्फ्रूं ,ञसदनस्हक्षग्लूं विराट् रूपायाः गुह्यकाल्याः ललाटाय देवीलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ह्लीं कह्लूं क्ह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

४—ईं लगमक्षख्फ्रसह्लूं ह्लौं डम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रें ,जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं रक्रें ह्म्लक्क्षव्य्रलछ्रीं रघ्रें शम्लक्लयक्षह्लूं ख्फ्रें ह्लमक्षकमह्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः सीमन्तदण्डाय मेरुशैलाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ह्लीं क्ह्लूं क्ह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५—ह्लीं फग्लसहमक्षव्लूं म्रूं सम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रैं सरहखफ्रम्लव्रीं रक्रैं स्हलकह्लक्रूं रघ्रैं कम्क्षव्य्रकछ्रूं खफ्रैं ठ्लत्लक्षफ्रख्फ्छ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः दक्षिणभ्रुवे अजवीथ्यै रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लक्षम्लीं ह्लक्षम्लूं ह्लक्षम्लौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

६—श्रीं ह्स्ख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं श्लीं कम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रौं लह्लक्षकमव्य्रह्लीं रक्रौं नजरमकह्लक्ष्लश्रीं रघ्रौं ह्लक्लक्षम्लश्रूं ख्फ्रौं मक्क्षह्लग्लव्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वामभ्रुवे नागवीथ्यै रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्रक्लीं क्ष्ख्फ्रें क्षखफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

७—क्रीं य्रमह्लक्षफ्रग्लैं श्लूं वम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रौं क्षकभ्रह्लह्लमव्य्रईं रक्रौं × (तोषितं सूक्तं) रघ्रौं लमकक्षह्लीं ख्फ्रौं गपटतयजक्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः दक्षिणकर्णाय शिवलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्त्रीं क्ष्त्रूं क्ष्त्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

८—क्रीं ख्फ्रघ्रव्य्रओं छ्घ्रीं श्लैं लम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रं रहह्लव्य्रक्लीं रख्रां रमयपक्षब्रूं रप्रां लमकक्षह्लीं ह्स्फ्रां ह्लमक्षकमह्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वामकर्णाय वैकुण्ठलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लस्त्रीं ह्लस्त्रूं ह्लस्त्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

९—क्रूं क्षमलरसहव्य्रह्लूं श्लौं यम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रः सक्षमह्लख्फ्रह्लीं रख्रीं ख्लह्लवनगक्षरछ्रीं रप्रीं गसनहक्षव्रीं ह्स्फ्रीं चमरग्क्षफ्रस्त्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः तिलकाय रोहिताय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१०—क्रौं भक्ष्लरभेह्स्ख्फ्रूं फ्लीं र्लह्क्षफ्रूं ह्स्ख्फ्रि हक्षम्लब्रस्हरक्लीं र्घ्रूं क्षलहक्षमलम्लूं र्प्रूं शम्लक्लयक्षह्लूं ह्स्फ्रूं फ्रदमहयनह्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः नासिकायै मन्दाकिन्यै रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं छ्रह्लीं छ्रह्लूं छ्रह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

११—क्रौं स्हछ्रक्लमर्व्रीं फ्ग्रूं सलहक्षह्लूं हसखफ्रुं वलह्लक्षलहक्षमव्य्रीं, र्ख्रें रसमयक्षह्लस्त्रीं र्प्रें गसनहक्षव्रीं ह्स्फ्रें छ्रडतजलूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः दक्षिण-

चक्षुषे सूर्याय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं ह्ल्वलीं ह्ल्वलूं ह्ल्वलैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१२—स्त्रीं तफलक्षकमश्रव्रीं छ्रू क्षलहृक्षझ्रूं म्लीं हम्लक्षवसह्रीं रख्रैं...[भौंमसूक्तं ?] रख्रैं म्लगंल्मश्रफ्रीं हसफ्रैं भलनएदक्ष्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वामचक्षुषे चन्द्राय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं वलह्लीं वलह्लूं फट् फट् फट् वलह्लैं नमः स्वाहा ।

१३—फ्रें ....[ध्वजकूटम्] छ्रैं ह्लक्षम्लफ्रयूं म्लूं रहहवलव्यऊं रख्रौं ह्क्षमक्ष्ह्ल्छ्रीं रप्रो गसनहक्षव्रीं हसफ्रों रगहलक्षम्लयछ्रूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः पक्ष्मभ्यः किरणेभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं वलक्ष्रीं वलक्ष्रूं वलक्ष्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१४—फ्रों प्रस्हम्लक्षक्लीं छ्रौं × (?) हसफ्रौं म्लैं सफक्ष्लमहप्रवलीं रख्रौं मब्लयटत्क्षइँ र्प्रौं कप्रम्लक्षयवलीं छतक्षठ्नह्ब्लीं विराट्रूपायाः दक्षिणगण्डाय तपोलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं वलरह्लीं वलरह्लूं वलरह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१५—फ्रौं समङ्नकक्षव्यऊं स्त्रूं रक्षफप्रघ्रम्लऊं म्लौं थहरखफह्लमब्लूं र्ग्रां पटक्षम्ल-स्हखफ्रूं रफ्रां करह्लरखफछ्रप्रीं ह्लक्षीं वलसमयग्लह्लफ्रूं विराट्रूपायाः गुह्य-काल्याः वामगण्डाय सत्यलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हेंक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं ह्लफ्रीं ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१६—ह्रौं भ्रग्यक्ष्क्षमहफ्रीं स्त्रैं रक्षक्रप्रघ्रम्लूं खफछ्रीं क्षमवलरक्षव्यऊं रग्रीं ह्लक्षफ-कम्लीं रफ्रीं झ्रकस्त्रक्षश्रीं ह्लक्षीं ख्लभक्ष्मलव्य्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः दक्षिणकपोलाय जनलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्ल-व्यऊं ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१७—ह्रूं ब्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं स्त्रौं क्ष्वलीं ख्फछ्रूं म्लक्षफलछ्रीं रग्रूं......(शारीरंसूक्तं) रफ्रूं टरयलह्लब्लछ्रीं हलक्षूं गमह्लयक्ष्लप्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वाम-कपोलाय महर्लोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं स्त्रखफ्रां स्त्रखफ्रीं स्त्रखफ्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१८—स्फ्रौं रसमस्त्रह्लव्यऊं थ्रां क्षफलीं खफछ्रें ज्रलह्लफव्यऊं रग्रें पप्क्षम्लस्हखफ्रां रफ्रें डखछ्रक्षहमम्फ्रीं हलक्षें खतवलक्षमव्यह्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः दक्षिण-कुण्डलाय हिमाद्रये रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं श्रखफ्रीं श्रखफ्रूं श्रखफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१९—स्फ्रौं धशड्लझ्रह्लीं घ्रीं क्षम्लूं खफछ्रैं सहब्रह्लख्फ्रयीं रग्रैं समलक्षग्लस्त्रीं रफ्रैं चफक्षलकमयह्लीं हलक्षैं ठक्ष्मलखछ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वामकुण्डलाय कैलासाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं वलखफ्रीं वलखफ्रूं वलखफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२०—क्षौं टफकमक्षजस्त्रीं ध्रूं क्षक्लूं खफछ्रों छ्रम्लक्षफलह्लहप्रीं र्ग्रों..... (नक्षत्र-सूक्तम्) रफ्रौं स्त्रह्लफप्रीं हलक्षों ब्लयक्षमझ्रग्लध्रूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः

ओष्ठाय स्वर्लोकाय रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं ह्रथ्रीं ह्रथ्र्यूं ह्रथ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२१—ग्लीं ट्लव्य्रसम्क्षःछ्रीं श्रैं रक्षभ्रम्लऊं खफछ्रौं र्क्षलहव्य्रईं रग्रौं नमह्क्षव्य्रह्रूं रफ्रौं व्रतरयह्रक्षम्लूं ह्ल्क्षौं मसफ्लभरक्षव्य्रहूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः अधराय भुवर्लोकाय रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं ह्रम्लीं ह्रम्लूं ह्रम्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२२—ग्लूं ज्लकहलक्षव्रमध्रीं श्रौं रक्षस्रभ्रघ्रम्लऊं खफछ्रं व्रहठ्रम्लह्रूं रच्रां यरक्षम्लब्लीं रव्रां छ्रलक्षकम्लह्रीं द्रैं करयनप्लक्षफ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः अधोदन्तपंक्तये दिक्पालग्रहलोकाय रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं श्रब्लूं श्रब्लैं श्रब्लौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२३—क्लूं क्षम्लजरस्त्रीं च्रीं क्षह्लीं क्षरस्त्रां क्ष्लसहमव्रयूं रच्रीं खरसफ्रम्लछ्रयूं रव्रीं फलयक्षकयब्लूं फहलक्षीं ? रसमयक्षक्लह्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः ऊर्ध्वदन्तपंक्तये सप्तर्षिध्रुवलोकाय रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं ग्लब्लीं ग्लब्लूं ग्लब्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२४—ग्लौं जनह्रमर्क्षयह्रीं च्रूं सखह्रक्षमक्रीं क्षरस्त्रीं चफक्लह्रमक्ष्रूं रच्रूं (पितृसूक्तम्) रव्रूं ह्रक्लक्षम्लश्रूं फहलक्षूं समग्क्षलयब्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः मुखमण्डलाय रोदस्यै रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं क्षख्रीं क्षख्र्यूं क्षख्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२५—व्रच्रां लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं च्रैं सखह्रक्ष्मजूं क्षरस्त्रूं क्लक्ष्मग्लव्य्रह्रूं रच्रें खफसहलक्षूं रव्रें मक्षब्लह्रकमव्य्रईं फहलक्षें खरगवक्षमलयव्य्रईं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः चिबुकाय द्यौर्लोकाय रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं ऋथ्रीं ऋथ्रूं ऋथ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२६ —क्लौं पक्ष्रसमक्षस्त्रक्रीं च्रौं सखह्रक्षमश्रीं क्षरस्त्रूं तमहलहक्षक्लफ्रग्लूं रच्रैं क्षलहक्षक्लस्त्रूं ग्लमक्षसक्लह्रीं रव्रैं टसमनहक्षमखरयूं फहलक्षैं समरगक्षहसखफ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः गलाय ब्रह्मलोकाय रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं ग्लठ्रां ग्लठ्रीं ग्लठ्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२७—क्लैं कह्रक्लक्ष्खफ्रीं ह्लां ह्म्लव्रीं क्षरस्त्रैं मथहलक्षप्रह्रूं रच्रौं डम्लक्षव्रखफस्त्रीं रव्रां.........(सितकर्वुरः) फहलक्षों मकक्षह्रग्लब्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वक्षःस्थलाय नभसे रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं ज्रव्रां ज्रव्रीं ज्रव्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२८—ब्लीं खरसफ्रम्लक्षच्छ्रयूं ह्रूं ओं श्रें क्लीं क्षरस्त्रां सरम्लक्षहसखफ्रीं रच्रौं च्लक्षम्स्हव्य्रख्रीं रव्रौं (रक्तनीलः) फहलक्षौं व्य्रधरमक्षच्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः हाराय नक्षत्रमालायै रक्षख्र्यूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं सहलक्रां सहलक्रीं सहलक्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

२९—ब्लूं रलहक्षसमहफ्रछ्रीं ह्रौं हलफ्रकह्रीं क्षरस्त्रौं छ्रस्त्रौं छ्रम्लक्षव्रफह्रीं रछ्रां डम्लक्षव्रखफस्त्रीं ह्रूं रभ्रां ब्लयनहक्षकभ्रूं क्ष्लौं घ्रभ्सरब्लयध्रूं विराट्रूपायाः

गुह्यकाल्याः बाहुभ्यःदिक् विदिक्चयेभ्यः रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्लक्रीं फ्लक्रूं फ्लक्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३०—ब्लैं झथक्षमफ्रश्रौं ह्लौं ह्लक्षम्लक्रयूं क्षरस्त्रौं सक्लएईह्लीं रछ्रीं ······ × (तत्त्वसूक्तं) रभ्रीं नपटजक्षफ्रसफह्लक्षीं रजमक्षकम्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः पृष्ठाय स्वर्गाय रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्लक्रैं फ्लक्रौं फ्लक्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३१—ब्लौं ईसकहमरक्षक्रीं रफ्लीं ह्लक्षम्लय्रयूं झमरयऊं ब्रह्क्षमह्लव्रह्लीं रछ्रूं स्हएंक्लरक्ष्रीं रभ्रूं गसनह्क्षव्रईं सफह्लक्षूं समहहलक्षखफ्रस्त्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः उदराय अन्तरिक्षाय रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊ फ्रखभ्रां फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३२—क्रीं फ्रक्ररहक्ष्मव्य्रऊं रफ्लूं ह्लक्षम्लझ्रयूं × [कौणपी] महलक्षलखफ्रव्य्रह्लीं रछ्रें लसरक्षकमव्य्रह्लीं रभ्रें क्षब्लकस्त्रीं सफलक्षैं कब्लयसमक्षब्रछ्रूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः अन्त्रेभ्यः पर्वतेभ्यः रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्रश्रीं फ्रश्रूं फ्रश्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३३—क्रूं फ्रक्ररहक्ष्मव्य्रऊं रफ्लैं ह्लक्षम्लव्रयूं रस्फ्रों चफक्लह्लमक्ष्रूं रछ्रैं······ (नर्मसूक्तम्) रभ्रैं क्षब्लकस्त्रीं सफह्लक्षैं रसमयरक्षक्ष्ग्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः जठराय सिन्धुभ्यः रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ग्लब्रीं ग्लब्रूं ग्लब्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३४—क्रैं गरमश्रब्लक्षश्रीं रफ्लौं क्षह्लूं रक्षश्रीं समतरक्षखफछ्रक्लीं रछ्रौं······ (कैवल्यसूक्तम्) रभ्रौं वसरझ्रमक्षव्रक्लीं ढ्रीं वलपट्क्षमव्य्रईं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः प्राणेभ्यः वायुभ्यः रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊ क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्व्रीं क्ष्व्रूं क्ष्व्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३५—क्रौं फ्रखस्हहभव्रयूं क्ष्रां ह्लक्षम्लह्लयूं रक्षछ्रीं दमनडत्क्ष सह्व्य्रईं रछ्रौं······ (अमृतसूक्तम्) रभ्रौं कह्लब्लजूं सफह्लक्षौं·········विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः रोमभ्यः वनस्पत्योषधीभ्यः रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ख्फ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३६—ब्रौं क्लमयक्षलहक्षव्रीं क्ष्रीं ह्लक्षम्लस्रयूं रस्फ्रौं······(उत्तरानाडी) रज्रां क्लम्लक्षस्हश्रीं रम्रां ह्लक्लक्षम्लश्रूं रजझ्रक्ष्रीं नमब्लह्लक्षभ्रग्लूं विराट् रूपायाः गुह्यकाल्याः दृष्ट्यै विद्युते रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ख्फ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३७—घ्रीं क्लमयक्षलह्क्षव्रीं क्ष्रूं रक्षस्रभ्रघ्रम्लऊं × (रम्भा) नरक्षलहक्षकम्लझ्य्रह्लीं रज्रीं दरजभ्रम्लक्ष्रीं रम्रीं स्त्रह्लफ्रम्रीं रजझ्रक्ष्रूं डपतसगमक्षब्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः निमेषोन्मेषाय अहोरात्राय रक्षब्लूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं······खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३८—ज्रीं फनमयसक्षछ्रीं क्ष्रौं रक्षह्लभ्रघ्रम्लऊं × (वटी) ग्लक्षकमह्लस्ह्व्य्रऊं रज्रूं तफरक्षम्लह्रौं रम्रूं म्रलक्षकह्लखफछ्रीं रजझ्रक्ष्रौं क्षीं क्षें क्लें ह्रीं विराट् रूपायाः गुह्यकाल्याः हृदयाय चतुर्दशभुवनाय रक्षध्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊ खफक्लीं खफश्लूं खफक्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

३९—ज्रूं फनमयसक्षछ्रीं क्ष्रौं रक्षझ्रभ्रघ्रम्लऊं स्ह्रौं मनटत्क्षपलव्य्रऊं रज्रें ह्लक-झक्षश्रीं रम्रें म्रलक्षकह्लखफछ्रीं रजझ्रक्ष्रौं कहलजमक्षरव्य्रऊ विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः चरणाभ्यां पृथिव्यै रक्षध्रूं रक्षक्ष्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं खफछ्रीं खफछ्रूं खफछ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

४०—ज्रैं कस्हलह्लध्रक्ष्रीं ज्रीं रक्षव्रभ्रघ्रम्लऊं प्लैं रलहक्षडम्लव्रखफ्रीं रज्रैं जमर-ब्लह्लयूं रम्रैं जलयकक्षग्लफ्रूं छ्ररक्षह्रां छ्रडक्षअहफक्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः पादाङ्गुलीभ्यः सप्तपातालेभ्यः रक्षध्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रकं क्षह्लम्लव्य्रऊं रध्रघ्रीं रध्रघ्रूं रध्रघ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

४१—ज्रौं ड्लखलहक्षध्रम······? ज्रूं रक्षभ्रघ्रयम्लऊं प्लीं सहम्क्षलखभ्रक्लीं रज्रौं······[नादबैन्दवम्] रम्रौं खफ छ्रम्लग्रक्लीं छ्ररक्षह्रीं क्लमरझरश्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वाचे वेदेभ्यः रक्षध्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्ह-म्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं खलफ्रीं खलफ्रूं खलफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

४२—छ्रीं मधम्त्र क्षलक्रीं ज्रैं क्षम्लीं ट्रीं सनटमत्क्षध्रीं रज्रौं द्रैं जमरव्लह्लूं रम्रौं ठक्लक्ष्मव्य्रह्लूं क्षरह्लूं कहलक्षश्रक्षम्लव्रईं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः नाड्यै नदीभ्यः रक्षध्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं व्रफ्लीं व्रफ्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

४३—स्ह्रौः व्रमक्लयसक्षक्लीं ज्रौं रसखग्रमूं ठ्रीं चखफ्लक्षकस्हख्फ (?)······(रझ्रां) ठफक्षथलमकस्त्रूं रश्रां······(शोणपीतम्) छ्ररक्षह्लैं नमयव्लक्षरश्रूं विराट् रूपायाः गुह्यकाल्याः कफोणिभ्यां कलाभ्यः रक्षध्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्ह-म्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ध्रस्त्रीं ध्रस्त्रूं ध्रस्त्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

४४— × (परा) सफ क्षक्लमखछीं रह्लीं क्ष्ब्लीं ड्रीं स सहलक्ष ह्ल कमर···(?) रझ्रीं खफक्ष्लब्लयह्लम्रीं रश्रीं ठक्लक्ष्मलव्य्रह्लूं छ्ररक्षह्लौं मब्लक्षफध्रीं विराट् रूपायाः गुह्यकाल्याः मणिबन्धाभ्यां काष्ठाभ्यः रक्षध्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्रम्लग्लीं फ्रम्लग्लूं फ्रम्लग्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

४५—क्ष्रूं छज्रमकव्य्रऊं रह्लूं क्षग्लीं ढ्रीं टनतम्क्षब्लयछ्रूं रझ्रूं······[महाप्रस्थान सूक्तम्] रश्रूं ग्लकमलहक्षक्रीं रक्षफछां परमक्षलहक्षऐं छ्रीं विराट्रूपायाः गुह्य-काल्याः जंघाभ्यां मुहूर्तेभ्यः रक्षध्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्ल-व्य्रऊं क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

४६—प्रीं फरक्षस्त्रमक्रूं रह्लैं क्षब्लूं प्रीं ग्रमहलक्षखफग्लैं रझ्रें भ्रमलक्षव्य्रकरह्लीं रश्रौं डखछ्रक्षहमफ्रीं रक्षफछ्रीं फपक्षग्लम्रीं विराट् रूपायाः गुह्यकाल्याः ऊरुभ्यां

मृतुभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं क्ष्रस्रीं क्ष्रस्रूं क्ष्रस्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

४७—फ्रीं रब्लकमम्क्षग्लीं रह्लौं क्षग्लूं त्रीं नक्ष्मज्लहक्षख्फ्व्य्रऊं रह्रौं ब्लहतह्लसचैं (?) रश्रैं फ्लमघह्क्ष क्षव्य्रऊं रक्षफछ्रूं जपतरक्ष्मलयकनईं विराट्रूपाया-: गुह्यकाल्याः कट्यै पक्षाभ्यां रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्ल व्य्रऊं फखभ्रीं फखभ्रूं फखभ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

४८—ब्रीं ट्लसकम्लक्षटव्रीं स्रीं कम्लव्रीं द्रीं चफसलहक्षमव्य्रऊं रह्रौं व्य्रक्लक्षह्लम्लूं रश्रौ ब्लमक्षमफख्रछ्रीं रक्षफछ्रैं शक्ष्मब्लयक्लऊं विराट्रूपाया गुह्यकाल्याः वंक्षणाभ्यामयनाभ्यां रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं हसखफ्रक्ष्रीं हसखफ्रक्ष्रूं हसखफ्रक्ष्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

४९—भ्रीं थलहक्षकह्लमव्रयीं स्रूं × [प्रामथम्] ध्रीं वरकजह्रमक्षलऊं रह्रौं साहमेवास्मि श्रौं ह्रकस्त्रक्षश्रीं रक्षफछ्रौं व्रतह्लक्षह्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः प्रपदाभ्यां मासेभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षरस्त्रखफ्रीं क्ष्रस्त्रखफ्रूं क्षरस्त्रखफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५०—म्रीं ओं तत्त्वमसि स्रौं खमह्लीं ग्रीं ब्लक्षफ्लव्य्रछ्रीं रश्रां चम्लहक्षसकह्लूं रस्त्रां हक्षहब्लकमह्लश्रीं रकक्ष्रीं ज्लह्लक्षगमछ्रखफ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः स्फिग्भ्यांमब्दाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्फ्रीं ह्फ्रूं ह्फ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५१—द्रैं द्लव्य्रक्षक्रश्रीं स्रौं क्षफ्लूं घ्रीं ग्लमकक्षह्लछ्रव्रीं रश्रीं घग्लक्षकमह्लव्य्रऊं रस्त्रीं ब्लक्क्षग्रमवर्हस्त्रूं रवक्ष्रूं ब्लयरठह्लमक्ष्रूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः सर्वाङ्गाय चतुर्युगाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्रऊं क्ष्रस्रीं क्ष्रस्रूं क्ष्रस्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५२—भ्रूं छ्ग्क्लव्य्रम्क्षयूं रश्रीं सखह्लक्ष्मग्लीं त्रैं (?) पतक्षयह्लक्लखफ्रीं रश्रूं रक्षगम्लरह्लीं रस्त्रूं फ्रक्षब्लूं रकक्ष्रैं क्षफ्रगकह्लनमह्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः जिह्वात्रयेभ्यः वैश्वानरकालमृत्युभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षफ्लह्लीं खफ्रह्लं छ्रखफ्रां फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५३—क्ष्नीं सक्लह्ल हसखफ्रक्ष्रीं कह्लश्रीं सखह्लक्ष्मह्लीं ह्भ्रीं पतक्षयह्लक्लखफ्रीं रश्रैं थ्फखक्षलव्य्रईं रस्त्रैं क्वफ्ररसम्क्षक्लछ्रूं रकक्ष्रौं गसघमरयब्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः अन्नाय आब्रह्मस्तम्बाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लग्लौं क्षब्लौं क्रह्लौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५४—ब्रूं त्लमक्षफलहक्षव्रीं सखह्लक्ष्महूं ब्जूं सम्रहक्षव्य्रऊं रश्रैं क्लटव्य्रक्षम्लीं रस्त्रैं छ्रक्षम्लमस्त्रव्य्रऊं रह्लछ्ररक्षह्लां यरब्लमक्षहरू ? विराट् रूपायाः गुह्यकाल्याः भोजनसमयाय प्रलयाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लग्लौं क्षब्लौं क्रह्लौं (?) फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५५—म्रां गलहक्षम्लजक्रू प्रैं सखह्लक्ष्मस्त्रीं स्क्रीं जररलहक्षम्लव्यऊं रस्रौं........ रस्त्रौं शम्लक्लयक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लूं यरब्लमक्षह्लूं ? विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः पार्श्वपरीवर्ताय महाकल्पाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं क्ह्लौं क्षच्रौं ह्लस्त्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

५६—प्लूं हससक्लह्लीं प्रौं सखह्लक्ष्म्ठ्रीं द्रौं जरक्षलहक्षम्लव्यऊं रस्रौं हृरसक्षम्लस्त्रीं रस्त्रौं जनथक्षकम्लव्रईं रह्लछ्रक्षह्लैं यस्हम्लमक्षह्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः......? ... ? रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं क्षह्लम्लव्यऊं क्लह्लौं ह्लखफ्रैं स्त्रख्फ्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

इति विराट्न्यासः।

२१—बीजन्यासः [९।४-४५]

१—ओं ह्लीं श्रीं चिद्बीजाय ब्रह्माण्डाय रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति ललाटे न्यासः।

२—ऐं श्रीं क्लीं आत्मबीजाय आकाशाय रज्रूं रज्रैं रज्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति मुखवृत्ते न्यासः।

३—आं क्रों क्रौं आवापोद्वापबीजाय वायवे रझ्रूं रझ्रैं रझ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः।

४—हूं क्रीं स्त्रीं ज्योतिर्बीजाय तेजसे रथ्रूं रथ्रैं रथ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति गले न्यासः।

५—हौं क्षूं क्षौं पातालबीजाय जलाय रप्रूं रप्रैं रप्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति उरसि न्यासः।

६—ग्लूं ग्लैं ग्लौं उदधिबीजायै पृथिव्यै रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति जठरे न्यासः।

७—क्लूं क्लैं क्लौं सङ्कल्पविकल्पबीजाय मनसे रश्रीं रश्रें रश्रों गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति नाभौ न्यासः।

८—ब्लीं ब्लूं ब्लौं कालबीजायै ओषध्यै रह्लूं रह्लैं रह्लौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति वस्तौ न्यासः।

९—फ्रों स्फ्रों स्फ्रौ रूपबीजाय चक्षुषे रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति मेढ्रे न्यासः।

१०—स्हौं स्हौः सौः शब्दबीजाय श्रोत्राय रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति वंक्षणयोर्न्यासः।

११—छ्रीं फ्रें रछ्रौं [ओं ?] गन्धबीजाय घ्राणाय ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इत्यूर्वोर्न्यासः।

१२—ज्रूं ज्रैं ज्रौं रसबीजायै रसनायै ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति जान्वोर्न्यासः।

१३—त्रीं त्रूं त्रैं स्पर्शबीजाय त्वचे छ्ररक्षह्लूं छ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लौं गुह्यकाल्यै अनन्त-शक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति जङ्घायां न्यासः ।

१४—क्रूं क्रैं क्रौं मैथुनबीजाय प्रजासर्गाय रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्र-रक्षह्लौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति गुल्फयं न्यांसः ।

१५—प्रीं प्रूं प्रैं अन्नबीजाय प्राणाय रवक्ष्रूं रवक्ष्रैं रवक्ष्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्ति-मूर्तये हूं फट् स्वाहा इति पाष्ण्योर्न्यासः ।

१६—फीं फूं फैं अग्निबीजाय सुवर्णाय रक्षफछ्रूं रक्षफछ्रैं रक्षफछ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति प्रपदयोर्न्यासः ।

१७—क्रीं क्रूं क्रैं पाप बीजाय नरकाय रजह्रक्ष्रूं रजह्रक्ष्रैं रजह्रक्ष्रौं गुह्यकाल्यै अनन्त-शक्तिमूर्तये हू फट् स्वाहा इति पार्श्वयोर्न्यासः ।

१८—जूं सः क्ष्रूं पुण्यबीजाय स्वर्गाय ख्फह्लूं ख्फह्लैं ख्फह्लौं गुह्यकाल्यै अनन्त-शक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति बाहुमूलयोर्न्यासः ।

१९—व्रीं व्रूं व्रैं अज्ञानबीजायै मायायै ख्फक्ष्रूं ख्फक्ष्रैं ख्फक्ष्रौं गुह्यकाल्यै अनन्त-शक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इत्यंसयोर्न्यासः ।

२०—म्रां म्रीं म्रूं ज्ञानबीजाय मोक्षाय ख्फछ्रूं ख्फछ्रैं ख्फछ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्त शक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति हन्वोर्न्यासः ।

२०—छ्रूं छ्रैं छ्रौं वामनाबीजाय जन्मने ख्फवलूं ख्फवलैं ख्फवलौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति सृक्कयोर्न्यासः ।

२२—श्रूं श्रैं श्रौं कर्मबीजाय मरणाय ख्फह्लूं ख्फह्लैं ख्फह्लौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्ति-मूर्तये हूं फट् स्वाहा इति गण्डयोर्न्यासः ।

२३—च्रूं च्रैं च्रौं ध्यानबीजाय लयाय ह्लग्लूं ह्लग्लैं ह्लग्लौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्ति-मूर्तये हूं फट् स्वाहा इति चक्षुरोर्न्यासः ।

२४—स्त्रूं स्त्रैं स्त्रौं सत्वबीजाय विष्णवे फम्रग्लूं फम्रग्लैं फम्रग्लौं गुह्यकाल्यै अनन्त-शक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति श्रवणयोर्न्यासः ।

२५—भ्रूं भ्रैं भ्रौं रजोबीजाय ब्रह्मणे फख्भ्रूं फख्भ्रैं फख्भ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्ति-मूर्तये हूं फट् स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

२६—श्लूं श्लैं श्लौं तमोबीजाय रुद्राय ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्त-शक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

२७—ज्रीं ज्लैं ज्लौं गुह्यकालीबीजाय चराचराय क्षरस्त्रख्फ्रूं क्षरस्त्रख्फ्रैं क्षरस्त्रख्फ्रौं गुह्यकाल्यै अनन्तशक्तिमूर्तये हूं फट् स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति बीजन्यासः ।

२२—कूटन्यासः [९।४६-७७]

१—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं स्हजह्ल्क्षम्लवनऊं रजहलक्षमऊं क्वलह्लभ्रकह्लनसवलईं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति पादयोः न्यासः ।

२—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं हक्लह्लवडकखऐं क्षमब्लह्कयह्लीं कसवह्लक्षमं ओं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति जंघायुगले न्यासः।

३—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं क्लक्षसहमव्यऊं ह्लसहकमक्षब्रऐं सहठ्लक्षह्लमक्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति जानुयुगले न्यासः।

४—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं र्क्षफसमहह्ल्व्यंऊं ख्फध्रव्यओं-छ्रध्रीं फ्रें ख्फ्रें हू फट् नमः स्वाहा इत्यूरुयुगले न्यासः।

५—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं म्लकह्लक्षरस्त्रीं [नद्क्षुट्क्षव्यइंऊं ?] टक्षसन्रम्लैं म्लकह्ल-क्षरस्त्रीं [चहलक्षट्लहसखफ्रूं] फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः।

६—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं लगमक्षखफ्सह्लूं फग्लसहमक्षव्लूं ख्फ्रध्रव्यओं छ्रध्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः।

७—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्री रक्षखरऊ रक्ष्क्रूं स्हक्षम्लव्यऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति वक्षसि न्यासः।

८—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं वंलक्ष्मसहख्व्रीं क्ष्मलरसहव्यह्लूं भ्रक्लरमह्सख्फ्रूं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति अंसयुगले न्यासः।

९—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं क्षस्हम्लव्यऊं च्लक्रथ्ल्ह्क्षह्लीं क्षह्लम्लव्यऊं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति हनुयुगले न्यासः।

१०—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं स्हक्षम्लव्यई रल्ह्क्षह्क्षक्षसवलह्लीं क्लप्क्षह्लमव्रूं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति कपोलद्वये न्यासः।

११—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं क्षह्लम्लव्यईं क्षस्हम्लव्यईं क्षह्लम्लव्यईं क्षह्लम्लव्यईं क्षस्हम्लव्यईं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति दन्तेषु न्यासः।

१२—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं स्हछ्रक्षलम्रव्यईं ······ (ध्वजकूटम्) झ्रहव्रक्ष्मसह्लीं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति नेत्रयुगले न्यासः।

१३—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं रक्षक्रींऊं स्हक्षम्लव्यईऊं स्हक्षम्लव्यईऊं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति कर्णयुगले न्यासः।

१४—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं ख्फ्रक्लक्ष्मसभ्रीं ······ (वक्त्रकूटम् ?) ग्लक्लमझ्रस्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यासः।

१५—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं ख्लक्ष्क्षय्म्रख्फ्छ्रें ग्लकक्षह्लैं ठ्लम्रखफ्छ्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यासः।

१६—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं रहक्षम्लव्यम्रख्फ्छ्रस्त्रह्लीं ······ (गह्वर कूटम् ?) शम्लह्लव्यख्फ्रें फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति शङ्खयोर्न्यासः।

१७—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं सक्लह्लकह्लीं सक्लह्लीं छ्क्षक्ह्लक्षम्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति शिरसि न्यासः।

१८—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं ख्फ्छ्एंव्रह्लक्ष्मकृरयीं स्हक्लरक्षमजह्लखफरयूं क्लक्ष-हमस्त्रछ्रूं फ्रें ख्फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा इति शिखायां न्यासः।

१९—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं फ्रत्क्षम्ल्ह्क्षहथ्ल्ह्क्षह्लूं ज्रैं स्ल्त्ह्क्षच्ल्ह्क्षज्ल्ह्क्ष ज्क्षड्ल्ह्क्षच्लद्रक्ष्मएं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति मणिबन्धयोर्न्यासः।

२०—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं धशड्लझ्रह्लीं टफक्रम्क्षजस्त्रीं रल्न्क्षसमहफछ्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति कक्षयोर्न्यासः ।

२१—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं [क्ष्रां क्रीं ?] गरमश्रव्लक्षश्रीं भक्ररहक्ष्मव्य्रऊं फ्रें खफ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति पृष्ठे न्यासः ।

२२—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं द्लड्क्षवल्र ह्सख्फ्रौं म्क्षक्रस्हख्फ्छ्रूं फ्लक्षह्लस्हव्य्रऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति कटौ न्यासः ।

२३—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं व्रमक्लयस्क्षक्लीं ड्लख्ल्ह्क्षश्रम ······? मधस्त्रक्क्ष-लक्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति दक्षकरेषु न्यासः ।

२४—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं प्ल्ह्क्षक्ष्मझ्रहच्रूं ह्लरलह्सकह्रीं क्ष्क्षक्लफच्क्षक्षौं फ्रें खफ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति वामकरेषु न्यासः ।

२५—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं जनह्मरक्षयह्लीं लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं पक्ष्रसम्क्षस्त्रक्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति वामपादादौ न्यासः ।

२६—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं थ्ल्ह्क्षकह्लमव्रयीं तत्त्वमसि रत्रौं ओं जनह्मरक्षयह्लीं फ्रें खफ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति वामपादादौ न्यासः ।

२७—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं हसक्लह्रीं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं फ्रें खफ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति व्यापके सर्वशारीरे न्यासः ।

इति कूटन्यासः ।

२३—क्रमन्यासः [६।८०-४४८]

१—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं छ्रीं स्हौः सौः फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें हूं फट् स्वाहा ।

१—ओं ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं ह्रीं क्रों ईं स्फ्रौं चण्डेश्वरि छ्रीं फ्रें हूं फट् स्वाहा ।

२—ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रों क्रीं स्त्रीं क्लीं स्हज्ह्ल्क्षम्लवनऊं क्षमक्लह्लहसव्य्रऊं क्वलह्ल-भकह्लनसक्लईं हस्लक्षकमह्लव्रूं क्ष्लह्लमव्य्रऊं चण्डेश्वरि ख्रौं छ्रीं फ्रें फ्रें क्रौं क्रौं हूं फट् स्वाहा ।

३—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रीं आं क्रों फ्रों हूं क्षूं ह्सख्फ्रें फ्रें हरसिद्धे सर्वसिद्धिं कुरु कुरु देहि देहि दापय दापय हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

४—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सख्फ्रें हूं कुक्कुटि क्रीं आं क्रों फ्रें फ्रों फट् फट् स्वाहा ।

५—ओं क्रों क्रौं ह्सख्फ्रें हूं छ्रीं फेत्कारि दद दद देहि दापय स्वाहा ।

६—ऐं स्हौः खफ्रें ह्सफ्रों ······ (वाडव कूटम् ?) एह्येहि भगवति बाभ्रवि महा-प्रलयताण्डवकारिणि गगनग्रासिनि ह्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें शत्रून् हन हन सर्वैश्वर्यं दद दद महोत्पातान् विध्वंसय विध्वंसय सर्वरोगान् नाशय नाशय ओं श्रीं क्लीं ह्रौं आं महाकृत्याभिचारग्रहदोषान् निवारय निवारय मथ मथ क्रों जूं ग्लूं ह्सफ्रें ह्सखफ्रें स्वाहा ।

७—ओं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें हूं फट् ब्रह्मवेतालराक्षसि क्रीं क्षूं फ्रों विष्णुशरावतंसिके योगिनि स्हौः ········· [अमा] महारुद्रकुणपारूढे ऐं ओं ह्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

८—ओं ह्रीं हूं ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों हौं भगवति महाघोरकरालिनि तामसि महाप्रलयताण्डविनि चर्चरीकरतालिके जय जय जननि जम्भ जम्भ मुह कालि कालनाशिनि भ्रमरि भ्रामरि डमरुभ्रामिणि ऐं क्लीं स्फ्रों छ्रीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें ह्स्फ्रें ह्सूखफ्रें फट् नमः स्वाहा।

९ – क्रीं ओं हूं फ्रें स्त्रीं फ्रों चण्डखेचरि ज्वल ज्वल प्रज्वल निर्मांसदेहे नमः स्वाहा।

१०—ओं ह्रीं क्लीं हूं भगवति महाडामरि डमरुहस्ते नीलपर्तनुखि जीवब्रह्मगल निष्पेषिणि छ्रीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें महाश्मशानरङ्गचर्चरीगायिके तुरु तुरु मर्द मर्द मर्दय मर्दय ह्सूखफ्रें स्वाहा।

११—ओं ह्रीं आं शबरेश्वर्ये नमः ह्रीं पद्मावति स्वाहा।

१२—ओं श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः।

१३—ओं ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां मुखं वाचं स्तम्भय जिह्वां, कीलय कीलय बुद्धि नाशय ह्लीं ओं स्वाहा।

१४—ओं नमः श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिपदसमरविजयप्रदायै भगवत्यै अपराजितायै ह्रीं श्रीं क्लीं फट् स्वाहा ओं।

१५—ओं ऐं आं क्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें खफ्रें ह्सूखफ्रें पिङ्गले पिङ्गले महापिङ्गले··· हूं हूं फट् फट् स्वाहा।

१६—ओं ह्रीं क्षौं क्रों हं हं हं हयग्रीवेश्वरि चतुर्वेदमयि फ्रें छ्रीं स्त्रीं हूं सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं कुरु कुरु स्वाहा ओं।

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं छ्रीं स्हौः सौः फ्रें खफ्रें ह्स्फ्रें ह्सखफ्रें हूं फट् स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः।

२—ओं श्रीं क्लीं ह्रीं छ्रीं फ्रें हूं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर सान्निध्यं कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा।

१—ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जनि सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशंङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वग्रहवशंकरि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकममुं मे वशमानय स्वाहा।

२—ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा।

३—आं ह्रीं क्रों ओं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं आं अश्वारूढायै फट् फट् स्वाहा।

४—ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहं ग्रस ग्रस स्वाहा।

५—श्रीं ह्रीं क्लीं ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः।

६—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं क्रों वज्रप्रस्तारिणि स्वाहा।

७—ओं ह्रीं हूं आं क्रों स्त्रीं हूं क्षौं ह्रीं फट्।

८—ओं ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा।

९—हूं खें × क्षः ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं मुण्डमनुमःथं शक्तिभूतिन्यै ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट्।

१०—ओं ऐं समरविजयदायिनि मत्तमातङ्गयायिनि श्रीं आं ह्रीं भगवति जयन्ति समरे जयं देहि देहि मम शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय विद्रावय विद्रावय भञ्ज भञ्ज मर्दय मर्दय तुरु तुरु श्रीं क्लीं स्त्रीं नमः स्वाहा ।

११—ओं ऐं रक्ताम्बरे रक्तस्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये महाकान्तारे मां त्राहि त्राहि श्रीं क्लीं ह्रीं हूं फ्रें फट् स्वाहा ।

१२—ह्रीं सां सीं सूं सङ्कटा देवि सङ्कटेभ्यो मां तारय तारय श्रीं क्लीं ह्रौं हूं आं फट् स्वाहा ।

१३—वदवद वाग्वादिनि स्हौं क्लिन्नक्लेदिनि महाक्षोभं कुरु क्ष्रां ओं मोक्षं कुरु स्हौं ।

१४—ओं ऐं क्रीं हूं ह्रीं क्लीं रक्ष्रीं रह्लैं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रक्षफछ्रां दृष्टि निवेशय निवेशय हूं फट् स्वाहा ।
ओं श्रीं क्लीं ह्रीं छ्रीं फ्रें हूं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर सान्निध्यं कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः । (?)

३—(१) ओं ऐं आं ह्रीं छ्रीं ...... [अमा ?] हूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं खफक्ष्रीं खफक्ष्रूं खफह्लूं भगवति आगच्छ आगच्छ सन्निहिता भव भव फ्रें खफ्रें हस्खफ्रौं खफछ्रीं खफक्लैं हूं फट् स्वाहा ।

(२) ओं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं फ्रें हस्फ्रें हस्खफ्रैं क्षह्लम्लव्य्रइं भगवति विच्चे घोरे श्री कुब्जिके हस्खफ्रें रह्लीं रह्लूं स्हौं ङ्मणनम अघोरामुखि छां छीं छूं किणि किणि विच्चे स्त्रीं हूं स्हौः पादुकां पूजयामि नमः स्वाहा ।

(३) ह्रीं श्रीं क्रों क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं हस्खफ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा ।

(४) ओं श्रीं आं क्रों क्लीं हूं क्ष्रूं ह्रैं एकानंशे डमरुडामरि नीलाम्बरे नीलविभूषणे नीलनागासने सकलसुरासुरान् वशे कुरु कुरु जल्पिके कल्पिके सिद्धिदे वृद्धिदे छ्रीं स्त्रीं हूं क्लीं फ्रें ह्रीं फट् स्वाहा ।

(५) ओं नमश्चामुण्डे करङ्किणि करङ्कमालाधारिणि किं किं विलम्बसे भगवति शुष्काननि ख ख अन्त्रकरावनद्धे भो भो स्कीः स्कीः कृष्णभुजङ्गवेष्टिततनो लम्बकपाले हुड्ड हुड्ड हट्ट हट्ट पट पट पताकाहस्ते ज्वल ज्वल ज्वालामुखि ......[निष्कं ?] हस्खफ्रं हस्खफ्रं हस्खफ्रं खट्वाङ्गधारिणि हा हा चट्ट चट्ट हूं हूं अट्टाट्टहासिनि उड्ड उड्ड वेतालमुखि सिकि सिकि स्फुलिङ्ग पिङ्गलाक्षि चल चल चालय चालय करङ्क मालिनि नमोऽस्तु ते स्वाहा ।

(६) ऐं ह्रीं श्रीं आं ग्लूं ईं आं म्लव्य्रवऊं नमो भगवति वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखि वराहमुखि ऐं ग्लूं अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जम्भे जम्भिनि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः सर्वदुष्ट प्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुश्रोत्रमुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरु कुरु ऐं क्रीं श्रीं ठः ओं ओं ओं ओं ओं ×[अमा] हूं फट् स्वाहा ।

(७) ह्रीं फ्रें खफ्रें क्लीं पूर्णेश्वरि सर्वान् कामान् पूरय ओं फट् स्वाहा खहल्क्ष्मरव्लईं खमस्हक्षवल्रीं सखहक्ष्मक्लीं...... [कालिकं कूटम्]

(८) ओं ह्रीं फ्रें हूं महादिगम्बरि ऐं श्रीं क्लीं आं मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि छ्रीं स्त्रीं क्रीं ग्लूं मुण्डमालिनि ओं स्वाहा ।
ह्रीं श्रीं क्रों क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं हस्खफ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा ।

(९) क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हूं क्रों क्रों क्रों श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं चण्डघण्टे शत्रून् जम्भय जम्भय मारय मारय हूं फट् स्वाहा ।

(१०) ओं ऐं आं श्रीं हूं क्रों क्षूं क्रीं क्रौं फ्रें अनङ्गमाले स्त्रियम् आकर्षय आकर्षय त्रुट त्रुट छेदय छेदय हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

(११) ओं ऐं आं ईं ऊं एह्येहि भगवति किरातेश्वरि विपिनकुसुमावतंसितकर्णे पादभुजगनिर्मोककञ्चुकिनि ह्रीं ह्रीं ह्रीः ह्रीः कह कह ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वसिद्धिं दद दद देहि देहि दापय दापय सर्वशत्रून् दह दह बन्ध बन्ध पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हूं हूं हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(१२) ओं ह्रीं हं हां महाविद्ये विश्वं मोहय मोहय ऐं श्रीं क्लीं त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् फट् स्वाहा ।

(१३) आं ईं ऊं ऐं औं क्षेमङ्कर्यै स्वाहा ।

(१४) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं क्रां ख्फ्रें हूं फट् करालिनि मायूरि शिखिपिच्छिकाहस्ते ख्रौं क्लौं ब्लौं न्क्षकर्णि जालन्धरि मा मां द्विषन्तु शत्रवो न तुदन्तु भूपतयः भयं मोचय हूं फट् स्वाहा ।

(१५) ओं क्रीं फ्रें वेतालमुखि चर्चिके हूं छ्रीं स्त्रीं ज्वालामालिनि विस्फुलिङ्गवमनि महाकापालिनि कात्यायनि श्रीं क्लीं ख्फ्रें कह कह धम धम ग्रस ग्रस आं क्रों ह्रौं नरमांसरुधिरपरिपूरितकपाले...(अमा) क्लौं ब्लूं ह हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।
ह्रीं क्लीं ऐं ओं ह्सख्फ्रीं चां रहलछररक्षह्री रहलव्ररक्षह्रूं र्कक्ष्रीं र्कक्ष्रूं रक्षफछ्रीं रक्षफछ्रूं रजझक्ष्री रजझक्ष्रूं खफक्ष्रीं ख्फक्ष्रूं भगवति महाबलपराक्रमे एह्येहि सान्निध्यं कुरु कुरु हूं हूं फट् फट् मम सर्वमनोरथान् पूरय पूरय पालय पालय सर्वोपद्रवेभ्यो मां रक्ष रक्ष स्वाहा इत्युत्तरे न्यासः ।

४—ऐं फ्रें ओं ह्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रीः ह्रः क्ष्ख्फ्रैं र्कक्ष्रैं ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ब्लक्क्षह्मस्त्रछ्रूं ख्फछ्रंव्रह्लक्ष्नक्ष्रयीं क्लक्ष्मफहसौः ....(गह्वरकूटम् ?) स्हक्लर्क्षमजह्रखफरग्रूं × (महाकालस्थायिबीजं) ख्फ्रीं हसखफक्ष्रैं × (जगदावृत्तिः) × (ब्रह्मकपालाम्) जय जय जीव जीव ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल महाभैरवशिवासनसंविष्टे विकरालरूपधारिणि र्क्ष्रीं र्क्ष्रूं र्क्ष्रैं र्क्ष्रौं हूं फट् फट् स्वाहा ।

१—श्रीं ह्रीं हल्रीं ह्सख्फ्रीं क्षरहम्लव्य्रईऊं ख्फ्रें ज्र्क्रीं भ्रमरयँऊं र्क्ष्रीं स्त्रीं छ्रीं सिद्धिकरालि फट् ।

२—ह्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्हौः क्रीं क्रों फ्रें स्त्रीं श्रीं फ्रों जूं ब्लौं व्रीं स्वाहा ।

३—ख्फ्रें ह्सख्फ्रें ज्र्क्रीं ओं ह्रीं फं चण्डयोगेश्वरि क्रीं फ्रें नमः ।

४—श्रीं ह्रीं ऐं ब्लूं स: अं इं आं ईं राजदेवीषु राजलक्ष्मीषु भैरवीषु मारीषु ऐं ह्रीं श्रीं ओं ह्रीं श्रीं हूसूफ्रें स्हौः ओं ह्रीं हूं फ्रें राज्यप्रदे ख्फ्रें हसूख्फ्रें उग्रचण्ड रणमर्दिनि हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं सदा रक्ष रक्ष त्वं मां जूं स: मृत्युहरे नम: स्वाहा।

५—ओं ह्रीं नम: परमभीषणे हूं हूं करङ्कङ्कालमालिनि फ्रें फ्रें कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि कालि कालि श्मशानचारिणि नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस हूं हूं कारनादिनि क्रों क्रों शववाहिनि मां रक्ष रक्ष फट् फट् हूं हूं नम: स्वाहा।

६—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं क्लीं हूं श्रीं क्ष्रीं महिषमर्दिनि ग्लौ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ओं क्षीं पीं थीं भगवति......(मर्यादाकूटम्) स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं चण्डहुङ्कारकापालिनि जय रङ्केश्वरि नम: स्वाहा।

७—ऐं ह्रीं श्रीं हसूफ्रें स्हौं वीं द्रौं चूं ह्रां ह्रीं हूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊ क्षस्हम्लव्य्रऊं शिवशक्तिसमरसे चण्डकापालेश्वरि हूं नम:।

८—ऐं ह्रीं श्रीं म्लकह्लक्षरस्त्रीं ऋं ॠं महासुवर्णकूटेश्वरि म्लकह्लक्षरस्त्रीं म्लह्लक्षस्त्रूं म्लकह्लक्षरस्त्रैं म्लकह्लक्षस्त्रौं श्रीं ह्रीं ऐं नम: स्वाहा।

९—ओं ऐं श्रीं ह्रीं फ्रें स्हौः क्रीं चफश्लह्लमक्ष्रूं ब्लहतह्लमचैं क्षव्लयस्त्रीं जयवागीश्वरि ज्ञानं प्रकटय प्रकटय बुद्धिं मे देहि देहि हलमक्षकमह्रीं क्लक्षपस्हख्रीं फ्खरक्षक्लह्रीं ऐं छ्रीं फ्रें क्लीं हूं फट् फट् स्वाहा।

१०—ओं क्रीं क्रों फ्रें फ्रों छ्रीं ख्रौं हूं हसूख्फ्रें ब्लौं खफ्रौं ह्रीं ह्रीं ब्रीं क्ष्रूं क्रौं चामुण्डे ज्वल ज्वल हिलि हिलि किलि किलि मम शत्रून् त्रासय त्रासय मारय मारय हन हन पच पच भक्षय भक्षय क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ह्रीं क्रों हूं फट्। ओं श्रीं ह्रीं ऐं ध्रौं × (वैरोचनबीजम्) हूं हूं फट् स्वाहा।

११—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं हूं हूं कारघोरनादवित्रासितजगत्त्रये ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते क्लीं क्लीं क्लीं पदविन्यासत्रासितसकलपाताले श्रीं श्रीं श्रीं व्यापकशिवदूति परमशिवपर्यङ्कशायिनि छ्रीं छ्रीं छ्रीं गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि घोरघोरतररूपिणि फ्रें फ्रें फ्रें ज्वालामालि पिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं दैत्यदानवनिकृन्तनि सकलसुरकार्यसाधिके ओं ओं ओं फट् नम: स्वाहा।

१२—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्रों क्रीं आं हूं क्षूं हौं (अमा) क्रौं हसूख्फ्रें क्ष्रूं फ्रीं छ्रीं फ्रें ब्लौं ब्लौं ब्लूं स्हौः स्फ्रों ख्रौं जूं ब्रीं कालसङ्कर्षिणि हूं हूं स्वाहा। ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं फ्रें रफ्रें रफ्रीं रश्रीं रक्रीं रज्रों ह्स्त्रीं हछ्रीं क्लफ्रीं क्लफ्रूं क्लफ्रैं क्लफ्रौं ह्लफ्रीं ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं ह्लफ्रौं फम्रग्लईं फम्रग्लऊं क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं आगच्छ आगच्छ हस हस बला बला महाकुणपभोजिनि दृष्टिं निवेशय निवेशय ह्रीं हौं क्रों क्रौं स्हौः सौः श्रीं फ्रें हूं फट् फट् फट् स्वाहा इति हृदये न्यास:।

५—१—ओं ओं ओं ऐं ऐं ऐं श्रीं क्लीं ब्लें ब्लौं ह्रीं रक्ष्रैं रक्ष्रौं छ्रीं जय जय जीव जीव मम सर्वमनोरथान् पूरय पूरय वर्द्धय वर्द्धय अधिष्ठानं कुरु कुरु रजज्ञक्षीं रजज्ञक्ष्रूं रजक्षक्ष्रैं रजज्ञक्ष्रौं क्लीं स्त्रीं रछ्रूं रछ्रः नम: फट् स्वाहा।

२—स्हक्लह्रीं सफ्रक्षवलमखछ्रीं सक्लह्रीं ऐं क्लीं स्हौः ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं भगवति महामोहिनि ब्रह्मविष्णुशिवादिसकलसुरासुरमोहिनि सकलं जनं मोहय मोहय वशीकुरु वशीकुरु कामाङ्गद्राविणि कामाङ्कुशे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं क्लीं श्री ह्रीं ऐं ओं ऐं क्रीं क्लैं ख्फ्रें क्लैं फ्रें ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा ।

३—भ्रसखग्रमऊं......[चूड़ाकूटम्] ह्स्ख्फ्रें सहक्षलक्षें......क्ष्लह्रमव्यऊं ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रू ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रौं ख्फ्रह्लीं ख्फ्रह्लू नित्यानित्यभोगप्रिये नित्योदितवैभवे आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्हौं सौः हूं नमः स्वाहा ।

४—ओं नमः कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगान्तिके क्लूं नमः परमगुह्ये हूं हूं हूं मदने मदनान्तकदेहे त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् स्वाहा ।

५—ओं ऐं आं ह्रीं परमब्रह्महंसेश्वरि कैवल्यं साधय स्वाहा ।

६—ओं नमः प्रचण्डघोरदावानलवासिन्यै ह्री हूं समयविद्याकुलतत्त्वधारिण्यै महामांस-रुधिरबलिप्रियायै छ्रीं स्त्रीं क्लीं धूमावत्यै सर्वज्ञतासिद्धिदायै फ्रें फट् स्वाहा ।

७—ओं आं ऐं ह्रीं श्रीं शक्तिसौपर्णि कमलासने उच्चाटय उच्चाटय विद्वेषय विद्वेषय हूं फट् स्वाहा ।

८—ओं क्लीं ग्लूं ह्रीं स्त्रीं हूं फ्रें छ्रीं फ्रों कामाख्यायै फट् स्वाहा ।

९—ऐं आं ह्रीं स्हौः क्रों जूं चतुरशीतिकोटिमूर्तये विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै ओं स्वाहा ।

१०—ऐं ह्रीं क्लैं ख्फ्रें क्लैं फ्रें ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा ।

११—ओं ह्रीं नमः चित्राम्बरे चिन्तामणि प्रकटय परमर्द्धिं दद दद जलहक्षछपग्रहसखफ्रीं क्ष्मलरसहव्य्रह्लं क्लक्ष्मसहख्यत्रीं छ्रीं क्लूं ख्फ्रें हूं फट् स्वाहा ।

१२—ओं क्लीं ह्लां क्लीं ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसनशीले महाविद्ये ह्रीं हूं ह्लीं विष्णुमाये क्षोभय क्षोभय क्लीं क्रों आं ह्लीं सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट् ।

१३—ओं ह्लीं बगलामुखि सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भय ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय हूं क्लीं ह्लीं ओं नमः स्वाहा ।

१४—ओं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं निर्विकारस्थचिदानन्दघनरूपायै मोक्षलक्ष्म्यै अमितानन्तशक्तितत्त्वायै क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ओं ।

१५—ऐं श्रीं ह्रीं स्हौः सौः ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लीं रक्ष्रैं रक्षफ्रछ्रां रह्लछ्रक्षह्लैं रह्लछ्रक्षह्लौं रहक्षम्लव्य्रअखफ्छ्रस्त्रह्लीं ह्स्ख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं शम्ज्ञह्लव्य्रखफैं खेचरीमुद्रां प्रकटय प्रकटय सान्निध्यमावेशय छ्रीं ख्फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

६—१—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ओं ओं ओं ओं ओं आं आं आं आं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रौं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर जय जय जीव जीव एह्येहि भगवति कापालिनि करालि खफ्रक्लीं ख्फ्रक्लूं . (-ह्यसबीजम्) ख्फ्रह्लौं ख्फ्रछ्रें ख्फ्रछ्रौं ह्लछ्रीं ह्लछ्रू ज्रम्लक्षह्लछ्रीं झ्रहव्रक्ष्मसह्लीं खफछ्रएव्रह्लक्ष्मऋरयीं रहक्षम्लव्य्रअखफछ्रस्त्रह्लीं फ्रस्त्रीं (केतुबीजम्) क्रह्लूं रखध्रूं हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

फा०—१४

२—ऐं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं फ्रें छ्रीं स्त्रीं ह्स्ख् फ्रें भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि महाप्रलयचण्डलक्ष्मि सिद्धेश्वरि सक्लह्रीं स्हक्लह्रीं सक्लह्रक्ह्रीं महाघोरघोरतरे भगवति भयहारिणि द्विषतः निर्मूलय निर्मूलय विद्रावय विद्रावय उत्सादय उत्सादय महाराज्यलक्ष्मीं वितर वितर देहि देहि दापय दापय ख्फ्रें ह्स्फ्रें.. (अमा ?) स्हौः आं क्रीं क्षौं ब्लूं ह्रौं जय जय राक्षसक्षयकारिणि ओं ह्रीं हूं ठः ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

३—ऐं ह्रीं आं क्रों सौः क्लीं महाभोगिराजभूषणे सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि हूंहूंकारनादभूरिदारुणि भगवति हाटकेश्वरि ग्लूं ब्लूं भ्रूं द्रैं श्रीं ऐं फ्रों फ्रें ख्फ्रें मम शत्रून् मारय मारय बन्धय बन्धय मर्दय मर्दय पातय पातय धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय ठ्रीं ध्रीं श्रीं प्रीं ह्रौं आं क्रों ऐं ओं नमः स्वाहा ।

४—ओं ऐं श्रीं ह्रीं हूँ फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें हसखफ्रें स्फ्रें प्रविश संसारं महामाये स्फ्रें फट् ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि विष्णुतनुनिर्दलिनि...(श्रद्धा ?) जम्भिके.. (पेटी ?) स्तम्भिके छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि दह दह मथ मथ पञ्चशवारूढे पञ्चागमप्रिये ग्लूं ब्लूं ध्रौं श्रीं क्लीं स्फ्रें पञ्चपाशुपतास्त्रधारिणि हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

५—ऐं आं ओं नमः परमशिवविपरीताचारकारिणि ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं महाघोरविकरालिनि खण्डार्धशिरोधारिणि भगवत्युग्रे फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रईं हूं ह्रीं हूं फट् स्वाहा ।

६—आं ह्रीं हूं क्लीं श्रीं ऐं ओं जूं सः फ्रें ख्फ्रें क्षज्रीं क्षज्रूं क्षज्रैं क्षज्रौं × (त्र्यस्र) ख्फक्ष्रैं ख्फक्ष्रैं खफछ्रैं खफछ्रैं ह्ग्लैं ह्ग्लैं.........(सास्तम्) वज्रचण्डि महाकापालिनि कपालमालिनि कापालिकाचारप्रवर्तिनि तुरु तुरु धम धम गगनग्रासिनि महामाये महामायाप्रवर्तिनि सर्वैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय सर्वापदं निर्मूलय निर्मूलय क्रों क्रौं जूं सः स्हौः स्हौं हूं फट् स्वाहा ।

७—ऐं ओं ह्रीं क्लीं श्रीं हूं छ्रह्रीं छ्रह्रूं छ्रह्रैं छ्रह्रौं ह्श्रूं ह्श्रैं ह्श्रौं स्ह्ल्क्रीं स्ह्ल्क्रूं स्ह्ल्क्रैं स्ह्ल्क्रौं ज्वालेश्वरि ज्वलज्ज्वलनवासिनि चिताङ्गारहारिणि मृतचेलावृतशरीरे ब्रह्मास्त्रं प्रकटय शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय सर्वान् कामान् पूरय पूरय हूं ह्रीं फट् स्वाहा ।

८—आं ह्रीं क्रों स्हौः फ्रों ग्लूं ब्लौं हूं कुलेश्वरि कौलिकानां सर्वसमयलाभं कुरु द्विषदो जहि जहि नमः स्वाहा ।

९—ओं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं कालेश्वरि सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वजनमनोहरि सर्वजनवशङ्करि सर्वदुष्टनिर्दलिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि बन्दिश्शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् जम्भय जम्भय द्विषान् निर्दलय निर्दलय मोहनास्त्रेण सर्वान् स्तम्भय स्तम्भय द्वेषिणः उच्चाटय उच्चाटय सर्ववश्यं कुरु कुरु शीर्षं देहि देहि कालरात्र्यै कामिन्यै गणेश्वर्यै नमः ।

१०—ओं ओं ओं ऐं ऐं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें भ्रामरि भ्रमराकारधारिणि जय जय जीव जीव स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल भीषणाकारधारिणि भगवति प्रचण्डतरदावानलज्वलितवक्त्रे

हूंहूंकार नादिनि देवेशि खेचरीचक्रवासिनि ख्फ्रीं ख्फ्रूं ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं क्ष्क्लीं क्ष्क्लूं क्लख्फ्रीं क्लख्फ्रूं ह्क्लीं ह्क्लूं क्लक्ष्रीं क्लक्ष्रूं फ्रख्भ्रैं फ्रख्भ्रैं मम शत्रून् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय साम्राज्यं देहि देहि दापय दापय हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

११ ऐं ओं ह्लीं हूं क्लीं स्त्रीं ग्लूं श्रीं फ्रें ख्फ्रें छ्रीं ख्रौं श्मश्मनकापालिनि' खेचरी, सिद्धिदायिनि परापरकुलचक्रनायिके, क्रों क्रौं क्षौं फ्रौं स्फ्रौं त्रिशूलझङ्कारिणि डामर-मुखि वज्रशरीरे रफ्रें रफ्रैं नमः स्वाहा ।

१२—ओं ऐं छ्रीं स्त्रीं ह्लीं फ्रें श्रीं क्लीं ख्फ्रें हूं क्लफ्रीं ह्स्ख्फ्रें ख्फ्रक्ष्रौं ख्फ्रछ्रौं खफ्रह्रौं खफ्रह्लौं भगवति रक्तदन्तिके लेलिहानरसनाभयानके घोरतरदशनचर्चिते ब्रह्माण्डे चण्डयोगेश्वरीशक्तितत्त्वमहिते रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं छ्ररक्षह्लौं, छ्ररक्षह्लौं रक्षफ्रछ्रौं प्रचण्डचण्डिनि महामारीसहायिनि चामुण्डायोगिनीडाकिनीशाकिनी-भैरवीमातृगणमध्यगे जय जय कह कह हस हस प्रहस प्रसह जृम्भ जृम्भ तुरु तुरु धाव धाव श्मशानवासिनि शववाहिनि नरमांसभोजिनि कङ्कालमालिनि रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रूं रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं ह्लक्षफ्लीं नमोनमः स्वाहा ओं हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

१३—ओं सहठ्लक्षह्लमक्रीं नमश्चण्डातिचण्डे शाम्बरि कालवञ्चनि महाङ्कुशे रक्षम्लह्ल-कसछ्म्य्रऊं पातालनागवाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्डनिष्पेषिणि ल्क्षें ल्क्षें ल्क्षें स्वाहा हीं हीं हीं हूं हूं हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

१४—ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें रक्ष्रीं जर्क्रीं र्ह्लीं भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि कल्पान्तकारिणि शिरोनिविष्टवामचरणे दिगम्बरि समय कुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्ष त्राहि त्राहि पालय पालय प्रज्वलद्दावानलज्वालाजटा-लजटिले ..(त्रिगुणं) नमः स्वाहा ।

१५—ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं फ्रें क्लफ्रीं हसखफ्रें हूं ह्रौं क्षौं फ्रौं ग्लूं ब्लौं क्ष्रौं स्हौः स्हौं सौः फ्रीं र्क्ष्रीं र्ज्रीं ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रौं क्लख्फ्रीं ह्लख्फ्रां फ्रम्रग्लऊ क्लक्ष्रीं फ्रख्भ्रीं ह्म्ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रीं ह्सुख्फ्रूं ह्सुख्फ्रक्ष्रैं......(ब्रह्मकपालम्)... (महाकल्पस्था-यिबीजम्) रक्तमुण्डेश्वरि ओं फ्रें सर्वभयप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे सर्वसिद्धि दद दद मृत्युं हर हर मृत्युञ्जयगृहिणि नमः स्वाहा ।

१६—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं आं क्रों स्हौः...(परा ?) ख्रौं ब्लौं ह्लैं महाडाकिन्यै निपीतबालनर-रुधिरायै त्वगस्थिचर्मावेष्टितायै महाश्मशानधावनप्रचलितपिङ्गजटाभारायै क्ष्रौं श्रौं च्रौं फ्रौं ख्रौं ममाभीष्टसिद्धिं देहि देहि वितर वितर हूं फ्रें डाकिनि, काकिनि शाकिनि राकिनि लाकिनि हाकिनि नररुधिरं पिब पिब महामांसं खाद खाद ओं श्रीं ह्लीं क्लीं हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं फट् फट् स्वाहा ।

ओं आं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं ह्सुख्फ्रीं र्क्ष्रां र्क्ष्रीं भगवति महाभोगभासुरे भीमविकरालिनि कालि कापालिनि गुह्यकालि घोररावे विकटदंष्ट्रे सम्मोहिनि शोषिणि करालवदने मदनोन्मादिनि ज्वालामालिनि शिवासने इमं बलिं प्रयच्छामि गृहाण गृहाण खाद खाद मम सिद्धिं कुरु कुरु मम शत्रून् नाशय

नाशय क्लेदय क्लेदय मारय मारय ग्लापय ग्लापय स्तम्भय स्तम्भय उच्चाटय उच्चाटय हन हन विध्वंसय विध्वंसय पिब पिब विद्रावय विद्रावय पच पच छिन्धि छिन्धि शोषय शोषय त्रासय त्रासय त्रुट त्रुट मोहय मोहय उन्मूलय उन्मूलय भस्मीकुरु भस्मीकुरु जृम्भय जृम्भय स्फोटय स्फोटय भक्ष भक्ष विभ्रामय विभ्रामय हर हर विक्षोभय विक्षोभय तुरु तुरु दम दम मर्दय मर्दय पातय पातय सर्वभूतवशङ्करि सर्वजनमनोहारिणि सर्वशत्रुक्षयंकरि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ब्रह्मरूपिणि कालि कापालि महाकापालि खफ्क्ष्रूं खफ्क्ष्रैं ख्फ्ह्लीं रख्फ्ह्लीं रजह्रक्ष्रैं राज्यं मे देहि देहि किलि किलि क्रौं यमघण्टे हिलि हिलि मम सर्वाभीष्टं साधय साधय सहारिणि सम्मोहिनि कुरुकुल्ले किरि किरि हूं हूं फट् फट् स्वाहा इति पदयोर्न्यासः।

इति क्रमन्यासः।

२४—धातुन्यासः [६।४६८-५४१]

ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें मन्त्रमयविग्रहाया: विभूतिगुह्यकाल्याः ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं दक्षिणपादाङ्गुल्यग्राय खफ्रें डाकिन्यै ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा।

ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें मन्त्रमयविग्रहाया विभूतिगुह्यकाल्याः ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं वामपादाङ्गुल्यग्राय···केकराक्ष्यै ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा।

एवंरीत्या सप्तबीजानि मन्त्रविग्रहाया विभूतिगुह्यकाल्याः ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं इत्यादि सर्वत्रैव प्रदाय पुनः ङेविभक्तियुतं शरीराङ्गवाचकपदं यथानिर्दिष्टं देयम्। अथ चैकैकं बीजं तद्बोधकपदस्य च चतुर्थ्येकवचोरूपं दत्वा एकादशाक्षर मन्त्रनिवेशः कर्तव्यः षष्ट्यधिकशतसंख्याकान्यङ्गानि शरीरस्य तावन्ति मन्त्र-निर्माणानि कार्याणि दिक्प्रदर्शनार्थं मन्त्रद्वयमूर्ध्वं प्रदर्शितम्।

इति धातुन्यासः।

२५—तत्त्वन्यासः [६।५४५-५६६]

१—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं पृथिवीतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं क्लीं श्रीं ह्रौं खफ्रें हसफ्रें गुह्यकालि प्रसीद क्षह्म्लव्य्रऊं फट् स्वाहा इति गुल्फयोर्न्यासः।

२—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आपस्तत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं आं फ्रों फ्रौं ग्लूं ग्लौं ······ गुह्यकालि प्रसीद स्हक्षम्लव्य्रऊं फट् स्वाहा इति जङ्घयोर्न्यासः।

३—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं तेजस्तत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ईं ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं ······ गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्लव्य्रऊं फट् स्वाहा इति जान्वोर्न्यासः।

४—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं वायुतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ख्रौं स्हौः सौः जूं सः गुह्यकालि प्रसीद खह्म्लव्य्रईं फट् स्वाहा इति ऊर्वोर्न्यासः।

५—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आकाशतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं प्रीं प्रूं फ्रीं फ्रूं क्षूं गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं फट् स्वाहा इति वंक्षणयोर्न्यासः।

६—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं गन्धतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं स्हौं झम्र्यूं रस्फ्रौं रक्ष्श्रीं रक्ष्छ्रीं गुह्यकालि प्रसीद क्षह्लम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं फट् स्वाहा इति गुह्ये न्यासः।

७—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं रसतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रों ख्फ्रौं गुह्यकालि प्रसीद स्हक्षम्लव्य्रईं फट् स्वाहा इति वस्तौ न्यासः।

८—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं [रूप] चक्षुस्तत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्लव्य्रईं फट् स्वाहा इति नाभौ न्यासः।

९—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं स्पर्शतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं गुह्यकालि प्रसीद खफसहृक्षलव्रूं क्रौं सहकक्ष्क्षह्लमव्य्रऊं फट् स्वाहा इति जठरे न्यासः।

१०—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं शब्दतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रों ह्स्फ्रौं गुह्यकालि प्रसीद सकह्लमक्षखव्रूं फट् स्वाहा इति पार्श्वयोर्न्यासः।

११—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आत्मतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रों रप्रौं गुह्यकालि प्रसीद स्हक्लह्रीं फट् स्वाहा इति हृदये न्यासः।

१२—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं जीवात्मतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद सक्ष्लहमयव्रूं फट् स्वाहा इति स्कन्धौ न्यासः।

१३—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं परमात्मतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रों रफ्रौं गुह्यकालि प्रसीद लगमक्षखफ्रत्र्ह्लूं फट् स्वाहा इति जत्रुणोर्न्यासः।

१४—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं सत्तातत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं गुह्यकालि प्रसीद फग्लसहमक्षव्लूं फट् स्वाहा इति शिरायां न्यासः।

१५—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं विद्यातत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रों रस्त्रौं गुह्यकाली प्रसीद खफध्रव्य्रओं छ्रध्रीं फट् स्वाहा इति हन्वोर्न्यासः।

१६—ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं निवृत्तितत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद मफ्लह्लह्ख्फ्रूं फट् स्वाहा इति कपोलयोर्न्यासः।

१७—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रकृतितत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं स्फ्ह्ल्क्षीं स्फ्ह्ल्क्ष्रूं स्फ्ह्ल्क्षैं स्फ्ह्ल्क्षों स्फ्ह्ल्क्षौं गुह्यकालि प्रसीद भक्लरमह्स्ख्फ्रूं फट् स्वाहा इति सृक्कण्योर्न्यासः।

१८—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं महत्तत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं छ्रर्क्ष्ह्लां छ्ररक्ष्ह्लीं छ्ररक्ष्ह्लूं छ्ररक्ष्ह्लैं छ्ररक्ष्ह्लौं गुह्यकालि प्रसीद क्ष्मलःसहव्यह्लूं फट् स्वाहा इति ओष्ठे न्यासः।

१९—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं अहङ्कारतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं क्षफ्लह्लीं खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं गुह्यकालि प्रसीद म्रयक्ष्क्षसह्फ्रीं फट् स्वाहा इति अधरे न्यासः।

२०—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं पञ्चतन्मात्रातत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं गुह्यकालि प्रसीद ...... फट् स्वाहा इति ऊर्ध्वदन्तेषु न्यासः।

२१—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं भावप्रपञ्चतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद ब्लक्क्षह्मस्त्रछ्रूं फट् स्वाहा इति अधोदन्तेषु न्यासः।

२२—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं अभावप्रपञ्चतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद ख्फ्छ्रएव्रह्क्ष्मक्ष्रयीं फट् स्वाहा इति गण्डयोर्न्यासः।

२३—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं अद्वैततत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं गुह्यकालि प्रसीद स्हक्लरक्षमजह्लखफरयूं फट् स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यासः।

२४—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं वासनातत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रक्ष्फ्रछ्रां रक्ष्फ्रछ्रीं रक्ष्फ्रछ्रूं रक्ष्फ्रछ्रैं रक्ष्फ्रछ्रौं गुह्यकालि प्रसीद शम्लह्लव्य्रखफ्रैं फट् स्वाहा इति नेत्रयोर्न्यासः।

२५—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रज्ञातत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं गुह्यकालि प्रसीद रहक्षम्लव्य्रअखफ्छ्रस्त्रह्लीं फट् स्वाहा इति कर्णयोर्न्यासः।

२६—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रमाणतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रजज्ञक्ष्रां रजज्ञक्ष्रीं रजज्ञक्ष्रूं रजज्ञक्ष्रैं रजज्ञक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद धशङ्लज्ञह्लीं फट् स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यासः।

२७—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं परमार्थतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रह्लां खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं गुह्यकालि प्रसीद ट्फ्रकम्क्षजस्त्रीं फट् स्वाहा इति मणिबन्धयोर्न्यासः।

२८—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आभासतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्ग्लां ह्ग्लीं ह्ग्लूं ह्ग्लैं ह्ग्लौं गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्म्लव्य्रऊं फट् स्वाहा इति कूर्चयोर्न्यासः।

२९—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्री हूं प्रतिबिम्बतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं क्ष्म्र्यां क्ष्म्र्यीं क्ष्म्र्यूं क्ष्म्र्यैं क्ष्म्र्यौं गुह्यकालि प्रसीद क्षह्म्लव्य्रऊं क्षस्ह्म्लव्य्रऊं फट् स्वाहा इति भाले न्यासः।

३० ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं सूक्ष्मतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्लस्त्रां ह्लस्त्रीं ह्लस्त्रूं ह्लस्त्रैं ह्लस्त्रौं गुह्यकालि प्रसीद ईंग्रकंह्मरक्षक्रीं फट् स्वाहा इति शिरसि न्यासः।

३१—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं कैवल्यतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्लछ्रां ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं ह्लछ्रौं गुह्यकालि प्रसीद भ्रूक्ररहक्ष्मव्य्रऊं फट् स्वाहा इति शिखायां न्यासः।

३२—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं चैतन्यतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं ह्लखफ्रौं गुह्यकालि प्रसीद लयक्षकह्स्त्रब्रह्लीं फट् स्वाहा इति बाह्वोर्न्यासः।

३३—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रबोधतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं फ्रम्रग्लीं फ्रम्रग्लूं फ्रम्रग्लैं फ्रम्रग्लौं फ्रम्रग्लौं गुह्यकालि प्रसीद जनह्म्रक्षयह्लीं फट् स्वाहा इति पादयोर्न्यासः।

३४—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आशयतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं फ्रखभ्रां फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रैं फ्रखभ्रौं गुह्यकालि प्रसीद थ्ल्ह्क्षक्ह्लम्रयीं फट् स्वाहा इति सर्वशारीरन्यासः।

३५—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आनन्दतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्स्खफ्रक्ष्म्रां ह्स्ख्फ्रक्ष्म्रीं ह्स्ख्फ्रक्ष्म्रूं ह्स्ख्फ्रक्ष्म्रैं ह्स्खफ्रक्ष्म्रौं गुह्यकालि प्रसीद तत्त्वमसि रत्रों ओं फट् स्वाहा इति व्यापके न्यासः।

३६—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं ब्रह्ममयतत्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रैं खफ्रौं गुह्यकालि प्रसीद सफलक्षयक्लमस्त्रश्रीं फट् स्वाहा इति व्यापके न्यासः।

इति तत्त्वन्यासः।

परिशिष्टम् (६)

लघुषोढान्यासः

उग्रमातृक्रमन्यासः [६।६१६-६५६]

१—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अं आं महाचण्डयोगेश्वरि अङ्गुष्ठाय नमः।

२—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें इं ईं परमप्रचण्डयोगेश्वरी तर्जन्यै स्वाहा।

३—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें उं ऊं नरमुण्डमहामारी योगेश्वरी मध्यमायै वषट्।

४—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें एं ऐं महामाया योगेश्वरी अनामिकायै हूं।

५—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें ओं औं उन्मत्तचण्डोग्रयोगेश्वरी कनिष्ठायै वौषट्।

६—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अं अः कालरात्रियोगेश्वरी करपृष्ठाय फट्। इति करषडङ्गन्यासः।

१—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ एँ ऐ ओ औ अं अः ओं नमः परमशिवतमविपरीताचारमहाभैरवकालनिसूदन कालमुख खाहि खाहि भुङ्क्ष्व भुङ्क्ष्व कालि कालि महाकालि महाकालि हां हां हां हासिनि रह्लीं हं हां ह्रीं हृदयाय नमः।

२—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें कं खं गं घं ङं ओं नमः सदाशिवाय भगवते हां एह्येहि परमात्मने सर्वशत्रुनिसूदनाय [तद्ब्रह्म शिरसे स्वाहा] परमव्योमवासिनि खं ख खं व्योमरूपे सत्ये ध्रुवे गुह्ये⋯ [वाविधानी ?] क्षौं क्ष्रूं ह्रीं ब्रह्मशिरसे स्वाहा।

३—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें चं छं जं झं ञं चण्डकापालिनी हूं हूं हूं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हित्ति हित्ति छित्ति छित्ति भित्ति भित्ति योजय योजय ग्रन्थाग्रं गृह्ण गृह्ण नमः जम्भिते स्तम्भिते मोहिते चर्चिते जम्भय जम्भय परमचण्डे शीघ्रमानय ओं ह्रीं पूं ह्लां ⋯⋯ (लागुड़म्) भगवच्छक्त्यै ह्लूं शिखायै वषट्।

४—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं क्लीं खफ्रें टं ठं डं ढं णं ओं ओं ओं भीमरावे भगवति एह्येहि मातर्देवि तर तर (?) तुरु तुरु प्रस्फुर प्रस्फुर⋯⋯(व्योष) ह्रीं मेघमाले महामारीश्वरि विद्युत्कटाक्षे क्षपितदुरिते अरूपे बहुरूपे विरूपे ज्वलितमुखि चण्डेश्वरि हट्ट हट्ट वज्रायुधधारिणि हन हन हूं डामरमुखि हसफ्रां हसफ्रीं वज्रशरीरे कवचाय हूं।

५—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं ख्फ्रें तं थं दं धं नं वज्रमध्ये फट् फट् फट् ओं हूं हूं फट् महाकिरातचाण्डाले अवतर अवतर आवाहनमुखि····· (मोञ्जवलं) ब्लूं म्लूं वज्रसारमुखे ह्रीं जहि जहि कालि कालि कालविध्वंसिनि हूं ······ (स्तोकम्) ग्ध्रों फट् नेत्रत्रयाय वौषट् ।

६—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें पं फं बं भं मं आगच्छ आगच्छ हूं हूं हूं महाचक्राजेश्वरि तर तर रों लक्षें ज्रैं ज्वल ज्वल महारौद्रे रौपिकानलं पत पन तापय तापय कट्ट कट्ट हट्ट हट्ट घोराचारे महाघोरे वाडवाग्नि ग्रस ग्रस ज्वालय ज्वालय रफ्रैं × (कुलधरम्) × (प्रमीतम्) अस्त्राय फट् ।

७—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें यं रं लं वं शं षं सं हं ळें क्षं ओं महाबलाय नमोरुद्राय हसखफ्रें रह्रीं ह्रीं हूं फट् महाचण्डयोगेश्वरि श्रीपादुकां पूजयामि इति गलाधोनाभिपर्यन्तव्यापकन्यासः ।

८—ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं पं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं इति आब्रह्मरन्ध्रपादान्तव्यापकन्यासः ।

इत्युग्रमातृक्रमन्यासः

कालीकुलक्रमन्यासः [६।६६३-६८२]

(क) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें ओं ख्फ्रें ह्रीं......क्ष्रूं फां क्ष्रूं फीं काली श्री पादुकायै नमः ।

अत्र त्रयोदशतमेन वर्णेन हल्युतस्य स्वरस्यैकस्य सर्वत्र यथायथं ग्रहणमचला मातृकास्थानानि चात्रानुसन्धाय न्यसनीयानि ।

(ख) सर्वशेषे तु चतुर्दशतमबीजतः पूर्वं 'ओं फ्रें खफ्रें' इति बीजत्रयमधिकमभिधेयम् ।

(ग) सर्वाङ्गव्यापकस्य न्यासे विशेषोऽस्ति योऽत्र निर्दिश्यते- ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें ओं फ्रें खफ्रें फां फीं क्ष्रूं अं इत्यारभ्य षोडशस्वराः कं इत्यारभ्य सर्वाणि हल्वर्णानि सानुस्वाराणि निवेशनीयानि पुनश्च 'महागुह्यकाल्यै मात्रे प्रपञ्चरूपायै 'महायोगिनि डाकिनि शबरि श्रीपादुकायै नमः' एतेन वारत्रयं सर्वाङ्गव्यापकं न्यसनीयम् ।

(घ) अथ ६७१ तम श्लोकादारभ्य ६७७ तम श्लोकानामर्थः नैव परिज्ञातः अत एव सुधीभिरत्र विचारणीयम् ।

इति कालीकुलक्रमन्यासः ।

पीठन्यासः [६।६८६-७२०]

(१) ओं ख्फ्रें ह्रीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं अं आं इं सिद्धियोनि महारत्नविणीपीठे सिद्धिकालि महार्चिके परातिपरगुह्यमङ्गले शक्तिश्रीपादुकायै नमः इति भ्रूमध्ये न्यासः ।

(२) ओं खफ्रें ह्रीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं ईं उं ऊं ओड्डियानमहापीठे महाचण्डयोगेश्वरी

कालकालि छिप्पिणि शङ्खिनि मोहिनि गुह्यातिगुह्यपरापरशक्तिश्रीपादुकायै नमः इति वक्त्रमध्ये न्यासः ।

(३) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं ऋं ॠं लृं जालन्धरमहापीठे महाचण्डकापालिनी कालान्तककाली धीवरी गुह्यान्तरान्तरा शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति ललाटे न्यासः ।

(४) ओ ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्री हूं छ्रीं लृं एं ऐं कामरूपमहापीठे महाचण्डराविणी यमान्तककाली फेत्कारिणी असन्धानातिगुह्याचिन्त्या शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति मुखे न्यासः ।

(५) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं ओं औं पूर्णागिरिमहापीठे पुलिन्दी महाचण्डरोषिणी काली कालवञ्चनीपरापरगुह्यातिगुह्य शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति विशुद्धौ न्यासः ।

(६) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं अं अः प्रयागमहापीठे वेश्या ब्रह्मवती महाचण्डदण्डिनि अतिगुह्यरहस्यशक्ति श्रीपादुकायै नमः इत्यनाहतचक्रे न्यासः ।

(७) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं कं खं गं घं ङं वाराणसीमहापीठे रुद्रवती महाचण्डशूलिनी शौण्डिनी गुह्यातिगुह्ययोगिनी शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति मणिपूरचक्रे न्यासः ।

(८) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्री हूं छ्रीं स्त्रीं चं छं जं झं ञं कोलापुरमहापीठे कैवर्ती गुहेशी महाचण्डातिवेगिनी शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति स्वाधिष्ठानचक्रे न्यासः ।

(९) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं टं ठं डं ढं णं अट्टहासमहापीठे खड्गकी नारायणी चक्रिणी गुह्यकालीशक्तिश्रीपादुकायै नमः इति मूलाधारे न्यासः ।

(१०) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं तं थं दं धं नं जयन्तीमहापीठे बन्धकी घोणवती महाचण्डाङ्कुशवती गुह्यातिगुह्यपातालचारिणी शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति कुण्डलिनीचक्रे न्यासः ।

(११) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं पं फं बं भं मं हस्तिनापुरमहापीठे रजकी शक्रवती महाचण्डवज्रिणी अतिगुह्याशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति उरसि न्यासः ।

(१२) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं यं रं लं वं एकाम्रनाथमहापीठे चामुण्डाशिवदूति महाचण्डकर्तरीकुलार्णवचारिणी शक्तिश्रीपादुकायै नमः इति जानुद्वितये न्यासः ।

(१३) ओं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं शं षं सं हं क्षं देवीकोटमहापीठे कोटवी चण्डिका महाचण्डखड्गिनी अतिगुह्ययोगेस्वरीशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति जंघयोर्न्यासः ।

(१४) ऐं ख्फ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं ए ऐं ओं औं करवीर महापीठे चण्डचण्डेश्वरी महागुह्या शक्तिश्रीपादुकायै नमः इति लिङ्गे न्यासः ।

(१५) ऐं ख्फ्रें ह्रीं फ्रें श्रीं कं इत्यारभ्य क्षं यावत् सानुस्वरं पञ्चत्रिंशद्धलं पठित्वा राजगृह महापीठे सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासा कालीकुला महाचण्डयोगेश्वरी परापरपरमरहस्यकालीक्रमशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति व्यापके न्यासः ।

इति पीठन्यासः ।

योगिनीन्यासः [६।७२५-७४७]

(१) ओं खफ्रें ह्लीं डां डीं डूं डम्लव्रीं महाचण्डकालि डाकिनि योगिनि मम त्वग्धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कपालिनि विशुद्धपीठे षोडशशक्त्यै नमः इति विशुद्धचक्रे न्यासः।

(२) ओं खफ्रें ह्लीं रां रीं रूं रम्लव्रीं महाचण्डकालि राकिनि योगिनि ममासृग्धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि अनाहतपीठे द्वादशशक्त्यै नमः इत्यनाहत-चक्रे न्यासः।

(३) ओं खफ्रें ह्लीं लां लीं लूं लम्लव्रीं महाचण्डकालि लाकिनि [योगिनि] मम मांस धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि मणिपूरकपीठे दशशक्त्यै नमः इति नाभौ न्यासः।

(४) ओं खफ्रें ह्लीं कां कीं कूं कम्लव्रीं महाचण्डकालि काकिनी [योगिनि] मम मेदो धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि स्वाधिष्ठान पीठे षट्शक्त्यै नमः इति स्वाधिष्ठाने न्यासः।

(५) ओं खफ्रें ह्लीं सां सीं सूं सम्लव्रीं महाचण्डकालि शाकिनि [योगिनि] ममास्थि-धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि मूलाधार पीठे चतुःशक्त्यै नमः इति मूलाधारे न्यासः।

(६) ओं खफ्रें ह्लीं हां हीं हूं हम्लव्रीं महाचण्डकालि हाकिनि [योगिनि] मम मज्जा-धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि आज्ञापीठे द्विशक्त्यै नमः इत्याज्ञाचक्रे न्यासः।

(७) ओं खफ्रें ह्लीं यां यीं यूं यम्लव्रीं महाचण्डकालि याकिनि [योगिनि] मम शुक्र-धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि व्योमपीठे सर्वशक्त्यै नमः इति ब्रह्म-रन्ध्रे न्यासः।

(८) ओं खफ्रें ह्लीं ऐं क्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अनन्त कोटिकालिकामहासिद्धिचक्रे योगिनीशक्तियुक्तायै गुह्यकाल्यै नमः इति सर्वाङ्गव्यापके न्यासः।

इति योगिनीन्यासः।

दैवतन्यासः [६।७५०-७७५]

(१) ओं खफ्रें ह्लीं भगवते रुद्राय जूं सः परमात्मने नमः इति ललाटे।

(२) ओं खफ्रें ह्लीं औं क्ष्रौं ह्रूं क्षपिततमा······नरसिंहाय जूं सः ज्ञानात्मने नमः इति दृशोः।

(३) ओं खफ्रें ह्लीं ओं ह्लौं वीर्यनिर्जितदिक्चक्राय जूं सः धर्माय नमः इति गण्डयोः।

(४) ओं खफ्रें ह्लीं ठ्रीं क्ष्रौं चण्डतेजसे जूं सः वैराग्याय नमः इति कर्णयोः।

(५) ओं खफ्रें ह्लीं क्ष्रूं स्त्रौं सः अमृतात्मने जूं सः ऐश्वर्याय नमः इति स्कन्धयोः।

(६) ओं खफ्रें ह्रीं ओं छ्रीं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल गीर्वाणमुखाय जूं सः अधर्माय नमः इति बाह्वोः ।

(७) ओ खफ्रें ह्रीं ह्लां फ्रम्लग्लैं ज्वालामालिने वज्रमहाबलाय जूं सः अज्ञानाय नमः इति करांङ्गुलिषु ।

(८) ओं लां ब्रह्मणे जूं सः इति वक्षसि ।

(९) ओं वां अं विष्णवे जूं सः इति जंघायाम् ।

(१०) ओं हां रां रुद्राय जूं सः इति पादयोः ।

(११) ओं यां ईश्वराय जूं सः इति पादाङ्गुलीषु ।

(१२) ओं फां सदाशिवाय जूं सः इत्यनाहतचक्रे ।

(१३) ओं शां आत्मज्ञानाय जूं सः इति तालुनि ।

(१४) ओं क्षां परज्ञानाय जूं सः इति बिन्दौ ।

(१५) ओं ह्लां अघोराय जूं सः इति अर्धचन्द्रे ।

(१६) ओं चैं घोराय जूं सः इति नादे ।

(१७) ओं ह्रौं घोररूपाय जूं सः इति निरोधिकायाम् ।

(१८) ओं हूं भैरवाय जूं सः इति व्यापिन्याम् ।

(१९) ओं ह्रौं वीरभद्राय जूं सः इति रसनायाम् ।

(२०) ओं स्हौः शरभवनाय जूं सः इति कुलकूले ।

(२१) ओं स्हौः वलप्रमथनाय जूं सः इति मनोन्मन्याम् ।

(२२) ओं स्हौः प्रचण्डदण्डाय जूं सः इति उन्मन्याम् ।

(२३) ओं स्हौः परमात्मने जूं सः इति शाम्भवान्तिमे ।

(२४) ओं स्हौः वाक्पतये जूं सः इति षोडशान्ते ।

(२५) ओं स्हौः भूतलपातालवासिभ्यः जूं सः इति सूक्ष्मान्ते ।

(२६) ओं स्हौः प्रचण्डभैरवाय जूं सः इति परान्ते ।

(२७) ओं स्हौः सर्वात्मने नमो रुद्राय जूं सः इति कूले ।

(२८) ओं खफ्रें ह्रीं ओं प्रचण्डचण्डाय महाघोराय भैरवाय मर्दय मर्दय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल खफ्रें क्षह्रम्लव्य्रऊं श्लौं हूं फें कालनाशक मां रक्ष रक्ष नमो महाप्रचण्डाय भैरवाय इति सर्वव्यापकन्यासः ।

इति दैवतन्यासः ।

मन्त्रक्रमन्यासः [६।७७९-८२३]

(१) ओं खफ्रें ह्रीं स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि ठ्रीं ध्रीं थ्रीं द्वीपिवक्त्राय नमः इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२) ओं खफ्रें ह्रीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) ओं छ्रीं हूं स्त्रीं × [मर्मरि] फें सिंहवक्त्राय नमः इति ललाटे न्यासः ।

(३) ओं खफ्रें ह्रीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) रह्रीं फट् फट् फट् फेरु वक्त्राय नमः इति दक्षनेत्रे न्यासः ।

(४) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) ओं हूं × (बान्धवः) रह्लीं ह्स्त्रां हूं फें फट् कपिवक्त्राय नमः इति वामनेत्रे न्यासः।

(५) ओं खफ्रें ह्लीं स्त्रीं (महाचण्डयोगेश्वरि) × (बान्धवः) × (माण्डिल्य-बीजम्) क्षीं सैं हूं × (दिव्यभालः) फें फट् हूं हूं हूं फट् फट् फट् ऋक्ष-वक्त्राय नमः इति दक्षकर्णे न्यासः।

(६) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) ज्रौं जरक्षीं (?) श्लौं खफ्रक्ष्रूं भ्रीं हूं हूं हूं फट् फट् फट् नरवक्त्राय नमः इति वामकर्णे न्यासः।

(७) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) छ्रीं ब्लौं ग्लूं रक्ष्रीं जरक्षीं स्फ्रौं फें हूं हूं हूं फट् फट् फट् गरुडवक्त्राय नमः इति दक्षकपोले न्यासः।

(८) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) फ्रें हसखफ्रीं क्षरह्लूं हसफ्रें ह्लैं खफ्रीं-फें फट् हूं हूं हूं फट् फट् फट् मकरवक्त्राय नमः इति वामकपोले न्यासः।

(९) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) स्हौः क्षम्लीं ह्लां क्रीं श्लीं ग्लां गज-वक्त्राय नमः इति हृदये न्यासः।

(१०) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) श्लीं क्लीं ह्लीं रग्रें ग्लीं × (फनकम् ?) × (दिव्यभालः) ज्रौं फें हूं हूं हूं फट् फट् फट् हयवक्त्राय नमः इति शिरसि न्यासः।

(११) ओं खफ्रें ह्लीं नमश्चामुण्डे करङ्कमालिनि करङ्कमालाधारिणि भगवति फां फ्रीं फ्रूं चण्डकापालिन्यै महाकालिकायै नमः इति मूलाधारे न्यासः।

(१२) ओं खफ्रें ह्लीं ह्लूं फट् महाचण्डभैरवि खफ्रीं रफ्रें फट् रसखय्रमूं रक्ष्रीं रफ्रां टं रक्ष्रीं खमह्लीं रक्ष्रीं (चण्डकापालिन्यै महाकालिकायै नमः) इति स्वाधिष्ठाने न्यासः।

(१३) ओं खफ्रें ह्लों ओं ह्लीं क्ष्रीं य्रीं ल्रीं फ्री क्रीं हूं फट् (चण्डकापालिन्यै महा-कालिकायै नमः) इति मणिपूरे न्यासः।

(१४) ओं खफ्रें ह्लीं रक्षभ्रम्लऊं क्रीं ह्ली क्रीं ठ्रीं फ्रीं थ्रीं ध्रीं फट् (चण्डकापालिन्यै महाकालिकायै नमः) इति अनाहते न्यासः।

(१५) ओं खफ्रें ह्लीं क्लूं व्रीं म्रीं जरक्षीं रक्ष्रीं य्रां ब्रां स्रां ह्रां कालिकायै नमः इति विशुद्धिचक्रे न्यासः।

(१६) ओं खफ्रें ह्लीं जरक्षीं यममुखि यमहस्ते रह्लीं रफ्रीं रक्षीं फट् फट् फट् इति आज्ञाचक्रे न्यासः।

(१७) पुनर्भारतीमन्त्रस्य विहितेन षडङ्गेनात्रापि षडङ्गं संपादनीयम्।

(१८) ओं फ्रें सिद्धिकरालि दक्षिणवक्त्राय नमः इति दक्षिणभागे न्यासः।

(१९) ह्लीं हूं छ्रीं वामवक्त्राय नमः इति वामभागे न्यासः।

(२०) स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा मध्यमवक्त्राय नमः इति मध्यभागे न्यासः।

मूलमन्त्रस्यैकैकमक्षरमादाय फ्रेंबीजेन संपुटितं कृत्वा अङ्गानामधोनिर्दिष्टानां 'स्थानपादुकां पूजयामि' इत्यनेनान्वितं विधाय न्यासः करणीयः—

शिरः, हृदयं, नाभिः, दक्षिणनेत्रं, वामनेत्रं, वामनासापुटं, दक्षनासापुटं, वामकर्णः, दक्षकर्णः, लिङ्गं, गुह्यं, भ्रूमध्यम्, ब्रह्मरन्ध्रम्, शिरः, मस्तकात्-पादान्तम्, पादान्मस्तकान्तम् ।

ओं श्रीं फें क्षग्लीं रफै हूं नमः स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

ओं खफ्रें ह्लीं ऐं खफ्रें ह्लीं श्रीं खफ्रें ह्लः अं रछ्रें रत्रां फट् खफ्रें हूं सिद्धि-करालि ओं फ्रें सः स्वाहा ह्लीः महाचण्डयोगेश्वरि श्रीपादुकायै नमः इति सर्वाङ्गव्यापकन्यासः ।

इति मन्त्रक्रमन्यासः ।

लघुषोढासमाप्तौ बलिद्वयदानमन्त्रौ [६।८२७-८५१]

ह्लीं श्रीं सर्वपीठे चक्रयोगेश्वरीं चन्द्रपीठे व्योमकाली सिद्धिपीठे मातङ्गिनी योगपीठे भीमकाली कामरूपपीठे सिद्धिकाली पूर्णगिरिपीठे चण्डकाली ओड्डियानपीठे रक्तकाली फ्रें स्हौः सौः सर्वसमयलाभं कुरु कुरु सुसिद्धिं प्रसर प्रसर प्रसारय प्रसारय हैं हैं सः सः खः खः खाहि खाहि क्रीं क्रीं ह्लीं ह्लीं ह्लूं ह्लूं वाहि वाहि काहि काहि खाहि खाहि यूं हूं लां खां लां छां हूं हां रस्फ्रों ह्लीं श्रीं हूं सौः ह्लीः हं हूं हूं ह्लैं हूं फट् नमः स्वाहा इति प्रथम बलिदानमन्त्रः ।

ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें क्षरहम्लव्य्रईऊं रूं क्ष्रीं जरक्रीं रह्लीं स्हौः ब्लूं क्रों ट्रीं ध्रीं श्रीं फट् फट् फट् एहि एहि भगवति गुह्यकालि सकलपरापरकुलचक्रमन्त्रयन्त्रमयदेहे समांसरक्तबलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय भक्ष भक्ष भक्षय भक्षय खाद खाद खाहि खाहि प्रत्यक्षं परोक्षं द्वेषिणो मम शत्रून् दह दह मर्दय मर्दय पातय पातय मूर्च्छय मूर्च्छय त्रासय त्रासय शोषय शोषय स्वखर्परे स्थापय स्थापय दीर्घदंष्ट्रया भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि फट् फट् फट् आं ईं ऊं ऐं औं मम राज्यं देहि देहि दापय दापय पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायुःस्त्रीवाजिगजरत्नसौभाग्यारोग्यसमृद्ध्या मां पूरय पूरय वर्ष वर्ष वर्षापय वर्षापय ओं ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फट् फट् फट् नमोनमः स्वाहा इति द्वितीयबलिदानमन्त्रः ।

महाषोढान्यासः

१—तीर्थशिवलिङ्गन्यासः [६।९०८-९६८]

ओमस्य तीर्थ शिवलिङ्गन्यासस्य गौतमऋषिरनुष्टुप्छन्दः महातीर्थशिवलिङ्गे देवते ओं बीजं ह्लीं शक्तिः ऐं कीलकम् आं तत्वम् तीर्थन्यासे जपे विनियोगः ।

१—ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं क्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हसफ्रें हसखफ्रें प्रयागतीर्थे महेश्वरशिव लिङ्गसहितायै ललितादेविशक्तिरूपिण्यै नवकोटिकुलाकुलकेश्वर्यै सकलगुह्यानन्त-तत्त्वधारिण्यै गुह्यकाल्यै ग्लूं ब्लूं क्ष्रूं ज्लूं स्हौः अं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

अपरत्र परिवर्तनीयांशमात्रं निर्दिश्यते शेषं पूर्ववज्ज्ञेयमथ च न्यासस्थानं मातृकान्यासवद्बोध्यम् फट् इत्यतः पूर्वं यथाक्रमं मातृकाया एकस्याः सानुस्वारायाः निवेशः कार्यः।

(२) नैमिषारण्यतीर्थे देवदेवशिवलिङ्गसहितायै लिङ्गधारिणी देविशक्तिरूपिण्यै।
(३) शूकरक्षेत्रतीर्थे भारभूतेश्वरशिवलिङ्गसहितायै वेगवती देविशक्तिरूपिण्यै।
(४) एकाम्बरतीर्थे कृत्तिवासेश्वरशिवलिङ्गसहितायै मातङ्गी देविशक्तिरूपिण्यै।
(५) बदरिकाश्रमतीर्थे त्रिलोचनशिवलिङ्गसहितायै वेदवतीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(६) कुरुक्षेत्रतीर्थे स्थाणुशिवलिङ्गसहितायै भवानीदेवि शक्तिरूपिण्यै।
(७) प्रभासतीर्थे सोमनाथशिवलिङ्गससहितायै राजराजेश्वरी देविशक्तिरूपिण्यै।
(८) अमरकण्टकतीर्थे ओङ्कारेश्वरशिवलिङ्गसहितायै निगमबोधिनीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(९) पुष्करतीर्थे अयोगन्धेश्वर शिवलिङ्गसहितायै पुरुहूतादेविशक्तिरूपिण्यै।
(१०) गयातीर्थे पितामहशिवलिङ्गसहितायै हरप्रियादेवि शक्तिरूपिण्यै।
(११) वाराणसीतीर्थे महादेवशिवलिङ्गसहितायै विशालाक्षी देविशक्तिरूपिण्यै।
(१२) अयोध्यातीर्थे चन्द्रशेखरशिवलिङ्गसहितायै मोहिनी देविशक्तिरूपिण्यै।
(१३) मथुरातीर्थे भूतेश्वरशिवलिङ्गसहितायै पार्वतीदेवि शक्तिरूपिण्यै।
(१४) मायापुरतीर्थे महालिङ्गेश्वरशिवलिङ्गसहितायै रक्ताम्बरादेविशक्तिरूपिण्यै।
(१५) शिवकाञ्चीतीर्थे व्योमकेशशिवलिङ्गसहितायै भङ्कारिणीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(१६) उज्जयिनीतीर्थे महाकालशिवलिङ्गसहितायै भोगवतीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(१७) द्वारकातीर्थे पिनाकीश्वरशिवलिङ्गसहितायै अश्वारूढादेविशक्तिरूपिण्यै।
(१८) पुरुषोत्तमतीर्थे विल्वकेश्वरशिवलिङ्गसहितायै विल्वपत्रिकादेविशक्तिरूपिण्यै।
(१९) मरुत्कोटितीर्थे कमलेश्वरशिवलिङ्गसहितायै कमलादेविशक्तिरूपिण्यै।
(२०) अट्टहासतीर्थे नीललोहितशिवलिङ्गसहितायै कुन्ददादेविशक्तिरूपिण्यै।
(२१) शङ्कुकर्णतीर्थे एकाम्रनाथशिवलिङ्गसहितायै कीर्तिमती देविशक्तिरूपिण्यै।
(२२) रुद्रकोटितीर्थे जम्बुकेश्वरशिवलिङ्गसहितायै .. . देविशक्तिरूपिण्यै।
(२३) छगलाण्डतीर्थे जटीश्वर शिवलिङ्गसहितायै वज्रप्रस्तारिणी देविशक्तिरूपिण्यै।
(२४) आम्रातकतीर्थे अमरेश्वरशिवलिङ्गसहितायै भद्रकर्णिका देविशक्तिरूपिण्यै।
(२५) अरुणाचलतीर्थे महोत्कटशिवलिङ्गसहितायै हसन्ती देविशक्तिरूपिण्यै।
(२६) वृन्दावनतीर्थे अट्टहासशिवलिङ्गसहितायै सरस्वती देविशक्तिरूपिण्यै।
(२७) भद्रकर्णह्रदतीर्थे महातेजाशिवलिङ्गसहितायै भद्रावतीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(२८) हरिश्चन्द्रतीर्थे महायोगशिवलिङ्गसहितायै प्राणप्रदादेविशक्तिरूपिण्यै।
(२९) मध्यमेश्वरतीर्थे कपर्दीश्वरशिवलिङ्गसहितायै सिद्धिदायिनीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(३०) वस्त्रापथतीर्थे सूक्ष्मेश्वरशिवलिङ्गसहितायै रुद्राणीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(३१) कनखलतीर्थे सर्वज्ञेश्वशिवलिङ्गसहितायै ओजस्विनीदेविशक्तिरूपिण्यै।
(३२) देवदारुवनतीर्थे गोपीश्वरशिवलिङ्गसहितायै विद्येश्वरी देविशक्तिरूपिण्यै।
(३३) नेपालतीर्थे शिवशिवलिङ्गसहितायै भीमादेवि शक्तिरूपिण्यै।

(३४) कर्णिकारतीर्थे हरशिवलिङ्गसहितायै राधादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(३५) त्रिसन्ध्यातीर्थे शर्वशिवलिङ्गसहितायै शान्तादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(३६) ......तीर्थे भवशिवलिङ्गसहितायै जयमङ्गलादेविशक्तिरूपिण्यै ।
(३७) ......तीर्थे उग्रेस्वरशिवलिङ्गसहितायै शर्वाणी देविशक्तिरूपिण्यै ।
(३८) ......तीर्थे दण्डोश्वरशिवलिङ्गसहितायै शिवा देवि शक्तिरूपिण्यै ।
(३९) ......तीर्थे पशुपतिशिवलिङ्गसहितायै चण्डवती देविशक्तिरूपिण्यै ।
(४०) ......तीर्थे गणाध्यक्षशिवलिङ्गसहितायै सावित्रीदेविशक्तिरूपिण्यै ।
(४१) ......तीर्थे ताम्रकेश्वरशिवलिङ्गसहितायै गुह्येश्वरी देविशक्तिरूपिण्यै ।
(४२) ......तीर्थे मणिमहेशशिवलिङ्गसहितायै कल्याणीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(४३) कुलूततीर्थे घुसृणेश्वरशिवलिङ्गसहितायै पद्मावती देविशक्तिरूपिण्यै ।
(४४) शिवालयतीर्थे वामदेवशिवलिङ्गसहितायै शाकम्भरीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(४५) पृथूदकतीर्थे लगुडीश्वरशिवलिङ्गसहितायै सिद्धेश्वरी देविशक्तिरूपिण्यै ।
(४६) कायावतारतीर्थे कपिलेश्वरशिवलिङ्गसहितायै तेजोवतीदेविशक्तिरूपिण्यै ।
(४७) करवीरतीर्थे श्रीकण्ठशिवलिङ्गसहितायै विजया देविशक्तिरूपिण्यै ।
(४८) मण्डलेश्वरतीर्थे......शिवलिङ्गसहितायै प्रभावती देविशक्तिरूपिण्यै ।
(४९) हर्षपथतीर्थे हर्षितेश्वरशिवलिङ्गसहितायै नारायणी [प्रमोदनी] देविशक्तिरूपिण्यै ।
(५०) अलकापुरतीर्थे प्रहासेश्वरशिवलिङ्गसहितायै मायामयीदेविशक्तिरूपिण्यै ।
(५१) बड़वामुखतीर्थे अनलेश्वरशिवलिङ्गसहितायै मेधादेविशक्तिरूपिण्यै ।

२—पर्वतनरसिंहन्यासः [६।६८७-१०५६]

(१) औं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रौं ठ्रीं चैं श्रीं प्रीं रह्लीं जरक्रीं रक्ष्रीं रब्रीं रफ्रीं [?] क्षह्म्लव्य्रऊं हिमालयपर्वते ज्वालामालीनरसिंहसहितायै विद्युत्केशी शक्तिस्वरूपायै चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिण्यै प्रज्वलज्वलनलोचनायै वज्रनखदंष्ट्रायुधायै दुर्निरीक्ष्याकारायै भगवत्यै गुह्यकाल्यै खफ्रें हसखफ्रीं ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं ह्लीं रहक्षमलवरयईऊं श्रीं ओं ह्लीं हसखफ्रें खफ्रें द्रैं जूं श्लीं क्रूं [?] × (सन्दीपनी बीजम्) खं खं खं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

अन्यथाग्रे सर्वत्र सर्वं पूर्ववत् बोध्यम्, केवलं पर्वतइत्यतः पूर्वं नरसिंह इत्यतः पूर्वं शक्तिपदतश्च पूर्वं परिवर्तनमपेक्षितं तन्मात्रस्यात्र निर्देशो विधीयते ।

(२) ......गन्धमादनपर्वते कराल नरसिंह......कालरात्रिशक्ति......
(३) ......भद्राश्वपर्वते भीमनरसिंह......उल्कामुखशक्ति......
(४) ......केतुमालपर्वते अपराजितनरसिंह ......पिङ्गजटाशक्ति......
(५) ......सुमेरुपर्वते क्षोभणनरसिंह......कुण्डोदरीशक्ति......
(६) ......विन्ध्यपर्वते सृष्टिनरसिंह ......प्रेतासनाशक्ति......
(७) ......निषधपर्वते स्थितिनरसिंह ......कपालकुण्डलाशक्ति......

(८) ······हेमकूटपर्वते कल्पान्तनरसिंह······चण्डचामुण्डाशक्ति······
(९) ······पारिपात्रपर्वते अनन्तनरसिंह······धूमावतीशक्ति······
(१०) ······कैलासपर्वते विरूप नरसिंह······शुष्कोदरीशक्ति······
(११) ······उदयपर्वते वज्रायुध नरसिंह······ज्वालाकुलाशक्ति······
(१२) ······अस्तपर्वते परापर नरसिंह······अञ्जनप्रभाशक्ति······
(१३) ······माल्यवन्तपर्वते प्रध्वंसन नरसिंह······वज्रवाराहीशक्ति······
(१४) ······सह्यपर्वते विश्वमर्दन नरसिंह······कालमर्दिनीशक्ति······
(१५) ······मलयपर्वते उग्र नरसिंह······नागहारिणीशक्ति······
(१६) ······दर्दुरपर्वते भद्र नरसिंह······घोरनादाशक्ति······
(१७) ······ऋष्यमूकपर्वते मृत्यु नरसिंह······करालिनीशक्ति······
(१८) ······शुक्तिमन्तपर्वते सहस्रभुज नरसिंह······मुण्डचर्चिकाशक्ति······
(१९) ······महेन्द्रपर्वते विद्युज्जिह्व नरसिंह······श्मशानचारिणीशक्ति······
(२०) ······अर्बुदपर्वते घोरदंष्ट्र नरसिंह······शववाहिनीशक्ति······
(२१) ······द्रोणपर्वते महाकालाग्नि नरसिंह······रक्तपायिनीशक्ति······
(२२) ······रैवतपर्वते मेघनाद नरसिंह······चण्डघण्टाशक्ति······
(२३) ······क्रौञ्चपर्वते विकट नरसिंह······अट्टाट्टहासिनीशक्ति······
(२४) ······चित्रकूटपर्वते पिङ्गसट नरसिंह······कङ्कालिनीशक्ति······
(२५) ······काश्मीरपर्वते प्रदीप्त नरसिंह······भूतोन्मादिनीशक्ति······
(२६) ······कालञ्जरपर्वते विश्वरूप नरसिंह······पिशाचिनीशक्ति······
(२७) ······श्रीशैलपर्वते विद्युद्दशन नरसिंह······विकटदंष्ट्राशक्ति······
(२८) ······मैनाकपर्वते विदार नरसिंह······मेघमालाशक्ति······
(२९) ······मुञ्जगिरिपर्वते विक्रम नरसिंह······पूतितुण्डाशक्ति······
(३०) ······गोमन्थपर्वते प्रवण नरसिंह······भारुण्डरुण्डाशक्ति······
(३१) ······त्रिकूटपर्वते सर्वतोमुख नरसिंह······फेत्कारिणीशक्ति······
(३२) ······सुबलपर्वते वज्र नरसिंह······पिचिण्डनासाशक्ति······
(३३) ······सैन्धवपर्वते दिव्य नरसिंह······हूं हूं कारनादिनीशक्ति······
(३४) ······कलिन्दपर्वते भोगनरसिंह······कोलाननाशक्ति······
(३५) ······रविभापर्वते मोक्ष नरसिंह······निरञ्जनाशक्ति······
(३६) ······लोकालोकपर्वते लक्ष्मी नरसिंह······भ्रमराम्बिकाशक्ति······
(३७) ······मन्दरपर्वते विद्रावण नरसिंह······मूलताटङ्किनीशक्ति······
(३८) ······केदारपर्वते कालचक्र नरसिंह······शूलचण्डिकाशक्ति······
(३९) ······नीलाचलपर्वते कृतान्त नरसिंह······कटंकटाशक्ति······
(४०) ······अञ्जनपर्वते तप्तहाटक नरसिंह······कुक्कुटीशक्ति,······
(४१) ······वराहपर्वते भ्रामक नरसिंह······पुक्कसीशक्ति······
(४२) ······चैत्ररथपर्वते रौद्र नरसिंह······विश्वभञ्जिकाशक्ति······
(४३) ······कर्णिकारपर्वते विश्वान्तक नरसिंह······शङ्खनीशक्ति······

(४४)……मन्दारपर्वते भयङ्कर नरसिंह……नीलाम्बराशक्ति……
(४५)……कोकामुन्नपर्वते प्रतप्त नरसिंह……कालसङ्कर्षिणीशक्ति……
(४६)……कोलागिरिपर्वते विजय नरसिंह……कुणपभोजिनीशक्ति……
(४७)……तुषारपर्वते तेजोमय नरसिंह……दैत्यविध्वंसिनीशक्ति……
(४८)……वाटधानपर्वते ज्वालाजटाल नरसिंह……विदारिसृक्किणीशक्ति……
(४९)……नीचगिरिपर्वते खरनखर नरसिंह……क्षेत्रपालिनीशक्ति……
(५०)……गोवर्धनपर्वते नाददारुण नरसिंह……कुलकुट्टनीशक्ति……
(५१)……हरिश्चन्द्रपर्वते निर्वाण नरसिंह……आनन्ददायिनीशक्ति……

न्यासस्थलानि मातृकान्यासवदूह्यानि

इति पर्वतनरसिंहन्यासः

३—षोढान्यासान्तर्गतः नद्यृषिन्यासः।

(१) आं ईं ऊं ऐं औं क्लीं स्हौः फ्रों क्रों जूं ञ्रों ञ्रों ञ्रों फट् फट् फट् यमुनानदीतीरे मरीच्युपासितायै कामदानामधारिण्यै भगवत्यै गुह्यकाल्यै लेलिहानरसना भयानकायै विकटदंष्ट्राकरात्यै महाचण्डयोगेश्वर्यै शक्तितत्त्वसहितायै श्रीं ह्लीं रह्लीं हसख्फ्रीं क्षरहम्लव्य्रईऊं खफ्रें जरक्रीं भ्रमरयूं रक्ष्रीं स्त्रीं छ्रीं छ्रीं गुह्यकालि फट् यां जूं लं वैं शौं षं सः हलक्ष्ूं नमः स्वाहा।

अन्यत्राग्रे सर्वत्र सर्वं पूर्ववत् केवलं नदीपदतः उपासितापदतः नाम पदतश्च पूर्वं परिवर्तनीयमस्ति तन्मात्रस्याधस्तात् विधीयते निर्देशः—

(२) ……सरस्वती नदीतीरे अत्र्युपासितायै महाविद्यानाम धारिण्यै……
(३) ……विपाशा नदीतीरे अङ्गिरसोपासितायै गौरीनाम धारिण्यै……
(४) ……ऐरावती नदीतीरे पुलस्त्योपासितायै कामाख्यानाम धारिण्यै……
(५) ……चन्द्रभागा नदीतीरे पुलहोपासितायै माहेश्वरीनाम धारिण्यै……
(६) ……वितस्ता नदीतीरे क्रतूपासितायै विश्वरूपानाम धारिण्यै……
(७) ……देविका नदीतीरे वसिष्ठोपासितायै तपस्विनीनाम धारिण्यै……
(८) ……गोमती नदीतीरे भृगूपासितायै पुण्यप्रदानाम धारिण्यै……
(९) ……नर्मदा नदीतीरे भारद्वाजोपासितायै विन्ध्यवासिनी नाम……
(१०) ……सिप्रा नदीतीरे कर्दमोपासितायै महामायानाम……
(११) ……कृष्णवेणी नदीतीरे कपिलो पासितायै शिवशक्तिनाम……
(१२) ……तुङ्गभद्रा नदीतीरे दुर्वासः उपासितायै क्षेमङ्करीनाम……
(१३) ……कावेरी नदीतीरे दत्तात्रेयोपासितायै भवहारिणीनाम……
(१४) ……गोदावरी नदीतीरे अगस्त्योपासितायै सूक्ष्मानाम……
(१५) ……तापी नदीतीरे पराशरोपासितायै पद्मावतीनाम……
(१६) ……पयोष्णी नदीतीरे व्यासोपासितायै कुलेश्वरीनाम……
(१७)……भीमरथी नदीतीरे विश्वामित्रोपासितायै कौशिकीनाम……
(१८) ……बाहुदा नदीतीरे गर्गोपासितायै महोदयानाम……

(१९) ...... करतोया नदीतीरे गौतमोपासितायै विमलानाम......
(२०) ......गण्डकी नदीतीरे शाण्डिल्योपासितायै पद्मासनानाम......
(२१) ......सरयू नदीतीरे असितोपासितायै प्रियङ्करीनाम......
(२२) ......कौशिकी नदीतीरे देवलोपासितायै सर्वाश्रयानाम......
(२३) ......शरावती नदीतीरे शातातपोपासितायै गुणानन्दानाम्......
(२४) ......इरावती नदीतीरे कात्यायनोपासितायै कलातीतानाम......
(२५) ......उत्पलिनी नदीतीरे आपस्तम्बोपासितायै नादरूपिणी नाम......
(२६) ......सभङ्गा नदीतीरे शङ्खलिखितोपासितायै नारायणी नाम ...
(२७) ......वेत्रवती नदीतीरे हारीतोपासितायै तापसी नाम......
(२८) ......तमसा नदीतीरे जमदग्न्युपासितायै वेदमाता नाम......
(२९) ......चर्मण्वती नदीतीरे ऋचीकोपासितायै ज्ञानवेद्या नाम......
(३०) ...... धूतपापा नदीतीरे च्यवनोपासितायै भवतारिणी नाम......
(३१) ......सुवर्णरेखा नदीतीरे पैठीनस्युपासितायै मुदिता नाम......
(३२) ...... विरजा नदीतीरे उद्दालकोपासितायै नन्दिनी नाम......
(३३) .. निर्विन्ध्या नदीतीरे श्वेतकेतूपासितायै हरप्रिया नाम......
(३४) ...... महानदी नदीतीरे दधीच्युपासितायै कुण्डलिनी नाम ......
(३५) .... मुरला नदीतीरे जैमिन्युपासितायै दयावती नाम......
(३६) ......ज्योतीरसा नदीतीरे वैशम्पायनोपासितायै शाङ्करी नाम......
(३७) ...... पारावती नदीतीरे वामदेवोपासितायै अद्वैता नाम......
(३८) ... ..वाग्मती नदीतीरे गालवोपासितायै नैगमी नाम......
(३९) ......मलप्रहारिणी नदीतीरे सम्वर्तोपासितायै श्रुतिबोधिता नाम......
(४०) ...... वरुणा नदीतीरे पर्शुरामोपासितायै शाम्भवी नाम......
(४१) ......मन्दाकिनी नदीतीरे जाबालोपासितायै परापरा नाम......
(४२) .. ...भोगवती नदीतीरे शरभङ्गोपासितायै भोगवती नाम......
(४३) .. ...शोणनदीतीरे बाल्मीक्युपासितायै नित्यानन्दा नाम ...
(४४) ......शतद्रु नदीतीरे नारदोपासितायै तुरीया नाम......
(४५) ... ..हिरण्याक्षनदीतीरे कश्यपोपसितायै वागगोचरा नाम......
(४६) ......सिन्धुनदीतीरे अथर्वोपासितायै मोक्षदा नाम......
(४७) ......घर्घर नदीतीरे मार्कण्डेयोपासितायै भोगविद्या नाम......
(४८) ......कोक नदीतीरे लोमशोपासितायै निर्लेपा नाम......
(४९) ......लौहित्य नदीतीरे और्वोपासितायै निरिन्धनी नाम......
(५०) ......अलकनन्दा नदीतीरे उत्तङ्कोपासितायै मानसी नाम......
(५१) ... गङ्गा नदीतीरे याज्ञवल्क्योपासितायै सर्वज्ञा नाम......

इति नद्यृषिन्यासः ।

४—षोढान्यासान्तर्गतः अस्त्रभैरवन्यासः ।

(१) क्षह्लम्लव्याऊं जरक्रीं चरक्ष्लह्मह्लूं क्षरह्लीं मक्ष्लह्मयव्रूं फ्रें क्ष्लह्लसक्रूंई खफ्रें ह्ललक्षकमव्रूं हूसफ्रें क्लक्षह्लव्रमयऊं हूसखफ्रें तफरक्षंम्लह्लौं क्षरह्लूं जलहक्ष-छपय्रहूसखफ्रीं × [चाकोर बीजं ?] ह्लमक्षव्रलखफ्रऊं × [आघोषणा बीजम् ?] खफलक्षंह्लमहकव्रूं × [खटी बीजम् ?] रक्षलह्लमंसहकव्रूं हसंखफ्रूं ब्राह्मास्त्रेण विद्युज्जिह्वासुरघातिन्यै क्रोधभैरवसुरतरसलोलुपायै भैरवीरूपायै गुह्य-काल्यै ह्लीं श्रीं ओं खफ्रें हूसखफ्रें रहक्षमलवरयूं रक्ष्रीं जरक्रीं स्त्रीं छ्रीं हूं खफ्रें ठ्रीं ध्रीं नमः श्मशानवासिन्यै ह्लीं ह्लीं छ्रीं छ्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं फ्रें फ्रें फट् फट् फट् नमः नमः नमः स्वाहा स्वाहा स्वाहा ।

अग्रे सर्वत्र समानम्, केवलमस्त्रविशेषणम्, असुरनाम-भैरवनाम च परिवर्तनीयं वर्तते । अतएव तन्मात्रस्य निर्देशोऽधस्ताद् विधीयते—

(२) नारायणास्त्रेण मुण्डासुर ……श्मशानभैरव ……
(३) प्राजापत्यास्त्रेण रुर्वसुर …… कापालीभैरव ……
(४) ऐन्द्रास्त्रेण खट्वाङ्गासुर……कालभैरव ……
(५) वैष्णवास्त्रेण अञ्जनासुर……कालान्तकभैरव ……
(६) कम्पनास्त्रेण दुर्गासुर…… रुरुभैरव ……
(७) वायव्यास्त्रेण विप्रचित्तासुर …… महाघोरभैरव……
(८) वारुणास्त्रेण महिषासुर ……घोरतरभैरव……
(९) याम्यास्त्रेण कपोतरोमासुर ……संहारभैरव……
(१०) कालास्त्रेण मतङ्गासुर……चण्डभैरव……
(११) आग्नेयास्त्रेण हयग्रीवासुर …… हुङ्कारभैरव……
(१२) भौतास्त्रेण वैरन्धमासुर ……नादिभैरव ……
(१३) कौवेरास्त्रेण चण्डमुण्डासुर …… उन्मत्तभैरव……
(१४) पार्जन्यास्त्रेण पातालोदरासुर……आनन्दभैरव ……
(१५) वैद्युतास्त्रेण गगनशिरासुर …… भूनाधिप भैरव……
(१६) पार्वतास्त्रेण पतङ्गवेत्रासुर ……कृतान्तभैरव……
(१७) पाषाणास्त्रेण मकरास्यासुर ……असिताङ्गभैरव ……
(१८) नागास्त्रेण रक्तबीजासुर …… कालाग्निभैरव
(१९) त्वाष्ट्रास्त्रेण निकुम्भासुर…… उग्रायुधभैरव
(२०) सौपर्णास्त्रेण पुञ्जमाल्यसुर …… वज्राङ्गभैरव
(२१) तामसास्त्रेण महाह्लवसुर…… करालभैरव
(२२) तैमिरास्त्रेण दर्दुरासुर…… विकरालभैरव
(२३) गान्धर्वास्त्रेण दुर्जयासुर…… महाकालभैरव
(२४) प्रस्वापनास्त्रेण हिरण्यकेशासुर …… कल्पान्तभैरव
(२५) पैशाचास्त्रेण प्रमाथ्यसुर……विश्वान्तकभैरव

(२६) जृम्भणास्त्रेण मेघमाल्यसुर ·····प्रचण्डभैरव
(२७) मातङ्गास्त्रेण निशुम्भासुर······भगमालीभैरव
(२८) ऐषीकास्त्रेण प्रकम्पनासुर······उग्रभैरव
(२९) औदुम्बरास्त्रेण वातवेगासुर ·····भूतनाथभैरव
(३०) राक्षसास्त्रेण वज्रदंष्ट्रासुर·····सुभद्रभैरव
(३१) भारुण्डास्त्रेण क्राथासुर ·····सम्पत्प्रदभैरव
(३२) ब्रह्मशिरोऽस्त्रेण वज्राङ्गासुर··· मृत्युभैरव
(३३) गुह्यकास्त्रेण चन्द्रार्यसुर ···· यमान्तकभैरव
(३४) कालकूटास्त्रेण नीलासुर·····उल्कामुखभैरव
(३५) वेतालास्त्रेण शैलजंघासुर ·· एकपादभैरव
(३६) वैनायकास्त्रेण वज्रमुष्टयसुर···· प्रेतभैरव
(३७) स्कान्दास्त्रेण यज्ञद्रुडसुर मुण्डमालीभैरव
(३८) प्रामथास्त्रेण युगंपचासुर···· वटुकभैरव
(३९) उत्पातास्त्रेण जम्बुकासुर··· क्षेत्रपालभैरव
(४०) कूष्माण्डास्त्रेण तालध्वजासुर ··· दिगम्बरभैरव
(४१) भ्रामकास्त्रेण कुम्भमाल्यसुर ···· वज्रमुष्टिभैरव
(४२) गालनास्त्रेण सर्पशिरासुर····· घोरनादभैरव
(४३) सम्मोहनास्त्रेण पातालकेत्वसुर ···· चण्डोग्रभैरव
(४४) बलास्त्रेण चर्चिकासुर ···· सन्तापनभैरव
(४५) अतिबलास्त्रेण कुण्डकासुर····· क्षोभणभैरव
(४६) निमीलनास्त्रेण असिलोमासुर ···· ज्वालाभैरव
(४७) अचेतनास्त्रेण तपनासुर ···संवर्तभैरव
(४८) उन्मादास्त्रेण तुण्डरीकासुर···· वीरभद्रभैरव
(४९) अपस्मारास्त्रेण अशनिपर्वासुर ·····त्रिकालाग्निभैरव
(५०) मारणास्त्रेण यज्ञकोपासुर·····शोषणभैरव
(५१) पाशुपतास्त्रेण प्रलयरम्भासुर······त्रिपुरान्तकभैरव

इत्यस्त्रभैरवन्यासः ।

५—यज्ञमहाराजन्यासः

(१) ओं ह्री छ्रीं ओं श्रीं स्त्रीं ओं क्लीं हूं ओं फ्रें ख्फ्रें ओं हसफ्रें हसख्फ्रें ओं क्रों क्रीं अग्निष्टोमयज्ञे प्रियव्रतराजाराधितायै जयलक्ष्मीनामधारिण्यै सप्त-द्वीपवतीपृथ्वीदिग्विजयरूपफलदायिन्यै नक्षत्रनरमुण्डमालालङ्कृतायै चतु-र्दशभुवनसेवितपादपद्मायै भगवत्यै गुह्यकाल्यै रह्लीं हसखफ्रें ,खफ्रें ओं ह्रीं श्रीं फ्रें सिद्धिकरालि छ्रीं क्लीं फ्रें नमः फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

एवं सर्वत्रादौ उक्ताष्टादश बीजानि देयानि, अन्ते च फलदायिन्यै इत्यारभ्य स्वाहान्तं देयम् । मध्ये परिवर्तनं अपेक्षितं तन्मात्रमुद्ध्रियते—

(२) ······अत्यग्निष्टोमयज्ञे नहुषराजाराधितायै ऐश्वर्यलक्ष्मीनामधारिण्यै सुरपतित्वरूप······

(३) ······वाजपेययज्ञे अम्बरीषराजाराधितायै सत्त्वलक्ष्मीनामधारिण्यै परमनिर्वृतिरूप······

(४) ······षोडशीयज्ञे दिलीपराजाराधितायै ज्ञानलक्ष्मीनामधारिण्यै नागलोकविजयरूप······

(५) ······पुण्डरीकयज्ञे कार्तवीर्यार्जुनराजाराधितायै धर्मलक्ष्मीनामधारिण्यै पञ्चाशीतिसहस्रवर्षजीवनरूप······

(६) ······अश्वमेधयज्ञे मरुत्तराजाराधितायै क्रियालक्ष्मीनामधारिण्यै दशदिक्पालवशीकरणरूप······

(७) ······राजसूययज्ञे हरिश्चन्द्रराजाराधितायै बुद्धिलक्ष्मीनामधारिण्यै सकलदेवताक्रियमाणस्तुतिरूप······

(८) ······बहुसुवर्णयज्ञे नलराजाराधितायै मोक्षलक्ष्मीनामधारिण्यै परमसौन्दर्यरूप······

(९) ······गोसवयज्ञे दिवोदासराजाराधितायै योगलक्ष्मीनामधारिण्यै निःसपत्नराज्यसम्राट्रूप······

(१०) ······महाव्रतयज्ञे भरतराजाराधितायै सिद्धिलक्ष्मीनामधारिण्यै चक्रवर्तिरूप······

(११) ······विश्वजितयज्ञे भद्रश्रेण्यराजाराधितायै वृद्धिलक्ष्मीनामधारिण्यै सप्तपातालविजयरूप······

(१२) ······प्राजापत्ययज्ञे सुहोत्रराजाराधितायै विद्यालक्ष्मीनामधारिण्यै सरस्वतीदासीत्वरूप······

(१३) ······अश्वक्रान्तयज्ञे शशबिन्दुराजाराधितायै सन्तानलक्ष्मीनामधारिण्यै शतसहस्रपत्नीनियुतकन्याकोटिसुतरूप······

(१४) ······रथक्रान्तयज्ञे बृहदश्वराजाराधितायै जीवलक्ष्मीनामधारिण्यै लक्षाधिकाशीतिसहस्रवर्षजीवनरूप······

(१५) ······विश्वक्रान्तयज्ञे पौरवराजाराधितायै भोगलक्ष्मीनामधारिण्यै उर्वशीरम्भामेनकातिलोत्तमाद्विपष्ट्यप्सरःसंभोगरूप······

(१६) ······सूर्यक्रान्तयज्ञे इक्ष्वाकुराजाराधितायै धर्मलक्ष्मीनामधारिण्यै द्विसप्ततिशाखावेदधारणरूप······

(१७) ······गजाक्रान्तयज्ञे ययातिराजाराधितायै अर्थलक्ष्मीनामधारिण्यै अष्टादशलक्षमहर्षिप्रत्यहार्थभोजनरूप······

(१८) ······बलभिद्यज्ञे इन्द्रद्युम्नराजाराधितायै उदयलक्ष्मीनामधारिण्यै महर्लोकपर्यन्तरथगमनरूप······

(१६) ······नागयज्ञयज्ञे सर्यातिराजाराधितायै, विभूतिलक्ष्मीनामधारिण्यै समर-विजयपूर्वक कालकेयदितिजकन्याहरणरूप······

(२०) ······सावित्रीयज्ञे शिविराजाराधितायै दयालक्ष्मीनामधारिण्यै स्वमांसोत्कर्तनधर्मरूप······

(२१) ······अर्धसावित्रीयज्ञे शत्रुञ्जयराजाराधितायै क्रोधलक्ष्मीनामधारिण्यै गोमुखदैत्यषट्त्रिंशदक्षौहिणीभस्मीकरणरूप······

(२२) ······सर्वतोभद्रयज्ञे ऋतपर्णराजाराधितायै राज्यलक्ष्मीनामधारिण्यै अप्रतिहताज्ञत्वरूप······

(२३) ······आदित्यामययज्ञे रामचन्द्रराजाराधितायै नयलक्ष्मीनामधारिण्यै राजत्वत्वरूप······

(२४) ······गवामययज्ञे विदूरथराजाराधितायै आज्ञालक्ष्मीनामधारिण्यै वासुकितो दण्डग्रहणरूप······

(२५) ······सर्पामययज्ञे मान्धाताराजाराधितायै धनलक्ष्मीनामधारिण्यै वासवोपकारकरणरूप······

(२६) ······कोण्डपामययज्ञे भगीरथराजाराधितायै अभयलक्ष्मीनामधारिण्यै सेवकादिखेचरसिद्धित्वरूप······

(२७) ······अग्निचिद्यज्ञे युवनाश्वराजाराधितायै वरलक्ष्मीनामधारिण्यै लक्षमत्तहस्तिबलरूप······

(२८) ······द्वादशाहयज्ञे रन्तिदेवराजाराधितायै प्रतापलक्ष्मीनामधारिण्यै चतुर्विधार्थसामग्रीरूप······

(२९) ······उपांशुयज्ञे आग्नीध्रराजाराधितायै शक्तिलक्ष्मीनामधारिण्यै स्वेच्छाचारित्वरूप······

(३०) ······अश्वप्रतिग्रहयज्ञे पुरूरवाराजाराधितायै निर्वाणलक्ष्मीनामधारिण्यै अनायास त्रिलोकीरक्षणरूप······

(३१) ······बर्हिरथयज्ञे गयराजाराधितायै परापरलक्ष्मीनामधारिण्यै स्वेच्छारूपित्वरूप······

(३२) ······अभ्युदययज्ञे अलर्कराजाराधितायै अद्वैतलक्ष्मीनामधारिण्यै महायोगसिद्धिरूप······

(३३) ······सर्वस्वदक्षिणयज्ञे पृथुराजाराधितायै इच्छालक्ष्मीनामधारिण्यै चिरजीवित्वरूप······

(३४) ······दीक्षायज्ञे रघुराजाराधितायै आवेशलक्ष्मीनामधारिण्यै चतुर्विधभूतसंघवृत्तिकल्पनाकुवेरजयरूप······

(३५) ······सोमयज्ञे प्रतर्दनराजाराधितायै उत्साहलक्ष्मीनामधारिण्यै पुरन्दरसख्यरूप

(३६) ······स्वाहाकारयज्ञे सगरराजाराधितायै अमृतलक्ष्मीनामधारिण्यै रिपुविरूपकरणरूप

(३७) ······तनूनपात्यज्ञे हर्यक्षराजाराधितायै तत्त्वलक्ष्मीनामधारिण्यै स्वेच्छाबलसृष्टिरूप

(३८) ······गोदोहनयज्ञे अजमीढराजाराधितायै मोहलक्ष्मीनामधारिण्यै प्रसभवासुकिकन्यापरिणयरूप

(३९) ······नरमेधयज्ञे पुरुकुत्सराजाराधितायै महालक्ष्मीनामधारिण्यै वरुणनिरुद्धजयरूप

(४०) ······ज्योतिष्टोमयज्ञे कटुराजाराधितायै काललक्ष्मीनामधारिण्यै वासवासाध्यदैत्यजयरूप

(४१) ······दर्शयज्ञे अङ्गराजराजाराधितायै उद्धारलक्ष्मीनामधारिण्यै दिक्पालनिरोधसङ्कटतरणरूप

(४२) ······पौर्णमासयज्ञे बलाकाश्वराजाराधितायै कीर्तिलक्ष्मीनामधारिण्यै शत्र्युद्धाररूप

(४३) ······अतिरात्रयज्ञे अयुतायुराजाराधितायै वीरलक्ष्मीनामधारिण्यै निकुम्भदैत्यगर्वभञ्जनरूप

(४४) ······सौभरयज्ञे मतिनावराजाराधितायै आनन्दलक्ष्मीनामधारिण्यै अजातशत्रुतारूप

(४५) ······सौभाग्यकृद्यज्ञे जीमूतवाहनराजाराधितायै सौभाग्यलक्ष्मीनामधारिण्यै महावदान्यरूप

(४६) ······शान्तिकृद्यज्ञे रम्भराजाराधितायै वश्यलक्ष्मीनामधारिण्यै जगद्वशीकरणरूप

(४७) ······सौपर्णयज्ञे नृगराजाराधितायै तपःलक्ष्मीनामधारिण्यै महावदान्यरूप

(४८) ······त्रैलोक्यमोहनयज्ञे वीरबाहुराजाराधितायै खड्गलक्ष्मीनामधारिण्यै अतिरथतारूप

(४९) ······शङ्खचूडयज्ञे वसुमनाराजाराधितायै उदारलक्ष्मीनामधारिण्यै पूर्वपुरुषोद्धाररूप

(५०) ······कन्दर्पबलशातनयज्ञे चित्रायुधराजाराधितायै कान्तिलक्ष्मीनामधारिण्यै सौन्दर्यैकनिधानरूप

(५१) ······गजच्छायज्ञे सप्तसप्तिराजाराधितायै कैवल्यलक्ष्मीनामधारिण्यै सायुज्यमुक्तिरूप

इति यज्ञमहाराजन्यासः ।

६—षोढान्यासान्तर्गतः कल्पसिद्धिन्यासः ।

१—ओं ऐं ओं ह्रीं ओं छ्रीं ओं स्त्रीं ओं फ्रें ओं फ्रें ओं फ्रें ओं फ्रें ओं हूं तपःकल्पे ज्वालाकालीमूर्त्यै धर्मानन्दनाथसिद्धैं सिद्धिदायिन्यै महारात्रिनाम्न्यै भैरवीचामुण्डाशतकोटिपरिवृतायै महाश्मशाननिलयदिगम्बरायै भगवत्यै गुह्यकाल्यै ओं फ्रें सिद्धि हस्खफ्रें हसफ्रें ख्फ्रें करालि ख्फ्रें हसखफ्रें ख्फ्रें फ्रें ओं स्वाहा × [अमा ?] क्लूं क्ष्रूं ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें ज्रौं ज्रौं ज्रौं [?] फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

अधोनिर्दिष्टेषु विशेषमात्रस्योद्धारः क्रियते शेषं पूर्वं श्वपचाख्य पूर्ववज्ज्ञेयः ।

२—भव्यकल्पे घोरनादकालीमूर्त्यै ज्ञानानन्दनाथसिद्धसिद्धिदायिन्यै कालरात्रिनाम्न्यै ।

३—रक्तकल्पे उग्रकालीमूर्त्यै वैराग्यानन्दनाथ...विरूपानाम्न्यै ...

४—हव्यवाहकल्पे वेतालकालीमूर्त्यै ऐश्वर्यानन्दनाथ...कपालिनीनाम्न्यै .. ।

५—ऋतुकल्पे संहारकालीमूर्त्यै अमृतानन्दनाथ...महोत्सवानाम्न्यै...।

६—सावित्रकल्पे रौद्रकालीमूर्त्यै विवेकानन्दनाथ...गुह्यनिद्रानाम्न्यै ।

७—स्रुवकल्पे कृतान्तकालीमूर्त्यै पूर्णानन्दनाथ...दोर्दण्डखण्डिनीनाम्न्यै ।

८—कुशिककल्पे भीमकालीमूर्त्यै क्रियानन्दनाथ...वज्रिणीनाम्न्यै ।

९ गान्धारकल्पे चण्डकालीमूर्त्यै प्रचण्डानन्दनाथ...शूलिनीनाम्न्यै ।

१०—ऋषभकल्पे धनकालीमूर्त्यै भैरवानन्दनाथ...विमलानाम्न्यै ।

११—मार्जालीयकल्पे भद्रकालीमूर्त्यै क्रोधानन्दनाथ...महोदरीनाम्न्यै ।

१२—मध्यमकल्पे श्मशानकालीमूर्त्यै परमतत्वानन्दनाथ...कुरुकुल्लानाम्न्यै ।

१३—वैराजकल्पे कामकलाकालीमूर्त्यै कैवल्यानन्दनाथ...कौमुदीनाम्न्यै ।

१४—निषादकल्पे सिद्धिकालीमूर्त्यै विजयानन्दनाथ...कौलिनीनाम्न्यै ।

१५—मेघवाहनकल्पे दक्षिणकालीमूर्त्यै खेचरानन्दनाथ...कालसुन्दरीनाम्न्यै ।

१६—पञ्चमकल्पे घोरकालीमूर्त्यै निर्वाणानन्दनाथ...बलाकिनीनाम्न्यै ।

१७—चिन्तककल्पे सन्त्रासकालीमूर्त्यै मोक्षानन्दनाथ...फैरवीनाम्न्यै ।

१८—आकृतिकल्पे प्रेतकालीमूर्त्यै सिद्धानन्दनाथ...डमरुकानाम्न्यै ।

१९—विज्ञानकल्पे प्रलयकालीमूर्त्यै भूचरानन्दनाथ...घटोदरीनाम्न्यै ।

२०—बृहत्कल्पे विभूतिकालीमूर्त्यै पातालानन्दनाथ...भीमदंष्ट्रानाम्न्यै ।

२१—रथन्तरकल्पे जयकालीमूर्त्यै सुन्दरानन्दनाथ...भगमालिनीनाम्न्यै ।

२२—रक्तकल्पे भोगकालीमूर्त्यै मोहनानन्दनाथ...मेनानाम्न्यै ।

२३—पीतवासःकल्पे कल्पान्तकालीमूर्त्यै निरञ्जनानन्दनाथ...तारावतीनाम्न्यै ।

२४—विश्वरूपकल्पे मन्थानकालीमूर्त्यै अरुणानन्दनाथ...भानुमतीनाम्न्यै ।

२५—ऋष्यन्तरकल्पे दुर्जयकालीमूर्त्यै भास्करानन्दनाथ...एकानङ्गानाम्न्यै ।

२६—श्वेतकल्पे कालकालीमूर्त्यै जगन्मित्रानन्दनाथ...केकराक्षीनाम्न्यै ।

२७—नीललोहितकल्पे वज्रकालीमूर्त्यै प्रतापानन्दनाथ...संहारिणीनाम्न्यै ।

२८—वामदेवकल्पे विद्याकालीमूर्त्यै पौरुषानन्दनाथ...ऐन्द्राक्षीनाम्न्यै ।

२९—गौरवकल्पे शक्तिकालीमूर्त्यै कमलानन्दनाथ...प्रभञ्जनानाम्न्यै ।

३०—प्रागकल्पे विश्वरूपकालीमूर्त्यै प्रमोदानन्दनाथ...भ्रामरीनाम्न्यै ।

३१—सद्योजातकल्पे मायाकालीमूर्त्यै विक्रमानन्दनाथ...प्रचण्डाक्षीनाम्न्यै ।

३२—तत्पुरुषकल्पे महाकालमूर्त्यै हर्षानन्दनाथ...अपराजितानाम्न्यै ।

३३—अघोरकल्पे कुलकालीमूर्त्यै उग्रानन्दनाथ...विद्युत्केशीनाम्न्यै ।

३४—ईशानकल्पे नादकालीमूर्त्यै विचित्रानन्दनाथ...महामारीनाम्न्यै ।

३५—ज्ञानकल्पे मुण्डकालीमूर्त्यै उदयानन्दनाथ...शोषिणीनाम्न्यै ।

३६—सारस्वतकल्पे धूमकालीमूर्त्यै उत्साहानन्दनाथ...वज्रनखीनाम्न्यै ।

३७—उदानकल्पे आनन्दकालीमूर्त्यै करुणानन्दनाथ...सूचीतुण्डीनाम्न्यै ।
३८—गारुडकल्पे तिग्मकालीमूर्त्यै भीमानन्दनाथ...जृम्भकानाम्न्यै ।
३९—कूर्मकल्पे महारात्रिकालीमूर्त्यै भावानन्दनाथ...तीव्रानाम्न्यै ।
४०—नारसिंहकल्पे संग्रामकालीमूर्त्यै परमानन्दनाथ...प्रस्वापनीनाम्न्यै ।
४१—वामनकल्पे शवकालीमूर्त्यै अव्ययानन्दनाथ...ज्वालिनीनाम्न्यै ।
४२—आग्नेयकल्पे नग्नकालीमूर्त्यै योगानन्दनाथ...चण्डघण्टानाम्न्यै ।
४३—सोमकल्पे रुधिरकालीमूर्त्यै शब्दानन्दनाथ...लम्बोदरीनाम्न्यै ।
४४—मानवकल्पे कङ्कालकालीमूर्त्यै प्रमेयानन्दनाथ...अग्निमर्दिनीनाम्न्यै ।
४५—लक्ष्मीकल्पे फेरुकालीमूर्त्यै मङ्गलानन्दनाथ...एकदन्तानाम्न्यै ।
४६—वैकुण्ठकल्पे भयङ्करकालीमूर्त्यै ईश्वरानन्दनाथ...उल्कामुखीनाम्न्यै ।
४७—गौरीकल्पे विकटकालीमूर्त्यै कपिलानन्दनाथ...सूर्यजिह्वानाम्न्यै ।
४८—माहेश्वरकल्पे करालकालीमूर्त्यै माधवानन्दनाथ...घोणकीनाम्न्यै ।
४९—पितृकल्पे विकरालकालीमूर्त्यै रौद्रानन्दनाथ...पूतनानाम्न्यै ।
५०—पद्मकल्पे घोरघोरतरकालीमूर्त्यै दयानन्दनाथ...वेगमालानाम्न्यै ।
५१—श्वेतवाराहकल्पे गुह्यकालीमूर्त्यै प्रसन्नानन्दनाथ...गुह्यकालीनाम्न्यै ।

इति कल्पसिद्धिन्यासः ।

परिशिष्टम् (७)

वीजकोषः

महाकालसंहितायां व्यवहृतबीजानां सूची

अंकुरः—क्ह्रां
अंकुशः—क्रों
अंशुः—ह्लैं
अंहः—ह्भ्रें
अक्षः—रह्लूं
अक्षरः—रख्रैं
अखण्डः—रज्रूं
अग्र —सफह्लक्षों
अघः—ह्ल्व्रूं
अजः—रग्रां
अजिरः—श्लक्ष्रें
अण्डः—रड्रें
अतीतः—रघ्रौं
अत्रिः—रफ्रें
अद्वयः—रत्रों
अद्वैतः—न्रों
अध्वरः—द्रौं
अध्वा—ह्रां
अनघः—ख्रम्त्रूं
अनन्तः—ख्रैं
अनपायः—फ्लक्रीं
अनाहतः—हसख्फ्रां
अनुकृतिः—ह्लश्रीं
अनुदात्तः—रग्रीं
अन्तः—क्ख्रैं
अन्तकः—क्ष्लीः
अन्नकम्—क्ख्रों
अपराजिता—स्त्रं
अपरान्तकः—खफ्रवलूं

अपायः—सहलक्रैं
अमरः—ग्लैं
अमृतम्—ग्लूं
अयः—रक्ष्रां
अरिष्टः—ज्रूं
अरुणः—छ्रं
अर्घः—ह्ल ग्रां
अर्चा—रत्रैं
अर्चिः—रत्रां
अर्थः—रठ्रों
अर्धचन्द्रकः—खफछ्रैं
अलक्ष्यः—रख्रूं
अवधः—स्फ्रें
अवस्था—क्ष्रज्लों
अवारः—छ्रक्रूं
अविद्या—रढ्रैं
असिः—ज्रां
अस्त्रम्—फट्
आक्रोशः—ज्रभ्रूं
आख्यातः—रझ्रों
आगमः—ओं
आङ्गिरसः—भ्यौं
आज्ञा—भ्लूं
आतङ्कः—क्लख्फ्रीं
आत्मा—रश्रां
आदित्यः—सः
आधारः—म्रैं
आनन्दः—भ्रूं
आपः—फ्रैश्रूं

आमोदकः—क्ष्लक्ष्रीं
आम्नायातीतम्—फ्खभ्रैं
आयुधम्—रस्त्रें
आराधनम्—फ्हलक्रीं
आर्तः—रद्रों
आर्यः—ब्रच्रों
आलम्बः—ग्रच्रैं
आवेशः—ब्रच्रां
आवेशः—म्लैं
आषाढ़ः—ह्फ्रौं
आसुरम्—ग्रीं
इध्मः—क्ष्रस्त्रां
इन्दिरा—श्रखफ्रां
इला—ह्भ्रूं
इलिकः—ब्रप्लां
इष्टिः—रश्रीं
ईरिणी—रखध्रें
ईशः—छ्रक्रां
ईश्वरः—रप्रौं
ईर्ष्या—ह्भ्रीं
ईहा—म्लां
उक्षा—रढ्रूं
उग्रः—ढ्रीं
उड्डियानम्—क्ष्रफह्लां
उड्डीशः—क्ष्रज्लूं
उत्कोचिनी—रजझक्ष्रौं
उत्क्रामः—फ्लक्रूं
उत्तमः—रध्रें
उत्तरः—रघ्रीं
उत्तंसः—रश्रैं
उत्तानम्—स्त्रखफ्रों
उत्सर्गः—क्ष्रफह्लौं
उदात्त—रघ्रैं
उदारः—भ्लैं
उद्धारः—म्लां
उद्भिद्—फ्श्रीं
उन्माथः—रड्रीं
उन्मादः—रन्रीं
उपलः—ह्भ्रां
उपसर्गः—छ्रहभ्रूं
उरमिकः—ख्रम्त्रां
उलूकः—ह्लक्रैं
उल्का—रक्रां
उल्मुकः—रण्रैं
उल्लोप्यम्—ह्ग्लूं
उल्लोलः—रन्रैं
उषरः—ख्लफ्रौं
ऊर्ध्वशिखरः—ह्म्लां
ऋक्षं—क्प्रों
ऋणम्—क्प्रैं
ऋतङ्क—ग्रक्रूं
ऋद्धिः—ल्रीं
ऋषभः—स्त्रैं
ऋष्टिः—कह्लश्रैं
एषणा—क्ख्रीं
ऐन्द्रः—फह्लक्षों
ओजः—स्त्रं
ओजस्वी—क्ष्लक्ष्रैं
ओषधी—प्लीं
औदुम्बरः—म्रीं
औपदेयः—खफछ्रां
औपह्वरः—छ्ररक्षह्लैं
ककुत्—रफ्रैं
कङ्कालः—रह्लीं
कटंकटा—हसखफः
कणः—क्ष्लप्रौं
कणा—व्लछ्रां
कण्ठीरवः—ख्रस्त्रौं
करः—ह्लक्रूं
करणम्—ख्लफ्रैं
करंभिः—प्लैं
कराटी—ग्लल्लूं

कराली–हसखफ्रौं
करुण:–रप्रों
कर्णिका–क्षरह्लीं
कर्णिका–छ्ररक्षह्लीं
कर्तृ–रम्रीं
कत्रिकम्–रम्रीं
कल:–रध्रैं
कलङ्क:–स्है:
कलह:–क्र ह्लौं
कला–ईं
कलावती–ह्लछ्रां
कल्क:–रट्रां
कल्प:–क्ष्रां
कल्याणम्–रश्रैं
कवन्ध:–ज्रां
कवलम्–क्रप्रें
काक:–रच्रैं
काकिनी–फ्रीं
काकीमुख:–रध्रौं
कापिल:–रण्रां
कापालम्–थ्रीं
काम:–क्लीं
कामकला–क्ष्रस्रैं
कारक:–ह्लक्रें
कार्पट:–रव्रें
काल:–जूं
कालरात्रि:–ख्फ्रौं
काली–क्रीं
काष्ठा–ग्रम्लौं
किञ्जल्क:–क्ष्र व्रें
किण:–व्लछ्रीं
(?) किमाविनी–ह्फ्रां
(विभाविनी)
किंपुरुष:–स्फ्रौं
कीर्ति:–ल्रां
कील:–रठ्रैं
कीलाल:–रव्रें
कुक्कुट:–रक्रौं
कुञ्चिका–ख्रस्त्रैं
कुटिला–रक्षफ्रछ्रूं
कुठार:–रम्रां
कुठार:–रम्रां
कुडुक्क:–ग्लव्ज्रीं
कुण्डम्–रक्ष्रूं
कुण्ड:–कह्लश्रीं
कुन्त:–कह्लश्रौं
कुब्जक:–रच्रौं
कब्जिका–ख्रस्त्रैं
कुमार:–ह्लू:
कुमारी–स्रौं
कुम्भ:–ग्लीं
कुम्भक:–क्षीं
कुलम्–ज्लैं
कुलमुद्रा–क्रह्लैं
कुलाङ्गना–ह्लीं
कुलिक:–स्हौ:
कुश:–ह्लक्षम्लीं
कुशिक:–रह्लछ्ररक्षह्लैं
कुहक:–रन्रैं
कुहिका–क्रम्रूं
कूट:–ग्रम्लैं
कूर्च:–हूं
कूर्चिका–क्ष्रस्रूं
कूर्म:–घ्रीं
कूर्म:–व्रीं
कूष्माण्डी–क्रौं
कृकर:–तूं
कृति:–खफभ्रां
कृत्या–हस्खफ्रें
कृष्टि:–क्षस्फ्रौं
केकराक्षी–ख्फ्रैं
केतु:–फ्रस्त्रूं

केशः—क्षां
केशर—फ्रां
कैकरम्—श्रूं
कैतकः—क्लखफ्रां
कोटिः—रफलां
कोदण्डः—लक्षां
कोरकः—भ्रां
कोरङ्गी—क्ष्रस्त्रौं
कोशः—हसखफ्रं
कोष्ठः—ह्रस्रों
कौमुदी—श्लौं
कोलः—रीं
कोल बीजम्—फ्रखभ्रें
कौलशिलम्—क्ह्लां
कौलिकः—न्द्रैं
कौलुषः—छ्रखफ्रीं
क्रकचः—स्रीं
क्रमः—भ्रीं
क्रिया—सहलौं
क्रूरः—रट्रैं
क्षान्तिः—ज्रूं
क्षुद्रः—ग्लक्षैं
क्षुधा—म्लीं
क्षुरप्रः—खंफछ्रौं
क्षेत्रपालः—क्षौं
क्ष्वेडः—चफलकों
क्षोभणः—रस्त्रों
खट्वाङ्गः—रभ्रैं
खड्गः—ज्रां
खड्गः—रभ्रैं
खण्डकः—फ्रस्त्रीं
खरः—स्लफ्रें
खर्वः—रभ्रों
खलः—रक्रैं
खेचरी—ख्रौं
खेटः—ल्यूं
खोटः—क्ष्रस्त्रैं
(?) गः—चफलकां
गजा—ब्रप्लें
गणः—ब्लछ्रें
गणेशः—गं
गदा—क्ष्रस्त्रैं
गन्धर्वः—ब्जं
गर्भः—रक्ष्रैं
गर्हा—व्रच्रूं
गायत्री—ओं
गारुडः—क्रौं
गालः—जक्रैं
गुणः—ब्लछ्रूं
गुप्ताचारः—ह्लभ्रूं
गुरुः—ह्लक्रौं
गुलः—क्ष्रफह्लैं
गुह्यः—व्रच्रीं
गुह्यकपाटः—क्ष्रक्लां
गुह्यखेचरी—ह्लभ्रौं
गुह्या—क्लप्रैं
गूढः—क्लक्ष्रैं
गूढः—रठ्रैं
गोकर्णम्—श्रूं
गोत्रः—रख्रो
गोष्ठम्—चफलकूं
गोष्ठी—ह्लस्रैं
गोस्तनः—खफछ्रं
गौः—ह्रूं
गौरी—क्रः
ग्रहः—ख्रफभ्रूं
ग्रहः—भ्रह्लौं
ग्रावा—फभ्रग्लऐं
ग्राहः—खफभ्रीं
ग्लहः—रभ्रैं
घटी—रक्षफ्रछ्रौं
घण्टा—रफ्लीं

घण्टिका–क्ष्म्रग्लऔं
घोणकी–ड्रूं
घोष:–रग्रां
घ्राणम्–चूं
चक्रम्–श्रीं
चक्रतुम्बी–क्ह्लौं
चञ्चलम्–क्ख्रूं
चञ्चला–ह्लभ्रों
चञ्चु:–रस्फ्रों
चण्ड:–फ्रों
चण्डिन:–ह्लभ्लीं
चण्डी–रक्रें
चतुरस्रकम्–खफ्ह्लूं
चतुष्पथ:–ख्लफ्रों
चन्द्र:–श्रह्लूं
चयनम्–छ्रह्भ्रों
चरम:–रठ्रूं
चर्चा–रघ्रें
चर्पटम्–रजझ्रक्ष्रीं
चाक्रिकम्–वलह्लीं
चामर:–खफ्रक्ष्रूं
चामुण्डा–क्रैं
चारु:–ञ्रैं
चिता–रफ्लैं
चिति:–क्ख्रां
चित्रम्–ज्लौं
चुलिक:–ह्लश्रां
चूडामणि:–रझ्रीं
चूडामणि–रक्ष्रीं
चैतन्यम्–ऐं
छटा–रझ्रौं
छत्रम्–रें
छय:–रख्रघ्रां
छन्द:–क्रफ्रैं
छन्द:–फ्रैं
छिप्पि:–फ्रश्रैं

जगती–च्रां
जंगम:–रभ्रूं
जटा–च्रूं
जठर:–रठ्रीं
जन्या–ग्लख्रां
जम्बुक:–रच्रूं
जम्भ:–रफ्रीं
जम्भ:–स्त्रखफ्रें
जयन्ती–छ्रों
जया–क्रं
जरा–रक्रूं
जालम्–व्रफश्रौं
जीवनी–फह्लक्षौं
[?] जूर:–क्फ्रीं
जैमन:–ह्लफ्रीं
ज्या–ह्लक्ष्रूं
ज्येष्ठ:–द्रूं
ज्योति:–रच्रें
ज्योत्स्ना–श्रख्रौं
ज्वाला–रट्री
झंकार:–क्ष्रफह्लूं
झंझा–क्रां
टङ्क:–स्रीं
डमरु:–खफछ्रां
डाकिनी–खफ्रें
डामरम्–ण्रीं
तत्त्वम्–स्ह्रें
तत्वार्णव:–फखम्रौं
तन्तु:–ह्लक्षम्लूं
तन्त्र:–प्रूं
तन्त्रा–रक्षफछ्रीं
तन्द्रा–वलखफ्रां
तप:–क्ष्रूः
तपन:–खफभ्रैं
तरल:–रद्रां
तर्जन:–रन्रीं

तर्जनी–हसखफ्रें
तर्पणम्–ग्लठ्रां
तलः–रक्ष्रों
ताटङ्कः–रस्त्रीं
ताण्डवम्–क्रौं
तापः–खफभ्रें
तापिनी–म्रां
तारः–ओं
तारकः–रछ्रीं
तारावर्तः–श्रह्रैं
तिथिः–क्षव्रौं
तीक्ष्णा–घ्रें
तीर्थम्–फश्रैं
तुङ्गः–रज्रों
तुण्डा–खस्त्रें
तुरीया–फम्रग्लूं
तुला–रग्रां
तुला–कहलश्रों
तूणः–सफहलक्षूं
तृप्तिः–ग्लख्रों
तेजनम्–व्रप्लूं
तैजसम्–द्रीं
तोमरः–क्षरस्त्रों
तोरणः–रण्रीं
त्रपा–ह्लीं
त्रयीमयम्–क्रह्रैं
त्रासः–प्लक्रीं
त्रिकुटा–ल्यूं
त्रिदेवः–क्रह्लौं
त्रिदैवतम्–क्रह्लूं
त्रिदेवी–ह्रम्लां
त्रिपुटा–प्लूं
त्रिपुरा–हलक्रौं
त्रिवृत्–थ्रां
त्रिशक्तिः–क्रूं
त्रिशिखा–क्रीं
त्रिस्थानम्–रथ्रैं
त्रेता–हसखफ्रैं
त्र्यस्रम्–खफह्रैं
त्वष्टा–व्लां
त्वष्टा–कश्रौं
दक्षिणः–रघ्रों
दक्षिणा–रफ्रें
दण्डः–ह्लां
दस्रः–व्लीं
दाक्षिकः–खफह्लीं
दानवः–श्रीं
दाहः–ज्रब्रों
दिक्षु–ह्रस्रैं
दिगम्बरः–क्षज्रूं
दीपः–रक्ष्रों
दीप्ता–ल्रैं
दुर्घटः–ज्रक्रें
दुर्गा–व्रफश्रें
दुष्कृतम्–रह्लछ्ररक्षह्लीं
दुष्टः–क्लप्रें
देवः–रध्रूं
देशः–रज्रैं
दैवम्–क्षव्रां
द्रवः–फश्रों
द्रावः–ग्लख्रौं
द्रावणः–ह्श्रीं
द्वीपः–रफ्रां
धनदा–क्ष्रूं
धन्यः–ह्रग्लीं
धम्मिल्लः–ह्लफ्रौं
धर्मः–क्रैं
धाटी–रब्रूं
धातुः–ण्रम्लीं
धाना–रख्रीं
धारणा–ड्रौं
धूः–ण्रम्लौं

धूमः—छ्रैं
धृतिः—क्ष्रौंः
धेनुः—रस्त्रैं
ध्यानम्—रस्फ्रों
ध्वजः—रफ्लौं
नक्षत्रम्—च्लैं
नदः—रछ्रैं
नदी—क्लां
नन्दा—च्रीं
नन्दिनी—ह्लौं
नयः—खस्त्रूं
नर्म—ह्म्लौं
नाकुलम्—त्रीं
नागः—श्रीं
नादान्तकः—खफक्ष्रीं
नान्दिकः—छ्ररक्षह्लौं
नान्दी—रछ्रां
नाभसः—रत्रीं
नायकः—रत्रों
नारदः—रच्रों
नाराचः—खफछ्रीं
नालीकः—क्षस्त्रीं
निकारः—सहलक्षौं
नित्यः—श्लीं
निद्रा—छ्रां
निधिः—हः
निन्दा—क्ष्लप्रों
निगुक्तिः—ह्फां
निरञ्जनम्—स्हीं
निर्मलम्—ज्लूं
निर्माणम्—म्लौं
निराकारः—ओं (डों ?)
निर्मोकः—रश्रें
निर्वेशः—फ्लक्षां
निवृत्तिः—छ्रः
निःश्रेणिः—अं
निष्ठा—चफलक्षैं
निसर्गः—छ्रह्म्रैं
निस्तनः—फम्रग्लां
निस्तारः—क्ष्फ्रों
निहलः—रम्रौं
नीराजनम्—फ्लक्षैं
नीला—ज्रौं
नृसिंहः—क्ष्रौं
नेमिः—फ्रूं
नैगमः—रठ्रौं
नैमयः—ह्लक्षैं
नैयत्यम्—क्षख्रां अथवा क्षक्लां
न्यासः—स्रूं
पक्षः—सफह्लक्षां
पंक्तिः—रघ्रीं
पट्टः—रखूं
पट्टिशः—क्षरस्त्रं
पणः—स्लफ्रूं
पतङ्गः—च्रक्षों
पतनम्—हसफ्रैं
पथ्यम्—फम्रग्लौं
पद्मम्—रह्मछ्ररक्षह्रूं
परन्तपः—म्लीं
परमा—रद्रौं
परशुः—कह्लश्रं
परापरम्—हसखफ्रं
परिघः—क्षरस्त्रें
परेष्ट—रश्रां
पवर्गः—क्ष्लप्रां
पविः—घ्रीं
पशुः—ह्लक्षां
पश्चिमम्—रघ्रौं
पाटलः—स्त्रखफ्रां
पाठः—क्ष्रफह्रां
प्राणिगीतिका—ह्रग्लौं
पातालः—रक्षों

पारः—छ्रक्षीं
पारावारः—छ्रक्षीं
पारीन्द्रः—क्लफैं
पारीन्द्रः—क्लरह्लैं
पाशः—अं
पाषाणम्—ह्लश्रैं
पिञ्जला—रफ्लूं
पिण्डः—ह्सखफ्रुं
पिच्चीनः—ह्लखफ्रां
पिनाकः—म्लौं
पिप्पलम्—स्त्रखफ्रीं
पिशाचिनीः—ठः
पुटः—ग्लखौं
पुटकः—सफह्लक्षौं
पुण्यम्—रत्रें
पुन्नागः—ह्लक्षौं
पुराणः—रठ्रां
पुरुः—रक्ष्रां
पुरुगः—छ्रक्रूं
पुष्कला—रच्रौं
पुष्टिः—श्लैं
पूतना—फ्यूं
पूत्यण्डः—क्ष्रत्रीं
पूर्णा—छ्रूं
पूतंकः—रश्रूं
पूर्वः—रघ्रां
पृथुः—रछ्रूं
पृश्निः—ग्लखौं
पोषः—ग्लखौं
पौष्पम्—ज्लीं
प्रकरी—खफ्रक्लैं
प्रकारः—क्ष्रज्लें
प्रक्षेपः—फ्रक्रौं
प्रचण्डः—श्रौं
प्रचण्डा—खंफ्रूं
प्रणवः—ओं

प्रलानः—खफ्रह्लैं
प्रनापः—भ्रैं
प्रतिमानम्—ब्लछ्रौं
प्रतिष्ठा—श्रां
प्रतीच्छा [क्षा]—क्रखौं
प्रत्यङ्—ह्लफ्रैं
प्रत्ययः—क्रह्लूं
प्रदेशः—फ्रक्रैं
प्रभञ्जना—खफ्रां
प्रभा—ह्लीं
प्रमादः—वौं
प्रमितिः—क्रफ्रौं
प्रयत्नः—ब्रफ्रश्रौं
प्रलयः—ह्सफ्रें
प्रलयः—क्लफ्रां
प्रवहः—ज्रक्रौं
प्रवाहः—क्ष्रज्लैं
प्रश्नः—सह्लक्रैं,
प्रहारी—ग्लब्लां
प्राकारः—क्रश्रीं
प्राग्भवः—रश्रूं
प्राग्वशः—रक्ष्रैं
प्राणः—क्लैं
प्रादेशः—फ्लक्रैं
प्रापञ्चः—चफलकौं
प्राशः—क्षरस्त्रौं
प्रासादः—ह्रौं
प्रियः—रच्रां
प्रीतिः—ग्लठ्रूं
प्रेतः—स्हौंः
प्रौढः—रट्रूं
फुल्लः—व्रप्लौं
फेत्कारी—ह्सखफ्रें
फैरवः—स्त्रैं
बला—स्क्रीः
बलिः—रछ्रीं

(?) वलिका—हस्त्रूं
बाला—क्ष्रस्त्रीं
बिन्दुकः—खफक्लौं
बेधिनी—रम्रों
ब्रह्माण्डम्—रढ्रीं
भद्रिका—रक्षफछ्रां
भल्लः—खफछ्रें
भव्यः—रख्रें
भस्म—क्षव्लैं
भाजनम्—सहलक्रूं
भानम्—क्ष्रफह्लैं
भानुः—फखभ्रां
भारः—रभ्रै
भारुण्डा—प्रीं
भालः—रढ्रैं
भावः—ह्लखफ्रूं
भावः—रद्रूं
भाषा—व्रफश्रूं
भिन्दिपालः—कहलश्रां
भुशुण्डी—क्षरस्त्रूं
भूः—ब्लफस्त्रूं
भूतः—स्फ्रों
भूतिनी—खफ्रीं
भृङ्गारः—रण्रूं
भेदः—ग्लठ्रीं
भैरवी—सौः
भोगः—हसखफ्रीं
भोगमालिनी—हसखफक्ष्रां
भौमः—रण्रां
भोवः—सफहलक्षैं
भोवनेशी—ह्लीं
भ्रमरम्—श्रें
भ्रान्तिः—श्रब्लूं
भ्रामरी—ख्फ्री
भ्रूः—रच्रो
भ्रूणः—लक्षूं

भ्रूणः—रण्रें
मङ्गलम्—व्जूं
मज्जनम्—फहलक्षें
मञ्जरी—छ्रह्रौं
मञ्जीरः—छ्रह्लां
मणिः—श्लां
मणिमाला—रजझ्रक्ष्रूं
मण्डलम्—ज्लूं
मतिः—च्रीं
मत्सरः—रट्रौं
मधु—क्रैं
मधुपर्कः—क्ह्लीं
मध्यः—रभ्रौं
मनोजवः—क्ष्लक्ष्रां
मन्त्रावली—प्रां
मन्थानः—क्वीं
मन्दः—हसफ्रीं
मन्दा—फस्त्रौं
मन्दारः—रप्रीं
मन्दारः—प्रीं
मयुः—व्रच्रों
मरुः—हूः
मस्करः—रह्लें
महा—क्ष्रूं
महाक्रमः—क्ष्रूं
महाक्रोधः—क्षूं
महाङ्कुशः—रक्लां
महाडाकिनी—डूं
महाद्रावः—रक्लैं
महान्—पूं
महानङ्गः—रक्लीं
महामाया—रक्लौं
महामारी—रक्लूं
महामोहः—रक्लों
महारात्रिः—खफ्रों
महाविषम्—रेक्लें

महाशङ्खः—च्क्ष्रीं
महिमा—ब्रफ्रौं
महेन्द्रः—ब्रैं
महोदयः—रख्रौं
मानवम्—ग्लूनी
मानसम्—ठ्रीं
माया—ह्रीं
मायाहारः—ह्वलूं
मारण्डः—खफछ्रीं
मारिषः—रस्त्रौं
मार्णनम्—छरह्रौं
माला—त्रौं
मित्रम्—क्लैं
मुकुलः—रघ्रौं
मुक्ता—क्ष्रीं
मुखम्—औं
मुखरः—क्षम्लौं
मुख्यः—रड्रैं
मुण्डा—ह्लौं
मुद्गरः—कहलश्रः
मुसलम्—कहलश्रें
मूर्तिः—प्रम्लूं
मूर्वला—लक्ष्रीं
मूलम्—क्लछ्रैं
मृगाङ्कः—खलफ्रां
मेखला—रक्ष्रीं
मेघी—क्षस्फौं
मेषः—ह्लः
मेहनी—त्रप्लैं
मैधः—ऐं
मैत्रम्—रड्रूं
मोक्षः—ग्लैं
मोदकः—क्षलक्ष्रीं
मोदिनी—हफ्रां
मौञ्जी—रह्लैं
मौनकः—हस्त्रां

मौनी—क्षम्लूं
मौलः—छ्रम्लीं
मौलिः—चफलकौं
मौलिञ्जः—खफक्लां
यक्षः—क्ष्लौं
यत्नः—ब्रफथ्रैं
यमलः—पलक्रैं
याच्ना—च्त्रीं
यातना—क्ष्रूं
याम्यम्—फहलक्षैं
युक्तिः—रढ्रूं
युगम्—क्लप्रूं
युगन्धरः—रढ्रौं
युगान्तः—हसफ्रौं
यूपः—छ्रक्रैं
योगः—रघ्रूं
योगतन्द्रा—क्षच्त्रीं
योगिनी—छरीं
योनिः—रक्ष्रूं
यौक्तिकम्—छरह्लैं
रङ्कः—रस्त्रां
रङ्कुकः—क्षस्त्रौं
रचना—ज्रत्रौं
रञ्जिनी—रक्षफछ्रैं
रतिः—क्लूं
रत्नम्—रग्रैं
रथन्तरः—म्रूं
रन्ध्रः—रह्लक्षम्लूं
रमणी—रखघ्रौं
रम्भा—क्लं
रयः—ह्स्त्रां
रयिः—फथ्रां
रसपुटः—क्षज्रं
राका—ह्लं
रागः—रकक्ष्रं
राजसावित्री—स्त्रूं

राजा—ह्लक्रीं
रावः—फ्रें
रासः—ख्रस्त्रीं
राहुः—क्ष्रस्त्रूं
रिष्टः—प्रम्लैं
रीतिः—प्रम्लां
रोगः—क्ष्रस्त्रां
रौद्रः—फह्लक्षां
रौद्रः—द्रैं
रौरवम्—श्रौं
लक्ष्म—क्ह्लां
लक्ष्मीः—श्रीं
लक्ष्यम्—रख्रूं
लघुः—रत्रूं
लज्जा—ह्लीं
लम्बिका—ह्लक्रों
लयः—क्लफ्रीं
लयः—क्लरह्लां
ललाटकः—ज्रक्रां
ललितम्—छ्रौं
लाङ्गलम्—भ्रौं
लाङ्गूलम्—हफ्रीं
लिङ्गम्—ह्लक्षें
लीला—रस्त्रूं
लोकः—छरह्भ्रें
वक्त्रम्—भ्रीं
वज्रम्—ध्रीं
वज्रकवचम्—ह्सखफ्क्ष्रैं
वज्रमलम्—क्ष्रफह्लीं
वज्या—र्झ्रूं
वत्सः—रद्रीं
वत्सदन्तः—खफ्छ्रों
वधूः—स्त्रीं
वनस्पतिः—क्ह्लीं
वन्दा—क्ष्रव्रें
वरटः—ग्लठ्रूं

वर्गं—व्रफ्रश्रां
वर्णः—क्प्रां
वर्णः—प्रैं
वर्णकः—क्लक्ष्रां
वर्तकः—रड्रीं
वर्द्धनी—खफ्रभ्रौं
वर्धमानः—ह्फ्रूं
वर्हः—रघ्रघ्रूं
वला—रत्रैं
वलाहकः—क्लौं
वल्कलः—क्ष्रस्त्रों
वश—श्रव्रैं
वर्ष्मा—क्ष्रव्रूं
वस्तु—ब्लफ्रस्त्रौं
वागुरः—रम्रें
वाग्भवः—ऐं
वाटी—फ्रश्रौं
वाडवः—स्फ्ह्ल्क्षें
वात्या—ग्लब्लैं
वाथ्यः (वीथी)—खलफ्रीं
वादः—च्फ्ल्कें
वारः—रघ्रध्रों
वारणा—क्र्फ्रां
वारी—ग्लब्लौं
वारुणी—ब्लछ्रौं
वालरण्डा—क्ष्रस्त्रें
वाष्पं—क्लक्ष्रों
वासना—रश्रों
वासिता—क्लक्ष्रूं
विकटः—भ्रम्लूं
विकराली—ह्लस्त्रां
विकलः—स्त्रखफ्रूं
विकल्पः—क्ष्फ्रब्लीं
विकारः—वैं
विकोशकः—क्ष्रक्लूं
विक्रमः—क्ह्लीं

विक्रियः—क्लह्रूं
विक्षतम्—श्रब्लीं
विखलः—ह्स्त्रैं
विघटी—क्लखफ्रैं
विघसः—रह्रौं
विघ्नः—पलक्रौं
विचित्रः—ह्रलां
विजयः—ह्स्फ्रां
विजया—ह्क्षज्रीं
विज्ञानी—क्ष्रौं
विटङ्कः—क्षज्रां
वितन्द्रा—श्रखफ्रौं
वितानः—क्षब्लूं
वितानकम्—क्ष्त्रैं
विदिक्—खफह्रां
विद्या—श्रः
विद्यातत्त्वम्—फखभ्रैं
विद्याबलम्—क्लह्रां
विद्युत्—ब्लौं
विधानकः—क्रह्रूं
विधिः—रक्षछ्रीं
विधृतिः—खफक्ष्रौं
विनर्म—ह्भ्लौं
विनादः—खफछ्रूं
विनिमयः—श्रखफ्रों
विपन्नः—श्रखफ्रैं
विपाशः—ह्भ्लूं
विपृथुः—क्लह्रैं
विप्रत्ययः—छ्रह्रूं
विप्रियः—ह्छ्रूं
विभा—स्त्रां
विभूतिः—ल्रूं
विभ्रान्तिः—श्रब्लैं
विमर्दः—खफछ्रैं
वियुक्तिः—क्लह्रौं
वियोगः—ह्लखफ्रैं

विरतिः—खफह्रौं
विरसः—खफह्रां
विरागः—श्रखफ्रौं
विराट्—स्त्रूं
विराधः—फभ्रग्लईं
विरिञ्चिः—श्रूं
विरूपः—छफब्लीं
विलासः—रम्रां
विवत्सः—ह्लखफ्रीं
विवरः—क्षब्लौं
विवर्त्तकः—क्लरह्रौं
विवर्तकः—क्लफ्रूं
विकृतिः—क्लश्रीं
विशिखा—ह्श्रम्लां
विशुद्धिः—ह्लैं
विश्वः—फ्रौं
विषम्—ज्रं
विसंज्ञा—ह्रूं
विसम्भ्रान्तिः—श्रब्लौं
विसंवर्णः—श्रब्लीं
विसर्गः—क्ष्लप्रीं
विसारः—ह्स्त्रौं
विसृष्टिः—ह्लक्षम्लौं
विस्तारः—रग्रौं
विस्तारः—क्षज्लां
विस्मृतिः—ह्रग्लैं
विस्वरितः—ह्लवलैं
विहङ्गमः—फ्लीं
विहारः—ह्लक्षम्लैं
वीथी—खलफ्री
वीरः—स्फह्लक्षीं
बुद्बुदः—रड्रौं
वृत्तः—रज्रां
वृद्धिः—क्षज्लीं
वृषः—श्लूं
बृहत्—ब्ज्रीं

हृतिः—क्षछ्रौं [क्षक्लौं]
वृंहती—व्रच्रौं
वेगः—ह्ल्क्षां
वेणुः—रह्लां
वेणुः—ह्रों
वेतण्डः—रश्रौं
वेतालः—सफ्ह्लक्षूं
वेतालः—सफ्लक्षूं
वेत्रः—ह्फ्रैं
वेदादिः—ओं
वेदिः—क्लीं
वेदी—रक्रीं
वेध्यः—श्रव्रां
वेहुण्डः—व्रप्लों
वैकक्षकः—ह्लघ्रौं
वैकारिकः—रप्रां
वैटपः—खफ्छ्ग्रां
वैधसः—लक्षों
वैधानम्—क्लक्ष्रौं
वैमलम्—च्रौं
वैराजः—श्रौं
वैरुधः—त्रक्षश्रीं
वैश्वदेवः—गं
व्यजनं—खफ्क्ष्रैं
व्ययः—रह्लछ्ररक्षह्लौं
व्याडः—ह्लस्रौं
व्यानः—टैं
व्यालः—क्म्लैं
व्युत्तरः—ह्लक्लौं
व्योमः—लक्षें
व्यः—रट्रैं
व्रज्या—रझ्रूं
व्रतम्—रश्रीं
व्रध्नः—क्षः
व्रीडा—ह्लीं
शक्तिः—ब्लूं

शक्तिविद्या—फ्रघ्रभ्रां
शक्तिसर्वस्वम्—हसखफ्रक्ष्री
शङ्कुः—फह्लक्षूं
शङ्कुः—फलक्षूं
शङ्खः—ग्लां
शङ्खिनी—व्लूं
शपथः—क्रफ्रें
शफः—क्ष्लक्ष्लौं
शरणम्—फस्त्रां
शवः—ज्रौं
शाकिनी—फ्रें
शान्तिः—ड्रीं
शान्तिध्यः (?)—रट्रौं
शान्द्रः (?)—ह्लभ्रैं
शापः—क्रफ्रूं
शाम्भवम्—क्षरस्त्रां
खफ्रीं
शार्ङ्गः—रम्रूं
शालङ्कः—क्लह्लौं
शिक्षा—क्रीं
शिखा—रश्रीं
शङ्खिजनी—ह्लक्षूं
शिरः—ओं
शिल्पम्—क्षखफ्रैं
शुक्लम्—ह्लौं
शुचिः—रम्रें
शुद्ध निद्रा—ह्लक्लीं
शुभंयुकः—क्लफ्रैं
शुभंयुकः—क्लह्लौं
शूची—श्रैं
शूलम्—खफछरूं
शृङ्खला—रप्रौं
शृङ्खला—क्षरह्लूं
शेखरः—क्प्रीं
शेखरः—खफछ्रौं
शैशुकः—रफ्रौं

शौण्डः—भ्रीं
शौण्डिलः—रद्रें
श्मशानम्—ज्रौं
श्रीकण्ठः—खफ्ह्लं
श्रीवत्सः—श्रक्षज्रूं
श्रुतिः—फस्त्रैं
श्रेष्ठम्—ज्लां
श्लेषः—सह्लक्रों
षट्चक्रम्—फ्खभ्री
षडङ्गम्—रफ्रूं
सङ्कल्पः—क्षब्लौं
संक्रान्तिः—क्ह्रूं
संक्षतम्—श्रव्लां
संख्या—लूः
संगतिः—रखध्री
संगूढः—क्लक्ष्रं
संग्रहः—रत्रीं
संघातः—रफ्रों
सञ्जीवनी—श्रखफ्रूं
संज्ञा—ख्रीं
सन्ततिः—रखध्रव्लूः
संतलः—क्लक्ष्रूं
सन्तानम्—रज्रों
सन्तानम्—म्लूं
सन्तापः—खफम्रों
संतारः—हृछ्रैं
सन्तारः—क्षख्रीं
संदंशकः—क्षरस्त्रां
संदर्शनम्—छरह्लूं
सन्धानम्—ह्लक्षी
सन्धानी—रभ्रां
सन्यासः—श्रज्रौं
सन्ध्या—श्रं
सन्ध्या (?) क्षत्री
संपुटः—प्रौं
सम्पूर्णा—क्षठत्रीं

संप्रत्ययः—क्लह्लूं
संप्रदायः—सह्लक्रीं
सम्भावः—ह्लखफ्रीं
सम्भावना—ह्लक्लां
सम्भूतिः—खफह्लीं
सम्भ्रान्तिः—श्रव्लूं
सम्मोहः—ह्लभ्लैं
सम्मोहः—हसफ्रूं
संयमः—रब्रों
संयोगः—ह्लखफ्रूं
संवर्तकः—क्लरह्लूं
संवर्तकः—क्लरह्लां (?)
संवर्तकः—क्लफ्रीं
संवित्—फ्रें
संवित्तिः—ज्रत्रें
संविधानम्—क्ह्लैं
संविप्रत्ययः—स्त्रहूं
संवृत्तिः—सह्लक्रां
संवेतः—रण्रौं
संव्यानम्—ह्लफ्रूं
संसृष्टिः—क्ष्रक्लीं
संहारः—हसफ्रौं
संहारी—खफक्ष्रां
संहारिणी—क्लखफ्रूं
संहिता—क्षमरयऊं
सटा—ह्लैं
सती—क्रूं
सद्भयः—क्षज्लीं
सपिण्डः—क्श्रां
समक्षम्—क्ह्लौं
समरः—रकक्ष्रूं
समाधानम्—छरह्लीं
सम्वलः—ह्लफ्रैं
सर्गः—छरहभ्रां
सर्वस्वम्—ह्लछरीं
सर्वागमः—फखभ्रूं

सर्वार्थः—लक्षौं
सवनम्—ग्लक्षू
सह्यम्—क्ष्नक्षौं
साकलम्—रन्नू
साक्षी—रध्रां
सात्त्वतम्—रछरों
साधकः—रघ्रों
साध्यम्—क्रें
सानुः—रह्लीं
साम—रखध्रैं
साम्या—रखध्रैं
सारः—रखां
सारसः—रकक्ष्रौं
सारस्वतम्—ऐं
सारिघः—कहलश्रूं
सवित्री—फहलक्षीं
सावित्री—स्त्रें
सिंहकः—णूं
सिद्धान्तः—फस्त्रें
सिद्धिः—क्रां
सिद्धिफलम्—क्षखफ्रें
सिन्धुः—रप्रूं
सिफा—रघ्रें
सुकृतम्—रह्लछ्ररक्षह्लां
सुदर्शनम्—छरह्लूं
सुदर्शनः—स्कीं
सुनादः—अं
सुप्रभा—ह्लूं
सुरभिः—श्रैं
सुरसः—रकक्ष्रीं
सूक्ष्मा—ह्लां
सूत्रम्—रह्लौं
सूर्यावर्तः—श्रह्लीं
सृष्टिः—ल्रौं
सृष्टिः—हसखफ्रूं
सेतुः—ठ्रीं
सेतुः—रठ्रीं
सैन्धवः—लक्षैं
सोमः—ग्लौं
सौकलः—स्रां
सौमतम्—खफह्लूं
स्तनकालः—त्रप्लों
स्त्रीं:—स्त्रीं
स्थानी—फम्रग्लएं
स्थावरः—रभ्रीं
स्पर्शः—कैं
स्वरितम्—रप्रूं
स्वस्तिकम्—श्रह्लां
स्वापः—स्त्रौं
स्मृतिः—हलूः
हयग्रीवः—क्रूं
हर्षः—हें
ह्राकिनी—रक्षश्रीं
हारः—ह्लक्षम्लैं
हारकः—जरक्रीं
हारिणी—रजझ्रक्ष्रैं
हेतुः—छरक्रौं
हैमम्—च्रैं
ह्रस्व.—रछरें

उपबीजानां सूची

अक्षम्—ड़ें
अक्षय [क्षयः]—णां
अङ्गम्—सैं
अङ्घ्रिः—पिं
अञ्जनम्—जां
अथर्वः—मैं
अध्वकः—ह्रीं
अध्वर्युः—डों

अनार्यः—भौ
अनुतापः—थुँ
अनुयाजः—घौं
अन्तर्द्धिः—मुं
अन्वेता—जों
अपराधः—धूं
अपराधः—ञों
अपानः—टौं
अप्सरसः—गां
अरणिः—यों
अर्चा—शौं
अर्तिः—शूं
अर्थः—षीं
अर्हः—भां
अवज्ञा—क्षिं
अवभृथः—क्षों
अव्ययः—लैं
अशोकः—हें
अश्रु—फें
अश्वत्थः—ओं
असूया—णीं
अस्थि—नां
अस्थिभेदी—ठं
अस्त्रम्—दां
असृक्—हों
अहङ्कृतिः—पैं
आकारः—पुं
आग्नीध्रः—तों
आज्यम्—ढौं
आधानम्—त्रां
आयुः—ठां
आरतिः—लूं
आरम्भः—ठूं
आरोहः—भीं
आर्जवम्—ढें
आर्तिः—शूं

आलम्भः—ठें
आलस्यम्—ङीं
आवेगः—फुं
आशा—तुं
आश्विनः—तौं
आहवनीयकः—बौं
इच्छा—फां
इरयोगः—छूं
इरा—खां
इली—भं
ईर्ष्या—त्रीं
ईर्ष्या—षां
उग्रः—लुं
उदानः—टूं
उद्गाता—भों
उद्गीथः—ठैं
उद्धर्षः—एं
उद्धर्षः—एकएव
उदुखलम्—वों
उन्माथः—तं
उपस्थम्—मिं
उर्मिः—मिं
उषः—छां
ऋक्—फैं
ऋतम्भरा—सूं
ऋतुः—यैं
ऋषभः—गैं
ऐष्टिः—षें
औत्सुकम्—युं
कक्षा—में
कटंकटः—ढं
कषटः—ठुं
कला—ईं
कषायः—त्रीं
कर्तरी (?)—घं
क्लरः—श्रैं

कालः—जू
कीलः—टं
कुणपः—कं
कुण्डम्—धों
कुम्भकः—क्षीं
कुणी—यं
कूर्मः—तीं
कृकरः—तूं
कृपा—टें
कृपा—बूं
कोलः—रीं
कौटिल्यम्—यें
कौरजः—खं
क्रमः—क्षं
क्रूरः—सिं
क्रोधः—हूं
क्षतम्—यूं
क्षान्तिः—ठिं
क्षेत्रम्—इं
क्षेत्रपालः—क्षौं
खेदः—रूं
गणेशः—गं
गन्धः—कूं
गमनम्—ञ्नि
गर्वः—षिं
गान्धारः—त्वक् (?)
गाम्भीर्यम्—ढूं
ग्रावः—घों
गार्हपत्यम्—पों
गुडः—हं
गुणः—लां
गुप्तिः—डीं
ग्लानिः—शां
घृणा—म्रीं
घोणकी—ङूं
घ्राणम्—चूं
घ्राणम्—थिं
चक्षुः—चां
चमसः—फौं
चरुः—लों
चर्चिकारः—तूं
चापलम्—णुं
चिन्ता—ढिं
छावाकः—गों
छुरिका—पं
जडता—भुं
जिह्विका—चीं
जीवः—यां
जुगुप्सा—वूं
जुगुप्सा—पें
जुहूः—शों
ज्ञप्तिः—ड़िं
ज्ञानम्—फिं
तमः—लीं
तन्मात्रम्—पौं
तर्जनी—लं
तर्म (?)—मों
तारकम्—रां
तुष्टिः—भें
तृष्णा—छीं
त्रेता—भों
दक्षिणाग्निः—फों
दधि—चुं
दम्भः—रुं
दया—बें
दर्वी—सं
दर्शनम्—चिं
दानम्—भिं
दाम्यः (?)—धौं
दिक्—यीं
दिग्धः—फं
दिष्टिः—शें

दुःखम्—ञां
दुरी—षं
दुर्मदः—ञ्रू
देवदत्तकः—तैं
दैत्यम्—ञीं
द्वेषः—घां
द्रुमः—क्षं
द्रोहः—खें
द्रोहः—थूं
धनञ्जयः—तीं
धर्मः—ङि
धारणः—मीं
धारा—खूं
धीरः—चुं
ध्रुवः—यौं
ध्रुवा—षों
धूमला—वं
धैवतम्—ञौं
नता—पुं
नागः—तां
नादः—भं
नाराशंसः—नैं
नाशः—शि
निर्भयः—क्षें
निर्वेदः—फीं
निशठः—फं
निषादकः—छौं
निष्ठुरः—रें
नीतिः—भें
नेष्टा—छों
पञ्चमः—भैं
परगः—गुं
परिक्रमः—धूं
परितापकः—ञ्रूं
पार्कः—डौं
पाणिः—बिं
पालिः—मं
पांशः—आं
पुरुषः—पां
पुटकः (?)—क्षां
प्रकाशः—बुं
प्रकृतिः—पीं
प्रगाढः—बें
प्रणवः—ओं
प्रतिपष्ठातृकः—चों
प्रतिहर्ता—टों
प्रभावः—सें
प्रमादः—खुं
प्रमोदः—वौं
प्रयाजः—गौं
प्रवाहः—घूं
प्रवेशः—ढुं
प्रश्रयः—नीं
प्रस्तोता—भीं
प्रासादः—ह्रौं
फली—रं
बुद्बुदः—नें
बोधः—शूं
ब्रह्म—ठौं
ब्रह्मा—डों
ब्राह्मणः—ढों
भयम्—भि
भावना—छि
भीमा—धैं
भूरुहः—शीं
भेरः—धैं
भ्रान्तिः—हुं
मज्जनम्—गिं
मदः—लिं
मध्यमः—जैं
मन्थिनः (?)—थौं
मर्यादा—भूं

महत्तत्त्वम्–पूं
महाक्रोधः–क्षूं
महाप्राणः–टां
मांसम्–धां
मा–घिं
मातृका–पौं
मात्सर्यम्–गीं
मानम्–रिं
मानसम्–हीं
मुष्टिकः–धं
मूर्छा–हिं
मृतिः–मूं
मेदः–खिं
मेरुः–ङं
मैत्रावरुणः–खों
मोहः–खीं
मौनम्–गैं
यजुः–बैं
याजः–खौं
रचना–जिं
रजः–लौं
रज्जु–णं
रतिः–लूं
रया–लः
रश्मिः–दौं
रसः–कीं
रसना–निं
रुट्–मां
रूपम्–कां
रूरु (?)–लों
रेचकः–क्षैं
रेतः–किं
रोगः–थीं
रोमाञ्चः–घें
लयः–ढां
लोचनम्–चां

लोभः–यिं
लौल्यम्–ङां
वषट्–सौं
वाक्–जौं
वाक्–तिं
वाग्भव–ऐं
वात्सल्यम्–भ्रुं
विकल्पः–क्षुं
विकारः–वैं
विखेदः–ङें
वितर्कः–टुं
वियाजकः–ङौं
विवेकः–कें
विश्वास–घीं
विषम्–ङें
विषादः–कुं
विष्वक्–थां
विसंमदः–फूं
विसर्गः–टिं
विसर्गः–णिं
विष्वक्–थां
वृत्तिः–नों
वृत्तिः–लें
वेधी–शं
वैतस्तिकः–ङं
वैराग्यम्–दूं
वैराग्यम्–तें
वैश्वदेवः–गूं
व्यतिक्रमः–छें
व्याधिः–वुं
व्यानन्दः–टैं
व्यानम्–ङुं
शङ्का–जीं
शङ्कुः–जं
शंसिकः–णों
शतघ्नी–ङं

शब्दः—त्रौं
शल्यम्—छं
शिक्षा—शैं
शिवः—रों
शीर्षकः—चं
शुक्—घें
शुक्रम्—फौं
श्रद्धा—जें
शर्वरी—यें
श्रमः—सां
श्रुक्—चें
श्रुवः—सों
श्रोत्रम्—चौं
श्वासः—ठीं
षडजः—खैं
षोता—थों
संतोषः—ड्रूं
संभोगः—जुं
संभ्रमः—हुं
संमाथः—थं
संमानम्—थें
संयाजनम्—छौं
संवरकः—रैं
संतर्गः—बं
संवेदिः—दों
संहर्षः—दुं
सत्वम्—लां
समता—नुं
समाधिः—हैं
समानम्—टीं
समीहा—धुं
समूह्यकः—मौं
सहलः—घुं

सहायकः—नूं
सागरः—डां
साभ—भैं
सामिधेनी—रौं
सिंहकः—णूं
सुखम्—फां
सर्वः—ऊं
सुब्रह्मण्यम्—ठों
सुषुप्तिः—ढीं
सोमसंस्था—णौं
स्वधा—षौं
स्थालिसंस्था—थौं
स्फ्याः ?—व्रौं
स्तोभ.—थैं
स्थाणु.—उं
स्थैर्यम्—णें
स्नुक्—धिं
स्नेहः—मुं
स्पर्शः—कैं
स्पर्शः—दिं
सृष्टिः—भूं
स्वप्नः—घीं
हास्यम—दें
हायि—डैं
हिङ्कारः—णैं
हिङ्कारः—दैं
हूवा—ढैं
हेतिः—ञं
होता—कों
?　ढैं
?　सों
?　दों

कूटानां सूची

अक्षरम्—क्ष्हलह्लक्ष्रीं
अङ्कुरम्—ह्क्ष्महस्ह खफछरवरयीं
अग्निचित्—रलहक्षंहलव्रीं
अग्निष्टोमः—तलठलहक्षथलहक्षदलहक्षक्षरहम्लव्य्रईऊं
अघोरः—कसवहलक्षमऔं
अचलः—यमहलक्षखफ्ग्लैं
अत्यग्निष्टोमः—पलहक्ष शहसखफ्रें
अथर्वकूटम्—छक्षकहलक्षप्रौं
अद्वैतम्—जनहमरक्षयह्लीं
अनन्तः—रक्षक्रीं
अनाख्या—क्षरहम्लव्य्रऊं
अनाहतम्—क्षरहम्लव्य्रईऊं
अपराजितः—व्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं
अपुनरावृत्तिः—रहफ्रसमक्षफ्रीं
अभ्युदयः—सलहक्षक्लक्लीं
अर्द्धसावित्री—रलहक्ष कहलह्लस्त्रैंछ्सीं
अवभृथः—म्लरलहक्षव्लौं
अविद्या—ईसकहमरक्षक्रीं
अश्वः—मश्रां
अश्वप्रतिग्रहः—रलहक्षहलवलीं
अश्वमेधः—ह्लसलहसकह्लीं
अष्टाकपालः—क्षलक्षलहक्षक्लौं
अहङ्कारः—व्रमक्लयसक्षक्लीं
आग्नेयम्—रक्षम्लह्लकसछ्व्य्रऊं
आङ्गिरसम्—वलहक्षबत्रऊं
आज्ञा—क्षरहम्लव्य्रईऊं क्षसहम्लव्य्रईऊं
आदित्यः—म्लकह्लक्षरस्त्रीं
आदित्यम्—नदक्षटक्षव्य्रईऊं
आनन्दम्—स्हलकह्लक्ष्रूं
आनन्दमयम्—सफक्षयंवलमस्त्रश्रीं
आभासः—दलव्यरक्षक्रश्रीं
आशयः—म्लछ्लहक्षखफ्रक्रीं
इच्छा—कह्लवलक्षखफ्रीं
इन्द्रियम्—भ्रमस्त्रयग्लह्लीं
इषुः—रलहक्षक्लस्हफ्रऔं
ईडा—शम्लव्य्रईं

ईशानः–ब्रकम्लव्लक्लरं
उग्रम्–खमसहक्षवलीं
उपशमः–स्हफमव्रयक्षीं
उपाधिः–क्षम्लजरस्त्रीं
उपांशुः–सजहक्षक्लव्रीं
ऊर्ध्वम्–लमक्षकव्य्रस्त्रीं
ऋक्–खलक्षक्षय्व्रखफछ्रें
ऋद्धिः–मसक्षग्लयह्लीं
? एकम्–हससक्लह्लीं
(ऐकात्म्यम्)
एडः–रलहक्षकलसहफऊं
ऐन्द्रम्–रक्षलह्लमसहकव्रूं
ऐश्वर्यम्–टफकमक्षजस्त्रीं
कन्दर्पबलशातनम्–सलहक्षव्रठक्षऊं
कला–सक्षलहमयव्रूं
कलरः–खरसफम्लक्षछरयूं
कापाली–म्लव्य्रहईं
कामदः–कंहलंह्लंख्रौं
कावेरी–क्षमम्लीं
किञ्जल्कः–रसमस्त्रह्लव्य्रऊं
कुण्डलिनी–रक्षक्रींऊं
कुलम्–ज्रम्लक्षह्लछरीं
कृतिः–डलहक्षजलमफक्रो
केशरः–टलव्य्रमक्षहछरीं
कोण्डपः–म्लकह्लक्षस्त्रौं
क्रमः–मव्रटतक्षसहह्लीं
खेचरी–सखक्लक्षमध्रयज्लीं
गजः–लश्रौं
गजच्छायः–सहलक्षव्रठक्षईं
गन्धर्वः–च्लक्षमस्हव्य्रख्रौं
गारुडम्–तफरक्षम्लह्लौं
गुह्यकः–खफसहक्लव्रूंक्रौं सहकक्षक्षह्लमव्य्रऊं
गुह्या–ज्लहक्ष छपय्रहसखफ्रौं
गोदोहः–रलहक्षक्लसहफ्रऔं
गोमेधः–रलहक्षक्लसहफ्रआं
गोशवः–स्हक्षमह्लक्षग्लूं

गौः—म्लह्लक्षस्त्रूं
घनः—क्क्षस्हम्लश्रीं
चक्रः—मफ्लहलहखफ्रूं
चण्डः—खफ्रध्रव्य्रओंछ्रध्रीं
चन्द्रः—सकह्लमक्षखव्रूं
चयनम्—ड्लहृक्षम्लां
चित्तम्—सफ्रक्षक्लमखछ्रीं
चिद्घनः—पलङलहृक्षमव्रयीं
चिन्तामणिः—लक्षह्लमकसहृव्य्रऊं
चैतन्यम्—सक्लह्लहसखफ्रक्ष्रीं
जटा—क्लपक्षह्लमव्रूं
जीवात्मा—थलहृक्षकह्लमव्रयीं
ज्येष्ठम्—सक्लह्लीं
ज्योतिर्मयम्—डलहृक्षच्लद्रक्ष्मऐं
ज्योतिष्टोमः—गक्षटहृलक्षचक्षफलक्षूं
ज्ञानम्—फ्रखरक्षक्लह्लीं
डाकिनीं—मह्लक्ष्लव्य्रऊं
डाकिनी—खफ्रक्लक्ष्मसभ्रीं
तत्पुरुषः—क्षमव्लहृकयह्लीं
तनूनपात्—रलहृक्षक ्सहफ्रऐं
तन्मात्रम्—ईंसमक्लक्षह्लूं
तमः—क्षह्लम्लव्य्रई-क्षस्हम्लव्य्रईं
ताण्डवम्—म्लव्य्रमईं
तामिस्रम्—फ्रखस्हहृमव्रयूं
तारम्—ओं ह्लक्षम्लछव्य्रऊं
तार्तीयकम्—रजक्षमव्लह्लूं
त्रिजटा—स्हृक्षक्षकमफ्रव्रूं
त्रैकाल्यम्—क्लस्हृव्रमक्षछरयीं
त्रैपुरम्—ब्लक्षमकह्लव्य्रईं
त्रैलोक्यमोहनः—मंह्लंफ्लझ्रब्लूं
त्रैविक्रमम्—कहृलक्षछलक्रक्ष्मीऐं
त्वाष्ट्रम्—भ्रमलक्षव्य्रकरह्लीं
दर्शः—क्षलहृक्षक्षमह्लक्ष्लईं
दीक्षा—मलहृक्षग्लव्रीं
दीर्घसत्रम्—स्हम्लक्षह्लभ्लौं
दृष्टिः—ग्लक्लमझ्रस्त्रीं

देवी–छरमह्लक्षस्त्रूं
द्वादशाहः–क्षलहक्षम्लव्रीं
द्वेषः–गरमश्रव्लक्षश्रीं
धरा–ग्लक्षक्रमह्लव्य्रऊं
धर्मः–रलहक्ष समहफ्रछरीं
धातुः–धम्रव्लक्षफ्रखछरीं
धोमावत्यम्–फ्रतक्षमलहक्षहथलहक्ष ह्लूं
नदः–रक्षक्वमसहह्लीं
नृद्यावर्तः–क्षलहक्षक्ष्म ह्लक्लएं
नरमेघः–रलहक्षक्लस्हफ्रईं
नागयज्ञः–रलफलहक्षखफछरौं
नादः–टहलक्षद्रडलरफ्रीं
नाभसम्–टक्षसनरम्लैं
नारसिंहः–क्षम्लव्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं
नित्यम्–गलहक्षम्लजक्रूं
निमित्तम्–ग्लांम्लह्लश्रयीं
निरञ्जनम्–ब्लटकक्षम्रीं
निर्वाणम्–क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं
निवृत्तिः–फ्रथक्षमफ्रश्रौं
नैगमम्–तम्लव्य्रईं
नैर्ऋतम्–ह्लमक्षव्रलखफ्रऊं
पदम्–रलहक्षहक्षक्षसक्लह्लीं
पद्मम्–म्लव्य्रवऊं
परमात्मा–तत्त्वमसि रत्रौं ओं
परमार्थः–सफ्रकह्लरश्रमक्षीं
परा–सहक्लह्लीं
परापरम्–हस्लक्षकमह्लब्रूं
पाशुपतम्–सग्लक्षमहरह्लूं
पिङ्गला–गहलक्षक्षकटलक्षरप्रीं
पिण्डः–फ्रनमयसक्षछरीं
पुण्डरीकः–फ्लक्षह्लस्हव्य्रऊं
पुष्करः–सहक्षम्लव्य्रईं
पूर्णकामः–क्रखभ्रआंक्लमज्ञयूं
पैशाचम्–कमहलचहलक्षरज्रीं
पौरषम्–रक्षखरईं
पौर्णमासः–क्षलहक्षक्षमह्लक्षलऊं

प्रकृतिः—फ्रक्षस्त्रमक्रूं
प्रज्ञा—रब्लकममक्षग्लीं
प्रतिबिम्बः—छरक्लव्यमक्षयूं
प्रत्ययः—टलसकम्लक्षटस्ली
प्रपञ्चः—खफलक्ष ह्लमहकव्रूं
प्रबोधः—एसकहलक्षांव्यम्रूं
प्रभा—सलहक्षचलहक्षजलहक्षजक्षत्र्ं
प्रमाणम्—छव्रमकव्यऊं
प्राजापत्यम्—पक्षलव्रझ्रफ्रूं
प्राणः—क्म्लव्यईं
प्रासादः—सहछरक्लमरव्यऊं
फैरवम्—टम्लव्यईं
बन्धः—जलहक्षटलझ्रव्रीं
बलभिद्—स्हफसक्लह्लओं
बल्ली—म्लमक्षग्रह्लछरीं
बुद्धिः—मघस्त्रकक्षलक्रीं
ब्रह्ममयम्—ब्रह्माहमस्मि
ब्रह्मयज्ञः—कह्लवक्षक्रीं
ब्रह्मसवः—मंह्लंक्लझ्रव्रूं
ब्राह्मम्—क्लक्ष ह्लव्रमयऊं
भार्गवः—खफसहलक्षूं
भाषा—क्षह्लम्लव्यऊं
भैरवः—क्लक्षमफहसौः
भैरवी—क्षमक्लह्लहसव्यऊं
भोगः—चरक्लहमह्लूं
भौमम्—म्लव्यहऊं
मणिः—भक्लरमहसखफ्रूं
मणिपूरकम्—क्षस्हम्लव्यईऊं
मनः—ड्लखलहक्षखम······
मन्त्रः—सहक्लरक्षमजह्लखफरयूं
महत्—च्लक्रथलहक्षह्लीं
महानिर्वाणम्—क्षह्लम्लव्यऊं क्षस्हम्लव्यऊं
महाव्रतम्—स्हक्षमह्लक्षग्लीं
महोदय—ह्लखफ्रूंरच्रांव्यक्रीं
माध्वीकम्—ठफक्षथलमकस्त्रूं
मानवम्—तलहक्षक्वतलक्लींघयां बलहक्षरफ्लौं चहलक्षटलब्लौं

माया–जरब्ध्रसहक्षभ्रीं
मार्तण्डः—लह्लकक्ष्मस्ह्व्य्रएं
माला–प्रस्ह्म्लक्षक्लीं
माला–ह्रह्क्ष्मसह्लीं
माहेश्वरम्–श्वलह्लभ्रकह्लनसक्लईं
मूलाधारः–रक्षखरईऊं
मृत्युञ्जयः–ह्लसहकमक्षव्रूऐं
मेध्यम्–खगजरह्लसह्लूं
यजुः–ग्लकक्षह्लैं
याम्यम्–ह्लक्षकमवूं
योगः–खह्लक्षक्वक्षलह्क्ष······
योगभूमिः–पठ्सक्षस्त्रक्रीं
योनिः–क्लमयक्षलह्क्षव्रीं
रजः–क्षस्ह्म्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं
रत्नम्–क्ष्मलरस्रह्व्य्रह्लूं
रत्नहलः–स्ह्फ्रकफ्लह्लस्त्रीं
रथः–ह्लश्रीं
रथन्तरम्–सक्लह्लकह्लीं
राजसूयम्–पलहक्षक्ष्मझ्रइच्रूं
रेखा–समब्लकक्षव्य्रऊं
रोदसी–ह्लूक्षमह्म्लूं
रोमकूपः–लव्य्रमस्त्रक्ष्रब्रूं
रौद्रः–जमरब्लह्लयूं
रौद्रः–सहठ्लक्षह्लमक्रीं
लक्ष्मीः–क्लम्लक्षस्ह्श्रीं
लयः–साहमेवास्मि
लिङ्गम्–मह्व्य्रऐं
वज्रम्–छरस्ह्क्षब्लश्रीं
वज्रकङ्कः–क्षलह्क्षक्ष्मह्लक्लआं
वर्णः–खफछरएव्रह्लक्ष्मऋरयीं
वंहिरथः–क्षलह्क्षम्लक्लीं
वसिष्ठः–खह्लक्षमरब्लईं
वाजपेयम्–ह्लन्क्षवलह्सखफौं
वामदेवः—रजह्लक्षमऊं
वायवीयम्–क्षम्लकस्ह्रयव्रूं
वाराहः–म्लक्षकसहह्लूं

वारुणम्—ह्लहलव्भ्रकऊं
वासना—लयक्षकहस्त्रग्रह्लीं
वासवम्—नदक्षटक्षव्भ्रऊं छलहक्षलक्षफ्लऊं
विज्ञानमयम्—स्हव्भ्रखक्षमक्रूं
विद्धम्—क्षस्हम्लव्भ्रईऊं क्षह्लम्लव्भ्रईऊं
विपाकः—भक्ररहक्षमव्भ्रऊं
विश्वजित्—क्षक्षक्लफचक्षक्षौं
विष्णुः—क्षक्षश्रूं
विष्णुविक्रमः—कंहलंह्लंक्षूं
वीरः—म्लव्भ्रवईं
वृद्धिः—स्हक्लव्भ्रक्ष्रीं
वृहत्—स्हकह्ललह्लीं
वैकारिकम्—खक्षमव्लईं
वैनतेयः—क्षक्षमह्लकहलश्रीं
वैराग्यम्—घशडलझ्रह्लीं
वैष्णवम्—ग्लफक्षफक्ष्रीं
वैहायसम्—हलक्षकमह्लसव्भ्रऊं
व्यूहः—क्म्लक्षसहव्लूं
व्योम—क्लह्लमव्भ्रऊं
शक्तिः—क्सखयग्रमऊं
शङ्खचूडा—सलहक्षव्रठक्षआं
शाङ्करम्—लक्षमह्लजरक्रव्भ्रऊं
शाम्भवम्—स्हजहलक्षम्लवनऊं
शुद्धः—ज्लकहलक्षव्रमश्रीं
श्येनः—रलहक्षक्लस्हफ्रअः
श्रीकण्ठः—क्लक्षसहमव्भ्रऊं
षडूर्मिः—ख्रफह्लमक्षश्रीं
षोडशी—मक्षक्रस्हखफछरूं
सम्मुखम्—सलहक्षव्रठक्ष........
संहारः—स्हक्षम्लव्भ्रऊं
सत्ता—ध्लव्भ्रम्रछरखीं
सत्त्वम्—क्षह्लम्लव्भ्रईं
सदसत्—तलमक्षफलहक्षव्रीं
सद्योजातः—हक्लह्लवडकखऐं
समयः—ब्लकक्षहमस्त्रछरूं
समित्—रलहक्षक्लस्हफ्रअं

सर्पः–म्लवह्लक्षरस्त्रैं
सर्पसत्रम्–सह्म्लक्षह्लम्लीं
सर्वतोभद्रः–ग्लक्ष्मह्लचहलक्षक्षरस्त्रां
सर्वस्वदक्षिणः–महलक्षग्लक्लीं
साक्षी–टलहक्षस्त्रमव्रयीं
साम–ठ्लव्रखफछरीं
सिद्धम्–खलह्लक्लगक्षरछ्रीं
सुचिद्–रलहक्षफलस्हध्रीं
सुवर्णम्–क्लीं भ्रीं ध्रीं
सुषुम्णा–यम्लव्यइं
सूक्ष्मम्–मफठक्षव्रीं
सूर्यः–स्हश्रैं
सृष्टिः–रक्षखरऊं
सेतुः– ·······[?]
सौत्रामणिः–ग्लरक्षफ्रथरक्लीं
सौभरः–क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्लऐं
सौभाग्यकृत्–क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्लओं
स्थितिः–रक्षक्रूं
स्मृतिः–कहश्चव्यरक्ष्रीं
स्वप्नावती–खक्षहलक्षव्रलइं
स्वस्तिकम्–तफलक्षकमश्रव्रीं
स्वाधिष्ठानम्–स्हक्षम्लव्यईऊं
स्वायम्भुवम्–क्ष्लह्लसक्रूंइं
स्वाहकारः–रलहक्षक्लस्हफएं
स्विष्टकृत्–क्षक्षकह्लस्हज्ञयूं
हंसः–ब्लहतह्लसचैं
हंसक–स्हक्ष्लमह्लच्रूं
हेमा–क्लक्ष्मसहश्चव्रीं
हैरण्यकेशीयम्–व्यक्लक्षह्लम्लूं
हैरण्यगर्भः–क्षस्हम्लव्यइं

———

वैदिकसूक्तनाम्ना प्रसिद्धाः कूटाः

अग्निषोमीयम्–समलक्षग्लरुगीं
अनन्तसूक्तम्–थमक्ष्लकव्रह्लस्त्रूं
अस्यवामीयम्–ह्लक्षफकम्लइं
आथर्वणाव्–क्षलब्लदलखफ्रें

आर्यम्णम्—सहएंक्लरक्ष्रीं
ऐन्द्रवारुणम्—धग्लक्षकमह्ल्व्यऊं
ऐन्द्राग्नम्—पपक्षम्लस्हखफां
औदुम्बरम्—क्षलव्लद्लह्लखफें
औशनसम्—थफखक्षलव्यइँ
गारुडम्—तफरक्षम्लह्लौं
गृत्समदीयम्—नजरमकह्लक्ष्लश्रीं
देवी—द्रैंजमरव्लह्ल्यूं
नतमहः—मव्लयटतक्षइँ
नाचिकेतसम्—क्लटव्यक्षम्लीं
नाराशंसीयम्—क्षलह्लक्षभलम्लूं
नीललोहितम्—हरसकक्षम्लस्त्रीं
नैर्ऋतम्—डम्लक्षब्रखफस्त्रींह्लूं
पर्यायः—चम्लह्क्षसकह्लूं
पावमानी—रसमयक्षह्लस्त्रीं
पौरुषम्—क्लश्रमक्षह्लम्लऊं
भारुण्डा—यरक्षम्लव्लीं
मानस्तोकम्—दरजभ्रम्लकक्ष्रीं
माहित्रम्—फ्लक्षमकह्लूं
मैत्रावरुणम्—नमह्क्षव्यह्लूं
लक्ष्मीः—क्लम्लक्षस्हश्रीं
वायव्यम्—डम्लक्षब्रखफस्त्रीं
वार्हस्पत्यम्—ग्क्षगम्लरह्लौं
विनायकः—क्षलह्क्षक्लस्त्रूं ग्लमक्षसक्लह्रीं
विराट्—धग्लक्षकमह्लव्यऊं
वैभ्राजः—लसरक्षकमव्यद्रीं
वैश्वदेवः—पटक्षम्लस्हखफ्रूं
शिवसंकल्पः—हम्लकक्षव्यलछ्रीं
शुद्धवती—स्त्रहलक्षह्लमव्रीं
श्रीः—ह्लकझक्षश्रीं
सोमारौद्रम्—रमयपक्षव्रूं
हविष्यान्तम्—ह्क्षमकह्लछरीं
हैरण्यकेशीयम्—व्यक्लक्षह्लभ्लूं

पर्वतनाम्ना प्रसिद्धकूटाः

अस्तः—फग्लसहमक्षव्लूं

उदयः–लगमक्षखफसह्लूं
उच्चखण्डः–स्फम्सकम्लक्ष्रज्रीं
कैलासः–शम्लह्लव्य्रखफैं
त्रिकूटः–हसखफ्म्लक्षव्य्रऊं
मन्थानः–म्र्र्यक्षक्षसहफ्रीं
मन्दारः–ह्रक्षफसमहह्लव्य्रऊं
मेरुः–रहक्षम्लव्य्रऊखफछरस्त्रह्लीं

नाडीनाम्ना प्रसिद्धकूटाः

अग्निज्वाला–जररलक्षम्लव्य्रईं
अचला–मक्षक्लक्षव्य्रछ्रूं
अपुनर्भवा–यसम्लक्षसकह्लव्य्रईं
अलम्बुषा–व्रहठ्म्लह्लूं
अव्यक्ता–चमट्क्षव्य्रछ्रीं
आप्यायनी–नरक्ष्ल्ह्क्षकम्लव्य्रह्लीं
आलस्या–सक्ष्मह्लखफह्लीं
आवेशिनी–क्लह्लक्ष्ल्ह्क्षमव्य्रईं
कर्पदिनी–र्ल्ह्क्षडम्लव्रखफ्रीं
कपिला–म्ह्ल्क्षलखफव्य्रह्लीं
कर्षिणी–गमत्क्षखफह्लव्य्रईं
कारिणी–क्लस्म्क्षरखफव्य्रऊं
कुहूः–सहव्रह्लखफयीं
कृन्तनी–जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं
कैवल्या–रमयछ्रक्षक्लह्लीं
कोटरा–चफसलहक्षमव्य्रऊं
क्लिन्ना–सहक्लक्षमह्लग्लूं
क्षिप्ता–कव्रम्लक्षस्हक्लूं
क्षेपणी–क्षग्लफस्हर्फ्रीं
गान्धारी–हम्लक्षव्रसह्लीं
गालिनी–क्लक्षमग्लव्य्रह्लूं
घण्टिका–ग्लमक्क्षह्लछ्रव्रीं
घर्घरा–ह्क्षम्लव्रसहरक्लीं
चण्डा–चफक्लह्लमक्ष्रूं
चण्डी–र्क्ष्रस्त्रम्लव्य्रईं
चन्द्रा–भनटत्क्षफ्लव्य्रऊं
चन्द्रावती–सनटमस्क्षव्लभ्रीं

चित्रा—कह्फलमह्लव्य्रऊं
चेतना—सक्लएईह्लीं
ज्वालिनी—रमरयछ्रखफ्रीं
तपिनी—ण्क्षव्य्रह्लूं
तन्द्रावती—ठलक्षफलव्य्रछ्रीं
तापिनी—लक्ष्ल्ह्क्षमकह्लीं
तुरीया—त्रक्षम्लसह्लछ्रूं
तेजस्विनी—सनह्लक्षमव्लूं
दीप्ता—श्लक्षह्मह्लह्स्ख्फ्रूं
द्राविणी—छ्रम्लक्षत्रकह्लीं
धमनी—म्लक्षह्लसह्रव्य्रऊं
धीरा—समह्क्षव्य्रऊं
धूम्रा—डमत्क्षह्लव्रीं
धोरिणी—पत्क्षयह्लक्लख्फ्रीं
नन्दा—सह्म्क्षलखभ्रक्लीं
निम्ना—सरह्खफ्रम्लव्रीं
निर्वाणा—हंसम्लक्षप्रक्लीं
पयस्विनी—छ्रम्लक्षफ्लह्लह्म्रीं
पूतना—व्य्रक्लक्ष्मछ्रीं
पूर्णा—रमकमह्लक्षछ्रीं
पूषा—थह्र्त्रफ्रह्लमव्लूं
प्रकाशिनी—क्षकभ्रह्लह्लमव्य्रईं
प्रबुद्धा—लह्लक्षकमव्य्रह्लीं
प्रशान्ता—नकव्लम्क्षफ्रह्लीं
बन्धनी—रस्क्षस्त्रकह्लह्लीं
भासुरा—क्ष्मंसकह्लीं
भ्रामिणी—मक्लक्षकसखफ्रूं
मधुमती—सरम्लक्षह्स्ख्फ्रीं
मन्दा—मथह्ल्क्षप्रह्लूं
मरीचिः—कस्ह्क्ष्क्षमश्रूं
माण्डवी—द्रमटत्क्षसह्क्लीं
मुदिता—ह्म्लक्षमप्लत्रूं
मूला—व्रकजङ्म्रमक्ष्लऊं
मैत्री—चखफलक्षकस्ह्ख्फ्रऊं
यशस्विनी—म्लक्षफलछ्रीं
योगनि·श्रेणी—मह्लक्षक्लमव्य्रस्त्रीं

रञ्जिनी—समतरक्षखंफछ्रक्लीं
रसवहा—ब्लक्षफहमछ्रक्रीं
रुचिरा—लकछ्रजरक्रीं
रण्डा—चछक्लह्लमक्ष्रूं
रूक्षा—छ्रमकभ्रहयह्लूं
रेवती—दमनडतक्षतहव्म्र्यइं
लम्बिका—टनतम्क्षब्लयछ्रूं
लोहिनी—ख्फ्रमसलहक्षग्लऊं
वारणा—ज्रलह्लफव्म्र्यऊ
विकम्पिनी—सह्लक्षकह्लहूं
विकल्पा—सस्ह्ल्क्षह्लकमर…?
विग्रहा (अविग्रहा)—रहक्षमवलह्लीं
विचित्रा—क्लसहमह्लक्षश्रीं
विश्रान्तिः—व्रक्षम्लसह्लछरीं
विलम्बिनी—रहह्लव्म्र्यक्लीं
विवर्णा—जरक्षलहक्षम्लव्म्र्यइं
विशाला—रम्क्षब्लस्हरह्लीं
विश्वदूता—ग्लक्षकमह्लस्हव्म्र्यऊं
विश्वोदरा—र्क्षलहव्म्र्यइं
विसर्गा—र्ल्ह्क्षम्लख्फ्रछ्रूं
विस्मृता—समरक्क्षब्लरह्लूं
वेगवती—क्ललरसहमश्रीं
शङ्खिनी—रहहक्लव्म्र्यऊं
संकोचिनी—समह्लक्षर्क्ष्रमस्त्रूं
संमोहा—नक्षमज्लह्क्षखफ्रव्म्र्यऊं
सती—तम्ह्ल्क्षक्लफ्रग्लूं
सरस्वती—क्षमक्लरक्ष्ल्हक्षव्म्र्यऊं
सर्गा—रलहक्षम्लखफ्रछ्रीं
सुकन्या—रहसहम्लक्षस्त्रीं
सुमुखी—यम्लरक्षसह्लक्लूं
सुरभिः—जररलहक्षम्लव्म्र्यऊं
सौवीरी—ब्रहक्षमह्लक्लीं
स्निग्धा—ह्लसग्लक्षव्म्र्यऊं
स्वप्नवहा—घलसहक्षक्क्षक्ल म्रीं
हस्तिजिह्वा—सफक्ष्लमहप्रक्लीं

हिता—क्लसह्मव्रयूं
हेमा—जरङ्ग्रह्लमक्षक्लव्यऊं
(?) ....छ्रस्ह्क्षमक्लव्रूं

नदीनाम्ना प्रसिद्धकूटाः

अलकनन्दा—ब्लयरठह्लमक्ष्रूं
उत्पलिनी—खरगवक्षमलयव्य्रइं
ऊर्मिला—एक्लयक्षम्रट्रीं
ऐरावती—मक्षह्लरलब्लइं
करतोया—ब्लयक्षमङ्ग्रग्लश्रूं
काबेरी—छत्क्षठ्नह्लब्लीं
किरणा—ररटकरक्ष्रम्रीं
कृतमाला—रजम्क्षकम्लीं
कृष्णबेल्ला—ख्लमक्षमलव्य्रइं
कोकनदः—क्लह्क्षमव्य्रफ्रीं
कौक्षिकः—सह्फ्लक्षह्लमव्रीं
कौशिकी—रसमयक्षक्लह्लीं
गङ्गा—यस्ह्प्लम्क्षह्लूं
गण्डकी—क्लसमयग्लह्लफ्रूं
गोदावरी—गमह्लयक्ष्लम्रीं
गोमती—गपटयजक्लूं
घर्घरः—व्य्रतह्लक्षह्रीं
चन्द्रभागा—जसदनस्ह्क्षग्लूं
चम्पावती—ह्लमलक्षग्रस्त्रीं
चर्मण्वती—क्लपट्क्षमव्य्रइं
ज्योतीरसा—कह्लक्षभ्रक्षम्लव्रइं
तमसा—कब्लयसम्क्षब्र्छ्रूं
तयापका (?)—मयरसह्लक्षछ्रफ्रीं
तापी—मसफ्लभर्क्षव्य्रह्लूं
ताम्रपर्णी—धमसेरब्लयक्ष्रूं
तिमिरा—छपतयक्लम्रीं
तुङ्गभद्रा—खतक्लक्षमव्य्रह्लूं
तुरावती—तगफ्रक्षमकह्लूं
दृषद्वती—फसधमश्रयव्लूं
देविका—ह्लमक्षकमह्लीं
नर्मदा—भलनएदक्ष्रीं

निर्विन्ध्या—क्ह्लजम्क्षरव्य्रऊं
पयोष्णी—क्रयनप्लक्षीफ्रीं
पर्णाशा—व्य्रघरम्क्षच्लीं
पालिता—मयभनस्लक्ष्रूं
पाराश्वती—परमक्ष्ल्ह्क्षऐंछ्रीं
प्रवाहिनी—नहर्क्षस्त्रम्लह्लीं
फल्गुः—सहकर्क्षमह्लव्लूं
फेनिला—वरनयक्ष्मग्लह्लीं
बन्धुरा—र्क्ष्मध्व्रछ्रस्त्रफ्रीं
भीमरथी—ठक्ष्मलध्व्रछ्रीं
भोगवतीं—यरव्लम्भ्रह्रूं (?)
मलप्रहारिणी—झ्रक्षग्लमव्य्रईं
मन्दाकिनी—फ्रप्क्षग्लम्रीं
महानदी—क्ष्लमरझ्ररघ्रीं
मालिनी—समहह्लक्षख्रफ्रस्त्रीं
मुरला—डपतसगम्क्षव्लूं
मेखला—चरफयम्लक्ष्मह्लूं
यमुना—ट्लर्लक्षफ्रखफ्छ्रीं
लोहित्यः—ज्लह्लक्षगमछ्रखफ्रीं
(ब्रह्मपुत्रम्)
वंक्षु—क्षफ्रगकह्लंनमत्रूं
वरुणा—नमयव्लक्षरश्रूं
वाग्मती—छ्रड्क्षसहफ्रव्लीं
बाहुदा—रगहलक्षम्लयछ्रूं
वितस्ता—चमरग्क्षफ्रस्त्रीं
विपाशा—टर्क्षप्लमह्लूं
विरजा—नमव्लह्लक्षम्रग्लूं
वैत्रवती—रसमयरक्ष्क्षग्लीं
शतद्रुः—जगतरक्ष्मलयकनइं
शरावती—समरग्क्षह्स्खफ्रीं
, (शिप्रा) शीता—गसघमरयव्लूं
शोणः—मव्लक्षफ्रध्रीं
सरयूः—फ्रदमहयनह्लूं
सरस्वती—ट्लत्लट्लक्षफ्रख्फ्छ्रीं
ससभंगा—समग्क्षलयव्लूं
सिन्धुकः—त्क्षक्लव्रध्व्रछ्रूं

सिप्रा—छ्रडतजलूं
सुवर्णरेखा—ईक्ष्क्षएएक्लह्रीं
सोमस्रवा—प्रहरक्षमहह्लक्लीं
हिरण्याक्षः—शक्षम्ब्लयक्लऊं

वर्णनाम्ना प्रसिद्धाः कूटाः

अरुणम्—र्क्षरजक्ष्मक्ष्मरह्म्लव्म्रछ्रीं
उल्वणः—ऐक्षकसखफ्रव्म्रऊं
ऐन्द्रगोपः—क्लम्क्षमफख्रच्छ्रीं
कपिलः—क्षव्लकस्त्रीं
कपिशः— डखछ्रक्षहमम्फ्रीं
कर्बुरः—ह्लक्लक्षम्लश्रूं
कल्माषः—चफ्क्षलकमयह्लीं
कृष्णः—गसनह्क्षव्रइं
काद्रवः—क्ललफ्ररसम्क्षक्लछ्रूं
कौसुभम्—म्रलक्षकह्लख्फ्रछ्रीं
गौरः—कप्रम्लक्षयक्ष्लीं
तैत्तिरः—छ्रक्षग्लमस्त्रव्म्रऊं
धवलः—म्लग्क्ष (श्र ?) एफ्रीं
धूमः—कह्लब्लजूं
धूसरः—ब्रसरङ्म्रम्क्षव्रक्लीं
नीलम्—फलंयक्षकयब्लूं
पाटलम्—ठक्लक्ष्मलव्म्रह्लूं
पाण्डुरः—व्रतरयह्लक्षम्लूं
पाण्डुः—क्लयनह्क्षकहश्रूं
पिङ्गला—स्त्रह्लफ्रम्रीं
पीतः—ग्लकम्ल्ह्क्षत्रीं
बभ्रुः—फ्लमधह्क्षक्षव्म्रऊं
मायूरम्—ख्फ्ंछ्रम्लग्रक्लीं
रक्तम्—करह्लर्खफछ्रम्रीं
राजसम्—फ्रक्षब्लूं
रोहितम्—ह्लमकक्षह्लइं
लोहितम्—टसमनह्क्षमखरऊं
विचित्रम्—र्ल्ह्क्षलमह्लूं
शङ्करः—जनथ्क्षकम्लब्रइं
शवलः—टरयलह्लब्लछ्रीं

शुक्लः—शम्लक्लयक्षह्लूं
शुचिः—कम्क्षव्य्रकछ्रूं
शोणः—खक्ष्मरक्षलह्क्षव्लह्लीं
शोकः—छ्रलक्षक्म्लह्लीं
श्यामः—न पटजक्षफं जममक्ष कह्लव्लजूं ??
श्वेतः—ह्लमक्क्षह्लफछ्रीं
हरिः—ह्क्षह्व्लकमह्लश्रीं
हरिणः—ब्लक्क्षग्रमवरह्स्त्रूं
हरितम्—झ्रक्स्त्रक्षश्रीं
हारीतः—म्क्षव्लह्लकमव्य्रईं
हारिद्रम्—जलयक्क्षग्लफूं

———

उपकूटाः

अचेतनम्—सखह्लक्ष्महौं
अतिबला—सखह्लक्ष्मस्हौं
अन्तर्द्धिः—सखह्लक्ष्मध्रीं
अपस्मारः—सखह्लक्ष्मठौं
आग्नेयः—रम्लव्रीं
आर्क्षः—क्ष्फ्लूं
उत्पातः—सखह्लक्ष्मक्रीं
उन्मादः—सखह्लक्ष्मव्लौं
उलूकः—सखह्लक्ष्मसौः
ऐन्द्रम्—लम्लव्रीं
ऐषीकम्—र्क्षह्लभ्रघ्रम्लऊं
औदुम्वरम्—रक्षझ्रभ्रध्रम्लऊं
कम्पनः—वम्लव्रीं
कालः—यम्लव्रीं
कालकूटम्—क्ष्म्लूं
कूष्माण्डः—सखह्लक्ष्मग्लीं
कौवेरम्—ड्म्लव्रीं
गान्धर्वः—र्क्षभ्रध्रयम्लऊं
गालनः—सखह्लक्ष्मस्त्री
गुह्यम्—क्ष्रज्रीं
चक्रम्—र्क्षब्रभ्रध्रम्लऊं
जम्भः—र्क्षत्र भ्रध्रम्लऊं

जृम्भनः—र्ल्क्षध्रम्लऊं
ज्वरः—सखह्लक्ष्मक्लां
तामसः—ह्लक्षम्लक्रयूं
तैमिरम्—ह्लक्षम्लग्रयूं
त्रैदशास्त्रम्—सखह्लक्ष्मठ्रीं
त्वाष्ट्रः—ह्लक्षम्लड्रयूं
दानवः—र्क्षक्रभ्रध्रम्लऊं
नागः—ह्लक्षम्लफ्रयूं
नारायणास्त्रम्—ओंश्रेंक्लीं
निमीलनम्—सखह्लक्ष्मफों
पार्जन्यम्—स्ल्ह्क्षह्लूं
पार्वतः—ह्लक्षम्लस्रयूं
पाषाणः—ह्लक्षम्लह्लयूं
पैशाचः—र्क्षभ्रम्लऊं
प्रस्वापनम्—रसखग्रमूं
प्राजापत्यास्त्रम्—ह्लफकह्लीं
फैरवः—सखह्लक्ष्मक्रैं
बला—सखह्लक्ष्मक्रों
ब्रह्मशिरः—क्ष्क्लूं
ब्राह्मम्—क्ष्लफ्लओं
भारुण्डः—क्ष्ह्लीं
भौतम्—र्ल्ह्क्षफ्रूं
भ्रामकः—सखह्लक्ष्मह्रूं
मकरः—सखह्लक्ष्मश्रीं
मातङ्गः—र्क्षफ्रभ्रध्रम्लऊं
मारणः—सखह्लक्ष्मग्रीं
मूर्च्छनम्—सखह्लक्ष्मह्लीं
कोहनः—सखह्लक्ष्मस्फों
याम्यम्—ह्म्लव्रीं
राक्षसम्—क्षक्लीं
राजसः—क्षह्लूं
वायव्यम्—सम्लव्रीं
वारुणम्—कम्लव्रीं
विद्युत्—क्ष्ल्ह्क्षड्रूं
वेतालः—क्षब्लूं
वैनायकः—क्षह्लीं

वैष्णवम्–ह्लक्ष्मलीं
शाङ्करम्–स्हक्ष्लक्षें ख्फ्रीं
शारभः–क्ष्रग्लूं
शावरः–क्षफ्लीं
शौरम्–क्षव्लीं
सौपर्णः–ह्लक्षम्लव्र्यूं
स्कान्दः–खमह्लीं
स्तम्भनः–सखह्लक्ष्मजूं
स्वप्नः–सखह्लक्ष्मक्लीं
हैमनम्–क्षम्लीं

———
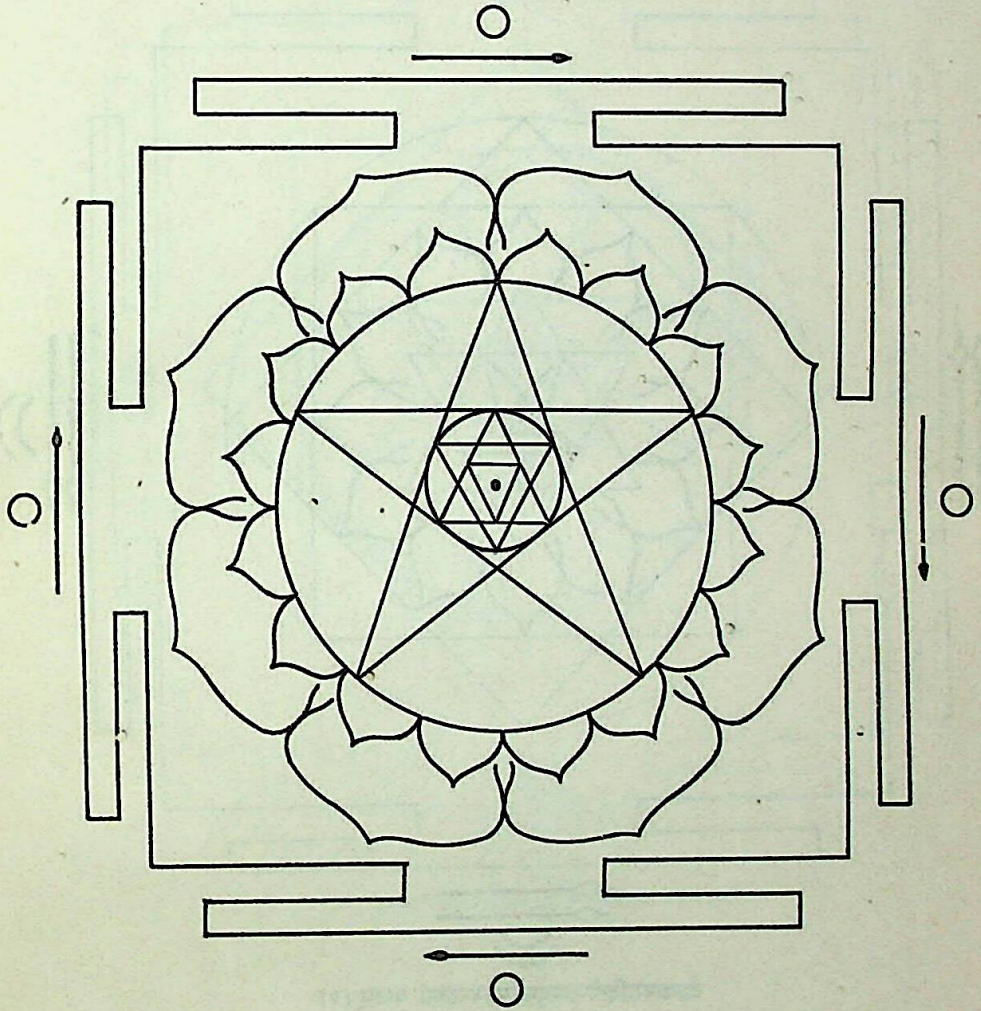
विधातृकामवरुणोपासितमन्त्राणां यन्त्रम् (१)
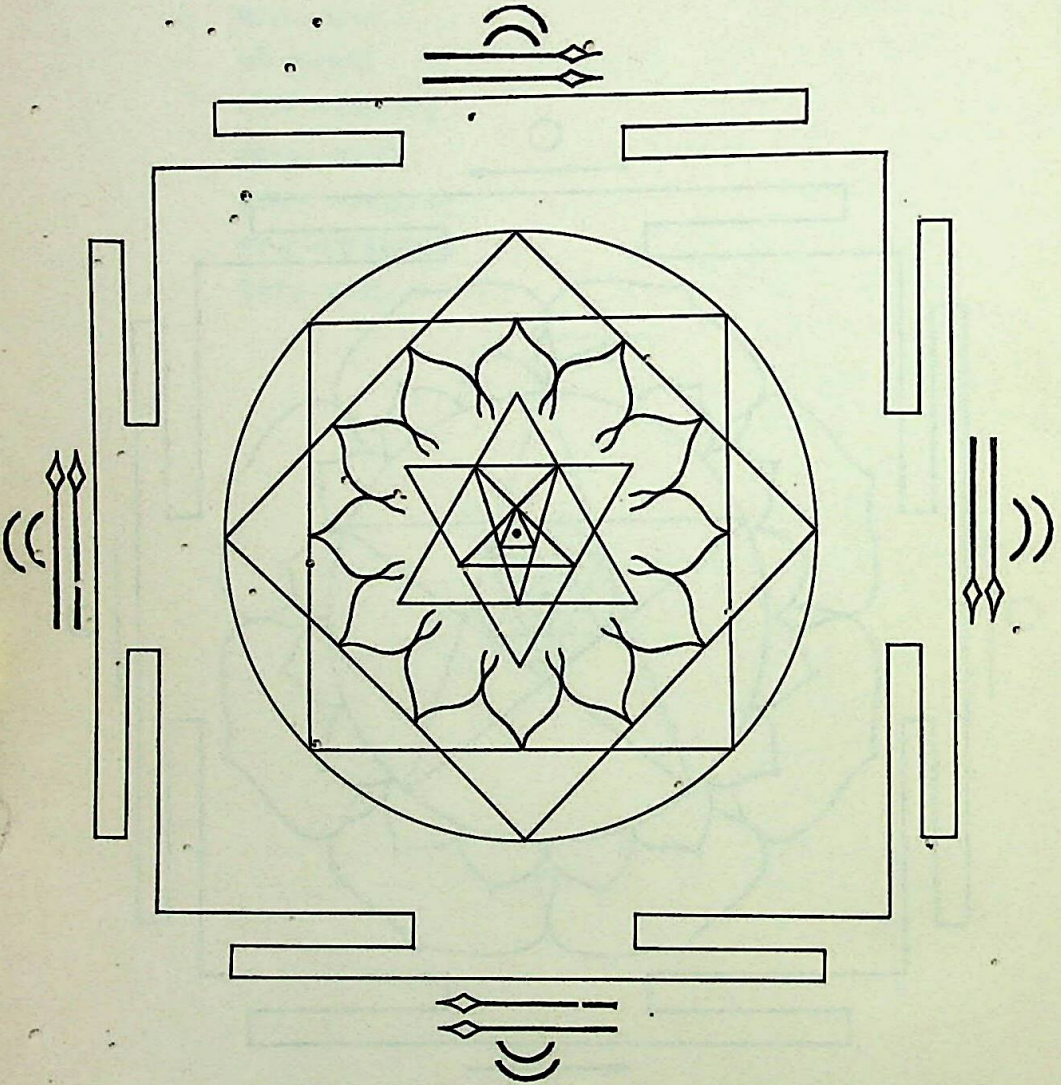
वैश्वानरादितीन्द्राण्युपासितमन्त्राणां यन्त्रम् (२)
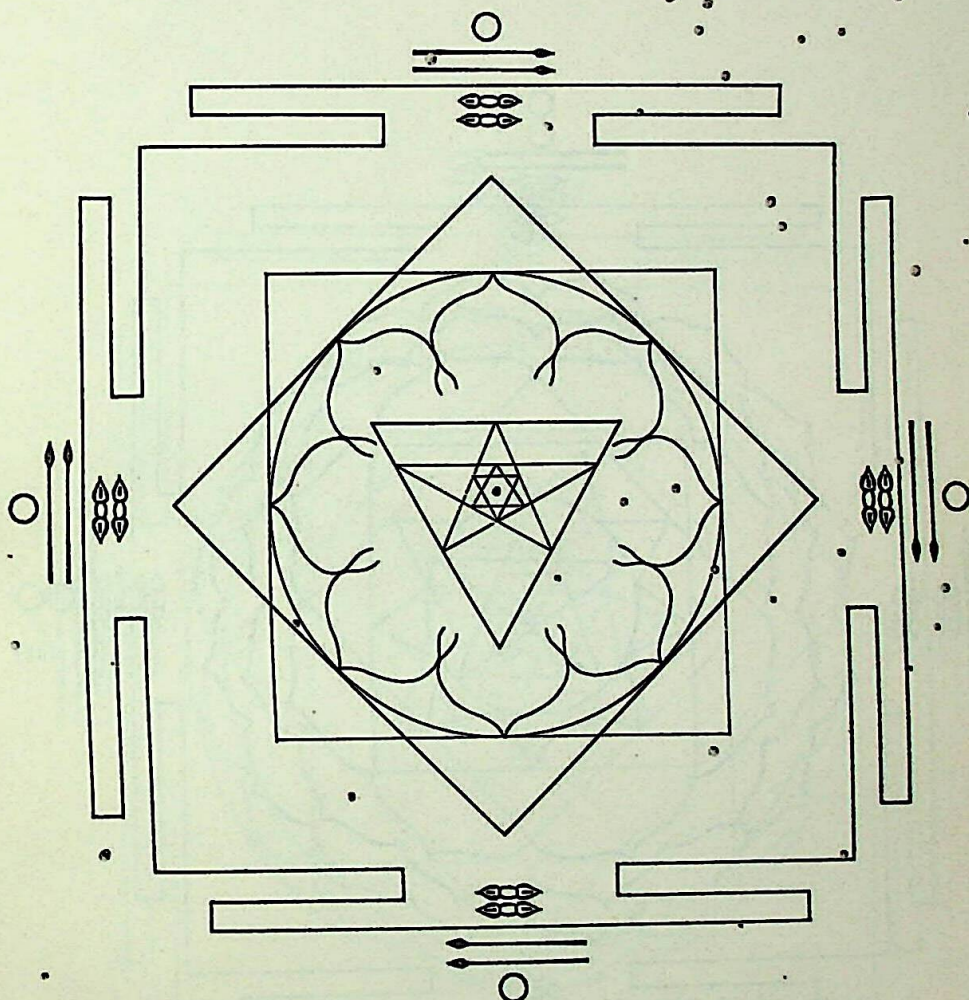
दानवालीमृत्युकालोपासितानां मन्त्राणां यन्त्रम् (३)

भरतच्यवनहारीतजाबालदक्षपूजितं यन्त्रम् (४)

रामयक्षेशनाहुषैः पूज्यं यन्त्रम् (५)

हिरण्यकशिपूपास्यमन्त्रस्य यन्त्रम् (६)
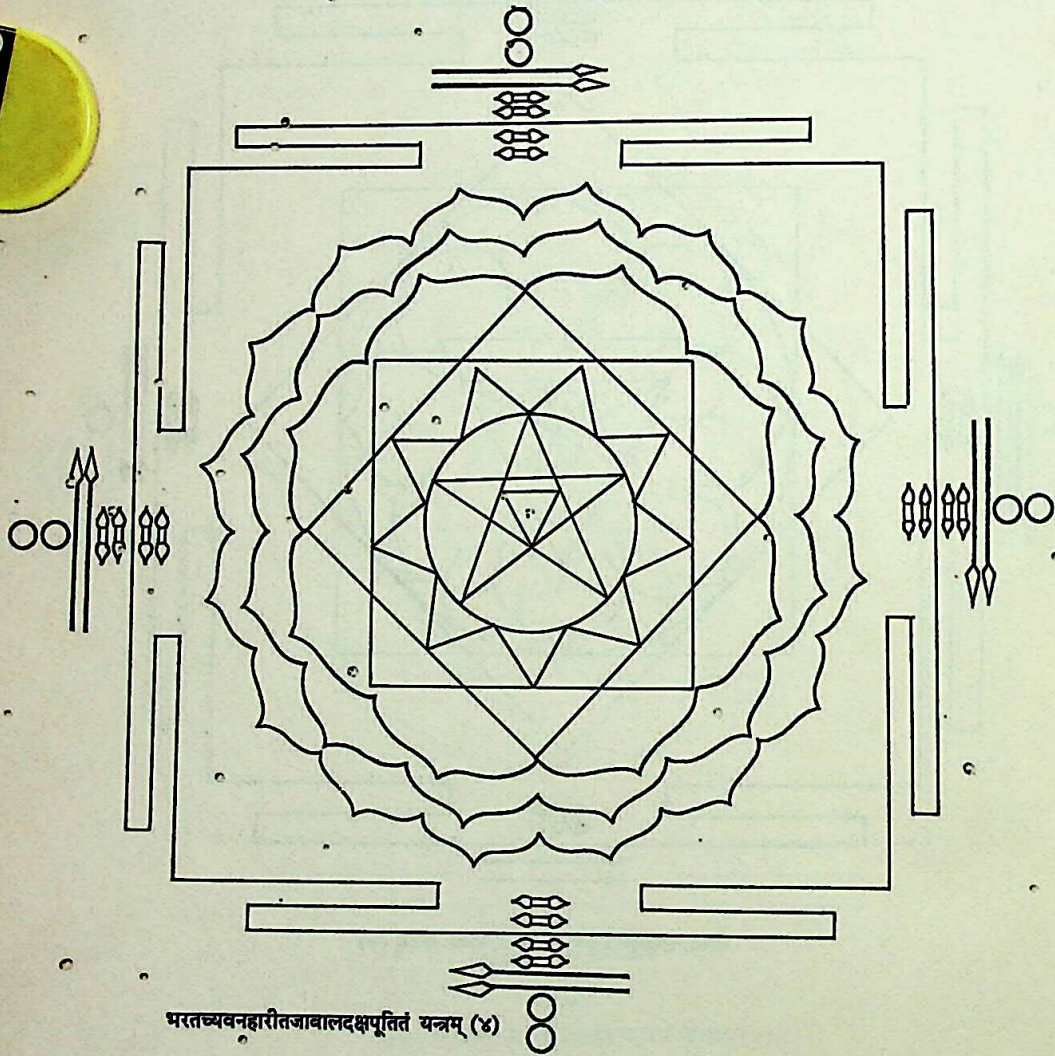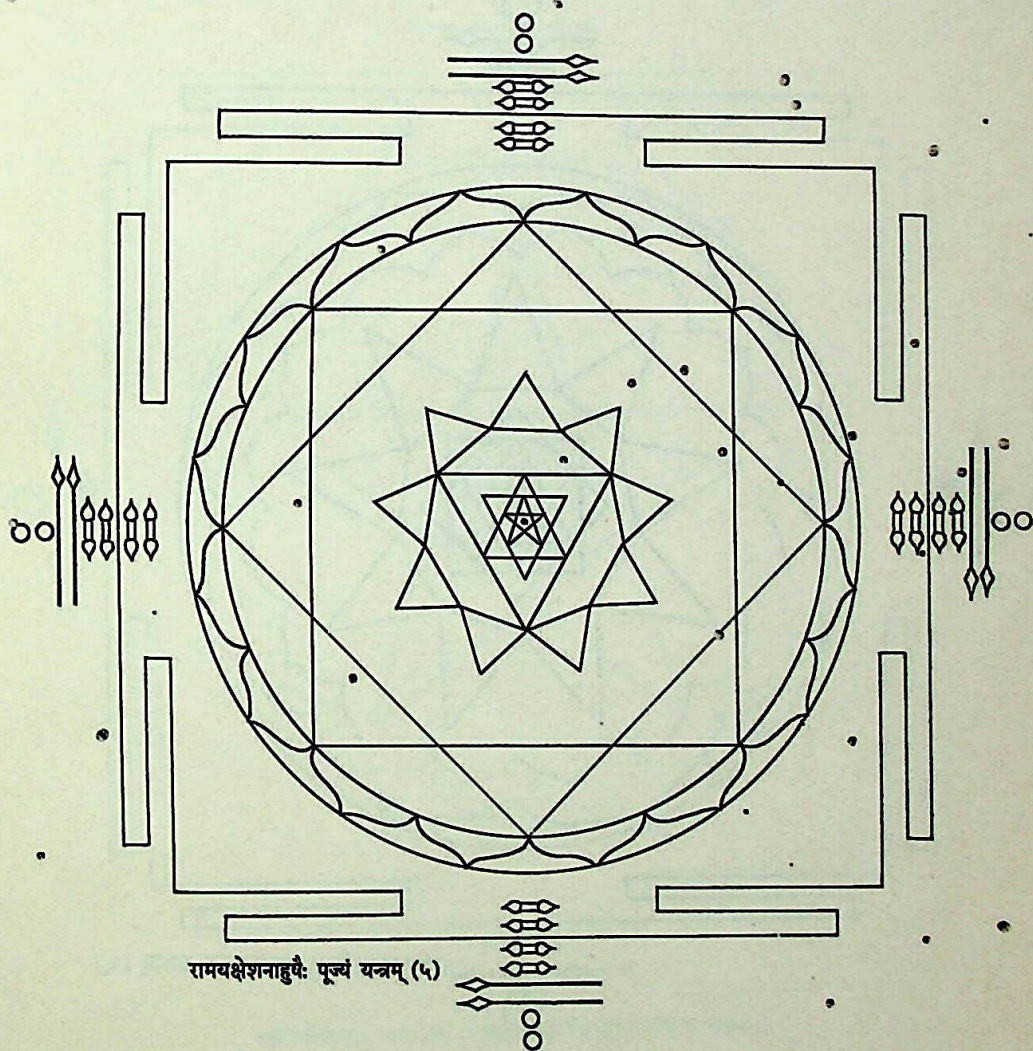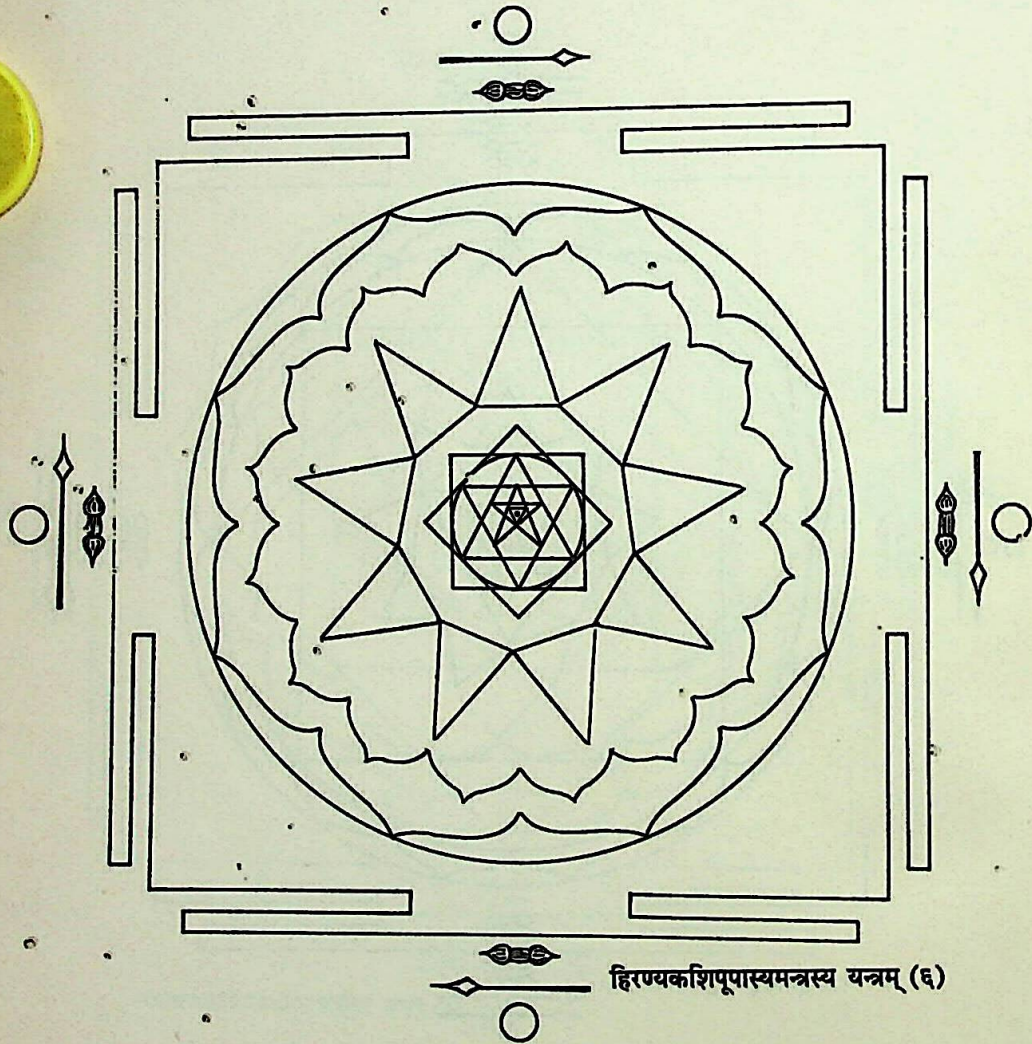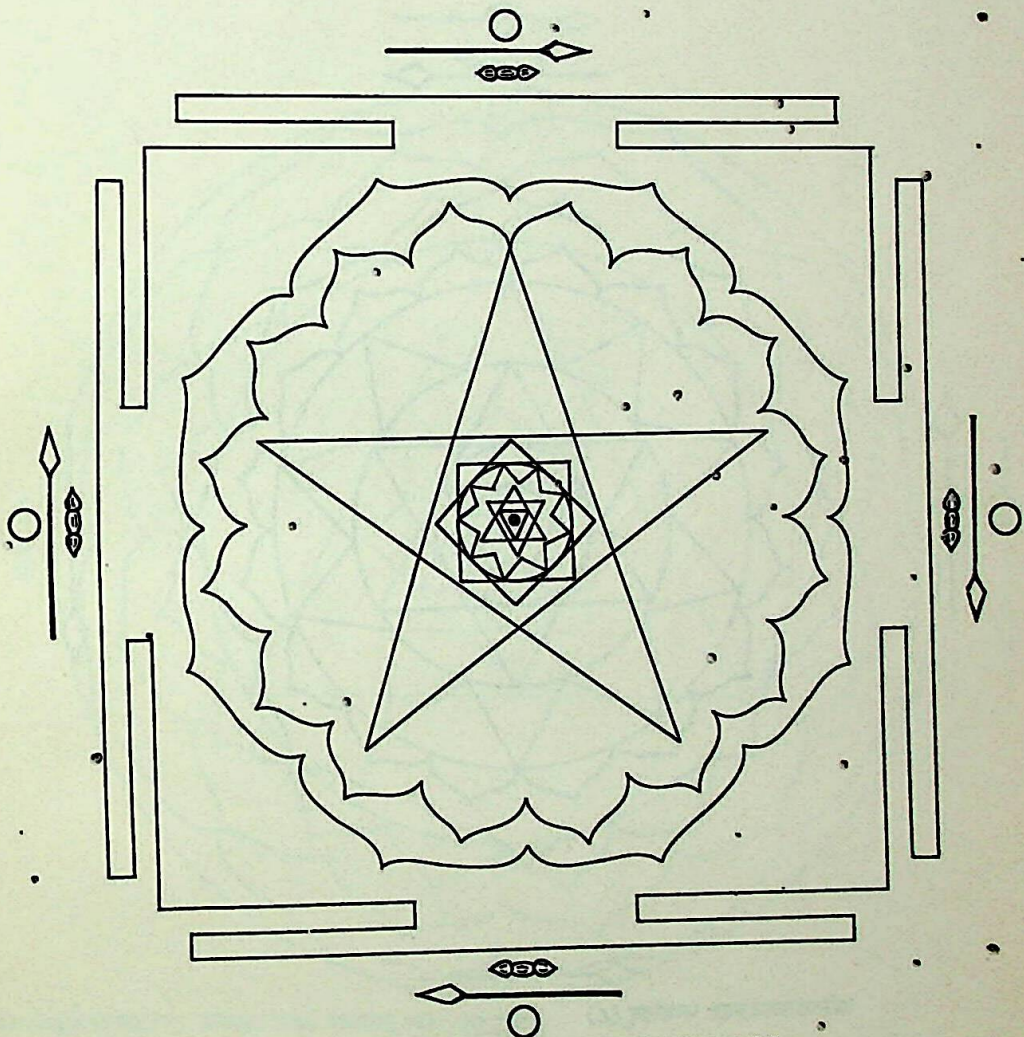
ब्रह्मोपासितायाः सप्तदश्याः विष्णुतत्त्वाख्यपञ्चाक्षरमन्त्रस्य च यन्त्रम् (७)

वसिष्ठसप्तदश्याः मण्डलम् (८)

रावणोपासितसप्तदश्याः अम्बाहृदयाख्यं मण्डलम् (९)

महारुद्रोपासितषोडशीयन्त्रम् (१०)

षोडशार्णापूजनयन्त्रम् (११)

षट्त्रिंशदक्षर्याः यन्त्रम् (१२)

जयमङ्गलायन्त्रम् (१३)

भुवनमोहनमहायन्त्रम् (१४)

गुह्येश्वरीशताक्षयीः यन्त्रम् (१५)

नवनवार्णायाः यन्त्रम् (१६)

विष्णुपास्यायुतार्णस्य मण्डलम् (१७)

यन्त्रराजयन्त्रम् (१८)

शाम्भवमन्त्राराधनयन्त्रम् (१९)

महाशाम्भवमन्त्रस्य यन्त्रम् (२०)

तुरीयायाः यन्त्रम् (२१)

महातुरीयायन्त्रम् (२२)

निर्वाणयन्त्रम् (२३)

महानिर्वाणयन्त्रम् (२४)